
9 999999 000775

# सामवेद का सुबोध भाष्य

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर



स्वाध्याय मण्डल

पारडी

प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[ जि० वलसाड ]

This book has been published with financial assistance from the Ministry of Education and Culture, Government of India

1985

Rs. 460 for 10 Vols.

मुद्रक
ज्ञान आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली



# सामवेदका सुबोध अनुवाद

## भूमिका

वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेदमें देवताओंके गुणोंका वर्णन है, यजुर्वेदमें नाना प्रकारके यज्ञोंको किसप्रकार करना चाहिए यह बताया है, सामवेदमें अनेक मंत्रोंका गायन किसप्रकार होना चाहिए यह बताया है और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान है। इसप्रकार चारों वेदोंकी विषय-व्यवस्था है।

### वेदत्रयी व वेदचतुष्टयी

" वेद-त्रयी " भी कई स्थलोंपर आया है जिसका अर्थ है, पद्य, गद्य और गायन। " पादबद्धव्यवस्था " वाले मंत्र ऋग्वेद, " गद्य भाग " यजुर्वेद और पादबद्ध मंत्रोंका गायन सामवेद है। यह वेदत्रयी है। अथर्ववेद मंत्रोंके पादबद्ध होनेके कारण उनका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है। वेदग्रंथोंके चार होनेपर भी उनका समावेश ( १ ) पद्य, ( २ ) गद्य और ( ३ ) गायन इन तीन विभागोंमें हो सकता है। इसलिए " वेद-त्रयी " और " वेद-चतुष्टयी " के मंत्रोंकी संख्यामें कोई फरक नहीं है। वेदत्रयी कहनेके कारण अथर्ववेद पीछेसे बना यह नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यज्ञोंमें " ब्रह्मा " अथर्ववेदी ही होता है, और " ब्रह्मा " की यज्ञमें आवश्यकता होती ही है, तब अथर्ववेद पीछेसे बना यह कैसे कहा जा सकता है ?

पद्य, गद्य और गान यह ही वेद-त्रयी है। सभी भाषाओंके वाङ्मयमें ये तीन विभाग होते ही हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाएगा, कि वेद-त्रयी और वेद-चतुष्टयीमें कोई भेद नहीं है। और वेद-त्रयीके कारण जो अथर्ववेदको पीछेसे बना हुआ मानते हैं, वे भी समझ जायेंगे कि उनकी यह धारणा गलत है।

यजुर्वेदमें जो पादबद्ध मंत्र ऋग्वेद या अथर्ववेदसे लिए गए हैं, वे पद्यके समान नहीं बोले जाते, अपितु गद्य जैसे बोले जाते हैं, अर्थात् वे ही मंत्र ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें पद्यके अनुसार छन्दोंमें बोले जाते हैं और वे ही मंत्र यजुर्वेदमें बोलनेके समय गद्यके समान बोले जाते हैं। मंत्रोंके पाठकी यह परिपाटी पुरानी है।

वेद-त्रयी अथवा वेद-चतुष्टयीके अनुसार मंत्र गणनामें कोई फरक नहीं पडता। वेद-त्रयीमें भाषाकी रचना मुख्य है और वेद चतुष्टयीमें प्रतिपाद्य विषयकी मुख्यता है। इसको और स्पष्ट करनेके लिए नीचे एक तालिका प्रस्तुत है—

१ वेद-त्रयी- पद्यमंत्र, गद्यमंत्र और गानके मंत्र।

२ वेद-चतुष्टयी- गुण वर्णनके मंत्र, यज्ञकर्मके मंत्र, गानके मंत्र और ब्रह्मज्ञानके मंत्र।

इन दोनों प्रकारकी गणनाओंमें मंत्रसंख्यामें कोई भेद नहीं आता।

### सामवेदका विभूतिमत्त्व

भगवान् श्री कृष्णने गीतामें भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन करते हुए " वेदानां सामवेदोऽस्मि " ऐसा कहा

*

है। चारों वेदोंमें सामवेद भगवान्‌की विभूति है। पद्य, गद्य और गायनमें मन पर "गायन" का विशेष प्रभाव पडता है इसका अनुभव सबको होगा। यही सामगानका विभूतिमत्व है। भाषाके तीन प्रकारमें गायनका प्रकार मन पर अधिक प्रभाव डालता है। साधारण मनुष्यके मन पर गायनके आनन्दका प्रभाव ज्यादा होता है। रोगीके मन पर भी गायनका प्रभाव पडता है और वह शीघ्र स्वस्थ होता है। गायनका परिणाम खेती, बाग और पौधोंपर भी होता है। खेतमें यदि गायन किया जाए तो अनाज अधिक उपजता है, रोगियोंके अस्पतालमें यदि गानेके रिकॉर्ड्स लगाये जाएं तो उनके कारण रोगी जल्दी ही स्वस्थ बन जाता है। दुधारु गायको दुहते समय यदि उसे गाना सुनाया जाए तो वह ज्यादा दूध देती है। इसप्रकार गायनका प्रभाव पडता है।

इस सामगानकी पद्धतिमें और आधुनिक पद्धतिमें थोडासा अन्तर है, उसका भी विचार यहां अत्यन्त आवश्यक है, सामगानमें स्वरको ऊंचे आलापसे शुरु करके उसे धीरे धीरे नीचे आलाप पर लाया जाता है, उसके कारण मनको शान्ति मिलती है और भडका हुआ मन सामगानको सुनकर शान्त हो जाता है। इसप्रकार सामगानसे शान्ति मिल सकती है।

आधुनिक पद्धतिके गानेमें ऊंचे और नीचे तानोंके मिश्रण होनेके कारण उस गानेसे मन शान्त होनेके बजाय और अधिक विकारवश होता है। दोनों प्रकारके गानेकी पद्धतियोंमें यह भेद है। इसलिए मनको शान्त करनेके लिए सामगानका उपयोग लाभप्रद है।

यही सामवेदका गीतोक्त विभूतिमत्व है। उच्छृंखल मनको शान्त करनेका काम सामगान कर सकता है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें भी कहा है—

सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम्। ( म. भा. १४।३।७ )

चारों वेदोंमें "सामवेद" और यजुर्वेदमें "शतरुद्रिय" विशेष महत्वके ग्रंथ हैं। गीतामें कहा है—

प्रणवः सर्ववेदेषु॥ ( गी. ७।८ )

तथा महाभारतमें भी—

ओंकारः सर्ववेदानाम्॥ ( महा अश्वमेध. ४४।६ )

ओंकारकी श्रेष्ठता बताई है। इस ओंकारकी प्रशंसासे सामवेदके महत्वमें न्यूनता आजाए, ऐसी बात नहीं। क्योंकि "ओंकार" व "उद्गीथ" दोनों समानार्थक हैं और उद्गीथ सामवेदका सार है।

छान्दोग्य-उपनिषद्‌में कहा है—

साम्नः उद्गीथो रसः॥ ( छां. उ. १।१।२ )

"सामका रस उद्‌गीथ है" इसप्रकार सामवेदका महत्व वर्णित है। यह सामवेद ही भगवान्‌की विभूति क्यों है? इसके अन्दर कौनसी विशेषता है, इसका अब विचार करते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
( गी. १०।४१ )

विभूतिका यह लक्षण गीतामें कहा है। जहां जहां विशेष विभूतिका तत्व होगा, श्रीमत्व दीखेगा, ऊर्जित-भावना अनुभवमें आएगी, वहां वहां भगवान्‌की विभूति है, यह समझना चाहिए। इस लक्षणके आधार पर सामवेद वेदोंमें निःसन्देह एक विभूति है। सामवेद गायनरूप होनेके कारण "शब्द-ब्रह्म" की गायनरूपी विभूति है। तान अथवा आलापसे सामवेदकी शोभा दीखती है, यही इसकी शोभा अथवा श्रीमत्व है। उसीप्रकार इस सामवेदका समूर्जितत्व विकार - विश्लेषण - अभ्यास - विराम - स्तोभ इन गानोंकी योजनासे श्रोताओंको अनुभवमें आयेगा। साधारण गद्यकी अपेक्षा छन्द, छन्दकी अपेक्षा काव्य, काव्यकी अपेक्षा गायन और गानमें तानोंका आलाप विशेष प्रभावशाली होता है। इसीकारण सामवेदकी विशेष महत्ता है। यह ही छान्दोग्य-उपनिषद्‌में कहा है—

वाचः ऋग्रसः, ऋचः सामरसः।
साम्न उद्गीथो रसः॥ ( छा. उ. १।१।२ )

"वाणीका रस ऋचा है, ऋचाका रस साम है, और सामका रस उद्‌गीथ है। और भी कहा है—

सामवेद एव पुष्पम्। ( छा. उ. ३।३।१ )

"जैसे वृक्षके पत्ते और फूलोंमें फूल विशेष शोभादायक होते हैं, उसीप्रकार गायनरूप होनेके कारण सामवेद वेद-वृक्षका फूल है।

## सामवेदका अर्थ

सामवेदका अर्थ और उसका स्वरूप क्या है? इस पर अब विचार करते हैं। सामवेदका अर्थ केवल मंत्रसंग्रह ही है अथवा गान भी है, यह अब देखते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्‌का कथन है—

या ऋक् तत्साम। ( छा. उ. १।३।४ )

"ऋचाओंका संग्रह ही साम है।" और भी—

ऋचि अध्यूढं साम। ( छा. उ. १।६।१ )

"साम ऋचा पर आधारित होते हैं।" साम ऋचाको छोडकर और किसीके आश्रयसे नहीं रहता। ऋग्वेद और

सामवेदका " स्त्री - पुरुष " के समान एक जोडा है, ऐसा भी कहा है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक् त्वं।
द्यौरहं पृथिवी त्वं । ताविह संभवाव, प्रजा-
माजनयावहै ।

( अथर्व. १४।२।७१; ऐत. ब्रा. ८।२७; बृ. उ. ६।४।२० )

मैं पति " अम " हूँ और तू स्त्री " ऋचा " है, " साम " मैं हूँ और " ऋचा " तू है, " द्यौ " मैं हूँ और " पृथिवी " तू है, हम दोनों मिलकर यहां उत्पन्न होते रहें, प्रजा उत्पन्न करें।

इसमें साम शब्दकी व्युत्पत्ति दी है। " सा+अमः " = सामः। " सा " मतलब " ऋचा " और " अम " मतलब आलाप, अतः " साम " का अर्थ है ऋचाओंके आधार पर किया गया गान।

## पादबद्धमंत्रोंका गान

ऋग्वेद और अथर्ववेदमें पादबद्धमंत्र हैं, और उनका गान होता है। " ऋचा " रूपी स्त्री और " सामगान " रूपी पुरुषका विवाह हुआ हुआ है। " पति - पत्नी " के समान साम और ऋचाका सम्बन्ध है। उपनिषदोंने इनका एक और भी सम्बन्ध दिखाया है, वह इसप्रकार है—

" वाक् च प्राणश्च, ऋक् च साम च ।

( छां. उ. १।१।५ )

" वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ ( छां. उ. १।७।१ )

" वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं। वाणी ऋचा है और प्राण साम है। " वाणी और प्राणका जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध ऋचा और सामका है।

## स्वर-मण्डल

ऋचाका अर्थ है चरणयुक्त-मंत्र। इन मंत्रोंका षड्ज, मध्यम आदि स्वरोंमें आलाप होता है। इसलिए कहा है—

गीतिषु सामाख्या ॥ ( जै. सू. २।१।३६ )

" वेदमंत्रोंके गानकी संज्ञा " साम " है। न केवल मंत्र-पाठकी ही " साम " संज्ञा है और न केवल गानेकी ही, अपितु इन दोनोंके मिश्रण की ही " साम " संज्ञा है। शालावत्य दाल्भ्यके संवादमें कहा है—

का साम्नो गतिरिति ? स्वर इति होवाच ।

( छां. उ. १।८।४ )

" सामकी गति क्या है ? स्वर - आलाप - ही सामकी गति है। स्वर अथवा आलापके बिना साम नहीं होता तथा—

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, भवति हास्य स्वं, तस्य स्वर एव स्वम् । ( बृ. उ. १।३।२५ )

" सामका स्वरूप आलाप है। " इस सामके स्वरमण्डलोंकी गणना नारदीय - शिक्षामें इसप्रकारकी गई है—

सप्तस्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
ताना एकोनपंचाशत् इत्येतत्स्वरमण्डलम् ॥

और भी कहा है—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।
यो द्वितीयः स गांधारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ।
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

( नारदीय - शिक्षा )

इस नारदीय - शिक्षामें धैवत और निषादका स्थान - परिवर्तन दीखता है, उसका विचार संगीतज्ञ करें। ये स्वर सामांकके अनुसार ऐसे होते हैं—

| | | |
|---|---|---|
| अतिक्रुष्टः | | पंचमः । प । |
| १ प्रथमः | ( वेणोः ) | मध्यमः । म । |
| २ द्वितीयः | | गांधारः । ग । |
| ३ तृतीयः | | ऋषभः । रे । |
| ४ चतुर्थः | | षड्जः । स । |
| ५ पंचमः | ( मन्द्रः ) | निषादः । नि । |
| ६ षष्ठः | ( अतिस्वार्थः ) | धैवतः । ध । |
| ७ सप्तमः | | पंचमः । प । |

( क्रुष्टः ) तयोर्यो क्रुष्टतम इव साम्नः स्वरस्तं देवा उपजीवन्ति । । प ।

१ योऽवरेषां प्रथमस्तं मनुष्या उपजीवन्ति । म ।

२ यो द्वितीयस्तं गन्धर्वाप्सरसः उपजीवन्ति । ग ।

३ यो तृतीयस्तं पशवः ( वृषभः ऋषभः ) उपजीवन्ति । रे ।

४ यश्चतुर्थस्तं पितरो ये चाण्डेषुशेरते । स ।

५ यः पंचमस्तमसुररक्षांसि ( निषादः ) उपजीवन्ति । नि ।

( अन्त्यः ) योऽन्त्यस्तमोषधयो वनस्पतयश्चान्यज्जगत् ( सामविधान ब्राह्मणे ) । ध ।

सामगानके ये स्वरमण्डल हैं। उद्गाता इन स्वरोंमें साम-

गान करते हैं। छः सामविकार होते हैं, ये इसप्रकार हैं—
विकार - विश्लेषण - विकर्षण - अभ्यास - विराम - स्तोभ।

१ विकार- " अग्ने " का " ओग्नायि " होता है।

२ विश्लेषण- " वीतये " का " वोयि तोयाऽयि " होता है।

३ विकर्षण- " ये " का " याऽ२३यि " होता है।

४ अभ्यास- बार बार बोलना, जैसे " तोयाऽ२यि। तोयाऽ२यि है।

५ विराम- जैसे " गृणानो हव्यदातये " को " गृणानोह। व्यदातये " ऐसा बोलते हैं, यद्यपि मूल मंत्रमें " गृणानोह् व्यदातये " ऐसा रूप नहीं है, फिर भी गानेके सौकर्यके लिए बीचमें ही तोड दिया जाता है, इसे विराम कहते हैं।

६ स्तोभ- ऋचाओंमें न आये हुए अक्षरोंको बोलना। जैसे " औ होवा। हाऊ " इत्यादि।

सामवेद गानरूप निस्सन्देह है, पर सामवेद जो आज पुस्तकके रूपमें है, वह तो केवल ऋचाओंका संग्रह है। इनमें एक भी सामगान नहीं है। जिन मंत्रोंके आधार पर गान होते हैं, वे " योनिमंत्र " हैं। अर्थात् सामवेदके ये मंत्र गाये नहीं जाते हैं, अपितु इनके आधार पर बने हुए जो गाने हैं, वे गाये जाते हैं। ऋषियोंने इन योनिमंत्रोंके आधार पर हजारों गाने बनाये हैं। वे आज सामगान कहे जाते हैं।

सामवेदमें १८७५ मंत्र हैं, उन मंत्रों पर करीब करीब ४००० सामगान बने हैं। " कौथुमी " शाखाका यह सामवेद है और इस पर ही चार हजार गाने बने हैं, दूसरी " राणायणी " शाखाका सामवेद दूसरा है, और उन पर भी ४००० गाने पृथक् बने हैं। इसप्रकार सामवेद अनेक हैं और उसके गाने भी अनेक हैं। ये सामगान जिस ऋषिने बनाये उसके नामसे ये गाने आज भी प्रसिद्ध हैं, जैसे " गोतमस्य पर्क, कश्यपस्य वार्हिषं " इत्यादि। ये सब " ग्रामगान, आरण्यकगान, ऊहगान, उह्यगान " आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

सामवेदके मंत्र सब ऋग्वेदसे ही लिए गए हैं और करीब ६० मंत्र जो ऋग्वेदकी आश्वलायन शाखामें नहीं मिलते शांख्यायन शाखामें मिलते हैं। तात्पर्य यह कि सामवेद ऋग्वेदके मन्त्रोंका ही संग्रह है। अतः सामवेदमें जो मंत्र हैं उनके अलावा जो ऋग्वेद या अथर्ववेदमें मंत्र हैं, उनका भी गान किया जा सकता है अर्थात् जितने पादबद्धमंत्र हैं उन सब पर सामगान बन सकते हैं।

## मंत्र और सामगान

ऋग्वेदके मंत्र जो सामवेदमें आये हैं, उन पर किस तरहके गान बने हैं, वह यहां दिखाते हैं—

ऋग्वेदका मंत्र—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ (ऋ ६।१६।१०)

सामवेदका मंत्र ( सामयोनिः )

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ (ऋ. ६।१६।१०)

इस मंत्रके सामगान—

( १ ) गोतमस्य पर्कम् १

५ २र र १ २
ओग्नाई। आयाहीऽ३। वोइतोयाऽ२इ।
१ १ र २र १
तोयाऽ२इ। गृणाना ह। व्यदातोयाऽ२इ।
१ १ २र १
तो याऽ२इ। नाइ होतासाऽ२३। त्साऽ२इ।
३ २र र ३
वाऽ२३४ औहो वा। हीऽ२३४षी॥ १॥

( २ ) कश्यपस्य वार्हिषम्—

४५ ४र ५र ४ १ र र र
अग्न आयाहि वी। तया३। गृणानो हव्यदाताऽ
२ १र र र २ १ २ १
२३याइ। नि होता सत्सि बर्हाऽ२३इषी। बर्हाऽ२
५र र १ १ १ १
इषाऽ२३४ औ होवा। बर्हीऽ३षीऽ२३४५॥२॥

( ३ ) गोतमस्य पर्कम्।

४५ ४र ५र ४ ४ १र र
अग्न आयाहि। वाऽ५इतयाइ। गृणानो हव्य-
२ २ २ ३ ५ १
दाऽ१ ताऽ३ये। नि होताऽ२३४सा। त्साऽ-
२ १ ५ ५
२३४ इवाऽ३। हाऽ२३४ इषोऽ६हा इ।

यहां प्रथम ऋग्वेदका एक मंत्र दिया है, वही मंत्र सामवेदमें गानेके लिए लिया गया है। यहां सामवेदके अक्षरोंपर जो अंक हैं, वे अंक उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरभेद दिखाने वाले हैं। ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे और ऊपर हैं, उन्हींको सामवेदमें अंकोंके द्वारा दिखाया गया है। जो ऋग्वेदमें अनुदात्तका निदर्शक नीचेकी लकीर (–) है, उसके लिए

सामवेदमें ३ अंक है। ऋग्वेदमें उदात्तके लिए कोई चिन्ह नहीं है, सामवेदमें उसके लिए १ का अंक है। ऋग्वेदमें स्वरितके लिए खडी रेखा ( । ) होती है, उसके लिए सामवेदमें २ अंक है, जैसे—

अग्न आ याहि वीतये
२ ३ १ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये

उ अ उ स्व प्र अ उ स

" उ "- उदात्त, " अ "- अनुदात्त, " स्व "- स्वरित, " प्र "- प्रचय " स "- सन्नतर ये स्वर हैं। ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे और ऊपरकी रेखासे दिखाये गये हैं, उन्हींको सामवेदमें अंकों द्वारा दिखाया गया है। चिन्हमें फरक होने पर भी उच्चारणमें कोई फरक नहीं है। सामवेदके अंक गानेके अंक नहीं हैं, यह यहां ध्यान देने योग्य बात है।

ऊपर गोतमके दो और कश्यपका एक ऐसे तीन सामगान दिये हैं। सामगान तान आलाप आदि स्वरोंमें गाये जाते हैं। मूलमंत्र गानोंमें विकृत हो जाते हैं, इसलिए उनका अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

## सामगानके अनेक भेद

" सहस्रवर्त्मा सामवेदः " इस प्रकार पतंजलिने अपने व्याकरण महाभाष्यमें कहा है। सामगानके हजारों भेद हैं। गायक प्रवीण होनेके बाद अपने गायनका नया ढंग तैय्यार करता है। ऐसे अनेक उत्तम गायक उसके अनेक प्रकार बनाते हैं। इसीलिए सामवेदको " सहस्रवर्त्मा " कहा है। उसके प्रकार " गोतमस्य पर्कं, कश्यपस्य बार्हिषं " आदि नामोंसे दिखाये हैं। गोतमका सामगान पृथक् और कश्यपका सामगान पृथक् है। इस प्रकार अनेक गान हो सकते हैं।

## सामवेदकी शाखा

सामगानके प्रकार अनेक होनेके कारण उसकी शाखायें भी बहुत हैं और अति प्राचीनकालसे इन अनन्त शाखाओंका प्रचलन होता आया है। चरणव्यूहमें शाखाके विषयमें इस-प्रकार लिखा है—

१ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रं आसीत्।

२ राणायणीयः, सात्यमुख्याः, कालापः, महाकालापः, कौथुमाः, लांगलिकाश्चेति। कौथुमानां षद् भेदाः भवन्ति-सारायणीयाः, वातरायणीयाः, वैधृताः, प्राचीनाः, तैजसा, अनिष्टकाश्चेति।

इस तरह सामगानके पहले हजार भेद थे, पर वे सब धीरे धीरे नष्ट होते चले गए और अब केवल उसके २-३ भेद ही उपलब्ध हैं। और उत्तम सामगान करनेवाले तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। दक्षिण भारतमें विशेषकर मैसूरकी तरफ थोडेसे रह गए हैं।

सामवेदकी तेरह शाखायें हैं, यह " साम - तर्पण - विधि " में लिखा है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ राणायण, २ शाट्यमुग्र्य, ३ व्यास, ४ भागुरि, ५ औलुण्डी, ६ गौल्गुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव, ८ काराटि, ९ मशक गार्ग्य, १० वार्षगव्य, ११ कुथुम, १२ शालिहोत्र, १३ जैमिनी।

इन तेरह शाखाओंमेंसे आज, " राणायणी, कौथुमी और जैमिनीय " ये तीन शाखायें उपलब्ध हैं। चरणव्यूहमें सामवेदकी जो हजार शाखायें कही गई हैं, वे मान्य नहीं हैं, यह बात बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् सत्यव्रत सामश्रमीने सिद्ध करके दिखाई है। पुराणोंमें और भी सामकी शाखाओंके नाम मिलते हैं, वे विचारणीय हैं—

इन शाखाओंके गानोंमें बहुत भेद है। जैसे—

| कौथुमी | राणायणी |
| --- | --- |
| हाउ | हावु |
| राइ | रायि |
| वाजेषु नो | वाजेषु णो |

यह पाठभेद इन दोनों शाखाओंके गानोंमें मिलता है।

सामवेदमें ऋग्वेदके वालखिल्यमेंसे भी कुछ मंत्र आए हैं, उन परसे ऐसा दीखता है कि वालखिल्यके मंत्रोंका समावेश ऋग्वेदमें होनेके बाद इस सामवेदका मंत्रसंग्रह हुआ है।

## ऋग्वेदमें सामका उल्लेख

ऋग्वेदमें सामका उल्लेख अनेकवार आया है—

१ अंगिरसां सामभिः स्तूयमानाः ( देवाः )। ( ऋ. १।१०७।२ )

२ अंगिरसो न सामभिः। ( ऋ. १०।७८।५ )

३ उभौ वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति।

४ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। ( ऋ. २।४३।१-२ )

" वह पक्षी सामगानेवालेके समान गायत्री और त्रिष्टुभ् इन दोनों छन्दोंमें साम गाता है और उसके कारण वह शोभित होता है। हे शकुने ! तू उद्गाताके समान सामगान करता है। तू ब्रह्मपुत्रके समान यज्ञके सवनमें गाता है "

५ यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
( ऋ. ५।४४।१४ )

" जागृत रहनेवालेके पास ही साम जाते हैं " ।

६ तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुः यज्ञन्यं सामगां उक्थशासम् । ( ऋ. १०।१०७।६ )

" उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा, उसीको यज्ञ करनेवाला, उसीको सामगायक और स्तोत्र बोलनेवाला कहते हैं । "

७ उपगासिषत् श्रवत्साम गीयमानम् ।
( ऋ. ८।८१।५ )

८ यूयं ऋषिं अवथ सामविप्रम् । ( ऋ. ५।५४।१४ )

" सामगान करो, और सामगान सुनने दो । सामगानमें कुशल ब्राह्मण ऋषिकी तुम रक्षा करो " ।

९ एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
( ऋ. ८।९५।७ )

१० इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
( ऋ. ८।९८।१ )

" शुद्ध साम गाकर तेरी हम स्तुति करते हैं। ज्ञानी इन्द्रको बृहत् नामक सामका गान करके दिखाओ " ।

११ बृहस्पतिः सामभिः ऋक्वो अर्चतु ।
( ऋ. १०।३६।५ )

१२ अर्चन्त एके महि साम मन्वत ।
( ऋ. ८।२९।१० )

" सामगानसे पूजयनीय बृहस्पतिकी पूजा हो। कोई महान् सामका गान करते हैं । "

१३ आंगूष्यं शवसानाय साम । ( ऋ. १।६२।२ )

१४ ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ( ऋ. १।१४७।१ )

१५ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कं अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् । ( ऋ. १।१६४।२४ )

१६ ये न परः साम्नो विदुः । ( ऋ. २।२३।१६ )

" महा बलवान् इन्द्रके लिए आंगूष्य सामका गान करो। यज्ञमें सामगानको सुनकर देव आनन्दित हो गए । गायत्रीसे अर्क बनाते हैं, अर्कसे साम और त्रैष्टुभसे वाणी उत्तम होती है । वे सामकी अपेक्षा और किसीको श्रेष्ठ नहीं समझते " ।

१७ त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।
( ऋ. २।२३।१७ )

१८ साम कृण्वन् सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेति ।
( ऋ. ९।९६।२२ )

१९ परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
( ऋ. ९।१११।२ )

२० स हि द्युता विद्युता वेति साम ।
( ऋ. १०।९९।२ )

२१ तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे । ( ऋ. १०।९०।९ )

" त्वष्टाने तुझे सामका ज्ञानी बनाया है । सामका निर्माण करते हुए सामगायनमें महान् ज्ञानी गान करता हुआ आगे होता है । सामगान जिससे दूर तक सुनाई पडे, इस तरहसे ज्ञानी जोरसे स्तोत्र बोलते हैं । वह इन्द्र प्रकाशमान् विद्युत्के समान आयुध लेकर साम सुननेके लिए आता है । उस सर्वहुत यज्ञसे ऋचा और साम उत्पन्न हुए ।

२२ अशीतिभिः तिसृभिः सामगेभिः इष्टापूर्तं अवतुः नः । ( अथर्व. २।१२।४ )

२३ ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते ।
( अथर्व. ७।५४।१ )

२४ बृहतः परिसामानि षष्ठात् पंचाधि निर्मिता ।
( अ. ८।९।४ )

२५ षड् सामानि षडहं वहन्ति । ( अ. ८।९।१६ )

२६ सामानि यस्य लोमानि । ( अ. ९।६।२ )

" ८०×३= २४० गायकोंके साथ इष्टापूर्त्त हमारी रक्षा करें । ऋचा और सामसे हम यजन करते हैं, जिससे हम कर्म करते हैं । छठे बृहत्के आधार पर पांच प्रकारके साम हमने बनाये हैं । छै साम छै दिनके यज्ञमें चलते हैं । साम जिसके लोम है ।"

२७ सपत्नहं ऋक्संशितः सामतेजाः ।
( अ. १०।५।३० )

२८ यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
( अ. १०।७।१४ )

२९ साम्ना ये साम संविदुः अजस्तद्दृशे क्व ।
( अ. १०।८।४१ )

३० वशा समुद्रे प्रानृत्यत् ऋचः सामानि बिभ्रती।
( अ. १०।१०।१४ )

३१ ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा।
( अ. ११।३।१५ )

" शत्रुओंको मारनेवाला, ऋचाओं द्वारा तीक्ष्ण किया गया व सामोंसे तेजस्वी वह बनाया गया है। जिसमें प्रथम जन्मे हुए ऋषि, ऋचा, साम, यजु व पृथिवी आश्रित हैं। सामसे सामको जो अच्छी तरह जानते हैं, उन्होंने अजन्माको भला कहां देखा ? वशा ( गाय ) ऋचा और सामको धारण करके भव समुद्रमें नृत्य करने लगी। ब्रह्माने उसे चारों ओरसे पकड लिया और सामने उसे घेर लिया। "

३२ ऋक्सामयजुरुच्छिष्ट उद्गीथ प्रस्तुतं स्तुतम्।
उच्छिष्टे स्वरसाम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥
( अ. ११।७।५ )

३३ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
( अ. ११।७।२४ )

३४ शरीरं ब्रह्म प्राविशत् ऋचः सामाथो यजुः।
( अ. ११।८।२३ )

३५ ब्रह्माणो यस्यामर्चन्ति ऋग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
( अथ. १२।१।३८ )

३६ तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानु-
व्यचलन्। ( अथ. १५।६।८ )

३७ ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च
प्रियं धाम भवति। ( अथ. १५।६।९ )

" ऋचा, साम, यजु, उद्गीथ, प्रस्ताव, स्तोत्र, स्वर और सामके आलाप उच्छिष्टमें हैं। वे मुझमें आवें। ऋचा, साम, छन्द और पुराण यजुर्वेदके साथ उच्छिष्टसे उत्पन्न हुए। ऋचा साम और यजु ये ब्रह्मज्ञान शरीरमें प्रविष्ट हुए। जिस भूमिपर ऋचा, साम और यजु जाननेवाले ब्राह्मण यज्ञकर्म करते हैं। उसके पीछे ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म चले। वह ऋचा, साम, यजु और ब्रह्मका प्रिय धाम होता है। "

इन मंत्रोंमें ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म ये चार वेदोंके वाचक शब्द आये हैं। इनमें कुछ मंत्रोंमें ये वेदोंके वाचक हैं, तो कुछ मंत्रोंमें ये शब्द उन उन वेदमंत्रोंके वाचक हैं। हमारा प्रस्तुत विषय सामवेद और सामगान है। ऊपरके कुछ मंत्रोंमें सामवेद ऐसा भी अर्थ है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
( अथ. १९।६।१३; ऋ. १०।९०।९; यजु. ३१।७ )



सामानि यस्य लोमानि। ( अथ. १०।७।२० )
ऋचः सामानि छन्दांसि। ( अथ. ११।७।२४ )

इन मंत्रोंमें " साम " का अर्थ " सामवेद " है ऐसा प्रतीत होता है। बाकीके मंत्रोंमें सामगानके बोधक " साम " अथवा " सामानि " ये पद हैं। इन मंत्रोंसे यह स्पष्ट होता है कि ऋचाओंके आधारसे सामगान करनेकी पद्धति वैदिककालमें चालू थी और सामवेद भी बन गया था। यज्ञमें जो ऋग्वेदके मंत्र गाये जाते हैं, उनका संग्रह यह सामवेद है। सामवेदकी अनेक शाखायें प्रचलित थीं और उनकी संहितायें भी पृथक् बनी हुईं थीं।

ऋग्वेदमंत्रोंमें सामगानके नाम " वैरूपं, बृहत्, गौर-वीति, रैवतं, अर्कं, गायत्रं, श्लोकं, भद्रं " इत्यादि आए हैं, इसप्रकार अथर्ववेदके मंत्रोंमें भी सामगानके नाम मिलते हैं, यजुर्वेदमें रथन्तरं ( यजु. १०।१० ); बृहत् ( य. १०।११ ); वैरूपं ( य. १०।१२ ); वैराजं ( य. १०।१३ ); वैखानसं, वामदेवं, यज्ञायज्ञियं ( य. १२।४ ) शाक्वरं, रैवतं ( य. १०।४ ); गायत्रं, गौरिवीतं, अभी-वर्तं, क्रोशं, सत्रस्यर्धिं, प्रजापतेर्हृदयं, श्लोकं, अनु-श्लोकं, भद्रं, राजन्, अर्क्यं, इलान्दं, इत्यादि साम-गानके नाम आये हैं,

ऐतरेय ब्राह्मणमें, ' बृहत्, रथन्तरं, वैरूपं, वैराजं, शाक्वरं, रैवतं, गायत्रं, श्यैतं, नोधसं, रौरवं, यौधा-जयं, अग्निष्टोमीयं, भालं, विकर्णं " इत्यादि नाम दीखते हैं।

ये नाम उस उस सामगानकी विशिष्टता दिखाते हैं। ऋग्वेद आदि में आये हुए वर्णनोंसे यह निश्चत होता है कि सामगानसे देवोंकी प्रार्थना की जाती थी। यज्ञमें सोमरस निकालकर, उसमें पानी मिलाकर छानकर व दूधके साथ मिलाकर वह पीनेके लायक होने तक सामगान चलता था और वह दूरसे सुनाई पडता था। गायन निस्सन्देह उत्तम होता था। कुछ लोगोंकी धारणा है कि सामगानकी पद्धति अर्वाचीन है, पर यह उनकी धारणा गलत है।

## सामवेदकी स्वरगणना

सामवेदकी स्वरगणना बहुत उत्तमतासे की गई है। उतनी सावधानीसे गणना कहीं और नहीं दिखाई देती है। वह गणना कैसी है, देखिए—

३ १ २   ३ २ ३   १ २   ३ १ २
रेवतीर्न सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
३ २ ३   २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ १०८४
२ ३ २ ३   १ २ ३ २   ३ १ २
आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवी-
१ २   ३ २उ ३ १ ३क २र
यानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥ १०८५
१   २र   ३ १   २र   ३ २
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
३ २उ ३ १ २र
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १०८६

इन मन्त्रोंमें स्वर चिन्ह रहित अक्षर ये हैं ।

१०८४- र्नः । स । स । न्तु ।

१०८५- धृ । ष्ण । वि । र ।

१०८६- य । दु । श । त । क्र । का । ज । रि । ऱ । श ।

४+४+१०=१८ अक्षर चिन्ह रहित हैं । यह " घा १८ " इस पदसे दिखाया है । यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि मंत्रके अन्तका अक्षर स्वर चिन्हरहित होते हुए भी नहीं गिना जाता । प्रथम मंत्रके अन्तके " जाः । म " ये दो और तीसरे मंत्रका अन्तिम अक्षर " भिः " इसप्रकार तीन अक्षर अन्तमें होनेके कारण नहीं गिने गए हैं । तथा " म् " यह व्यंजन होनेके कारण नहीं लिया गया है । तात्पर्य यह कि तीन मंत्रोंमें १८ अक्षर स्वर चिन्हरहित हैं ।

इन तीन मंत्रोंमें उकार चिन्हके अक्षर दो हैं । द्वितीय और तृतीय मंत्रमें " णो२उ " यह ही अक्षर दो बार आया है, उसे " उ. २ " इस संकेतसे दिखाया है ।

रकार चिन्हवाले चार अक्षर इन तीन मंत्रोंमें हैं । " २र वः । २र म । २र ची । ये तीन तीसरे मंत्रमें और दूसरे मंत्रमें " क्र्योः२ " यह एक मिलकर चार अक्षर रकार चिन्ह वाले हैं । यह " स्व-४ " के संकेतसे दिखाया है ।

इतनी सूक्ष्मदृष्टिसे यह स्वर गणनाकी गई है, अतः सामगानमें स्वरोंकी गलती नहीं हो सकती ।

## सामवेदके गानग्रंथ

ऋषियोंने ऋग्वेदके मंत्रोंके आधार पर गान बनाये फिर उन गानोंका संग्रह करके अनेक ग्रंथ बनाये । उनमें ( १ ) ग्रामगेय गान अथवा गेयगान अथवा प्रकृतिगान, ( २ ) आरण्यक गेयगान, ( ३ ) ऊहगान, ( ४ ) उह्यगान, अथवा रहस्य गान ये ग्रंथ प्रसिद्ध हैं ।

इन गान ग्रंथोंमें कितने मंत्र और कितने गान हैं, उन्हें दिखाते है—

| | कौथुमीय शाखामंत्र | जैमिनीयशाखामंत्र |
|---|---|---|
| पूर्वार्चिक | ५८५ | ५८७ |
| आरण्यक | ५९ | ५९ |
| उत्तरार्चिक | १२२५ | १०४१ |
| | १८६९ | १६८७ |
| महानाम्नि | ६ | ६ |
| | १८७५ | १६९३ |

इससे ज्ञात हो जाएगा कि प्रत्येक शाखाके सामवेदमें मंत्र-संख्या और मंत्र-क्रममें भिन्नता व न्यूनाधिकता है । अब इन मंत्रों पर जितने गान बने हैं उन्हें दिखाते हैं—

| | कौथुमीय गान | जैमिनीय गान |
|---|---|---|
| ग्रामगेयगान | ११९७ | १२३२ |
| आरण्यकगेयगान | २९४ | २९१ |
| ऊहगान | १०२६ | १८०२ |
| उह्यगान | २०५ | ३५६ |
| | २७२२ | ३६८१ |

कौथुमी शाखाके सामवेदमें मंत्र १८७५ हैं और गाने उन पर २७२२ बने हैं । जैमिनीय शाखाके सामवेदमें मंत्र १६९३ मंत्र हैं, पर उनपर बने हुए गाने ३६८१ हैं । इसप्रकार सामवेदकी प्रत्येक शाखाके मंत्र व गानोंमें भेद है ।

## सामवेदके ब्राह्मण

( १ ) ताण्ड्य ब्राह्मण, ( प्रौढ अथवा पंचविंश ब्राह्मण ) ( २ ) षड्विंश ब्राह्मण, ( ३ ) साम्विधान ब्राह्मण, ( ४ ) आर्षेय ब्राह्मण, ( ५ ) देवताध्याय ब्राह्मण, ( ६ ) उपनिषद्‌ब्राह्मण. ( संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मंत्र ब्राह्मण, ( ७ ) वंश ब्राह्मण आदि सामवेदके ब्राह्मण हैं ।

षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मणका २६ वां भाग है । इसलिए पहला भाग " पंचविंश ब्राह्मण " के नामसे प्रसिद्ध है । और उत्तर भाग " षड्विंश ब्राह्मण " के नामसे प्रसिद्ध है । पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और छान्दोग्य

उपनिषद् मिलकर " ताण्ड्य महाब्राह्मण " होता है। षड्विंशब्राह्मणमें अद्भुत कथाओंका संग्रह होनेके कारण उसे " अद्भुतब्राह्मण " भी कहते हैं। सामवेदके दूसरे ब्राह्मणोंका दूसरा नाम " अनु ब्राह्मण " भी है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणमें " केनोपनिषद् " है। इस जैमिनीय शाखाका दूसरा नाम " तवल्कार शाखा " भी है, इसलिए केनोपनिषद्को तवलकारीय केनोपनिषद् भी कहते हैं।

## सामवेदके सूत्रग्रंथ

( १ ) मशककल्पसूत्र, ( २ ) क्षुद्रसूत्र, ( ३ ) लाट्यायन श्रौतसूत्र, (४) गोभिलीय गृह्यसूत्र। और राणायणीय शाखाके ( १ ) द्राह्यायण श्रौतसूत्र, ( २ ) खादिरगृह्यसूत्र, ( ३ ) पुष्पसूत्र। ये सामवेदके सूत्रग्रंथ " प्रातिशाख्य " के नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

## वेदमंत्रोंके अर्थ

वेदमंत्रोंके अर्थके सम्बन्धमें बहुत मतभेद हैं। वास्तवमें वेदोंकी एक अपनी भिन्न शैली है। वह शैली या प्रक्रिया समझमें आजाय तो फिर मतभेदका कोई कारण नहीं रहता। सर्व प्रथम वेदमंत्रोंने ही कहा है कि सत्य वस्तु एक है। और कवियोंने उस एक तत्वके अनेक गुणोंको देखकर उसके अनेक नाम रख दिए हैं। उदाहरणार्थ—

इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निमाहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ( ऋ. १।१६४।४७ )

( एकं सत् ) एक ही सद्वस्तु है, उस एक ही वस्तुका ( विप्राः बहुधा वदन्ति ) ज्ञानी लोग अनेक नाम देकर वर्णन करते हैं। उसी एक सद्वस्तुको ज्ञानी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि नामोंसे वर्णित करते हैं।

इस मंत्रने वेदकी प्रक्रियाका यथार्थ वर्णन किया है। अर्थात् अग्नि, वायु, इन्द्र, यम आदि नाम उस एक परमेश्वरके हैं और इन नामोंसे उनके गुणोंका वर्णन हुआ है।

मंत्र अग्नि देवताका हो, अथवा इन्द्र देवताका हो, उन मंत्रोंका मुख्य भाव परमात्मा परक ही है, यह यहां ध्यान देने योग्य है। अग्निको ' विश्ववेदाः " कहा है। " विश्ववेदाः ' का अर्थ है " सर्वज्ञ "। अग्नि सर्वज्ञ न होकर " परमात्मा सर्वज्ञ है " यह ऊपरके मंत्रमें कहा है।

*

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इत्येतत् ॥

( कठ उ. २।१५ )

" सब वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप जिसके लिए किए जाते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे किया जाता है, उस पदको मैं संक्षेपसे तेरे लिए कहता हूं कि वह " ओ३म् " है "। अर्थात् " ओ३म् " शब्दसे जिस तत्वका संकेत है उसी परमात्माका वर्णन सब वेद करते हैं। सब तपश्चर्या उसीके लिए की जाती है और ब्रह्मचर्यका पालन भी उसीके लिए किया जाता है। यही आगेके मंत्रमें प्रतिपादित है—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥

( यजु. ३२।१ )

( तत् एव अग्निः ) वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापतिपदोंसे वेदमंत्रोंमें वर्णित है "। अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु आदि नाम यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि उन विभिन्न नामोंसे उस एक ही ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें किया गया है। यही मैत्रायणी उपनिषद्में और स्पष्ट किया है—

एष खलु आत्मा ईशानः शंभुर्भवो रुद्रः।
प्रजापतिर्विश्वसृड् हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो
हंसः शान्तो विष्णुः नारायणोऽर्कः सविता
धाता सम्राड् इन्द्र इन्दुरिति ॥ ( मैत्रायणी ५।८ )

" यही आत्मा ईश्वर, शंभु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वस्रष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शान्त, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सम्राट्, इन्द्र, इन्दु आदि नामोंसे वर्णित है। " इस विवेचनासे स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि नामोंसे मुख्यतः एक आत्मा अर्थात् परमेश्वरका ही वर्णन किया जाता है। यह ही श्री यास्काचार्य अपने निरुक्तमें कहते हैं।

महाभाग्याद्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति।
...आत्मा एव एषां रथो भवति, आत्मा अश्वः;
आत्मा आयुधं, आत्मा इषवः, आत्मा सर्वं देवस्य

( निरुक्त )

" देवोंके महान् भाग्यके कारण, महान् सामर्थ्यके कारण एक ही आत्माको अनेक प्रकारसे स्तुति होती है। एक

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ १०८४

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥ १०८५

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १०८६

इन मन्त्रोंमें स्वर चिन्ह रहित अक्षर ये हैं।

१०८४- र्नः । स । स । न्तु ।

१०८५- धृ । ष्ण । वि । र ।

१०८६- य, । दु । श । त । क्र । का । ज । रि । र । श ।

४+४+१०=१८ अक्षर चिन्ह रहित हैं। यह "धा १८" इस पदसे दिखाया है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि मंत्रके अन्तका अक्षर स्वर चिन्हरहित होते हुए भी नहीं गिना जाता। प्रथम मंत्रके अन्तके "जाः । म" ये दो और तीसरे मंत्रका अन्तिम अक्षर "भिः" इसप्रकार तीन अक्षर अन्तमें होनेके कारण नहीं गिने गए हैं। तथा "म्" यह व्यंजन होनेके कारण नहीं लिया गया है। तात्पर्य यह कि तीन मंत्रोंमें १८ अक्षर स्वर चिन्हरहित हैं।

इन तीन मंत्रोंमें उकार चिन्हके अक्षर दो हैं। द्वितीय और तृतीय मंत्रमें "णो२उ" यह ही अक्षर दो बार आया है, उसे "उ. २" इस संकेतसे दिखाया है।

रकार चिन्हवाले चार अक्षर इन तीन मंत्रोंमें हैं। "२र वः । २र म । २र ची । ये तीन तीसरे मंत्रमें और दूसरे मंत्रमें "क्र्योः२र" यह एक मिलकर चार अक्षर रकार चिन्ह वाले हैं। यह "स्व-४" के संकेतसे दिखाया है।

इतनी सूक्ष्मदृष्टिसे यह स्वर गणनाकी गई है, अतः सामगानमें स्वरोंकी गलती नहीं हो सकती ।

## सामवेदके गानग्रंथ

ऋषियोंने ऋग्वेदके मंत्रोंके आधार पर गान बनाये फिर उन गानोंका संग्रह करके अनेक ग्रंथ बनाये। उनमें ( १ ) ग्रामगेय गान अथवा गेयगान अथवा प्रकृतिगान, ( २ ) आरण्यक गेयगान, ( ३ ) ऊहगान, ( ४ ) उह्य-गान, अथवा रहस्य गान ये ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

इन गान ग्रंथोंमें कितने मंत्र और कितने गान हैं, उन्हें दिखाते हैं—

| | कौथुमीय शाखामंत्र | जैमिनीयशाखामंत्र |
|---|---|---|
| पूर्वार्चिक | ५८५ | ५८७ |
| आरण्यक | ५९ | ५९ |
| उत्तरार्चिक | १२२५ | १०४१ |
| | १८६९ | १६८७ |
| महानाम्नि | ६ | ६ |
| | १८७५ | १६९३ |

इससे ज्ञात हो जाएगा कि प्रत्येक शाखाके सामवेदमें मंत्र-संख्या और मंत्र-क्रममें भिन्नता व न्यूनाधिकता है। अब इन-मंत्रों पर जितने गान बने हैं उन्हें दिखाते हैं—

| | कौथुमीय गान | जैमिनीय गान |
|---|---|---|
| ग्रामगेयगान | ११९७ | १२३२ |
| आरण्यकगेयगान | २९४. | २९१ |
| ऊहगान | १०२६ | १८०२ |
| उह्यगान | २०५ | ३५६ |
| | २७२२ | ३६८१ |

कौथुमी शाखाके सामवेदमें मंत्र १८७५ हैं और गाने उन पर २७२२ बने हैं। जैमिनीय शाखाके सामवेदमें मंत्र १६९३ मंत्र हैं, पर उनपर बने हुए गाने ३६८१ हैं। इसप्रकार सामवेदकी प्रत्येक शाखाके मंत्र व गानोंमें भेद है।

## सामवेदके ब्राह्मण

( १ ) ताण्ड्य ब्राह्मण, ( प्रौढ अथवा पंचविंश ब्राह्मण ) ( २ ) षड्विंश ब्राह्मण, ( ३ ) सामविधान ब्राह्मण, ( ४ ) आर्षेय ब्राह्मण, ( ५ ) देवताध्याय ब्राह्मण, ( ६ ) उपनिषद्ब्राह्मण. ( संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मंत्र ब्राह्मण, ( ७ ) वंश ब्राह्मण आदि सामवेदके ब्राह्मण हैं।

षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मणका २६ वां भाग है। इसलिए पहला भाग "पंचविंश ब्राह्मण" के नामसे प्रसिद्ध है। और उत्तर भाग "षड्विंश ब्राह्मण" के नामसे प्रसिद्ध है। पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और छान्दोग्य

उपनिषद् मिलकर " ताण्ड्य महाब्राह्मण " होता है। षड्विंशब्राह्मणमें अद्भुत कथाओंका संग्रह होनेके कारण उसे " अद्भुतब्राह्मण " भी कहते हैं। सामवेदके दूसरे ब्राह्मणोंका दूसरा नाम " अनु ब्राह्मण " भी है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणमें " केनोपनिषद् " है। इस जैमिनीय शाखाका दूसरा नाम " तवल्कार शाखा " भी है, इसलिए केनोपनिषद्को तवलकारीय केनोपनिषद् भी कहते हैं।

## सामवेदके सूत्रग्रंथ

(१) मशककल्पसूत्र, (२) क्षुद्रसूत्र, (३) लाट्यायन श्रौतसूत्र, (४) गोभिलीय गृह्यसूत्र। और राणायणीय शाखाके (१) द्राह्यायण श्रौतसूत्र, (२) खादिरगृह्यसूत्र, (३) पुष्पसूत्र। ये सामवेदके सूत्रग्रंथ " प्रातिशाख्य " के नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

## वेदमंत्रोंके अर्थ

वेदमंत्रोंके अर्थके सम्बन्धमें बहुत मतभेद हैं। वास्तवमें वेदोंकी एक अपनी भिन्न शैली है। वह शैली या प्रक्रिया समझमें आजाय तो फिर मतभेदका कोई कारण नहीं रहता। सर्व प्रथम वेदमंत्रोंने ही कहा है कि सत्य वस्तु एक है। और कवियोंने उस एक तत्वके अनेक गुणोंको देखकर उसके अनेक नाम रख दिए हैं। उदाहरणार्थ—

इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निमाहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ (ऋ. १।१६४।४७)

(एकं सत्) एक ही सद्वस्तु है, उस एक ही वस्तुका (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक नाम देकर वर्णन करते हैं। उसी एक सद्वस्तुको ज्ञानी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि नामोंसे वर्णित करते हैं।

इस मंत्रने वेदकी प्रक्रियाका यथार्थ वर्णन किया है। अर्थात् अग्नि, वायु, इन्द्र, यम आदि नाम उस एक परमेश्वरके हैं और इन नामोंसे उनके गुणोंका वर्णन हुआ है।

मंत्र अग्नि देवताका हो, अथवा इन्द्र देवताका हो, उन मंत्रोंका मुख्य भाव परमात्मा परक ही है, यह यहां ध्यान देने योग्य है। अग्निको ' विश्ववेदाः " कहा है। " विश्ववेदाः ' का अर्थ है " सर्वज्ञ "। अग्नि सर्वज्ञ न होकर " परमात्मा सर्वज्ञ है " यह ऊपरके मंत्रमें कहा है।

*

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इत्येतत् ॥

(कठ उ. २।१५)

" सब वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप जिसके लिए किए जाते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे किया जाता है, उस पदको मैं संक्षेपसे तेरे लिए कहता हूं कि यह " ओ३म् " है "। अर्थात् " ओ३म् " शब्दसे जिस तत्वका संकेत है उसी परमात्माका वर्णन सब वेद करते हैं। सब तपश्चर्या उसीके लिए की जाती है और ब्रह्मचर्यका पालन भी उसीके लिए किया जाता है। यही आगेके मंत्रमें प्रतिपादित है—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥

(यजु. ३२।१)

(तत् एव अग्निः) वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापतिपदोंसे वेदमंत्रोंमें वर्णित है "। अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु आदि नाम यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि उन विभिन्न नामोंसे उस एक ही ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें किया गया है। यही मैत्रायणी उपनिषद्में और स्पष्ट किया है—

एष खलु आत्मा ईशानः शंभुर्भवो रुद्रः।
प्रजापतिर्विश्वसृड् हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो
हंसः शान्तो विष्णुः नारायणोऽर्कः सविता
धाता सम्राट् इन्द्र इन्दुरिति ॥ (मैत्रायणी ५।८)

" यही आत्मा ईश्वर, शंभु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वस्रष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शान्त, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सम्राट्, इन्द्र, इन्दु आदि नामोंसे वर्णित है। " इस विवेचनासे स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि नामोंसे मुख्यतः एक आत्मा अर्थात् परमेश्वरका ही वर्णन किया जाता है। यह ही श्री यास्काचार्य अपने निरुक्तमें कहते हैं।

महाभाग्याद्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति।
...आत्मा एव एषां रथो भवति, आत्मा अश्वः;
आत्मा आयुधं, आत्मा इषवः, आत्मा सर्वं देवस्य

(निरुक्त)

" देवोंके महान् भाग्यके कारण, महान् सामर्थ्यके कारण एक ही आत्माकी अनेक प्रकारसे स्तुति होती है। एक

आत्माके दूसरे देव अंग होते हैं। आत्मा हीं इनका रथ, अश्व, शस्त्र, बाण और सब कुछ आत्मा ही है। ''

इस प्रकार वेदके वर्णनोंका तात्पर्य समझना चाहिए। वेदमंत्रोंमें जो रथ, घोडे आदियोंका वर्णन है, वे सब आलंकारिक है। आत्माकी शक्ति बहुत बडी है, और वह उन उन रूपोंमें प्रकट होती है, ऐसा समझना चाहिए।

इन्द्र घोडोंके रथसे अमुक यज्ञमें पहुंचा, ऐसा वर्णन यदि कहीं है तो इन्द्र अर्थात् आत्मा ही वहां पहुंचा, यही सत्यार्थ है और उसके रथ, घोडे, चाबुक, सारथी आदि सब उसकी शक्तिके आलंकारिक वर्णन हैं। उसी प्रकार आत्मा कहीं आता जाता नहीं, वह तो सर्वत्र है, इसलिए उसका आना जाना भी आलंकारिक ही है।

## अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देव विश्वमें कार्य करते हैं। उनका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। ये देव उस सर्वव्यापक विश्वात्माके विराट् देहमें उसके अवयव बन कर रह रहे हैं। सूर्य उसकी आंख है, वायु उसका प्राण है, पृथ्वी उसका पांव, अन्तरिक्ष पेट और द्युलोक उसका मस्तक है। इस प्रकार यह विराट् पुरुष है। और उसके अवयव अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देव हैं। इससे यह समझमें आजाएगा कि वेद मंत्रोंमें अग्नि आदि देवोंका वर्णन न होकर विश्वात्मा विराट् पुरुषके अवयवोंका ही वर्णन है।

किसीकी आंख अथवा कानका वर्णन जिसप्रकार किसी अवयवका न होकर उस पूर्ण पुरुष का ही वर्णन होता है, उसी प्रकार अग्नि, वायु, इन्द्रादि देवोंका वर्णन उसी विश्वात्मा विराट् पुरुषके विराट् शरीरका वर्णन है। यह विराट् पुरुषका वर्णन आधिदैवत वर्णन है। यह विश्व देहका वर्णन है। प्रत्येक देवता इस देहमें कहां रहते हैं, यह समझना चाहिए और उस भागका वह वर्णन है यह जानें।

ये सभी देव मानव शरीरमें अंशरूपसे हैं—

सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते॥

( अथर्व. ११।८।३२ )

" सब देवता इस मानवी देहमें रहते हैं, जिसप्रकार गायें गौशालामें रहती हैं। " सूर्य आंखमें, वायु नाकमें, दिशायें कानमें, अग्नि मुंहमें, इन्द्र भुजा और छातीमें, चन्द्रमा हृदयमें, अन्तरिक्ष उदरमें, पृथ्वी पैरमें, जल शिश्नमें और मृत्यु नाभिमें इसप्रकार सब देव मानव शरीरमें अंशरूपसे रहते हैं और इस देहमें कार्य करते हैं। जैसे विश्वमें बडे बडे देवताओंका राज्य है, बिलकुल वैसे ही इस मानव शरीरमें उन देवताओंके अंशरूप देवोंका राज्य हैं। देव चाहे बडे हों या अंशरूप उनके देवत्वमें कोई फरक नहीं पडता। यह यहां ध्यानमें रखने योग्य है।

दावानल बडा होता है और उसकी चिनगारी छोटी होती है। पर दोनोंमें अग्निका अंश समान है। उसीप्रकार अग्नि इन्द्र आदि विशाल देव विश्वमें हैं और उनका अंश शरीरमें है। दोनों स्थानों पर देवत्वका अंश समान है। इस प्रकार अध्यात्म - मानवीय - शरीरमें वे ही देव अंशरूपमें हैं और अधिदैवत - विश्व - में वे ही देव महान् आकारमें हैं।

शरीरमें इन देवोंका ज्ञान गुणोंके कारण होता है और समाज अथवा राष्ट्रमें वे गुणी मनुष्यके रूपमें दीखते हैं, यह समझनेके लिए नीचे तालिका दी है—

| अध्यात्ममें | अधिभूतमें | अधिदैवतमें |
|---|---|---|
| वाणी | वक्ता | अग्नि |
| शौर्य | शूर | इन्द्र |
| युद्धेच्छा | सैनिक | मरुत् |
| प्राण | प्राणी | वायु |
| कारीगरी | कारीगर | त्वष्टा |
| ज्ञान | ज्ञानी | ब्रह्मणस्पति |
| चिकित्सा | चिकित्सक | अश्विनौ |
| पांव | शूद्र | पृथ्वी |
| रक्तवाहिनियां (नाडियां) | नदियां | आपः, जलप्रवाह |
| भाग्य | भाग्यवान् | भग |

इस प्रकार व्यक्तिमें गुणरूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी-रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देवता रहते हैं। उनका ज्ञान अत्यावश्यक है।

वेदमंत्रोंमें जो वर्णन है वे आधिदैवत वर्णन है। ये ही वर्णन अध्यात्म - व्यक्ति - में गुणरूपसे देखने चाहिए और आधिभौतिकमें अर्थात् समाज और राष्ट्रमें गुणी मनुष्योंके रूपमें देखने चाहिए। इससे वेदमंत्रोंका सत्यार्थ समझमें आ जाएगा। इन तीनों स्थानोंमें अर्थका स्वरूप कैसे देखना चाहिए, उसे विचार करके निश्चित करना चाहिए। मंत्रोंमें पदोंके अर्थ इस दृष्टिसे देखने योग्य हैं। उदाहरणार्थ—

## इन्द्रका अर्थ

अध्यायमें " इन्द्र " का अर्थ " जीवात्मा " है। इस आत्माकी शक्ति इन्द्रियें हैं। इन्द्रकी शक्ति दिखानेके लिए यह इन्द्रिय शब्द बना है। " इदं+द्र " इस शरीरमें

आत्माने छिद्र बनायें हैं। " मैं देखना चाहता हूं " आत्माके इस संकल्पके साथ ही नेत्रकी जगह दो छेद हो गए। " मैं श्वासोच्छ्वास करूंगा " इस संकल्पके कारण नाकके स्थान पर छेद हो गए। इसप्रकार इसने इस शरीरमें अनेक छिद्र बनाये। इसलिए इसका नाम " इदं+द्र " हुआ। उसका संक्षेप " इन्द्र " है। इस प्रकार यह इन्द्र शरीरमें जीवात्माके रूपमें है।

अधिभूतमें अर्थात् समाज अथवा राष्ट्रमें इन्द्र युद्धके लिए, राष्ट्रकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें भाग लेनेवाला अतुल पराक्रमी वीर है। यह " इन्+द्र " अर्थात् " शत्रुओंको फाडनेवाला " पराक्रमी वीर है। यह सेनाको तैय्यार रखता है। शत्रुकी हलचल पर नजर रखता है और उनका नाश करनेके लिए जो कार्य आवश्यक होते, हैं उन्हें करता है।

आधिदैवतमें इन्द्र मध्यस्थानीय देवता बिजली है। यह मेघोंको फोडकर पानी बरसाता है। जहां बिजली गिरती है वहां वज्रके गिरनेके समान शब्द होता है।

इसप्रकार वेदमंत्रोंके अर्थ अध्यात्म, अधिभूत और अधि-दैवत इन तीन क्षेत्रोंमें होते हैं। अध्यात्मका मतलब मानवीय शरीरका वर्णन, अधिभूतका अर्थ मानवसमाज अथवा राष्ट्रपरक वर्णन है। यहां " भूत " शब्दका अर्थ " प्राणी " लेना चाहिए। " भूत " का अर्थ " पंच महाभूत " नहीं। अधिदैवतका अर्थ है विश्व। वेदोंके मंत्रोंमें आधिदैविक अर्थात् विश्वपरक वर्णन है। इस वर्णनसे ही अन्य दोनों भाव समझने चाहिए—

## सोमदेवता

सोम एक लता है। उसका मंत्र इसप्रकार है।

५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ (ऋ. ९।९६।५)

" सोम शुद्ध किया जाता है। वह बुद्धियोंको पैदा करनेवाला द्युलोकको, पृथिवीको, अग्निको, सूर्यको, इन्द्रको और विष्णुको भी पैदा करनेवाला है " इस मंत्र पर यास्क अपने निरुक्तमें इसप्रकार कहते हैं—

अथैतं महान्तमात्मानं एतानि सूक्तानि
एता ऋचोऽनु प्रवदन्ति।
अथाध्यात्मं। सोम आत्मा अपि एतस्मादेव।
इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ॥ ( निरुक्त )

" इस महान् आत्माका ही वर्णन ये सूक्त करते हैं। अध्यात्म प्रकरणमें " सोम " " आत्मा " है। वह इन्द्रियोंको पैदा करनेवाला है " और आगे स्पष्ट करते हैं—

महिषो मृगाणामिति अयमपि महान् भवति मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणां। श्येनो गृध्राणामिति श्येन आत्मा भवति श्यायते र्ज्ञान-कर्मणः। गृध्राणि इन्द्रियाणि गृध्यतेर्ज्ञान-कर्मणः ॥ ( निरुक्त )

" मृगोंमें महिष बडा है। मृग अर्थात् खोजनेवाली इन्द्रियें, उन इन्द्रियोंमें यह आत्मा बडा है। श्येन गीधोंमें बडा है। गृध्रका अर्थ है ज्ञानके साधन ;इन्द्रियें, उनमें श्येन आत्मा है क्योंकि वह ज्ञान प्राप्त करता है। "

इसप्रकार मंत्रोंका अर्थ समझना चाहिए।

## देवताओंका गुणवर्णन

अब सामवेदमें देवताओंका जो गुणवर्णन किया गया है। उसे दिखाते हैं—

### इन्द्रके गुण

१ प्रचेताः [ १४१२ ]– ज्ञानी, विचारशील, विशेष-चिन्तन करनेवाला।

२ शुद्धः [ १४१२ ]- शुद्ध, निर्दोषी।

३ विचर्षणिः [ १४८७ ]– विशेष श्रेष्ठ।

४ अशस्ति-हा [ १६३७ ]– विपत्ति दूर करनेवाला।

५ सुगोपाः [ १७२० ]– उत्तम संरक्षण करनेवाला।

६ नामश्रुतः [ १७९८ ]– नामसे सुप्रसिद्ध।

७ ऋत्वियः [ १७९८ ]– ऋतुके अनुसार उन्नति करनेवाला।

८ लोककृत् [ १८०१ ]–जनताका कल्याण करनेवाला।

९ अशत्रुः [ १८०२ ]– जो स्वयं किसीसे शत्रुता नहीं करता।

१० गिर्वणः [ १४३१ ]– स्तुत्य, प्रशंसनीय।

११ महान् [ १३५५ ]– महान्, बडा।

१२ मंहिष्ठः [ १३६१ ]– महान्।

१३ जनुषा अभ्रातृव्यः [ १३८९ ]– जन्मसे ही शत्रुता न करनेवाला।

१४ यशाः [ १४११ ]– यशस्वी, विजयी।

१५ चर्षणीधृतिः [ १४११ ]– मानवजातिका धारण-पोषण करनेवाला।

१६ पावृधानः [ १४११ ]– अपनी शक्तिसे बढनेवाला।

१७ वृषभः [१३६१]- बलवान्, बैलके समान सशक्त।

१८ वज्रबाहुः [ १४२६ ]- वज्रके समान कठोर भुजाओंवाला।

१९ भूर्योजाः [ १४८४ ]- बहुत सामर्थ्यवान्।

२० वीर्यैः वृद्धः [ १४८७ ]- पराक्रमसे महान्।

२१ धृषत् [ १४४२ ]- शत्रुओंको हरानेवाला।

२२ महिषः तुविशुष्मः [ १४४६ ]- भैंसेके समान पुष्ट और महान् शक्तिमान्।

२३ शचीपतिः [ १५७४ ]- शक्तिमान्।

२४ वृषा [ १३६० ]- बलवान्, भक्तोंकी कामनापूर्ण करनेवाला।

२५ अभयंकरः [ १३६१ ]- अभय देनेवाला।

२६ शवसः पतिः [ १४११ ]- सामर्थ्ययुक्त।

२७ अनुत्तः [ १४११ ]- अपराजित।

२८ असु-रः ]१४११]- बलवान्, शरीरसे हृष्टपुष्ट।

२९ जनानां राजा [ १३५६ ]- लोगोंका राजा।

३० संवननः [ १३६१ ]- सेवाके योग्य।

३१ मघवा [ १४५९ ]- धनवान्।

३२ अश्ववान्, गोमान्, यवमान् [ १४५२ ]- घोडे, गाय और जौ पासमें रखनेवाला।

३३ सत्पतिः गोपतिः [१४८९]- सज्जनोंका पालक, गायोंका पालन करनेवाला।

३४ हरीणां पतिः [ १५१० ]- घोडे पालनेवाला।

३५ अश्वस्य पोरः [१५८०]- घोडोंका उत्तम पोषण करनेवाला।

३६ गवां पुरुकृत् [ १५८० ]- गायोंका उत्तम पालन करनेवाला।

३७ ऋचीषमः [ १६४४ ]- दर्शनीय।

३८ मद्यः [१६५७]- प्रसन्नवृत्ति धारण करनेवाला।

३९ सत्वा [ १६६६ ]- बलवान्।

४० शाकी [ १६६६ ]- सामर्थ्यवान्।

४१ सदावृधः वीरः [१६८४]- सदा बढनेवाला वीर।

४२ शिप्री [ १६९६ ]- शिरस्त्राण धारण करनेवाला।

४३ तुविशुष्मः [ १७७२ ]- महा बलवान्।

४४ तुविक्रतुः [१७७२]- बडे बडे कार्य करनेवाला।

४५ शचीवः [ १७७२ ]- शक्तिशाली।

४६ शविष्ठः [ १७७२ ]- शक्तिशाली।

४७ विद्वेषी [ १३६१ ]- शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला।

४८ अवक्रक्षी [१३६१]- शत्रुओंको टक्कर देनेवाला।

४९ शत्रुः [ १३६१ ]- दुष्टोंका शत्रु।

५० मृधः सासहिः [१४८७]- शत्रुओंको हरानेवाला।

५१ वीरतरः नहि [ १५११ ]- जिससे बढकर वीर कोई दूसरा नहीं है।

५२ अद्रिवः [ १३५४ ]- वज्रधारी, शस्त्रास्त्रधारी।

५३ चर्षणीसहः [ १३६१ ]- शत्रुसेनाको हरानेवाला।

५४ पृतनाषाट् [१४३३]-शत्रुसेनाका नाश करनेवाला।

५५ अभिभूः [ १४३० ]- शत्रुको हरानेवाला।

५६ शूरः [ १४३४ ]- वीर।

५७ सहावान् [ १४३४ ]- शत्रुको हरानेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला।

५८ अव्रतं दस्युं ओषः [ १४३४ ]- नियममें न चलनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवाला।

५९ विश्वासु पृतनासु हव्यः [१४९२]- सब युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाने योग्य।

६० उग्रः [ १६०५ ]- उग्रवीर।

६१ सहुस्कृतः [ १६०८ ]-साहसके काम करनेवाला।

६२ चर्षणि-प्राः [१७९३] लोगोंका पोषण करनेवाला।

६३ अदयः वीरः [ १८५५ ]- शत्रुपर दया न करनेवाला वीर।

६४ शतमन्युः [ १८५५ ]- शत्रुपर सैकडों प्रकारसे क्रोध करनेवाला।

६५ अयुध्यः [ १८५५ ]- जिसके साथ युद्ध करना कठिन है।

६६ दुश्च्यवनः [ १८५५ ]- अपने स्थान परसे कठिनतासे हिलनेवाला योद्धा।

६७ अप्रतिष्कुतः [१६२२]- जिसका प्रतिकार करना अशक्य है।

६८ प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [ १६३७ ] -युद्धमें सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला।

६९ तरुष्यन् [ १६३७ ]- शत्रुओंको दूर करनेवाला।

७० अनर्वाणः [ १६४३ ]- युद्ध करनेमें कुशल।

७१ अनपच्युतः [ १६४३ ]- पराभूत न होनेवाला।

७२ अवार्यक्रतुः नरः [ १६४३ ]- जिसको कोई रोक नहीं सकता।

७३ दस्यु हा [ १६६८ ]- दुष्टोंका नाश करनेवाला।

७४ वज्री [ १६९१ ]- वज्रधारी, शस्त्रधारी।

७५ स्थिरः रणाय संस्कृतः [१६९८]- युद्धमें स्थिर रहनेवाला, युद्ध करनेमें कुशल।

७६ समूहसि [ १३९० ]- संगठन करनेवाला।

७७ ईशानकृत् [१४९३]- शासक निर्माण करनेवाला।

७८ तुविद्युम्नः [ १४९३ ]- अत्यन्त तेजस्वी।

७९ परमज्या [ १४९२ ]- जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है।

८० उभयावी [ १३६१ ]- भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला।

८१ वृत्रहा अहिं अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रघातक इन्द्रने अहिका वध किया।

८२ नवनवतिं पुरः बाह्वोजसा बिभेद [ १४५१ ]- शत्रुके निन्यानवे नगरोंको इन्द्रने अपने बाहुबलसे तोडा।

८३ अप्रतीनि पुरुवृत्राणि हंसि [ १४५१ ]- बहुतसे बलिष्ठ शत्रुओंको मारता है।

८४ चित्राभिः ऊतिभिः अवतात् [१४५१]- अपने विलक्षण रक्षणके साधनोंसे इन्द्र रक्षा करता है।

८५ सुम्नेषु नः आयामयः [ १४५१ ]- सुख और समृद्धिमें हमें बढा।

८६ ओजसा कविं युधा अभ्यवत् [१४८८]- इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंको युद्धमें जीतता है।

८७ शतक्रतुः [ १४५९ ]- सैंकडों महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला।

८८ पुरां दर्त्ता [ १७१९ ]- शत्रुके नगर तोडनेवाला।

८९ दृढा चित् आरुजः [ १७१९ ]- सुदृढ शत्रुओंको भी उखाड फेंकनेवाला।

९० ते शुष्मं तुरयन्तं [ १६३८ ]- तेरे बल शत्रुओंका नाश करते हैं।

९१ गोत्रभित् वज्रबाहुः अज्मं जयन् ओजसा प्रमृणन्त [ १८५४ ]- शत्रुओंके किले तोडनेवाला, वज्रके समान कठोर बाहुओंवाला ही युद्धमें विजयी होता है और शत्रुओंको नष्ट करता है।

९२ सत्रा राजा [ १७९५ ]- सबों पर एक साथ शासन करनेवाला।

९३ अनुत्तमन्युः [ १७९५ ]- जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं होता।

९४ राधानां पतिः [ १६०० ]- धनोंका स्वामी।

९५ वसुविदः [ १५७९ ]- निवासके साधन पास रखनेवाला।

९६ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रके आश्रयसे सब प्राणी रहते हैं।

९७ तुविकूर्मिः [ १७७१ ]- महान् कार्य करनेवाला।

९८ ऋतीषहः [ १७७१ ]- शत्रुको दूर करनेवाला, प्रलोभनोंमें न फंसनेवाला।

९९ त्विषीमान् [ १४८८ ]- तेजस्वी।

१०० सत्रादावन् [ १६२१ ]- एकदम फल देनेवाला।

ये इन्द्रके गुण वाचक देखें। इन्हें मनसे धारण करनेपर ही शरीरमें बल बढता है और मनकी शक्ति बढती है।

## अग्निके गुण

१ अग्निः [ १३४३ ]- अग्रणी " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति " ( निरुक्त )

२ पावकः [ १३४३ ]- पवित्र कररेवाला।

३ होता [१३४३]- हवन करनेवाला, देवोंको बुलानेवाला।

४ कविः [ १३४६ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।

५ मधुजिह्वः [ १३४९ ]- मधुरभाषी।

६ प्रियः [ १३४९ ]- सबको प्रिय लगनेवाला।

७ नराशंसः [ १३४९ ]- सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होनेवाला।

८ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्योंका हित करनेवाला।

९ प्रशस्तः [ १३७४ ]- प्रशंसित।

१० दूरे दृक् [१३७४]- दूरसे दीखनेवाला, दूरदर्शी।

११ गृहपतिः [ १३७४ ]- गृहस्वामी।

१२ अथर्युः [ १३७४ ]- प्रगतिशील।

१३ सु प्रतिचक्ष्यः [ १३७४ ]- अत्यन्त दर्शनीय।

१४ यविष्ठ्यः [ १३७५ ]- तरुण।

१५ दक्षाय्यः [ १३७४ ] बल बढानेवाला।

१६ शंतमः [ १३८१ ]- शान्ति सुख देनेवाला।

१७ अंहसः पातु [१३८१]- पापोंसे रक्षा करनेवाला।

१८ रणे रणे धनंजयः [ १३८२ ]- प्रत्येक युद्धमें विजयी।

१९ भारतः [ १३८५ ]- भरण पोषण करनेवाला।

२० अजरः [१३८५]- कभी वृद्ध न होनेवाला, हमेशा तरुण रहनेवाला।

२१ दविद्युतत् [ १३८५ ]- तेजस्वी।

२२ द्युमत् [ १३८५ ]- प्रकाशयुक्त।

२३ वृत्राणि जंघनत् [१२९६]– शत्रुको मारनेवाला।
२४ सहन्त्यः [ १४१७ ]– शत्रुको हरानेवाला।
२५ विश्वचर्षणिः [ १४१७ ]– सब जनोंका हित करनेवाला।
२६ सुभगः [ १४१७ ]– उत्तम भाग्यवान्।
२७ सुदीदितिः [ १४१७ ]– उत्तम तेजस्वी।
२८ श्रेष्ठशोचीः [ १४१७ ]– विशेष प्रकाशमान्।
२९ प्रजावत् ब्रह्म आभर [ १३९८ ]– पुत्रपौत्रोंसे युक्त अन्न दे।
३० अपां-न-पात् [ १४१४ ]– जलोंको नीचे गिरने न देनेवाला।
३१ तनू-न-पात् [ १३४६ ]– शरीरको गिरने न देनेवाला।
३२ ऊर्जो-न-पात् [१७१२]– बल कम न करनेवाला।
३३ द्विजन्मा [ १७७६ ]– द्विज, दो अरणियोंमें जन्म लेनेवाला।
३४ द्रुहंतर [१८१५]– दुष्टोंको जानसे मारनेवाला।
३५ मानुषे जने हितः [ १४७४ ]– मनुष्योंका हित करनेवाला।
३६ वेधः [ १४७६ ]– विशेष कर्म करनेवाला।
३७ सुक्रतुः [१४७६]– उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाला।
३८ चित्रभानुः [ १४९८ ]– उत्तम तेजस्वी।
३९ सहस्कृतः [ १५०३ ]– बल बढानेवाला।
४० प्रचेताः [ १५१४ ]– विशेष ज्ञानी।
४१ गातुवित्तमः [ १५१६ ]– उत्तम रीतिसे मार्ग जाननेवाला।
४२ आर्यस्य वर्धनः [१५१५]– आर्योंको बढानेवाला।
४३ पांचजन्यः [ १५१९ ]– पांचों जनोंका कल्याण करनेवाला।
४४ ऋषिः [ १५१९ ]– ज्ञानी, द्रष्टा।
४५ पवमानः [ १५१९ ]– शुद्धता करनेवाला।
४६ पुरोहितः [ १५१९ ]– नेता, आगे रहनेवाला, आगे स्थापित किया हुआ।
४७ महागयः [ १५१९ ]– महान् घरवाला।
४८ स्वर्दृक् [१५१९]– आत्मदृष्टिवाला आत्मज्ञानी।
४९ स्वपतिः [ १५३३ ]– स्वयंशासित।
५० वृषणः [ १५४० ]– बलवान्।
५१ जातवेदाः [ १५६६ ]– जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुओंको जाननेवाला।
५२ शुचिः [ १५६७ ]– शुद्ध, पवित्र।
५३ ध्रुवः [ १५६७ ]– स्थिर।
५४ अमृतः [ १५६८ ]– अमर।
५५ जागृविः [ १५६८ ]– जागृत रहनेवाला।
५६ विभुः [ १५६८ ]– व्यापक।
५७ विश्पतिः [१५६८]– प्रजाका पालन करनेवाला।
५८ जनानां जामिः मित्रः प्रियः [१५३६]– लोगोंका प्रिय मित्र।
५९ दर्शतः [ १५३८ ]– सुन्दर, दर्शनीय।
६० मन्द्रः [ १५४३ ]– आनन्दित, प्रिय।
६१ विभावसुः [ १५४३ ]– तेजस्वी।
६२ रौद्रः [ १५४६ ]– भयंकर।
६३ भद्रः [ १५४६ ]– कल्याण करनेवाला।
६४ विश्वा साह्वान् अमृक्तः [ १५५८ ]– सब शत्रुओंको हरानेवाला, विजयी, न हारनेवाला।
६५ समत्सु सासहिः [ १५६० ]– युद्धमें विजयी।
६६ वरेण्यः [ १६१९ ]– श्रेष्ठ, ज्येष्ठ।
६७ अमित्रं अर्दय [ १६४८ ]– शत्रुका नाश कर।
६८ उरुकृत् [ १६४९ ]– बहुत कर्म करनेवाला।
६९ जरायोध [ १६६३ ]– स्तुतिसे प्रबुद्ध होनेवाला।
७० दस्म [ १६६० ]– सुन्दर, दर्शनीय।
७१ ऋतावा [ १७०८ ]– सत्यनिष्ठ।
७२ वैश्वानरः [१७०८]– सबका नेतृत्व करनेवाला।
७३ वशी [१७०९]– सबको अपने अधीन रखनेवाला।
७४ पावकशोचिः [ १७१२ ]– जिसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है।
७५ स्निहितिषु क्षिप्रषु जग्मनासु दाशुषे गयं अरक्षत् [१३८०]– शत्रुके आक्रमण करने पर दाताके घरकी रक्षा करता है।

ये अग्निके गुण भी अत्यन्त बोधप्रद हैं। मनुष्यको ये गुण अपने अन्दर बढाने चाहिए।

## सोमके गुण

१ जागृविः [ १३५७ ]– जागृत रहनेवाला।
२ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३५७ ]– साहस करनेवाला वीर शत्रुको कुचलता जाता है।
३ शुक्रः [ १३५७ ]– वीर्य बढानेवाला।
४ दिव्यः [ १३५७ ]– द्युलोकमें रहनेवाला, पर्वतपर उगनेवाला।

५ पीयूषः [ १३५७ ]– अमृतरूप।
६ सोमः आवः [ १३५८ ]– सोम रक्षण करता है।
७ वर्धनः [ १३५९ ]– बल बढानेवाला।
८ दक्षसाधनः [ १३८८ ]– बल बढानेका साधन।
९ वीरः [ १३९५ ]– शूरवीर।
१० हरिः [ १३९५ ]– दुःखोंका हरण करनेवाला।
११ प्रियः [ १३९५ ]– सबोंको प्रिय।
१२ कविः [ १४०० ]– ज्ञानी, दूरदर्शी।
१३ रत्नधा [ १४०८ ]– रत्नोंको धारण करनेवाला।
१४ शूरग्रामः [ १४०९ ]– शूरोंका समुदाय अपने साथ रखनेवाला।
१५ सर्ववीरः [ १४०९ ]– सब प्रकारसे वीर।
१६ सहावान् [ १४०९ ]– शत्रुको हराने की शक्तिसे युक्त।
१७ जेता [ १४०९ ]– युद्ध जीतनेवाला।
१८ तिग्मायुधः [ १४०९ ]– तीक्ष्ण शस्त्र अपने पास रखनेवाला।
१९ क्षिप्रधन्वा [ १४०९ ]– धनुषको बहुत शीघ्र चलानेवाला।
२० समत्सु अषाळ्हः [ १४०९ ]– युद्धमें शत्रुओंके लिए असह्य।
२१ पृतनासु शत्रून् साह्वान् [१४०९]– युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला।
२२ वृषा [ १४१९ ]– बलवान्।
२३ सुमेधाः [ १४२० ]– उत्तम बुद्धिमान्।
२४ तेजिष्ठाः [ १४२४ ]– तेजस्वी।
२५ यशसा यशस्तरः [ १४०१ ]– यशसे यशस्वी।
२६ बभ्रुः [ १४४४ ]– भूरे रंगका।
२७ स्वतवाः [ १४४४ ]– अपनी शक्तिसे शक्तिमान्।
२८ अरुणः [ १४४४ ]– चमकनेवाला।
२९ मनसः पतिः [ १४४४ ]– मनका स्वामी।
३० शुष्मी [ १४४४ ]– बलवान्।
३१ सुमतिः [ १४४४ ]– उत्तम बुद्धिमान्।
३२ रक्षांसि अपघ्नन् [ १४३९ ]– राक्षसोंको मारनेवाला।
३३ अमित्रहा [ १४४७ ]– शत्रुओंको मारनेवाला।
३४ विश्व–चर्षणिः [ १४४७ ]– सब लोगोंका हित करनेवाला।

ऐसा यह सोम है। सोमके ये गुण सोमरस पीनेवालोंमें दीखते हैं। वे गुण सोमके कारण मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे गुण सोमके ही समझे जाते हैं।

अन्य देवताओंका वर्णन सामवेदमें थोडा थोडा है इसलिए उनका विचार करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

## अनुनासिक–सहित मुद्रण

सामवेदका मुद्रण अनुनासिक सहित परम्परासे होता आ-रहा है। र, श, ष, स, ह इन अक्षरोंसे पहले यदि अनुस्वार आ जावे तो उससे अनुनासिक हो जाता है। जैसे—

| मंत्रांक | अनुनासिकरहित | अनुनासिकसहित |
|---|---|---|
| १५ | स्तोमं रुद्राय | स्तोमꣳरुद्राय |
| २७ | अपां रेतांसि | अपाꣳरेतांसि |
| २७८ | शतं शतं | शतꣳशतं |
| २ | यज्ञानां होता | यज्ञानाꣳहोता |

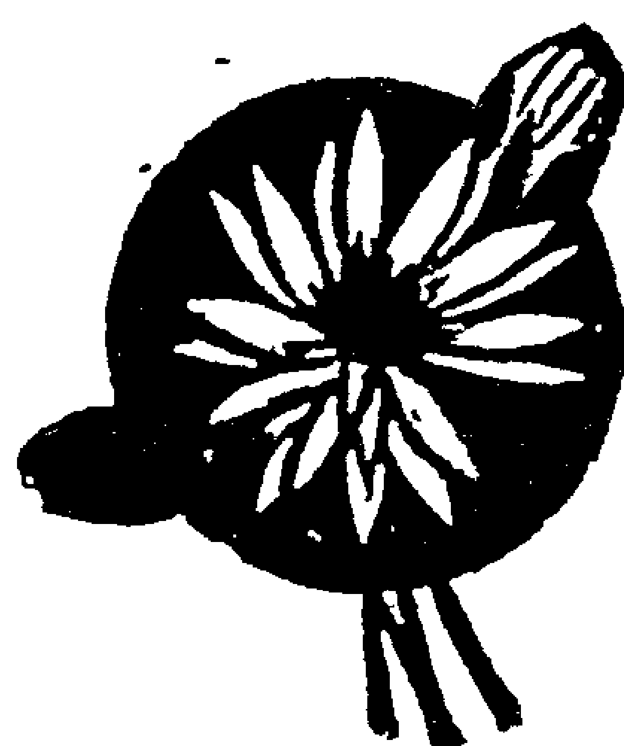
इसप्रकार अनुनासिक-सहित सामवेदका मुद्रण होना चाहिए।

इसप्रकार सामवेदके विषयमें थोडासा परिचय यहां दिया है। उसका विस्तार बहुत बडा हो जाएगा। इसलिए इसका विचार करके यहां थोडासा ही परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है।

निवेदक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष– स्वाध्याय मण्डल, पारडी





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

## पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः )

## आग्नेयं काण्डम् ।

### अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १, २, ४, ७, ९ भारद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ मेधातिथिः काण्वः, ५ उशनाः काव्यः, ६ सुदीतिपुरुमिळ्हा-वाङ्गिरसौ, तयोर्वाऽन्यतरः, ८ वत्सः काण्वः, १० वामदेवः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

१ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ (ऋ. ६।१६।१०)

२ त्वमग्ने यज्ञानाᳶ होता विश्वेषाᳶ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥ (ऋ. ६।१६।१)

३ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१२।१)

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १ ] हे अग्ने ! ( वीतये आ याहि ) हवि भक्षण करनेके लिए तू आ, देवोंको ( हव्य-दातये गृणानः ) हवि देनेके लिए जिसकी स्तुति की जाती है, ऐसा तू ( होता ) यज्ञमें ऋत्विज् होता हुआ ( बर्हिषि नि सत्सि ) यज्ञमें आसन पर बैठ ॥ १ ॥

( १ ) वीतिः— जाना, गति करना, उत्पन्न करना, उपभोग करना, खाना, साफ करना, बांटना ।
( २ ) हव्यदातिः— देवोंको हवि पहुंचाना, हवि देना । ( ३ ) होता— बुलानेवाला, देवोंको अपने पास लानेवाला, । ( ४ ) बर्हिः— आसन, अन्तरिक्ष, जल, यज्ञ ।

[ २ ] हे अग्ने ! तू ( विश्वेषां यज्ञानां त्वं होता ) सब यज्ञोंमें देवोंको बुलानेवाला है, और ( देवेभिः ) देवोंने ही तुझे ( मानुषे जने हितः ) मानवी जनोंके बीचमें स्थापित किया है ॥ २ ॥

[ ३ ] हम ( विश्व-वेदसं ) सबको जाननेवाले, ( होतारं ) देवोंको बुलानेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले इस ( अग्निं ) अग्निको ( दूतं वृणीमहे ) दूत मानकर स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

४ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।१६।३४)

५ प्रेष्ठं वो अतिथिꣳस्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।८४।१)

६ त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।७१।१)

७ एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ६।१६।१६)

८ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।११।७)

९ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥ (ऋ. ६।१६।१३)

१० अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्वरिताः ९ । उ० ना० । धा० ३७ । (वे) ॥ ]

[ २ ]

( १–१० ) १ आयुङ्क्ष्वाहिः ( ऋ. विरूप आंगिरसः ) २ वामदेवो गौतमः; ३,८–९ प्रयोगो भार्गवः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः; ६ मेधातिथिः काण्वः; १० वत्सः काण्वः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

११ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ (ऋ. ८।७५।१०)

---

[ ४ ] (विपन्यया) विशेष प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न हुआ हुआ, (द्रविण-स्युः) उपासकोंको धन देनेकी इच्छा वाला (समिद्धः) अच्छी तरहसे प्रकाशित (शुक्रः) शुद्ध और (आहुतः) सहायार्थ बुलाया गया यह अग्नि (वृत्राणि जंघनत्) घेरनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ॥ ४ ॥

[ ५ ] (वः प्रेष्ठं) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय (प्रियं मित्रं इव) प्रिय मित्रके समान प्रेम करनेवाले, (अतिथिं) अतिथिके समान पूज्य अग्निकी (वेद्यं रथं न) धन देने वाले रथकी जैसे स्तुति की जाती है, उसी प्रकार (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ६ ] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं) तू (विश्वस्याः अरातेः) सभी शत्रुओंसे (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) द्वेष करनेवाले मनुष्यसे (महोभिः) बडे बडे साधनोंसे (नः पाहि) हमारा संरक्षण कर ॥ ६ ॥

[ ७ ] हे अग्ने ! तू (एहि उ) आ, (ते) तेरे लिये ही (इत्था) इस प्रकारकी (इतरा गिरः) दूसरी स्तुतियां मैं (सु ब्रवाणि) अच्छी तरहसे कर रहा हूँ, (एभिः इन्दुभिः वर्धासः) इन सोमरसोंसे तू बढ, महान् हो ॥ ७ ॥

[ ८ ] हे अग्ने ! (वत्सः) यह तेरा पुत्र (ते मनः) तेरे मनको (परमात् सधस्थात्) बहुत श्रेष्ठ स्थानसे भी (आ यमत्) अपने वशमें करता है। हे अग्ने ! (गिरा त्वां कामये) अपनी स्तुतिसे तेरी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ९ ] हे अग्ने ! (अथर्वा) अथर्वाने (त्वां) तुझे (विश्वस्य वाघतः मूर्ध्नः) सब विश्वके आधार, भूत परम श्रेष्ठ (पुष्करात्) पुष्करसे (निरमन्थत) मथ करके प्रकाशित किया ॥ ९ ॥

[ १० ] हे अग्ने (अस्मभ्यं महे ऊतये) हमारी उत्तम रक्षाके लिये (विवस्वत्) निवास करनेके योग्य घर (आ भर) हमें दे, (नः दृशे) हमें मार्गको दिखानेवाला तू ही (देवः हि असि) देव है ॥ १० ॥

॥ यहां पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११ ] हे अग्ने ! हे देव ! (कृष्टयः) मनुष्य (ते ओजसे) तुझे बलके लिये (नमः गृणन्ति) नमस्कार करते हैं। तू (अमैः) अपनी शक्तिसे (अमित्रं अर्दय) शत्रुका नाश करता है ॥ १ ॥

(१) कृष्टिः– मनुष्य, किसान। (२) अम– बल, शक्ति।

१२ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।८।१ )
१३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥ (ऋ. ८।१०२।१३)
१४ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।७ )
१५ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥५॥ ( ऋ. १।२७।१० )
१६ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )
१७ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥ (ऋ. १।२७।१)
१८ और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१०२।४ )
१९ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९॥ (ऋ. ८।१०२।२२)
२० आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥(ऋ. ८।६।३०)

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ६ । उ० २ । धा० ५२ । (खा) ॥ ]

---

[ १२ ] हे अग्ने ! ( विश्व-वेदसं ) सब धनोंके स्वामी ( हव्य-वाहं ) हविको ले जानेवाले, ( अमर्त्यं ) अमर ( दूतं ) दूत तथा ( यजिष्ठं ) अत्यधिक यज्ञ करनेवाले अग्निको ( वः ) तुम्हारे लिए मैं ( गिरा ऋञ्जसे ) अपनी प्रार्थनासे अनुकूल बनाता हूँ ॥ २ ॥

[ १३ ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) हवन करनेवालेकी ( जामयः गिरः ) बहिनके समान प्रिय स्तुति ( देदिशतीः ) तेरे गुणोंको प्रकट करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ले जाकर ( उप अस्थिरन् ) स्थापित करती है ॥ ३ ॥

[ १४ ] हे अग्ने ! ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ( दोषावस्तः ) रातदिन ( वयं ) हम ( धिया नमो भरन्तः ) बुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हुए ( त्वा उप एमसि ) तेरे पास आते है ॥ ४ ॥

[ १५ ] हे ( जरा-बोध ) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! ( विशे विशे ) प्रत्येक मनुष्यके हितके लिये ( यज्ञियायं ) पूज्य ( रुद्राय ) दुष्टोंको रुलानेवाले तेरे लिए ( दृशीकं स्तोमं ) सुन्दर स्तोत्र गाये जाते है, ( तत् विविड्ढि ) उन्हे तू जान ॥ ५ ॥

(१) जरा- स्तुति, (२) जरा-बोध- स्तुतिसे जिसके गुणोंका ज्ञान होता है, (३) यज्ञिय- पूज्य, (४) रुद्र- शत्रुको रुलानेवाला, (५) दृशीक- दर्शनीय, सुन्दर ।

[ १६ ] हे अग्ने ! ( त्यं चारुं अध्वरं प्रति ) उस उत्तम-हिंसारहित यज्ञमें ( गोपीथाय प्रहूयसे ) संरक्षणके लिए तुझे बुलाया जाता है, हे अग्ने ! तू ( मरुद्भिः आ गहि ) मरुतोंके साथ आ ॥ ६ ॥

[ १७ ( वारवन्तं अश्वं न ) अयालवाले घोडेके समान जो ( अ-ध्वराणां सम्राजन्तं ) हिंसारहित यज्ञोंमें उत्तम प्रकार प्रकाशित होनेवाले ( त्वा अग्निं ) तुझ अग्निको ( नमोभिः वन्दध्यै ) नमस्कारोंसे हम वन्दना करते है ॥७॥

[ १८ ] ( समुद्रवाससं ) समुद्रमें रहनेवाले ( शुचिं अग्निं ) शुद्ध अग्निको ( और्व भृगुवत् ) और्वभृगुके समान तथा ( अप्नवानवत् ) अप्नवानके समान ( आ हुवे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

[ १९ ] ( मनसा अग्निं इन्धानः ) मन लगाकर अग्निको जलानेवाला ( मर्त्यः ) मनुष्य ( धियं सचेत ) अपनी श्रद्धाको प्रदीप्त करता है और ( विवस्वभिः अग्निं इन्धे ) सूर्य किरणोंके साथ अग्निको भी प्रज्वलित करता है ॥ ९ ॥

[ २० ] ( परो दिवि ) द्युलोकमे ( यत् इध्यते ) जो प्रकाशित होता है, ( आत् इत् ) उसी ( प्रत्नस्य रेतसः ) प्राचीन बलसे युक्त ( वासरं ज्योतिः ) दिनके प्रकाशको ( पश्यन्ति ) लोग देखते है ॥ १० ॥

॥ यहां दुसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

( १-१४ ) १ प्रयोगो भार्गवः; २,५ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ विरूप आङ्गिरसः; ८ शुनःशेप आजीगर्तिः; ९ गोपवन आत्रेयः; ११ प्रस्कण्वः काण्वः; १२ मेधातिथिः काण्वः; १३ सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आत्यो वा ; १४ उशना काव्यः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

२१ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०२।७ )

२२ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यꣳसद्विश्वं न्यऽ३त्रिणम् । अग्निर्नो वꣳसते रयिम् ॥२॥ ( ऋ. ६।१६।२८ )

२३ अग्ने मृड महाꣳ असयय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ४।९।१ )

२४ अग्ने रक्षा णो अꣳहसः प्रति स देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ७।१५।१३ )

२५ अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।१६।४३ )

२६ नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।१५।७ )

---

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ २१ ] ( वः ) तुम्हारे ( अध्वराणां ) अहिंसा पूर्ण यज्ञोंका ( नप्त्रे ) नाश न करनेवाले ( पुरूतमं ) अतिश्रेष्ठ ( सहस्वते ) बलवान् ( वृधन्तं ) सबको बढानेवाले ( अग्निं अच्छा ) अग्निके पास [ सेवा करनेके लिये ] जा ॥ १ ॥

( १ ) अ-ध्वरः- हिंसा रहित यज्ञ, ( २ ) अध्व-रः- मार्ग दिखानेवाला, ( ३ ) नप्ता ( न-प्ता )- न गिरानेवाला, संरक्षक, ( ४ ) सहस्वान्- शत्रुको हरानेवाला ।

[ २२ ] ( अग्निः ) अग्नि ( तिग्मेन शोचिषा ) अपने तीक्ष्ण तेजसे ( विश्वं अत्रिणं ) सब [ स्वयं ] खानेवाले शत्रुको ( नि यंसत् ) नष्ट करता है, वह अग्नि ( नः रयिं वंसते ) हमें धन देता है ॥ २ ॥

( १ ) अत्रिः ( अद् )— स्वयं खानेवाला, अत्यधिक खानेवाला शत्रु ।

[ २३ ] हे अग्ने ! तू ( मृड ) हमें सुखी कर ( महान् असि ) तू महान् है, ( देव-युं जनं आ अयः ) ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास जा, और ( बर्हिः आसदं ) आसन पर बैठनेके लिए तू ( इयेथ ) आ ॥ ३ ॥

( १ ) देवयुः ( देव-युः )— ईश्वरकी उपासना करनेवाला, ईश्वरसे अपना सम्बन्ध जोडनेवाला ।

[ २४ ] हे अग्ने ! ( अंहसः ) पापी और ( रीषतः ) हिंसक शत्रुसे ( नः ) हमारा ( रक्ष ) संरक्षण कर, और ( अ-जरः ) बुढापासे रहित तू ( तपिष्ठैः प्रति दह स्म ) अपने तेजोंसे [ शत्रुको ] जला दे ॥ ४ ॥

( १ ) अंहः- पाप, पापी, दुष्ट । ( २ ) रीषत्- हिंसक शत्रु, तोडफोड करनेवाला शत्रु ।

( ३ ) अजरः- जरारहित, तरुण ।

[ २५ ] हे अग्नि देव ! ( ये ) जो ( तव साधवः अश्वासः ) तेरे उत्तम घोडे हैं, जो ( आशवः अरं वहन्ति ) वेगसे पूर्ण होकर तुझे ले जाते हैं, उनको [ अपने रथमें ] ( युङ्क्ष्व हि ) जोड ॥ ५ ॥

( १ ) आशुः— वेगसे जानेवाले घोडे ।

[ २६ ] हे ( नक्ष्य ) शरणमें जाने योग्य, ( विश्-पते ) प्रजाओंके पालक, ( आहुत ) सबके सहायके लिए बुलाये गये हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( वयं ) हम ( द्युमन्तं सुवीरं ) तेजस्वी, उत्तमवीर तेरा ही ( धीमहि ) ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) नक्ष्य- ( नक्ष् )— पास जाना, पास जाने योग्य, ( २ ) द्युमान्- प्रकाशमान्, तेजस्वी ।

( ३ ) सुवीरः- उत्तम वीर, योद्धा ।

२७ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥७॥ (ऋ. ८।४४।१६)
२८ इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥ (ऋ. १।२७।४)
२९ तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।७४।११)
३० परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥ (ऋ. ४।१५।३)
३१ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥ (ऋ. १।५०।१;यजु. ७।४१)
३२ कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥ (ऋ. १।१२।७)
३३ शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १३ ॥ (ऋ. १०।९।४; यजु. ३६।१२)

---

[२७] (अयं अग्निः) यह अग्नि (मूर्धा) सबसे मुख्य स्थानपर रहनेवाला है, वह (दिवः ककुत्) द्युलोकका उच्च भाग है, और (पृथिव्याः पतिः) पृथ्वीका पालन करनेवाला है, वही (अपां रेतांसि जिन्वति) कर्मोंका फल देकर सबको प्रसन्न करता है ॥ ७ ॥

(१) आप्— जल, कर्म, जीवन। (२) जिन्व्— सन्तुष्ट करना।

[२८] हे अग्ने ! (त्वं) तू (अस्माकं इमं नव्यांसं) हमारे इस नवीन (सनिं) अन्नको और (गायत्रं) गायत्री छन्दमें किए गए स्तोत्रको (देवेषु सु प्रवोच) देवोंमें पहुंचा ॥ ८ ॥

(१) सनिः— अन्न 'सणु-दाने', (२) गायत्रं— गायत्री छन्दमें गाया गया साम-गान।

[२९] (तं त्वा) उस तुझे (गोपवनः) गोपवन ऋषिने (गिरा जनिष्टत्) अपनी स्तुतिसे उत्पन्न किया, हे (अंगिरः) शरीरके अंगोंमें रस रूपमें रहनेवाले (पावक) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सः) वह तू (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ ९ ॥

(१) अंगिराः— एक ऋषि, अंगोंमे रसरूपमें रहनेवाली शक्ति (अंगि-रस्),
(२) पावक— पवित्र करनेवाला।

[३०] (वाजपतिः कविः) अन्नोंका स्वामी, ज्ञानी, अग्नि (हव्यानि परि अक्रमीत्) हवनीय पदार्थोंको स्वीकार करता है, और (दाशुषे रत्नानि दधत्) दानशील मनुष्यको रत्न देता है ॥ १० ॥

[३१] (विश्वाय सूर्यं दृशे) विश्वको सूर्य दिखानेके लिए उसकी (केतवः) किरणें (जातवेदसं देवं) जिससे वेद उत्पन्न हुए है, उस देवको (उत् उ वहन्ति) अच्छी तरह धारण करती है ॥ ११ ॥

(१) जात-वेदाः— जिससे ज्ञान प्रकट होता है, जिससे वेद प्रकट होते है, किरणें सूर्यको आकाशमें इसी लिए धारण करती है, कि जिससे वह सबको दिखाये।

[३२] (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (सत्यधर्माणं) सत्य धर्मसे युक्त (कविं अग्निं) ज्ञानी अग्निकी (उप स्तुहि) स्तुति कर, वह (देवं) देव (अमीव-चातनं) रोग नष्ट करनेवाला है ॥ १२ ॥

(१) अमीव-चातनः— कब्जसे उत्पन्न होनेवाले रोगोको दूर करनेवाला।

[३३] (नः) हमें (अभिष्टये) इच्छित सुख देनेके लिए (देवीः शं) दिव्य जल कल्याणकारी हों। (नः पीतये शं) हमारे पीनेके लिए सुखदायी हों। (नः) हमें (शं योः अभिस्रवन्तु) सुख और शान्ति देते हुए जल प्रवाह बहें ॥ १३ ॥

(१) अभिष्टि- इच्छित सुख, [illegible]पीति- पानी पीना।

३४ कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।८४।७)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० ९ । उ० २ । धा० ५७ (ये) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १,३,७ शंयुर्बार्हस्पत्यः (७ तृणपाणिः ); २,५,८-९ भर्गः प्रागाथः; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; १० सोभरिः काण्वः ॥ अग्निः ॥ बृहती ॥

३५ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४८।१)

३६ पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।९)

३७ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।४८।७)

३८ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१६।७)

---

[ ३४ ] हे ( सत्पते ) सत्यके पालन करनेवाले ! ( नूनं कस्य धियः ) निश्चयसे किसकी बुद्धिसे ( परिणसि जिन्वसि ) संमिलित होकर तू आनन्दित होता है ? ( यस्य ते गिरः ) जिसके कारण तेरी स्तुति ( गो-षाता ) ज्ञानका दर्शन करनेवाली होती है ॥ १४ ॥

(१) गो-षाता- गायका पालन करना, इन्द्रियोंका पालन करना, ज्ञानका दर्शन करना ।

॥ यहां तृतीय खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ३५ ] ( वः ) तुम ( यज्ञा यज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें और ( गिरा गिरा ) प्रत्येक स्तोत्रमें ( दक्षसे अग्नये ) बलवान् अग्निकी प्रशंसा करो, ( वयं ) हम ( जातवेदसं अमृतं ) सबको जाननेवाले अमर अग्निकी ( प्रियं मित्रं न ) प्रिय मित्रके समान ( प्रशंसिषम् ) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३६ ] हे अग्ने ! ( एकया नः पाहि ) एक प्रार्थनासे हमारा संरक्षण कर, ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी प्रार्थनासे भी हमारी रक्षा कर, हे ( ऊर्जां पते ) अन्नके स्वामी ! ( तिसृभिः गीर्भिः पाहि ) तीसरी प्रार्थनासे हमारा रक्षण कर, हे ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्ने ! ( चतसृभिः पाहि ) चौथी प्रार्थनासे भी हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[ ३७ ] हे अग्नि देव ! ( बृहद्भिः अर्चिभिः ) बडी बडी ज्वालाओंसे तू प्रकाशित है, ( शुक्रेण शोचिषा ) शुद्ध तेजसे तू प्रकाशित हो, हे ( यविष्ठ्य रेवत् पावक ) तरुण, धनवान् और पवित्र करनेवाले देव ! ( भरद्वाजे समिधानः ) भरद्वाजके लिए अच्छी तरह प्रदीप्त होकर तू ( दीदिहि ) प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ ३८ ] हे अग्ने ! ( त्वे ) तुझमें ( स्वाहुतः ) उत्तम रीतिसे हवन करनेवाले ( सूरयः ) विद्वान् ( प्रियासः सन्तु ) तुझे प्रिय हों, ( ये मघवानः ) जो धनवान् ( जनानां यन्तारः ) प्रजाजनोंपर शासन करते है, वे ( गोनां ऊर्वं दयन्तः ) गायोंके समूहका पालन करते हैं ॥ ४ ॥

३९ अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६०।१९)

४० अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१)

४१ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ७ ॥ (ऋ. ६।४८।९)

४२ त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६०।५)

४३ आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६०।११)

---

[ ३९ ] हे ( जरितः अग्ने देव ) ज्ञानी अग्नि देव ! तू ( विश्पतिः ) प्रजाका पालक है, ( रक्षसः तपानः ) राक्षसोंको संताप देनेवाला है। हे ( गृहपते ) घरके स्वामी ! तू ( अ-प्रोषिवान् ) बाहर कहीं न जानेवाला ( दुरोणयुः ) घरमें ही रहनेवाला ( महान् असि ) महान् है, और ( दिवस्पायुः ) द्युलोकका रक्षण करनेवाला है ॥ ५ ॥

[ ४० ] हे ( अमर्त्य अग्ने ) अमर अग्नि देव ! ( उषसः विवस्वत् ) उषासे प्राप्त होनेवाले ( चित्रं राधः ) विलक्षण धनको ( दाशुषे आ वह ) दानशील आदमीको दे, हे ( जातवेदः ) सर्वज्ञ अग्ने ! ( त्वं अद्य ) तू आज ( उषर्बुधः देवान् ) प्रातःकाल उठनेवाले देवोंको ( आ वह ) ले आ ॥ ६ ॥

[ ४१ ] हे ( वसो अग्ने ) सबको बसानेवाले अग्नि देव ! ( त्वं चित्रः ) तू अद्भुत शक्तिवाला है, ( ऊत्या राधांसि ) तू अपने संरक्षाके सामर्थ्यसे धनोंको ( नः चोदय ) हमारे पास पहुंचा, ( त्वं ) तू ( अस्य रायः ) इस धनको ( रथीः असि ) रथके द्वारा लानेवाला है, तू ( नः तुचे ) हमारे पुत्र आदियोंके लिए ( गाधं तु विदाः ) प्रतिष्ठा दे ॥७॥

[ ४२ ] हे अग्ने ! हे ( त्रातः ) रक्षण करनेवाले ! ( त्वं इत् ) तू निश्चयसे ( स-प्रथाः ) बहुत प्रसिद्ध है, इसी लिए तू ( ऋतः कविः ) सत्य और ज्ञानी है; हे ( दीदिवः ) तेजस्वी अग्ने ! ( त्वां समिधानं ) तेरे प्रज्वलित हो जानेके बाद ( वेधसः विप्रासः ) ज्ञानी विप्र तेरी ( आ विवासन्ति ) सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४३ ] हे ( पावक अग्ने ) पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू ( नः ) हमें ( शंस्यं वयोवृधं रयिं रास्व ) प्रशंसनीय बढानेवाले धनको दे। हे ( उपमाते ) ज्ञान सम्पन्न ! ( सुनीती ) उत्तम नीतिके मार्गसे ( पुरु-स्पृहं ) जिसकी बहुतसे लोग प्रशंसा करते हैं, ऐसे ( सुयशस्तरं ) उत्तम यश देनेवाले धनको ( नः ) हमें दे ॥ ९ ॥

४४ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १० ॥ (ऋ. ८।१०३।६)

इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० ९ । उ० ३ । धा० ८३ । (दी) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २ भर्गः प्रागाथः, ३, ७ सौभरिः काण्वः; ४ मनुर्वैवस्वतः; ५ सुदीतिपुरुमीळावांगिरसौ; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ८ मेधातिमेध्यातिथी काण्वौ; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० कण्वो घौरः

॥ अग्निः, ८ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

४५ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ (ऋ. ७।१६।१)

४६ शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।१५)

४७ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०३।१)

---

[४४] ( यः ) जो ( विश्वा वसु दयते ) सब धन देता है, जो ( जनानां ) मनुष्योंमें ( होता मन्द्रः ) देवोंको बुलाकर उन्हें आनन्द देनेवाला है, ( अस्मै अग्नये ) इस अग्निके लिए ( मधोः प्रथमानि पात्रा न ) सोमके पात्र जैसे प्रथम दिये जाते है, उसी प्रकार ( स्तोमाः यन्तु ) स्तोत्र किए जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[५] पञ्चमः खण्डः ।

[ ४५ ] ( एना नमसा ) इस अन्नसे ( ऊर्जो-न-पातं ) बलको क्षीण न होने देनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठं ) प्रिय और चेतनाको देनेवाले ( अरतिं, स्वध्वरं ) मुख्य, उत्तम और हिंसारहित यज्ञ करनेवाले, ( विश्वस्य दूतं ) सबको ज्ञान देनेवाले, ( अमृतं अग्निं ) अमर अग्निको ( आहुवे ) मैं बुलाता हूँ, उसकी मैं प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

[ ४६ ] हे अग्ने ! तू ( वनेषु ) जंगलोंमें ( मातृषु ) भूमिमें अथवा माताके गर्भमें ( शेषे ) गुप्त रूपसे रहता है ( मर्तासः त्वा सं इन्धते ) मनुष्य तुझे उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करते हैं, ( अ-तन्द्रः ) आलस्यको छोडकर ( हविष्कृतः हव्यं वहसि ) हवन करनेवालेकी हवियोंको तू देवोंतक पहुंचाता है, ( आत् इत् ) और ( देवेषु राजसि ) देवोंमें तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ ४७ ] ( गातु-वित्तमः ) धर्मके मार्गोंको उत्तम प्रकारसे जाननेवाला, अग्नि ( अदर्शि ) दीखने लगा है, ( यस्मिन् व्रतानि आदधुः ) जिसमें सब नियम किये जाते हैं, ( सुजातं ) उत्तम प्रकारसे प्रकट हुए ( आर्यस्य वर्धनं ) आर्योंको बढानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः नक्षन्तु ) हमारी स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

४८ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२७।१)

४९ अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निꣳ राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।७१।१४)

५० श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१३)

५१ प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१०३।२)

५२ अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१।१८)

५३ कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।९।२)

---

[४८] (उक्थे अग्निः पुरोहितः) उक्थ यज्ञमें अग्निको सबसे पहले स्थापित किया जाता है। (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (ग्रावाणः) सोम कूटनेके पत्थर रहते हैं, तथा (बर्हिः) आसन भी फैलाये जाते हैं। (मरुतः) हे मरुतो (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (देवाः) हे देवो ! (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा मैं तुमसे (वरेण्यं अवः यामि) श्रेष्ठ संरक्षण मांगता हूँ ॥ ४ ॥

[४९] (शीर-शोचिषं) जिसकी ज्वालाये प्रज्वलित हो चुकी है, ऐसे (अग्निं) अग्निकी (अवसे) अपने रक्षणके लिए (गाथाभिः ईडिष्व) स्तोत्रोंसे स्तुति कर, (पुरु-मीढः) स्तोता (अग्निं) अग्निकी (राये) धनकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करता है, (श्रुतं अग्निं) इस प्रसिद्ध अग्निकी (नरः) मनुष्य (सुदीतये छर्दिः) उत्तम प्रकाशयुक्त घरकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

[५०] हे (श्रुत्कर्ण) प्रार्थना सुननेवाले अग्ने ! (श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुन (सयावभिः) समान गतिसे युक्त (देवैः वह्निभिः) दिव्य अग्निके साथ (मित्रः अर्यमा) मित्र और अर्यमा (प्रातर्यावभिः) सवेरे जानेवाले देवोंके साथ (अध्वरे बर्हिषि आसीदतु) यज्ञमें आसनपर आकर बैठें ॥ ६ ॥

[५१] (मज्मना इन्द्रः न) शक्तिमें इन्द्रके समान, (दैवोदासः अग्निः देवः) दिवोदासका अग्निदेव (मातरं पृथिवीं) पृथ्वी मातापर (अनु प्र वावृते) अनुकूलतासे प्रकाशित हुआ, उसके बाद वह अपनी श्रेष्ठताके कारण (नाकस्य शर्मणि तस्थौ) स्वर्गके आश्रयसे रहने लगा ॥ ७ ॥

[५२] हे अग्ने ! (अधज्मः) पृथ्वीपर (अधवा) अथवा (बृहतः रोचनात् दिवः अधि) अत्यन्त तेजस्वी द्युलोकपर (अया तन्वा वर्धस्व) अपने तेजसे बढ। हे (सु-क्रतो) उत्तम यज्ञ करनेवाले अग्ने ! (गिरा) अपनी वाणीसे (ममा जाता पृण) मेरे सम्बन्धी जनोंका पोषण कर ॥ ८ ॥

[५३] हे अग्ने ! (त्वं) तू (वना कायमानः) वनकी इच्छा करनेवाला है, तू (यत् मातॄः अपः) जो माताके समान जलोंके पास गया, (तत् ते निवर्तनं) वह तेरा जाना हमसे (न प्रमृषे) नहीं सहा गया (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) तू दूर होता हुआ भी (इह आभुवः) यहीं रहता है ॥ ९ ॥

५४ नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।३६।१९ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [ स्व० उ० ६ । धा० ७१ । (षा) ॥ ]
इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-८ ) १, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २,३,५ कण्वो घौर,; ४ सौभरिः काण्वः; ६ उत्कीलः कात्यः; ८ विश्वामित्रो गाथिनः ॥ अग्निः; २ ब्रह्मणस्पतिः, ३ यूपः ॥ बृहती ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

५५ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।११ )

५६ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥ ऋ. १।४०।३ )

५७ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।३६।१३ )

---

[ ५४ ] हे अग्ने ! ( मनुः त्वां नि दधे ) मननशील मनुष्य तुझे धारण करता है, ( शश्वते जनाय ज्योतिः ) प्राचीनकालसे आनेवाले मनुष्योंके लिए तेरी ज्योति प्रकाशित है, ( कण्वे दीदेथ ) ज्ञानवान् ऋषिके आश्रममें तू प्रकाशित होता है, ( ऋत-जातः उक्षितः ) यज्ञके लिए उत्पन्न होनेपर तू और अधिक प्रज्वलित किया जाता है, ( यं कृष्टयः नमस्यन्ति ) जिसको मनुष्य नमन करते है ॥ १० ॥

॥ यहां पञ्चमं खंड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ५५ ] ( वः देवः ) तुम्हारा देव ( द्रविणो-दाः ) धन देनेवाला है, अतः वह ( पूर्णां आसिचं विवष्टु ) अच्छी तरह भरे हुए स्रुचाको स्वीकार करे, और तुम ( उत् सिञ्चध्वं ) ऊपरसे घी डालो, ( वा उप पृणध्वं ) और बार बार स्रुचा भर भर कर आहुति दो, ( आत् इत् ) इसके बाद ही ( देवः वः ओहते ) वह देव तुम्हें उन्नतिके मार्ग पर ले जाएगा ॥ १ ॥

[ ५६ ] (ब्रह्मणस्पतिः ) ज्ञानका स्वामी वह देव ( प्र एतु ) हमारे पास आवे, ( सूनृता देवी प्र एतु ) सत्य रूपवाली सरस्वती देवी हमारे पास आवे, ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञमें ( देवाः ) सब देव ( नर्यं पंक्ति-राधसं वीरं ) मानव जातिके हित करनेवाले, [ अपनी सेनाकी ] पंक्तिको यशस्वी बनानेवाले वीरको ( अच्छा नयन्तु ) उत्तम मार्गसे ले जावें ॥ २ ॥

[ ५७ ] हे अग्ने ! ( नः ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( ऊर्ध्वः सुतिष्ठ ) ऊंचे स्थानपर उत्तम रीतिसे स्थित हो, ( सविता देवः न ) सूर्य देवके समान ( ऊर्ध्वः ) उन्नत होकर ( वाजस्य सनिता ) अन्नको देनेवाला हो, ( यत् अञ्जिभिः ) जिस कारण स्तोत्रोंसे ( वाघद्भिः विह्वयामहे ) स्तुति करते हुए हम तुझे बुलाते है ॥ ३ ॥

५८ प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशꣳसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०३।४ )

५९ प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निꣳसूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यꣳसमिदन्य इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।३६।१ )

६० अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ३।१६।१ )

६१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳ होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।१६।५ )

६२ सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातꣳ सुभगꣳ सुदꣳससꣳ सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ३।९।१ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [ स्व० ११ । उ० २ । धा० ५७ । (ख) ॥ ]

---

[ ५८ ] हे ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्नि देव ! ( यः मर्तः ) जो मनुष्य ( राये निनीषति ) धन प्राप्तिके लिए तेरी उपासना करता है, ( यः ते दाशत् ) जो तुझे हवि देता है, ( सः ) वह ( उक्थशंसिनं ) स्तुति करनेवाले, ( सहस्रपोषिणं ) हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले ( वीरं ) वीर पुत्रको ( त्मना धत्ते ) अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

[ ५९ ] ( यं अन्ये सं-इन्धते ) जिस अग्निको दूसरे पुरुष उत्तमतासे प्रज्वलित करते है, उस ( देवयतीनां पुरूणां विशां ) देवत्वको प्राप्त करनेवाली नागरिक प्रजाओंकी ( यह्वं ) महान् भक्तिका ( सूक्तेभिः वचोभिः ) सूक्तोंके वाक्योंसे ( वृणीमहे ) हम वर्णन करते है ॥ ५ ॥

[ ६० ] ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( सुवीर्यस्य ) उत्तम पराक्रमका और ( सौभगस्य ) उत्तम भाग्यका ( हि ईशे ) स्वामी है, ( रायः ईशे ) वह धनका स्वामी है, ( स्वपत्यस्य गोमत ईशे ) वह अपने पुत्र पौत्र और गायोंका स्वामी है ( वृत्रहथानां ) घेरनेवाले शत्रुको मारनेवालोंका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६१ ] हे अग्ने ! ( त्वं गृहपतिः ) तू घरोंका स्वामी है, ( नः अध्वरे त्वं होता ) हमारे हिंसारहित यज्ञमें तू होता है, हे ( विश्ववार ) सभीके द्वारा स्वीकार करने योग्य अग्ने ! ( त्वं पोता ) तू पवित्रता करनेवाला है, ( प्रचेताः ) तू उत्तम ज्ञानी है, ( वार्यं यक्षि ) तू स्वीकार करने योग्य धनोंको देता है । ( यासि च ) और वह धन प्राप्त भी करता है ॥ ७ ॥

[ ६२ ] हे अग्ने ! ( सखायः मर्तासः ) हम सभी समान विचारवाले मनुष्य ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-भगं ) उत्तम ऐश्वर्यवाले, ( सु-दंससं ) उत्तम कर्म करनेवाले ( सु-प्रतूर्तिं ) पापोंका नाश करनेवाले ( अनेहसं ) पापरहित ( अपां-न-पातं ) पानीको न गिरानेवाले ( त्वा देवं ) तुझ देवको ( ववृमहे ) प्राप्त करनेकी इच्छा करते है ॥ ८ ॥

१ अपां-न-पातः- पानीको नीचे न गिरानेवाला, मेघोंके अन्दर अग्नि रहनेके कारण मेघोंके न पिघलनेसे पानी नहीं बरसता, ( अपां-नपातं ) पानीका पौत्र, पानीके पुत्र वृक्षोंकी परस्पर रगडसे वृक्षोंका पुत्र अग्नि पैदा होता है ।

॥ यहां छठा खंड समाप्त हुआ ॥

❀

[ ७ ]

( १–१० ) १ श्यावाश्वो वामदेवो वा; २ उपस्तुतो वार्हिष्टव्यः; ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ४ कुत्स आंगिरसः;
५–६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ॥
१,३,५,९ त्रिष्टुप; २, ४ जगती; १० त्रिपाद्विराड्गायत्री ॥

६३ आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यꣳ सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति. )

६४ चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्याꣳ३ चरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।११५।१ )

६५ इदं त एकं पर उ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥ ( ऋ १०।५६।१ )

६६ इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९४।१ )

---

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ६३ ] ( हविषा आ जुहोत ) हे मनुष्यो ! हवि द्रव्योंसे हवन करो, ( मर्जयध्वं ) सर्वत्र शुद्धता करो, ( होतारं गृहपतिं ) हवन करनेवाले घरके स्वामी अग्निको ( नि दधिध्वं ) स्थापित करो, ( इडः पदे ) पृथ्वीके यज्ञ-स्थानमें ( पस्त्यानां रातहव्यं ) प्रारम्भ हुए हुए यज्ञमें हवनीय पदार्थोंको देनेके साथ साथ ( नमसा सपर्यत ) नमस्कार-पूर्वक अग्निका सत्कार करो ॥ १ ॥

[ ६४ ] ( शिशोः तरुणस्य ) इस तरुण बालक अग्निका ( वक्षथः चित्रः ) जीवन बडा ही विचित्र है, ( यः ) जो ( धातवे ) दूध पीनेके लिये ( मातरौ अपि न एति ) दोनों ही माताओंके पास नहीं जाता, ( अन्-ऊधः ) स्तन रहित माताओंसे ( यदि अजीजनत् ) यदि यह उत्पन्न हुआ है,.तो ठीक है, ( अध च ) उत्पन्न होनेके वाद यह अग्नि ( महि दूत्यं चरन् ) बडे बडे दूतके कामको करते हुए ( ववक्ष ) देवोंको हवि पहुंचाता है ॥ २ ॥

दो अरणियोंके संघर्षसे अग्नि उत्पन्न होती है, पर पैदा होनेके वाद यह माताके पास दूध पीने नहीं जाती, क्योंकि उसकी माताके स्तन ही नहीं होते, पर यह उत्पन्न होते ही देवोंको हवि पहुंचाने रूप दूतके काम करने लगती है। यह आश्चर्य है ।

[ ६५ ] ( ते इदं एकं ) तेरा यह एक अग्नि रूप शरीर है, ( ते परः एकं ) तेरा दूसरा वायुरूप शरीर है, ( तृतीयेन ज्योतिषा ) तीसरे सूर्यरूप तेजसे ( सं विशस्व ) तू मिल जा, ( तन्वः सं वेशने ) शरीरके इस प्रकार संयुक्त हो जानेपर ( चारुः एधि ) तू सुन्दर होकर बढ, ( परमे जनित्रे देवानां प्रियः ) परम श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थानमें तू देवोंका प्रिय होकर रह ॥ ३ ॥

मरनेके वाद मृतककी क्या अवस्था होती है, वह, यहां वताया गया है, इसका एक स्थूल शरीर अग्निसे मिल जाता है, दूसरा शरीर वायुसे मिल जाता है । यहांसे सूर्यमें पहुंचकर यह कल्याणमय स्थितिमें रहता है, इस श्रेष्ठ स्थानमें यह देवोंका प्रिय होकर रहता है । यह आनन्दकी स्थिति होती है ।

[ ६६ ] ( अर्हते जातवेदसे ) पूज्य जातवेद अग्निके लिए ( इमं स्तोमं ) इस स्तोत्ररूपी यज्ञको ( रथं इव ) रथके समान ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक ( सं महेम ) उत्तम प्रकार तैय्यार करते है ( अस्य संसदि ) इस अग्निके यज्ञ स्थानमें ( नः भद्रा प्रमतिः ) हमारी कल्याणमय बुद्धि कार्य करती है । ( वयं तव सख्ये ) हम तेरी मित्रतामें ( मा रिषाम ) कभी नष्ट न हों ॥ ४ ॥

६७ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )

६८ वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२४।६ )

६९ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रँ होतारँ सत्ययजँ रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३।१ )

७० इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।८।१ )

७१ प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।८।१ )

---

[ ६७ ] ( दिवः मूर्धानं ) द्युलोकके शिर स्थानीय ( पृथिव्या अरतिं ) पृथ्वीके स्वामी ( ऋते आजातं ) यज्ञमें उत्पन्न हुए ( वैश्वानरं ) सब विश्वके नेता ( कविं सम्राजं ) ज्ञानी और प्रकाशमान ( जनानां अतिथिं ) मनुष्योंमें अतिथिके समान पूज्य ( आसन् ) मुखके समान मुख्य ( पात्रं ) योग्य ( अग्निं ) अग्निको ( देवाः जनयन्त ) देवोंने उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

[ ६८ ] हे अग्ने ! ( पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न ) पर्वतकी पीठसे जैसे जल प्रवाह बहते है, उसी प्रकार ( देवाः उक्थेभिः ) यज्ञ कर्ता विद्वान् स्तोत्रोंके द्वारा ( वि जनयन्त ) अनेक प्रकारसे तुझे उत्पन्न करते हैं, हे ( गिर्ववाहः ) वाणीसे-स्तुतिसे जानने योग्य अग्ने ! ( अश्वाः आजिं न ) घोडे जैसे संग्राममें जाते है और ( जिग्युः ) विजय मिलती है, उसी प्रकार ( सुष्टुतयः गिरः ) उत्तम स्तुतिसे युक्त हमारी वाणी ( त्वं त्वा वाजयन्ति ) उस तुझे बलवान बनाती है ॥ ६ ॥

[ ६९ ] ( अ-ध्वरस्य राजानं ) हिंसा रहित यज्ञके राजा ( रुद्रं ) घोषणा करते हुए ( रोदस्योः सत्य यजं ) द्यावा पृथिवीमें सत्य रूपसे यज्ञ करनेवाले ( होतारं हिरण्यरूपं अग्निं ) होता, सुवर्ण रूप अग्निको ( अचित्तात् ) स्वाभाविक रूपसे ( स्तनयित्नोः ) विद्युत्से ( पुरा अवसे कृणुध्वं ) पहले अपने संरक्षणके लिए उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

१- पहले विद्युत् अग्निसे इस अग्निको उत्पन्न किया था ।

[ ७० ] ( अर्यः राजा अग्निः ) यह श्रेष्ठ राजा अग्नि ( नमोभिः सं इन्धे ) अन्नोंसे प्रज्वलित किया जाता हैं, ( यस्य प्रतीकं ) जिसका रूप ( घृतेन आहुतं ) घृतके हवनसे वढाया जाता है, ( नरः सबाधः हव्येभिः ईडते ) सब मनुष्य मिलकर हवनोंसे इसकी पूजा करते हैं, ( अग्निः उषसां अग्रे अशोचि ) इस प्रकार यह अग्नि उषा कालसे पहले ही प्रज्वलित हुई है ॥ ८ ॥

[ ७१ ] अग्नि ( बृहता केतुना ) महान् प्रकाशके साथ ( प्रयाति ) प्रकट होता है, ( रोदसी ) द्यावा पृथ्वीमें ( वृषभः रोरवीति ) यह बलवान् अग्नि गर्जन करता है, ( दिवः अन्तात् चित् ) अन्तरिक्ष लोकके एक ( उपमां उद् आनट् ) पासके भागसे वह प्रथम प्रकट हुआ, और ( अपां उपस्थे ) जलोंके बीचमें-मेघोंके बीचमें ( महिषः ववर्ध ) वह सामर्थ्यशाली अग्नि वढने लगा ॥ ९ ॥

७२ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥ (ऋ. ७।१।१)

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १५ । उ० ८ । धा० १०४। (वी) ॥ ]

[ ८ ]

( १-८ ) १ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; २, ५ वत्सप्रिर्भालन्दनः; ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ पायुर्भारद्वाजः ॥ अग्निः, ३ पूषा ॥ त्रिष्टुप् ॥

७३ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥ (ऋ. ५।१।१)

७४ प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥ (ऋ. १०।४६।५)

[ ७२ ] ( नरः ) यज्ञ करनेवाले नेता मनुष्योंने ( दीधितिभिः ) अपनी अंगुलियोंसे ( अरण्योः ) दो अरणियोंके बीचमें ( हस्तच्युतं ) हाथोंके बलसे उत्पन्न हुए ( प्रशस्तं दूरेदृशं ) प्रशंसित तथा दूरसे ही दीखनेवाले ( गृहपतिं ) घरके स्वामी ( अथर्व्युं अग्निं जनयन्त ) गतिशील अग्निको उत्पन्न किया ॥ १० ॥

एक अरणीमें दूसरी डालकर वे अरणियां घिसी जाती हैं, इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है, और इस प्रकार यह यज्ञगृहका स्वामी प्रशंसित होता है ।

॥ यहां सातवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ ७३ ] यह ( अग्निः ) अग्नि ( जनानां समिधा ) यज्ञकर्त्ता मनुष्योंकी समिधाओंसे ( अबोधि ) प्रज्वलित हुआ है। ( धेनुं इव ) [ अग्निहोत्रके लिए पाली हुई ] गाय जिस प्रकार [ प्रातः काल जागती है ] उसी प्रकार ( आयतीं उषासं प्रति ) आनेवाली उषामें [ उठकर इस अग्निको प्रज्वलित करो ] उस अग्निकी ( भानवः ) ज्वालायें ( वयां प्रोज्जिहानाः यह्वाः ) डालियोंको फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ( अच्छ नाकं प्रसस्रते ) उत्तम रीतिसे आकाशमें फैलती हैं ॥ १ ॥

(१) वयां प्रोज्जिहानाः यह्वाः- शाखाओंको फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ।
(२) भानवः अच्छ नाकं प्रसस्रते- अग्निकी किरणें अन्तरिक्षमें फैलती हैं, ।
(३) अग्निः जनानां समिधा अबोधि- अग्नि यज्ञ करनेवालोंकी समिधाओंसे प्रज्वलित हुआ है ।
(४) धेनुं इव आयतीं उषासं प्रति- गायके पास जैसे मनुष्य सवेरे जाता है, उसी प्रकार आनेवाली उषामें मनुष्य अग्निके पास जाकर उसे जलाते हैं ।

[ ७४ ] हे मनुष्य ! ( जयन्तं ) असुरोंको जीतनेवाले ( महां विपोधां ) महान् बुद्धिमानोंको धारण करनेवाले ( मूरैः पुरां दर्माणं ) मूर्खोंकी नगरियोंका नाश करनेवाले ( अमूरं ) ज्ञानी अग्निकी स्तुति करनेके लिए ( प्रभूः ) समर्थ हो, ( गीर्भिः वना नयन्तं ) स्तुतियोंसे धनकी तरफ ले जानेवाले ( वर्मणा न ) कवचके समान रहनेवाले ( हरिश्मश्रुं ) सुनहरे रंगकी ज्वालाओंसे युक्त ( धनर्चिं ) जिसके लिए स्तोत्र किए जाते हैं ऐसी अग्निकी ( धियं धाः ) स्तुति कर ।

७५ शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।५८।१ )

७६ इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।६।११ )

७७ प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
दधद्यो धायी सुते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४६।१ )

७८ प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुꣳसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।६।१ )

---

[ ७५ ] हे ( पूषन् ) पूषा देव ! ( ते शुक्रं अन्यत् ) तेरा तेजस्वी वर्णवाला दिन पृथक् है, ( ते यजतं अन्यत् ) उसी प्रकार तेरी कृष्ण वर्णकी रात्री पृथक् है, इस प्रकार ( वि-षु-रूपे अहनी ) आपसमें एक दूसरेसे भिन्न दिवसके ये दो भाग तेरी महिमासे होते हैं, तू ( द्यौः इव असि हि ) द्युलोकके समान प्रकाशित होता है, हे ( स्वधावन् ) अन्नवान् देवता ! तू ( विश्वाः मायाः अवसि ) सब प्रजाओंका संरक्षण करता है, ( ते भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले दान ( इह अस्तु ) यहाँ हमें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

(१) पूषा- सूर्य, (२) यजतं- दिवससे सम्बन्धित, कृष्णवर्ण, (३) स्वधा- अन्न, अपनी धारण शक्ति ।
(४) मायाः- कुशलतासे काम करनेवाली प्रजा, कपटका प्रयोग ।

[ ७६ ] हे अग्ने ! ( पुरु-दंससं ) बहुत कार्योंमें उपयोगी ( गोः सनिं इडां ) गायोंको देनेवाली वाणी ( शश्वत्तमं हवं आनाय ) निरन्तर हवन करनेवाले यजमानके लिए ( साध ) दे, ( नः सूनुः तनयः स्यात् ) हमारे पुत्र और पौत्र होवें, ऐसी जो ( ते सुमतिः ) तेरी उत्तम बुद्धि है, वह ( अस्मे विजावा भूतु ) हमारे लिए सफल हो ॥ ८ ॥

(१) विजावा- अवन्ध्य, सफल, ।

[ ७७ ] ( यः नृषद्मा ) जो मनुष्योंके घरोंमें रहनेवाला अग्नि ( अपां विवर्ते ) पानीसे भरे हुए अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहता है, वह इस समय ( होता जातः ) यज्ञ करनेवाला हो गया है, वह ( महान् नभोवित् ) महान् तथा अन्तरिक्षको जाननेवाला अग्नि ( प्रसीदत् ) वेदिमें प्रज्वलित हो गया है, वह ( दधत् ) हवियोंको धारण करनेवाला ( सुधायी ) वेदिमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला है, हे स्तुति करनेवाले उपासक ! वह अग्नि ( विधते ते ) उपासना करनेवाले तेरे लिए ( वयांसि ) अन्न और ( वसूनि ) धनोंको ( यन्ता ) देनेवाला ( तनू-पाः भवतु ) और शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे ॥ ५ ॥

[ ७८ ] ( असुरस्य पुंसः ) बलवान् वीरके और ( कृष्टीनां अनुमाद्यस्य ) मनुष्यों द्वारा स्तुतिके योग्य ( तवसः इन्द्रस्य इव ) बलमें इन्द्रके समान उस अग्निके ( प्रशस्तं सम्राजं ) प्रशंसनीय उत्तम तेजकी ( प्रस्तौतु ) स्तुति करो । ( वन्दद्वारा वन्दमाना ) स्तुति और वन्दन आदि कर्मोंसे ( प्र विवष्टु ) उसकी उपासना करो ॥ ६ ॥

७९ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।२९।२)

८० सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।८७।१९)

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १३ । उ० १ । धा० ६ । (टी)॥ ]

[ ९ ]

( १–१० ) १ गय आत्रेयः, २ वामदेवः; ३,४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः; ६ वसूयव आत्रेयाः; ७,९ गोपवन आत्रेयः, ८ पुरुरात्रेयः; १० वामदेवः, कश्यपो वा मारीचो, मनुर्वा वैवस्वत, उभौ वा ॥ अग्निः ॥ अनुष्टुप् ॥

८१ अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥ (ऋ. ५।१०।१)

८२ यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

[ ७९ ] ( जातवेदाः अग्निः ) सब ज्ञानसे युक्त यह अग्नि ( गर्भिणीभिः सुभृतः गर्भ इव ) गर्भ धारण करनेवाली स्त्रियों द्वारा उत्तम रीतिसे धारण किए हुए गर्भके समान ( अरण्योः निहितः ) अरणियोंमें रहता है, वह अग्नि ( हविष्मद्भिः जागृवद्भिः मनुष्येभिः ) हवि तैय्यार करके हमेशा जागृत रहनेवाले मनुष्यों द्वारा ( दिवे दिवे ईड्यः ) प्रतिदिन स्तुतिके योग्य है ॥ ७ ॥

[ ८० ] हे अग्ने ! तूं ( सनात् ) हमेशा ( यातुधानान् मृणसि ) कष्ट और पीडा देनेवाले शत्रुओंको मारता है ( त्वा पृतनासु ) तुझे संग्राममें ( रक्षांसि न जिग्युः ) राक्षस जीत नहीं सकते, इस प्रकार तू ( सहमूरान् ) समूल (क्रव्यादः) मांस भक्षक राक्षसोंको ( अनुदह ) जला डाल ( ते दैव्यायाः हेत्याः ) तेरे दिव्य हथियारसे कोई भी शत्रु ( मा मुक्षत ) न छूटे ॥ ८ ॥

( १ ) सहमूराः— जड सहित । ( २ ) क्रव्यादः— मांस खानेवाले ।

॥ यहां आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ ८१ ] हे अग्ने ! ( ओजिष्ठं द्युम्नं ) बलवर्धक धन ( अस्मभ्यं आभर ) हमें भरपूर दे । हे ( अध्रि-गो ) बिना रोक टोक गतिवाले अग्ने ! ( पनीयसे राये ) प्रशंसनीय धनके मिलनेके मार्गको ( नः प्र ) हमें दिखा, उसी प्रकार ( वाजाय ) अन्न मिलने तथा बल बढानेके ( पन्थां रत्सि ) मार्ग दिखा ॥ ३ ॥

[ ८२ ] ( यदि वीरः स्यात् ) यदि वीर पुत्र उत्पन्न हो, तो ( मर्त्यः अग्निं इन्धीत ) वह मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करे और ( अनु ) बादमें ( हव्यं आनुषक् आजुह्वत् ) हवनीय पदार्थोंका सदा हवन करे, और ( दैव्यं शर्म भक्षीत ) दिव्य सुख प्राप्त करे ॥ २ ॥

८३ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं च्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।२।६)

८४ त्वꣳहि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।२।१)

८५ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥ (ऋ. ५।१८।१)

८६ यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥ (ऋ. ५।२५।७)

८७ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।७४।१)

---

[ ८३ ] ( त्वेषः ते ) प्रज्वलित होनेके बाद तेरा ( शुक्रः धूमः ) साफ धुआं ( दिवि आततः ) अन्तरिक्षमें फैलता है, और ( ऋण्वति ) वहींसे वह दीखने लगता है, हे ( पावक ) पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( सूरः न ) सूर्यके समान ( कृपा ) स्तुतिके ( द्युता ) प्रकाशसे ( हि रोचसे ) तू प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ८४ ] हे अग्ने ! ( हि ) निश्चयसे ( त्वं ) तू ( क्षैतवत् यशः ) सूखी समिधारूप अन्न ( मित्रः न ) सूर्यके समान ( पत्यसे ) प्राप्त करता है, हे ( विचर्षणे ) सर्व द्रष्टा ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्ने ! ( त्वं श्रवः ) तू अन्नको और ( पुष्टिं न पुष्यसि ) पुष्टीको बढाता है ॥ ४ ॥

( १ ) क्षैत— सूखी लकडी, ( २ ) यशः— अन्न, यश.

[ ८५ ] ( पुरु-प्रियः ) अनेकोंको प्रिय लगनेवाले ( विशः अतिथिः ) मनुष्योंके घरमें अतिथिके समान जानेवाले ( अग्निः ) अग्निकी ( प्रातः स्तवेत ) प्रातः काल स्तुति की जाती है, ( यस्मिन् अमर्त्ये ) जिस अमर अग्निमें ( विश्वे मर्तासः ) सब मनुष्य ( हव्यं इन्धते ) हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ८६ ] ( वाहिष्ठं यत् ) अति शीघ्र पहुंचनेवाला जो स्तोत्र है ( तत् अग्नये ) वह अग्निके लिए किया जाता है, ( विभावसो ) हे तेजस्वी अग्ने ! ( बृहत् अर्च ) बहुतसा धन और अन्न हमें दे, ( त्वत् ) तुझसे ( महिषी रयिः ) बहुत धन और ( त्वत् ) तुझसे ही ( वाजा उदीरते ) अन्न मिलता है ॥ ६ ॥

[ ८७ ] हे मनुष्यो ! तुम ( वाजयन्तः ) अन्न और बलकी इच्छा करते हुए ( विशः विशः ) सब प्रजाओंके ( पुरु-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( अतिथिं अग्निं ) इस पूज्य अग्निकी स्तुति करो, मैं ( वः दुर्यं ) तुम्हारे लिए घरोंमें रहनेवाले अग्निकी ( शूषस्य मन्मभिः ) सुख देनेवाले स्तोत्रोंसे और ( वचः स्तुषे ) अपनी वाणीसे स्तुति करता हूं ॥ ७ ॥

८८ बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ५।१६।१ )

८९ अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
य स्म श्रुतर्वन्नार्क्ष्ये बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।७४।४ )

९० जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । धा० ५१ । (थ) ॥ ]

[ १० ]

( १-६ ) १ अग्निस्तापसः; २, ३ वामदेवः कश्यपः, असितो देवलो वा; ४ सोमाहुतिर्भार्गवः; ५ पायुर्भारद्वाजः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ अग्निः; १ विश्वेदेवाः; २ अङ्गिराः ॥ अनुष्टुप् ॥

९१ सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४१।३ )

९२ इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

---

[ ८८ ] ( भानवे अग्नये ) तेजस्वी अग्निके लिए ( बृहत् वयः ) बहुतसा हविका अन्न दिया जाता है, ( हि ) क्योंकि तुम ( देवाय अर्च ) प्रकाशयुक्त अग्निकी ही पूजा करते हो । ( मर्तासः ) मनुष्य ( यं मित्रं न ) जिस अग्निको मित्रके समान ( प्रशस्तये पुरः दधिरे ) उत्तम स्तुति करनेके लिए आगे स्थापित करते हैं ॥ ८ ॥

[ ८९ ] ( वृत्रहन्तमं ) वृत्रको मारनेवाले ( ज्येष्ठं आनवं ) श्रेष्ठ मनुष्योंके हित करनेवाले ( अग्निं अगन्म ) अग्निको हम प्राप्त करते हैं ( यः ) जो अग्नि ( आर्क्षे श्रुतर्वन् ) ऋक्ष पुत्र श्रुतर्वाके लिए ( बृहत् अनीकः ) मोटी मोटी ज्वालाओंके साथ ( इध्यते स्म ) प्रज्वलित किया जाता है ॥ ९ ॥

[ ९० ] हे अग्ने ! ( यत् सवृद्भिः सह अभुवः ) जो यज्ञ ऋत्विजोंके साथ उत्पन्न होता है, उस ( परेण धर्मणा ) उत्तम धर्मके साथ तू ( जातः ) उत्पन्न हुआ है, ( यत् ) जिस अग्निका ( कश्यपस्य पिता ) कश्यप पिता, ( श्रद्धा माता ) श्रद्धा माता और ( मनुः कविः ) मनु कवि है ॥ १० ॥

॥ यहां नवम खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ ९१ ] हम ( राजानं सोमं ) सोमराजाको तथा वरुण, अग्नि, आदित्य, सूर्य, ब्रह्मणस्पति, विष्णु और बृहस्पतिको ( अन्वारभामहे ) बार बार याद करते हुए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ९२ ] ( एते भूर्जयः आङ्गिरसः ) ये यज्ञ करनेवाले आंगिरस ( यथा ) जैसे ( द्यां उत्प्रययुः ) द्युलोकको पहुंचे, ( पथाः इतः उदारुहन् ) उत्तम मार्गसे यहांसे वहां चले गए और ( दिवः पृष्ठानि आरुहन् ) द्युलोककी पीठपर जाकर चढ गए ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९३ राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
९४ दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।५।३ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
९५ प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।८७।२५ )

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
९६ त्वमग्ने वसूꣳरिह रुद्राꣳ आदित्याꣳ उत ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।४५।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ४ । उ० ३ । धा० २० । (दौ) ॥ ]

इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ १ ॥

## अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥

( १ )

( १-१० ) दीर्घतमा औचथ्यः; २, ४ विश्वामित्रो गाथिनः, ३ गोतमो राहूगणः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ इरिम्बिठिः काण्वः; ७,८,१० विश्वमना वैयश्वः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः ॥ अग्निः; ५ पवमानः सोमः; ६ अदितिः; ९ विश्वे देवाः ॥ उष्णिक् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
९७ पुरु त्वा दाशिवाꣳवोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५०।१ )

---

[९३] हे अग्ने ! (त्वा) तुझे (महे राये दानाय) अधिक धन देनेके लिए हम (समिधीमहि) प्रदीप्त करते हैं। हे (वृषन्) बलवान् अग्ने ! (महे होत्राय) महान् अग्नि होत्रके लिए (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोककी (ईडिष्व) स्तुति कर ॥ ३ ॥

[९४] (वा) अथवा (ईं अनु दधन्वे) इस अग्निको लक्ष्य करके अध्वर्यु आदि लोग (ब्रह्म अनुवोचत्) स्तोत्र कहते हैं, (तत् वेः उ) उन सबको वह जानता है, यह अग्नि (विश्वानि काव्या) सब काव्योंको, सब कर्मोंको (नेमिः चक्रं इव) नाभि चक्रको जैसे धारण करती है, उसी प्रकार (परि अभुवत्) धारण करता है ॥ ४ ॥

[९५] हे अग्ने ! (हरसा) अपने तेजसे (यातुधानस्य हरः) यातना कष्ट देनेवाले राक्षसोंके सुखका हरण करनेवाला तू उनके (बलं) बलको (विश्वतः) सब प्रकारसे (परि प्रति शृणीहि) चारों तरफसे नष्ट कर, (रक्षसः वीर्यं) राक्षसोंके पराक्रमको (न्युब्ज) नष्ट कर ॥ ५ ॥

[९६] हे अग्ने ! (त्वं इह) तू यहां (वसून् रुद्रान् उत आदित्यान्) वसु, रुद्र और आदित्य इन देवोंके लिए (यज) यज्ञ कर, उसी प्रकार (मनुजातं) मनुसे उत्पन्न हुए (घृत-प्रुषं) घृतका सिंचन करनेवाले (स्वध्वरं जनं यज) उत्तम यज्ञ करनेवाले मनुष्यका सत्कार कर ॥ ६ ॥

॥ यहां दशम खंड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] [illegible] खण्डः ।

[९७] हे अग्ने ! (त्वा पुरु दाशिवान्) तुझे [illegible] देता हुआ (वोचे) मैं कहता हूँ, कि [illegible] तोदस्य इव) बडे धनवान्की (शरणे आ) शरणमें [illegible] के समान मैं (तव स्विद् आ [illegible] सेवक हूँ ॥ १ ॥

९८ प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१०।५ )

९९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७९।४ )

१०० अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।१०।७ )

१०१ जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०२।४ )

१०२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
सा शन्ताति मयस्करदप स्रिधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१८।७ )

१०३ ईडिष्वा हि प्रतीव्या३ं यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२३।१ )

---

[९८] ( विपां ज्योतींषि बिभ्रते ) ज्ञानियोंके तेजोंको धारण करनेवाले ( वेधसे होत्रे न ) विधाता और देवोंको बुलानेवालेके समान ( अग्नये ) अग्निके लिए ( बृहत् पूर्व्यं वचः ) महान् और प्राचीन स्तोत्रोंको ( प्र भरत ) कहो ॥ २॥

[९९] ( सहसो यहो अग्ने ) हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! ( गोमतः वाजस्य ईशानः ) गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नका तू स्वामी है, इस कारण हे ( जात-वेदः ) ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! ( अस्मे महि श्रवः देहि ) हमें बहुतसा धन दे ॥ ३ ॥

[१००] हे अग्ने ! तू ही ( अध्वरे यजिष्ठः ) यज्ञमें पूजाके योग्य है, ( देवयते ) यज्ञकर्ताके लिए ( देवान् यज ) देवोंके लिए यज्ञ कर, तू ( होता मन्द्रः ) देवोंको बुलाकर लानेवाला अग्नि ( वि अति स्रिधः ) शत्रुओंको पराजित करके ( राजसि ) शोभित होता है ॥ ४॥

[ १०१ ] ( सप्त मातृभिः जज्ञानः ) सात माताओं-नदियों-की सहायतासे उत्पन्न होनेवाला, ( मेधां श्रिये अशासत ) यज्ञ करनेवाले सोमोंकी शोभाके लिए प्रयत्न करनेवाला ( अयं ध्रुवः ) यह स्थिर अग्नि ( रयीणां आचिकेतद् ) धनोंको उत्तम रीतिसे जानता है ॥ ५ ॥

[ १०२ ] ( उत स्या मतिः ) और वह बुद्धि ( अ-दितिः ) न खण्डित होनेकी स्थितिमें ( ऊत्या ) संरक्षणकी शक्तिके साथ ( दिवा नः आगमत् ) आजके दिन हमें प्राप्त होवे, ( सा ) वह ( शंतातिः मयः ) शान्ति और सुखको हमारे लिए ( करत् ) प्रदान करे, और ( स्रिधः अप ) शत्रुओंको दूर करे ॥ ६ ॥

[ १०३ ] ( प्रतीव्यां ईडिष्व हि ) शत्रुको पराजित करनेवाले अग्निकी स्तुति कर, ( अ-गृभीत-शोचिषं ) जिसके प्रकाशको कोई भी नहीं रोक सकता, ( चरिष्णु-धूमं ) जिसका धुंआ चारों दिशाओंमें फैलता है, ऐसे ( जात-वेदसं ) सबको जाननेवाले अग्निकी ( यजस्व ) पूजा कर ॥ ७ ॥

१०४ न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।२३।१५)

१०५ अप त्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ६।५१।१३)

१०६ श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥ (ऋ. ८।२३।१४)

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ९ । उ० ३ । धा० ४२ । (वा)॥ ]

[ २ ]

(१-८) १ प्रयोगो भार्गवः २ ( ऋ० सौभरिः काण्वः ); २, ३, ५-७ सौभरिः काण्वः; ४ प्रयोगो भार्गवः, सौभरिः काण्वो वा; ८ विश्वमना वैयश्वः ॥ अग्निः ॥ उष्णिक्

१०७ प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०३।८)

१०८ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१९।३०)

---

[ १०४ ] ( यः ) जो ( हव्य-दातये अग्नये ) हवनीय पदार्थोंको देनेवाले अग्निके लिए ( ददाश ) हवि देता है, ( तस्य ) उसके ऊपर ( मर्त्यः रिपुः ) कोई भी शत्रु ( मायया च न ) कपटसे भी ( न ईशीत ) शासन नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[ १०५ ] हे अग्ने ! ( त्यं ) उस ( वृजिनं रिपुं ) कपटी, शत्रु और ( दुराध्यं स्तेनं ) कठिनतासे वशमें आने योग्य चोरको ( दविष्ठं अपास्य ) दूर कर, हे ( सत्पते ) सत्यके पालक अग्ने ! हमारे लिए ( सुगं कृधि ) मार्गको आसानीसे जाने योग्य बना ॥ ९ ॥

[ १०६ ] हे ( वीर ) वीर ( विश्पते ) हे प्रजाके पालक अग्ने ! इस ( मे नवस्य स्तोमस्य ) मेरे नये स्तोत्रको ( श्रुष्टी ) सुनकर ( मायिनः रक्षसः ) छली, कपटी राक्षसोंको ( तपसा निदह ) अपने तेजसे जला दे ॥१०॥

॥ यहां ग्यारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ १०७ ] हे ( उपस्तुतासः ) स्तुति करनेवाले उपासको ! तुम ( मंहिष्ठाय ) महान् ( ऋताव्ने ) सत्यके पालक, यज्ञके पालक, ( बृहते ) महान् ( शुक्र-शोचिषे ) स्वच्छ प्रकाशसे युक्त ( अग्नये ) अग्निके लिए ( प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो ॥ १ ॥

[ १०८ ] हे अग्ने ! ( त्वं यस्य सख्यं आविथ ) तू जिसका मित्र हो जाता है, ( सः ) वह ( तव ) तेरे ( सुवीराभिः ) उत्तम वीरोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) अन्न देनेवाले और पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाले ( ऊतिभिः ) संरक्षणके साधनोंसे ( प्रतरति ) दुःखोंसे पार हो जाता है ॥ २ ॥

१०९ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१९।१)

११० मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१०३।१२)

१११ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१९।१९)

११२ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।१९।३)

११३ तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम् ।
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१९।१५)

---

[ १०९ ] हे उपासक ! ( स्वः नरं तं गूर्द्धत ) स्वर्गको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी स्तुति कर, ( देवासः ) ऋत्विग् गण ( देवं ) जिस देवकी ( अरतिं दधन्विरे ) स्वामी मानकर उपासना करते हैं, उस अग्निकी सहायतासे ( देवत्रा ) देवोंको ( हव्यं आ ऊहिषे ) हवनीय द्रव्य तू पहुंचाता है ॥ ३ ॥

[ ११० ] ( नः अतिथिं ) हमारे यज्ञसे अतिथिके समान प्रिय अग्निको दूर ( मा हृणीथाः ) मत लेजा, ( यः सुहोता ) जो अग्नि देवोंको उत्तम रीतिसे बुलानेवाला, ( स्वध्वरः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला, ( एषः ) यह ( पुरु-प्रशस्तः वसुः ) अनेकोंसे प्रशंसित होनेवाला तथा सबको बसाने वाला है ॥ ४ ॥

[ १११ ] ( आहुतः ) जिसमें हवन किया गया है, ऐसा ( अग्निः ) यह अग्नि ( नः भद्रः ) हमारा कल्याण करने वाला होवे, हे ( सुभग ) उत्तम ऐश्वर्यवाले हमें ( भद्रा रातिः ) कल्याणकारी धन प्राप्त होवे, ( अध्वरः भद्रः ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला होवे, ( उत ) और ( प्रशस्तयः भद्राः ) स्तुतियां हमारा कल्याण करनेवालीं होवें ॥ ५ ॥

[ ११२ ] हे अग्ने ! ( यजिष्ठं ) यज्ञ करनेवाले, ( देवत्रा देवं ) देवोंमे प्रमुख देव ( अमर्त्यं होतारं ) अमर होता, ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले ( त्वा ववृमहे ) तुम्हारा हम सत्कार करते हैं ॥ ६ ॥

[ ११३ ] हे अग्ने ! ( तत् द्युम्नं आभर ) उस तेजस्वी यशको हमें दे, ( यत् ) जो ( सदने ) यज्ञ स्थान अथवा घरमें ( कंचित् अत्रिणं ) किसी भी अत्यधिक खानेवाले शत्रुको ( आ सासाहा ) दबा सके, उसी प्रकार ( दूढ्यं ) दुष्ट बुद्धि और ( जनस्य मन्युं ) लोगोंके क्रोधको दूर कर ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
११४ यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।२३।१३ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२॥ [ स्व० १२ । उ० २ । धा० ४४ । (छी) ॥ ]

इत्याग्नेयं पर्वं काण्डम् वा ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ इति प्रथमं पर्व ॥

आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

| | | |
|---|---|---|
| गायत्र्यः | ३४ | ( १–३४ ) |
| बृहत्यः | २८ | ( ३५–६२ ) |
| त्रिष्टुभः | १८ | ( ६३–८० ) |
| अनुष्टुभः | १६ | ( ८१–९६ ) |
| उष्णिहः | १८ | ( ९७–११४ ) |
| | ११४ | |

---

[ ११४ ] ( यत् वै ) जब ( विश्पतिः शितः ) यजमानोंका पालन करनेवाला अग्नि हविसे प्रज्वलित होता है, तब वह अग्नि ( सुप्रीतः ) अच्छी तरह प्रसन्न होकर ( मनुषः विशे ) मनुष्यके घर जाता है, तब वह अग्नि ( विश्वा रक्षांसि इत् ) सब राक्षसोंको ( प्रतिषेधाति उ ) नष्ट करता है ॥ ८ ॥

॥ यहां बारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आग्नेयं काण्डं समाप्तम् ॥

# अग्निका स्वरूप

सामवेदके प्रथम काण्ड ' आग्नेय काण्ड ' में ११४ मंत्र हैं, यद्यपि इनमें कहीं कहीं दूसरे देवताओंके भी मंत्र हैं, पर इस काण्डका मुख्य देवता ' अग्नि ' है । लोग देवताओंका वर्णन पढें, पढकर उनके गुणोंको अपने अन्दर धारण करें, धारण करके उन्हें बढावें और मनुष्यसे ' देव ' बनें इसके लिए वैदिक उपासना और स्तुति है । ' देव ' बननेकी इच्छा प्रत्येक स्तुति करनेवालेके मनमें होनी चाहिए । मैं देवताकी स्तुति करता हूं मैं इस देवताके गुणका वर्णन करता हूं, इसका उद्देश्य है कि इस देवताके गुण मेरे अन्दर आवें, और इन शुभ गुणोंसे मैं युक्त होऊं ।

यत् देवाः अकुर्वन् तत् करवाणि । शतपथ ब्राह्मण ।

' जो देवोंने किया, वह मैं करूं ' । इस प्रकार करके मनुष्य देवत्वको प्राप्त करें और देव बनकर समाजमें शोभित हों इसीको आग्नेय काण्डमें इस प्रकार कहा है,

देव-युं जनं आ अयः । ऋ. ५।९।१; साम. २३

' हे अग्ने ! देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको तू प्राप्त हो ' तुझे प्राप्त करनेका अर्थ है उपासकको देवत्वकी प्राप्ति, अर्थात् उसका उद्धार । यह देवत्व प्राप्त करना है, इसीको मुख्य रूपसे करनेके लिए वेदने कहा है, उसे वैदिक धर्मियोंको करना चाहिए ।

आज हम सामवेदके ' आग्नेय काण्ड ' का विवेचन करते हैं , इस काण्डका मुख्य प्रतिपाद्य देवता अग्नि है । इस कारण सर्व प्रथम अग्निके स्वरूप पर विचार करते हैं—

## अग्निके गुण

इस आग्नेय काण्डमें निम्न गुणोंका वर्णन है—

१ विश्व-वेदाः- ( विश्व ) सबको ( वेदाः ) जाननेवाला, सर्वज्ञानी, विशेषज्ञान युक्त ( मं. ३ ) ' सब धन युक्त ' यह भी इस शब्दका अर्थ है, क्योंकि वेद धनको भी कहते हैं । ' वेदस् इति धन नाम ' ( निघं. २।१०।४ )

२ जात-वेदाः ( मं. ३१ )- ( जातं वेत्ति ) सब उत्पन्न हुओंको जाननेवाला ।

३ कविः ( मं. ३० )- ज्ञानी, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी ।

४ पुरोहितः ( मं. ४८ )- आगे रहनेवाला, पुरोहित, मनुष्योंका सबसे पहले हितकरनेवाला ।

५ प्र-चेताः ( मं. ६१ )- विशेष बुद्धिमान्, विशेषज्ञानी

६ अतिथिः ( मं. ५ )- अतिथिके समान पूज्य सत्कार-के योग्य ।

७ जरा-बोधः (मं. १५ )- स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला, जिसकी स्तुति होती है ।

८ रुद्रः ( मं. १५ )- ( रुत्-रः ) बोलने वाला, वक्ता ( रुद्-रः ) शत्रुको रुलानेवाला ।

९ पावकः- ( मं. २८ ) पवित्रता करनेवाला, शुद्धि करने-वाला,

१० चेतिष्ठः ( मं. ४५ )- चेतना देनेवाला, प्रेरणा देने-वाला, ज्ञानी,

११ गातु-वित्-तमः ( मं. ४७ )- मार्ग जाननेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ, उत्तम मार्गको जाननेवाला ।

१२ आर्यस्य वर्धनः ( मं. ४६ )- आर्योंको- श्रेष्ठ पुरुषोंको- बढाने वाला,

१३ श्रुत्-कर्णः ( मं. ५० )- भक्तोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी कामनाकी पूर्ति करनेवाला ।

१४ पोता ( मं. ६१ )- स्वच्छता करनेवाला, एक अध्वर्यु

१५ विपो-धाः ( मं. ७४ )- विशेष ज्ञानी लोगोंको सहारा देनेवाला । ज्ञानियोंका आश्रयदाता ।

१६ अ-मूरः ( मं. ७४ )- जो मूर्ख नहीं अर्थात् ज्ञानी ।

१७ सु-भगः ( मं. ६२ )- उत्तम ऐश्वर्यवाला ।

१८ यज्ञस्य सु-क्रतुः ( मं. ३ )- यज्ञका कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला ।

१९ सत्य-धर्मा ( मं. ३२ )- सत्यका पालन करनेवाला, यज्ञका पालन करनेवाला ।

२० सत्पतिः ( मं. ३४ )- सज्जनोंका पालन करनेवाला ।

२१ विश्पतिः ( मं. ३९ )- प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला ।

२२ त्राता ( मं. ४२ )- संरक्षण करनेवाला, उत्तम संरक्षक,

२३ ऋतः ( मं. ४२ )- सत्य, योग्य, यज्ञ, पूज्य ।

२४ वैश्वा-नरः ( मं. ६० )- सब मनुष्योंका हित करने-वाला, सार्वजनिक हितकारी ।

२५ अ-तन्द्रः (मं. ४६ )- आलस्य रहित, सुस्ती रहित, सदा उत्साह युक्त ।

२६ दक्षाः ( मं. ३५ )- चतुर, कर्मोंमें सदा निपुण,

२७ होता ( मं. १,२ )- देवोंको बुलाकर लानेवाला, सत्पुरुषोंको अपने साथ लानेवाला, हवन करनेवाला ।

२८ प्रेष्ठः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबको चाहनेवाला

२९ प्रियः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबके द्वारा चाहने योग्य,

३० वाजपतिः ( मं. ३० )-अन्न और बलका अधिपति ।

३१ विवस्वत् ( मं. १० )- ( विवः ) ज्ञानसे ( वत् ) युक्त. ज्ञानी, सबको बसानेवाला,

३२ वृधन् ( मं. २१ )-बढानेवाला, संवर्धन करनेवाला ।

३३ सुवीरः ( मं. २६ )-उत्तम वीर, महाशूर

३४ वृत्राणि जंघनत् ( मं. ४ )- घेरनेवाले शत्रुको मारनेवाला,

३५ सु-वीर्यस्य ईशे ( मं. ६० )-उत्तम शौर्यका स्वामी,

३६ पुरां दर्माणं ( मं. ७४ )-शत्रुके नगरोंको तोडने-वाला,

३७ वृत्रन्-हन्तमः ( मं. ८९ )- वृत्रोंको मारनेवाला,

३८ ऊर्जो न-पातः ( मं. ४५ )- बलको कम न करने-वाला, बल बढानेवाला ।

३९ ऊर्जो पति ( मं. ३६ )- बल और अन्नका पालक ।

४० जयन् ( मं. ७४ )- विजयी

४१ प्रत्नः ( मं. २० )- प्राचीन, अनादि

४२ अमृतः ( मं. ३५ )- अमर

४३ वृषभः ( मं. ७१ )- बलवान्, सामर्थ्यशाली, वृष्टि करनेवाला,

४४ पुरु- प्रियः ( मं. ८७ )- बहुतोंको प्रिय, 'प्रिय' ( मं. ४५ )

४५ स्वध्वरः ( मं. ४५ )- ( सु-अध्वरः ) हिंसा रहित यज्ञ करनेवाला ।

४६ पुरु-प्रशस्तं ( मं. ११० )- बहुतों द्वारा प्रशंसित

४७ द्रविणस्युः ( मं. ४ )- धनवान्, बलवान्, ( निघं २।१०।२५ धन, २।९।१६ बल )

४८ सौभगस्य ईशे रायः ईशे ( मं. ६० )- सौभाग्य और धनका स्वामी ।

४९ दाशुषे रत्नानि दधत् ( मं. ३० )- दान देने-वाले मनुष्योंको रत्न देनेवाला ।

५० द्रविणोदाः ( मं. ५५ )- धन देनेवाला,

५१ देवानां प्रियः (मं. ६५ )- देवोंको प्रिय, विद्वानोंका चाहनेवाला,

५२ देवेषु राजति (मं. ४६)- देवोंमें प्रकाशित होनेवाला, विद्वानोंमें तेजस्वी ।

५३ गृहपतिः ( मं. ६१ )- गृहस्थ, घरोंका स्वामी,

५४ अनेहस् ( मं. ६२ )- पापरहित,

५५ शुक्रशोचीः ( मं. १०७ )- तेजस्वी, प्रकाशित होनेवाला।

५६ सहस्वान् ( मं. २१ )- बलवान्, शत्रुको पराजित करनेवाला।

५७ अरतिः ( मं. ६० )- प्रगतिशील,

५८ ऋते जातः ( मं. ६० )- सत्यके लिए प्रयत्न करनेवाला, यज्ञके लिए उत्पन्न हुआ।

५९ अर्यः राजा- ( मं. ७० )- श्रेष्ठ राजा,

६० परेण धर्मणा जातः ( मं. ९० ) श्रेष्ठ धर्मोके साथ उत्पन्न हुआ, श्रेष्ठ धर्मोका पालन करनेवाला।

६१ सत्पते सुगं कृधि ( मं. १०५ )- हे सज्जनोंके पालन करनेवाले! हमारे मार्ग सरलतासे जाने योग्य बना, अग्नि मार्गको सरलतासे जाने योग्य बनाता है।

६२ अध्वराणां सम्राट् ( १७ )- हिंसा रहित कर्मोंका सम्राट्।

६३ सत्य-यजः ( मं. ६७ )- सत्य यज्ञ करनेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला।

६४ अगृभीत-शोचिः ( मं. १०३ )- जिसका तेज कम नहीं होता, जिसका तेज रोका या दबाया नहीं जा सकता।

६५ रिपुः न ईशत ( मं. १०४ )- जिस पर शत्रु शासन नहीं कर सकता, शत्रुको हरानेवाला।

६६ तनू-पाः ( मं. ७७ )- शरीरका संरक्षण करनेवाला,

६७ नृ-षद्मा ( मं. ७७ )- मानवीय घरों और शरीरोंमें रहनेवाला।

६८ मानुषे जने देवेभिः हितः ( मं. २ )- मनुष्योंके शरीरमें देवोंद्वारा स्थापित किया हुआ।

६९ वसुः ( मं. ३६ )- सबको बसानेवाला, निवास करनेवाला।

७० अमीव-चातनः ( मं. ३२ )- रोगोंको दूर करनेवाला।

७१ सहस्र-पोषिणं वीरं त्मना धत्ते ( मं. ५८ )- हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले वीरको-वीर पुत्रको स्वयं धारण करता है।

७२ जनानां सम्राट् ( मं. ६७ )- लोगोंका साम्राट्।

७३ हिरण्यरूपः ( मं. ६९ )- सोनेके समान तेजस्वी, चमकनेवाला।

अग्निके इन गुणोंका वर्णन इस आग्नेय काण्डमें है। इनमें कहीं अग्निके ज्ञानका वर्णन है, कहीं उसके बल और शूरवीरताका वर्णन है। ये गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर बढालें, तो उनकी योग्यता निःसन्देह बढेगी। पाठक इस दृष्टिसे इन गुणोंका विचार करें, और जो गुण अपने अन्दर ला सकते हैं, उनको लावें और उन्हें बढावें। मनुष्य इन गुणोंसे युक्त हों इसलिए वेदके ये मंत्र हैं।



## अग्निका सामर्थ्य

अग्निका सामर्थ्य बहुत महान् है, इसलिए इसको 'पुरूतमः' ( २१ )- सबमें श्रेष्ठ कहा है। शक्तिमें यह सबसे महान् है, इसलिए कहा है, कि 'महान् असि' ( २३ )- तू बहुत बडा है, तेरी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, तुझ जैसा महान् कोई नहीं है।

कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति ( मं. ११ )- सब मनुष्य शक्तिके लिए तुझे नमन करते हैं, और तेरी स्तुति करते हैं।

इस प्रकारकी अग्निकी शक्ति है।

## आर्योंका संवर्धन

**सु-जातं आर्यस्य वर्धनं नः गिरः नक्षन्तु ( ४७ )-** उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ पुरुषोंको बढानेवाले अग्निका वर्णन हमारी वाणी करती है।

यज्ञके तीन अर्थ हैं, ( १ ) देव-पूजा, ( २ ) संगतिकरण और ( ३ ) दान, इनसे मनुष्योंकी शक्ति बढती है। कैसे? इस प्रकार कि समाजमें रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंका सत्कार होनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंकी संख्या बढती है, उससे समाज श्रेष्ठ होता है। उसके बाद संगति-करणकी आवश्यकता होती है, संगति-करणका अर्थ है, संघटन, समाजमें संगठन होनेका अर्थ है समाजकी शक्तिका विस्तार। तीसरा पक्ष है दान। दानका अर्थ केवल धन देना ही नहीं है, अपितु जिसके पास जो चीज नहीं है, वह चीज उसको देकर उसका उद्धार करना भी दान ही है।

यह दान चार प्रकारका है- ( १ ) विद्या दान, ( २ ) बलदान, ( ३ ) धनदान और ( ४ ) कर्मदान। इन चार प्रकारके दानोंसे राष्ट्रकी उन्नति होती है। अज्ञानियोंको विद्याका दान करनेसे वे ज्ञानवान् होकर उन्नत होते हैं। जो निर्बल हैं, उनके बलको बढाकर उन्हें बलवान् बनाना यह दूसरा कार्य है। धनका दान देकर देशमें धन उत्पन्न करनेके साधनोंको बढाना यह राष्ट्रकी उन्नतिमें तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है। चौथा काम है, बेकारोंको काम देकर उन्हें धन मिले ऐसा प्रबन्ध करना। इन चार प्रकारके दानोंसे देशकी उन्नति हो सकती है।

यज्ञके ये तीन पक्ष उत्तम रीतिसे राष्ट्रकी उन्नति करनेवाले

हैं। इस कारण यज्ञसे राष्ट्र और समाजकी उन्नति होती है। यह हमारा विचार बिल्कुल ठीक है।

## गृहपति

यद्यपि यह अग्नि घरके हवन-कुण्डमें ही रहता है, पर तो भी उसे वहां 'गृह-पति' घरका मालिक कहा गया है। यज्ञका अग्नि निश्चयसे घरका स्वामी है।

**गृहपते ! अ-प्रोषितवान् महान् असि ( ३९ )**

'हे गृहस्वामी अग्ने ! तू कहीं दूसरी जगह नहीं घूमता, तू निश्चयसे महान् है।' (**अ-प्रोषितवान्**) तू बाहर इधर उधर बिना कारण नहीं घूमता। घरमें ही रहते हुए तथा घरका हित करते हुए तू अपना समय बिताता है, इसलिए तू (**महान् असि**) महान् है। अपने घरका सब प्रकारसे कल्याण करना गृहस्थीका मुख्य कर्तव्य है। सब गृहस्थी इससे बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

## गौवोंको पालना

गायोंको पालना गृहस्थियोंका एक मुख्य कर्तव्य है। घरोंमें गायें अत्यन्त आवश्यक हैं। घरोंमें बच्चोंको गायका दूध, घी, मक्खन आदि प्राप्त होना उत्तम ऐश्वर्यका लक्षण है। इससे मनुष्य लम्बी उमरवाले होते हैं—

**मघवानः जनानां यन्तारः गोनां ऊर्वं दयतः (३८)-**

'जो मनुष्यों पर उत्तम प्रकार शासन करते हैं, वे धनवान् गौवोंके झुण्डका भी संरक्षण करते हैं। वे लोगोंको गायें देते हैं, और गायोंसे लोगोंकी सहायता करते हैं।

**पुरुदंसं गो-सनिं इडां शश्वत्तमं हूयमानाय साध (७६)-**

स्तुति करनेवालेको अनेक प्रकारसे अन्न देनेवाले सब प्रकारके अन्न देने वाले हे अग्ने ! तू गायका दान कर।

गौवोंका दान यज्ञ करनेवालोंको करें। गाय भी यज्ञका मुख्य साधन है। हवन गायके दूध और घीसे होता है। गायके घीकी अग्निमें आहुति देनेसे यह विषको नष्ट करके हवा शुद्ध करता है।

**ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।**
**ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते।** —गोपथ ब्राह्मण

ऋतुओंके सन्धि कालमें अर्थात् एक ऋतुके समाप्त होनेपर जब दूसरी ऋतु प्रारम्भ होती है, तब हवाके बदलनेसे रोग पैदा होते हैं। इसलिए ऋतुओंके सन्धि कालमें यज्ञ किए जाते हैं। इन यज्ञोंमें गायके घी तथा रोगोंको शान्त करनेवाले अन्यान्य औषधियोंका हवन किया जाता है, उससे रोग दूर होते हैं।

मनुष्यका रोग इस प्रकार दूर हो सकता है, कि मनुष्य जिस रोगसे पीडित है, उस रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंको कूटकर उसका तथा गायके घीका हवन यदि उस रोगीके कमरेमें किया जाए तो यज्ञमें डाली गयी सामग्री अग्निमें जलकर सूक्ष्म हो जाती है, और वह सूक्ष्म अंश श्वास द्वारा रोगीके अन्दर जाकर रक्तमें मिल जाता है, और इस प्रकार वह रोगीके रोगको दूर करता है।

अग्निको '**हव्यवाह्**' कहा है, क्योंकि यह हवनमें डाले गए पदार्थोंको जहां पहुंचाना होता है, वहां पहुंचा कर इच्छित कार्यको सिद्ध करता है।

किस ऋतुमें किन औषधियोंका हवन किया जाए. यह संशोधनीय विषय है। यदि इसका संशोधन कर उसके अनुसार हवन किया जाए तो वैयक्तिक और सामुदायिक आरोग्यका लाभ होगा, इसमें कोई संशय नहीं। संशोधकोंका कर्तव्य है कि इस महत्वपूर्ण विषयका संशोधन अवश्य करें।

## ज्ञानी अग्नि

अग्नि ज्ञानी है, यह पहले ही दिखलाया है। अन्धेरेमें यदि अग्निको जलाया जाए तो वह उस स्थानका उत्तम ज्ञान करा देता है। कौनसा मार्ग है, और वह मार्ग कहीं कांटों और पत्थरोंसे भरा हुआ तो नहीं है, कहीं मार्गमें गड्ढे तो नहीं हैं, इन सबका ज्ञान अग्नि करा देता है। मनुष्योंको इसका अनुभव कदम कदम पर मिलता है। इसीलिए इसे '**विश्ववेदाः**' ( ३ ) सबको जाननेवाला कहा गया है।

**वाजपतिः कविः हव्यानि परि अक्रमीत् ( ३० )**

यह अन्न या बलका स्वामी और दूरदर्शी है, और वह यज्ञमें डाले गए पदार्थोंको चारों दिशाओंमें फैलाता है। अग्निमें मिर्च डालनेपर आसपास बैठे हुए मनुष्योंको छींकें आने लगती हैं, उसी प्रकार सुगंधित पदार्थोंका हवन करनेपर पासमें बैठे हुए मनुष्योंको सुगंध आने लगती है। इस प्रकार यह अग्नि हवनमें डाले गए पदार्थोंको वह (**पर्यक्रमीत्**) चारों दिशाओंमें फैलाता है। इसलिए इसे—

**यज्ञस्य सुक्रतुः** ( ३ )- यज्ञको उत्तम रीतिसे सम्पन्न करनेवाला बताया गया है। जिन यज्ञीय पदार्थोंकी हवनमें आहुति दी जाती है, उन पदार्थोंको यह अग्नि चारों दिशाओंमें फैलाकर उसके उत्तम परिणामको सब हवन कर्त्ताओंको प्राप्त कराता है। यह उत्तम परिणाम मनुष्योंके अनुभवमें आता है। इसलिए इन पदार्थोंका हवन इस ऋतुमें करना चाहिये और इस ऋतुमें नहीं, इसका विचार पूर्वक संशोधन करना चाहिए। क्योंकि—

**अयं अग्निः सुवीर्यस्य ईशे ( ६० )**

यह अग्नि उत्तम बलका स्वामी है । इसलिए इसमें जिन पदार्थोंका हवन किया जाए उन पर पहले विचार कर लेना चाहिए ।

**एते भूर्णयः आंगिरसः द्यां उत्प्रययुः, इव उद्हरन्, दिवः पृष्ठानि आरुहन् ( ९२ )**

ये उत्तम यज्ञ करनेवाले आंगिरस ऋषि द्युलोकपर चढे, वहांसे और उच्च स्थानपर पहुंचे, फिर द्युलोककी पीठपर जाकर वहां वे विराजमान हुए ' ।

यह यज्ञकी शक्ति है । इसलिए यज्ञ सदा साङ्गोपाङ्ग होना चाहिए । ' अंग-रस ' अंगोंमें जो जीवन रस रहता है, उसे अंगरस कहते हैं, यह रस सब अंगोंमें रहता है । वह रस कैसे तैयार होता है, कैसे बढता है, और कैसे निर्दोष बनाया जा सकता है, इस विद्याको जो जानते हैं, वे ' आंगिरस ' होते हैं । अंगके जीवन रसकी विद्या जो ऋषि जानते हैं, वे आंगिरस ऋषि कहाते हैं । आंगिरसोंने इस विद्याका संशोधन करके उसे बढाया, और उससे होनेवाले परिणामोंको लोगोंके सामने सिद्ध करके दिखलाया, इस कारण ये आंगिरस ऋषि श्रेष्ठ बने ।

## देवत्व प्राप्त करना

सभी यज्ञोंका यदि कोई उद्देश्य है, तो केवल देवत्व प्राप्त कराना ही है । देवोंके जो गुण मंत्रोंमें बताये हैं, उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढाना यह साधन है, यह कर्तव्य कर्म है, यह मनुष्यों द्वारा करने योग्य है ।

**देवयुं जनं आ अयः ( २३ )**

देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छावाले और उसके साधनोंका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके पास अग्नि जाता है । इस ' आग्नेय काण्ड ' में अग्निके जो गुण बताये हैं, वे गुण अपने अन्दर बढानेका जो प्रयत्न करते हैं, और उनका वह अनुष्ठान जितना बढता है, उतना ही उनके अन्दर अग्नि बढती है और वे अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ।

**उषर्बुधः देवान् आ वह ( ४० )**— उषःकालमें जागनेवाले देवोंको इस यज्ञमें ले आ । ' उषः-बुध ' उषा कालमें उठना, सोते न रहना यह देवत्वका एक चिन्ह है । सबेरे साढे चार बजे उठना आसानीसे हो सकता है । शौच, मुंह धोना, स्नान, संध्या उपासना करके ७ बजे जो अपने काममें लग जाता है, उसको, प्रातःकाल उठनेसे कैसा उत्साह प्राप्त होता है, यह अनुभव होगा । और इसके विपरीत आठ नौ बजेतक बिस्तरमें पडा रहनेवाला कितना उत्साह हीन होता है, यह बात समझने योग्य है । ' उषः-बुधः ' उषा कालमें उठकर अपने कार्यमें लग जाना यह देवत्वका एक लक्षण है ।

**' देवेषु राजस्वि ( ४६ )**— वह देवोंमें तेजस्वी होता है । देवोंके गुण अपने अन्दर धारण करनेसे मनुष्य देवोंमें चमकने लगता है । देवोंमें केवल बसना ही नहीं अपितु देवोंके बीच तेजस्वी होना ही विशेष महत्वकी बात है । सभी देव तेजस्वी हैं, उनके बीचमें जो विशेष तेजस्वी होता है, वही देवोंमें चमकता है । विशेष तेजस्विता प्राप्त करना ही इसका तात्पर्य है ।

**सयावभिः देवैः वन्हिभिः प्रातर्यावभिः अध्वरे बर्हिषि आसीदतु ( ५० )**— ' साथ साथ चलनेवाले आगे ले जानेवाले तथा प्रातःकाल उठकर काममें लगनेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आसनपर बैठ ' । ( स-यावभिः ) समान रीतिसे प्रगति करनेवाले ( प्रातः यावभिः ) प्रातःकाल उठकर उन्नतिकारक कामोंमें लगनेवाले और ( वन्हिः ) आगे ले जानेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आसनपर बैठनेकी योग्यता प्राप्त हो, इसलिए इस प्रकारके गुण अपने अन्दर धारण करने चाहिए । मिल मिलाकर सामुदायिक प्रगति करना, प्रातःकाल उठकर काममें लगना, और उन्नतिशील मार्गसे जाना ये तीन गुण अग्निमें है । यज्ञकी अग्नि प्रातःकाल प्रज्वलित होती है, सब ऋत्विज मिलकर उसकी उपासना करते हैं, और सब उन्नतिके मार्गपर जाते हैं, अर्थात् निर्दोष यज्ञ करते हैं । इन गुणोंको अपनाकर ही मनुष्योंकी उन्नति हो सकती है । इस प्रकार यह अग्नि देव मार्गको दिखानेवाला है, इसलिए कहा है—

**नः इथे देवः असि ( १० )**

' हमको मार्ग-दिखानेवाला तू देव है ' । अग्नि देव इस प्रकार लोगोंको मार्ग दिखानेवाला है । अन्धकारमें अग्नि अपने प्रकाशसे लोगोंको मार्ग दिखाता है, यह सबके अनुभवमें आनेवाली बात है । **' अग्निः कस्मात्, अग्रणीः भवति '** ( निरुक्त ), इसे अग्नि इसीलिए कहते हैं, क्योंकि यह अग्रनी होता है, अर्थात् ( अग्र-नी ) आगेके भागमें रहनेवाला, आगे ले जानेवाला वह अग्नि देव है । वह सबको उन्नतिके मार्गसे ले जाता है, इसलिए उसका पूरा नाम **' अग्र-णी '** है, जिसका संक्षिप्त रूप **' अग्नि '** हो गया है ।

**अग्र-नीः**- अग्र-णी

**अग्-नीः**- अग्नि

यह यज्ञाग्नि भी उसी प्रकार अग्र-णी है, क्योंकि वह अपने उपासकोंको प्रगतिके मार्गसे आगे ले जाता है—

**प्रियं मित्रं इव ( ५ )**- प्रिय मित्रके समान सहारा देकर अपने भक्तोंको आगे ले जाता है—

**ते मनः परमात् सधस्थात् आयमत् ( ८ )**– जो तेरे मनको ऊंचे स्थानसे अपने पास बुला लेता है, तेरे मनको अपने अनुकूल बना लेता है, वह श्रेष्ठ बनता है। देवताके मनको अपने अनुकूल बनानेके लिए देवताके गुणोंको अपने अन्दर लानेकी आवश्यकता है। नहीं तो यदि अपना आचरण देवताके गुणके विरुद्ध होगा, तो निश्चयसे देवता हमपर क्रोधित होंगे। इसलिए देवताके कौन कौनसे गुण हैं, इनको जानकर उन्हें अपने अन्दर मनुष्य धारण करें, और देवताके मनको अपने अनुकूल बनावें।

## शत्रुनाशक अग्नि

अग्निके कुछ गुण पहले दिखाये। अब 'आग्नेय काण्ड' में अग्निकी युद्ध कुशलताका जो वर्णन है, उसपर विचार करते हैं–

**अग्निः वृत्राणि जंघनत् ( ४ )**– अग्नि वृत्रोंको मारता है। वृत्रका अर्थ है, चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। वृत्रका अर्थ है, मेघ, वृत्रका अर्थ है सब प्रकारके शत्रु। इन शत्रुओंको अग्नि नष्ट कर देता है।

**अयं अग्निः वृत्रहन्तमं ईडे ( ६० )**– यह अग्नि वृत्रको मारनेवाले शूरवीरोंमें प्रधान है।

**वृत्रहन्तमं ज्येष्ठं आनवं अग्निं अगन्म ( ८९ )**– घेरनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवालोंमें प्रमुख शूरवीरोंमें भी मुख्य उस अग्निको मैं प्राप्त होता हूं, उसकी मैं उपासना करता हूँ। उससे मैं मित्रता करता हूं, उसके पास जाकर मैं रहता हूँ, उसके आश्रयमें मैं रहता हूँ।

**विश्वस्य अरातेः महोभिः पाहि ( ६ )**– सभी शत्रुओंसे अपनी महती शक्ति द्वारा हमारा संरक्षण कर।

**मर्त्यस्य द्विषः पाहि ( ६ )**– द्वेष करनेवाले मनुष्यों और शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

**अग्नेः अमित्रं अर्दय ( ११ )**– अपनी शक्तिसे हमारे शत्रुओंको नष्ट कर दे।

**रुद्रः ( १५ )**– तू शत्रुओंको रुलानेवाला है।

**अग्निः तिग्मेन शोचिषा विश्वं अत्रिणं नियंसत् ( २१ )**– अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे सब अत्याधिक खानेवाले शत्रुओंको मारता है। 'अत्रिः'– अत्यधिक खानेवाला शत्रु ( अत्ति इति अत्रिः )।

**नः अंहसः रीषतः रक्ष ( २४ )**– हमारा पापी हिंसक शत्रुओंसे संरक्षण कर।

**अजरः तपिष्ठैः प्रतिदह ( २४ )**– बुढापेसे रहित सदा तरुण रहनेवाला तू अपने तेजसे शत्रुओंको जला दे।

**विश्पतिः रक्षसः तपानः ( ३९ )**– प्रजाओंका पालन करनेवाला अग्नि राक्षसोंको तपाकर नष्ट करता है।

**सनात् यातुधाना मृणसि ( ८० )**– हमेशा कष्ट पीडा देनेवाले शत्रुको तू नष्ट करता है।

**त्वा पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः ( ८० )**– तुझे युद्धमें राक्षस जीत नहीं सकते।

**सहमूरान् क्रव्यादा अनुदह ( ८० )**– मूर्खोंके साथ रहनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले जो शत्रु हैं, उन्हें जला दे।

**ते दैव्यायाः हेत्याः मा मुक्षत ( ८० )**– वे शत्रु [ तेरे ] दिव्य शस्त्रोंसे न छूटें।

**हरसा यातुधानस्य हरः बलं विश्वतः परि प्रतिमृणाहि ( ९५ )**– अपनी शक्तिसे दुष्टके सबके संहार करनेवाले बलको सब तरहसे नष्ट कर।

**रक्षसः बलं न्युब्ज ( ९५ )**– राक्षसोंका बल नष्ट कर।

**स्त्रिधः अपकरत् ( १०२ )**– शत्रुको दूर कर।

**तस्य मर्त्यः रिपुः मायया चन न ईशीत ( १०४ )**– उसको मारनेवाला शत्रु अपनी चतुरतासे फिर शक्तिशाली न बने।

**त्वं वृजिनं रिपुं दुराध्यं स्तेनं दविष्ठं अपास्य ( १०५ )**– उस पापी और कठिनतासे वशमें करने योग्य चोर शत्रुको दूर फेंक दे।

**मायिनः रक्षसः तपसा निर्दह ( १०६ )**– कपटी राक्षसोंको अपने तेजसे जला दे।

**सदने कंचित् अत्रिणं आ सासह्याम ( ११२ )**– अपने घरमें अथवा राष्ट्रमें कोई खाऊ शत्रु आ जाये तो उसे हम पराजित करें।

**विश्वा रक्षांसि प्रतिषेधति ( ११४ )**– सब राक्षसोंको वह मारता है।

इस प्रकार अपने सब शत्रुओंके वैयक्तिक और राष्ट्रीय शत्रुओंके नाश करनेका विचार इस आग्नेय काण्डमें किया गया है। सब समय और सब स्थानमें शत्रुओंके नाशके लिए इसी प्रकारकी इच्छा प्रकट की जाती है। मनुष्य इस प्रकार अपने शत्रुओंको दूर करनेका प्रयत्न करें। अपनी शक्ति बढावें, अपने संगठनका बल बढावें, अपने शस्त्रास्त्रोंकी और सेनाओंका बल बढावें और अपने बाहर और अन्दरके सभी शत्रुओंको दूर करें।

## घोडे

अग्नि अपने रथमें वेगसे दौडनेवाले घोडोंको जोतकर आता है। इस विषयमें कहा है—

**ये तव साधवः आशवः अश्वासः भरं वहन्ति युंक्ष्व हि ( २५ )**–

जो तेरे उत्तम प्रकारसे शिक्षित और वेगसे जानेवाले घोडे हैं, जो तुझे बहुत शीघ्र ढोकर ले जाते हैं, उन घोडोंको तू अपने रथमें जोडकर शीघ्र आ।

यह घोडोंका वर्णन आलंकारिक है, यहां घोडोंका तात्पर्य अग्निकी किरणोंसे है, क्योंकि यह अग्नि घोडोंवाले रथमें बैठकर कहीं जाता नहीं।

शरीर रूपी रथमें बैठकर आत्मा रूपी अग्नि इस पृथ्वी पर उतरती है, और इस रथमें सब देव अंश रूपसे आकर बैठते हैं। यह वर्णन बिल्कुल ठीक है। इसके सम्बन्धमें आगे विस्तारसे कहेंगे।

इस प्रकार अग्निके रथके घोडोंका वर्णन आलंकारिक है।

## संरक्षण

अग्नि अपने भक्तोंका संरक्षण करनेके लिए युद्ध करता है, यह स्पष्ट है। अपने भक्तोंके शत्रुओंको दूर करने और उनको सुरक्षित रखनेके अतिरिक्त उसका और कोई उद्देश्य नहीं है। भक्तगण इसको अपनी दृष्टिमें रखकर अपनी शक्ति बढावें और निर्भय होकर रहें।

**त्वं त्राता सप्रथाः** (४२)– हे अग्ने! तू हमारा संरक्षण करनेवाला प्रसिद्ध है।

**ऋचा वरेण्यं अवः यामि**– वेदमंत्रोंकी सहायतासे मैं उत्तम संरक्षण प्राप्त करता हूं। वेदमंत्रोंमें जैसे कहा है, उसके अनुसार सभी अपना बल स्वयं बढावें, सब अपना संरक्षण स्वयं करें। यही '**वरेण्यं अवः**' श्रेष्ठ संरक्षण है।

**वीर-शोचिषं अग्निं अवसे गाथाभिः ईळिष्व** (४९) विशेष तेजस्वी अग्निकी अपने संरक्षणके लिए वेदमंत्रोंसे स्तुति करो। इन वेदमंत्रोंकी स्तुति करते हुए अग्निके गुण कौनसे हैं, यह देखे, उन्हें अपने अन्दर धारण करे, इस प्रकारकी उत्तम बुद्धि उपासक की हो, वह अपने संरक्षणके लिए प्रयत्न करे और श्रेष्ठ बने।

**अग्ने! नः ऊतये ऊर्ध्वः सुतिष्ठ** (५७)–हे अग्ने! हमारे संरक्षणके लिए खडा रह। ( **अग्नेः ऊर्ध्व-ज्वलनं** ) अग्निकी ज्वालायें हमेशा ऊपर ही जाती हैं पानी हमेशा नीचेकी ओर बहता है, पर अग्नि कभी भी नीचेकी ओर नहीं जलती, उसकी ज्वालायें सर्वदा खडी रहती हैं। हमेशा स्थिर और खडा रहना वीरताका लक्षण है। '**समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरः**' ( गीता ) अपने शरीर, गर्दन और सिरको सीधा रखकर खडे रहें, बैठें और चलें, यह वीरताका द्योतक है, और यह दीर्घायुका कारण होता है।

**त्वं यस्य सख्यं आविथ, सः तव सुवीराभिः वाज कर्मभिः ऊतिभिः प्रतरति**– जो तुझसे मित्रता करता है, वह तेरे उत्तम, वीरतायुक्त, बलसे युक्त संरक्षणोंके कारण दुःखोंसे पार हो जाता है।

**वयं तव सख्ये मा रिषाम** (६६)– हम तेरी मित्रतामें नष्ट न हों।

**विश्वाः माया अवसि** ( ५५ )– शत्रुओंके सब कपट जालोंको दूर करता हुआ तू हमारा संरक्षण करता है।

**मतिः अदितिः ऊत्या दिवा नः आ गमत्, सा शंतातिः मयः करत्** ( मं. १०२ )– दीनतासे रहित होकर, मनन शक्ति और संरक्षण शक्तिके साथ दिन आज हमारे पास आया है, उसने हमारे लिए सुख और शान्तिका निर्माण किया है।

यह संरक्षणकी शक्ति है। '**अ-दिति**' का अर्थ है '**अ-दीनता**' अपनी बुद्धि कभी भी हीनताकी भावनासे युक्त नहीं करनी चाहिए। अपनेमें कभी हीनताकी भावना ( Inferiority Complex ) नहीं आने देनी चाहिए। उस दीनतासे रहित होकर मनुष्य सर्वदा उत्साहसे युक्त रहे। संरक्षण शक्ति दीनताके साथ कभी रही नहीं सकती। अदीनता और संरक्षण शक्तिकी जोडी रहती है। वह दीनता रहित संरक्षणका सामर्थ्य हमें आज प्राप्त हुआ है। दिनमें हम उद्योग धन्धोंमें संलग्न रहते हैं, उस समय उत्साहयुक्त संरक्षण शक्ति हमारे पास जागृत रहती है, इस प्रकारकी उत्साहयुक्त संरक्षणकी शक्ति हमारा संरक्षण करती है। '**मतिः-अदितिः-ऊतिः**' बुद्धि, अदीनता और संरक्षण शक्ति ये तीनों ही मनुष्यकी उन्नति करनेवाले होते हैं।

## धनकी प्राप्ति

मनुष्योंको धनकी आवश्यकता रहती है। प्रत्येक कार्यमें धनकी जरूरत होती है। अग्नि इस धनको देनेवाला है। इस लिए उसे '**द्रविण-स्युः**' (४)– कहा है। इससे उपासक धन मांगते हैं।

**अस्मभ्यं महे ऊतये विवस्वत् आ भर** ( १० )– हमारे महान् संरक्षणके लिए हमें भरपूर धन दे।

**नः रयिं वंसते** ( २२ )– वह अग्नि हमें धन देता है।

**दाशुषे रत्नानि दधत्** ( ३० )– वह दानशील मनुष्यको रत्न देता है।

**उषसः विवस्वत् चित्रं राधः दाशुषे आ वह** (४० )– उषः कालमें तेजस्वी और अद्भुत धन दाताको दे।

**वसो ! त्वं चित्रः । ऊत्या राधांसि नः चोद** ( ४१ )- हे सबको बसानेवाले ! तू विलक्षण सामर्थ्यवाला है। हमारे संरक्षणके साथ अनेक प्रकारके धनोंको हमारे पास भेज।

**त्वं अस्य रायः रथीः असि** ( ४१ )- तू इस धनका रथी है, इस धनका लानेवाला है।

**हे पावक ! नः शंस्यं वयोवृधं रयिं रास्व** ( ४२ )- हे पवित्रता करनेवाले अग्नि देव ! हमें प्रशंसनीय, आयु बढानेवाला अथवा यशको बढानेवाला धन दे।

**सुनीती पुरुस्पृहं सुयशस्तरं नः राय** ( ४३ )- उत्तम मार्गसे, उत्तम प्रशंसनीय तथा यशको बढानेवाला धन हमें दो।

**विश्वा वसु दीयते** ( ४४ )- वह सब तरहके धन देता है।

**श्रुतं अग्निं नरः सुदीतये छर्दिः** ( ४९ )- इस सुप्रसिद्ध अग्निसे लोग प्रकाश युक्त घर मांगते है।

**यः मर्तः राये निनीषति** ( ५८ )- जो मनुष्य धनके लिए तेरी उपासना करते हैं।

**अयं अग्निः सौभगस्य राय ईशे** ( ६० )- यह अग्नि उत्तम ऐश्वर्य और धनका स्वामी है।

**स्वपत्यस्य गोमतः ईशे** ( ६१ )- उत्तम सन्तान और गौवोंका स्वामी है।

**वार्यं यंसि यासि च** ( ६१ )- स्वीकार करने योग्य धन देते हो और स्वयं भी प्राप्त करते हो।

**ते भद्रा रातिः इह अस्तु** ( ७५ )- तेरे कल्याण करनेवाले धन हमें यहां मिलें।

**विधद्धे ते वयांसि वसूनि यन्ता तनूपा भवतु** ( ७७ )- तू अपने उपासकको अन्न और धन देनेवाला और उसके शरीरका अच्छी प्रकार संरक्षण करनेवाला हो।

**ओजिष्ठं द्युम्नं असमृष्टं आभर** ( ८१ )- बल बढानेवाले तेजस्वी धन हमें भरपूर दे।

**बृहद्वच त्वत् महिषी रयिः त्वद् वाजा उदीरते** ( ८५ )- बहुत सारा धन हमें दे। तुझसे बहुत सारा धन और अन्न हमें मिले।

**त्वा महे राये समिधीमहि** ( ९३ )- अधिक धन प्राप्त करनेके लिए हम तेरी स्तुति करते हैं।

**अस्मे महि श्रवः देहि** ( ९९ )- हमें बहुतसा यशस्वी धन दे।

**भद्रा रातिः** ( १११ )- तेरे धन कल्याण करनेवाले हैं।

**तत् द्युम्नं आभर** ( ११३ )— उस तेजस्वी धनको हमें दे।

**अयं ध्रुवः रयीणां आचिकेतत्** ( १०१ )- यह अचल अग्नि धनोंको जानता है, धन कैसे प्राप्त होता है, यह जानता है

धनके लिए मनुष्य अग्निकी उपासना करते हैं, क्योंकि धन प्राप्तिके उत्तम मार्गको वह जानता है।

## वडवाग्नि

वडवाग्निका वर्णन जो इस आग्नेय काण्डमें है, वह इस प्रकार है।

**समुद्रवाससं अग्निं याहुवे** ( १८ )- समुद्रके अन्दर निवास करनेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ। समुद्रमें वडवाग्नि रहती है।

## सूर्य और अग्नि

सूर्य द्युलोकमें रहता है। उसका आग्नेय रूप है, उसका वर्णन सामवेदके इस अग्नि काण्डमें इस प्रकार है—

**परो दिवि यत् दृश्यते, आदित् प्रत्नस्य रेतसः वासरं ज्योतिः पश्यन्ति** ( २० )- द्युलोकमें जो चमक है, वह प्राचीन वीर्यका तेज प्रकाशित होता है, उसे मनुष्य देखते हैं। सूर्यके उदय होनेपर जो सूर्यका तेज चमकता है, वह महान् तेज है, उसीको सब मनुष्य आकाशमें देखते हैं।

**विश्वाय सूर्यं दृशे केतवः जातवेदसं देवं उद्वहन्ति** ( ३१ )- सभीको सूर्यका दर्शन हो, इसलिए प्रकाशके किरणें ज्ञानी देवको-सूर्य रूपी अग्निको-आकाशमें धारण करती हैं।

यह आकाशमें दीखनेवाला सूर्य अग्निका ही रूप है।

## अग्निमन्थन

यज्ञमें जिस अग्निका प्रयोग होता है, वह दो अरणियोंके मंथनसे उत्पन्न होती है। और उसीका प्रयोग किया जाता है। नीचेकी और ऊपरकी इस प्रकार दो अरणियां होती हैं। उन दोनोंको मथ करके यह अग्नि उत्पन्न की जाती है, और उसका यज्ञ कुण्डमें स्थापन किया जाता है, फिर उसमें हवनके योग्य पदार्थकी आहुतियां दी जाती हैं। इस क्रियाका वर्णन इस आग्नेय काण्डमें इस प्रकार है।

**अथर्वा त्वां विश्वस्य वाघतः मूर्ध्नः पुष्करात् निर मन्थत** ( ९ )— अथर्वाने तुझ अग्निको स्तुति करनेवाले

सब ऋत्विजोंके समूहमें शिरस्थानीय पुष्करसे मथ करके उत्पन्न किया है। इस पुष्करका अर्थ नीचेकी अरणी है। मथनेसे वहां अग्नि उत्पन्न होती है। अथर्वा यज्ञका 'ब्रह्मा' होता है, उसके निरीक्षणमें अग्नि मन्थन होता था।

**पुष्कर—** कमल, तलवारकी धार, वाण, हवा, अन्तरिक्ष, पानी, युद्ध, हाथीकी सूंडके आगेका हिस्सा, तालाब, सांप, सूर्य और मेघ।

**वाघतः—** यज्ञ कर्त्ता गण, स्तुति करनेवाले।

**अग्निं देवा जनयन्त ( ६७ )—** अग्निको देवोंने पैदा किया।

**दिवः मूर्धानं पृथिव्याः अरतिं वैश्वानरं ऋत आजातं अग्निं ( ६७ )—** द्युलोकके ऊंचे स्थान और पृथ्वीके नीचे स्थान, इस प्रकार इन दोनों अरणियोंसे यज्ञमें वैश्वानर अग्नि उत्पन्न हुई है।

**नरः दीधितिभिः अरण्योः हस्तच्युतं प्रशस्तं दूरे दृशं गृहपतिं अथर्व्युं अग्निं जनयन्त ( ७२ )—** यज्ञ करनेवाले ऋत्विज अरणियोंको मथकर प्रशंसाके योग्य, दूरसे दीखनेवाले, गृहस्वामी रूप, निरन्तर प्रगति करनेवाले, ज्वालाओंसे तेजस्वी दीखनेवाले अग्निको उत्पन्न करते हैं।

हाथोंसे अरणियोंको मथकर अग्निको ऋत्विज लोग यज्ञके लिए उत्पन्न करते हैं।

**जातवेदा अग्निः अरण्योः निहितः दिवे दिवे ईड्यः ( ७९ )—** जातवेदा अग्नि अरणियोंसे उत्पन्न होनेके बाद उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करते हैं, और प्रतिदिन उसमें हवन किया जाता है।

**अग्निः जनानां समिधा अबोधि ( ७३ )—** अग्नि ऋत्विजोंकी समिधासे प्रज्वलित किया जाता है।

**अयं अग्निः दिवः ककुत्, पृथिव्या मूर्धा पतिः अपां रेतांसि जिन्वति ( २७ )—** यह अग्नि द्युलोकके उच्च भागपर तथा पृथ्वी पर जगत्के उच्च स्थानपर रहनेवाला सभीका पालन करनेवाला है, और यह कर्मोंके बलको प्राप्त करता है।

इस प्रकार नीचे और ऊपरकी अरणियां मथकर अग्नि उत्पन्न की जाती है। जिसको यह पहले मालूम होगा, कि यज्ञमें अरणियोंसे अग्नि कैसे उत्पन्न की जाती है, उसकी समझमें यह सब आ जाएगा।

अब यहां अरणिके विषयमें जिससे कुछ ज्ञान हो इसलिए संक्षेपसे उसपर विचार करते हैं।

अग्नि उत्पन्न करनेवाली दो अरणियां होती हैं, एक नीचे होती है और दूसरी ऊपर होती है। दोनोंको घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होती है।

'पृथिवी' यह नीचेकी अरणि है, और 'द्युलोक' यह ऊपरकी अरणी है इन दोनों अरणियोंके मथनेसे सूर्य रूपी अग्निकी उत्पत्ति होती है। इन दोनों ही अरणियोंमें गति है।

जब बादल आपसमें टकराते हैं, तब उनसे बिजली रूपी अग्नि पैदा होती है, जिसे हम अपनी भाषामें बिजलीका चमकना कहते हैं।

स्त्री और पुरुष ये दो अरणियां हैं। स्त्री नीचेकी और पुरुष ऊपरकी अरणी है। इन दोनोंके सम्बन्धसे अग्नि रूपी पुत्र उत्पन्न होता है।

विद्या अधरारणी है और आचार्य उत्तरारणी है, इनके मन्थनसे 'ज्ञानी तरुण' उत्पन्न होता है। जो ज्ञानाग्निसे प्रकाशित होता है।

इस प्रकार यह अग्नि उत्पन्न होती है। ये सभी वन्दनाके योग्य हैं। इनको सब लोग नमस्कार करते हैं। यज्ञाग्नि सबका प्रतीक है। इस यज्ञाग्निके लिए सब नमन करते हैं, इस विषयमें नीचेके मंत्र भाग देखने योग्य हैं।

## अग्निको नमस्कार

**दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमो भरन्त एमसि ( १४ )—** प्रति दिन और रात्री बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं।

**अध्वराणां सम्राजं अग्निं नमोभिः वन्दध्यै ( १७ )-** यज्ञके सम्राट् अग्निकी हम नमस्कारों अथवा अन्नकी आहुतियोंसे वन्दना करते हैं। **नमः-** अन्न, नमन,

**यं कृष्टयः नमस्यन्ति ( ५४ )—** जिस अग्निको मनुष्य नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार अग्निको नमन किया जाता है और उसमें अन्नकी आहुति दी जाती है।

## प्रकाशयुक्त ज्वालायें

अग्नि प्रकाशसे युक्त ज्वालाओंवाला होता है। यज्ञकर्ता इस अग्निको प्रज्वलित करते हैं।

**कण्वे दीदेथ ( ५४ )—** कण्वके आश्रममें यह अग्नि प्रकाशित अथवा प्रज्वलित होता है।

**शश्वते जनाय ज्योतिः ( ५४ ) —** लोगोंमें यह निरन्तर रहनेवाली ज्योति प्रकाशित होती है।

**ऋतः जातः उक्षितः ( ५४ )—** यज्ञके लिए प्रथम अग्नि उत्पन्न की जाती है, फिर बादमें वह प्रकाशित होती है।

**मनुः त्वा दधे ( ५४ )—** मननशील मनुष्य तुझे हमेशा धारण करते हैं।

अग्निके प्रज्वलित होने पर उसे स्थान देकर उसका सत्कार किया जाता है, क्योंकि वह अतिथि होता है। और अतिथिका सत्कार होना ही चाहिए।

## अतिथिका आसन

**अध्वरे बर्हिः** ( २८ )— यज्ञमें आसन फैलाया हुआ है।

**बर्हिः आसदं इयेथ** ( २३ )— आसनपर बैठनेके लिए आ।

यज्ञमें अग्निके समान सब देवोंके लिए इसी प्रकार आसन फैलाकर रख दिए जाते हैं, और देव गण आकर उनपर बैठते हैं।

## वीर पुत्र

**यदि वीरः स्यात् मर्त्यः अग्निं इन्धीत** ( ८२ )— यदि वीर अर्थात् पुत्र होता है, तो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करके उसमें हवन करते हैं।

## अग्निकी स्तुति

अरणियोंसे अग्नि उत्पन्न होती है। उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करके उसमें समिधायें डालकर प्रदीप्त करते हैं और ऋत्विग्गण उसकी स्तुति करते हैं। इस स्तुतिको 'विपन्या' कहते हैं। इस स्तुतिके विषयमें अग्नि काण्डमें इस प्रकार लिखा है—

**प्रेष्ठं अतिथिं स्तुषे** ( ५ )— मैं इस अग्निकी स्तुति करता हूँ।

**इतरा गिरः सु प्रवाणि** ( ७ )— मैं अधिक स्तुति करता हूँ।

**त्वां गिरा कामये** ( ८ )— अपनी वाणीसे तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।

**यजिष्ठं गिरा ऋञ्जसे** ( १२ )— तू पूज्य अग्निकी अपनी वाणीसे स्तुति करता है।

**विशे विशे यज्ञियाय रुद्राय दृशीकं स्तोम** ( १५ ) प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए पूजनीय तथा शत्रुओंको रुलानेवाले अग्निकी स्तुतिके ये सुन्दर स्तोत्र हैं।

**कविं सत्यधर्माणं अमीवचातनं देवं उपस्तुहि** ( ३२ )— ज्ञानी, सत्यके पालन करनेवाले, और रोगको दूर करनेवाले अग्नि देवकी स्तुति कर।

**वयं जातवेदसं अमृतं, प्रियं मित्रं न, प्रशंसिषम्** ( ३५ )— हम ज्ञानी, अमर अग्निकी, प्रिय मित्रके समान, स्तुति करते हैं।

**एना नमसा, ऊर्जोनपातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतं अग्निं आहुवे** ( ४५ )— नम्रतासे बलको क्षीण न करनेवाले, प्रिय और ज्ञानको देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम यज्ञ करनेवाले, विश्वके दूत अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ।

**यं अग्ये इन्धते, देवयतीनां पुरूणां विशां यह्वं सूक्तेभिः वचोभिः वृणीमहे** ( ५९ )- जिसे दूसरे ऋत्विज प्रज्वलित करते हैं, उस सब देवत्वको प्राप्त करनेवाले प्रजाओंके प्रिय अग्निकी हम सूक्तोंसे और भाषणोंसे स्तुति करते हैं।

**अर्हते जातवेदसे इमं स्तोमं, रथं इव, मनीषया सं महेम** ( ६६ ) पूज्य अग्निके लिए ये स्तोत्र, रथके समान, अपनी बुद्धिसे भक्ति पूर्वक कहते हैं।

**सुष्टुतयः गिरः त्वा वाजयन्ति** ( ६८ )— उत्तम स्तुतिके वचनोंसे तेरा वर्णन करते हैं।

**प्रशस्तं सम्राजं प्रस्तौतु** ( ७८ )— प्रशंसित सम्राट् अग्निकी स्तुति करो।

**पुरुप्रियः विशः अतिथिः अग्निः प्रातः स्तवेत** ( ८५ )— सबोंके प्रिय, और प्रजाओंके लिए अतिथिके समान पूज्य, अग्निकी प्रातःकाल स्तुति करनी चाहिए।

**वः दुर्यं शूषस्य मन्मभिः वचः स्तुषे** ( ८७ )— अपने घरमें रहनेवाले अग्निकी उत्तम सुखकारक स्तोत्रोंसे और भाषणोंसे मैं स्तुति करता हूं।

**विपां ज्योतींषि बिभ्रते वेधसे अग्नये बृहत् पूर्व्यं वचः प्र भरत** ( ९८ )— ज्ञानियोंकी ज्योतिको धारण करनेवाले तथा यज्ञ करनेवाले अग्निके लिए, महान् और अद्भुत स्तोत्र कहो।

**प्रतीव्यं ईडिष्व** ( १०३ )— शत्रुका प्रतीकार करनेवाले अग्निकी स्तुति कर।

**मंहिष्ठाय क्रतावने बृहते शुक्रशोचिषे अग्नये प्रगायत** ( १०७ )— महान्, यज्ञ करनेवाले, बड़े, शुद्ध प्रकाशवाले, अग्निके लिए स्तोत्रोंका गान कर।

**यजिष्ठं देवत्रा देवं अमर्त्यं होतारं यज्ञस्य सुक्रतुं त्वा वपृमहे** ( ११२ )— यज्ञ करनेवाले, देवोंमें रहनेवाले, अमर होता, यज्ञके कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाले तुझ अग्नि देवकी मैं स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार अग्निकी स्तुतिका वर्णन करनेवाले मंत्र इस अग्नि काण्डमें हैं। व्यक्ति रूपमें और सामूहिक रूपमें इस प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है।

## अग्नि दूत

इसमें जिसका भी हवन किया जाता है, उसे ठीक स्थानपर पहुंचानेका काम अग्नि करता है, इस प्रकार यह अग्नि उत्तम दूत है—

**दूतं अग्निं वृणीमहे** ( ३ )— इस दूतका कार्य करनेवाले अग्निको हम स्वीकार करते हैं।

**विश्ववेदसं अमर्त्यं दूतं** ( १२ )— यह अग्नि सबको जाननेवाला और अमर दूत है।

इसमें जो कुछ भी डाला जाता है, उसे यह जहां पहुंचाना होता है, पहुंचा देता है। इस कारण अग्निमें किया हुआ हवन अनेक प्रकारसे उपयोगी होता है। व्यक्ति और समाज दोनोंका लाभ इस प्रकार हो सकता है। यज्ञसे यही लाभ होता है।

### यज्ञ

यज्ञाग्निमें अनेक पदार्थोंके हवन किए जाते हैं, यह सभीको मालूम है। ऋतुओंके संधि कालमे रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंके नाशके लिए यज्ञ किया जाता है। ऐसा गोपथ ब्राह्मणमें कहा है। आरोग्य बढानेके लिए यज्ञ किए जाते हैं। इस यज्ञके विषयमें इस काण्डमें इस प्रकार कहा है—

**१ अध्वराणां न-स्रा ( २१ )**- अहिंसापूर्ण कर्म करनेवाला। न-स्रा-न गिरानेवाला, उन्नत करनेवाला, .. रहित कर्मोंको उन्नत करनेवाला।

**२ नः यज्ञं देवाः नर्यं पंक्तिराधसं वीरं अच्छ नयन्तु ( ५६ )**- हमारे यज्ञमें सब देव, मानवोंका हित करनेवाले, मनुष्योंका यश बढानेवाले वीर अग्निको यहां लावें।

**३ त्वं गृहपतिः, नः अध्वरे त्वं होता, पोता प्रचेताः ( ६१ )**- तू घरका स्वामी है, हमारे यज्ञमें तू देवोंको बुलाकर लानेवाला, पवित्रता करनेवाला और उत्तम प्रकारसे चेतना देनेवाला है।

**४ शिशोः तरुणस्य वक्षथः चित्रः यः धातवे मातरौ अपि न एति ( ६४ )**- इस तरुण अग्निरूप बालकका विचित्र जीवन क्रम है। यह अपने पोषणके लिए अपनी माता-अरणी-के पास जाता तक नहीं है।

**५ महि दूत्यं चरन् ववक्ष ( ६५ )**- उत्पन्न होनेके बाद ही महान् दूतके कामको करते हुए हवि देवोंको पहुंचाता है।

इस प्रकार यह यज्ञ करनेवाला है। इस अग्निमें हवन किया जाता है। उस विषयक मंत्र इस प्रकार हैं—

### हवन

यज्ञोंमें हवन मुख्य है। हवन करनेके पहले अग्निकी स्तुति की जाती है। इन स्तुति-मंत्रोंके प्रारम्भ होनेपर अग्नि प्रज्वलित की जाती है, फिर बादमें उसमें हवन किया जाता है। इसका वर्णन इस काण्डमें इस प्रकार है—

**१ वीतये हव्यदातये गृणानः आयाहि ( १ )**- हवि भक्षण तथा देवोंको हवि पहुंचानेके लिए तुझ अग्निकी स्तुति की जाती है, तू हमारे पास आ।

**२ विश्वेषां यज्ञानां होता ( २ )**- सब यज्ञोंमें तू होता बनता है।

**३ देवेभिः मानुषे जने हितः (२)**- देवोंद्वारा मनुष्योंमें यह अग्नि स्थापित की जाती है।

**४ समिद्धः शुक्रः आहुतः ( ४ )**- प्रज्वलित करके शुद्ध अग्निमें आहुति दी जाती है।

**५ हव्यवाहः ( १२ )**- हवि जहां पहुंचानी होती है वहां पहुंचाता है।

**६ मनसा अग्निं इन्धानो मर्त्यः धियं सचेत (१९)**- मन लगाकर अग्निको जलानेवाला मनुष्य अपनी श्रद्धा बढाता है।

**७ स्वाहुतः सूरयः ते प्रियासः सन्तु ( ३८ )**- उत्तम आहुति देनेवाले ज्ञानी तुझे प्रिय होते हैं।

**८ हे दीदिवः! त्वा समिधानं वेधसः विप्रासः अविवासन्ति ( ४२ )**- हे प्रकाशमान अग्ने! तुझे प्रदीप्त करके ज्ञानी विप्र तेरी सेवा करते हैं।

**९ भद्रः अध्वरः ( १११ )**- यज्ञ कल्याण करनेवाला है।

**१० मर्तासः त्वा समिन्धते ( ४६ )**- मनुष्य तुझे उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करते हैं।

**११ अग्ने! बृहतः रोचनात् अधि अया तन्वा वर्धस्व ( ५२ )**- हे अग्ने! द्युलोक पर इस तेजस्वी शरीरको बढा।

**१२ हे सुक्रतो! गिरा मम जाता पृण ( ५२ )**- हे उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने! अपनी वाणीसे मेरे पुत्र, पौत्रोंका पोषण कर।

**१३ पूर्णां आसिचं विवष्टु ( ५५ )**- पूर्ण भरे हुए स्रुवाके इस अर्पणको स्वीकार कर।

**१४ उत् सिञ्चध्वं, उप पृणध्वं, आदित् देवः वः ओहते ( ५५ )**- भर करके आहुति दो, फिर भरकर आहुति दो, इस प्रकार करनेसे अग्नि देव तुम्हें उन्नत करेंगे।

**१५ हविषा आ जुहोतन ( ६३ )**- हवि द्रव्योंका हवन करो।

**१६ इडः पदे पस्त्यानां रातहव्यं नमसा समर्पय ( ६३ )**- पृथ्वी पर यज्ञ स्थानमें यज्ञमें हवि देनेवालेको नमस्कार करो।

**१७ अमर्त्यं विश्वे मर्तासः हव्यं इन्धते ( ८५ )**- अमर अग्निमें सब यज्ञ करनेवाले मनुष्य हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं।

**१८ भानवे अग्ने बृहद्वयः ( ८८ )**- तेजस्वी अग्निमें बहुतसे अन्नोंका हवन किया जाता है।

**१९ हव्य-दातये अग्नये ददाश ( १०४ )**- हव्य पदार्थोंका जिसमें हवन किया जाता है, उस अग्निको अर्पण करो।

**२० स्वर्णरं तं गृणीष ( १०९ )**- स्वर्गको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी स्तुति कर।

**२१ देवत्रा हव्यं आ ऊहिषे ( १०९ )**– तू देवोंको हवि पहुंचाता है।

**२२ सु-होता स्व-ध्वरः पुरु प्रशस्तः वसुः ( ११० )**– जिसमें उत्तम हवन किया जाता है, जिसमें उत्तम यज्ञ होता है, ऐसा यह अग्नि बहुतोंसे- प्रशंसित और सबको बसानेवाला है।

**२३ आहुतः अग्निः नः, भद्रः ( १११ )** – जिसमें हवन होता है ऐसा वह अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है।

इन हवन मंत्रोंका उत्तम रीतिसे विचार हो गया, अर्थात् यज्ञ अथवा यज्ञाग्नि हमारा ( **भद्रः** ) कल्याण करनेवाली किस प्रकार है, यह समझमें आ गया होगा।

सर्व प्रथम अग्निको अरणियोंको घिसकर उत्पन्न किया जाता है, उसे कुण्डमें स्थापित कर उसमें समिधा तथा घीकी आहुति देकर उसे जलाया जाता है। अग्नि जल करके आसपासकी हवाको गर्म कर देती है। वह गरम हवा ऊपर चली जाती है, और वहां चारों ओरकी हवा आ जाती है। यह क्रिया अग्निके जलते रहने तक रहती है। यज्ञ जबतक चालू रहता है, तबतक पासकी हवा गरम होकर ऊपर जाती है, और दूसरी हवा उसका स्थान ले लेती है। हवा शुद्ध होनेका यह एक लाभ यज्ञसे होता है।

पहले हर घरमें हवन होता था। समझो, यदि एक घंटा भर भी घरकी अग्नि जलती रही, तो घरकी हवाके ऊपर जाने और बाहरकी हवाके अन्दर आनेसे घरकी हवा शुद्ध हो जाती थी। प्रत्येक घरमें अग्नि जलानेसे प्रत्येक घरकी यह हवा-पलटनेकी कि । समझमें आ जाएगी।

पहले हर चौराहे अथवा शहरके मध्यमें बडी बडी यज्ञशालायें होती थीं। उनमें बडे बडे यज्ञ होते थे। उससे वहांकी बुरी हवाके ऊपर जाने तथा बाहरकी शुद्ध हवाके वहां आनेकी क्रिया चलती रहती थी। इस प्रकार यज्ञाग्निके रहनेसे वायु-परिवर्तन होता था, और वह लाभदायक था।

यज्ञमें केवल अग्नि ही नहीं जलायी जाती, अपितु उसमें गायका घी आहुतिके रूपमें डाला जाता है। यह गायका घी अग्निमें जलता है और उसकी सुगंध हवामें फैलती है, और उससे हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं। गायके घीमें हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेका उत्तम गुण है। यज्ञाग्नि इस प्रकार वायुको रोगाणुओंसे रहित करने वाला है।

इसके अलावा यज्ञमें ऋतुओंके अनुसार हवनीय द्रव्य भी डाले जाते हैं। जिस ऋतुमें हवाके बदलनेसे जिन रोगोंका होना सम्भव है, उन रोगोंको नष्ट करनेवाली वनस्पतियोंके अथवा उन वनस्पतियोंके काढेसे तैय्यार किए गए गायके घीका हवन किया जाता है और इस प्रकार यज्ञाग्नि रोग दूर करनेवाली और आरोग्य बढानेवाली है।

**ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते।**
**ऋतु संधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥** गोपथ ब्राह्मण।

ऋतुओंके संधिकालमें रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंको नष्ट करनेके लिए यज्ञ किये जाते हैं' यह गोपथ ब्राह्मणका यह कथन इस प्रसंगमें देखने योग्य है। इस प्रकार यज्ञ शास्त्रीय दृष्टिसे बहुत महत्वका है। यह व्यक्ति और समाजका आरोग्य बढानेवाला है।

ऊपर यज्ञ-विषयक और हवन-विषयक मंत्रोंमें 'यह अग्नि हमारा सबसे उत्तम कल्याण करनेवाला है' यह जो वर्णन है, यह केवल स्तुतिकी दृष्टिसे ही नहीं बल्कि शास्त्रीय दृष्टिसे भी सत्य है। यह बात पाठकोंको ध्यानमें रखनी चाहिए।

इस दृष्टिसे कौनसे रोगमें कौनसी वनस्पतियोंका हवन लाभदायक होगा, इसकी शास्त्रीय दृष्टिसे खोज करके तथा अनुभव करके निश्चित करना चाहिए। अतः वैद्यों और संशोधकोंको चाहिए कि वे इस दिशामें खोज करें।

इसके अलावा यज्ञ करनेवाले यजमानोंकी, ऋत्विजोंकी जो शुभेच्छा और सद्भावना इसके पीछे है, तथा मंत्रोच्चारणसे जो पवित्रता मिलती है, वह अत्यधिक होती है। उसको किसी भी मापसे मापा नहीं जा सकता।

इस प्रकार यज्ञ और उसके अन्दर हवन करना कल्याणकारी हैं। इसलिए यज्ञ कर सकनेवाले लोगोंको इस तरफ ध्यान देना चाहिए।

## उपमा

**१ मित्रं इव प्रियं ( ५ )**– प्रिय मित्रके समान ( अतिथि अग्निकी स्तुति कर। ) ( मं. ३५ )

**२ रथं न वेद्यं ( ५ )**— जैसे धन देनेवाले रथकी स्तुति की जाती है ( उसी प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है )।

**३ वारवन्तं अश्वं न ( १७ )**— उत्तम अयाल ( गर्दनके बाल ) से युक्त घोडेके समान ( जो ज्वालाओंसे युक्त है उस अग्निको मैं नमस्कार करता हूँ ) यहां घोडेके अयाल और अग्निकी ज्वालाओंकी समानता देखने योग्य है।

**४ मधोः प्रथमानि पात्रा न ( ४४ )**— जैसे मधु ( सोमरस ) के सबसे प्रथम दिए जानेवाले पात्र होते हैं ( उसी प्रकार अग्निकी सबसे पहले स्तुति की जाती है )।

**५ सविता देवः न ( ५७ )**— सूर्यके समान ( ऊंचे स्थान पर रहकर अन्नका दान करनेवाला यह अग्नि है )

**६ रथं इव ( ६६ )**– रथके समान ( बुद्धिपूर्वक स्तोत्र कर )

**७ पर्वतस्य पृष्ठात् अपः न ( ६८ )**– जिस प्रकार

पर्वतसे जल बहते हैं, ( उसी प्रकार अग्निके लिए स्तोत्र कहे जाते हैं )

८ अश्वा आजिं न जिग्युः ( ६८ )– जिस प्रकार घोडे जीतते हैं ( उसी प्रकार तेरी स्तुति तेरा वर्णन करके यशस्वी होती है )

९ धेनुं इव ( ७३ )– गायके समान ( अग्नि सबेरे प्रज्वलित होती है )

१० यह्वा इव प्र वयां उज्जिहानाः ( ७३ )— बडा वृक्ष जैसे अपनी शाखाओंको फैलाता है, ( उस प्रकार अग्नि अपनी ज्वालाओंको फैलाता है )।

११ द्यौः इव असि ( ७५ )– द्युलोकके समान ( अग्नि प्रकाशित होता है )

१२ गर्भिणीभिः सु-भृतः गर्भ इव ( ७९ )– गर्भिणी स्त्रियां जिस प्रकार गर्भ धारण करती हैं ( उस प्रकार दो अरणियोंके बीचमें अग्नि रहती है ) ।

१३ सूरः न ( ८३ )– सूर्यके समान ( अपने तेजसे अग्नि प्रकाशित होता है )

१४ मित्रः न ( ८४ )— सूर्यके समान ( अग्नि यशको प्राप्त करता है )

१५ मित्रं न ( ९९ )– मित्रके समान ( अग्निको आगे स्थापित करते हैं )

१६ नेमिः चक्रं न ( ९४ )– जैसे ( रथकी ) नाभि चक्रको धारण करती है, उसी प्रकार ( सब स्तोत्र अग्निके आश्रयसे रहते हैं )

१७ महस्य तोदस्य शरण इव ( ९७ )– बडे धनवानके सेवकके समान ( मैं अग्निका सेवक हूँ )

ये उपमायें आग्नेय-काण्डमें आई हैं । इनमें ' न ' यह शब्द उपमार्थक है, और ' इव ' ( समान ) के समान उसका अर्थ होता है ।

## आग्नेय काण्डके सुभाषित

१ समिद्धः शुक्रः वृत्राणि जंघनत् ( ४ )– प्रज्वलित हुआ अग्नि वृत्रोंको मारता है। वृत्र– दोष, रोगोंको पैदा करनेवाले कीटाणु ।

२ हे अग्ने विश्वस्य अरातेः, उत द्विषः मर्त्यस्य महोभिः नः पाहि ( ६ )– हे अग्ने ! सब शत्रुओं और द्वेष करनेवाले मनुष्योंसे अपने महान् सामर्थ्यसे हमारा संरक्षण कर।

३ अथर्वा त्वां निरमन्थत ( ९ )– अथर्वाने तुझे मथ करके उत्पन्न किया ।

४ अस्मभ्यं महे ऊतये विवस्वत् आ भर ( १० )– हमारे उत्तम संरक्षणके लिए निवास करने योग्य घर दे ।

✿

५ नः दृशे देवः असि ( १० )– तू हमें मार्ग दिखानेवाला देव है ।

६ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ते ओजसे नमः कृण्वन्ति ( ११ )– मनुष्य तेरे बलके लिए तुझे नमस्कार करते हैं ।

७ अस्मै अमित्रं अर्दयः ( ११ )– इसके लिए तू शत्रुका नाश कर ।

८ विश्ववेदसं अमर्त्यं दूतं गिरा ऋञ्जसे ( १२ )– सर्वज्ञ अथवा सब धनोंके स्वामी, अमर दूत अग्निको अपने अनुकूल बनाता हूं ।

९ दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमः भरन्तः वयं त्वा एमसि ( १४ )– प्रति रात्री और प्रतिदिन बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं ।

१० जरा-बोध ! विशे विशे यज्ञियाय रुद्राय दृशीकं स्तोमं, तत् विविड्ढि ( १५ )– हे स्तुतसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! प्रत्येक प्रजाजनके हितके लिए पूज्य और शत्रुको रुलानेवाले अग्निके लिए ये स्तोत्र पढे जाते हैं, उन्हें तू जान ।

११ अग्निः तिग्मेन तेजसा विश्वं अत्रिणं नि यंसत् ( २२ )– अग्नि अपने तीक्ष्ण तेजसे सब खाऊ शत्रुओंको नष्ट करता है । अत्रि– खाऊ, रोगोत्पादक कीटाणु ।

१२ नः रयिं वंसते ( २२ )– अग्नि हमें धन देता है ।

१३ हे अग्ने ! मृड ( २३ )– हे अग्ने ! हमें सुखी कर ।

१४ महान् असि ( २३ )– तू महान् है ।

१५ देवयुं जनं आ अयः ( २३ )– ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास उसकी सहायताके लिए जा ।

१६ अग्ने ! नः अंहसः रीषतः रक्ष ( २४ )– हे अग्ने ! हमारा पापी और हिंसक शत्रुओंसे संरक्षण कर ।

१७ अजरः प्रतिष्ठैः प्रतिदह ( २४ )– बुढापेसे रहित तू अपनी ज्वालाओंसे शत्रुको जला दे ।

१८ नक्ष्य विश्पते अग्ने ! वय द्युमन्त सु वीरं धीमहि ( २६ )– हे शरणमें जाने योग्य, प्रजापालक अग्ने ! हम तेजस्वी तथा उत्तम वीर तेरा ध्यान करते हैं।

१९ वाजपतिः कविः दाशुषे रत्नानि दधत् ( ३० )– अन्नका स्वामी और ज्ञानी यह अग्नि दानशील मनुष्यको रत्न देता है ।

२० अध्वरे सत्यधर्माणं कविं अग्निं उप स्तुहि ( ३२ )– हिंसा रहित यज्ञमें सत्य धर्मका प्रचार करनेवाले अग्निकी स्तुति करो ।

२१ देवं अमीव-चातनं ( ३२ )– यह अग्नि देव रोग दूर करता है ।

**२२ नः पीतये शं** ( ३३ )- पानी पीनेके लिए कल्याणकारी हो।

**२३ नः शंयोः अभिस्रवन्तु** ( ३३ )- हे जलो ! हमें शान्ति और सुख दो।

**२४ वयं जातवेदसं अमृतं प्रशंसिषम्** ( ३५ )- हम सर्वज्ञ और अमर अग्निकी प्रशंसा करते हैं।

**२५ बृहद्भिः अर्चिभिः शुक्रेण शोचिषा दीदिहि** ( ३७ )- बडी ज्वालाओं और शुद्ध तेजसे प्रकाशित हो।

**२६ विश्पतिः रक्षसः तपानः** ( ३९ )- तू प्रजाओंका पालक और राक्षसोंको सन्ताप देनेवाला है।

**२७ हे जातवेद ! त्वं अद्य उषर्बुधः देवान् आ वह** ( ४० )- हे ज्ञानी अग्ने ! तू आज सवेरे उठनेवाले देवोंको ले आ।

**२८ त्वं चित्रः, ऊत्या राधांसि नः चोदय** ( ४१ )- तू विलक्षण शक्तिवाला है। संरक्षणोंके साथ धनोंको हमारे पास भेज।

**२९ नः तुचे गाधं विदाः** ( ४१ )- हमारे सन्तानोंको यश दे।

**३० हे त्रातः ! त्वं स-प्रथाः ऋतः कविः** ( ४२ )- हे रक्षक अग्ने ! तू प्रसिद्ध, सत्य और ज्ञानी है।

**३१ हे पावक ! नः शस्यं वयोवृधं रयिं रास्व** ( ४३ )- हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! हमें प्रशंसित तथा आयुको बढानेवाला धन दे।

**३२ सुनीतिः, पुरुस्पृहं सुयशस्तरं नः रास्व** ( ४३ )- उत्तम नीतिके मार्गसे मिलनेवाले, बहुतोंद्वारा प्रशंसित, उत्तम यशको बढानेवाले धनको हमें दे।

**३३ यः विश्वा वसु दयते** ( ४४ )- जो सब प्रकारके धन देता है।

**३४ आर्यस्य वर्धनं अग्निं नः गिरः नक्षन्तु** ( ४७ )- आर्योका संवर्धन करनेवाले अग्निकी स्तुति हमारी वाणी करती है।

**३५ ऋचा वरेण्यं अवः यामि** ( ४८ )- वेदमंत्रोंसे मैं श्रेष्ठ संरक्षण मांगता हूँ।

**३६ श्रुतं अग्निं नरः सुदीतये छर्दिः** ( ४९ )- इस प्रसिद्ध अग्निसे लोग उत्तम प्रकाश युक्त घर मांगते हैं।

**३७ देवाः नर्यं पंक्तिराधसं वीरं अच्छा नयन्तु** ( ५६ )- सब देव मानव जातिका हित करनेवाले, समूहको यशस्वी बनानेवाले वीरको सरल और उन्नतिके मार्गसे ले जाते हैं।

**३८ हे अग्ने ! ऊर्ध्वः सुतिष्ठ** ( ५७ )- हे अग्ने ! तू ऊंचे स्थान पर रह।

**३९ यः ते दाशात् स उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणं वीरं त्मना धत्ते** ( ५८ )- जो तुझे हवि देता है, वह स्तोत्र करनेवाले, हजारोंका पोषण करनेवाले वीर पुत्रको स्वयं धारण करता है, जन्म देता है।

**४० अयं अग्निः सुवीर्यस्य सौभगस्य ईशे** ( ६० )- वह अग्नि उत्तम पराक्रम और उत्तम ऐश्वर्यका स्वामी है।

**४१ सु-अपत्यस्य ईशे** ( ६० )- उत्तम सन्तानोंका स्वामी है।

**४२ वृत्र-हथानां ईशे** ( ६० )- घेरनेवाले शत्रुओंको मारनेवालोंमें वह सबसे मुख्य वीर है।

**४३ प्रचेताः वार्यं यंसि** ( ६१ )- तू ज्ञानी उत्तम धन देनेवाला है।

**४४ ऊतये सुभगं सुदंससं सु प्रतूर्तिं अनेहसं त्वा देवं ववृमहे** ( ६२ )- अपने संरक्षणके लिए उत्तम भाग्यवान्, उत्तम कर्म करनेवाले, पापियोंका नाश करनेवाले, पापरहित तुझ देवको हम प्राप्त करते हैं।

**४५ हविषा आ जुहोत, मर्जयध्वं** ( ६३ )- हवनीय द्रव्योंसे हवन करो, शुद्धता करो।

**४६ वयं तव सख्ये मा रिषाम** ( ६६ )- हम तेरी मित्रतामें नष्ट न होवें।

**४७ अग्निं स्तनयित्नोः पुरा अवसे कृणुध्वं** ( ६९ )- पहले अपने संरक्षणके लिए अग्निको बिजलीसे उत्पन्न किया।

**४८ अग्निः उषसां अग्रे अशोचि** ( ७० )- अग्नि उषा कालसे भी पहले प्रज्वलित हुआ।

**४९ नरः अरण्योः हस्तच्युतं गृहपतिं अग्निं जनयन्त** ( ७२ )— मनुष्य अरणियोंको एक दूसरेके ऊपर रखकर हाथोंसे मथकर घरके स्वामी अग्निको उत्पन्न करते हैं।

**५० विश्वाः मायाः अवसि** ( ७५ )— सब प्रजाओंकी रक्षा करता है।

**५१ ते रातिः भद्रा** ( ७५ )— तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं।

**५२ नः सूनुः तनयः स्यात्, ते सुमतिः अस्मे विजावा भूतु** ( ७६ )- हमारे पुत्र पौत्र होवें, यह तुम्हारी इच्छा हमारे लिए सफल होवे।

**५३ सनात् यातुधानान् मृणासि** ( ८० )- सदा तू पीडा देनेवाले शत्रुओंका नाश करता है।

**५४ त्वा पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः** ( ८० )- तुझे युद्धमें राक्षस जीत नहीं सकते।

**५५ सहमूरान् क्रव्यादः अनुदह** ( ८० )- मूल सहित कच्चे मांसको खानेवालोंको जला डाल।

**५६ ते दैव्यायाः हेत्याः मा मुक्षत** ( ८० )- तेरे दिव्य शस्त्रोंसे कोई न छूटे।

**५७ ओजिष्ठं द्युम्नं अस्मभ्यं आ भर** ( ८१ )- बल बढानेवाले तेजस्वी धन हमें भरपूर दे।

५८ पनीयसे राये नः प्र (८१)- प्रशंसित धन मिलनेका मार्ग हमें बता।

५९ वाजाय पन्था रासि (८१)- अन्न मिलनेके मार्गको दिखा।

६० यदि वीरः स्यात् मर्त्यः अग्निं इन्धीत (८२)- यदि पुत्र हो तो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करे।

६१ अस्मिन् अमर्त्ये विश्वे मर्तासः हव्यं इन्धते (८५)- इस अमर अग्निमें सब मनुष्य हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं।

६२ वृत्र-हन्तमं ज्येष्ठं मानवं अग्निं अगन्म (८९)- वृत्रको मारनेवाले, श्रेष्ठ मानवोंका हित करनेवाले, अग्निके पास हम जाते हैं।

६३ हे अग्ने! हरसा यातुधानस्य बलं विश्वतः परि प्रति शृणीहि (९५)- हे अग्ने! अपने तेजसे तू पीडा-कष्ट देनेवाले राक्षसोंके बलको सब ओरसे नष्ट कर।

६४ रक्षसः वीर्यं न्युब्ज (९५)- राक्षसोंकी शक्ति नष्ट कर।

६५ मन्द्रः वि अतिस्त्रिधः राजसि (१००)- आनन्दित अग्नि शत्रुओंको हटाकर शोभित होता है।

६६ सा शंतातिः मयः करत् स्त्रिधः अप (१०२)- वह शान्ति और सुख देनेवाला अग्नि हमें सुख देवे और शत्रुओंको दूर करे।

६७ प्रतीव्यां ईळिष्व (१०३)— शत्रुको पराजित करनेवालेकी स्तुति कर।

६८ अगृभीत-शोचिषं जातवेदसं यजस्व (१०३)- जिसके प्रकाशको कोई भी रोक नहीं सकता ऐसे इस अग्निमें यज्ञ कर।

६९ तस्य मर्त्यः रिपुः मायया चन ईशीत (१०४)- उसपर कोई भी मनुष्य शत्रु कपटसे भी शासन नहीं कर सकता।

७० त्वं वृजिनं रिपुं, दुराध्यं स्तेनं वर्षिष्ठं अपास्य (१०५)- उस कपटी शत्रु और कठिनतासे वशमें आनेवाले चोरको दूर कर।

७१ सुगं कृधि (१०५)- हमारे मार्गको सुगम कर।

७२ हे वीर! मायिनः रक्षसः तपसा नि दह (१०६)— हे वीर! कपटी राक्षसोंको अपनी ज्वालासे जला दे।

७३ हे अग्ने! त्वं यस्य सख्यं आविथ, स तव सुवीराभिः ऊतिभिः प्र तरति (१०८)- हे अग्ने! तू जिसका मित्र होता है, वह तेरे उत्तम वीरोंसे युक्त संरक्षणोंसे दुःखोंसे पार हो जाता है।

७४ अग्निः नः भद्रः (१११)- अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो।

७५ तत् द्युम्नं आ भर (११३)- उस तेजस्वी धनको हमें भरपूर दे।

७६ सदने कंचिद् अत्रिणं आ लासदा (११३)- हमारे घरमें कोई भी शत्रु हो उसे दूर कर।

७७ दूढ्यं जनस्य मन्युं- बुरी बुद्धिवाले मनुष्योंका क्रोध भी दूर कर।

७८ सु-प्रीतः मनुषः क्षिये विश्वा रक्षांसि प्रतिषेधति (११४)- सन्तुष्ट हुआ अग्नि मनुष्यके घरमें सब राक्षसोंको दूर करता है।

# आग्नेय काण्डके ऋषि और देवताओंकी सूची

(१)

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १ | ६।१६।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्नि | गायत्री |
| २ | ६।१६।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ३ | १।१२।१ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ४ | ६।१६।३४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ५ | ८।८४।१ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| ६ | ८।७१।१ | सुदीतिपुरुमीळ्हौ आंगिरसौ | ,, | ,, |
| ७ | ६।१६।१६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ८ | ८।११।७ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| ९ | ६।१६।१३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १० | —— | वामदेवः | ,, | ,, |

(२)

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११ | ८।७५।१० | आयुङ्क्ष्वाहिः | ,, | ,, |
| १२ | ४।८।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि | देवता | छन्दः |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| १३ | ८।१०२।१३ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | गायत्री |
| १४ | १।१।७ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १५ | १।२७।१० | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६ | १।१९।१ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १७ | १।२७।१ | शुनः शेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १८ | ८।१०२।४ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| १९ | ८।१०२।११ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| २० | ८।६।१० | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| २१ | ८।१०२।७ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| २२ | ६।१६।१८ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २३ | ४।१।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| २४ | ७।१५।१३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २५ | ६।१६।४३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २६ | ७।१५।७ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २७ | ८।४४।१६ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| २८ | १।२७।४ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| २९ | ८।७४।११ | गोपवन आत्रेयः | ,, | ,, |
| ३० | ४।१५।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| ३१ | १।५०।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| ३२ | १।१२।७ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ३३ | १०।९।४ | सिन्धुद्वीप आम्बरीषः त्रित आप्त्यो वा | ,, | ,, |
| ३४ | ८।८४।७ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ३५ | ६।४८।१ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | ,, | बृहती |
| ३६ | ८।६०।९ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| ३७ | ६।४८।७ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ३८ | ७।१६।७ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३९ | ८।६०।१९ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| ४० | १।४४।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| ४१ | ६।४८।१ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ४२ | ८।६०।५ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| ४३ | ८।६०।११ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| ४४ | ८।१०३।६ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| ४५ | ७।१६।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ४६ | ८।६०।१५ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ४७ | ८।१०३।१ | सौभरिः काण्वः | ,, | बृहती |
| ४८ | ८।२७।१ | मनुर्वैवस्वतः | ,, | ,, |
| ४९ | ८।७१।१४ | सुदीतिपुरुमीळावांगिरसौ | ,, | ,, |
| ५० | १।४४।१३ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| ५१ | ८।१०३।२ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ५२ | ८।१।१८ | मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ | इन्द्रः | ,, |
| ५३ | ३।९।२ | विश्वामित्रो गाथिनः | अग्निः | ,, |
| ५४ | १।३६।१९ | कण्वो घौरः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| ५५ | ७।१६।११ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ५६ | १।४०।३ | कण्वो घौरः | ब्रह्मणस्पतिः | ,, |
| ५७ | १।३६।१३ | कण्वो घौरः | यूपः | ,, |
| ५८ | ८।१०३।४ | सौभरिः काण्वः | अग्निः | ,, |
| ५९ | १।३६।१ | कण्वो घौरः | ,, | ,, |
| ६० | ३।१६।१ | उत्कीलः कात्यः | ,, | ,, |
| ६१ | ७।१६।५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ६२ | ३।९।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| | | ( ७ ) | | |
| ६३ | —— | श्यावाश्वो वामदेवो वा | ,, | त्रिष्टुप् |
| ६४ | १०।११५।१ | उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः | ,, | जगती |
| ६५ | १०।५६।१ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ६६ | १।९४।१ | कुत्स आंगिरसः | ,, | जगती |
| ६७ | ६।७।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ६८ | ६।२४।६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ६९ | ४।३।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| ७० | ७।८।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणि | ,, | ,, |
| ७१ | १०।८।१ | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः | ,, | ,, |
| ७२ | ७।१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | त्रिपाद् विराड् गायत्री |
| | | ( ८ ) | | |
| ७३ | ५।१।१ | बुधगविष्ठिरावात्रेयौ | ,, | त्रिष्टुप् |
| ७४ | १०।४६।५ | वत्सप्रिर्भालंदनः | ,, | ,, |
| ७५ | ६।५८।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | पूषा | ,, |
| ७६ | ३।६।११ | विश्वामित्रो गाथिनः | अग्निः | ,, |
| ७७ | १०।४६।१ | वत्सप्रिर्भालंदनः | ,, | ,, |
| ७८ | ७।६।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ७९ | ३।१९।२ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ८० | १०।८७।१९ | पायुर्भारद्वाजः | ,, | ,, |

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | (९) | | |
| ८१ | ५।१०।१ | गय आत्रेयः | ,, | अनुष्टुप् |
| ८२ | —— | वामदेवः | ,, | ,, |
| ८३ | ६।२।६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ८४ | ६।२।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ८५ | ५।१८।१ | द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः | ,, | ,, |
| ८६ | ५।२५।७ | वसूयव आत्रेयाः | ,, | ,, |
| ८७ | ८।७४।१ | गोपवन आत्रेयः | ,, | ,, |
| ८८ | ५।१६।१ | पूरुरात्रेयः | ,, | ,, |
| ८९ | ८।७४।४ | गोपवन आत्रेयः | ,, | ,, |
| ९० | —— | वामदेवःकश्यपो वा मारीचो, मनुर्वा वैवस्वतः उभौ वा | ,, | ,, |
| | | (१०) | | |
| ९१ | १०।१४१।२ | अग्निस्तापसः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ९२ | —— | वामदेवः कश्यपः असितो देवलो वा | अंगिराः | ,, |
| ९३ | —— | ,, ,, | अग्निः | ,, |
| ९४ | १।५।२ | सोमाहुतिर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ९५ | १०।८७।२५ | पायुर्भारद्वाजः | ,, | ,, |
| ९६ | १।४५।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| | | (११) | | |
| ९७ | १।१५०।१ | दीर्घतमा औचथ्यः | ,, | उष्णिक् |
| ९८ | ३।१०।५ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ९९ | १।७९।४ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १०० | ३।१०।७ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १०१ | ९।१०२।४ | त्रित आप्त्यः | पवमानः सोमः | ,, |
| १०२ | ८।१८।७ | इरिम्बिठिः काण्वः | अदितिः | ,, |
| १०३ | ८।२३।१ | विश्वमना वैयश्वः | अग्निः | ,, |
| १०४ | ८।२३।१५ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| १०५ | ६।५१।१३ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | विश्वेदेवाः | ,, |
| १०६ | ८।२३।१४ | विश्वमना वैयश्वः | अग्निः | ,, |
| | | (१२) | | |
| १०७ | ८।१०३।८ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| १०८ | ८।१९।३० | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १०९ | ८।१९।१ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ११० | ८।१०३।११ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| १११ | ८।१९।२९ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ११२ | ८।१९।२ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ११३ | ८।१९।१५ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ११४ | ८।२३।१३ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |

॥ इति आग्नेयं काण्डम् ॥

# अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[ ३ ]

( १–१० ) १ शंयुर्बार्हस्पत्यः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ हर्यतः प्रागाथः; ४,५ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा, ५ सुकक्षः ) आंगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः; ७, ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ९, १० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ अग्निर्हवींषि वा ) ॥ गायत्री ॥

**११५ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥** ( ऋ. ६।४५।२२ )

**११६ यस्ते नूनंशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥** ( ऋ. ८।९२।१६ )

**११७ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥** ( ऋ. ८।७२।१२; वा. यजु. ३३।१९ )

**११८ अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥** ( ऋ. ८।९२।२५ )

**११९ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥** ( ऋ. ८।९३।७ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११५ ] हे स्तुति करनेवाले उपासको ! ( वः सुते ) तुम्हारे सोम तय्यार करनेके बाद ( पुरु-हूताय सत्वने ) अनेकों जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे इस बलवान् इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक स्थान पर बैठ करके गाओ । ( यत् ) जो स्तोत्र ( गवे न ) गायको जैसे घास सुख देते हैं, उसी प्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको सुख देते हैं ॥ १ ॥

१ पुरु-हूताय सत्वने सचा गाय— अनेकोंसे प्रशंसित शक्तिशाली इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

[ ११६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैकडों प्रकारके कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यः द्युम्नि-तमः मदः ) जो तेजस्वी सोमरस ( नूनं ते ) निश्चित रूपसे तेरे लिये तय्यार किया गया था, ( तेन नूनं ) उस रससे निश्चयसे तू ( मदे ) आनंदित हुआ, उस कारण हमें भी ( मदेः ) धनादि देकर तू आनन्दित कर ॥ २ ॥

[ ११७ ] हे ( गावः ) गौवो ! तुम ( अवटे ) यज्ञके स्थानको ( उप वद ) आओ, तुम ( यज्ञस्य मही रप्सुदा ) यज्ञके लिए बहुतसा दूध रूपी अन्न देनेवाली हो । तुम्हारे ( उभा कर्णा हिरण्यया ) दोनों ही कान सोनेके आभूषणोंसे शोभित हैं ॥ ३ ॥

१ गावः ! अवटे यज्ञस्य मही रप्सुदा— हे गायो ! तुम यज्ञमें बहुतसा अन्न देती हो ।

[ ११८ ] हे ( श्रुतकक्ष ) श्रुत-कक्ष ऋषे ! ( अश्वाय अरं ) घोडेके लिए ( गवे अरं ) गायके लिए, ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके स्थानके लिए पर्याप्त मात्रामें ( गायत ) स्तोत्रोंका गान कर ॥ ४ ॥

[ ११९ ] ( महे वृत्राय हन्तवे ) उस महान् वृत्रको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं ) उस इन्द्रकी हम ( वाजयामसि ) प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं । ( सः वृषा ) वह बलवान् इन्द्र ( वृषभः भुवत् ) हमें धन देनेवाला होवे ॥ ५ ॥

१ वृषभः— बलवान्, धनकी वृष्टि करनेवाला, कामना पूर्ण करनेवाला ।

२ महे वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि— महान् शक्तिशाली वृत्रके वध करनेके लिए हम इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।

१२० त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं सन्वृषन्वृषेदसि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५३।२ )
१२१ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।५ )
१२२ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )
१२३ पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।२।२५ )
१२४ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।२।१ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० १० । उ० ४ । धा० ४६ । ( भू ) ॥ ]

[ ४ ]

( १–१० ) १, २ सुकक्षश्रुतकक्षौ ( ऋ० सुकक्ष आंगिरसः ); ३ भारद्वाजः ( ऋ० शंयुर्बार्हस्पत्यः ); ४ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा आंगिरसः ) । ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७, ९, १० मिशोकः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० अग्नीन्द्रौ ) ॥ गायत्री ॥

१२५ उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।१ )

---

[ १२० ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सहसः बलात् ) शत्रुके पराभव करनेवाले बलसे तथा ( ओजसः ) सामर्थ्यसे ( अधिजातः ) प्रसिद्ध है; हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सन् ) बलवान होते हुए भी ( वृषा इत् असि ) इच्छित पदार्थको देने वाला है ॥ ६ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वं सहसः बलात् ओजसः अधिजातः– हे इन्द्र ! तू साहस, बल और सामर्थ्यके कारण सबसे श्रेष्ठ है ।

[ १२१ ] ( यत् ) जिस यज्ञने ( दिवि ) आकाशमें ( ओपशं चक्राणः ) लटकाकर ( भूमिं वि अवर्तयत् ) भूमिको घुमाते हुए रखा है, उस ( यज्ञः ) यज्ञने ( इन्द्रं अवर्धयत् ) इन्द्रका यश बढाया ॥ ७ ॥

[ १२२ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं ) जैसे तू ( एकः इत् ) अकेला ही ( वस्वः ) धनोंका स्वामी है, उस प्रकार ( अहं ) मैं भी ( यत् ईशीय ) यदि धनोंका स्वामी हो जाऊं, तो ( मे स्तोता ) मेरी स्तुति करनेवाला ( गो–सखा स्यात् ) गायोंका मित्र हो जाये ॥ ८ ॥

[ १२३ ] हे ( सोतारः ) सोमयज्ञ करनेवाले याजको ! ( मद्याय शूराय वीराय ) आनन्दित, शूरवीर इन्द्रके लिए ( पन्यं पन्यं इत् ) प्रशंसाके योग्य ( सोमं आ धावत ) सोमरसका अर्पण करो ॥ ९ ॥

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं आधावत— शूरवीर इन्द्रके लिए प्रशंसनीय सोमरस दो ।

[ १२४ ] हे ( वसो ) सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( इदं सुतं अन्धः ) इस सोमरस रूपी अन्नको ( पिब ) पी, जिससे ( उदरं सुपूर्णं ) तेरा पेट पूरा भर जाय । हे ( अनाभयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस हम देते हैं ॥ १० ॥

१ अनाभयिन् ! ते ररिम— हे निर्भय इन्द्र ! तुझे आनन्द हो, इसलिए ये सोमरस हम देते हैं ।

॥ यहां पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२५ ] हे ( सूर्य ) सूर्यरूपी इन्द्र ! तू ( श्रुता–मघं ) प्रसिद्ध धनवान् ( वृषभं ) बलवान् ( नर्य–अपसं ) मानवोंके हितके लिए कार्य करनेवाला और ( अस्तारं ) शस्त्र फेंकनेवाला है ( इदं उदेषि ध ) ऐसा तू अब उदय हो रहा है ॥ १ ॥

१ श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं अस्तारं— प्रसिद्ध, धनवान्, बलवान्, मानवोंका हित करनेवाले और शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा कर ।

१२६ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।४ )
१२७ य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।४५।१ )
१२८ मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥ (ऋ. ८।९२।३१)
१२९ एन्द्र सानसिꣳरयिꣳसजित्वानꣳसदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
१३० इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।७।५ )
१३१ अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्रादधिष्ट पौꣳस्यम् ॥ ७ ॥( ऋ. ८।४५।२६ )

---

[ १२६ ] हे ( वृत्र-हन् ) शत्रुको मारनेवाले ( सूर्य ) सूर्यरूपी इन्द्र ! ( अद्य ) आज ( अभि उद्गाः ) तू उदय हुआ है, हे इन्द्र ! ( तत् सर्वं ) वह सब ( ते वशे ) तेरे अधीन है ॥ २ ॥

१ ते वशे तत् सर्वं— तेरे आधीन सब कुछ है ।

[ १२७ ] ( यः ) जो इन्द्र शत्रु द्वारा दूर फेंके हुए ( तुर्वशं यदुं ) तुर्वश और यदुको ( सु-नीती ) उत्तम नीतिसे ( परावतः आनयत् ) दूर स्थानसे भी पास ले आया ( युवा सः इन्द्रः ) ऐसा वह तरुण इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है ॥ ३ ॥

१ यः सुनीती तुर्वशं यदुं परावतः आनयत्, युवा सः नः सखा— जो इन्द्र तुर्वश और यदुको उत्तम मार्गसे सुखसे ले आया, ऐसा वह इन्द्र हमारा मित्र है ।

[ १२८ ] हे इन्द्र ! ( आदिशः ) चारों दिशाओंसे शस्त्रोंको फेंकनेवाला ( सूरः ) निरन्तर चलनेवाला राक्षस ( अक्तुषु ) रात्रियोंमें ( नः मा अभ्यायमत् ) हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छासे न आवे, और यदि वह आ भी जाये तो ( तत् त्वा युजा ) तेरी सहायतासे ( वनेम ) उसको हम मार दें ॥ ४ ॥

१ आदिशः सूरः अक्तुषु नः मा अभ्यायमत्, तत् त्वा युजा वनेम— चारों दिशाओंसे शस्त्रोंको फेंकते हुए राक्षस रात्रीके समय हम पर आक्रमण न करे, और यदि वह करे भी तो तेरी सहायतासे हम उसे मार दें ।

[ १२९ ] हे इन्द्र ! ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सानसिं ) उत्तम उपभोग देनेवाले ( स-जित्वानं ) शत्रु पर विजय दिलानेवाले ( सदा-सहं ) सदा शत्रुको हरानेवाले ( वर्षिष्ठं रयिं ) श्रेष्ठ धनसे ( आभर ) हमें भर दें ॥ ५ ॥

( १ ) ऊतये सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं आभर— हमारे संरक्षणके लिए उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करानेवाले, हमेशा शत्रुओंको हरानेवाले श्रेष्ठ धनोंसे हमें भर दे ।

[ १३० ] ( वयं ) हम ( महाधने ) बडे संग्राममें ( इन्द्रं ) इन्द्रको बुलाते है, ( अर्भे इन्द्रं हवामहे ) छोटे युद्धमें भी इन्द्रको बुलाते हैं, ( वृत्रेषु ) वृत्रके साथ होनेवाले युद्धोंमें भी ( युजं वज्रिणं ) सहायता करनेवाले तथा वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) वयं महाधने, अर्भे, वृत्रेषु, युजं वज्रिणं हवामहे— हम बडे तथा छोटे संग्रामोंमें तथा वृत्रके आक्रमणोंमें सहायता करनेवाले तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते है ।

[ १३१ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( कद्रुवः ) कद्रु ऋषिके ( सुतं अपिबत् ) सोमरसको पी लिया, ( सहस्रबाह्वे ) हजारों भुजाओंवाले शत्रुको युद्धमें मारा ( तत्र ) उसमें इन्द्रका ( पौंस्यं आदधिष्ट ) सामर्थ्य प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

( १ ) सहस्र-बाहुः-- हजारों सैनिकोंको रखनेवाला । ( २ ) सहस्रबाह्वे तत्र पौंस्यं आदधिष्ट— सहस्र-बाहु नामक शत्रुको मारा उससे इन्द्रकी शक्ति चमकी ।

१३२ वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३ऽस्य नो वसो ॥ ८ ॥
(ऋ. ७।३१।४)

१३३ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥
(ऋ. ८।४५।१)

१३४ भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१०॥
(ऋ. ८।४५।४०)

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ८ । उ० ३ । धा० ३२ । (बा) ॥ ]

[५]

( १–१० ) १ कण्वो घौरः; २ त्रिशोकः काण्वः; ३ वत्सः काण्वः; ४ कुसीदी काण्वः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षः ) आंगिरसः ७ श्यावाश्व आत्रेयः; ८ प्रगाथः काण्वः; ९ वत्सः काण्वः; १० इरिंबिठिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ ( ऋ० १ मरुतः; ४ विश्वे देवाः; ५ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता ) ॥ गायत्री ॥

१३५ इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ (ऋ. १।३७।३)

१३६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

---

[१३२] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (त्वायवः) तुझे पानेकी इच्छा करनेवाले हम तुझे (अभि नोनुमः) सामनेसे नमस्कार करते हैं, हे (वसो) सबको निवास देनेवाले इन्द्र ! (अस्य नः विद्धि) इस हमारे स्तोत्रके भावको समझ ॥ ८ ॥

[१३३] (ये) जो ऋत्विज (आ घा) आगे होकर (अग्निं इन्धते) अग्निको जलाते हैं, (येषां) जिनका (युवा इन्द्रः सखा) तरुण इन्द्र मित्र है, जिसके लिए वे (आनुषक् बर्हिः स्तृणंन्ति) क्रमसे आसनको फैलाते हैं ॥ ९ ॥

[१३४] (विश्वाः द्विषः) सब शत्रुओंका (अप भिन्धि) नाश कर, (बाधः मृधः परि जहि) विघ्न डालनेवाले शत्रुओंको हरा, उसके बाद (स्पार्हं तत् वसु) चाहने योग्य धन (आ भर) हमें भरपूर दे ॥ १० ॥

(१) विश्वाः द्विषः अपभिन्धि— सब शत्रुओंका नाश कर । (२) बाधः मृधः परि जहि— विघ्न करनेवाले शत्रुओंको हरा । (३) स्पार्हं वसु आभर— चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे ।

॥ यहां दूसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[३] तृतीयः खण्डः ।

[१३५] (एषां हस्तेषु कशाः) इन मरुतोंके हाथोंमें चाबुक हैं, वे (यद् वदान्) जो शब्द करते हैं उनको मैं (इह इव शृण्वे) यहीं होनेके समान सुनता हूं, वह ध्वनि (यामं) युद्धमें (चित्रं न्यृञ्जते) अद्भुत शक्तिको दिखाता है ॥ १ ॥

१ यामं चित्रं न्यृञ्जते— युद्धमें आश्चर्यजनक सामर्थ्य दिखाता है ।

[१३६] हे इन्द्र ! (इमे सोमिनः सखायः) ये सोमयाग करनेवाले मित्र (पुष्टावन्तः यथा पशुं) जालको हाथमें लिए हुए शिकारी जैसे पशुको देखते हैं, उसी तरह एकाग्र चित्त होकर (त्वा विचक्षते) तुझे विशेष करके देखते हैं ॥ २ ॥

१३७ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।४)

१३८ देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।८३।१)

१३९ सोमानाꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥ (ऋ. १।१८।१)

१४० बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९३।१८)

१४१ अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यꣳसुव ॥ ७ ॥ (ऋ. ५।८२।४)

१४२ क्व३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तꣳसपर्यति ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६४।७)

१४३ उपह्वरे गिरीणाꣳसङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६।२८)

---

[ १३७ ] ( विश्वाः कृष्टयः विशः ) सब प्रजायें ( अस्य मन्यवे ) इसके स्तोत्रको सुननेके लिए ( समुद्राय सिन्धवः इव ) जिस प्रकार समुद्रकी ओर नदियां दौडती है, उस प्रकार ( सं नमन्त ) सब मिलकर नम्र होकर बैठती है ॥ ३ ॥

मन्यु— क्रोध, स्तोत्र, मननीय वचन

[ १३८ ] ( देवानां अवः इत् महत् ) देवोंके ये संरक्षण निश्चयसे महान् है । ( वृष्णां तत् ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उन देवोंसे मिलनेवाले संरक्षणोंको ( अस्मभ्यं ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( वयं आवृणीमहे ) हम स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

( १ ) देवानां अवः महत् इत्— देवोंसे मिलनेवाले संरक्षण निश्चयसे महान् है ।

( २ ) वृष्णां तत् अस्मभ्यं ऊतये वयं आवृणीमहे— हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले संरक्षणके साधनोंको अपनी रक्षाके लिए हम स्वीकार करते है ।

[ १३९ ] हे ब्रह्मणस्पते ! ( सोमानां ) सोमयज्ञ करनेवाले ( कक्षीवन्तं ) कक्षीवान्‌को ( यः औशिजः ) जो उशिकका पुत्र है, ( स्वरणं कृणुहि ) प्रकाशमान कर ॥ ५ ॥

[ १४० ] ( वृत्र-हा ) वृत्र राक्षसको मारनेवाला, ( भूरि-आसुतिः ) जिसके लिए बहुतसे लोग सोमरस तैय्यार करते हैं, वह इन्द्र ( नः ) हमारी ( बोधत्-मनाः ) इच्छाको जाननेवाला ( इह अस्तु ) यहां होवे। वह ( शक्रः ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ( आशिषं शृणोतु ) हमारी स्तुति सुने ॥ ६ ॥

[ १४१ ] हे ( सवितः देव ) सूर्य देव ! ( नः ) हमें ( अद्य ) आज ( प्रजावत् सौभगं ) पुत्र पौत्रोंसे युक्त ऐश्वर्य-धन ( सावीः ) दे ( दुष्वप्न्यं परा सुव ) दुःखदायक स्वप्नोंको लानेवाले दुर्भाग्यको हमसे दूर कर ॥ ७ ॥

( १ ) हे सवितः देव ! नः अद्य प्रजावत् सौभगं सावीः— हे सविता देव ! हमें आज पुत्र पौत्रोंसे युक्त धन दे ।

( २ ) दुष्वप्न्यं परा सुव— दुःख देनेवाले स्वप्नोंको दूर कर ।

[ १४२ ] ( सः वृषभः ) वह सामर्थ्यवान् ( युवा ) तरुण ( तुवि-ग्रीवः ) मजबूत गर्दनवाला ( अनानतः ) कभी भी किसीसे न झुकनेवाला ( क ) कहां है ? ( कः ब्रह्मा ) कौन ज्ञानी ( तं सपर्यति ) उसकी पूजा करता है ? ॥ ८ ॥

( १ ) स वृषभः युवा तुविग्रीवः अनानतः कः— वह तरुण, बलवान्, मजबूत गर्दनवाला, किसीसे न झुकाया जानेवाला इन्द्र कहां है ? ( २ ) तुविग्रीवः— गर्दन जिसकी बडी है ।

( ३ ) अनानतः— किसीसे न झुकाया जा सकनेवाला ।

[ १४३ ] ( गिरीणां उपह्वरे ) पर्वतोंकी उपत्यकामें ( च ) और ( नदीनां संगमे ) नदियोंके संगमपर ( धिया ) अपनी बुद्धिसे-अपनी स्तुतियोंसे ( विप्रः अजायत ) मनुष्य विशेष ज्ञानी होता है ॥ ९ ॥

१४४ प्र संम्राजं चर्षणीनामिन्द्रंस्स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १० ॥
( ऋ. ८।१६।१ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० ९ । उ० ना० । धा० ४४ । ली ।]

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षः ) आङ्गिरसः; २ मेधातिथिः ( ऋ० शंयुर्वार्हस्पत्यः ) काण्वः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः; ५ विन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः; ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ( ऋ० सुकक्षः ) आंगिरसः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः; १० शुनःशेपो आजीगर्तिः; वामदेवो वा ॥ इन्द्रः, ( ऋ० इन्द्रापूषणौ ) ५ मरुतः ॥ गायत्री ॥

---

१४५ अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।४ )

१४६ इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४५।२५ )

१४७ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।१५ )

१४८ यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।५७।४ )

[ १४४ ] ( चर्षणीनां सम्राजं ) मनुष्योंमें उत्तम रीतिसे प्रकाशमान होनेवाले ( गीर्भिः नव्यं ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेके योग्य ( नृ-षाहं नरं ) शत्रुओंको पराजित करनेवाले नेता ( मंहिष्ठं इन्द्रं ) महान् इन्द्रकी ( प्रस्तोत ) स्तुति कर ॥ १० ॥

( १ ) चर्षणीनां सम्राजं नृषाहं नरं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत— मनुष्योंमें सम्राट्, शत्रुओंको हरानेवाले नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

॥ यहां तीसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४५ ] ( शिप्री इन्द्रः ) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने ( प्र-होषिणः सुदक्षस्य ) विशेष हवन करनेवाले सुदक्षके ( यवाशिरः ) जौके आटे और दूधसे मिश्रित ( इन्दोः अन्धसः उ ) सोमरस रूपी अन्नको ( अपात् ) खाया ॥ १ ॥

[ १४६ ] हे ( पुरू-वसो ) अनेकों प्रकारके धन रखनेवाले इन्द्र ! ( गावः धेनवः वत्सं न ) जिस प्रकार दूध देनेवाली गायें अपने वछडोंके पास जाती हैं उसी प्रकार ( त्वा ) तुझे ( इमाः गिरः प्रनोनवुः ) ये स्तोत्र बार बार प्राप्त होते हैं, तेरी बार बार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४७ ] ( अत्रा ह ) इस ( गोः चन्द्रमसः ) गतिमान् चन्द्रके ( गृहे ) घरमें-चन्द्रमण्डलमें ( त्वष्टुः ) त्वष्टा इस सूर्यका ( अ-पीच्यं नाम ) रात्रीके समय छिप जानेवाला प्रसिद्ध तेज है ( इत्था अमन्वत ) ऐसा लोग मानते हैं ॥ ३ ॥

[ १४८ ] ( यत् वृषन्तमः इन्द्रः ) जब बहुत बलवाला इन्द्र ( महीः रितः ) वडे वडे प्रवाहोंके रूपमें बहनेवाले ( अपः ) वर्षासे आये हुए जलोंको ( अनयत् ) वहाता है, ( तत्र ) तब ( पूषा सचा भुवत् ) पूषा उसका सहायक होता है ॥ ४ ॥

१४९ गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९४।१)
१५० उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥ (ऋ.८।९३।३१)
१५१ इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९३।२३)
१५२ अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६।१०)
१५३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥ (ऋ. १।३०।१०)
१५४ सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० ८ । उ० ५ । धा० ४४ । (णी) ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेधश्चांगिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६. १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ त्रिशोकः काण्वः; ८ कुसीदी काण्वः; ९ शुनः शेप आजीगर्तिः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

१५५ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत । विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९२।१ )

---

[१४९] (मघोनां मरुतां) धनवान् मरुतोंकी ( माता ) माता (रथानां युक्ता वह्निः) रथोंमें जोडी हुई और उनको खींचनेवाली (गौः) गाय (श्रवस्युः) अन्न देनेकी इच्छा करती हुई (धयति) दूध देती है ॥ ५ ॥

[१५०] हे (मदानां पते) सोमरसोंके स्वामी इन्द्र ! (हरिभिः) अपने घोडोंसे ( नः सुतं उप याहि) हमारे सोम यज्ञमें आ । ( हरिभिः नः सुतं उपयाहि ) घोडोंसे हमारे यज्ञमें आ ॥ ६ ॥

[१५१] (अध्वरे वृधन्तः) हमारे यज्ञमें इन्द्रकी प्रशंसा करते हुए ( इष्टाः होत्राः ) यज्ञ करनेवाले होता गण (अवभृथं अच्छ) अवभृथ स्नान होनेतक (ओजसा) अपने बलसे ( इन्द्रं असृक्षत ) इन्द्रके लिए आहुति देते हैं ॥ ७ ॥

[१५२] (अहं इत्) मैंने (पितुः ऋतस्य मेधां ) पालन करनेवाले यज्ञरूपी इन्द्रकी बुद्धिको (परि जग्रह) अपनी ओर मोड लिया है । ( हि ) इस कारण मैं (सूर्यः इव अजनि) सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ॥ ८ ॥

[१५३] ( याभिः क्षु-मन्तः मदेम) जिसकी सहायतासे हम अन्न युक्त होकर आनन्दित होते हैं, (सधमादे इन्द्रे) इन्द्रके साथ हर्षसे युक्त होकर (नः) हमारी वह गाय (रेवतीः) दूध और घी देनेवाली होकर (तुवि-वाजाः सन्तु) अधिक बल देनेवाली हो ॥ ९ ॥

[१५४] (देवत्रा) देवोंमें (रथ्यः अर्हिता) रथपर बैठने योग्य (सोमः) सोम (पूषा च) और पूषा (विश्वासां सुक्षितीनां चेततुः) सब मनुष्योंको उत्साह देने वाले हैं ॥ १० ॥

॥ यहां चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[१५५] (वः) तुम ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंके नाश करनेवाले ( शतक्रतुं ) सैंकडों कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां महिष्ठं ) मनुष्योंमें महान् सामर्थ्यशाली (अन्धसः आपान्तं) सोमरस पीनेवाले (इन्द्रं अभि प्र गायत) इन्द्रका विशेष स्तुतिसे गान करो ॥ १ ॥

१ विश्वासाहं शतक्रतुं चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्रगायत— सब शत्रुओंके नाश करनेवाले, सैंकडों कर्म करनेवाले, प्रजाओंमें सर्वाधिक शक्तिशाली, इन्द्रके गुणोंका स्तुतिसे गान करो ।

१५६ प्र व इन्द्राय मादन१ꣳहर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३१।१)

१५७ वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।२।१६)

१५८ इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९२।१९)

१५९ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१७।११)

१६० सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४।१)

१६१ अभि त्वा वृषभा सुते सुत१ꣳसृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।४५।२२)

१६२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।८२।७)

---

[ १५६ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( हर्यश्वाय ) हरि नामके घोडोंको रखनेवाले ( सोम-पाव्ने ) सोम पीनेवाले ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( मादनं प्रगायत ) आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंको गाओ ॥ २ ॥

[ १५७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ( त्वायन्तः सखायः वयं ) तुझसे मित्रता करनेकी इच्छावाले और तेरे मित्र हम ( तत्-इत्-अर्थाः ) तेरी स्तुति करनेकी इच्छा रखनेवाले ( कण्वाः उ ) कण्व भी ( उक्थेभिः त्वा जरन्ते ) स्तोत्रोंसे तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५८ ] ( मद्वने इन्द्राय ) आनन्दके स्वभाव वाले इन्द्रके लिए ( सुतं ) निकाले गए सोमरसकी ( नः गिरः परि-स्तोभन्तु ) हमारी वाणियां प्रशंसा करें । ( कारवः ) स्तुति करनेवाले ( अर्कं अर्चन्तु ) इस पूज्य सोमकी अर्चना करें ॥ ४ ॥

[ १५९ ] हे इन्द्र ! ( अयं सोमः ) यह सोम रस ( ते ) तेरे लिए ( बर्हिषि अधि ) वेदिपर रखे गए आसन पर ( निपूतः ) शुद्ध करके रखा हुआ है । ( ई एहि ) इसके पास आ, ( द्रव ) दौडकर आ और ( पिब ) पी ॥ ५ ॥

[ १६० ] ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सु-रूपकृत्नुं ) सुन्दर रूपको बनानेवाले इन्द्रको ( द्यवि-द्यवि ) प्रतिदिन ( गोदुहे सुदुघां इव ) जिस प्रकार दूध दुहनेके समय उत्तम दूध देनेवाली गायको बुलाया जाता है, उसी प्रकार ( जुहूमसि ) हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि— अपने संरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रके लिए हम प्रतिदिन स्तुति करते हैं ।

[ १६१ ] हे ( वृषभ ) बलवान् इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( सुते ) सोमयज्ञमें ( सुतं पीतये ) सोमरस पीनेके लिए ( अभि सृजामि ) मैं सोमरसका अर्पण करता हूँ, उस समय ( तृम्पा मदं व्यश्नुहि ) तृप्त करनेवाले या आनन्द देनेवाले सोमरसको स्वीकार करो ॥ ७ ॥

[ १६२ ] हे इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( सुतः सोमः ) तैय्यार किया हुआ सोमरस ( चमसेषु चमूषु आ ) बडे और छोटे बर्तनोंमें भरा हुआ रखा है । ( अस्य त्वं पिब इत् ) इसको तू पी, हे इन्द्र ! ( त्वं ईशिषे ) तू सामर्थ्यशाली है ॥ ८ ॥

१ त्वं ईशिषे— तू सबका स्वामी है ।

१६३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।७ )

१६४ आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।५।१ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ३९ । (फो) ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १ विश्वामित्रो गाथिनः, २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ कुसीदी काण्वः; ४ प्रियमेध आंगिरसः; ५, ८ वामदेवो गौतमः; ६, ९ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः, ( ९ ऋ० सुकक्ष आंगिरसः ); ७ मेधातिथिः काण्वः; १० बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ७ सदसस्पतिः; १० मरुतः ) ॥ गायत्री ॥

१६५ इदꣳह्यन्वोजसा सुतꣳराधानां पते । पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।५१।१० )

१६६ महाꣳइन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।५ )

१६७ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳसं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।८१।१ )

१६८ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

---

[ १६३ ] ( योगे योगे ) प्रत्येक कार्यमें ( वाजे वाजे ) प्रत्येक संग्राममें ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( तवस्तरं इन्द्रं ) अति बलवान् इन्द्रको ( सखायः ) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले हम ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥९॥

१ योगेयोगे वाजेवाजे ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे— प्रत्येक कार्य और संग्राममें अपना संरक्षण हो इसके लिए इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १६४ ] हे ( स्तोम-वाहसः ) यज्ञ करनेवालो ! ( सखायः ) हे मित्रो ! ( आ तु आ इत ) शीघ्र यहां आवो और ( निषीदत ) यहां बैठो, और ( इन्द्रं अभि प्रगायत ) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १० ॥

॥ यहां पांचवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १६५ ] हे ( राधानां पते ) धनोंके स्वामी ! हे ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलसे तैय्यार किए गए ( इदं सुतं ) इस सोमरसको ( अस्य तु अनु पिब हि ) तू शीघ्र ही अनुकूल होकर पी ॥ १ ॥

[ १६६ ] ( नः इन्द्रः महान् ) हमारा यह इन्द्र महान् है, और ( परः च ) श्रेष्ठ भी है, ( वज्रिणे महित्वं अस्तु ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रका यश बढे, ( द्यौः न ) द्युलोकके समान ( शवः प्रथिना ) उसका बल बढता है ॥२॥

[ १६७ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बडे बडे हाथोंवाला तू ( नः तु ) हमें देनेके लिए ( क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं ) प्रशंसनीय और अनेक प्रकारसे स्वीकार करने योग्य धन ( दक्षिणेन आ संगृभाय ) दायें हाथोंमें ले ॥ ३ ॥

[ १६८ ] ( गो-पतिं ) गायोंका पालन करनेवाले ( सत्यस्य सूनुं ) सत्यके प्रचारक ( सत्-पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( गिरा अभि प्र अर्च ) वाणीसे प्रार्थना कर ( यथा विदे ) जिससे कि उसकी सहायतासे यज्ञका और उस इन्द्रका ज्ञान हो ॥ ४ ॥

१६९ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥
( ऋ. ४।३१।१; यजु. २७।३९ )

१७० त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

१७१ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥
( ऋ. १।१८।६; यजु. ३२।१३; )

१७२ ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः । उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

१७३ भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९३।२८ )

१७४ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९४।४ )

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [ स्व० १२ । उ० १ । धा० ४० । (वो) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १ देवजामय इन्द्रमातरः, २ गोधा ऋषिका; ३ दध्यङ्ङाथर्वणः; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ वामदेवो गौतमः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः; १० उलो वातायनः ॥
इन्द्रः ( ऋ० ४ अश्विनौ; १० वायुः ) ॥ गायत्री ॥

१७५ ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५३।१ )

---

[ १६९ ] ( सदा-वृधः ) सदा बढनेवाला ( चित्रः सखा ) विलक्षण श्रेष्ठ मित्र यह इन्द्र ( कया ऊती ) कौनसे संरक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर ( नः आ भुवत् ) हमारे पास आवेगा ? उसी प्रकार ( कया शचिष्ठया वृता ) कौनसी शक्तिसे युक्त व्यवहार वाला होकर वह हमारे पास आएगा ? ॥ ५ ॥

[ १७० ] ( सत्रा-साहं ) बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले ( वः ) तुम्हारी ( विश्वासु गीर्षु आयतं ) सब स्तुतियोंमें वर्णित ( त्यं उ ) उस इन्द्रको ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए तुम ( आच्यावयसि ) अपने पास बुलावो ॥ ६ ॥

[ १७१ ] ( मेधां ) बुद्धि बढानेके लिए ( अद्भुतं ) अपूर्व ( इन्द्रस्य प्रियं ) इन्द्रको प्रिय ( काम्यं ) इच्छा करनेके योग्य धनके ( सनिं ) दान देनेवाले ( सदसस्पतिं ) सदसस्पति देवको ( अयासिषं ) मैंने प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

[ १७२ ] हे इन्द्र ! ( ये ते पन्थाः ) जो तेरे मार्ग ( दिवः अधः ) द्युलोकसे नीचे है ( येभिः विश्वं ऐरयः ) जिन मार्गोंसे सब विश्वोंको तू चलाता है, ( ते ) वे मार्ग ( नः भुवः उत श्रोषन्तु ) हमारे यज्ञ स्थानमें पहुंचते हैं, उन मार्गोंसे हमारे यज्ञ स्थानको आ ॥ ८ ॥

[ १७३ ] हे ( शतक्रतो ) सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( भद्रं भद्रं ) अत्यन्त कार्य करनेवाले ( इषं ऊर्जं ) अन्न और बलको बढानेवाले धन ( नः आ भर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) क्योंकि ( नः मृळयासि ) तू हमें सुखी करता है ॥ ९ ॥

१ हे शतक्रतो ! भद्रं इषं ऊर्जं नः आभर— हे सैकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! कल्याण करने वाले, अन्न और बलको हमें भरपूर दे । २ नः मृळयासि— हमें तू सुखी करता है ।

[ १७४ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरस हमने तैय्यार करके रखा हुआ है । ( अस्य ) इसे ( स्वराजः मरुतः ) तेजस्वी मरुद् गण ( पिबन्ति ) पीते हैं । ( उत अश्विना ) और अश्विनौ देव भी पीते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां छठा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १७५ ] ( सु-वीर्यं वन्वानासः ) उत्तम बल प्राप्त करनेकी इच्छावाली ( ईङ्खयन्तीः ) इन्द्रके पास ( अपस्युवः ) उत्तम कार्य करनेकी इच्छा वाली इन्द्रकी माता ( जातं तं उपासते ) प्रकट हुए उस इन्द्रकी सेवा करती है ॥ १ ॥

१७६ नकि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि । मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१३४।७)

१७७ दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण । स्तुहि देवꣳसवितारम् ॥ ३ ॥ (अथर्व. ६।१।१)

१७८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत्॥ ४ ॥ (ऋ. १।४६।१)

१७९ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।१३)

१८० इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाꣳ अभिष्टिरोजसा॥ ६ ॥ (ऋ. १।९।१)

१८१ आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।३२।१)

१८२ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६।५)

---

[ १७६ ] हे ( देवाः ) देवो ! ( न कि इनीमसि ) हम कोई हानि नहीं करते और ( न कि आयोपयामसि ) हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते ( मन्त्र-श्रुत्यं चरामसि ) वेद-मंत्रोंमें जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ॥२॥

१ न कि इनीमसि— हम किसीकी हानि नहीं करते । २ न कि आयोपयामसि— हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते । ३ मन्त्रश्रुत्यं चरामसि— वेदमंत्रोंमें जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ।

[ १७७ ] हे ( बृहद् गाय ) बृहत् नामक सामका गायन करनेवाले, हे ( द्युमत्-गामन् ) प्रकाशके मार्गसे जानेवाले ( आथर्वण ) अथर्ववेदी ब्राह्मण ! ( दोषः अगात् ) यज्ञकर्ममें जो दोष हों उन्हें दूर करनेके लिए ( देवं सवितारं स्तुहि ) सविता देवकी स्तुति कर ॥ ३ ॥

१ दोषः अगात् , देवं सवितारं स्तुहि— दोष होनेपर सविता देवकी स्तुति कर ।

[ १७८ ] ( एषा प्रिया ) यह प्रिय ( अपूर्व्या उषा ) अपूर्व उषा ( दिवः व्युच्छति ) द्युलोकसे प्रकाशित होती है, हे ( अश्विनौ ) अश्विदेवो ! ( वां बृहत् स्तुषे ) तुम्हारी हम बहुत बडी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[ १७९ ] ( अ-प्रतिष्कुतः ) जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ऐसे इस इन्द्रने ( दधीचः अस्थभिः ) दधीचिकी हड्डियोंसे ( नव नवतीः ) आठ सौ दस ( वृत्राणि ) वृत्रोंको ( जघान ) मारा ॥ ५ ॥

१ नव नवतीः— नौ गुना नब्बे; ९०×९ = ८१० ।

[ १८० ] हे इन्द्र ! ( एहि ) आ ( अन्धसः ) अन्न रूपी ( विश्वेभिः सोमपर्वभिः ) सब सोमरसोंसे ( मत्सि ) तू आनन्दित होता है, अब ( ओजसा ) अपने बलसे ( महान् अभिष्टिः ) बडेसे बडे शत्रुको भी हराने वाला हो ॥ ६ ॥

१ ओजसा महान् अभिष्टिः— सामर्थ्यसे यह महान् शत्रुको भी हरानेवाला है ।

[ १८१ ] हे ( वृत्र-हन् ) वृत्ररूपी शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! तू ( नः ) हमारे पास ( महान् आ तु ) महान् होकर आ । ( महीभिः ऊतिभिः ) महान् संरक्षणके साधनोंके साथ ( अस्माकं अर्धं आगहि ) हमारे पास आ ॥ ७ ॥

१ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि— महान् संरक्षणके साधनोंके साथ हमारे पास आ ।

[ १८२ ] ( अस्य तत् ओजः ) इस इन्द्रका वह सामर्थ्य ( तित्विषे ) चमकने लगा है, ( यत् ) जिसके कारण यह इन्द्र ( उभे रोदसी ) द्युलोक और भूलोकको ( चर्म इव समवर्तयत् ) चमडेके समान फैलाता है ॥ ८ ॥

१८३ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ ( ऋ १।३०।४ )

१८४ वात आ वातु भेषजꣳशम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥ ( ऋ. १०।१८६।१ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १० । उ० २ । धा० ४५ । (फु) ॥ ]

[ १० ]

( १-९ ) १ कण्वो घौरः; २, ३, ९ वत्सः ( ऋ० २, ९ वशोऽश्व्यः ) काण्वः; ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ इरिम्बिठिः काण्वः; ८ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ इन्द्रः ( ऋ० १ वरुणमित्रार्यमणः; ८ आदित्यः ) गायत्री ॥

१८५ यꣳ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । न किः स दभ्यते जनः ॥१॥ ऋ. १।४१।१)

१८६ गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४६।१० )

१८७ इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।१९ )

१८८ अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९३।१७ )

---

[ १८३ ] हे इन्द्र ! ( अयं उ ) यह सोमरस निश्चयसे ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया है, उसके पास ( समतसि ) तू जाता है ( कपोतः गर्भधिं इव ) जैसे कबूतर गर्भको धारण करनेमें समर्थ कबूतरीके पास जाता है ( तत् चित् ) उसी प्रकार ( नः वचः ) हमारी स्तुति ( ओहसे ) तू सुनता है ॥ ९ ॥

[ १८४ ] ( वातः ) यह वायु ( नः हृदे शंभु मयोभु ) हमारे हृदयको शान्ति और सुख देनेवाली ( भेषजं ) औषधियोंको ( आ वातु ) लाकरके देवे, वे औषधियां ( नः आयूंषि प्रतारिषत् ) हमारी आयुको लम्बी करें ॥ १० ॥

१ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आ वातु— यह वायु हमारे हृदयको सुख और आरोग्य देनेवाली औषधियोंको लाकर देवे । २ नः आयूंषि प्र तारिषत्— हमारी उम्र लम्बी करे ।

॥ यहां सातवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १८५ ] ( प्र-चेतसः ) ज्ञानी ( यं रक्षन्ति ) जिसका संरक्षण करते हैं ( सः जनः ) वह मनुष्य ( न किः दभ्यते ) किसीसे भी नहीं दबाया जा सकता ॥ १ ॥

१ प्रचेतसः यं रक्षन्ति स जनः न किः दभ्यते— ज्ञानी देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ।

[ १८६ ] हे इन्द्र ! (यथा पुरा) पहलेके समान ( नः ) हमें (सु गव्या) उत्तम गायोंके समूह, ( उ अश्वया ) उत्तम घोडे ( उत रथया ) और रथ तथा ( महोनां ) यश बढानेवाले धन देनेकी इच्छासे ( वरिवस्य ) हमारे पास आ ॥२॥

[ १८७ ] हे इन्द्र ! ( ते इमाः पृश्नयः ) तेरी ये गायें ( ऋतस्य पिप्युषीः ) यज्ञको बढानेवाली हैं, और ( घृतं एनां आशिरं ) घी देनेवाले दूधको ( दुहते ) दुहती हैं ॥ ३ ॥

[ १८८ ] हे ( पुरु-नामन् ) अनेक नामोंवाले और ( पुरु-स्तुत ) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! ( सोमे सोमे ) प्रत्येक सोमयज्ञमें ( यत् आभुवः ) जहां तू जाता है, वहां ( अया गव्यया धिया ) इस गायकी इच्छा करनेवाली स्तुतिसे हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

१८९ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।३।१० )
१९० क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरात् ॥ ६ ॥
१९१ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥ (ऋ. ८।१७।१)
१९२ महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१८५।१ )
१९३ त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।४६।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० ६ । उ० ४ । धा० ३५ । (घु) । ]

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः; द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ प्रगाथः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ श्रुतकक्षः आङ्गिरसः ( ऋ० ४ सुकक्षो वा; ६ सुकक्ष आंगिरसः ); ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८,९ भरद्वाजः ( ऋ० -८ शंयुः ) बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० इन्द्रापूषणौ ) ॥ गायत्री ॥

१९४ उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६४।१)

---

[ १८९ ] ( पावका ) पवित्रता करनेवाली ( वाजिनीवती ) अन्न देनेवाली ( धिया वसुः ) बुद्धिकी सहायतासे धन देनेवाली ( सरस्वती ) विद्या देवी ( वाजेभिः ) अन्नोंसे ( नः यज्ञं वष्टु ) हमारे यज्ञको पूर्ण करे ॥ ६ ॥

[ १९० ] ( नाहुषीषु ) प्रजाजनोंमें ( इमं इन्द्रं ) इस इन्द्रको ( कः तर्पयात् ) कौन भला तृप्त करता है ? ( सः ) वह इन्द्र ( नः वसूनि आ भरत् ) हमें भरपूर धन देवे. ॥ ६ ॥

[ १९१ ] हे इन्द्र ! ( आयाहि ) तू आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुषुमा हि ) सोमरस उत्तम रीतिसे तैय्यार किया है, ( इमं सोमं पिब ) इस सोमरसको तू पी, ( मम ) मेरे ( इदं बर्हिः ) इस आसनपर ( आसदः ) बैठ ॥ ७ ॥

[ १९२ ] ( मित्रस्य, अर्यम्णः वरुणस्य ) मित्र अर्यमा और वरुण इन ( त्रीणां ) तीनोंसे मिलनेवाले ( द्युक्षं ) तेजस्वी ( दुराधर्षं ) दूसरोंके द्वारा सहनेमें कठिन ऐसे ( महि अवः ) महान् संरक्षण ( अस्तु ) हमारे लिए हों ॥ ८ ॥

१ द्युक्षं दुराधर्षं महि अवः अस्तु— तेजस्वी, दूसरोंको हरानेमें समर्थ, महान् संरक्षण हमें मिलें ।

[ १९३ ] हे ( पुरू-वसो ) बहुतसे धनको अपने पास रखनेवाले, ( प्र-नेतः ) उत्तम कर्म करनेवाले, ( हरीणां स्थातः ) घोडोंपर बैठनेवाले इन्द्र ! ( त्वावतः वयं स्मसि ) तुमसे संरक्षित होकर हम सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥

॥ यहां आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १९४ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( सोमाः ) ये सोमरस ( उत् मदन्तु ) उत्तम आनन्द देवें, हे ( अद्रि-वः ) वज्रका धारण करनेवाले इन्द्र ! तू हमें ( राधः कृणुष्व ) धन दे और ( ब्रह्म-द्विषः ) ज्ञानसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंको ( अव जहि ) तू मार ॥ १ ॥

१ राधः कृणुष्व— हमें धन दे ।

२ ब्रह्मद्विषः अवजहि— ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको तू मार ।

१९५ गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥ (ऋ. ३।४०।६)

१९६ सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

१९७ आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९२।२२)

१९८ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥ (ऋ. १।७।१)

१९९ इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९३।३४)

२०० इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (ऋ. २।४१।१०)

२०१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ (ऋ. ६।४५।२८)

---

[१९५] हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे द्वारा निकाले गए सोमरसोंको पी, क्योंकि तू इस (मधोः धाराभिः अज्यसे) सोमरसकी धाराओंसे सींचा जाता है, और हे इन्द्र ! (त्वादातं इत् यशः) तेरी सहायतासे यश मिलता है ॥ २ ॥

१ त्वादातं यशः इत्— तेरी सहायतासे यश मिलता है ।

[१९६] (इन्द्रः) यह इन्द्र (सदा उपो नु) सदा तुम्हारे पास है, (सः सपर्यन्) वह पूजित होता हुआ (वः आचर्कृषत्) तुम्हारे यज्ञकी ओर आकर्षित होता है, (नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः) हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव महान् वीर है ॥ ३ ॥

१ नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः— हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव बहुत वीर है ।

[१९७] हे इन्द्र ! (सिन्धवः समुद्रं न) जिस प्रकार नदियां समुद्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार ये (इन्दवः) सोमरस (त्वा आविशन्तु) तुझमें प्रविष्ट हों, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां) तुझसे बढकर (न अतिरिच्यते) और कोई महान् नहीं है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते — हे इन्द्र ! तुझसे बढकर और कोई महान् नहीं है ।

[१९८] (गाथिनः) सामगान करनेवाले मनुष्य (इन्द्रं इत्) इन्द्रको ही (बृहत् अनूषत) बृहत्सामको गाकर प्रशंसा करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः) पूजा करनेवाले मनुष्य स्तोत्रोंसे उसीकी पूजा करते हैं, (वाणीः इन्द्रं अनूषत) हमारी वाणी इन्द्रका ही गान करती है ॥ ५ ॥

[१९९] इन्द्र (ऋभुक्षणं रयिं) श्रेष्ठ धन हमें देवे (ऋभुं नः इषे ददातु) हमें अन्नके लिए कारीगर देवे (वाजी वाजिनं ददातु) बलवान् इन्द्र हमें धन देवे ॥ ७ ॥

१ ऋभु-क्षणं रयिं ददातु— इन्द्र कारीगरोंका पालन करनेवाले धन हमें देवे ।

२ नः इषे ऋभुं ददातु— हमें अन्न मिलनेके लिए कारीगर देवे ।

३ वाजी वाजिनं ददातु— बलवान् इन्द्र बल देवे ।

[२००] (स्थिरः विचर्षणिः) स्थिर, अचंचल यह ज्ञानी इन्द्र (महत् भयं) महान् भयको (अंग हि अभीषत्) शीघ्र ही दूर करता है, और उन भयोंको (अप-चुच्यवत्) स्थानसे हटा देता है ॥ ७ ॥

१ स्थिरः विचर्षणिः महद् भयं अभीषत् अपचुच्यवत्— युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला और ज्ञानी वह इन्द्र महान् भयको दूर करता है और उन्हें स्थानसे हटा भी देता है ।

[२०१] हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमा गिरः) ये हमारी स्तुतियां (त्वां) तुझे ही (वत्सं धेनवः गावः न) जिस प्रकार बछडेको दूध देनेवालीं गायें प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

२०२ इन्द्रा नु पूषणा वयꣳसख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।५७।१ )

२०३ न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥ ( ऋ. ४।३०।१ )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० ८ । उ० ७ । धा० ३५ । (ठु) ॥]

[२]

( १-१० ) १,४ त्रिशोकः काण्वः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ वत्सः काण्वः; ( ऋ० वशोऽश्व्यः ); ५ सुकक्ष आङ्गिरसः; ६, ९ वामदेवो गौतमः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२०४ तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शꣳसिषम् ॥ १ ॥ (ऋ. ८।४५।२८)

२०५ असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।४ )

२०६ सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४६।४ )

२०७ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।४५।४१ )

---

[२०२] ( इन्द्रा पूषणा ) इन्द्र और पूषा इन देवताओंको ( नु वयं ) हम ( स्वस्तये ) अपने कल्याणके लिए ( सख्याय ) मित्रताके लिए और ( वाज-सातये ) अन्नकी प्राप्तिके लिए ( हुवेम ) प्रार्थना करके बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[२०३] हे ( वृत्र-हन् इन्द्र ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वत् उत्तरं न कि अस्ति ) तुझसे ज्यादा श्रेष्ठ और कोई नहीं है, और ( ज्यायान् ) महान् भी कोई नहीं है ( यथा त्वं ) जैसा तू है, ( एवं ) वैसा ( न कि ) दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

१ हे वृत्रहन् इन्द्र ! त्वत् उत्तरं न कि अस्ति— हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुझसे बढकर श्रेष्ठ कोई भी नहीं है ।

॥ यहां नववां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[२०४] ( वः जनानां तरणिं ) तुम लोगोंको [ दुखोंसे ] पार करानेवाले ( त्रदं ) शत्रुको भय दिखानेवाले ( गोमतः वाजस्य ) गायोंसे मिलनेवाले अन्नका दान करनेवाले ( समानं उ ) और सदा उन्नत रहनेवाले इन्द्रकी ( प्रशंसिषम् ) मैं प्रशंसा करता हूं ॥ १ ॥

१ जनानां तरणिं, त्रदं, समानं प्रशंसिषम्— सबका संरक्षण करनेवाले और शत्रुको भय देनेवाले इन्द्रकी हम सदा स्तुति करते हैं ।

[२०५] हे इन्द्र ! ( ते गिरः असृग्रं ) तेरी स्तुतिके लिए स्तोत्रोंको मैंने तैय्यार किया है । ये स्तुतियां ( वृषभं पतिं त्वा ) बलवान् और सबका पालन करनेवाले तुझे ( प्रति उदहासत ) प्राप्त हुई हैं, और उनका तूने ( स-जोषाः ) सेवन किया है ॥ २ ॥

[२०६] ( अ-द्रुहः ) द्रोह न करनेवाले मरुत्, मित्र और अर्यमा ( यं पान्ति ) जिसकी रक्षा करते हैं, ( सः मर्त्यः ) वह मनुष्य ( सु-नीथः घ ) निश्चयसे उत्तम मार्गपर चलनेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ यं अद्रुहः पान्ति स मर्त्यः सुनीथः— जिसका द्रोह न करनेवाले देव संरक्षण करते हैं, वह मनुष्य उत्तम मार्गसे जानेवाला होता है ।

[२०७] हे इन्द्र ! ( यत् ) जो धन तूने ( वीळौ ) मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) जो धन स्थिर स्थानमें रखा हुआ है, ( यत् पर्शाने पराभृतं ) जो भूमिमें रखा हुआ है, ( तत् स्पार्हं वसु ) उस उत्तम धनको ( आभर ) हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥

२०८ श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९३।१६ )

२०९ अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

२१० धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥ ( ३।५२।१ )

२११ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१४।१३ )

२१२ इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

२१३ तुभ्यꣳ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ १० ॥

( ऋ. ८।९३।२५ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ८ । उ० २ । धा० ३३ । (ठि) । ]

---

[ २०८ ] ( वृत्र-हन्तमं शर्धं ) शत्रुके मारनेवाले बलको तुमने ( श्रुतं ) सुना ही है, ( चर्षणीनां ) मनुष्योंमें ( महे राधसे ) महान् धनकी प्राप्तिके लिए उस बलको ( प्र आशिषे ) उपभोगके लिए ( वः ) तुम्हें देता हूं ॥ ५ ॥

[ २०९ ] हे ( शूर इन्द्र ) वीर इन्द्र ! ( ते श्रवसे ) तेरा यश सुननेके लिए ( अरं गमेम ) बहुतसे अवसर हमें मिलें, हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( त्वावतः परेमणि ) तेरे समान श्रेष्ठ देवताके संरक्षणमें ( अरं ) आनन्दित होनेके लिए हमें पर्याप्त अवसर मिले ॥ ६ ॥

[ २१० ] हे इन्द्र ! ( धानावन्तं ) भुंजे हुए, ( करम्भिणं ) दही और सत्तूसे मिश्रित ( अपूपवन्तं ) पुओंके साथ तथा ( उक्थिनं ) स्तोत्र जिसके साथ बोले जाते है, ऐसे ( नः ) हमारे सोमरसको ( प्रातः जुषस्व ) सबेरे सेवन कर ॥ ७ ॥

[ २११ ] ( यत् ) जब ( विश्वाः स्पृधः अजयः ) सब शत्रुकी सेनाओंको हरा दिया, तब ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( अपां फेनेन ) जलोंके झागसे ( नमुचेः शिरः उदवर्तयः ) नमुचिके सिरको तोडा ॥ ८ ॥

१ अपां फेन— पानीका झाग, समुद्री झाग ।

२ नमुचिः— शीघ्र अच्छा न होनेवाला रोग, शीघ्र अच्छा न होनेवाला रोग समुद्री झागके अनुपानसे ठीक हो जाता है ।

[ २१२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( इमे सोमाः ) ये सोमरस ( सुतासः ) निकालकर तैय्यार किए गए हैं ( च ये सोत्वाः ) और जो रस निकालकर तैय्यार किए गए है, हे ( प्रभू-वसो ) बहुत सारा धन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तेषां मत्स्व ) उन सोमरसोंसे तू आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[ २१३ ] हे ( विभावसो ) तेजस्वी धन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तुभ्यं सोमाः सुतासः ) तेरे लिए ये सोमरस निकालकर तैय्यार किए है, और ( बर्हिः स्तीर्णं ) आसन फैलाकर रखा हुआ है, हे इन्द्र ! इस कुशासनपर बैठ और सोम पी, तथा ( स्तोतृभ्यः ) उपासकोंको ( मृडय ) सुखी कर ॥ १० ॥

॥ यहां दसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

( १-९ ) १ शुनःशेप आजीगर्तिः, २ श्रुतकक्ष आंगिरसः ( ऋ० सुकक्षो आंगिरसो वा; ) ३ त्रिशोकः काण्वः; ४ मेधातिथिः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ ब्रह्मातिथिः काण्वः; ७ विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा; ८ प्रस्कण्वः काण्वः ( ऋ० कण्वो घौरः ); ९ मेधातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ५ विश्वेदेवाः ), ६ अश्विनौ; मित्रावरुणौ; ८ मरुतः; ९ विष्णुः ) ॥ गायत्री ॥

२१४ आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मꣳहिष्ठꣳसिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।१ )

२१५ अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।१० )

२१६ आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४५।४ )

२१७ बृबदुक्थꣳहवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।३२।१० )

२१८ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥ ( ऋ. १।९०।१ )

२१९ दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथातनत् ॥६॥ ( ऋ. ८।५।१ )

---

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ २१४ ] ( वाजयन्तः ) अन्नवाले हम यजमान ( शतक्रतुं ) सैकडों उत्तम काम करनेवाले ( महिष्ठं ) महान् ( वः इन्द्रं ) तुम्हारे इन्द्रको ( क्रिविं यथा ) खेतको जैसे पानीसे सींचते है, उसी प्रकार ( इन्दुभिः आ सिञ्चे ) सोमरसोंसे सींचते हैं ॥ १ ॥

[ २१५ ] हे इन्द्र ! ( अतः चित् ) इस द्युलोकसे ( शत-वाजया ) सैकडों प्रकारके बलसे तथा ( सहस्र-वाजया ) हजारों तरहके अन्नसे युक्त होकर ( इषा ) रसोंके साथ ( नः ) हमारे पास ( उप याहि ) आ ॥ २ ॥

[ २१६ ] ( जातः वृत्रहा ) उत्पन्न होते ही वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने ( बुन्दं आददे ) बाण हाथमें ले लिया और ( मातरं विपृच्छात् ) अपनी मातासे पूछा कि ( के के उग्राः इह शृण्विरे ) कौन कौन महान् वीर यहां प्रसिद्ध हैं ॥३॥

[ २१७ ] ( ऊतये ) सभीके संरक्षणके लिए ( सृप्रकरस्नं ) हाथोंको फैलानेवाले, ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( साधः कृण्वन्तं ) साधनोंको देनेवाले, और ( बृबदुक्थं ) जिसकी बहुत स्तुति की जाती है, ऐसे उस इन्द्रको ( हवामहे ) हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[ २१८ ] ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण ये ( विद्वान् ) ज्ञानी देव ( नः ) हमें ( ऋजु-नीती नयति ) सरल नीतिके मार्गसे लेजाते हैं । ( देवैः सजोषाः अर्यमा ) देवोंके साथ समान रीतिसे रहनेवाला अर्यमा भी हमें सरल मार्गसे उन्नतिको पहुंचावे ॥ ५ ॥

[ २१९ ] ( दूरात् ) दूर आकाशकी पूर्व दिशावाली ( इह सतः एव ) मानों यहीं है ऐसी दिखाई देनेवाली तथा ( अरुणप्सुः ) अरुण प्रकाशको फैलानेवाली उषा ( यत् अशिश्वितत् ) जब प्रकाशित होने लगी, तब ( भानुं ) प्रकाशको ( विश्वथा व्यतनत् ) चारों ओर फैलाने लगी ॥ ६ ॥

२२० आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांऽसि सुक्रतू ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।६२।१६)
२२१ उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥ (ऋ. १।३७।१०)
२२२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांऽसुले ॥ ९ ॥ (ऋ. १।२२।१७)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ६ । उ० १ । धा० ३९ । (को) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १,७,८ मेधातिथिः काण्वः; २ वामदेवो गौतमः; ३, ५ मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः; ४ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ दुर्मित्रः ( सुमित्रो वा ) कौत्सः; ९ विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद् उदलो वा; १० श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा ) आंगिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२२३ अतीहि मन्युषाविणंऽसुषुवांऽसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३२।२१)
२२४ कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥
२२५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ (ऋ.८।२।१४)
२२६ इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः । हरिवांत्सुतानांऽसखा ॥ ४ ॥

---

[ २२० ] ( सु-क्रतू मित्रा-वरुणा ) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण ( नः गव्यूर्ति ) हमारे गौ-समूहको ( घृतैः आ उक्षतं ) घीसे अथवा घी उत्पन्न करनेवाले दूधसे भरपूर करे, अर्थात् हमें बहुतसा दूध देनेवाली गायें दे, ( रजांसि ) लोकोंको ( मध्वा ) मधुर रससे सिंचित करे ॥ ७ ॥

[ २२१ ] ( त्ये सूनवः गिरः ) तेरे पुत्र मरुत् गर्जना करते हुए ( यज्ञेषु ) यज्ञमें ( काष्ठाः उ उत् अत्नते ) दिशाओंसे ज्वालाओंके समान फैलते हैं इस कारण ( वाश्राः ) रंभाती हुई गायोंको ( अभिज्ञु यातवे ) घुटनेतक भरे पानीमें जाना पडता है ॥ ८ ॥

[ २२२ ] ( विष्णुः ) व्यापक ईश्वरने ( इदं विचक्रमे ) इस विश्वमें ऐसा पराक्रम किया है, कि यहां ( त्रेधा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पैरोंको इसने रखा है । ( अस्य पांसुले ) इसके धूलसे भरे एक कदमके स्थानमें सब जगत् ( समूढं ) समा गया है ॥ ९ ॥

॥ यहां ग्यारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ २२३ ] हे इन्द्र ! ( मन्यु-षाविणं ) क्रोधित होकर सोमरसोंको निकालनेवाले यजमानको ( अतीहि ) छोड दे, ( सु-सुवांसं उपेरय ) और उत्तम रीतिसे सोमरस निकालनेवालेके पास जा, और ( अस्य रातौ ) इसके यज्ञमें ( सुतं पिब ) सोमरस पी ॥ १ ॥

[ २२४ ] ( महे प्रचेतसे देवाय ) महान् ज्ञानी इन्द्र देवके लिए ( कदु वचः शस्यते ) तुच्छसा दिखाई देनेवाला हमारा स्तोत्र भी प्रशंसित होता है, क्योंकि ( तत् इत् अस्य वर्धनं ) वे स्तोत्र इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेवाले ही है ॥ २ ॥

[ २२५ ] ( अ-गोः ) स्तुति न करनेवालेका ( अयिः ) शत्रु इन्द्र ( शस्यमानं उक्थं चन ) कहे जानेवाले स्तोत्रोंको ( न आचिकेत ) नहीं जानता है, ऐसी बात नहीं, और ( गीयमानं गायत्रं न ) गाये जानेवाले गायत्र सामको नहीं सुनता, ऐसा भी नहीं, वह अवश्य जानता और सुनता है ॥ ३ ॥

[ २२६ ] ( वाजानां वाजपतिः ) बलवानोंमें भी सबसे अधिक बलवान् ( हरिवान् इन्द्रः ) घोडोंको पास रखनेवाला इन्द्र ( उक्थेभिः मन्दिष्ठः ) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर ( सुतानां सखा ) सोमयज्ञ करनेवालोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥

२२७ आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः । महाँ इव युवजानिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।२।१९ )

२२८ कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१०५।१ )

२२९ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१५।५ )

२३० वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।३२।७ )

२३१ एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥

२३२ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९२।२८ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [ स्व० १२ । उ० ना । धा० ३० । यौ ॥ ]

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्यैकसाम्नि समाप्तम् ॥

---

[ २२७ ] हे इन्द्र ! हमारे ( सुतं उप आ याहि ) सोमयज्ञमें आ, ( वाजेभिः मा हृणीयथाः ) दूसरोंके द्वारा दिए गए हविष्यान्न पर दृष्टि भी मत डाल, ( युवजानिः महान् इव ) जवान स्त्री रखनेवाला तरुण पुरुष अपनी स्त्रीकी ओर जिस प्रकार नजर रखता है, उस प्रकार तू कर ॥ ५ ॥

[ २२८ ] हे ( वसो ) व्यापक इन्द्र ! ( स्तोत्रं हर्यते ) स्तोत्रोंको सुननेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( दीर्घं सुतं ) विशेष रूपसे निकाले गए सोमरसोंमें ( वाताप्याय श्मशा ) जल मिलानेके लिए जैसे नहरें रोकते हैं, उसी प्रकार ( कदा अवारुधत् वा ) तुझे कब रोकें और तुझे वरण करे ॥ ६ ॥

[ २२९ ] हे इन्द्र ! ( ब्राह्मणात् राधसः ) ब्राह्मण ग्रंथोंको बोलनेवालेके यज्ञ पात्रसे ( सोमं ऋतून् अनु पिब ) सोमरसोंको ऋतुओंके अनुसार पी, क्योंकि ( तव इदं सख्यं ) तेरी यह मित्रता ( अस्तृतं ) कभी न टूटनेवाली है ॥ ७ ॥

१ तव सख्यं अस्तृतं— तेरी मित्रता कभी टूटती नहीं है ।

[ २३० ] हे ( गिर्वणः इन्द्र ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( ते ) तेरी ( वयं घ ) हम ( स्तोतारः स्मसि ) स्तुति करनेवाले हैं, हे ( सोम-पाः ) सोम पीनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः जिन्व ) तू हमें सन्तुष्ट कर ॥ ८ ॥

[ २३१ ] हे इन्द्र ! ( पृक्षु कासुचित् ) सम्बन्धमे आये हुए किन्हीं ( नः तनूषु ) हमारे अंगोंमें ( नृ-मणं आधेहि ) बल स्थापन कर, हे ( उग्र ) वीर इन्द्र ! ( सत्रा-जित् पौंस्यं ) सब शत्रुओंको जिससे हम एक साथ जीत लें ऐसा बल हममें स्थापित कर ॥ ९ ॥

१ पृक्षु नः तनूषु नृम्णं आधेहि— हमारे सम्बन्धियोंमें नेतृत्वके गुणों और बलोंको बढा ।

२ सत्राजित् पौंस्यं आधेहि— सब शत्रुको एक साथ जितानेवाले बलको हमें दे ।

[ २३२ ] हे इन्द्र ! ( वीर-युः एव असि ) बलशाली शत्रुओंके साथ भी तू युद्ध करनेवाला है । ( हि ) क्योंकि तू ( शूरः उत स्थिरः ) शूर है और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है । इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं ) स्तुतिके योग्य है ॥ १० ॥

१ वीरयुः असि— शत्रुओंके साथ तू युद्ध करनेवाला है, अथवा वीरोंको संयुक्त करके उन्हें तू लानेवाला है ।

२ शूरः उत स्थिरः असि— तू शूरवीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

३ ते मनः राध्यं— तेरा मन स्तुति और पूजाके योग्य है ।

॥ यहां बारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[ ५ ]

( १–१० ) १, ६, ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २ भरद्वाजः ( ऋ० शंयुः ) बार्हस्पत्यः; ३ प्रस्कण्वः काण्वः, ४ नोधा गौतमः; ५ कलिः प्रागाथः; । ७ मेधातिथिः काण्वः; ८ भर्गः प्रागाथः; १० प्रगाथो घोरः काण्वः ॥ इन्द्रः, ९ मरुतः ॥ बृहती ॥

२३३ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।२२ )

२३४ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४६।१ )

२३५ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४९।१ )

२३६ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८८।१ )

---

[ १३ ] त्रयोदशः खण्डः ।

[ २३३ ] हे ( शूर इन्द्र ) शूर इन्द्र ! ( अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं ) इस जंगम और स्थावर जगत्के स्वामी तथा ( स्वर्-दृशं त्वा ) सबोंको देखनेवाले तुझे हम ( अ-दुग्धाः धेनवः इव ) दूध न दुही हुई गायोंके समान ( अभि नोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दृशं त्वा अभिनोनुमः— इस चलनेवाले और स्थिर जगत्का तू स्वामी है, तू सभीको देखनेवाला है, तुझे हम नमस्कार करते हैं ।

[ २३४ ] ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातौ ) अन्नका दान होनेके समय हे इन्द्र ! ( त्वां इत् हि हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं ( सत्पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुझे ( नरः वृत्रेषु हवन्ते ) सब मनुष्य वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें सहायताके लिए बुलाते हैं, उसी प्रकार ( अर्वतः ) घोडोंके कारण होनेवाले ( काष्ठासु ) युद्धोंमें भी तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ सत्पतिं त्वा नरः वृत्रेषु हवन्ते— सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाले तुझे लोग युद्धोंमें मददके लिए बुलाते हैं ।

२ काष्ठासु त्वा हवन्ते— अन्य युद्धोंमें भी तुझे ही बुलाते हैं ।

[ २३५ ] ( यः पुरू-वसुः मघवा ) जो बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र ( जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवाले हमारे लिए हजारों प्रकारसे धन देता है, ( यथा-विदे ) जैसे जैसे तुम जानते हो, उस प्रकार हे यज्ञ करनेवालो ! ( वः ) तुम ( सु-राधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी ( अभि अर्च ) पूजा करो ॥ ३ ॥

१ पुरुवसुः मघवा सहस्रेण शिक्षति— बहुत धनवाला वह इन्द्र हजारों प्रकारसे धन देता है ।

[ २३६ ] हे यजमानो ! ( दस्म ) सुन्दर और ( ऋती-षहं ) रुकावटें पैदा करनेवाले शत्रुको मारनेवाले ( वसोः अन्धसः मन्दानं ) सबको जीवन देनेवाले सोमरस रूपी अन्नको पीकर आनन्दित होनेवाले ( वः ) तुम्हारे पूज्य इन्द्रको ( स्वसरेषु ) गौशालामें ( धेनवः वत्सं न ) गायें जैसे बछडेके पास जाती हैं, उसी प्रकार ( गीर्भिः अभिनवामहे ) स्तुति करते हुए हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

१ ऋतीषहं गीर्भिः अभि नवामहे— बाधा करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।

२३७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रꣳसबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६६।१)

२३८ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।३२।२०)

२३९ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माꣳअवन्तु ते धियः ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।३।१)

२४० त्वꣳह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६१।७)

---

[२३७] हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (तरोभिः) तेज दौडनेवाले घोडोंसे युक्त (विदद् वसुं) धनवान् (इन्द्रं) इन्द्रकी (स-बाधः) शत्रुओंसे (ऊतये) संरक्षणके लिए (बृहत् गायन्तः) बृहत् साम गाते हुए पूजा करो, मैं भी (सुत-सोमे अध्वरे) सोम यज्ञमें (भरं कारिणं न) भरपूर पोषण करनेवाले इन्द्रको (हुवे) बुलाता हूं ॥ ५ ॥

१ विदद्वसुं इन्द्रं ऊतये बृहत् गायन्तः हुवे— धनवान इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बृहत् सामका गान करते हुए सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

[२३८] (तरणिः इत्) युद्धोंमें तारनेवाला वीर (युजा पुरन्ध्या) उत्तम बुद्धिसे जैसे (वाजं सिषासति) अन्न प्राप्त करना चाहता है, और (सुद्रुवं नेमिं) उत्तम लकडीकी धुराको (त्वष्टा इव) जैसे बढई ठीक करता है, उसी तरह (पुरु-हूतं) अनेकोंके द्वारा पूजित होनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रको (गिरा वः आ नमे) वाणीसे नमस्कार करके अपने अनुकूल बनाते हैं ॥ ६ ॥

[२३९] हे इन्द्र ! (रसिनः गोमतः) रसवाले तथा गौदुग्धसे मिश्रित इस (नः सुतस्य पिब) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसोंको पी, और (मत्स्व) आनन्दित हो, (सधमाद्ये) एक साथ बैठकर जिसमें आनन्दित होते हैं, ऐसे इस यज्ञमें (आपिः) तू हमारा भाई होता है, इसलिए (नः वृधे बोधि) हमारे उन्नतिके मार्गको दिखा, (ते धियः अवन्तु) तेरी बुद्धि हम सबोंका संरक्षण करें ॥ ७ ॥

१ सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि— एकत्र बैठकर जहां कर्म किया जाता है, उस काममें तू हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतिका मार्ग हमें बता।

२ ते धियः अवन्तु— तेरी बुद्धि हमारा संरक्षण करे।

[२४०] हे इन्द्र ! (हि त्वं) निश्चयसे तू (वसुत्तये एहि) धन देनेके लिए आ, और आकर (चेरवे) उत्तम आचरण करनेवाले मुझे (भगं विदाः) धन दे, हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (गविष्टये उत् वावृषस्व) गायोंकी इच्छा करनेवाले मुझे गाय दे, हे इन्द्र ! (इष्टये) इच्छा करनेवाले मुझे (अश्वं उत्) घोडा भी दे ॥ ८ ॥

१ त्वं वसुत्तये एहि— तू धन देनेके लिए आ।

२ चेरवे भगं विदाः— उत्तम आचरण करनेवाले मनुष्यको धन दे।

२४१ न हि वश्चरमं च न वासिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ७।५९।३ )

२४२ मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० १२ । उ० ५ । धा० ७३ । (त्रि) ॥ ]
इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १–१० ) १ पुरुहन्मा आंगिरसः; २, ३ मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ; ४ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ गोतमो ( गौतमो वा ) राहूगणः; ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ; ७, ८, ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; १० देवातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२४३ नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।३ )

२४४ य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१२ )

---

[ २४१ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( वसिष्ठः वः ) वसिष्ठ ऋषि तुममेंसे ( चरमं चन ) छोटेको भी ( नहि परिशंसते ) छोडकर स्तुति नहीं करता, अपितु सभीकी स्तुति करता है, ( अद्य ) आज ( अस्माकं सुते ) हमारे यज्ञमें ( विश्वे मरुतः ) सब मरुत ( सचा ) एक स्थानपर बैठकर सोमरस ( पिबन्तु ) पीवें ॥ ९ ॥

[ २४२ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्यत् मा चित् विशंसत ) इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति न करो, ( मा रिषण्यत ) बेकार परिश्रम मत करो, ( सुते ) सोम यज्ञमें ( वृषणं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सचा स्तोत ) एक साथ बैठकर स्तुति करो, ( उक्था च ) और स्तोत्रोंको ( मुहुः शंसत ) बार बार कहो ॥ १० ॥

१ सचा स्तोत— एक जगह बैठकर स्तुति करो ।

॥ यहां तेरहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १४ ] चतुर्दशः खण्डः ।

[ २४३ ] ( यः ) जो यजमान ( सदा–वृधं ) सदा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले ( विश्व–गूर्तं ) सभीसे प्रशंसित होनेवाले ( ऋभ्वसं ) महान् ( ओजसा अधृष्टं ) बलके कारण किसीसे न दबनेवाले ( धृष्णुं ) शत्रुको दबानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रको मैं ( यज्ञैः न चकार ) यज्ञसे अपने अनुकूल बनाता हूँ । ( तं ) उस यजमानको ( कर्मणा न किः नशत् ) कर्मोंसे कोई दबा नहीं सकता ॥ १ ॥

न— समान, अनुकूल, नहीं ।

[ २४४ ] ( यः ) जो इन्द्र ( अभि–श्रिषः ) जोडनेके साधनोंके ( ऋते चित् ) बिना भी ( जत्रुभ्यः आतृदः ) गलेकी स्नायुओंसे रक्त निकलनेपर भी ( पुरा संधिं सन्धाता ) फिर संधियोंको जोड देता है, वह ( मघवा पुरुवसुः ) धनवान् और बहुतसे द्रव्योंको पासमें रखनेवाला इन्द्र ( विन्हुतं पुनः निष्कर्ता ) कटे हुए भागोंको फिर जोड देता है ॥ २ ॥

१ पुरा संधिं संधाता— फिर संन्धियोंको जोडता है ।
२ विन्हुतं पुनः निष्कर्ता— कटे हुए भागोंको जोडता है ।

२४५ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१।२४)

२४६ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ ४ ॥ (ऋ. ३।४५।१)

२४७ त्वमङ्ग प्र शँसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।१९)

२४८ त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हँस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९०।५)

२४९ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रँसमीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।३।५)

---

[ २४५ ] हे इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजः केशिनः ) मंत्र बोलते ही जुड जानेवाले, अच्छे बालोंवाले ( हिरण्यये रथे ) सोनेके रथमें ( युक्ताः ) जुडे हुए ( आ सहस्रं शतं ) सैकडों और हजारों ( हरयः ) घोडे ( त्वा ) तुझे ( सोमपीतये ) सोम पीनेके लिए ( आवहन्तु ) ले आवें ॥ ३ ॥

शतं सहस्रं हरयः— सैकडों और हजारों घोडे, किरण।

[ २४६ ] हे इन्द्र ! ( मन्द्रैः ) आनन्ददायक ( मयूर-रोमभिः ) मोरके समान केशोंसे युक्त ( हरिभिः ) घोडोंसे यात्री जैसे ( धन्वा इव ) रेगिस्तानको पार कर जाता है, उसी प्रकार ( तान् अति आयाहि ) बीचमें आनेवाली रुकावटोंको दूर करते हुए आ, ( इत् ) और ( पाशिनः न ) हाथमें जालको लेकर शिकारी जैसे पक्षियोंको पकडता है, उस प्रकार ( त्वा मा नियेमुः ) तुझे पकडकर तेरे बीचमें कोई रुकावट पैदा न करे, ( एहि ) तू आ ॥ ४ ॥

[ २४७ ] ( अङ्ग शविष्ठ ) हे प्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) प्रकाशित होनेवाला तू ( मर्त्यं प्रशंसिषः ) उपासक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वदन्यः ) तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ( मर्डिता नास्ति ) सुख देनेवाला नहीं है, तेरे लिए ही ( वचः ब्रवीमि ) ये स्तुतियां करता हूं ॥ ५ ॥

१ त्वद् अन्यः मर्डिता नास्ति— तेरे अलावा और कोई सुख देनेवाला नहीं है।

[ २४८ ] ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शवसः पतिः ) बलवान् ( ऋजीषी ) सोमरस पीनेवाला और ( यशाः ) यशस्वी ( असि ) है, तू ( अ-प्रतीनि पुरु वृत्राणि ) अत्यधिक बलशाली बहुतसे मित्रोंको ( अनुत्तः ) किसीकी प्रेरणाके बिना ही ( चर्षणी-धृतिः ) लोगोंके संरक्षणके लिए ( एकः इत् ) अकेले ही ( हंसि ) मारता है ॥ ६ ॥

१ अप्रतीनि पुरु वृत्राणि अनुत्तः, चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि— पीछे न हटनेवाले बहुतसे शत्रुओंको दूसरे किसीकी प्रेरणाके बिना, सब मनुष्योंके हित करनेके लिए अकेले ही मार देता है।

[ २४९ ] ( देवतातये ) देवोंके लिए किए गए यज्ञमें ( इन्द्रं इत् हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं, ( प्रयति अध्वरे इन्द्रं ) यज्ञके प्रारम्भ हो जानेपर इन्द्रको ही बुलाते हैं ( समीके वनिनः इन्द्रं ) यज्ञके समाप्त हो जानेपर भी हम उपासक इन्द्रको बुलाते हैं, उसी प्रकार ( धनस्य सातये इन्द्रं ) धनकी प्राप्तिके लिए भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ७ ॥

२५० इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।३।३)

२५१ उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।३।१५)

२५२ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १० ॥ (ऋ. ८।४।३)

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ११ । उ० ७ । धा० ७२ । (खा) ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ भर्गः प्रागाथः; २,८ रेभः काश्यपः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४, ९ मेधातिथिः काण्वः; ( ऋ० मेध्यातिथिः काण्वः ); ५, ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० भरद्वाजः ( ऋ० शंयुः ) बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रः; ३ मित्रावरुणावित्याः ॥ बृहती ॥

२५३ शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६१।५)

२५४ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।१)

---

[ २५० ] हे ( पुरू-वसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( मम इमाः याः गिरः ) मेरी ये जो स्तुतियां हैं, वे ( त्वा वर्धन्तु ) तेरे यशको बढावें, ( पावक-वर्णाः ) अग्निके समान तेजस्वी ( शुचयः विपश्चितः ) पवित्र विद्वान् लोग तेरी ( स्तोमैः अभ्यनूषत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[ २५१ ] ( सत्रा-जितः ) सदा शत्रुओंको जीतनेवाले ( धन-सा ) धन देनेवाले ( अक्षित-ऊतयः ) क्षीण न होनेवाले संरक्षणोंको करनेवाले, ( वाजयन्तः ) बलवान् ( रथाः इव ) रथके समान ( त्ये मधुमत्तमाः गिरः ) उन बहुत उत्तम स्तुति और ( स्तोमासः ) स्तोत्रोंको ( उत् ईरते ) बोला जाता है ॥ ९ ॥

[ २५२ ] ( यथा गौरः ) जैसे गौर मृग ( तृष्यन् ) प्यासा होकर ( अपा कृतं इरिणं ) पानीसे भरे हुए तालाबके पास ( अवैति ) जाता है, उसी प्रकार ( आपित्वे प्रपित्वे ) भाई चारेको याद करके हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः तूयं आगहि ) हमारे पास जल्दी आ, और ( कण्वेषु सचा सु पिब ) कण्वके यज्ञमें बैठकर उत्तम रीतिसे सोम पी ॥ १० ॥

॥ यहां चौदहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १५ ] पञ्चदशः खण्डः ।

[ २५३ ] हे ( शचीपते शूर इन्द्र ) शक्ति सम्पन्न शूर इन्द्र ! ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) सब संरक्षणके साधनोंके साथ ( शग्धि ) इच्छित वर हमें दे, ( भगं न ) ऐश्वर्यवान्के समान ( यशसं ) यशस्वी और ( वसु-विदं ) धन देनेवाले ( त्वा ) तेरी ( अनुचरामसि ) आराधना हम करते हैं ॥ १ ॥

[ २५४ ] हे इन्द्र ! ( स्वर्वान् ) आत्म शक्तिसे युक्त तू ( याः भुजः ) जो भोग ( असुरेभ्यः आभरः ) असुरोंसे ले आया है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( अस्य ) इस धनसे ( स्तोतारं वर्धय ) तेरी स्तुति करनेवालोंका संरक्षण कर, ( च ) और ( ये त्वे वृक्त-बर्हिषः ) जो तेरे लिए यज्ञमें आसनको फैलाते हैं, उनको बढा ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क२र
२५५ प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १२३ २ ३ १ २ ३ १ २र
वरूथ्ये३वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रंराजसु गायत ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०१।५)
३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
२५६ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।३।७)
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
२५७ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वृत्रंहनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।८९।३)
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
२५८ बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।८९।१)
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
२५९ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ७ ॥ (ऋ. ७।३२।२६)

---

१ स्ववान् याः भुजः असुरेभ्यः आभरः, अस्य स्तोतारं वर्धय— अपनी शक्तिसे युक्त रहनेवाला तू जो धन असुरोंसे ले आया है, उस धनकी सहायतासे उपासकोंको बढा ।

[ २५५ ] हे ( ऋता-वसो ) यज्ञके लिए अपने पास धन रखनेवाले यज्ञ करनेवालो ! ( मित्राय ) मित्रके लिए ( अर्यम्णे ) अर्यमाके लिए और ( वरूथ्ये वरुणे ) यज्ञ शालामें बैठे हुए वरुणके लिए ( सचथ्यं छन्द्यं वचः ) गानेके योग्य, छन्दोबद्ध स्तोत्रोंको ( राजसु प्रगायत ) उनके विराजमान होजानेके बाद गाओ ॥ ३ ॥

[ २५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) याज्ञिक जन ( पूर्व-पीतये ) सबसे पहले सोम पीनेके लिए ( स्तोमेभिः त्वां अभि ) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, ( समीचीनासः ऋभवः ) एकत्रित हुए ऋभुओंने ( समस्वरन् ) तेरी स्तुति की, ( रुद्राः ) रुद्रके पुत्र मरुतोंने भी ( पूर्व्यं गृणन्त ) पहलेके पुरुषोंके समान तेरी स्तुति की ॥ ४ ॥

[ २५७ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( बृहते ) महान् इन्द्रके लिए ( वः ) तुम ( ब्रह्म अर्चत ) स्तोत्रोंको कहो, उसके अनन्तर ( वृत्र-हा ) वृत्रका नाश करनेवाला ( शत-क्रतुः ) सैकडों कर्म करनेवाला ( शत-पर्वणा वज्रेण ) सैकडों धाराओंवाले वज्रसे ( वृत्रं हनति ) वृत्रको मारता है ॥ ५ ॥

१ मरुतः— मरुत् गण, स्तुति करनेवाले, यज्ञ करनेवाले ।

२ वृत्रहा शतक्रतुः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हनति— वृत्रको मारनेवाला तथा सैंकडों कार्य करनेवाला इन्द्र सैंकडों धारवाले वज्रसे वृत्रको मारता है ।

[ २५८ ] हे ( मरुतः ) यज्ञ कर्त्ताओ ! ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( वृत्र-हन्तमं बृहत् गायत ) वृत्रको नष्ट करनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो, ( ऋता-वृधः ) यज्ञको बढानेवाले लोगोंने ( देवाय ) इन्द्र देवके लिए ( देवं जागृवि ज्योतिः ) दिव्य जागृतिको करनेवाली सूर्यकी ज्योति ( येन अजनयत् ) उसकी सहायतासे उत्पन्न की है ॥ ६ ॥

[ २५९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः क्रतुं आभर ) हमें यज्ञ कर्म करनेका ज्ञान दे, ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जिस प्रकार पिता पुत्रको शिक्षा देता है, उसी प्रकार ( नः शिक्ष ) हमें शिक्षा दे, हे ( पुरु-हूत ) बहुतोंद्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( यामनि ) यज्ञमें ( जीवाः ) हम लोग ( ज्योतिः अशीमहि ) सूर्यकी ज्योति प्रतिदिन देखें ॥ ७ ॥

१ नः क्रतुं आभर— हमें सुबुद्धि दे, उत्तम कर्म करनेकी बुद्धि दे ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष— जैसे पिता लडकोंको शिक्षा देता है, उस प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

३ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— यज्ञमें जीवित रहकर हम तेज प्राप्त करें ।

२६० मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९७।७ )

२६१ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३३।१ )

२६२ यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।४६।७ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० १० । उ० १ । धा० ६२ । (पा) ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; २ रेभः काश्यपः; ३ वत्सः ( ऋ० वशोऽश्व्यः ); ४ भरद्वाजः ( शंयुः ) बार्हस्पत्यः; ५ नृमेध आंगिरसः; ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; ७ नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; १० कलिः प्रागाथः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२६३ सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३३।१० )

---

[ २६० ] हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् ) हमें दूर मत कर, ( नः सधमाद्ये भव ) हमारे यज्ञमें आ, हे इन्द्र ! ( त्वं नः ऊती ) तू हमारा रक्षक है, ( त्वं इत् नः आप्यं ) तू ही हमारा भाई है, हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् ) हमें दूर मत कर ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र ! नः मा परा वृणक्— हे इन्द्र ! तू हमें दूर मत कर ।
२ नः सधमाद्ये भव— हमारे यज्ञमें आ और सबके साथ बैठ ।
३ त्वं नः ऊती— तू हमारी रक्षा करनेवाला है ।
४ त्वं नः आप्यं— तू हमारा भाई है ।

[ २६१ ] हे ( वृत्रहन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वयं घ सुतावन्तः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले हम सोमयज्ञमें ( आपः न ) जल प्रवाहोंके समान प्राप्त होते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र यज्ञोंमें ( वृक्त-बर्हिषः स्तोतारः ) आसन फैलाकर स्तुति करनेवाले ( परि आसते ) एकत्र बैठते हैं, उसी प्रकार हम बैठते हैं ॥ ९ ॥

[ २६२ ] हे इन्द्र ! ( नाहुषीषु कृष्टिषु ) मानवी प्रजाओंमें ( ओजः नृम्णं च ) जो बल और पौरुष है, ( यत् वा ) अथवा जो ( पंचक्षितीनां द्युम्नं ) पांच जनोंमें जो धन है, उस प्रकारके धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे, उसी प्रकार ( सत्रा ) एकतासे बढनेवाला ( विश्वानि पौंस्या ) सब बल हमें दे ॥ १० ॥

१ पंचक्षितीनां द्युम्नं आभर— पंचजनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।
२ सत्रा विश्वानि पौंस्या आभर— एकतासे उत्पन्न होनेवाले सब बल हमें प्राप्त हों ।

॥ यहां पंद्रहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १६ ] षोडशः खण्डः ।

[ २६३ ] हे ( उग्र ) वीर इन्द्र ! तू ( इत्था ) इस प्रकार ( सत्यं वृषा इत् असि ) निश्चयसे बलवान् है, ( वृष-जूतिः नः अविता ) सोमयज्ञ करनेवालों द्वारा रक्षाके लिए बुलानेके कारण तू हमारा संरक्षण कर । तू ( वृषा हि शृण्विषे ) बलवान् सुना जाता है, ( परावति वृषा ) दूर देशमें भी तू बलवान् है और ( अर्वावति श्रुतः ) पासमें

२६४ यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।४)

२६५ अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४६।१४)

२६६ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।४६।९)

२६७ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९९।३)

---

१ वृषा— बलवान्, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला,
२ वृषा शृण्विषे— तू बलवान् प्रसिद्ध है ।
३ परावति अर्वावति वृषा श्रुतः— तू दूर और पासके देशोंमें शक्तिमान् प्रसिद्ध है ।

[ २६४ ] हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( यत् परावति असि ) जब तू दूर देशमें रहता है, और हे ( वृत्र-हन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( यत् अर्वावति ) जब तू पासके देशमें रहता है, हे इन्द्र ! ( अतः ) इस स्थानसे ( केशिभिः गीर्भिः ) अयाल वाले घोडेके समान शीघ्रगामी स्तुतियोंसे ( सुतावान् ) सोमयज्ञ करनेवाला ( त्वा आविवासति ) तुझे बुलाता है ॥ २ ॥

१ शक्र ! परावति असि, अर्वावति असि— हे इन्द्र ! जैसा तू दूर है, वैसा ही तू पास भी शक्तिमान् है ।
२ अयाल— गर्दनके बाल ।

[ २६५ ] हे उद्गाता ! ( वः ) तुम अपने हितके लिए ( अन्धसः मदेषु ) सोमरसके आनन्दमें ( वीरं नाम ) स्वयं वीर रहते हुए शत्रुको झुकानेवाले ( विचेतसं श्रुत्यं ) ज्ञानी और सुप्रसिद्ध ( शाकिनं इन्द्रं ) इन्द्रकी शक्तिशाली ( महा गिरा वचः यथा ) विशेष स्तुतिके स्तोत्रोंको जैसे हो वैसे ( गाय ) गाओ ॥ ३ ॥

[ २६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्रि-धातु त्रिवरूथं ) तीन मंजिलवाला तथा तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाला ( स्वस्तये छर्दिः शरणं ) सुखसे रहने योग्य उत्तम घर ( मघवद्भ्यः ) धनवान् यजमान्को ( मह्यं च ) और मुझे भी दे ( एभ्यः दिद्युं यावय ) और इनसे शस्त्रोंको दूर कर ॥ ४ ॥

१ त्रि-धातु त्रिवरूथं छर्दिः शरणं स्वस्तये— तीन मंजिलोंवाले और तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाले घर रहनेके लिए प्राप्त हों ।

[ २६७ ] ( सूर्यं श्रायन्तः इव ) जिस प्रकार किरणें सूर्यका आश्रय लेकर रहती हैं, उसी प्रकार ( विश्वं इत् ) सब-जगत् ( इन्द्रस्य भक्षत ) इन्द्रके ही आश्रयसे रहता है क्योंकि वह इन्द्र ( जातः जनिमानि ) उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालोंको ( ओजसा करोति ) बलसे भाग देता है जैसे पुत्रको अपने ( भागं न ) पिताके धनमेंसे भाग प्राप्त होता है, उस प्रकार ( प्रति दीधिमः ) हम अपने भागकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

१ विश्वं इन्द्रस्य भक्षत— सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।
२ जातः जनिमानि ओजसा करोति— उत्पन्न हुए और होनेवाले सबोंको वह अपनी शक्तिसे बनाता है ।

❀

२६८ न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।७०।७)

२६९ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳसमत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९०।१)

२७० तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥ (ऋ. ७।३२।१६)

२७१ क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।१।७)

---

[२६८] हे (दीर्घायो) लम्बी आयुवाले इन्द्र ! (अ-देवः मर्त्यः) ईश्वरकी उपासना न करनेवाला मनुष्य (सीं तत्) उस प्रसिद्ध अन्नको (न आप) नहीं पा सकता, (यः) जो (एतग्वा चित्) वहां जानेकी इच्छा करते हुए (एतशः युयोजते) घोडे जोडता है, उसी प्रकार (इन्द्रः हरी युयोजते) इन्द्र भी अपने घोडोंको यज्ञके स्थानको जानेके लिए जोडता है ॥ ६ ॥

१ अदेवः मर्त्यः सीं न आप— ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस प्रसिद्ध धनको प्राप्त नहीं कर सकता।

[२६९] (विश्वासु समत्सु) सब युद्धोंमें (हव्यं इन्द्रं) सहायताके लिए बुलाने योग्य इन्द्रको (नः ब्रह्माणि उप भूषत) हमारे स्तोत्र सुशोभित करते हैं, इन्द्रकी स्तुति करते हैं। हे (वृत्र-हन्) वृत्रको मारनेवाले (परम-ज्याः) जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है ऐसे (ऋची-षम) मंत्रोंसे स्तुति करनेके योग्य इन्द्र ! (सवनानि ब्रह्माणि उप) हमारे तीन सवनों और स्तोत्रोंको अलंकृत कर ॥ ॥ ७ ॥

[२७०] हे इन्द्र ! (अवमं वसु तव इत्) सबसे निम्न कोटिका धन तेरा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू ही मध्यम कोटिके धनका पोषण करता है, (परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि) और तू ही सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है, (त्वा) तुझे (गोषु नकिः वृण्वते) गाय आदि देते हुए कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र अवमं वसु तव इत्— निकृष्ट धन तेरा ही है।
२ त्वं मध्यमं पुष्यसि— तू ही मध्यम धनको बढाता है।
३ परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि— तू सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है।

[२७१] हे इन्द्र ! (क इयथ) तू कहां गया था ? (क इत् असि) अब तू कहां है ? (पुरु-त्रा चित् हि ते मनः) बहुतसे स्थानोंपर तेरा मन जाता है, हे (युध्म) युद्ध करनेमें कुशल, (खज-कृत्) युद्ध करनेवाले (पुरंदर) शत्रुकी नगरीका नाश करनेवाले इन्द्र! (अलर्षि) आ (गायत्राः प्रगासिषुः) हमारे गानेमें कुशल लोग स्तोत्रोंका गान करते हैं ॥ ९ ॥

१ हे युध्म, खजकृत्, पुरंदर, अलर्षि— हे युद्धमें कुशल, युद्ध करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले इन्द्र ! आ।

४ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
२७२ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १० ॥ (ऋ. ८।६६।७)

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४॥ [स्व० १४ । उ० १ । धा० ७४ । (ती) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १,६ पुरुहन्मा आंगिरसः; २ भर्गः प्रागाथः; ३ इरिम्बिठिः काण्वः; ४ जमदग्निर्भार्गवः; ५, ७ देवातिथिः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेध्यः काण्वः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ वास्तोष्पतिर्वा; ४ सूर्यः; ९ इन्द्राग्नी ) ॥ बृहती ॥

१ २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २
२७३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।७०।१)
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२७४ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६१।१३)
१ २ ३ १ २र ३ १ २
२७५ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांऽसत्रं सोम्यानाम् ।
३ २ ३२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।१४)

---

[ २७२ ] ( वयं ) हम यजमानोंने ( एनं वज्रिणं ) इस वज्रधारी इन्द्रको ( इदा ) इस समय और ( ह्यः ) कल ( अपीपेम ) सोमरस पिलाकर तृप्त किया, ( तस्मा उ ) इसीलिए ( अद्य सवने ) आजके यज्ञमें भी ( सुतं भर ) सोमरस भरकर उसे दे, ( नूनं श्रुते आभूषत ) निश्चयसे इस समय स्तोत्र सुननेके बाद उसको अलंकृत कर ॥ १० ॥

॥ यहां सोलहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १७ ] सप्तदशः खण्डः ।

[ २७३ ] ( यः चर्षणीनां राजा ) जो इन्द्र मानवोंका राजा है, ( रथेभिः अध्रि-गुः याता ) रथसे शीघ्रतासे जो जाता है, ( विश्वासां पृतनानां तरुता ) सब शत्रु सेनाओंका जो नाश करता है, ( यः वृत्र-हा ) जो वृत्रको मारनेवाला है ( ज्येष्ठं गृणे ) उस श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[ २७४ ] हे इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जहांसे हम डरते हैं, ( ततः नः अभयं कृधि ) वहांसे हमें निर्भय बनाओ, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( शग्धि ) तू समर्थ है, ( तत् ) इसलिए ( तव ) अपने सामर्थ्यसे ( नः ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिएं ( द्विषः विजहि ) शत्रुओंका नाश कर और ( मृधः विजहि ) हिंसकोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

१ यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि— जहांसे हम डरते है, वहांसे हमें भयरहित करो ।
२ नः ऊतये द्विषः विजाहि, मृधः विजाहि— हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओं और हिंसकोंको नष्ट कर ।
३ शग्धि— तू सामर्थ्यशाली है ।

[ २७५ ] हे ( वास्तोष्पते ) गृहस्वामी ! ( स्थूणा ध्रुवा ) घरके खम्भे दृढ हों, ( सोम्यानां अंसत्रं ) सोमयज्ञ करनेवालोंमें अन्नका बल उत्तम हो, ( द्रप्सः ) सोम पीनेवाला ( शश्वतीनां पुरां भेत्ता ) असुरोंकी बहुतसी नगरियोंको तोडनेवाला ( इन्द्रः ) इन्द्र ( मुनीनां सखा ) ऋषियोंका मित्र है ॥ ३ ॥

१ शश्वतीनां पुरां भेत्ता मुनीनां सखा इन्द्रः— असुरोंकी बहुतसी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र मुनियोंका मित्र है ।

२७६ बण्महाँ३ असि सूर्य बडादित्य महाँ३असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ३ असि ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१०१।११)

२७७ अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ३यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।४।९)

२७८ यद्द्याव इन्द्र ते शतँ३ शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रँ३सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।७०।५)

२७९ यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥ (ऋ ८।४।१)

२८० कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजँ३ सिषासति ॥ ८ ॥ (ऋ. ७।३२।१४)

---

[ २७६ ] हे ( सूर्य ) प्रेरक इन्द्र ! ( महान् असि ) तू महान् है, ( बट् ) यह सत्य है, हे ( आदित्य ) अदितिके पुत्र इन्द्र ! तू ( महान् असि ) महान् है यह ( बट् ) सत्य है, ( महः ते सतः महिमा ) महान् होनेवाले तेरी महिमाका ( पनिष्टम ) वर्णन हम करते है, हे ( देव ) देव ! तू ( मह्ना महान् असि ) अपने बलसे तू महान् है ॥ ४ ॥

[ २७७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ते सखा ) जब तेरा मित्र कोई मनुष्य होता है, तब ( इत् ) वह ( अश्वी ) घोडोंसे युक्त ( रथी ) रथ रखनेवाला, ( सुरूपः ) उत्तम रूपवाला ( गोमान् ) बहुत गायें रखनेवाला, ( श्वात्र-भाजा ) धनवान् ( वयसा सदा सचते ) अन्नसे सदा उन्नतिशील होता है, तथा वह हमेशा ( चन्द्रैः सभां उप याति ) उत्तम भूषणोंसे युक्त होकर सभामें जाता है ॥ ५ ॥

[ २७८ ] हे इन्द्र ! ( यत् द्यावः शतं स्युः ) यदि द्युलोक सौ गुना हो जाये तब भी ( त्वा न अनु-अष्ट ) तुझे घेर नहीं सकते, ( उत भूमी शतं स्युः ) पृथ्वी सौ गुनी हो जाये, तो भी वह तुझे आधार नहीं दे सकती, हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्रं सूर्याः ) यदि हजारों सूर्य हो जायें, तो भी ( त्वा न ) तुझे प्रकाशित नहीं कर सकते, ( अनु-जातं न अष्ट ) तेरे पीछे हुए ये सब तुझे व्याप नहीं सकते, ये ( रोदसी ) द्युलोक और पृथ्वी लोक तुझे व्याप नहीं सकते ॥ ६ ॥

[ २७९ ] हे इन्द्र ! ( यत् प्राग् ) क्योंकि पूर्व दिशासे ( अपाक् ) पश्चिमसे ( उदक् न्यक् ) उत्तर दिशा अथवा दक्षिण दिशासे ( नृभिः हूयसे ) तू मनुष्योंद्वारा सहायताके लिए बुलाया जाता है, इस कारण हे ( सिं ) इन्द्र ! ( आनवे पुरु नृषूतः असि ) अनुके लिए बहुत प्रकारसे तेरी प्रार्थना होती है, हे ( प्रशर्ध ) शत्रुनाशक इन्द्र ! ( तुर्वशे ) तुर्वशके लिए भी उसी प्रकार तुझे बुलाया जाता है ॥ ७ ॥

[ २८० ] ( वसो इन्द्र ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( तं त्वा कः मर्त्यः आदधर्षति ) उस तुझे कौन मनुष्य भला भय दिखाता है ? हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( ते श्रद्धा ) तुझपर श्रद्धा रखनेवाला ( वाजी ) बलवान् होता है, और वह दुःखोंसे ( पार्ये दिवि ) पार होनेके दिनमें भी ( वाजं सिषासति ) अन्नका दान करनेकी इच्छा करता है ॥ ८ ॥

१ ते श्रद्धा वाजी— तुझपर श्रद्धा करनेवाला मनुष्य बलवान् होता है।

२८५ सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।३२।८)

२८६ यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।४६।३)

२८७ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥ (ऋ. १।११२९।१)

२८८ यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥

२८९ पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।३३।४)

---

[२८५] हे याजको ! (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय) वज्रको धारण करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनोत) सोमरस निकालो, (अवसे) अपने संरक्षणके लिए अथवा उसकी प्रसन्नताके लिए (पक्तीः पचत) पुरोडाश पकाओ, (कृणुध्वं इत्) इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करो, क्योंकि इन्द्र (मयः पृणन् इत्) यजमानको सुख देते हुए (पृणते) स्वयं भी हवि ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

[२८६] (यः सत्रा-हा) जो एक साथ शत्रुओंको मारता और (विश्व चर्षणिः) सबको देखता है, (तं इन्द्रं-वयं हूमहे) उस इन्द्रको हम बुलाते हैं, हे (सहस्र-मन्यो) हजारों उत्साहोंसे युक्त (तुवि-नृम्ण) बहुत धनवान् (सत्पते) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (समत्सु) युद्धमें (नः वृधे भव) हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धिमें सहायता करनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ यः सत्राहा विश्व-चर्षणिः तं इन्द्रं वयं हूमहे— जो शत्रुओंको एक साथ मारता और मानवोंका कल्याण करता है, उस इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

२ हे सहस्र-मन्यो तुविनृम्ण सत्पते ! समत्सु नः वृधे भव— हे हजारों उत्साहसे युक्त, बहुत धनवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! युद्धोंमें हमारा यश बढे ऐसा कर ।

[२८७] हे (शची-वसू) कर्म करके धन प्राप्त करनेवाले अश्विनीकुमारो ! तुम (शचीभिः) अपनी शक्तिसे (दिवा-नक्तं दिशस्यतं) रात दिन हमें इच्छित धन दो, (वां रातिः कदाचन) तुम्हारे दान कभी भी (मा उपदसत्) कम नहीं होते, (अस्मत् रातिः कदाचन) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[२८८] (यदा कदा च) जिस समय (मीळ्हुषे) यज्ञ करनेवालेके लिए (मर्त्यः) मनुष्य (स्तोता जरेत) स्तुति करे, (आत् इत्) उस समय वह (विव्रतानां धर्त्तारं वरुणं) विशेष रूपसे अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले वरुणकी (वपा गिरा वन्देत) विशेष रक्षण करनेवाली स्तुतियोंसे वन्दना करे ॥ ६ ॥

[२८९] हे मेध्यातिथे ! (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (हर्योः संमिश्लः) दो घोडोंको अपने रथमें जोडता है, और जो (वज्री) वज्र धारण करता है, और जो (हिरण्ययः) रमणीय है, तथा जो (हिरण्ययः) सोनेके रथमें बैठता है ऐसे (इन्द्राय) इन्द्रको (अन्धसः मदे) सोमपानसे उत्साह प्राप्त होनेके बाद (गाः पाहि) अपनी गायका संरक्षण कर ॥ ७ ॥

२९० उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६१।१)

२९१ महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।१।५)

२९२ वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥ (ऋ. ८।१।६)

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [ स्व० १५ । उ० ४ । धा० ७६ । (भू) ॥ ]

इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

---

[ २९० ] ( नः इदं उभयं वचः ) हमारे इन दोनों ही प्रकारके स्तोत्रोंको ( अर्वाक् इन्द्रः शृणवत् ) पास आकर इन्द्र सुने, ( च ) और ( सत्राच्या धिया ) एक स्थानपर बैठकर गाये जानेवाले स्तोत्रोंको सुनकर ( शविष्ठः मघवान् ) बलवान् और धनवान् इन्द्र यहाँ ( सोम-पीतये आगमत् ) सोम पीनेके लिए आवे ॥ ८ ॥

[ २९१ ] हे ( अद्रि-वः ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( महे च शुल्काय ) बहुतसे धनके बदलेमें भी ( त्वा ) तुझे ( न परा दीयसे ) बेचा नहीं जा सकता, हे ( वज्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्राय न ) हजारके बदलेमें भी नहीं बेचा जा सकता, हे ( शता-मघ ) बहुत धनोंसे युक्त इन्द्र ! ( न शताय ) न सौके ( अयुताय न ) और न दस हजारके बदलेमें ही तुझे बेचा जा सकता है ॥ ९ ॥

१ हे अ-द्रिवः ! महे शुल्काय त्वा न परा दीयसे— हे वज्रधारी इन्द्र ! बहुतसा धन मिलनेपर भी मैं तुझे नहीं दूंगा ।

२ हे वज्रि-वः ! सहस्राय न— हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! हजारोंमें भी तुझे नहीं दूंगा ।

३ हे शतामघ ! शताय न— हे धनवान् ! सौमें भी नहीं दूंगा ।

४ न अयुताय— दस हजारमें भी मैं तुझे नहीं बेचूंगा ।

[ २९२ ] हे इन्द्र ! तू ( मे पितुः वस्यान् ) मेरे पितासे भी अधिक धनवान् है, ( उत अभुंजतः भ्रातुः ) और भोजनको न देनेवाले मेरे भाईकी अपेक्षा भी तू महान् है, हे ( वसो ) सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( मे माता च समा ) मेरी माता और तू समान है, तू ( वसुत्वनाय राधसे छदयथः ) धनवान् और अन्नवान् होनेके लिए मुझे यशस्वी बना ॥ १० ॥

१ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान्— हे इन्द्र ! मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है ।

२ अभुंजतः भ्रातुः— न खानेवाले भाईकी अपेक्षा तू महान् है ।

३ मे माता समा— मेरी माता तेरे समान है ।

४ वसुत्वनाय राधसे छदयथः— धनवान् और अन्नवान् होनेके लिए मुझे महान् बना ।

॥ यहां अठ्ठारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ६, ७ वामदेवो गौतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, विश्वामित्र इत्येके;
४ नोधा गौतमः; ५ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; ८ श्रुष्टिगुः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः
( मेधातिथिर्वा ) काण्वः; १० नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ७ बहुः ॥ बृहती ॥

२९३ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ता२ँआ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।४ )

२९४ इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २ ॥

२९५ आ त्वा३द्य सबर्दुघा२ँहुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनु२ँसुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।१० )

२९६ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८८।३ )

२९७ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।३३।७ )

---

[ १९ ] एकोनविंशः खण्डः ।

[ २९३ ] हे ( वज्र-हस्त ) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! ( दध्याशिरः इमे सोमासः ) दही मिले हुए ये सोमरस तुझ ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( सुन्विरे ) तैय्यार किये गये हैं, ( मदाय ) आनन्द प्राप्त करनेके लिए तथा ( तान् ) उन सोमरसोंको ( पीतये ) पीनेके लिए ( ओकः आ ) यज्ञमण्डपको ( हरिभ्यां आ याहि ) घोडोंके द्वारा आ ॥ १ ॥

[ २९४ ] हे इन्द्र ! ( ते मदाय ) तेरे आनन्दके लिए ( उक्थिनः ) यज्ञकर्त्ताओंने ( इमे सोमाः चिकित्र ) ये सोमरस बुद्धिपूर्वक तैय्यार किए हैं, ( मधोः पिपानः ) इन मधुर रसोंको पीकर ( नः गिरः उपशृणु ) हमारी स्तुति पाससे सुन, हे ( गिर्वणः ) प्रशंसित इन्द्र ! ( स्तोत्राय रास्व ) स्तुति करनेवालेके लिए धन दे ॥ २ ॥

[ २९५ ] हे इन्द्र ! ( अद्य ) आज ( सबर्दुघां ) अधिक दूध देनेवाली ( गायत्र-वेपसं ) प्रशंसनीय वेगवाली ( सु-दुघां ) सुखसे दूध देनेवाली ( अन्यां ऊरुधारां ) विलक्षण रीतिसे बहुत सा दूध देनेवाली ( इषं धेनुं ) पासमें रखने योग्य गायके समान तुझ ( अरं कृतं तु आहुवे ) अलंकृत इन्द्रको मैं बुलाता हूं ॥ ३ ॥

[ २९६ ] हे इन्द्र ! ( बृहन्तः वीडवः अद्रयः ) महान् दृढ पर्वत भी ( त्वा न वरन्ते ) तुझे अपने कर्त्तव्यसे डिगा नहीं सकते, ( स्तुवते मावते ) स्तुति करनेवाले मुझ जैसे पुरुषको ( यत् वसु शिक्षसि ) तू जो धन देता है, ( ते तत् ) उस तेरे दानको ( न किः आ मिनाति ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ४ ॥

[ २९७ ] ( सुते ) सोमयज्ञमें ( सचा पिबन्तं ईं ) एक जगह बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको ( कः वेद ) भला कौन जानता है ? तथा वह ( कत् वयः दधे ) कितना अन्न धारण करता है इसे भी कौन जानता है ? ( यः अयं शिप्री ) जो यह इन्द्र शिरस्त्राण धारण करके ( अन्धसः मन्दानः ) सोमरससे उत्साहित होकर ( ओजसा पुरः विभिनत्ति ) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंके नगरोंको तोडता है ॥ ५ ॥

२९८ यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥

२९९ त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥

३०० कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।५१।७ )

३०१ युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।१७ )

३०२ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १३ । उ० २ । धा ८२ । (ठि) ॥ ]

---

[ २९८ ] हे इन्द्र ! ( यत् शासः ) जिस कारण अपराधियोंको तू दण्ड देता है, इसलिए ( सदसः परि अव्रतं च्यावय ) हमारे यज्ञस्थानके चारों ओरसे यज्ञ न करनेवालोंको दूर कर, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र! ( पुरु-स्पृहं अस्माकं अंशुं ) हमारे प्रशंसनीय सोमरसको ( वसव्ये अधि बर्हय ) यज्ञ स्थानमें बढा ॥ ६ ॥

[ २९९ ] ( त्वष्टा ) देवोंका कारीगर त्वष्टा देव ( पर्जन्यः ) वृष्टीका देव, ( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्मणस्पति ( पुत्रैः भ्रातृभिः अदितिः ) अपने पुत्र और भाइयोंके साथ अदिति–देवमाता, ये सब देवता ( दुस्तरं त्रामणं नः वचः ) दुःखोंसे पार करानेवाली और रक्षा करनेवाली हमारी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर ( नु पातु ) निश्चयसे हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

[ ३०० ] हे इन्द्र ! तू ( कदाचन ) कभी भी ( स्तरीः न असि ) सन्तान उत्पन्न न करनेवाली [ वन्ध्या ] गाय समान नहीं है ( दाशुषे सश्चसि ) हवि देनेवाले यजमानसे तू मिला हुआ रहता है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( देवस्य ते ) प्रकाशस्वरूप तेरे ( भूयः दानं ) बहुतसे दान ( उपोपेत् पृच्यते ) हमारे पास आकर पहुंचते हैं ॥ ८ ॥

[ ३०१ ] हे ( वृत्र-हन्तम ) वृत्रके नाश करनेमें कुशल इन्द्र ! ( हि हरी युंक्ष्व ) निश्चयसे अपने घोडे रथमें जोड, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( उग्रः अर्वाचीनः ) बलवान् होकर सामने ( परावतः ) दूरके देशसे ( ऋष्वेभिः ) सुन्दर मरुतोंके साथ ( आ गहि ) आ ॥ ९ ॥

[ ३०२ ] हे ( वज्रिन् ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां ) तुझे ( भूर्णयः नरः ) यज्ञकर्ता यजमानोंने ( इदा ह्यः अपीप्यन् ) आज और पहलेके दिनोंमें भी सोमरस पीनेके लिए दिया, हे इन्द्र ! ( सः ) वह तू ( इह ) इस यज्ञमें ( स्तोमवाहसः श्रुधि ) स्तोत्र कहनेवाले याज्ञिकोंके स्तोत्रोंको सुन, और इसके लिए ( स्वसरं उप आ गहि ) मण्डपमें आ ॥ १० ॥

॥ यहां उन्नीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

❀

[ २ ]

( १–१० ) १,२,७,८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ अश्विनौ वैवस्वतौ; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ; ६ देवातिथिः काण्वः, ९ नृमेध आंगिरसः; १० नोधाः गौतमः ॥ इन्द्रः; १ उषा; २,३ ( ऋ० ४ ) अश्विनौ ॥ बृहती ॥

३०३ प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

३०४ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।७४।१ )

३०५ कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्मया क्षयमाणांशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥ ३ ॥

३०६ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।४७।१ )

३०७ आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।२० )

---

[ २० ] विंशः खण्डः ।

[ ३०३ ] ( अयाती उच्छन्ती ) आनेवाली और प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यकी पुत्री उषा ( प्रति अदर्शि उ ) दीखने लग गई है, और ( चक्षुषा ) अपने प्रकाशसे ( मही अप वृणुते ) वह रात्रीका महान् अन्धकार दूर करती है, ( सूनरी ) वह सुन्दरी उषा ( ज्योतिः कृणोति ) प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ३०४ ] हे ( उस्रा अश्विना ) सबके निवासक अश्विदेवो ! ( इमाः दिविष्टयः ) ये प्रकाशकी इच्छा करनेवाली प्रजायें ( वां हवन्ते ) तुम्हें बुलाती हैं ( अयं ) यह मैं ( शची–वसू वां ) शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाले तुम्हें ( अवसे अह्वे ) अपने संरक्षणके लिए बुलाता हूं ( हि ) क्योंकि तुम ( विशं विशं गच्छथः ) प्रत्येक मनुष्यके पास जाते हो ॥२॥

[ ३०५ ] हे ( देवा अश्विना ) प्रकाशमान् अश्विनी कुमारो ! ( कु–ष्ठः, कु–स्थः ) इस पृथ्वी पर रहनेवाला ( कः मनुष्यः ) कौनसा मनुष्य भला ( वां तपानः ) तुम्हें प्रकाशित कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं । ( वां ) तुम्हारे लिए ( अश्मया घ्नता अंशुना ) पत्थरोंसे सोम कूटनेके कारण ( क्षयमाणः ) थका हुआ यजमान ( यथा आद्वन् ) इच्छानुसार अन्न खानेवाले राजाके समान ( इत्थं उ ) इस प्रकार सामर्थ्यवान् होता है ॥ ३ ॥

[ ३०६ ] हे ( अश्विना ) अश्विनी कुमारो ! ( वां दिविष्टिषु ) तुम्हारे लिए होनेवाले यज्ञोंमें ( मधुमत्तमः अयं सुतः ) अत्यन्त मीठा यह सोमरस तैय्यार किया हुआ है, ( तिरो अन्ह्यं पिबतं ) एक दिन पहले तैय्यार किया गया सोमरस भी तुम पियो । और ( दाशुषे रत्नानि धत्तं ) हवि देनेवाले यजमानको रत्न दो, धन दो ॥ ४ ॥

[ ३०७ ] हे इन्द्र ! ( भूर्णिं मृगं न ) भरण पोषण करनेवाले शेरके समान ( त्वा ) तुझे ( सवनेषु ) यज्ञोंमें ( सोमस्य गल्दया ) सोमके रस देते हुए तथा ( ज्या ) जय दिलानेवाली स्तुतिके द्वारा ( अहं सदा याचन् ) तेरे पास हमेशा मांगते हुए ( आ चुक्रुधं ) क्या मैंने तुझे क्रोधित कर दिया है ? पर ( कः ईशानं न याचिषत् ) अपने स्वामीसे भला कौन नहीं मांगता ? ॥ ५ ॥

३०८ अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति ।
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।४।११ )

३०९ अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।३२।२४ )

३१० यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रꣳसिषम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।३२।१८ )

३११ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९९।५ )

३१२ प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।८८।१ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १० । उ० ३ । धा० ७७ । (पे) ॥ ]
इति बृहती समाप्ता ।

---

[ ३०८ ] हे अध्वर्यू ! ( त्वं ) तू ( सोमं द्रावय ) सोमरस शीघ्र तैयार कर, क्योंकि ( इन्द्रः पिपासति ) इन्द्र सोमरस पीना चाहता है, इसने ( वृषणा हरी नूनं उप युयुजे ) रथमें बलवान् घोडोंको जोड दिया है और लो ( वृत्र-हा आ जगाम ) वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र आ भी गया ॥ ६ ॥

[ ३०९ ] हे ( ज्यायः इन्द्रः ) महान् इन्द्र ! ( ईषतः तत् ) उस इच्छित धनको ( कनीयसः अभि आभर ) मेरे जैसे छोटे मनुष्यको भी भरपूर दे, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! तू ( पुरु-वसुः बभूविथ ) बहुत धनवान् है, तू ( भरे भरे हव्यः ) प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए पास बुलाने योग्य है ॥ ७ ॥

[ ३१० ] हे इन्द्र ! ( यत् त्वं यावतः ईशिषे ) जिस कारणसे तू जितने धनका स्वामी है, ( एतावत् अहं ईशीय ) उतने धनका मैं भी स्वामी होऊं, हे ( रदा-वसो ) धन देनेवाले इन्द्र ! ( स्तोतारं इत् दधिषे ) स्तुति करने-वालेको मैं धन देकर आधार देनेकी इच्छा करता हूं ( पापत्वाय न रंसिषं ) वह धन पापी मनुष्योंके लिए देनेको मैं तैय्यार नहीं ॥ ८ ॥

[ ३११ ] हे इन्द्र ! ( त्वं प्रतूर्तिषु ) तू युद्धमें ( विश्वाः स्पृधः अभि असि ) सब शत्रुओंका नाश करता है, हे ( तूर्य ) शत्रु नाशक इन्द्र ! ( त्वं अशस्ति-हा ) तू अ-यशस्वियोंका नाश करता है, उसी प्रकार ( जनिता ) शत्रुके लिए आपत्तियोंको पैदा करनेवाला है, तू ( तरुष्यतः वृत्रतूः असि ) विघ्न करनेवालोंका नाश करनेवाला है ॥ ९ ॥

[ ३१२ ] हे इन्द्र ! तू ( दिवः सदोभ्यः ) द्युलोकके स्थानोंमें ( ओजसा प्र रिरिक्षे ) अपने सामर्थ्यसे श्रेष्ठ होता है, यद्यपि ( पार्थिवं रजः ) पृथ्वीपरके धूल ( त्वा ) तुझे ( न विव्याच ) घेर नहीं सकते, पर ( विश्वं अति ववक्षिथ ) तू विश्वको व्याप सकता है ॥ १० ॥

॥ यहां बीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[२]

( १-१० ) १,२,६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ३ गातुरात्रेयः; ४ पृथुर्वैन्यः; ५ सप्तगुरांगिरसः; ७ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ८ वेनो भार्गवः; ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा; १० सुहोत्रो भारद्वाजः ॥ इन्द्रः; ( ऋ० ५ इन्द्रो वैकुण्ठः ) ८ वेनः ॥ त्रिष्टुप् ॥

३१३ असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२१।१ )

३१४ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२४।१ )

३१५ अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाꣳ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ५।३२।१ )

३१६ सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१४८।१ )

---

[ २१ ] एकविंशः खण्डः ।

[ ३१३ ] ( देवं गो-ऋजीकं अन्धः ) दिव्य तेजस्वी गायके दूधसे मिश्रित सोमरूपी अन्न ( असावि ) तैय्यार किया है, ( ईं इन्द्रः ) यह इन्द्र ( अस्मिन् जनुषा नी उवोच ) इस सोमरसमें स्वभावतः ही प्रेम करता है, हे ( हरी अश्व ) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! ( त्वा यज्ञैः बोधामसि ) तुझे इस यज्ञके द्वारा कहते हैं, कि ( अन्धसः मदेषु ) सोमरसके आनन्दमें ( नः स्तोमं बोध ) हमारी इन स्तुतियोंपर ध्यान दे ॥ १ ॥

[ ३१४ ] ( ते सदने योनिः अकारि ) तेरे बैठनेके लिए हमने स्थान बनाया है, हे ( पुरु-हूत ) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! ( तं नृभिः आ प्र याहि ) उस स्थानपर अपने मनुष्योंके साथ तू जा, और ( नः यथा अविता ) हमारी रक्षा करनेवाला बन और ( वृधे च असः ) हमारा संवर्धन करनेके लिए तैय्यार रह, हमें ( वसूनि च ददः ) अनेक प्रकारके धन दे और ( सोमैः ममदः च ) सोमरसोंसे आनन्दित हो ॥ २ ॥

[ ३१५ ] हे इन्द्र ! ( त्वं उत्सं अदर्दः ) तूने मेघोंको फोडा, और ( खानि वि असृजः ) पानी निकलनेके दरवाजोंको खोला ( बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः ) क्षुब्ध होनेवाले महान् समुद्रोंको आनन्दित किया, और ( महान्तं पर्वतं ) महान् बादलोंको फाडा, और ( धाराः व्यसृजत् ) जलकी धाराओंको बहाया, और ( यत् दानवान् अवहन् ) तब तूने दानवोंको विनष्ट किया ॥ ३ ॥

[ ३१६ ] हे इन्द्र ! ( सुष्वाणासः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले यज्ञकर्त्ता ( त्वा स्तुमसि ) तेरी स्तुति करते हैं, हे ( तुवि-नृम्ण ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( वाजं सनिष्यन्तः ) पुरोडाश तैय्यार करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं, इसलिये ( नः सुवितं आ भर ) हमें उत्तम धन भरपूर दे, ( यस्य कोना ) जिस धनकी हम इच्छा करते हैं, वह धन हमें दे, ( त्वा ऊताः ) तुझसे अच्छी प्रकार रक्षित हुए हम लोग ( तना ) बहुत धन ( त्मना सह्याम ) अपनी शक्तिसे प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

३१७ जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४७।१ )

३१८ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।२७।१ )

३१९ वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।७३।११ )

३२० नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१२३।६ )

३२१ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ९ ॥

अथर्व. ५।६।१; यजु १३।३

---

[ ३१७ ] हे ( वसूनां वसुपते इन्द्र ) बहुतसे धनोंके स्वामी इन्द्र ! ( ते दक्षिणं हस्तं ) तेरे दायें हाथको ( वसूयवः जगृह्मा ) धनकी इच्छा करनेवाले हम पकडते हैं, हे ( शूर ) वीर इन्द्र ! हम ( त्वा ) तुझे ( गोनां गोपतिं विद्म ) गायोंके पालन करनेवालेके रूपमें जानते हैं, इसलिए ( चित्रं वृषणं रयिं अस्मभ्यं दाः ) अनेक प्रकारसे बल बढानेवाले धन तू हमें दे ॥ ५ ॥

[ ३१८ ] ( यत् ) जब ( ताः पार्याः धियः युनजते ) संकटसे बचनेके लिए बुद्धिपूर्वक कर्म किए जाते हैं, तब ( नरः नेमधिता ) नेतागण युद्धके समय ( इन्द्रं हवन्ते ) इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, इस प्रकार ( त्वं शूरः नृषाता ) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला है, ( श्रवसः चकानः ) बल बढानेकी इच्छा करनेवाला ( त्वं ) तू ( गोमति व्रजे ) गायोंके बाडेमें ( नः आ भज ) हमें पहुंचा ॥ ६ ॥

[ ३१९ ] ( सुपर्णाः वयः ) उत्तम पंखवाली चिडियोंके समान ( प्रिय-मेधाः, ऋषयः नाधमानाः ) यज्ञसे प्रेम करनेवालीं, सर्वदर्शी, प्रज्ञाबुद्धिको पानेकी इच्छा करनेवालीं सूर्यकी किरणें ( इन्द्रं उपसेदुः ) इन्द्रको प्राप्त हुईं, अब हे इन्द्र ! तू ( ध्वान्तं अपोर्णुहि ) अन्धकार दूर कर, ( चक्षुः पूर्धि ) तेजसे आखोंको भर दे, ( निधया बद्धान् इव ) पाशोंसे बंधे हुए ( अस्मान् मुमुग्धि ) हमें मुक्त कर ॥ ७ ॥

१ निधया बद्धान् अस्मान् मुमुग्धि— पाशोंसे बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

[ ३२० ] ( सुपर्णं पतन्तं ) उत्तम पंखसे युक्त और आकाशमें अच्छी तरह उडनेवाले ( हिरण्यपक्षं ) सुनहरे पंखोंवाले ( वरुणस्य दूतं ) वरुणके दूत ( यमस्य योनौ ) अग्निके उत्पत्ति स्थान-अन्तरिक्षमें ( शकुनं ) पक्षी रूपमें रहनेवाले, ( भुरण्युं ) सबका पोषण करनेवाले ( त्वा ) तुझे ( हृदा वेनन्ता ) लोग हृदयसे जानते है, तब वे ( नाके अभ्यचक्षत ) अन्तरिक्षमें तुझे देखते है ॥ ८ ॥

[ ३२१ ] ( वेनः ) वेनने ( पुरस्तात् जज्ञानं ब्रह्म ) अपनेसे प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्म तेजका ( प्रथमं विसीं ) पहलेसे उपदेश करते हुए ( अतः सुरुचः आवः ) अपने उत्तम तेजसे सबका रक्षण करते हुए सबको कांतियुक्त किया ( सः बुध्न्या ) वह अन्तरिक्षमें ( अस्य उपमाः ) इस ब्रह्मकी उपमा देने योग्य कान्तिको ( विष्ठाः ) विशेष रूपसे स्थापित करता है, ( सतः असतः च योनिं ) पहले उत्पन्न हुए और आगे उत्पन्न होनेवाले विश्वकी उत्पत्तिके कारणको वही ( वि वः ) उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

३२२ अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।३२।१ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० १२ । उ० ६ । धा० ९१ । ट ॥ ]

[ ४ ]

( १–९ ) १, २, ४ द्युतानो मारुतः ( ऋ० तिरश्चीराङ्गिरसः ); ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ५ वामदेवोः गोतमः; ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ९ गोरिवीतिः शाक्त्यः ॥ इन्द्रः ॥ त्रिष्टुप्, ( ६ ऋ० विराट् ) ॥

३२३ अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९६।१३ )

३२४ वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९६।७ )

३२५ विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।५५।५ )

---

[ ३२२ ] ( महे वीराय ) महान् वीर ( तवसे तुराय ) बलवान् और जल्दी काम करनेवाले ( विरप्शिने वज्रिणे ) स्तुतिके योग्य और वज्रधारी ( स्थविराय अस्मै ) वृद्ध इस इन्द्रके लिए ( अपूर्व्या ) अपूर्व और ( पुरुतमानि ) बहुतसे ( शंतमानि वचांसि ) स्तुति करनेवाले स्तोत्र ( तक्षुः ) बोले जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां इक्कीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २२ ] द्वाविंशः खण्डः ।

[ ३२३ ] ( द्रप्सः ) शीघ्र चलकर आनेवाला ( दशभिः सहस्रैः इयानः ) दस हजार सैनिकोंके साथ आक्रमण करनेवाला ( कृष्णः ) कृष्ण नामका असुर ( अंशुमतीं अवातिष्ठत् ) अंशुमति नदी पर आकर पहुंच गया, ( शच्या धमन्तं तं ) अपने बलसे जगत्को कष्ट देनेवाले उस असुर पर ( इन्द्रः आवत् ) इन्द्र चढ दौडा, ( अथ ) बादमें ( नृमणाः ) लोगोंके मनोंको अपनी तरफ खेंचनेवाले इन्द्रने ( स्नीहितिं अधद्राः ) उसकी हिंसक सेनाओंको भी मार गिराया ॥ १ ॥

[ ३२४ ] हे इन्द्र ! ( ये विश्वे देवाः ) जो सब देव तेरे ( सखायः ) मित्र थे, वे सब देव ( वृत्रस्य श्वसथात् ) वृत्रासुरके श्वाससे डरकर ( ईषमाणाः त्वा अजहुः ) चारों दिशाओंमें भाग गए और तुझे छोड गए, हे इन्द्र ! अब ( मरुद्भिः ते सख्यं अस्तु ) मरुतोंके साथ तेरी मित्रता होवे, और ( अथ ) इसके बाद तू ( इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि ) इन सब शत्रुकी सेनाओंपर विजय प्राप्त कर ॥ २ ॥

[ ३२५ ] ( समने विधुं ) युद्धमें कार्य करनेवाले, ( बहूनां दद्राणं ) बहुतसे शत्रुके सैनिकोंको भगानेवाले ( युवानं ) तरुण इन्द्रकी कृपासे ( पलितः जगार ) सफेद बालोंवाला वृद्ध भी अपने कर्तव्यमें जागरूक रहता है, ( देवस्य महित्वा ) इस इन्द्रके महत्व अथवा पराक्रमसे भरे हुए ( काव्यं पश्य ) काव्यको देखो जो ( अद्य ममार ) जो आज मर जाता है, पर अगले दिन ( सः ह्यः समानः ) वह ही कलके समान संसारमें कार्य करने लगता है ॥ ३ ॥

३२६ त्वꣳह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ ४ ॥ ( ऋ ८।९६।१६ )

३२७ मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभꣳस्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

३२८ प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।३१।१० )

३२९ शुनꣳहुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥ ( ऋ ३।३०।२२ )

३३० उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रꣳसमर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचाꣳसि ॥ ८ ॥ ( ऋ ७।२३।१ )

---

[ ३२६ ] हे इन्द्र ! ( त्वं त्यत् जायमानः ) तू उत्पन्न होते ही ( अ-शत्रुभ्यः सप्तभ्यः ) अबतक शत्रुओंसे रहित कृष्ण-वृत्र-नमुचि-शम्बर आदि सात असुरोंका ( शत्रुः अभवः ) शत्रु होगया, हे इन्द्र ! तू ( गूढे द्यावापृथिवी ) अन्धकारमें पडे हुए द्यु और पृथ्वी लोकको ( अन्वविन्दः ) प्रकाशमें ले आया और अब तू ( विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः ) वैभवशाली भुवनोंमें ( रणं धा ) सुन्दरतासे स्थापित इन लोकोंको और अधिक रमणीय बनाता है ॥ ४ ॥

[ ३२७ ] हे इन्द्र ! ( दुवस्युः ) प्रशंसनीय ( अर्यः ) शत्रुनाशक तू हमें ( तरुषीः ) विजयी करता है, ( मेडिं न ) जिस प्रकार प्रशंसनीय मनुष्यकी स्तुति की जाती है, उसी प्रकार मैं ( वृत्र-हणं ) वृत्रको मारनेवाले ( द्यु-क्षं ) द्युलोकमें रहनेवाले ( पुरु-धस्मानं ) अनेक शत्रुओंके नाश करनेवाले ( वृषभं ) बलवान् ( स्थिर-प्स्नुं ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले ( वज्रिणं ) वज्रधारी ( भृष्टि-मन्तं ) शत्रुनाशक ( त्वा गृणीषे ) तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ३२८ ] हे मनुष्यो ! ( वः ) तुम ( महे वृधे महे प्रभरध्वं ) बडे बडे कार्य करनेवाले महान् इन्द्रको भरपूर सोम दो, ( प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं ) विशेष ज्ञानी इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो, हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाओंकी इच्छा पूरी करनेवाला तू ( पूर्वी विशः प्रचर ) हवि देनेवाले हम प्रजाजनोंकी सहायता कर ॥ ६ ॥

[ ३२९ ] ( वाज-सातौ अस्मिन् भरे ) अन्नकी प्राप्ति होनेवाले इस युद्धमें ( शुनं ) उत्साही ( मघवानं नृतमं ) धनवान्, वीरोंमें श्रेष्ठ ( शृण्वन्तं ) प्रार्थनाओंको सुननेवाले, ( उग्रं ) शूरवीर ( समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं ) युद्धोंमें शत्रु-ओंको मारनेवाले, ( धनानि संजितं इन्द्रं ) धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको हम ( ऊतये हुवेम ) अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[ ३३० ] ( श्रवस्या ) अन्नको पानेकी इच्छासे ( ब्रह्माणि उत् ऐरयत ) स्तोत्रोंको कहो, हे ( वसिष्ठ ) इन्द्रियोंको जीतनेवाले ऋषे ! ( यः विश्वानि ) जो सब लोगोंको ( श्रवसा आततान ) अन्नसे अथवा यशसे बढाता है, और जो ( ईवतः मे ) उपासना करनेवाले मेरी ( वचांसि उप श्रोता ) प्रार्थनाओंको सुनता है ऐसे ( इन्द्रं ) इन्द्रकी महिमाका ( समर्ये महय ) यज्ञमें वर्णन कर ॥ ८ ॥

३३१ चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।७८।९ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० १६ । उ० ६ । धा० ७३ । कि ॥ ]

[ ५ ]

( १–१० ) १ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः; २ भरद्वाजः ( ऋ० गर्गो भारद्वाजः ); ३ विमद ऐन्द्रः, वसुकृद्वा वासुक्रः (ऋ० प्राजापत्यो वा) ४–६, ९ वामदेवो गौतमः ( ९ ऋ० यमी वैवस्वती ) ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ८ रेणुर्वैश्वामित्रः; १० गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः; (ऋ० १ तार्क्ष्यः; ७ पर्वतेन्द्रौ; ९ यमो वैवस्वतः)॥ त्रिष्टुप् ॥

३३२ त्यमू षु वाजिनं देवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳरथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳस्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१७८।१० )

३३३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥ (ऋ. ६।४७।११ )

३३४ यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणꣳहरीणाꣳरथ्याꣳविव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।२३।१ )

---

[ ३३१ ] ( अस्य चक्रं ) इस इन्द्रका वज्र ( अप्सु आ निषत्तं ) अन्तरिक्षमें चमकता है, ( उत उ ) और वह ( अस्मै मधु इत् चच्छद्यात् ) इस उपासकके लिए मीठा जल भेजता है, उसी प्रकार ( पृथिव्यां अतिषितं यत् ऊधः ) पृथ्वीपर जो जल बहता है, ( गोषुः पयः ) उन्हें गायोंमें दूधके रूपमें और ( ओषधीषु आदधाः ) औषधियोंमें रस रूपसे रखता है ॥ ९ ॥

॥ यहां बाईसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २३ ] त्रयोविंशः खण्डः ।

[ ३३२ ] ( त्यं वाजिनं ) उस बलवान् ( देव-जूतं सहोवानं ) देवोंके द्वारा सेवित, शक्तिमान्, ( रथानां तरुतारं ) रथोंके संग्राममें तारनेवाले ( अ-रिष्ट-नेमिं ) तीक्ष्ण शस्त्र अपने पास रखनेवाले ( पृतनाजं ) शत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, ( आशुं तार्क्ष्यं ) शीघ्र उडनेवाले सुपर्णको हम ( स्वस्तये इह हुवेम ) अपने कल्याणके लिए यहां बुलाते हैं । १ ॥

[ ३३३ ] ( त्रातारं इन्द्रं हुवे ) संरक्षण करनेवाले इन्द्रको मैं सहायताके लिए बुलाता हूं, ( अवितारं इन्द्रं ) सहायक इन्द्रको मैं बुलाता हूं, ( हवे हवे सुहवं ) प्रत्येक युद्धमें बुलाने योग्य ( शूरं शक्रं पुरु-हूतं इन्द्रं ) शूर, सामर्थ्यवान् और बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाता हूं, ( मघवान् ) इन्द्र ( इदं हविः वेतु ) इस हविष्यान्नको खावे ॥ २ ॥

[ ३३४ ] ( वज्र-दक्षिणं ) अपने दायें हाथमें वज्रको धारण करनेवाले ( विव्रतानां हरीणां रथ्यं ) वेगसे दौडनेवाले घोडोंके रथमें बैठनेवाले ( इन्द्रं यजामहे ) इन्द्रके लिए हम यज्ञ करते हैं, वह इन्द्र ( श्मश्रुभिः दोधुवत् ) अपनी दाढी और मूंछके द्वारा ही सबको कंपाता है, वह ( ऊर्ध्वधा विभुवत् ) सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, ( सेनाभिः भयमानः ) अपनी सेनासे शत्रुओंको भयभीत करता हुआ वह ( राधसा वि ) उपासकोंको धन देता है ॥ ३ ॥

३२५ सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳसुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रꣳ सनितात वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।१७।८)

३२६ यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥

३२७ यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यꣳ शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥

३२८ इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतꣳसुवीराः ।
वीतꣳहव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।५३।१)

३२९ इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।८९।४)

---

[ ३२५ ] हम ( सत्रा-साहं ) एक साथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, ( दाधृषिं ) शत्रुको भयभीत करनेवाले, ( तुम्रं ) शत्रुको भगानेवाले ( महां अपारं वृषभं ) महान् अत्यधिक शक्तिशाली ( सु-वज्रं इन्द्रं ) उत्तम वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते है, ( यः वृत्रं हन्ता ) जो वृत्रका वध करता है, ( उत वाजं सनिता ) और अन्न देता है, वही ( सु-राधाः मघवा ) उत्तम धन पास रखनेवाला इन्द्र ( मघानि दाता ) भक्तोंको धन देनेवाला है ॥ ४ ॥

[ ३२६ ] ( यः मर्तः ) जो शत्रु मनुष्य ( नः वनुष्यन् ) हमें जानसे मारनेकी इच्छा करते हुए ( अभि दासति ) हमपर चढा चला आता है, और जो ( मन्यमानः ) घमंडी ( क्षिधी युधा शवसा ) संहार करनेवाले हथियारोंको लेकर बहुत वेगसे ( उगणाः तुरः ) सेनाओंके साथ हम पर चढाई करता हुआ चला आता है, उसको हम ( त्वा ऊताः ) तुझसे रक्षित होकर तथा ( वृष-मणः ) बलवान् मनसे युक्त होकर ( अभिष्याम ) हरायें ॥ ५ ॥

[ ३२७ ] ( वृत्रेषु स्पर्धमानाः क्षितयः ) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाली प्रजायें, ( यं हवन्ते ) जिसको सहायताके लिए बुलातीं हैं, ( युक्तेषु तुरयन्तः यं ) शस्त्रोंको हाथमें लेकर जल्दी ही मारकाट करनेवाले वीर जिसको बुलाते है, ( शूर-सातौ यं ) शूरोंके युद्धोंमें जिसे बुलाया जाता है ( अपां यं ) पानीके लिए जिसे पुकारते है, ( उपज्मन् यं ) वर्षा होनेके लिए जिसकी प्रार्थना की जाती है, ( विप्रासः वाजयन्ते ) ज्ञानी यज्ञ करनेवाले जिसके लिए हवि देते है, ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र है ॥ ६ ॥

[ ३२८ ] हे ( इन्द्रा पर्वता ) इन्द्र और पर्वत ! ( बृहता रथेन ) महान् रथसे आकर ( वामीः सुवीराः ) स्तुतिके योग्य, उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त ( इषः आवहत ) अन्न लाकर हमें दो, हे ( देवाः ) देवो ! ( अध्वरेषु हव्यानि वीत ) हमारे यज्ञोंमें हविको खाओ, ( इडया मदन्ता ) हमारे द्वारा दिये गए अन्नोंसे आनन्दित होनेवाले तुम्हारे यश ( गीर्भिः वर्धेथां ) हमारी स्तुतियोंसे बढें ॥ ७ ॥

[ ३२९ ] ( यः ) जो इन्द्र ( शचीभिः ) अपनी शक्तियोंसे ( पृथिवीं उत द्यां ) पृथ्वी और द्युलोकको ( चक्रियौ अक्षेण इव ) जिस प्रकार चक्रोंको हाल थामता है, उसी प्रकार ( विष्वक् तस्तम्भ ) चारों ओरसे धारण करता है । ( इन्द्राय अनिशित सर्गा गिरः ) ऐसे इन्द्रकी ऊंचे स्वरसे की जानेवाली स्तुतियां ( सगरस्य बुध्नात् अपः प्रैरयत् ) अंतरिक्षके स्थानसे जलोंको बहाती है ॥ ८ ॥

३४० आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाँ जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥ (ऋ. १०।१०।१)

३४१ को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ ( स्व० १८ । उ० ४ । धा ८६ । (वू) ॥ ]
इति त्रिष्टुप् समाप्ता ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १–१० ) १ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; २ जेता माधुच्छन्दसः; ३, ६ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५, ८ तिरश्चीरांगिरसः; ७ नीपातिथिः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० तिरश्चीरांगिरसः शंयुर्बार्हस्पत्यो वा ॥

॥ इन्द्रः ॥ अनुष्टुप् ॥

३४२ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥ (ऋ. १।१०।१)

३४३ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥ (ऋ. १।११।१)

---

[ ३४० ] हे इन्द्र ! ( सखायः ) मित्र जन ( सख्या त्वा आववृत्युः ) उत्तम स्तोत्रोंसे तुझे अपने सामने बुलाते हैं, तू ( तिरः पुरु अर्णवं जगम्याः ) ऊपर जाकर विस्तृत अन्तरिक्षमें पहुंच गया है । ( अस्मिन् क्षये ) इस यज्ञमें ( प्र तरां दीध्यानाः ) अत्यधिक प्रकाशित होकरके ( वेधाः ) वह इन्द्र ( पितुः नपातं आदधीत ) पिताके नाती पोते अर्थात् मेरे लडकेका लडका हो ऐसा करे ॥ ९ ॥

[ ३४१ ] ( अद्य ) आज ( ऋतस्य धुरिः ) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके रथकी धुरामें ( गाः ) दौडनेवाले ( शिमीवतः भामिनः ) वीर और तेजस्वी ( दु-र्हृणायून् ) शत्रुपर अत्यधिक क्रोध करनेवाले ( मयोभून् ) सुखदायक घोडोंको ( आसन् ) मुखसे कहे जानेवाले स्तोत्रोंकी सहायतासे ( कः युंक्ते ) भला कौन जोडता है ? ( यः एषां भृत्यां ऋणधत् ) जो इनके [ घोडोंके ] भरण पोषणके कार्य करता है, ( सः जीवात् ) वही जीवित रहता है ॥ १० ॥

॥ यहां तेइसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २४ ] चतुर्विंशः खण्डः ।

[ ३४२ ] हे ( शत-क्रतो ) सैंकडों उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा गायत्रिणः गायन्ति ) उद्‌गाता तेरा वर्णन करते हैं, ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) स्तुति करनेवाले पूजनीय इन्द्रका सत्कार करते हैं, ( ब्रह्माणः ) ब्राह्मण ( त्वा ) तुझे ( वंशं इव ) जिस प्रकार नट लोग बांसको ऊपर खडा रखते हैं उसी प्रकार ( उत् येमिरे ) ऊपर स्थापित करते हैं, अर्थात् तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३४३ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियां ( समुद्रव्यचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतमं ) रथमें बैठनेवाले वीरोंमें श्रेष्ठ वीर ( वाजानां पतिं ) बलोंके और अन्नोंके स्वामी ( सत्पतिं इन्द्रं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढाती है ॥ २ ॥

३४४ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।४ )

३४५ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ५।३९।१ )

३४६ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महा२असि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९५।४ )

३४७ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रिय२रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८४।१ )

३४८ एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३४।१ )

३४९ आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९५।१ )

---

[ ३४४ ] हे इन्द्र ! ( इमं ज्येष्ठं मदं ) इस श्रेष्ठ और आनन्द बढानेवाले ( अमर्त्यं सुतं पिब ) अमर सोम रसोंको पी, क्योंकि ( ऋतस्य सदने ) यज्ञके मण्डपमें ( शुक्रस्य धाराः ) शुद्ध सोमरसकी धारा ( त्वा अभ्यक्षरन् ) तेरी तरफ बह रही है ॥ ३ ॥

[ ३४५ ] हे ( चित्रः अद्रिवः ) विलक्षण और वज्रको धारण करनेवाले ( विदद्वसो इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( यत् त्वादातं राधः ) जो तेरे देने योग्य धन ( इह मे नास्ति ) यहां मेरे. पास नहीं है, ( तत् नः ) उस धनको हमें ( उभया हस्त्या आभर ) दोनों हाथोंसे भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ३४६ ] हे इन्द्र ! ( यः त्वा सपर्यति ) जो तेरी उपासना करता है, ऐसे उस ( तिरश्च्याः हवं श्रुधि ) तिरश्चि ऋषिकी प्रार्थना सुन, और तू ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः ) उत्तम बल युक्त और गाय युक्त धन देकर ( पूर्धि ) हमें पूर्ण कर, ( महान् असि ) तू महान् है ॥ ५ ॥

[ ३४७ ] हे इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोमरस निकाला है, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( धृष्णो ) शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( इन्द्रियं त्वा ) सोमपानसे तेरे अन्दर शक्ति ( सूर्यः रश्मिभिः रजः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( आ पृणक्तु ) भर जाए ॥ ६ ॥

[ ३४८ ] हे इन्द्र ! ( कण्वस्य सुष्टुतिं ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास ( हरिभिः उप याहि ) घोडोंके द्वारा आ, ( अमुष्य ) इसके ( दिवः शासतः ) द्युलोकके शासनमें हमें सुख मिलता है, इसलिए हे ( दिवावसो ) तेजके साथ रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) द्युलोक पर जा ॥ ७ ॥

[ ३४९ ] हे ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोम यज्ञमें ( गिरः ) हमारी स्तुतियां ( रथीः इव ) रथमें बैठनेवाले वीर जिस प्रकार अपने ठीक स्थान पर पहुंच जाते हैं, उसी प्रकार ( त्वा अस्थुः ) तेरे पास पहुंचती हैं, हे इन्द्र ! ( वत्सं धेनवः गावः न ) बछडेके पास जैसे दुधारु गाय पहुंचती है, उसी प्रकार हमारी स्तुति ( त्वा अभि समनूषत ) तेरे पास पहुंचती है ॥ ८ ॥

३५० एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९५।७ )

३५१ यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।४४।१ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [ स्व० ४ । उ० ४ । धा० ५४ । (धी) ॥ ]
इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[ ७ ]

( १–१० ) १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वा; ३ प्रियमेध आंगिरसः; ४ प्रगाथः काण्वः; ५ श्यावाश्व आत्रेयः; ६ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; जेता माधुच्छन्दसः ॥ इन्द्रः; ५ मरुतः; ७ दधिक्रा वा ॥ अनुष्टुप् ॥

३५२ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरः ॥ १ ॥
( ऋ. ६।४२।१ )

३५३ आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं पूर्विणेष्ठाम् । उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

---

[ ३५० ] ( नु एत उ ) जल्दी आ, ( शुद्धेन साम्ना ) शुद्ध साम और ( शुद्धैः उक्थैः ) शुद्ध मंत्रोंके द्वारा हम ( शुद्धं इन्द्रं स्तवाम ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( वावृध्वांसं ) शक्तिको बढानेवाले इन्द्रको ( शुद्धैः ) शुद्ध मंत्रोंसे तैय्यार किए गए ( आशीर्वान् ममत्तु ) गौ दूधसे मिले हुए सोम आनन्द देवें ॥ ९ ॥

[ ३५१ ] हे इन्द्र ! ( यः रयिंतमः ) जो अत्यन्त शोभायुक्त है, और ( यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः ) जो तेजसे अत्यन्त तेजस्वी है, ( सः सोमः ) वह सोम ( वः ) तेरे उपासकोंको ( रयिं ) धन देता है, हे ( स्वधापते ) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त इन्द्र ! ( सुतः ते मदः अस्ति ) यह सोमरस तुझे आनन्द देनेवाला हो ॥ १० ॥

॥ यहां चौवीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २५ ] पञ्चविंशः खण्डः ।

[ ३५२ ] हे याजको ! ( नरः ) यज्ञको आगे ले जानेवाले तुम यज्ञकर्त्ता ( अस्मै पिपीषते ) इस सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले ( विश्वानि विदुषे ) सबको जाननेवाले ( अरं गमाय ) उचित समय पर ठीक स्थान पर पहुंचानेवाले ( जग्मये ) यज्ञमें जानेवाले ( अ-पश्चात्-अध्वने ) सबसे पहले पहुंचनेवाले ( प्रति भर ) इन्द्रको इच्छानुसार सोम दो ॥ १ ॥

[ ३५३ ] ( महान्तं गह्वरेष्ठां वयः शयं ) महान् पर्वतपर रहनेवाले और सब जगह मिलनेवाले ( वयः ) सोमरूपी अन्नको ( नः ) हमारे लिए ( आ भर ) भरपूर ले आ । ( महान्तं पूर्विनेष्ठां ) बहुत सारे प्रसिद्ध होनेवाले ( उग्रं वचः अपावधीः ) कठोर भाषणोंको दूर कर, बुरे शब्द हमारे पास न आवें ऐसा कर ॥ २ ॥

३५४ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६८।१ )

३५५ स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६३।१ )

३५६ यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥ ५ ॥

३५७ त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।४४।४ )

३५८ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३९।६ )

---

[ ३५४ ] हे ( शविष्ठ ) बलवान् इन्द्र ! ( ऊतये सुम्नाय ) संरक्षण और सुखके लिए ( रथं यथा ) जैसे रथको घुमाते हैं, उसी प्रकार ( तुवि-कूर्मिं ) बहुत पराक्रमी ( ऋती-षहं ) शत्रुओंको हरानेवाले ( सत्पतिं त्वा इन्द्रं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको ( वर्तयामसि ) हम लाते हैं ॥ ३ ॥

१ तुवि-कूर्मिं ऋती-षहं सत्पतिं त्वा इन्द्रं वर्तयामसि— अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओंको हरानेवाले सज्जनोंका पालन करनेवाले इन्द्रको हम पास लाते हैं ।

[ ३५५ ] ( सः पूर्व्यः ) वह इन्द्र मुख्य है, ( महोनां क्रतुभिः ) महान् यजमानके यज्ञकी सहायतासे ( वेनः आनजे ) हविष्यान्नकी इच्छा करते हुए वह इन्द्र यज्ञमें आता है, ( यस्य द्वारा ) जिस यज्ञके द्वारा ( धियः ) कर्मोंको करते हुए ( देवेषु पिता मनुः आनजे ) देवोंमें सबका पालन करनेवाला मननशील वह इन्द्र प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[ ३५६ ] ( यदि ) जहां जिस यज्ञमें ( भ्राजमानः आशवः ) तेजस्वी और शीघ्र जानेवाले मरुत् ( आवहन्ति ) तुझे पहुंचाते हैं, ( तत्र ) उस यज्ञमें वे ( मादिरं मधु पिबन्तः ) आनन्द बढानेवाले उस मधुर सोमरसको पीते हैं, और ( श्रवांसि कृण्वते ) अन्न उत्पन्न करते हैं, अर्थात् पानी बरसाकर अन्न उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

[ ३५७ ] ( वः ) तुम्हारे हितके लिए ( त्यं उ अप्रहणं ) उस उपकार करनेवाले-हिंसा न करनेवाले ( श्रवसः पतिं ) बलके स्वामी, अन्नके स्वामी ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( नरं शचिष्ठं ) नेता और शक्तिमान् ( विश्ववेदसं ) सर्वज्ञ इन्द्रकी ( गृणीषे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

[ ३५८ ] ( जिष्णोः ) विजयी ( अश्वस्य वाजिनः ) अश्वरूपी वेगवान् ( दधिक्राव्णः ) दधिक्रावकी स्तुति ( अकारिषं ) मैंने की, यह ( नः मुखा सुरभि करत् ) हमारे मुखादि अंगोंको शक्तिसम्पन्न करता है, ( नः आयूंषि प्रतारिषत् ) और हमारी आयु बढाता है ॥ ७ ॥

३५९ पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।११।४ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ४५ । (पु) ॥ ]

[ ८ ]

( १–१० ) १, ३, ५ प्रियमेध आंगिरसः; २, १० वामदेवो गौतमः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ अत्रिर्भौमः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः; ९ त्रित आप्त्यः ( ऋ० आंगिरसो वा ) ॥ इन्द्रः; ( ६ ऋ० अग्निः ) ८ उषाः; ९ विश्वेदेवाः ॥ अनुष्टुप् ॥

३६० प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।१ )

३६१ कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥

३६२ अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६९।८ )

३६३ उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१०।५ )

---

[ ३५९ ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला, ( युवाः कविः ) तरुण, ज्ञानी ( अ-मित-ओजाः ) अपरिमित बलवान्, ( विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता ) सब शुभ कर्मोंको धारण करनेवाला ( पुरु-ष्टुतः इन्द्रः अजायत ) अनेकोंके द्वारा प्रशंसित यह इन्द्र उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

॥ यहां पच्चीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २६ ] षड्विंशः खण्डः ।

[ ३६० ] हे याजको ! ( वः ) तुम ( त्रिष्टुभं इषं ) तीन स्तोत्रोंसे तैय्यार किया गया अन्न ( वन्दद् वीराय इन्दवे ) प्रशंसनीय वीर इन्द्रके पास ( प्र प्र ) पहुंचावो, वह इन्द्र ( वः ) तुम्हें ( मेधसातये ) यज्ञके अनुष्ठानके लिए ( पुरंध्या धिया ) विशेष बुद्धिसे किए गए कर्मोंसे ( आ विवासति ) इष्ट फल देकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

[ ३६१ ] ( कश्यपस्य ) सर्वद्रष्टा इन्द्रके ( यौ ) जो दोनों घोडे है, ( ययोः ) जिनके ( विश्वं अपि व्रतं ) सब कार्य ( यज्ञं इति ) यज्ञ ही हैं, ऐसा ( निचाय्य ) निश्चय करके ( सयुजौ ) वे दोनों घोडे रथमें जोडे जाते हैं, ऐसा ( स्वर्विदः धीराः आहुः ) ज्ञानी और बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं ॥ २ ॥

[ ३६२ ] हे ( नरः ) मनुष्यो ! तुम ( अर्चत ) इन्द्रका सत्कार करो, ( प्र अर्चत ) विशेष रूपसे सत्कार करो, हे ( प्रिय-मेधासः ) यज्ञसे प्रेम करनेवालो ! ( अर्चत ) इन्द्रका सत्कार करो, हे ( पुत्रकाः ) पुत्रो ! ( पुरं इत् धृष्णु ) भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले, शत्रुको हरानेवाले इन्द्रका ( अर्चन्तु, अर्चत ) लोग सत्कार करें और तुम भी सत्कार करो ॥ ३ ॥

[ ३६३ ] ( पुरु-निः-षिधे इन्द्राय ) बहुतसे शत्रुओंके नाश करनेवाले इन्द्रके लिए ( वर्धनं उक्थं ) उसके यशको बढानेवाले स्तोत्र ( शंस्यं ) कहो, वह ( शक्रः ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( सुतेषु च सख्येषु ) पुत्रोंमें और मित्रोंमें ( यथा रारणत् ) जिस रीतिसे उत्तम बोले, उस प्रकारसे इसके लिए स्तोत्रोंको कहो ॥ ४ ॥

३६४ विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६८।४ )

३६५ स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२।४ )

३६६ विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥ ७ ॥ ( ऋ. ५।३८।१ )

३६७ वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।४९।३ )

३६८ अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिव ।
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०५।५ )

---

[ ३६४ ] ( विश्वानरस्य ) सब शत्रुओंके सैनिकोंपर आक्रमण करनेवाले अथवा विश्वके नेता ( अनानतस्य ) शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले ( शवसः पतिं ) बलके स्वामी इन्द्रको, हे मरुतो ! ( वः ) तुम्हारे ( चर्षणीनां एवैः ) सैनिकोंके आक्रमणके लिए होनेवाले शोरके समय ( रथानां ऊती हुवे ) रथोंके संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥

३६५ ] ( यः ) जो ( शमतः मर्तस्य ) शान्त मनुष्यकी ( दिवः ते धिया ) तेजस्वी दीखनेवाली उस स्तुतिकी सहायतासे ( नरः सखा ) मनुष्य मित्र होता है, ( सः ) वह मनुष्य ( बृहतः दिवः ऊती ) महान् दिव्य संरक्षणसे युक्त होकर ( अंहः न ) पापोंसे सुरक्षित होनेके समान ( द्विषः तरति ) शत्रुओंसे सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

१ सः बृहतः दिवः ऊती, अंहः न, द्विषः तरति— जो मनुष्य इस विशाल संरक्षणसे युक्त होता है, वह जैसे पापसे सुरक्षित होता है उसी प्रकार शत्रुओंसे भी सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

[ ३६६ ] हे ( शतक्रतो इन्द्र ) हे सैकडों पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( विभोः राधसः ) बहुतसे धनोंके ( ते रातिः विभ्वी ) तेरे दान महान् हैं, ( अथ ) इसके बाद ( विश्व-चर्षणे सु-दत्र ) हे सर्वद्रष्टा और उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! ( नः द्युम्नं मंहय ) हमें धन देकर महान् कर ॥ ७ ॥

[ ३६७ ] हे ( अर्जुनि उषः ) शुभ्र वर्णकी उषे ! ( ते ऋतून् अनु ) तेरे आनेके बाद ( द्विपाद् चतुष्पाद् ) मनुष्य और पशु ( पतत्रिणः वयः चित् ) तथा पंखोंवाले पक्षी भी ( दिवः अन्तेभ्यः ) आकाशके अन्ततक ( परि प्रारन् ) ऊपर इच्छानुसार उडते हैं ॥ ८ ॥

[ ३६८ ] हे ( देवा ) देवो ! ( ये अमी ) जो इन ( दिवः आरोचने ) दिनोंके प्रकाशित होनेपर ( मध्ये स्थन ) तुम उस आकाशमें रहते हो, ( वः ऋतं कद् ) तुम्हें वहां क्या यज्ञ प्राप्त होता है ? अथवा क्या ( वः प्रत्ना आहुतिः का ) वहां तुम्हें पहलेके समान कोई आहुति भी मिलती है ? ॥ ९ ॥

३६९ ऋच२ं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ इत्यनुष्टुभः ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५४ । जो ॥ ]

[ ९ ]

( १-११ ) १ रेभः काश्यपः; २ सुवेदाः शैलूषिः; ३ वामदेवो गौतमः; ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरसः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ कृष्ण आङ्गिरसः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेधातिथिः काण्वः ( ऋ० मान्धाता यौवनाश्वः ), ११ कुत्स आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः; ९ द्यावापृथिवी ॥ जगती; १ अति जगती; १० महापङ्क्तिः ॥

३७० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९७।१० )

३७१ श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१४७।१ )

३७२ समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥ ३ ॥

[ ३६९ ] ( याभ्यां कर्माणि कृण्वते ) जिसकी सहायतासे यज्ञादि कर्म किए जाते हैं, ( ऋचं साम यजामहे ) उस ऋचा और सामको गाकर हम यज्ञ करते है, ( ते ) वे ऋग् मंत्र और साम मंत्र ( सदसि विराजतः ) यज्ञ मण्डपमें विराजमान हैं, और वे ही ( देवेषु यज्ञं वक्षतः ) देवोंमें यज्ञको पहुंचाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां छव्वीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २७ ] सप्तविंशः खण्डः ।

[ ३७० ] ( विश्वाः पृतनाः नरः ) सब शत्रुसेनाके नेता वीर सैन्यके साथ ( सजूः ) एकत्रित होनेके बाद वे ( अभि-भू-तरं इन्द्रं ततक्षुः ) शत्रुको बुरी तरह हरानेवाले इन्द्रको शस्त्रास्त्रोंसे युक्त करते हैं, ( च राजसे जजनुः ) और अधिक प्रकाशित करते हैं, ( उत ) और ( क्रत्वे वरे स्थेमनि ) यज्ञमें श्रेष्ठ स्थानपर ऋत्विग् बैठकर ( आमुरीं ) शत्रुको मारनेवाले ( उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं ) उग्र, वीर, सामर्थ्यवान्, प्रतापी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ३७१ ] हे ( अद्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते प्रथमाय मन्यवे ) तेरे महान् क्रोधपर मैं ( श्रत् दधामि ) श्रद्धा करता हुँ, ( यत् दस्युं अहन् ) क्योंकि वह क्रोध दुष्टोंको मारता है, और ( नर्यं अपः विवेः ) मनुष्योंके लिए हितकारी पानीको प्रवाहित करता है, ( उभे रोदसी ) दोनों ही द्युलोक और पृथिवीलोक ( यत् त्वा अनु धावतां ) अब तेरे अनुकूल होकर गति करते हैं और ( पृथिवी चित् ) पृथिवी भी ( ते शुष्मात् भ्यसाते ) तेरे बलके कारण कांपने लगती है ॥ २ ॥

[ ३७२ ] हे ( विश्वाः ) सब प्रजाओ ! ( ओजसा दिवः पतिं ) अपने शक्तिसे इन्द्र द्युलोकका स्वामी है । उसकी ( समेत ) सब एक स्थानपर मिलकर स्तुति करो, ( यः एक इत् ) जो अकेला ही ( जनानां अतिथिः भूः ) मनुष्योंका अतिथिके समान पूज्य है, ( पूर्व्यः सः ) वह पुराण पुरुष इन्द्र ( आजिगीषं तं नूतनं ) अपने शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले नये वीरोंको ( एकः इत् ) अकेला ही ( वर्त्तनीः अनुवावृते ) विजयके मार्गसे आगे ले जाता है ॥ ३ ॥

३७३ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।५७।४ )

३७४ चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतꣳ सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ३।५१।१ )

३७५ अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥ ऋ. १०।४३।१ )

३७६ अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मꣳहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।५१।१ )

३७७ त्यꣳसु मेषं महया स्वर्विदꣳशतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजꣳ हवनस्यदꣳ रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।५२।१ )

[ ३७३ ] ( प्रभूवसो पुरुष्टुत इन्द्र ) हे अत्यधिक धनवान् और बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! ( ये ) जो हम ( त्वा आरभ्य चरामसि ) तेरा आश्रय लेकर कार्योंमें प्रवृत्त होते है, ( ते इमे वयं ते ) वे ये हम तेरे ही हैं, हे ( गिर्वणः ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( त्वद्-अन्यः ) तुझसे भिन्न और कोई दूसरा ( गिरः न हि सघत् ) स्तुतिके योग्य नहीं है, ( तत् ) इसलिए ( नः वचः ) हमारी स्तुतियोंको ( क्षोणीः इव ) पृथ्वी जैसे सबको स्वीकार करती है, उस प्रकार ( प्रति हर्य ) स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[ ३७४ ] ( बृहती गिरः ) हमारी बहुत स्तुति ( चर्षणी-धृतं ) सब मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाले ( मघवानं उक्थ्यं ) धनवान् और प्रशंसनीय ( वावृधानं पुरुहूतं ) सब भक्तोंको बढानेवाले और बहुतोंसे प्रशंसित ( अमर्त्यं ) अमर, और ( सुवृक्तिभिः दिवे दिवे ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रतिदिन ( जरमाणं ) प्रशंसित ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( अभि अनूषत ) प्रशंसा करती है ॥ ५ ॥

[ ३७५ ] ( यथा जनयः मर्यं पतिं न ) जैसे स्त्रियां अपने पतिका ( परिष्वजन्त ) आलिंगन करती है, उसी प्रकार ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिये ( शुन्ध्युं मघवानं इन्द्रं ) शुद्ध और धनवान् इन्द्रकी ( स्वः-युवः ) आत्माकी शक्तिको बढानेवाली ( सध्रीचीः ) एकत्रित हुई हुई ( विश्वाः उशतीः मतयः ) सब उन्नतिकी इच्छा करनेवाली हमारी स्तुतियां ( अच्छा अनूषत ) प्रशंसा करती है ॥ ६ ॥

[ ३७६ ] ( त्यं मेषं ) उस शत्रुको हरानेवाले ( पुरु-हूतं ऋग्मियं ) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित, वेद मंत्रोंसे जिसकी स्तुति की जाती है, ऐसे ( वस्वः अर्णवं ) धनके समुद्र ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गीर्भिः अभि मदत ) स्तुतिसे आनंदित करो, ( यस्य मानुषं ) जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य ( द्यावः न ) द्युलोकके समान ( विचरन्ति ) चारों ही ओरसे प्रभावशाली होते हैं, अतः ( भुजे ) भोग मिलें इसलिए ( मंहिष्ठं विप्रं ) महान् ज्ञानी इन्द्रकी ( अभि अर्चत ) पूजा करो ॥ ७ ॥

[ ३७७ ] ( यस्य सुभुवः ) जिसके उत्तम स्थान ( शतं साकं ईरते ) सैकडों एक समयमें ही उन्नति करते है, ( त्यं मेषं स्वर्विदं रथं ) उस शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले, धन देनेवाले रथके समान इच्छित स्थानमें पहुंचानेवाले ( अत्यं वाजं न ) वेगसे दौडनेवाले घोडेके समान ( हवन-स्यदं ) यज्ञके स्थानपर जानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रके यशको ( अवसे ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-वृक्तिभिः महय ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रकट करो, और ( शतं आववृत्यां ) स्तुति सैकडो वार कहो ॥ ८ ॥

३७८ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥ ( ( ऋ. ६।७०।१ )

३७९ उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १० ॥ ( ऋ. १०।१३४।१ )

३८० प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तꣳ सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥ ( ऋ १।१०१।१ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । धा० ९३ । थि ॥ ]

॥ इति जगत्यः ॥

[ १० ]

( १-१० ) १ नारदः काण्वः; २,३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ४ पर्वतः काण्वः; ५-७, १० विश्वमना वैयश्वः; ८ नृमेध आङ्गिरसः; ९ गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः ॥ उष्णिक् ॥

३८१ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाꣳहि षः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

---

[ ३७८ ] ( द्यावापृथिवी ) ये द्युलोक और पृथिवीलोक ( घृतवती ) जलवाले, ( भुवनानां अभिश्रिया ) सब प्राणियोंको आश्रय देनेवाले ( उर्वी पृथ्वी ) महान् और विस्तीर्ण ( मधु दुघे ) मीठा जल देनेवाले ( सु-पेशसा ) उत्तम रूपसे युक्त ( वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ) ईश्वरकी धारकशक्तिसे रहनेवाले ( अजरे भूरि रेतसा ) जरारहित, नित्य और उत्तम वीर्यसे सम्पन्न हैं ॥ ९ ॥

[ ३७९ ] हे इन्द्र ! ( उभे रोदसी ) द्युलोक और पृथ्वीलोक इन दोनोंको ( यत् ) जो तू ( उषा इव ) उषाके समान अपने तेजसे ( आ पप्राथ ) भर देता है ऐसे ( महीनां महान्तं ) महान्से भी महान् ( चर्षणीनां सम्राजं ) मनुष्योंमें सम्राट् ( त्वा इन्द्रं ) तुझ इन्द्रको ( देवी जनित्री ) देवमाता अदितिने ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली देवीने उत्पन्न किया ॥ १० ॥

[ ३८० ] हे ऋत्विजो ! ( मन्दिने ) प्रशंसनीय इन्द्रको ( पितुमत् वचः प्र अर्चत ) हविष्यान्नसे युक्त स्तुति करो, ( यः ) जिस इन्द्रने ( ऋजिश्वना ) ऋजिश्वकी सहायतासे ( कृष्ण-गर्भाः ) कृष्ण असुरकी गर्भवती स्त्रियोंको कृष्णके साथ ( निरहन् ) जानसे मार दिया, उस ( वज्र-दक्षिणं ) दायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले ( मरुत्वन्तं ) मरुतोंकी सेनाके साथ रहनेवाले ( वृषणं ) बलवान् इन्द्रको ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( सख्याय हुवेम ) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ११ ॥

॥ यहां सत्ताइसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २८ ] अष्टाविंशः खण्डः

[ ३८१ ] हे इन्द्र ! ( सोमेषु सुतेषु ) सोमरसोंको निकालनेके बाद ( वृधस्य दक्षस्य वृधे ) बढानेवाले बलको प्राप्त करनेके लिए ( क्रतुं उक्थ्यं पुनीषे ) यज्ञ और साम-गान सुनकर उन्हें तू पवित्र करता है, क्योंकि हे इन्द्र ! ( सः महान् हि ) वह तू महान् है ॥ १ ॥

३८२ तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१५।१ )

३८३ तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१५।४ )

३८४ यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१६ )

३८५ एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।२४।१६ )

३८६ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।२४।१३ )

३८७ एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।२४।१९ )

---

[ ३८२ ] हे स्तुति करनेवाले ! ( पुरु-हूतं ) अनेकोंसे बुलाये जानेवाले ( पुरु-स्तुतं ) और अनेकोंसे प्रशंसित होनेवाले ( तं उ अभि प्रगायत ) उस इन्द्रकी ही बार बार स्तुति करो, ( तविषं इन्द्रं ) महान् इस इन्द्रकी ( गीर्भिः आ विवासत ) मंत्रोंसे आराधना करो ॥ २ ॥

[ ३८३ ] हे ( अद्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते ) तेरे ( तं ) उस ( वृषणं ) बलवान् ( पृक्षु सासहिं ) संग्राममें शत्रुको हरानेवाले ( लोक कृत्नुं ) मनुष्योंके लिए हितका काम करनेवाले ( हरि-श्रियं उ ) घोडे जिसके पास शोभित होते है, ऐसे ( मदं ) सोमपानसे उत्पन्न हुए इस उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ ३८४ ] हे इन्द्र ! यद्यपि ( विष्णवि ) विष्णुके आनेके बाद होनेवाले यज्ञमें ( यत् सोमं ) जो सोमरस तूने पिया ( यद् वा ) अथवा ( आप्त्ये त्रिते ) आप्त्य त्रितके यज्ञमें ( यद्वा मरुत्सु ) अथवा मरुतोंके साथ अथवा ( मन्दसे ) अन्य यज्ञोंमें सोम पीकर आनन्दित होता है, तो भी तू ( इन्दुभिः सं ) हमारे सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

[ ३८५ ] हे ( अध्वर्यो ) ऋत्विजो ! ( मधोः अन्धसः ) मीठे सोमके इस ( मदि-तरं इत् ) आनन्द देनेवाले रसको ( आ सिंच ) इन्द्रको अर्पण करो क्योंकि वह ( वीरः सदा-वृधः ) पराक्रमी और सदा बढानेवाला इन्द्र ( एव हि स्तवते ) ही स्तोत्र पढनेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

[ ३८६ ] हे ऋत्विजो ! ( इन्द्राय इन्दुं सिंचत ) इन्द्रके लिए सोमरस दो, उसके बाद ( सोम्यं मधु पिबाति ) मीठा सोमरस वह पीता है, और वह अपनी ( महित्वना ) महत्तासे ( राधांसि प्र चोदयते ) धन देता है ॥ ६ ॥

[ ३८७ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( नु एत ) शीघ्र आओ, ( तं स्तोम्यं नरं स्तवाम ) उस प्रशंसनीय नेता इन्द्रकी स्तुति करें, ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही ( विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति ) सब शत्रुसेनाओंको हराता है ॥ ७ ॥

३८८ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९८।१ )

३८९ य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।८४।७ )

३९० सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥ ( ऋ ८।२४।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० १० । उ० ४ । धा० ६२ । खा ॥ ]

इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, चतुर्थः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

[ १ ]

( १-८ ) १ प्रगाथो घोरः काण्वः; २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ नृमेध आङ्गिरसः; ४ पर्वतः काण्वः; ५, ७ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ विश्वमना वैयश्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः; ५, ७ आदित्याः ॥ उष्णिक्; ८ विराडुष्णिक् ॥

३९१ गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६२।८ )

३९२ यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
अयंस सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४३।१ )

---

[ ३८८ ] हे उद्गाताओ ! ( विप्राय ) ज्ञानी ( बृहते ब्रह्मकृते ) महान् स्तुति जिसके लिए की जाती है ऐसे ( विपश्चिते ) विद्वान् और ( पनस्यते ) स्तुतिके योग्य ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( बृहत् साम गायत ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ ८ ॥

[ ३८९ ] ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही ( दाशुषे मर्ताय ) दानशील मनुष्यको ( वसु विदयते ) धन देता है, ( अ-प्रतिष्कुतः इन्द्रः ) जिसका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता, ऐसा यह इन्द्र ( अङ्ग ईशानः ) हे प्रिय ! सभीका स्वामी है ॥ ९ ॥

[ ३९० ] हे ( सखायः ) मित्रो ( वज्रिणे ) वज्रधारी इन्द्रकी ( ब्रह्म आशिषामहे ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए उससे हम आशीर्वाद मांगते है, ( वः ) तुम सबके लिए ( नृतमाय धृष्णवे सुस्तुषे ) श्रेष्ठ वीर और शत्रुओंका पराभव करनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

॥ यहां अट्ठाइसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २९ ] एकोनत्रिंशः खण्डः ।

[ ३९१ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् शवः ) उस तेरे सामर्थ्यकी ( उपमां देवतातये गृणे ) पासके यज्ञमें स्तुति करता हूँ, हे ( शचीपते ) इन्द्र ! तू ( ओजसा वृत्रं हंसि ) अपने सामर्थ्यसे वृत्रको मारता है ॥ १ ॥

[ ३९२ ] हे इन्द्र ! ( यस्य मदे ) जिस सोमरसको पीकर उत्साह प्राप्त होनेपर ( दिवोदासाय ) दिवोदासके लिए ( त्यत् शम्बरं ) उस शम्बरासुरको ( अरन्धयन् ) जानसे मार डाला, ( सः अयं ) वह यह ( सोमः ) सोमरस ( ते सुतः ) तेरे लिए तैय्यार किया है, उसे तू पी ॥ २ ॥

३९३ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।९८।४ )

३९४ य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हꣳसि न्याऽत्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१ )

३९५ तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१८।१८ )

३९६ वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।२४।२४ )

३९७ अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अꣳहसः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१८।१० )

३९८ पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।२२।१ )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५॥ इत्युष्णिहः । [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ५१ । फ ॥ ]

---

[ ३९३ ] ( प्रिय ) हे सबके प्रिय ! ( सत्राजित् ) एक साथ शत्रुओंको जीतनेवाले ( अ-गोह्य ) किसीसे न हारनेवाले इन्द्र ! ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथु ) चारों ओरसे विशाल ( दिवः पतिः ) द्युलोकका स्वामी तू ( नः आगहि ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

[ ३९४ ] हे इन्द्र ! ( यः सोमपा-तमः ) तू अत्यधिक सोम पीनेवाला और ( शविष्ठः ) बलवान् है, वह तेरा ( यः मदः ) उत्साह तुझे ( चेतति ) जगाता है, ( येन ) जिस उत्साहसे ( अत्रिणं नि हंसि ) खाऊ राक्षसोंको मारता है, ( तं ईमहे ) उस तेरी हम प्रार्थना करते है ॥४ ॥

[ ३९५ ] हे ( सुमहसः आदित्यासः ) महान् आदित्यो ! ( नः तुचे ) हमारे पुत्रोंके और ( तुनाय ) पौत्रोंके ( जीवसे ) दीर्घजीवनके लिए ( तत् द्राघीय आयुः ) वह दीर्घ आयु प्राप्त हो, ऐसा ( सु कृणोतन ) करो ॥ ५ ॥

[ ३९६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! ( निर्ऋतीनां परिवृजं ) विघ्न करनेवालोंको दूर करनेका मार्ग तू ( वेत्था हि ) जानता ही है, इसलिए ( अहः अहः शुन्ध्युः ) प्रतिदिन स्वयंको शुद्ध रखनेवाला मनुष्य जिस प्रकार ( परि-पदां इव ) आपत्तियोंको–रोगादिकोंको–दूर करता है, उसी प्रकार तू विपत्तियोंको दूर करता है ॥ ६ ॥

[ ३९७ ] हे ( आदित्यासः ) आदित्यो ! ( अमीवां अप सेधत ) हमारे रोगोंको दूर करो, ( स्रिधं अप ) शत्रुओंको दूर करो, ( दुर्मतिं अप ) दुष्टबुद्धिको दूर करो, और ( नः अंहसः युयोतन ) हमें पापोंसे दूर रखो ॥ ७ ॥

[ ३९८ ] हे इन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरस पी, वे सोमरस ( त्वा मदन्तु ) तुझे आनन्दित करें, हे ( हरि-अश्व ) घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते सोतुः ) तेरे लिए सोमरस निकालनेवालेका ( बाहुभ्यां अर्वा न सुयतः ) रस्सीसे घोडेके समान अच्छी तरह रक्खा हुआ ( अयं अद्रिः ) यह पत्थर तेरे लिए ( सुषाव ) सोमरस निकालता है ॥ ८ ॥

॥ यहां उन्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

( १-१० ) सौभरिः काण्वः; ७, ८ नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ३, ६ मरुतः ॥ ककुप् ॥

३९९ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥
( ऋ. ८।२१।१३ )

४०० यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥
( ऋ. ८।२१।९ )

४०१ आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः । दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥
( ऋ. ८।२०।१ )

४०२ आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमꣳ सोमपते पिब ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।२१।३ )

४०३ त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । सꣳस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥
( ऋ. ८।२१।११ )

४०४ गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥
( ऋ. ८।२०।२१ )

---

[ ३० ] त्रिंशः खण्डः ।

[ ३९९ ] हे इन्द्र ! ( त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः ) तू जन्मसे ही शत्रुरहित है, ( अ-ना ) तुझपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, ( सनात् अनापिः ) सदासे ही भाईरहित है, ( युधा इत् ) युद्धसे तू ( आपित्वं इच्छसे ) भाइयोंको पानेकी इच्छा करता है; भक्त हों ऐसी इच्छा करता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृव्यः— भाईबन्धोंके झगडेसे मुक्त ।

२ अनापिः— अकेला, जिसकी सहायताके लिए कोई भी भाई नहीं है ।

[ ४०० ] हे ( सखायः ) मित्रों ! ( य ) जिस इन्द्रने ( पुरा ) पहले ( इदं वस्यः ) यह धन ( नः प्र आनिनाय ) हमें दिया, ( तं उ इन्द्रं ) उसी इन्द्रकी ( वः ऊतये स्तुषे ) तुम्हारे संरक्षणके लिए मैं स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

[ ४०१ ] हे ( प्रस्थावानः ) गतिमान् मरुतो ! ( आगन्त ) हमारे पास आओ, ( मा रिषण्यत ) हमें हानि मत पहुंचाओ, ( स-मन्यवः ) हे उत्साही वीरो ! ( दृढा चित् यमयिष्णवः ) बलवान् शत्रुओंको भी तपानेवाले मरुतो ! ( मा अपस्थात ) हमसे दूर मत रहो ॥ ३ ॥

[ ४०२ ] हे ( अश्व-पते ) घोडोंके स्वामी ! ( गो-पते ) गौवोंके स्वामी ! और हे ( उर्वरा-पते ) भूमिके पालक इन्द्र ! ( इन्दवे ) सोमरस पीनेके लिए ( अयं ) यह सोमरस निकाला है, ( आयाहि ) आ और हे ( सोम-पते ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरस पी ॥ ४ ॥

४०३ ( वृषभ ) बलवान् इन्द्र ! ( गोमतः जनस्य संस्थे ) गाय पालन करनेवाले लोगोंके समूहमें ( श्वसन्तं ) क्रूर कर्म करनेके कारण लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शत्रुको ( त्वया युजा ) तेरी सहायतासे ( ह स्वित् ) ही ( प्रति ब्रुवीमहि ) योग्य उत्तर देकर उसे हटावें ॥ ५ ॥

[ ४०४ ] ( समन्यवः ) समान रीतिसे उत्साहित मरुतो ! ( गावः चित् ह ) वे गायें भी ( स-जात्येन सबन्धवः ) एक जातीय होनेके कारण परस्पर बहिनें हैं, वे ( ककुभः ) अनेक दिशाओं में घूमती हुई ( मिथः रिहते ) परस्पर एक दूसरेको चाटती हैं ॥ ६ ॥

१ गावः सजात्येन सबन्धवः ककुभः मिथः रिहते— गायें सजातीय होनेके कारण एक दूसरेकी बहिन हैं, वे नाना देशोंमें घूमती हुईं परस्पर एक दूसरेको चाटती है, उसी प्रकार मनुष्योंको भी एक दूसरेसे प्रेम करना चाहिए ।

४०५ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णꣳशतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥
( ऋ. ८।९८।१० )

४०६ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥
( ऋ. ८।९८।७ )

४०७ सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥
( ऋ. ८।२१।५ )

४०८ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रꣳहवामहे ॥ १० ॥
( ऋ ८।२१।१ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ इति ककुभः ॥ [ स्व० २ । उ० २ । धा० ४१ । छ ॥ ]

[ ३ ]

( १–१० ) १–८ गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः; ९ त्रितः आप्त्यः ( ऋ० कुत्स आंगिरसो वा ) १० अवस्युरात्रेयः ॥ इन्द्रः; ९ विश्वेदेवाः; १० अश्विनौ ॥ पंक्तिः ।

४०९ स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४।१० )

---

[ ४०५ ] हे ( शत–क्रतो वि–चर्षणे इन्द्र ) सैकडों कार्य करनेवाले विशेष ज्ञानी इन्द्र ! ( त्वं नः ) तू हमें ( ओजः नृम्णं ) बल और धन ( आ भर ) भरपूर दे । उसी प्रकार ( पृतना–सहं वीरं आ ) शत्रुसेनाको हरानेवाला वीर पुत्र भी दे ॥ ७ ॥

१ त्वं नः ओजः नृम्णं पृतना–सहं वीरं आ भर— तू हमें सामर्थ्य, मानसिकबल और शत्रुसेनाको हरानेवाले वीरोंका सामर्थ्य भरपूर दे ॥

[ ४०६ ] हे ( गिर्वण इन्द्र ) स्तुत्य इन्द्र ! ( अधा हि त्वा ) अब हम तुझसे ( कामः ईमहे ) अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उप ससृग्महे ) तेरी पाससे स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( उदा ग्मन्तः उदभिः इव ) पानी ले जानेवाले मित्र मित्रताके कारण पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तुझसे मित्रता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४०७ ] हे इन्द्र ! ( गोश्रीते ) गाय दूधसे मिश्रित ( मदिरे विवक्षणे ) उत्साह बढानेवाले, प्रयत्न करनेवाले ( ते मधौ ) तेरे लिए निकाले गए सोमरसके पास ( वयो यथा ) जिस प्रकार पक्षी इकट्ठे होते है, उसी प्रकार हम ( त्वां अभि नोनुमः ) आकर तुझे नमन करते हैं ॥ ९ ॥

[ ४०८ ] हे ( अ–पूर्व्य वज्रिन् ) अपूर्व, वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां उ ) तुझे ही ( चित्रं भरन्तः ) इस विलक्षण सोमरसको भरपूर देते हुए ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार ( कच्चित् स्थूरं न ) किसी गुणोंसे महान् मनुष्यके पास दूसरे मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार हम तेरे पास आते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३१ ] एकत्रिंशः खण्डः ।

[ ४०९ ] ( स्वादोः ) स्वादिष्ट ( इत्था विषूवतः ) इस प्रकार सब यज्ञोंमें होनेवाले इस ( मधोः ) मीठे सोमरसको ( गौर्यः पिबन्ति ) श्वेत वर्णकी गायें पीती हैं, ( याः ) जो गायें ( वृष्णा सयावरीः ) भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले इन्द्रके साथ चलनेवालीं ( मदन्ति ) आनन्दसे रहती हैं, और ( शोभथाः ) सुशोभित होती हैं, वे ( वस्वीः ) उत्तम दूध देती हुई ( स्वराज्यं अनु ) स्वराज्यके अनुकूल कार्य करती हैं ॥ १ ॥

४१० इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८०।१ )

४११ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥ ( ऋ १।८१।१ )

४१२ इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ १।८०।७ )

४१३ प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८०।३ )

४१४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८१।३ )

[ ४१० ] हे ( शविष्ठ वज्रिन् ) बलवान् और वज्रधारी इन्द्र ! ( इत्था हि ) इस प्रकार ( सोमे मदः ) सोमरसमें उत्साह बढानेवाले गुण हैं, इसलिए उनके ( वर्धनं ब्रह्म चकार ) गुणवर्णन करनेवाले ये स्तोत्र बनाये हैं, ( स्वराज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यको लक्ष्य करके ( पृथिव्याः अ-हिं ) पृथिवीपर कम न होनेवाले शत्रु ( निः शशाः ) बिलकुल नष्ट हो जायें, ऐसे करना चाहिए ॥ २ ॥

[ ४११ ] ( वृत्र-हा इन्द्रः ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रका यश ( मदाय शवसे ) आनन्द और उत्साहको प्राप्त करनेके लिए ( नृभिः वावृधे ) मनुष्योंके द्वारा बढाया जाता है, इस कारण ( तं ऊतिं इत् ) उस रक्षण करनेवाले इन्द्रको ही हम ( महत्सु आजिषु ) महान् युद्धोंमें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( सः वाजेषु नः प्राविषत् ) वह युद्धोंमें हमारा संरक्षण करे ॥ ३ ॥

[ ४१२ ] हे ( अद्रि-वः वज्रिन् इन्द्र ) पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! ( तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं ) तेरा ही सामर्थ्य शत्रुओंसे पराजित नहीं हो पाता, ( यत् ह ) जो निश्चयसे ( स्वराज्यं अर्चन् अनु ) स्वराज्यकी अर्चना करनेवालोंको उपयोगी है ऐसे सामर्थ्यसे ( मायिनं मृगं त्यं ) कपटसे लडनेवाले, खोज करके मारने योग्य वृत्रको तू ( तव मायया अवधीः ) अपने छल और कपटके प्रयोगसे ही मारता है ॥ ४ ॥

[ ४१३ ] हे इन्द्र ! ( प्रेहि ) शत्रूपर चढाई कर ( अभीहि ) चारों ओरसे हमला कर, ( धृष्णुहि ) शत्रुओंका नाश कर ( ते वज्रः न नियंसते ) तेरा वज्र कम शक्तिवाला नहीं है, ( ते शवः नृम्णं ) तेरा बल शत्रुओंको झुकानेवाला है, ( हि स्व-राज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यकी अर्चना अनुकूलतासे करते हुए ( वृत्रं हनः ) वृत्रको मार ( अपः जय ) और जलोंको जीत ॥ ५ ॥

[ ४१४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध शुरू हो जाते है, उस समय ( धृष्णवे धनं धीयते ) शत्रुको जीतनेवालेको ही धन मिलते है, हे इन्द्र ! इस प्रकार युद्धके शुरू होनेपर ( मद-च्युता हरी युङ्क्ष्व ) मद चुआनेवाले अपने घोडोंको रथमें जोड, ( कं हनः ) तू किसे मारे और ( कं वसौ दधः ) किसे धन दे, यह तेरे आधीन हैं, इसलिए हे इन्द्र ! ( अस्मान् वसौ दधः ) हमें धनोंमें स्थापित कर, हमें बहुत सारा धन दे ॥ ६ ॥

१ यत् आजयः उदीरते धृष्णवे धनं धीयते— जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, तब शत्रुओंको पैरोंसे कुचलनेवालेको ही धन मिलता है ।

४१५ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥ (ऋ. १।८२।२)

४१६ उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥ (ऋ. १।८२।१)

४१७ चन्द्रमा अप्स्वाऽऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥ (ऋ. १।१०५।१)

४१८ प्रति प्रियतमꣳरथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥ १० ॥ (ऋ. ५।७५।१)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १३ । उ० ५ । धा० ७५ । णु ॥ ]

[ ४ ]

( १-८ ) १, ७ वसुश्रुत आत्रेयः; २, ४ विमद ऐन्द्रः ( ऋ० प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुकः ); ३ सत्यश्रवा आत्रेयः; ५, ६ गोतमो राहूगणः; ८ अंहोमुग्वामदेव्यः; ( ऋ० कुल्मलबर्हिषः शैलूषिर्वा; ) ॥ अग्निः; ३ उषाः; ४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विश्वेदेवाः ॥ पंक्तिः; ८ बृहती ॥

४१९ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ (ऋ. ५।६।४)

---

[ ४१५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! यजमानोंने ( अक्षन् ) अन्न खा लिया और ( हि अमीमदन्त ) वे तृप्त हो गए ( प्रियाः अव अधूषत ) आनन्दित होकर उन्होंने अपने सिर आनन्दसे हिलाये, उसके बाद ( स्व-भानवः विप्राः , स्वयं तेजस्वी बोलनेवाले उन ब्राह्मणोंने ( नविष्ठया मती अस्तोषत ) नवीन स्तोत्रोंसे स्तुति की, अब तू इस यज्ञमें जानेके लिए ( ते हरी नु योज ) अपने घोडे जोड ॥ ७ ॥

[ ४१६ ] ( मघवन् इन्द्र ) हे धनवान् इन्द्र ! ( गिरः उप उ सु शृणुहि ) हमारे स्तोत्र पास आकर सुन, ( अ-तथा इव मा ) पहलेके विरुद्ध व्यवहार मत कर, ( नः सूनृतावतः कदा करः ) हमें सत्यभाषण करनेवाला कब करेगा? तू ( अर्थयासे इत् ) हमारी स्तुति जाननेकी इच्छा करता है, इसलिए ( ते हरी नु योज ) तू अपने घोडे जोड ॥ ८ ॥

[ ४१७ ] ( अप्सु अन्तः ) अन्तरिक्षमें रहनेवाला ( सु-पर्णः चन्द्रमाः ) उत्तम किरणोंवाला चन्द्रमा ( दिवि आधावते ) आकाशमें दौडता है, ( हिरण्यनेमयः विद्युतः ) हे सोनेके समान चमकनेवाले बिजलीरूपी तेजो ! ( वः पदं ) तुम्हारे चरणरूपी किरणोंको मेरी इन्द्रियें ( न विन्दन्ति ) नहीं पा सकती, हे ( रोदसी ) द्यावापृथिवियो ! ( मे अस्य वित्तं ) मेरी इस स्तुतिको तुम जानो ॥ ९ ॥

[ ४१८ ] हे ( अश्विनौ ) अश्विनी देवो ! ( वां प्रियतमं ) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय, ( वृषणं वसु-वाहनं ) मजबूत और धनको ढोकर ले जानेवाले, ( रथं ) रथको ( स्तोता ऋषिः ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( स्तोमेभिः प्रति भूषति ) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है, हे ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले अश्विनीकुमारो ! ( मम हवं श्रुतं ) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ १० ॥

॥ यहां इकतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३२ ] द्वात्रिंशः खण्डः ।

[ ४१९ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निदेव ! ( द्युमन्तं अजरं ते ) तेजस्वी और बुढापेसे रहित तुझे ( आ इधीमहि ) हम जलाते हैं, ( यत् ह ) निश्चयसे ( ते स्या पनीयसी समित् ) तेरी वह प्रशंसनीय ज्योति ( द्यवि दीदयति ) द्युलोकमें चमकती है, ( स्तोतृभ्यः इषं आ भर ) तू स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥ १ ॥

*

४२० अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।२१।१ )

४२१ महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥ ( ऋ. ५।७९।१ )

४२२ भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।२५।१ )

४२३ क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८१।४ )

४२४ स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥ ( ऋ १।८२।४ )

---

[ ४२० ] ( न ) इस समय ( सु-वृक्तिभिः ) उत्तम स्तुतियोंसे ( होतारं ) हवन करनेवाले ( वः यज्ञेषु ) तुम्हारे यज्ञमें जिसके लिए ( स्तीर्ण-बर्हिषं ) आसन फैलाये गये है, ऐसे ( शीरं पावक-शोचिषं ) व्यापक, पवित्र करनेवाले तेजसे युक्त ( त्वा अग्निं ) तुझ अग्निकी ( वि-मदे आवृणीमहे ) विशेष आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम आराधना करते हैं, ( विवक्षसे ) तू महान् है ॥ २ ॥

[ ४२१ ] ( उषः ) हे उषादेवी ! ( अद्य ) आज ( दिवित्मती ) तू प्रकाशित होकर ( नः महे राये बोधय ) हमें धनकी प्राप्तिके लिए उसी प्रकार जगा, ( यथा चित् नः अबोधयः ) जैसे हमें पहले जगाती थी, हे ( सुजाते ) उत्तम रीतिसे प्रकट हुई उषे ! ( अश्व-सूनृते ) हे सत्यप्रिय उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) में वयका पुत्र सत्यश्रवा हूं अतः मुझपर कृपा कर ॥ ३ ॥

[ ४२२ ] हे सोम ! ( विवक्षसे ) महान् होनेके लिए ( अन्धसः विमदे ) सोमरसके आनन्दमें ( नः मनः ) हमारा मन ( दक्षं उत क्रतुं ) बलकी, कर्म करनेकी तथा ( भद्रं वातय ) कल्याण करनेकी शक्ति प्राप्त करे ऐसी प्रेरणा कर, ( अथ ते सख्ये ) और तेरी मित्रता प्राप्त हो, ऐसा कर, ( यवसे रणाः गावः न ) जिस प्रकार घासको सुन्दर गायें प्राप्त करतीं हैं; उसी प्रकार हम तेरी मित्रताको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

[ ४२३ ] ( क्रत्वा ) सामर्थ्यसे ( महान् भीमः ) बहुत भयंकर इन्द्र ( अनु-ष्वधं शवः आ वावृते ) सोमरस पीकर अपना बल बढाता है, उसके बाद ( ऋष्वः ) सुन्दर, ( शिप्री ) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला और ( हरि-वान् ) रथमें घोडे जोडनेवाला वह ( उपाकयोः हस्तयोः ) दांये हाथमें ( आयसं वज्रं ) फौलादसे बने वज्रको ( श्रिये निदधे ) शोभाके लिए धारण करता है ॥ ५ ॥

[ ४२४ ] ( यः ) जो रथ ( हारि-योजनं पूर्णं पात्रं ) खील और सोमसे भरे हुए पात्र धारण करता है, ऐसे ( वृषणं गोविदं रथं ) मजबूत और गायको प्राप्त करानेवाले रथपर ( सः घा ) वह इन्द्र ( अधि तिष्ठाति ) चढकर बैठता है, तथा ( तं चिकेतति ) उस रथको जानता है। इसलिए हे इन्द्र ! ( ते हरी नु योज ) अपने घोडे रथमें तू जोड ॥ ६ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
४२५ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥ ( ऋ. ५।६।१ )

२र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
४२६ न तमꣳहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
३ १ २ ३ १ २३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१२६।१ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५७ । जे ॥ ]

इति पंक्तयः ॥

[ ५ ]

( १-१० ) ऋण त्रसदस्यू; ( १, ३-५, १० अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; २, ६ अरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः ) ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ वामदेवो गौतमः ॥ पवमानः सोमः; ७ मरुतः; ८ अग्निः; ९ वाजिनः ॥ द्विपदा विराट्; ८ पदपंक्तिः; ९ पुरउष्णिक्; २, ६ त्रिपदा अनुष्टुप्पिपीलिकामध्या ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
४२७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१ )

२३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४२८ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३२ ३१ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११०।१ )

१ २ ३ १ २३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
४२९ पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०९।४ )

---

[ ४२५ ] ( यः वसुः अस्तं ) जो धनरूपी अग्नि घरमें है, ( यं धेनवः यन्ति ) जिस अग्निके पास गायें जाती हैं, ( अस्तं आशवः अर्वन्तः ) जिस यज्ञके घरकी ओर वेगवान् घोडे जाते है, ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिस यज्ञस्थानकी ओर अन्नको पासमें रखनेवाले यजमान जाते हैं, ( तं अग्निं मन्ये ) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ, तू ( स्तोतृभ्यः इषं आ भर ) स्तोताओंके लिए भरपूर अन्न दे ॥ ७ ॥

[ ४२६ ] ( देवासः ) हे देवो ! ( स-जोषसः ) एक विचारसे रहनेवाले ( अर्यमा, मित्रः, वरुणः ) अर्यमा, मित्र और वरुण ( अति-द्विषः ) शत्रुको दूर करके ( यं नयति ) जिसको उन्नतिकी ओर ले जाते हैं, ( तं मर्त्यं ) उस मनुष्यको ( अंहः न ) पाप नहीं लगता और ( दुरितं न अष्ट ) दुर्गति उसे छूतीतक नहीं ॥ ८ ॥

॥ यहां बत्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३३ ] त्रयस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४२७ ] हे सोम ! ( स्वादुः ) स्वादिष्ट तू ( इन्द्राय मित्राय पूष्णे ) इन्द्र, मित्र और पूषाके लिए और ( भगाय ) भगके लिए ( परि प्र धन्व ) वर्त्तनमें भरा रह ॥ १ ॥

[ ४२८ ] हे सोम ! तू ( वाज-सातये ) अन्नकी प्राप्तिके लिए ( सु परि प्रधन्व ) उत्तम रीतिसे वर्त्तनमें भरा रह, ( सक्षणिः वृत्राणि परि ) सामर्थ्यवान् होकर तू शत्रुपर हमला कर, ( नः ऋणया ) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला तू ( द्विषः तरध्यै ) शत्रुओंसे पार होनेके लिए ( ईरसे ) उन शत्रुओंपर चढाई करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

[ ४२९ ] हे सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् समुद्रके समान ( पिता ) पालन करनेवाला तू ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थानोंमें - पात्रोंमें - ( अभि पवस्व ) भरा रह ॥ ३ ॥

४३० पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )

४३१ इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१३ )

४३२ अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाꣳ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।११०।२ )

४३३ क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।५६।१ )

४३४ अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ४।१०।१ )

४३५ आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम् । स्वर्गाꣳ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

४३६ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाꣳ अवीनामनुपूर्व्यः ॥ १० ॥ ( ऋ ( ९।१०९।७ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० ८ । उ० २ । धा ३५ । ठु ॥ ]

इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

---

[ ४३० ] हे सोम ! ( अश्वः न ) घोडेके समान ( निक्तः ) पानीसे साफ किया हुआ ( वाजी ) बल बढानेवाला तू ( महे दक्षाय ) महान् बल और ( धनाय ) धनकी प्राप्तिके लिए ( पवस्व ) बर्त्तनमें भरा रह ॥ ४ ॥

[ ४३१ ] ( चारुः कविः ) सुन्दर ज्ञानी ( इन्दुः ) यह सोम ( अपां उपस्थे ) पानीके पास ( भगाय मदाय ) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिए ( पविष्ट ) पहुंचता है, पानीमें मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

[ ४३२ ] हे सोम ! ( सुतं त्वा ) रस निकालनेके बाद तेरी ( अनु मदामसि हि ) हम उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं। हे ( पवमान ) पवित्र सोम ! ( महे समर्य-राज्ये ) महान् श्रेष्ठ राजाके संरक्षणके लिए ( वाजान् अभि प्रगाहसे ) अपने बलसे युक्त होकर शत्रुसेनापर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ ६ ॥

[ ४३३ ] ( व्यक्ताः नरः ) हे प्रसिद्ध नेताओ ! ( स-नीडाः मर्याः ) एक घरमें रहनेवाले ( अथा स्वश्वाः ) उत्तम घोडे पासमें रखनेवाले मरुत् ( ईं रुद्रस्य के ) इस रुद्रके कौन लगते है ? ॥ ७ ॥

वीर मरुद्गण इस रुद्रके पुत्र हैं।

[ ४३४ ] हे अग्ने ! ( अद्य ) आज हम इस यज्ञके ऋत्विज ( ओहैः स्तोमैः ) ओह नामक स्तोत्रोंसे ( अश्वं न ) घोडेके समान और ( क्रतुं न ) यज्ञकर्ताके समान ( भद्रं हृदि-स्पृशं ) कल्याण करनेवाले और हृदयको छूनेवाले अर्थात् अत्यन्त प्रिय ( ते ऋध्याम ) तेरे यशको बढानेवाली स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

१ अश्वं न— जैसे घोडा यज्ञस्थानको पहुंचाता है उसी प्रकार तू उन्नतिके स्थानपर पहुंचाता है।

२ क्रतुं न— यज्ञकर्ता जैसे उपकार करते हैं, उसी प्रकार तू उपकार करता है।

[ ४३५ ] ( मर्याः ) मनुष्योंका हित करनेवाले तथा ( आविः वाजिनः ) प्रकाशित हुए इस बलवान् देवताने ( सवितुः सवं वाजं ) सवितादेवके लिए तैय्यार किए गए सोमरसरूपी अन्नको ( अग्मं ) प्राप्त किया है, इसलिए हे यजमानो ! तुम ( स्वर्ग ) स्वर्गको और ( अर्वन्तः जयत ) घोडोंको विजयके लिए प्राप्त करो ॥ ९ ॥

[ ४३६ ] हे सोम ! तू ( द्युम्नी ) तेजस्वी, ( सु-धारः ) उत्तम प्रकारसे धार बंधकर बर्त्तनमें गिरनेवाला, ( अनु-पूर्व्यः महान् ) पहलेके समान ही महान् रहनेवाला है, अतः तू ( अवीनां अनु पवस्व ) रखे जानेवाले बर्त्तनमें ठीक प्रकारसे भर जा। बर्त्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ १० ॥

॥ यहां तैतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) त्रसदस्युः; ७ संवर्त आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ६ विश्वेदेवाः; ७ उषाः ॥
द्विपदा विराट् ॥

४३७ विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥

४३८ एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥

४३९ ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।३२।४ )

४४० अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ५।३१।४ )

४४१ शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥ ५ ॥

४४२ सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥

४४३ आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।१७२।१ )

[ ३४ ] चतुस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४३७ ] हे ( विश्वतो दावन् ) सब तरफसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र ! ( विश्वतः नः आ भर ) तू सब ओरसे हमें इच्छित धन भरपूर दे, ( यं शविष्ठं त्वा ईमहे ) जिस अत्यन्त बलवान् तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ४३८ ] ( ऋत्वियः यः इन्द्रः ) ऋतुओंके अनुसार काम करनेवाला जो यह इन्द्र ( नाम श्रुतः ) नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः ब्रह्मा ) यह बहुत ज्ञानी है, उसकी मैं ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४३९ ] ( अहये हन्तवै ) अहि असुरको मारनेके लिए ( अर्कैः महयन्तः ब्रह्माणः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले ज्ञानी ( इन्द्रं अवर्धयन् ) इन्द्रके यशको बढाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४४० ] हे इन्द्र ! ( अनवः ) मनुष्यरूपी ऋभु देवताओंने ( ते अश्वाय ) तेरे घोडोंके लिए ( रथं तक्षुः ) रथ तैय्यार किया, हे ( पुरु-हूत ) अनेकोंसे बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( त्वष्टा ) त्वष्टाने ( द्युमन्तं वज्रं ) तेजस्वी वज्रको तेरे लिए बनाया ॥ ४ ॥

१ अनवः अश्वाय रथं तक्षुः— मनुष्यरूपी ऋभुदेवता या कारीगरोंने इन्द्रके घोडेके लिए उत्तम रथ तैय्यार किया ।

२ त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं— त्वष्टाने तेजस्वी वज्र बनाया ।

[ ४४१ ] ( रयीषिणः ) धनको अर्पण करनेवाले याजक लोग ( शं पदं मघं ) सुख, उत्तम स्थान और धन प्राप्त करते हैं, ( अ-व्रतः ) यज्ञ न करनेवाला, ( न हिनोति ) कुछ भी प्राप्त नहीं करता, और ( कामं रयिं न स्पृशत् ) अपने इच्छित धनको तो वह छू भी नहीं सकता ॥ ५ ॥

१ रयीषिणः शं पदं मघं— धनको देनेवाले याजक शान्ति, उत्तम स्थान और धन प्राप्त करते हैं ।

२ अ-व्रतः न हिनोति— जो व्रतका आचरण नहीं करता, उसको कुछ भी नहीं मिलता ।

[ ४४२ ] ( गावः ) गायें ( सदा शुचयः ) हमेशा शुद्ध रहती हैं, ( विश्व-धायसः ) सभीका पोषण करनेवालीं और ( सदा देवा अ-रेपसः ) हमेशा उन्नत और निष्पाप रहती हैं ॥ ६ ॥

[ ४४३ ] हे उषे ! ( वनसा सह आयाहि ) इच्छित तेजके साथ आ, ( यत् ऊधभिः ) जो भरे हुए थनवाली हैं, वे ( गावः ) गायें ( वर्तनिं सचन्ते ) तेरे मार्गमें चलती हैं ॥ ७ ॥

४४४ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

४४५ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ९ ॥

४४६ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ७ । उ० २ । धा० ४२ । ष्ठा ॥ ]

[ ७ ]

( १–१० ) १ पृषध्रः काण्वः; २, ३, ४ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा; ५ संवर्त आंगिरसः; ६ भुवन आप्त्यः; साधनो वा भौवनः; ७ कवष ऐलूषः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ आत्रेयः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ अग्निः; ५ उषाः; ६, ७, ९ विश्वेदेवाः; ३, ४, ८, १० इन्द्रः ॥ द्विपदा विराट्; १० एकपदा ॥

४४७ अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् न सुमद्रथः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।५६।५ )

४४८ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरूथ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।२४।१; यजु. ३।२५ )

४४९ भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

४५० विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥

---

[ ४४४ ] ( मधुमति प्रक्षे ) मधुररससे भरे हुए चमचेमें हविको रखकर ( ते क्षियन्तः ) तेरे पास रहनेवाले हम, हे इन्द्र ! ( रयिं पुष्येम ) धन प्राप्त करें, और तेरा ( धीमहे ) ध्यान करें ॥ ८ ॥

[ ४४५ ] ( स्वर्काः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी मरुतगण ( अर्कं अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं, ( सः ) वह ( युवा ) तरुण ( श्रुतः ) प्रसिद्ध ( इन्द्रः ) इन्द्र ( आ स्तोभति ) सब शत्रुओंको मारता है ॥ ९ ॥

१ युवा श्रुतः आ स्तोभति— तरुण प्रसिद्ध वीर सब शत्रुओंको मारता है ।

[ ४४६ ] हे ज्ञानी लोगो ! ( वृत्र-हन्तमाय विप्राय इन्द्राय ) वृत्रको मारनेमें निपुण, ज्ञानी इन्द्रके लिए ( गाथं गायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( यं जुजोषते ) जिनको वह आनन्दसे सुनता है ॥ १० ॥

॥ यहां चौंतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३५ ] पंचत्रिंशः खण्डः ।

[ ४४७ ] ( हव्य-वाट् ) हविको देवताके पास पहुंचानेवाला, ( चिकितिः ) विशेष बुद्धिमान् ( सुमद् ) उत्तम हविसे जो भरा हुआ है, वह ( रथः न ) रथके समान इच्छितस्थानको पहुंचानेवाला ( अग्निः अचेति ) अग्नि सब जानता है ॥ १ ॥

[ ४४८ ] हे ( अग्ने ) अग्नि ! ( वरूथ्यः ) सेवा करनेके योग्य ( त्वं ) तू ( नः अन्तमः ) हमारे समीप ( उत शिवः त्राता ) और कल्याण करनेवाला संरक्षक ( भुव ) हो गया है ॥ २ ॥

[ ४४९ ] ( महोनां भगः न ) बडोंमें सूर्यके समान ( चित्रः अग्निः ) पूज्य अग्नि याजकोंको ( रत्नं दधाति ) धन देता है ॥ ३ ॥

[ ४५० ] ( विश्वस्य प्रस्तोभ ) यह सारे शत्रुओंका नाश करता है, ( यदि वा इह नूनं ) और इस यज्ञमें निश्चयसे वह ( पुरो वा सन् ) पूर्ण रीतिसे निवास करता है ॥ ४ ॥

४५१ उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिꣳ सुजातता ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१७२।४ )

४५२ इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५७।१ )

४५३ वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥

४५४ अया वाजं देवहितꣳ सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ ( ऋ ६।१७।१५ )

४५५ ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥

४५६ इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥ ( वा. य. ३६।८ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ स्व० ५ । उ० ४ । धा० ४१ । भ ॥ ]

[ ८ ]

( १–१० ) १, १० गृत्समदः शौनकः; २ गौरांगिरसः; ३, ५, ९ परुच्छेपो दैवोदासिः; ४ रेभः काश्यपः; ६ एवयामरुदात्रेयः; ७ अनानतः पारुच्छेपिः; ८ नकुलः ॥ १, ३, ४, १० इन्द्रः; २ सूर्यः; ५ विश्वेदेवाः; ६ मरुतः; ७ पवमानः सोमः; ८ सविता; ९ अग्निः ॥ १, १० अष्टिः ( १० अतिशक्वरी वा ); ३, ५, ७–९ अत्यष्टिः; २, ४, ६ अतिजगती ( अष्टिर्वा ? ) ॥

४५७ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुꣳ सैनꣳसश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥
( ऋ. २।२२।१ )

---

[ ४५१ ] ( उषाः ) उषा ( स्वसुः तमः ) अपनी बहिन रात्रीके अन्धकारको ( अप सं वर्तयति ) नष्ट करती है, और ( सु-जातता ) अपने उत्तम प्रकाशसे ( वर्तनिं ) अपने मार्गको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[ ४५२ ] ( इमा भुवना ) इन सब भुवनोंको ( नु कं ) निश्चयसे सुख प्राप्तिके लिए ( सीषधेम ) मैं नियमोंमें चलाता हूं, ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः च ) इन्द्र और सब अन्य देव इस कार्यमें मेरी सहायता करते है ॥ ६ ॥

[ ४५३ ] हे इन्द्र ! ( त्वत् रातयः ) तुझसे मिलनेवाले दान ( पथा स्रुतयः यथा ) बडे राजमार्गमें जैसे दूसरे छोटे-छोटे रास्ते मिल जाते है, उसी प्रकार ( वि यन्तु ) सबको प्राप्त होते है ॥ ७ ॥

[ ४५४ ] ( अया देवहितं वाजं सनेम ) इस स्तुतिसे देवोंके द्वारा दिए गए अन्न अथवा बल प्राप्त करूं, और ( सु-वीराः शत-हिमाः मदेम ) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक आनन्दसे रहूं ॥ ८ ॥

१ सु-वीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनन्दसे रहे ॥

[ ४५५ ] हे इन्द्र ! ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण देव ( ऊर्जाः इडाः पिन्वते ) बल बढानेवाले अन्न हमें देते हैं, तू ( नः इषं ) हमारे अन्नको ( पीवरीं कृणुहि ) और अधिक पुष्ट करनेवाला बना ॥ ९ ॥

१ नः इषं पीवरीं कृणुहि— हमारे अन्नको अधिक पुष्टि देनेवाला बना ॥

[ ४५६ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( विश्वस्य राजति ) सब भुवनोंपर शासन करता है ॥ १० ॥

॥ यहां पैंतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३६ ] षट्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४५७ ] ( महिषः तुवि-शुष्मः ) बलवान् और अत्यंत सामर्थ्यशाली ( तृंपत् ) तृप्त होनेवाले इन्द्रने ( त्रिकद्रुकेषु सुतं ) तीन पात्रोंमें रखे हुए सोमरसमें ( यवाशिरं ) जौका आटा मिलाकर ( सोमं ) उस सोमको ( विष्णुना ) विष्णुके साथ ( यथा-वशं ) इच्छानुसार ( अपिबत् ) पिया, ( सः ) उस सोमने ( महि कर्म कर्तवे ) महान् कर्म करनेके लिए ( महां उरुं ईं ) महान् श्रेष्ठ इन्द्रको ( ममाद ) उत्साहित किया, ( सत्यः इन्दुः देवः सः ) उत्तम, वह सोमरूपी प्रकाशमान् रस ( सत्यं एनं देवं इन्द्रं ) उत्तम गुणोंसे युक्त इस इन्द्र देवको ( सश्चत् ) प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

४५८ अयꣳ सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

४५९ एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मꣳहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥
( ऋ. १।१३०।१ )

४६० तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा दधानमप्रतिष्कुतꣳ श्रवाꣳसि भूरि ।
मꣳहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥
( ऋ. ८।९७।१३ )

४६१ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाꣳअच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१३९।१ )

---

[ ४५८ ] ( सहस्र-मानवः ) हजारों मनुष्योंका हित करनेवाला ( दृशः ) दर्शनीय ( कवीनां मतिः ) बुद्धिमानों द्वारा सम्मानके योग्य ( विधर्म-ज्योतिः ) विशेष धर्मसे युक्त और तेजस्वरूप ( अयं ब्रध्नः ) यह सूर्य ( समीचीः अ-रेपसः ) निर्मल और अन्धकाररहित ( सचेतसः उषसः ) तेजस्वी उषाओंको ( समैरयत् ) प्रेरित करता है, उसके वाद ( स्वसरे ) दिनमें ( मन्युमन्तः ) तेजस्वी दीखनेवाले चन्द्र आदि ( गोः ) सूर्यके तेजके आगे ( चिताः ) तेजरहित फीके हो जाते हैं ॥ २ ॥

[ ४५९ ] हे इन्द्र ! ( परावतः नः अच्छा उप आयाहि ) दूरदेशसे तू हमारे पास आ, ( अयं न ) जैसे यह अग्नि (सत्पतिः) सज्जनोंका पालन करनेवाला होकर (विदथानि इव ) यज्ञशालामें आता है, और जैसे ( अस्ता सत्पतिः राजा इव) शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला उत्तम पालक राजा अपने घर आता है, उसी प्रकार आ। ( प्रयस्वन्तः सुतेषु त्वा हवामहे ) हविष्यान्न लेकर हम सोमयज्ञमें तुझे बुलाते हैं, ( पुत्रासः वाजसातये पितरं न ) पुत्र जैसे अन्न पानेके लिए पिताको बुलाते है, और जैसे ( मंहिष्ठं वाज-सातये ) महान् वीरको महायुद्धमें बुलाते हैं, उसी प्रकार हम तुझे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४६० ] ( मघवानं ) धनवान् ( उग्रं ) वीर ( सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं ) एक साथ बहुतसा बल धारण करनेवाले तथा ( अ-प्रतिष्कुतं तं इन्द्रं ) शत्रुओंसे कभी भी पराजित न होनेवाले उस इन्द्रको ( जोहवीमि ) सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मंहिष्ठः यज्ञियः ) पूज्य और यज्ञोंमें सत्कारके योग्य इन्द्रकी ( गीर्भिः आ ववर्त ) स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है, इस प्रकार ( वज्री ) वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र ( राये ) धनकी प्राप्तिके लिए ( नः विश्वा सुपथा कृणोतु ) हमारे सब मार्ग सुगम करे ॥ ४ ॥

[ ४६१ ] ( पुरः अग्निं ) उत्तरवेदीमें अग्निको ( धिया आदधे ) ज्ञानपूर्वक मैंने स्थापित किया, ( त्यत् दिव्यं शर्धः ) उस दिव्य बलवान् अग्निकी ( आ वृणीमहे ) हम आराधना करते हैं, ( इन्द्रवायू ) इन्द्र और वायुकी ( वृणीमहे ) हम प्रार्थना करते हैं। ( यत् ह ) जो ( वि-वस्वते नव्यसे ) धनवान् और नवीन यजमानके ( नाभा ) यज्ञस्थानके मुख्य स्थानपर ( सन्दाय क्राणा ) एक जगह आकर मनोरथको पूरा करते हैं। ( श्रौषट् अस्तु ) उन स्तुतियोंका श्रवण होवे। ( अध ) इसके वाद ( नः धीतयः ) हमारी स्तुतियां ( प्र नूनं उपयन्ति ) निश्चयसे तेरी ओर जाएंगी, ( देवान् अच्छा नः ) देवोंकी ओर पहुंचानेके लिए हमारे ( धीतयः ) ये कर्म चल रहे हैं ॥ ५ ॥

४६२ प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. ५।८७।१ )

४६३ अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१११।१ )

४६४ अभि त्यं देवंसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥
( वाय. ४।२५ )

४६५ अग्निंहोतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

---

[ ४६२ ] ( एवया मरुत् ) एवया मरुत् नामके ऋषिके द्वारा अपनी ( गिरिजाः मतयः ) वाणीसे की हुई स्तुतियां ( मरुत्वते विष्णवे ) मरुतोंके साथ रहनेवाले विष्णुको और ( महे वः प्रयन्तु ) महान् तुम इन्द्रको प्राप्त हों, उसी प्रकार ( प्र-यज्यवे ) विशेष यज्ञ करनेवाले ( सु-खादये ) उत्तम आभूषण पहननेवाले ( तवसे ) बलवान् ( भन्ददिष्टये ) स्तुतिरूपी यज्ञ करनेवाले ( धुनि-व्रताय ) शत्रुको दूर करना जिनका व्रत है, ऐसे ( शवसे शर्धाय ) उग्र उन्नतिदायक मरुतोंके बलको ( प्र ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

[ ४६३ ] ( पुनानः ) छाननीसे छानाजानेवाला सोमरस ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रंगके अपने इस तेजसे ( विश्वा द्वेषांसि तरति ) सब शत्रुओंको दूर करता है, ( सूरः सयुग्वभिः न ) सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकारको नष्ट करता है, उसीप्रकार ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) उत्तम दीखनेवाले इस सोमरसकी धार चमकती है, ( पुनानः हरिः अरुषः ) छानाजानेवाला हरे रंगका यह सोमरस चमकता है, ( यत् ) जो ( सप्तास्येभिः ऋक्वभिः ) तेजके सात मुखों तथा स्तोत्रोंसे और ( ऋक्वभिः ) तेजोंसे ( विश्वा रूपाणि परियासि ) अनेक रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

[ ४६४ ] ( यस्य भाः ) जिसका प्रकाश ( ऊर्ध्वा ओण्योः अदिद्युतत् ) उच्चगतिसे इस पृथिवी और द्युलोकके बीचमें फैलता है ऐसे उस ( कवि-क्रतुं ) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाले ( सत्य-सवं ) सत्यकी प्रेरणा देनेवाले ( रत्न-धां ) धन देनेवाले ( अभि-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( मतिं त्यं सवितारं देवं ) बुद्धिमान् उस सवितादेवकी ( अर्चामि ) मैं आराधना करता हूं, ( सवीमनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके बाद इसका प्रकाश फैलता है, ( सु-क्रतुः हिरण्य-पाणिः ) उत्तम कर्म करनेवाला और सोनेके समान चमकनेवाला सविता ( कृपा स्वः अमिमीत ) कृपासे अपना प्रकाश फैलाता है ॥ ८ ॥

[ ४६५ ] ( होतारं ) जिसमें हवन किया जाता है, ऐसे ( दास्वन्तं ) धन देनेवाले ( वसोः सहसः ) निवासक बलके ( सूनुं ) पुत्र अर्थात् बल बढानेवाले, ( जात-वेदसं विप्रं न ) विद्वान् ब्राह्मणके समान ( जातवेदसं अग्निं मन्ये ) परम पूज्य अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ, ( यः देवः ) जो अग्निदेव ( सु-अध्वरः ) उत्तम यज्ञवाले ( ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा ) उच्च देवोंकी कृपा हो इस इच्छासे ( शुक्र-शोचिषः ) शुद्ध तेजस्वी ( आजुह्वानस्य ) जिससे हवन किया जाता है, ऐसे उस ( सर्पिषः ) तुम्हारी घीकी ( विभ्राष्टिं ) आहुतिके बाद प्रसन्न होता है ॥ ९ ॥

*

४६६ तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥ १० ॥ (ऋ २।२२।४)

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ इत्यैन्द्रं पर्व काण्डं वा समाप्तम् ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऐन्द्रकाण्डे ।

| | | |
|---|---|---|
| गायत्र्यः | ११५–२३२ | ( ११८ ) |
| तत्र १५५ ' पान्तं ' इत्यनुष्टुप् । | | |
| बृहत्यः | २३३–३१२ | ( ८० ) |
| त्रिष्टुभः | ३१३–३४१ | ( २९ ) |
| तत्र ३२८ ' प्र वो ' इति त्रिपाद्विराट् । | | |
| अनुष्टुभः | ३४२–३६९ | ( २८ ) |
| जगत्यः | ३७०–३८० | ( ११ ) |
| तत्र ३७९ ' उभे यदिन्द्रे ' ति महापंक्तिः । | | |
| उष्णिहः | ३८१–३९८ | ( १८ ) |
| तत्र ३९८ ' पिबे ' ति विराट् । | | |
| ककुभः | ३९९–४०८ | ( १० ) |
| पंक्तयः | ४०९–४२६ | ( १८ ) |
| तत्र ४२६ ' नतामि ' त्युपरिष्टाद्बृहती । | | |
| द्विपदाः | ४२७–४५५ | ( २९ ) |
| [ ४२८; ४३२; ४३४; ४३५ अनुष्टुबादयस्तत्रैवोक्ताः ] | | |
| अत्यष्टयः | ४५६–४६६ | ( ११ ) |
| तत्र ४५६ ' इन्द्रो विश्वस्ये ' त्येकपदा । | | |
| | | ३५२ |

| | |
|---|---|
| ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ३५२ |
| आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ११४ |
| सर्वयोगः | ४६६ |

[ ४६६ ] हे ( नृतः इन्द्र ) सबको अपनी इच्छासे चलानेवाले इन्द्र ! ( नर्यं ) सब मनुष्योंका हित करनेवाले ( प्रथमं पूर्व्यं ) सर्व प्रथम, मुख्य ( तव त्यत् अपः ) तेरे वे कर्म ( दिवि प्रवाच्यं कृतं ) द्युलोकमें प्रशंसनीय हुए हैं, वह बल यह है कि ( देवस्य असुः ) राक्षसोंके प्राणोंको तूने ( शवसा रिणन् ) अपने बलसे नष्ट किया, और ( अपः अरिण ) जलोंको बहाया। उस तूने ( विश्वं अदेवं ) सब असुरोंको ( ओजसा अभिभुवः ) अपने बलसे हराया, इसलिए ( शतक्रतुः ) सैकडों कर्म करनेवाला इन्द्र ( ऊर्जं इषं विदेत् ) बलवान् होवे और उसको हविष्यान्न प्राप्त होवे ॥ १० ॥

॥ यहां छत्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ ऐन्द्र काण्ड समाप्त ॥

# ऐन्द्र काण्ड

सामवेदके इस ऐन्द्र काण्डमें ३५२ मंत्र हैं, यह काण्ड यद्यपि " ऐन्द्र-काण्ड " के नामसे प्रसिद्ध है तो भी उसमें " अग्नि, मरुत् " आदि अन्य देवताओंके भी मंत्र आये हैं। यह हम देवताओंकी सूचीमें स्पष्ट करेंगे। इस काण्डमें इन्द्र देवताके अधिक मंत्र होनेके कारण इस काण्डका नाम " ऐन्द्र-काण्ड " रखा गया है। इसमें विशेषरूपसे इन्द्रका ही वर्णन है, इसलिए पहले इन्द्रके गुणोंका अध्ययन करके फिर बादमें यह देखेंगे, कि उस अध्ययनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है।

## इन्द्रके गुण

यह इन्द्र जैसा शूर है, वैसा ही ज्ञानी भी है। इसके ज्ञान और गुणको प्रकट करनेवाले ये विशेषण इस काण्डमें आये हैं—

१ युवा कविः ( ३५९ )– यह इन्द्र तरुण कवि है, कविका अर्थ है, क्रान्तदर्शी, दूरसे ही देखनेवाला, दूरदर्शी, ज्ञानी।

२ एषः ब्रह्मा ( ४३८ )– यह ज्ञानी है, ब्रह्मको जाननेवाला है।

३ विप्रः ( ३८८ )– विशेष बुद्धिमान्, विशेष ज्ञानी।

४ विपश्चित्, बृहत् ब्रह्मकृत् ( ३८८ )– ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानका प्रसार करनेवाला।

५ श्रुतः इन्द्रः ( ४४५ )– ज्ञानके लिए विशेष प्रसिद्ध।

६ नाम श्रुतः ( ४३८ )– नामसे ही ज्ञानी प्रसिद्ध।

७ कश्यपः ( पश्यकः ) ( ३६१ )– द्रष्टा, ठीक ठीक स्थिति जाननेवाला।

८ विश्वानि विदुषे (३५२)–सभी ज्ञानोंको जाननेवाला।

९ विद्वत्सु चित्रः ( ३४५ )– विद्वानोंमें विलक्षण, श्रेष्ठ ज्ञानी।

१० वि-चेताः ( २६५ )– विशेष बुद्धिमान्, विचार करनेवाला।

११ विचर्षणिः ( १९९ )– विशेष ज्ञानी।

१२ मुनीनां सखा ( २७५ )– ऋषि-मुनियोंका मित्र, उनका हित करनेवाला।

१३ देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ( ३२५ )– इस इन्द्रके महत्वके काव्य देख।

१४ कंचित् स्थूरं न अवस्यवः त्वां वृणीमहे ( ४०८ )– जैसे मनुष्य विद्वान्के पास सलाह लेने और विचार करने जाते हैं, उसी प्रकार अपने संरक्षणके लिए इन्द्रके पास हम जाते हैं।

१५ सुरूप-कृत्नुः ( १६० )– उत्तम सुन्दर रूपको इन्द्र बनाता है, वह उत्तम कारीगर है।

१६ युवा ( १२७ )– वह नवयुवकके समान उत्साही और विचार करनेवाला है।

१७ सखा, मित्रः ( १२७ )– वह बराबरके मित्रके समान है।

१८ चित्रः सखाः ( १६९ )– वह विलक्षण और हित करनेवाला मित्र है।

१९ पतिः ( २०५ )– उत्तम पालक, उत्तम अधिकारी, स्वामी।

२० सत्पतिः ( १६८ )– सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला है।

२१ गोपतिः ( १६८ )- गायोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला है।

२२ सत्यस्य सूनुः ( १६८ )– सत्यका प्रचारक है।

२३ ऋष्वः ( ४२३ )– महान्, सुन्दर है।

२४ शिप्री ( १४५ )– शिरपर शिरस्त्राण धारण करनेवाला है।

२५ वः अचक्रुपत् ( १९६ )– वह इन्द्र अपने ज्ञानसे और चतुराईसे तुम्हें अपने पास आकर्षित करता है।

२६ चन्द्रः सदा उपो नु ( १९६ )– इन्द्र हमेशा पास ही रहता है। सबके पास जाकर निरीक्षण करता है।

२७ त्वं नः ऊती ( २६० )– तू हमारा उत्तम संरक्षक है।

२८ त्वं नः आप्यः ( २६० )– तू हमारा मित्र है।

२९ नः सधमादे भव ( २६० )– हमारे एक साथ बैठनेके स्थानपर आकर बैठ।

३० न परा वृणक् ( २६० )– हमारा त्याग मत कर।

इस प्रकार इन्द्रके ज्ञानी और आकर्षक गुण सम्बन्धी विशेषण हैं, और उसके सार्वजनिक हित करनेवाले गुण ये हैं—

१ सु-नीती ( १२७ )- इन्द्र उत्तम नीतिके मार्गसे चलनेवाला है, और लोगोंको भी उत्तम नीतिसे चलाता है।

२ नर्य-अपस् ( १२५ )– सब लोगोंके हितकारी कार्य करनेवाला।

३ यस्य मानुषं द्यावः न विचरन्ति (३७६)– जिसके सार्वजनिक हितके कार्योंमें कोई भी रोडा नहीं अटका सकता।

४ चर्षणीनां सम्राट् ( १४४ )- मनुष्योंका सम्राट्।

५ शत-क्रतुः ( ११६ )– सैकडों प्रकारसे कर्म करनेवाला, सैकडों प्रकारकी बुद्धि और युक्तियोंवाला, जिनकी सहायतासे वह जन्मते ही उत्तम हित कर सकता है।

## इन्द्रका बल

इन्द्र जैसा विद्वान् है, वैसा ही वह बलवान् भी है—

१ सत्वा ( ११५ )– सत्ववान्, बलवान्।

२ शाकिन् ( ११५ )– शक्तिमान्।

३ शक्रः ( १४० )– सामर्थ्यवान्।

४ वृषन्तमः ( १४८ )- अत्यन्त सामर्थ्यवान्, सबसे बलवान्।

५ वृषभः, वृषा (११९)- बलवान्, वर्षा गिरानेवाला।

६ तुवि-ग्रीवः ( १४२ )- मजबूत गर्दनवाला, अर्थात् उसका सिर नहीं कांपता।

७ मंहिष्ठः ( १४४ )- महान्, शक्तिसे महान्।

८ इन्द्रः महान् परः ( १६६ )- इन्द्र महान् और श्रेष्ठ है।

९ वज्रिणे महत्वं अस्तु ( १६६ )- वज्रधारी इन्द्रका महत्व है।

१० भद्रा-हस्ती ( १६७ )- इन्द्रके हाथ मजबूत और शक्तिशाली ह।

११ त्वत्तः उत्तरः ज्यायान् न कि अस्ति ( २०३ )- तुझसे अधिक बलवान् कोई दूसरा नहीं है।

१२ यथा त्वं एवं न कि ( २०३ )- जैसा तू है, वैसा दूसरा कोई नहीं है।

१३ अमित-ओजाः (३५९)-अपरिमित सामर्थ्यसे युक्त।

१४ शची-पतिः (२५३)-शक्तिका स्वामी, सामर्थ्यवान्।

१५ स्ववान् ( २५४ )- आत्मशक्तिसे युक्त।

१६ शविष्ठः धृष्णः ( ३४७ )- बलवान् और शत्रुपर आक्रमण करनेवाला

१७ इन्द्रियं त्वा आपृणक्तु ( ३४७ )- इन्द्रियोंकी उत्तम शक्ति तेरे पास भरपूर है।

१८ सहसः बलात् ओजसा अधिजातः ( १२० )- साहस, बल और सामर्थ्यके कारण जन्मसे ही वह प्रसिद्ध है।

१९ सर्वं ते वशे ( १२६ )- सब कुछ तेरे आधीन है।

२० ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे ( १६३ ) - अपने संरक्षणके लिए हम महान् बलवान् इन्द्रको बुलाते हैं।

२१ शवः प्रथिना ( १६६ )- उसका बल बढता ही रहता है।

२२ त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- तेरी अपेक्षा कोई भी अधिक बलवान् नहीं है।

२३ वन्दद्वीरः ( ३६० )-वीर पुरुष जिसका हमेशा वन्दन करते हैं।

२४ वाजी वाजिनं ददातु- ( १९९ ) बलवान् इन्द्र हमें बल देवे, हमें बलवान् करे, हमें बलवान् वीरोंकी सहायता प्राप्त हो।

२५ सत्रानि विश्वा पौंस्या आ भर ( २६२ )- सब सामर्थ्य हमें एक ही समय प्राप्त हों।

२६ अस्य तत् ओजः तित्विषे यत् उभे रोदसी चर्म इव समवर्तयत् ( १८२ )- इसका वह सामर्थ्य चमकता है कि जिसकी सहायतासे यह दोनों द्यावा-पृथिवियोंको चमडेके समान लपेट देता है।

२७ त्वावतः परे मणिः अरं गमेम ( २०९ )- तेरी सहायतासे सुरक्षित होकर और तेरे आश्रयमें रहकर हम कृतकृत्य हों।

२८ शग्धि ( २७४ )- तू सामर्थ्यवाला है।

२९ वीरं नाम श्रुत्यं शाकिनं इन्द्रं गाय ( २६५ )- इन्द्र वीर है, शत्रुको झुकानेवाला है, प्रसिद्ध बलवान् है, इसलिए उसके गुणोंका गान करो।

३० परावति वृषा, अर्वावति वृषा, वृषा हि शृण्विषे, सत्यं वृषा असि, वृषजूतिः नः अविता (२६३)- तू दूर देशमें बलवान् है, पासके देशमें भी बलवान् है, तेरी बलवान् कीर्ति मैं सुनता हूँ, निश्चयसे तू बलवान् है, बलसे तू हमारा संरक्षण करता है।

वृषा- इसका दूसरा अर्थ है, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला।

३१ अ-देवः मर्त्यः सीं तं न आप ( २६८ )-ईश्वरकी उपासना न करनेवाला अन्न नहीं पासकता, अर्थात् इन्द्रकी उपासना करनेवाला ही उस योग्य अन्नको प्राप्त कर सकता है।

३२ विश्वासु समत्सु हव्यः ( २६९ )- सब युद्धोंमें इन्द्र सहायताके लिए बुलाने योग्य है। ऐसा वह शक्तिमान् है।

३३ युध्मः, खज-कृत्, पुरन्दरः अलर्षि ( २७१ )- इन्द्र युद्ध करनेमें कुशल, युद्ध करनेवाला, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला है, वह हमारी सहायताके लिए आवे।

३४ शश्वतीनां पुरां भेत्ता ( २७५ )- मजबूत बने हुए शत्रुओंके नगरोंको भी तोडनेवाला है।

३५ चर्षणीनां राजा, रथेभिः अध्रिगुः, याता, विश्वासां पृतनानां तरुता, वृत्रहा, ज्येष्ठः गृणे (२७३)- सब मनुष्योंका हित करनेवाला राजा, रथोंसे आगे जानेवाला, सबसे आगे जानेवाला, शत्रुपर आक्रमण करनेवाला, शत्रुसेनाका नाश करनेवाला, वृत्रको मारनेवाला, ऐसा श्रेष्ठ इन्द्र है, मै उसकी प्रशंसा करता हूँ।

३६ द्यावा-पृथिवी शतं स्युः, भूमीः शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः, न त्वा अनु अष्ट, अनु जातं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट ( २७८ )- द्यावापृथिवी,

भूमि ये सैंकडों हो जाएं, हजारों सूर्य हो जाएं, वे सभी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते । पीछेसे होनेवाले पदार्थ तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

३७ यतः इन्द्र भयामहे, ततः नः अभयं कृधि (२७४)- हे इन्द्र! जहांसे हमें भय हो, वहांसे हमें निर्भय कर ।

३८ नः ऊतये द्विषः विजाहि, मृधः विजाहि (२७४) - हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओंको जीत, दुष्टोंको हरा ।

३९ ते सखा अश्वी, रथी, गोमान्; सुरूपः, श्वात्रः भागः वयसा सदा सचते । चन्द्रैः सभां उपयाति (२७७)- तेरा मित्र इन्द्र घोडे रखनेवाला, रथमें बैठनेवाला, गाय रखनेवाला, सुन्दर, शीघ्र ही कार्य करनेवाला, वयसे-तारुण्यसे युक्त रहता है, वह आभूषण पहनकरके सभामें जाता है ।

४० इन्द्र हरी युयोजते ( २६८ )- इन्द्र घोडोंको अपने रथमें जोडता है ।

४१ इन्द्रः हर्योः संमिश्लः, वज्री हिरण्ययः (२८९)- इन्द्र घोडे रखता है, वज्र धारण करनेवाला और तेजस्वी है।

४२ सत्रा-हा विश्व-चर्षणिः तं वयं हूमहे (२८६)- इन्द्र सब शत्रुओंको एक साथ मारता है । सब मनुष्योंका कल्याण करता है, इसलिए हम उसको सहायतार्थ बुलाते हैं।

४३ प्रशर्धः ( २७९ )- शत्रुनाशक बलसे युक्त इन्द्र है।

४४ अनवे पुरु नृषूतः असि ( २७९ )- सब मनुष्योंका हित करनेके लिए लोग तेरी बहुत प्रार्थना करते हैं ।

४५ त्वा कः मर्तः आदधर्षति ( २८० )- तुझे कौन मनुष्य हरा सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

४६ ते श्रद्धा वाजी पार्ये दिवि वाजं सिषासति ( २८० )- तेरे ऊपर श्रद्धा रखनेवाला बलवान् होता है और अन्तिम दिनतक भी दान कर सकता है ।

४७ अ-जरं, प्रहेतारं, अ-प्रहितं, आशुजेतारं, होतारं, रथीतमं, अ-तूर्तं, ऊतये इतः (२८३)- जरा-रहित, प्रेरणा देनेवाले, पीछे न रहनेवाले, शत्रुको शीघ्र जीतनेवाले, दान देनेवाले, रथमें बैठनेवाले, किसीसे भी न हारनेवाले, इन्द्रको यहां हमारे पास बुलावो, सहायताके लिए उसे अपने पास बुलावो ।

४८ सु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम मित्र इन्द्र! अपने उत्तम मित्रोंके साथ यहां आ, हमारे पास हमारी सहायताके लिए आ ।

४९ सहस्रमन्यो तुवि-नृम्ण, सत्पते ! समत्सु नः वृधे भव (२८६)-हे हजारों उत्साहोंसे युक्त, बहुत बलवान्, सज्जनोंके पालक, इन्द्र ! तू युद्धमें हमारी उन्नति करने-वाला हो ।

५० त्वा वाघतः अस्मत् आरे मा निरमत् (२८४)- तेरी स्तुति करनेवाले भक्त तुझे हमसे दूर न लेजायें ।

५१ आरात्तात् नः सधमादे सु आगहि ( २८४ )- हमारे यज्ञमें हमारे पास ठीक तरह आ ।

५२ महे शुल्काय त्वा न परा देयां, न शताय न सहस्राय न अयुताय परा देयां ( २९१ )- बहुत साधन मिलनेपर भी मैं तुझे दूर नहीं करूं, सौ, हजार या दसहजार-के बदलेमें भी तुझे न दूं ।

## इन्द्रका शौर्य

इस प्रकार इन्द्रके बलका वर्णन है, अब उसके शौर्यका वर्णन देखिए—

१ मघः शूरः वीरः ( १२३ )- इन्द्र आनन्द देनेवाला शूर और वीर है, ।

२ अनाभयिन् ( १२४ )- निर्भय, भयरहित ।

३ अनानतः (१४२)- किसीके भी आगे न झुकनेवाला ।

४ अस्ता ( १२५ )- दाता, शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला ।

५ नरः ( १४४ ) प्रनेता- ( १९३ )- नेता, शौर्यके साथ आगे लेजानेवाला ।

६ त्वं ईशिषे ( १६२ )- तू सबपर शासन करता है।

७ अ-प्रति-ष्कुतः ( १७९ )- जिसका विरोध कोई भी नहीं कर सकता ।

८ सदा-वृधः ( १६९ )- हमेशा बढनेवाला ।

९ स्थिरः ( २०० )- युद्धोंमें हमेशा स्थिर रहनेवाला।

१० विश्वा-साहं चर्पणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्रगायत ( १५५ )- सब शत्रुओंको हरानेवाले, सब लोगोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

११ महद् भयं अभीपत् अप चुच्युवत् ( २०० )- महान् भयोंसे हमें दूर करो ।

१२ वृत्रहणं, पुरु धस्मानं, वृषभं, स्थिररप्स्नुं, वज्रिणं, भृष्टिमन्तं गृणे (३२७)- वृत्रको मारनेवाले, बहुतों द्वारा पूजित, बलवान्, हमेशा दुष्टोंका नाश करनेवाले, वज्र-धारी, शत्रुनाशक इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं ।

१३ त्यत् जायमानः, अ-शत्रुभ्यः सप्तभ्यः शत्रुः त्वं अभवः (३२६)- उत्पन्न होते ही, जिनका कोई भी शत्रु

नहीं था, ऐसे सात शत्रु राक्षसोंका तू अकेला ही शत्रु हुआ ।

१४ बहूनां दद्राणं युवानं पलितः जगार ( ३२५ )- बहुतोंको मारनेवाले जवान शत्रुको सफेद बालोंवाला बूढा वीर भी पराजित करता है। ( यदि इन्द्र उनकी सहायता करे । )

१५ वाजसातौ अस्मिन् भरे नृतमं इन्द्रं हुवेम ( ३२९ )- बलसे लडे जानेवाले इस युद्धमें मनुष्योंमें श्रेष्ठ इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं।

१६ शृण्वन्तं उग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं इन्द्रं हुवे ( ३२९ ) भक्तकी प्रार्थना सुननेवाले, वीर, युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले, इन्द्रको सहायताके लिए में बुलाता हूँ ।

१७ त्रातारं अवितारं हवे हवे सुहवं शक्रं इन्द्रं हुवे (३३२)- संरक्षण करनेवाले और प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए बुलाये जानेवाले, सामर्थ्यवान् इन्द्रको मै बुलाता हूँ।

१८ वज्र-दक्षिणं विव्रतानां हरीणां रथ्यं इन्द्रं यजामहे ( ३३४ )- अपने दायें हाथमें वज्रको धारण करनेवाले, वेगवान् घोडोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रकी मैं पूजा करता हूँ।

१९ सत्रासाहं दाधृषिं तुम्रं महां अपारं वृषभं सुवज्रं ( ३३५ ) शत्रुओंका एक साथ नाश करनेवाले, शत्रुको डरानेवाले, शत्रुको दूर करनेवाले, महान् अपार भक्तिसे वज्रधारी इन्द्रकी प्रशंसा करता हूँ ।

२० इन्द्रा-पर्वता यामी सु-वीरा ( ३३८ )- इन्द्र और पर्वत ये प्रशंसनीय उत्तम वीर हैं।

२१ अयं शिप्री ओजसा पुरः विभिनत्ति ( २९७ )- यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपने बलसे शत्रुके नगरोंको तोडता है।

२२ महे वीराय तवसे तुराय विरप्शिने वज्रिणे स्थविराय अस्मै अपूर्व्या पुरुतमानि शंतमानि वचांसि तक्षुः (३२२)- महान् वीर, बलवान्, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले, बडे वज्रधारी, वृद्ध ऐसे इस इन्द्रके लिए अपूर्व, बहुत और शान्ति बढानेवाले स्तोत्र कहे जाते हैं ।

२३ इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि ( ३२४ )- इन सारे शत्रुओं पर तू विजय प्राप्त करता है।

२४ द्रप्सः दशभिः सहस्रैः इयानः कृष्णः अंशुमतीं अवातिष्ठत्, शच्या धमन्तं तं इन्द्रः आवत् नृमणाः स्निहितिं अधद्राः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण असुर अपने दसहजार सैनिकोंके साथ अंशुमति नदी पर पहुंच गया, अपने आक्रमणसे लम्बी लम्बी सासें लेनेवाले उस असुरको घेरकर, मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे इन्द्रने उस हिंसक सेनाको नष्ट कर डाला ।

२५ यत् पार्या धियः युनजते, नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते ( ३१८ )- जब संकटोंसे पार होनेकी बुद्धि होती है, तब संग्राममें लडनेवाले लोग इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

नेमधिता - संग्राम ।

२६ यत् शासः सदसः परि अव्रतं च्यावय ( २९८ )- तू शासक है, इसलिए हमारे समूहसे व्रत न पालन करनेवाले अधार्मिकोंको दूर कर।

२७ भरे भरे हव्यः ( ३०९ )- प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए इन्द्र बुलानेके योग्य है ।

२८ दिवः सदोभ्यः ओजसा प्र रिरिक्षे ( ३१२ )- द्युलोकसे भी तू श्रेष्ठ है ।

२९ नः अविता वृधे च असः ( ३१४ )- तू हमारी रक्षा और वृद्धि करनेवाला है।

३० त्वं यावतः ईशिषे एतावत् अहं ईशीय (३१०)- तेरा जितनेके ऊपर अधिकार है,उतनेपर मेरा भी अधिकार हो।

३१ न पापत्वाय रंसिषम् ( ३१० )- पापोंमें हम न रमें, ऐसा कर।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन सामवेदमें आया है । ये गुण मनुष्य देखें और इन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढावें। " यद्देवाः अकुर्वन्स्तत्करवाणि " जैसा आचरण देवोंने किया, उसी प्रकार मैं भी करूँ। यह उद्देश्य मनुष्य रखकर उसके अनुसार आचरण करें, इन्द्रके इन गुणोंको यहां इस मंत्रसंग्रहमें इसलिए कहा है कि मनुष्य भी इन्द्रके समान शूर, वीर, उत्साही, सतत परिश्रमी, युद्धमें कुशल, उदार, प्रजाओके पालक और संरक्षक हों।

इन्द्रके यदि दो चार मंत्रोंपर ही ध्यान दिया जाए और उनको अपने अंदर धारण करनेका प्रयत्न किया जाए, तो उनसे भी मनुष्यकी उन्नति अवश्य होगी, ऐसे ये गुण हैं।

अब इन्द्रकी युद्धमें कुशलता किस प्रकारकी है, उसपर विचार करते हैं ।

## इन्द्रकी युद्ध कुशलता

इन्द्र विश्वराज्यमें संरक्षण-मंत्री अथवा युद्ध-मंत्री है। इस कारण उसका शत्रुओंके साथ युद्ध बराबर होता रहता है । अतः वह युद्ध कैसे करता है, उसके अन्दर युद्ध कुशलता कैसी है, इसका विचार अब करते हैं ।

१ नृ-षाहः ( १४४ )- शत्रुके वीरोंको हरानेवाला।

२ अद्रिवः ( १९४ )- वज्रधारण करके लडनेवाला, ( अद्रि-वः ) पहाडोंके किलोंमें रहनेवाला, अथवा किलेमें रहकर लडनेवाला।

३ पृतनासहः वीरः ( ४०५ )- शत्रुकी सेनाको हरानेवाला वीर।

४ स्वराज्यं अनु अर्चन् त्यं मायिनं मृगं वृत्रं मायया अवधीः ( ४१२ )- स्वराज्यको दृढ बनानेके लिए उस मायावी वृत्रासुर और मायावी पणिका वध किया। वृत्रासुर कपटसे लडता था, उसे इन्द्रने कपटसे ही मारा। कपटियोंसे कपटका ही व्यवहार करें, यह बोध यहां मिलता है, और अपने स्वातन्त्र्य-संरक्षण और प्रजाओंके संरक्षणके लिए कपटी शत्रुओंका नाश करनेका उपदेश इसमें है।

५ यः एकः इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ )- यह इन्द्र अकेले ही सब शत्रुके सैनिकोंको हरा देता है। इसका इतना सामर्थ्य और युद्ध-कौशल्य है।

६ विश्वतोदावन् ( ४३७ )- सब शत्रुओंका नाश करता है।

७ विश्वस्य प्रस्तोभः ( ४५० )- सब शत्रुओंका इन्द्र प्रध्वंस करता है।

८ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० )- कृष्ण नामके असुरकी गर्भवती पत्नियोंका भी इन्द्रने नाश किया। कृष्ण नामका एक असुर था, वह लोगोंको बहुत कष्ट देता था, दस-दस-हजार राक्षसोंकी सेना लेकर वह आक्रमण करता था, इन्द्रने सब सेनाके साथ कृष्णका वध किया, और जिससे आगे उसका वंश भी न रहे, इसलिए उसकी गर्भवती स्त्रियोंको भी मार डाला।

९ वृत्रहन्तमं शर्ध श्रुतं, चर्षणीनां महे राधसे प्र आशिषे ( २०८ )- वृत्रनामक असुरके नाश करनेमें इन्द्रका जो बल प्रसिद्ध हुआ, उसे सभीने सुना। यह सब इन्द्रने इसलिए किया कि इससे प्रजाजनोंका महान् कल्याण हो। वृत्रासुर प्रजाओंको कष्ट देता था, वे कष्ट दूर हों इसलिए उसका इन्द्रने वध किया, उससे प्रजाओंकी महान् उन्नति, प्रजाओंकी आर्थिकस्थिति उत्तम हुई और प्रजाओंका सुख बढा।

१० पृक्षु सासहिं लोककृत्नुं मदं हरिश्रियं गृणीमसि ( ३८३ )- युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाले, प्रजाओंका कल्याण करके उन्हें आनन्दित करनेवाले, प्रजाओंकी सम्पत्ति बढानेवाले इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं। " हरि " पदका अर्थ मनुष्य है, " हरिरिति मनुष्य नाम " ( निघं. २।३।१० )। लोगोंकी शोभा बढानेवाला इन्द्र है।

११ तं महत्सु आजिषु अर्भे चित् ऊर्ति हवामहे ( ४११ )- उस इन्द्रको महान् और छोटे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

१२ सः वाजेषु नः प्राविषत् ( ४११ )- वह इन्द्र युद्धमें हमारा उत्तम संरक्षण करता है। ऐसा वह पराक्रमी है।

१३ ते शवः नृम्णं ( ४१३ )- तू हमें शत्रुओंको झुकानेवाला बल भरपूर दे।

१४ उपाक्योः हस्तयोः आयसं वज्रं श्रिये निदधे ( ४२३ )- अपने हाथोंमें फौलादी वज्रको कल्याणके लिए धारण करता है।

१५ प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते ( ४१३ )- शत्रुपर आक्रमण कर, चारों ओरसे आक्रमण कर, शत्रुका नाश कर, तेरा वज्र किसीसे पराजित होनेवाला नहीं है। इस स्थानपर ' प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि ' ये तीन शब्द युद्धका वर्णन करनेवाले हैं। " प्रेहि " का अर्थ है, शत्रुपर चढाई करना, " अभीहि " का अर्थ है चारों ओरसे शत्रुको घेरकर उन्हें चक्करमें डालकर फिर उनपर आक्रमण करना, और " धृष्णुहि " का अर्थ है शत्रुओंका धर्षण करना, शत्रुओंका वध करना और अन्य रीतिसे उसका नाश करना। इन्द्र इन सब युद्ध प्रणालियोंमें कुशल है।

१६ अरंगमाय जग्मये अपश्चाद्ध्वने ( ३५२ )- इन्द्र पूर्ण रीतिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, शत्रुओंको कुचलता चला जाता है। शत्रुओंको कुचलनेमें वह देर नहीं करता। समयपर जहां पहुंचना होता है, वहां पहुंच जाता है। ये तीनों ही गुण वीरोंमें आवश्यक हैं। शत्रुपर चढाई करना, शत्रुका पूर्णतया नाश करना और उचित समय पर आक्रमण करना ये आवश्यक तत्त्व हैं।

१७ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, अमितौजाः, विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता, अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला, तरुण, ज्ञानी, अपरिमित सामर्थ्यवाला, सब कर्मोंको धारण करनेवाला यह इन्द्र है, ऐसा यह वीर है।

१८ पुरं धृष्णुं अर्चत ( ३६२ )- शत्रुके नगरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करो।

१९ इन्द्रो विश्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र विश्वका राजा है, विश्वका आधिपत्य इन्द्रके पास है, इतना वह सामर्थ्यवान् है ।

२० ऊतये सुम्नाय तुवि-कूर्मि ऋतीषहं सत्पतिं इन्द्रं वर्तयामसि ( ३५४ )- हमारा संरक्षण हो इसलिए सुखदायी, विविध सामर्थ्योंका कार्य करनेवाले, हिंसक शत्रुओंको हरानेवाले, सज्जनोंका पालन करनेवाले, इन्द्रको हम यहां लाते हैं ।

२१ पुरु-निःषधे इन्द्राय उक्थं शंस्यम् ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी प्रशंसाके स्तोत्र कहो ।

२२ विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं हुवे ( ३६४ )- विश्वका नेता, किसीके आगे अपना सिर न झुकानेवाला, बलका स्वामी इन्द्र है, उसे मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

२३ चर्षणीनां रथानां एवैः ऊती हुवे ( ३६४ )- मनुष्योंके रथोंके संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण हो, इसलिए इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२४ विश्वाः पृतनाः नरः अभिभूतरं आमुरिं उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं इन्द्रं राजसे ततक्षुः ( ३७० )- सब मनुष्योंके नेताओंने दुराचारी शत्रुओंको हरानेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र, बलवान्, दुःखोंसे पार करानेवाले इन्द्रको राजा बनानेके लिए प्रकट किया ।

२५ यः सदावृधं, विश्वगूर्तं, ऋभ्वपसं, ओजसा अधृष्टं धृष्णुं इन्द्रं यज्ञैः चकार ( २४३ )- जो हमेशा बढनेवाले, सबोंसे प्रशंसित, महाबुद्धिमान्, महान् सामर्थ्यके कारण जिसका कभी भी पराभव नहीं होता, ऐसे शत्रुको हरानेवाले इन्द्रकी यज्ञसे भक्ति करता है, ( वह महान् होता है ) ।

२६ तं कर्मणा न किः नशत् ( २४३ )- किसी भी कर्मसे उसका नाश नहीं हो सकता ।

२७ पृक्षु नः तनूषु नृम्णं आधेहि, सत्राजित् पौंस्यं आधेहि ( २३१ )- हे इन्द्र ! हमारी प्रजाओंके शरीरमें बहुतसा बल दे, और सब शत्रुओंको एकसाथ मारनेका बल भी बढा ।

२८ कारवः वाजसातौ त्वां हवामहे ( २३४ )- हम कर्म करनेवाले युद्धमें तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२९ वृत्रेषु सत्पतिं नरः हवन्ते, अर्वतः काष्ठासु त्वा हवन्ते ( २३४ )- वृत्रादि असुरोंके साथ युद्ध करनेके समय नेता लोग सज्जनोंका पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको ही बुलाते हैं । प्रयत्नको अत्यधिक करनेके बाद अपनी सहायताके लिए तुझे ही बुलाते है ।

३० उभे रोदसी त्वा अनुधावतां ( ३७१ )- दोनों ही द्युलोक और पृथ्वीलोक तेरे अनुकूल ही चलते हैं ।

३१ पृथिवी ते शुष्मात् अभ्यसाते (३७१)- पृथिवी तेरे बलसे भयभीत है। इस प्रकार इन्द्रका बल है ।

३२ सत्राजितः अक्षित-ऊतयः, वाजयन्तः रथाः इव, गिरः उदीरते ( २५१ )- एकसाथ सब शत्रुओंको हरानेवाले, जिसके संरक्षणके साधन कभी क्षीण नहीं होते, ऐसे तेरे भक्त, बलवान् रथके समान, स्तोत्र कहते है । तुझ इन्द्रके यशका गान करते है ।

इस प्रकार इन्द्रकी युद्ध कुशलताका वर्णन सामवेदमें किया गया है । इसको देखनेसे इन्द्रकी कितनी विशाल शक्ति थी इसकी कल्पना हो सकती है ।

यहां इन्द्रके वर्णन करनेका यही उद्देश्य है, कि इन्द्रके समान अपने भी वीर अपने राष्ट्रकी तैय्यारी करें, और अपने राष्ट्रको सबल बनावें ।

इन्द्र अपने पास वज्र रखता है, उसी प्रकार हम भी सैकडों धाराओंवाले फौलादी वज्र तैय्यार करें और उनका उपयोग करें यह उद्देश्य यहां नहीं है, अपितु जैसे उसके पास तीक्ष्ण वज्र है, उसी प्रकार हमारे पास भी हमेशा तीक्ष्ण शस्त्र रहें, यह उपदेश यहां ग्रहणीय है ।

इसी प्रकार दूसरे उपदेशोंके विषयमें भी समझें । इन्द्र अपने शत्रुओंका नाश करता है, उसी प्रकार हम भी अपने शत्रुओंका नाश करें । शत्रुनाशके साधन शस्त्रास्त्र समय समयपर बदलते हैं । पहलेके जमानेमें धनुष-बाणसे युद्ध होते थे, पर आज अणु अस्त्र है । पर दोनों दशाओंमें उद्देश्य एक ही है शत्रुका नाश करना । वह उद्देश्य जिन साधनोंसे भी पूरा हो, उन साधनोंका उपयोग करके समयानुसार शत्रु द्वारा पैदा किए जानेवाले कष्टोंको दूर करें ।

## शत्रुका नाश

इन्द्रका मुख्य कार्य सब प्रजाओंका उत्तम संरक्षण करना है । जो शत्रु आते हैं, उनका समूल नाश कर प्रजाजनोंका

संरक्षण करना यह कार्य इन्द्र करता है। उसीको वेदमंत्रोंमें कहा है—

१ महे वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि ( ११९ )- महान् वृत्रका वध करनेके लिए हम इन्द्रके यशको गाते हैं। वृत्रका अर्थ है ( आवृणोति इति वृत्रः ) चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। ऐसे शत्रुके आनेपर उसके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

२ वृत्र-हा ( १२६ )- वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र है। इन्द्रका यह नाम ही है।

३ वयं महाधने अर्भे इन्द्रं हवामहे ( १३० )- हम महान् युद्धमें और छोटे युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

४ वृत्रेषु युजं वज्रिणं हवामहे (१३०)- वृत्रके साथ होनेवाले संग्राममें वज्रधारी इन्द्रको मित्र समझकर सहायताके लिए बुलाते हैं। यहां " वृत्रेषु " इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग हुआ है। अनेक वृत्र हैं। वृत्रका अर्थ केवल एक शत्रु नहीं, अपितु घेरनेवाले अनेक शत्रु। ऐसे सब शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया।

५ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )- इस प्रकार तेरे साथ रहकर तेरी सहायतासे सब शत्रुओंको मार दें। इन्द्रके साथसे और उसकी सहायतासे हमारी शक्ति बढती है।

६ आदिशः सूरः अक्तुषु नः मा अभ्यायमत् ( १२८ )- आज्ञा करनेवाले शक्तिमान् राक्षस अथवा शत्रु रात्रीमें हमारे ऊपर आक्रमण न करें। " आदिशः "आज्ञा देनेवाले, ऐसा कर और ऐसा न कर ऐसी आज्ञा देनेवाले शत्रु। ' सूरः ' ( सु-उरः ) जिसकी छाती विशाल है। ऐसे मजबूत सीनेवाले शत्रु रात्रीके समय हमपर आक्रमण न करें, इसलिए हे इन्द्र ! हमारी रक्षा कर।

आदिशः- आदेश देनेवाले, शस्त्र फेंकनेवाले।

सूरः- हमेशा चलनेवाले, विशाल छातीवाले।

७ सहस्र-बाह्वे तत्र पौंस्यं आददिष्ट ( १३१ )हजारों सैनिकोंको साथ लेकर आक्रमण करनेवाले शत्रुपर जब इन्द्र चलकर गया, तब उसका सामर्थ्य प्रकट हुआ।

८ विश्वाः द्विषः अप भिन्धि ( १३४ )- सब शत्रुओं-को मार।

९ बाधः मृधः परिजहि ( १३४ )- रुकावटें उत्पन्न करनेवाले जो शत्रु हैं, उनका पराभव कर।

१० इन्द्रः दधीचो अस्थभिः नवनवतीः वृत्राणि जघान ( १७९ )- इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे नौ गुना नब्बे वृत्रोंको मारा। ९×९०=८१० शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया।

दधीचः अस्थभिः- दधीचिकी हड्डी; दधीचिने अपनी हड्डी दी, और उससे बने हुए शस्त्रोंसे इतने राक्षसोंका नाश हुआ, यह आलंकारिक कथा है।

११ ओजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )- अपने सामर्थ्यसे महान् शत्रुओंका पराभव करनेवाला।

१२ ब्रह्मद्विषः अवजहि ( १९४ )- ज्ञानसे द्वेष करने-वालेका पराभव कर।

१३ विश्वाः स्पृधः अजयः, इन्द्रः अपां फेनेन शिरः उदवर्तयः ( २११ )- सब शत्रुओंको हराया, और इन्द्रने पानीके झागसे नमुचिका सिर तोडा।

' अपां फेनः '- यह समुद्री झाग है, " न-मुचिः " शीघ्र दूर न होनेवाला रोग, ऐसे रोग पर समुद्री झाग उत्तम औषध है, यह कथा आलंकारिक है।

१४ अप्रतीनि पुरु-वृत्राणि अनुत्तः, चर्षणीधृतिः, एक इत् हंसि- ( २४८ )- अत्यधिक शक्तिवाले बहुतसे शत्रुओंको स्वयं पराभूत न होनेवाले इन्द्रने सब प्रजाओंके कल्याणके लिए अकेले ही मारा।

१५ वृत्र-हा शतक्रतुः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हनाति ( २५७ )- वृत्रको मारनेवाले, सैकडों कार्य करने-वाले, इन्द्रने सैकडों धाराओंवाले वज्रसे वृत्रको मारा।

१६ इन्द्राय वृत्रहन्तमं बृहत् गायत ( २५८ )- इन्द्रके लिए वृत्रको मारनेवाले बृहत् नामके सामका गान करो।

१७ त्वं प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभ्यसि ( ३११ )- तू युद्धोंमें सब शत्रुओंका नाश करता है।

१८ तूर्यः ( ३११ )- शत्रुका विनाश करनेवाला।

१९ अशस्ति-हा ( ३११ )- अप्रशंसनीयोंका नाश करनेवाला।

२० जनिता ( ३११ )- शत्रुओंपर आपत्ति लानेवाला।

२१ तरुष्यतः वृत्र-तूः असि ( ३११ )- विघ्न करने-वालोंका विनाशक है।

२२ ते प्रथमाय मन्यवे श्रत् दधामि, यत् दस्युं अहन् ( ३७१ )- तेरे प्रथम आये हुए उत्साहपर मैं श्रद्धा करता हूँ, क्योंकि तूने उससे शत्रुको मारा।

२३ दिवोदासाय त्यत् शम्बरं अरंधयन् ( ३९२ ) -दिवोदासके हितके लिए तूने उस शम्बर राक्षसको मारा।

*

२४ येन अत्रिणं नि हंसि ( ३९४ )- जिससे तूने केवल स्वयं खानेवाले शत्रुओंको मारा।

२५ वृत्रेषु स्पर्धमानाः क्षितयः यं हवन्ते (३३७)- युद्धोंमें लडनेवाले मनुष्य जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२६ युक्तेषु तुरयन्तः यं हवन्ते ( ३३७ )- युद्धके प्रारम्भ होनेपर युद्ध करनेवाले जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२७ शूरसातौ यं हवन्ते (३३७)- शूरोंसे जिसमें लडाई होती है, ऐसे युद्धोंमें लडनेवाले लोग जिसको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं। वह श्रेष्ठ इन्द्र है।

२८ यः मर्तः नः वनुष्यन्, अभिदाति, मन्यमानः, क्षिधी युधा, शवसा उगणाः, तुरः त्वोताः वृषमणः अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमारी हिंसा करनेकी इच्छासे हमपर चढा चला आता है, अपनेको बहुत शक्तिशाली समझता है, तथा विनाशक शस्त्रोंसे आक्रमण करता हुआ चला आता है, उन सबको, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले हम सब जन तेरे संरक्षणसे सुरक्षित होकर तथा बलवान् मनसे युक्त होकर मारें।

२९ त्वं उत्सं अदर्दः ( ३१५ )- तूने मेघोंको फोडा।

३० खानि व्यसृजः ( ३१५ )- पानीके द्वारोंको खोल दिया।

३१ महान्तं पर्वतं धारा असृजत् ( ३१५ )- महान् पर्वतके ऊपरसे पानीकी धारायें छोडीं।

३२ बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः ( ३१५ )- उफनते हुए समुद्रको आनंदित किया।

३३ यत् दानवान् अवहन् ( ३१५ )- जब तूने दानवोंको मारा। यह वर्णन मेघोंसे पानी बरसानेका है। आलंकारिक रूपमें मेघ यह राक्षस है, और उसे इन्द्रने मारा यह वर्णन किया है।

३४ गोमतः जनस्य संस्थे श्वसन्तं त्वा युजा प्रति ब्रुवीमहि ( ४०३ )- गाय पास रखनेवाले, लोगोंके स्थानोंपर आक्रमण करनेवाले, लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शत्रुको तेरी सहायतासे हम उत्तम उत्तर दें।

३५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथिव्याः अहिं निः शशाः ( ४१० )- स्वराज्यका संरक्षण करनेके लिए पृथिवीपर आये हुए अहि नामक शत्रुपर तूने शासन किया।

३६ सक्षणिः वृत्राणि परि, नः ऋणया द्विषः, तरध्यै, ईरसे ( ४२८ )- तू उत्साहसे युक्त है, इसलिए तू शत्रुओंको मारनेके लिए अपने शत्रुनाशक सामर्थ्यसे द्वेष करनेवालोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है।

इन्द्र शत्रुओंको मारता है, और इस प्रकार वह शत्रुरहित होता है। इसलिए वह प्रबल शक्तियोंसे सम्पन्न है। यह सब बातें इन वचनोंमें पाठकोंको मिलेंगी। इसलिए पाठक इन वचनोंको ध्यानसे पढें और स्वयं शक्तिसम्पन्न कैसे हों, यह विचार करें। पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें और उससे बोध प्राप्त करें। जो इस रीतिसे अध्ययन करेगा, वह इन्द्रके समान शूरवीर और शत्रुको जीतनेवाला होगा।

## संरक्षण करनेवाला इन्द्र

सभी देवता मनुष्योंका संरक्षण करते हैं, पर उनमें भी इन्द्रका संरक्षण विशेष महत्त्वका है, इस विषयमें निम्न मंत्रोंको देखो—

१ देवानां महत् अवः, ऊतये वयं आ वृणीमहे ( १३८ )- देवोंका महान् संरक्षण हम अपने रक्षणके लिए मांगते हैं।

२ कया ऊती, कया शचिष्ठया वृता, नः आभुवत् ( १६९ )- कौनसी संरक्षणकी शक्तिके साथ, और कौनसे सामर्थ्यके साथ वह इन्द्र हमारे पास आवे ?

३ ऊतये सत्रा-साहं, विश्वासु गीर्षु, आयतं, आच्यावयसि ( १७० )- अपने संरक्षणके लिए, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, सब स्तुतियोंसे वर्णनके योग्य इन्द्रको अपने पास बुलाओ।

४ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि (१८१) – महान् संरक्षणके साधनोंके साथ तू हमारे पास आ।

५ प्रचेतसः यं रक्षन्ति, सः जनः न किः दभ्यते ( १८५ )- ज्ञानी जिसका संरक्षण करते हैं, उस मनुष्यको कोई भी दबा नहीं सकता।

६ द्युक्षं दुराधर्षं महि अवः अस्तु (१९२)- तेजस्वी, दूसरे जिसपर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे संरक्षणके महान् साधन हमें प्राप्त हों।

७ त्वावतः वयं स्मसि ( १९३ )- तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित रहें।

८ जनानां तरणिं ऋदं गोमनः वाजस्य समानं प्रशंसिषम् ( २०४ )- लोगोंको दुःखोंसे तारनेवाला, शत्रुको भय दिखानेवाला, गायोंसे मिलनेवाले अन्नोंका दाता इन्द्र है, उसकी मैं प्रशंसा करता हूं।

९ ऊतये सुभ्रकरस्नं, अवसे साधः कृण्वन्तं,

वृबदुक्थं हवामहे ( २१७ )- संरक्षणके लिए अपना हाथ आगे बढानेवाले, सुरक्षितताके लिए साधनोंको तैय्यार रखनेवाले सब जिसकी प्रशंसा करते है, ऐसे इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं।

१० तरोभिः विदद्वसुं इन्द्रं ऊतये बृहत् गायन्तः ( २३७ ) अनेक बलोंसे युक्त, सब प्रकारके ज्ञान जिससे होते हैं, ऐसे इन्द्रके लिए बृहत् नामके सामको हम अपने रक्षणके लिए गाते है।

११ ते धियः नः अवन्तु ( २३९ )- तेरी बुद्धि हमारा संरक्षण करे।

१२ विश्वाभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- सब संरक्षणके साधनोंसे तू सामर्थ्यवान् है।

१३ मंहिष्ठः तुवि शुष्मः (४५७) -तू सामर्थ्यवान् और अत्यधिक वलवान् है।

१४ सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं अप्रतिष्कुतं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० )- एकसाथ बहुतसा यश प्राप्त करनेवाले, जिसका मुकाबला कोई भी कर नहीं सकता ऐसे इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

१५ वज्री राये विश्वा सुपथा करत् ( ४६० )- वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्गोंको सरल करता है।

इस तरह इन्द्र संरक्षण करता है, इस विषयके उत्तम वचन विचार करनेके योग्य हैं। उनका विचार पाठक करें, और अपनेमें ऐसी संरक्षणकी शक्ति बढावें।

## धनवान् और धनदाता इन्द्र

इन्द्र स्वयं धनवान् है और वह धन दूसरोंको देकर उनकी सहायता करनेवाला भी है। इस विषयमें निम्न वचन द्रष्टव्य है—

१ श्रुता-मघः ( १२५ )- प्रसिद्ध धनवान्।

२ वसुः ( १३२ )- सबको बसानेवाला, धनवान्।

३ राधानां-पतिः ( १६५ )- अनेक प्रकारके धनोंका स्वामी।

४ पुरु-वसुः ( १४६ )- बहुतसा धन जिसके पास है।

५ विभा-वसुः ( २१३ )- तेजस्वी धन रखनेवाला।

६ प्रभु-वसुः ( ३७३ )- प्रभुत्त्व करनेवाले धन जिसके पास है।

७ दिवा-वसुः ( ३४८ )- दिव्य धनोंको रखनेवाला।

८ तुवि-नृम्णः ( ३१६ )- बहुतसे धनोंसे युक्त।

९ त्वं एकः इत् वस्वः ईशीयः ( १२२ )- तू अकेला ही धनोंका स्वामी है।

१० धन-सा ( २५१ )- धनोंका दान करनेवाला।

११ धनस्य सातये इन्द्रं हवामहे ( २४९ )- धनके दानके लिए हम इन्द्रको बुलाते है।

१२ पंच क्षितीनां द्युम्नं आ भर ( २६२ )- पांच प्रकारके जनोंके तेजस्वी धन हमें भरपूर दे।

१३ नः सुचितं आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे।

१४ धनानि संजितं ऊतये हुवेम ( ३२९ )- धनोंको जीतकर लानेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते है।

१५ मावते स्तुवते यत् वसु शिक्षसि, तत् न किः आमिनाति ( २९६ )- मेरे जैसे स्तुति करनेवालेको जो धन तू देता है, उसे कोई भी रोक नहीं सकता।

१६ देवस्य ते भूयः दानं उपोपेत् पृच्यते (३००)- तू इन्द्रदेव है, तेरे दिए हुए दान पास आनेपर बढते हैं।

१७ ज्यायः इन्द्रः, इयतः कनीयसः तत् आ भर ( ३०९ )- हे इन्द्र ! तू श्रेष्ठ है, अतः इच्छा करनेवाले और तेरी अपेक्षा छोटे मुझे वह धन भरपूर दे।

१८ वसूनि ददः ( ३१४ )- अनेक प्रकारके धन दे।

१९ त्वं मेषं ऋग्मियं, वस्वः अर्णवं गीर्भिः अभिष्टुत ( ३७६ )- उस प्रशंसनीय, मंत्रोंसे स्तुतिके योग्य, धनोंके समुद्र इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति करो।

२० मंहिष्ठं इन्द्रं अभ्यर्चत ( ३७६ )- महान् इन्द्रकी पूजा करो।

२१ मे पितुः वस्यान् ( २९२ )- मेरे पिताकी अपेक्षा तू धनवान् है।

२२ अभुंजतः भ्रातुः वस्यान् ( २९२ )- धनोंका उपभोग न करनेवाले भाईकी अपेक्षा भी तू धनवान् है।

२३ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माँ तेरे समान है।

२४ वसुत्वनाय राधसे छदयथः ( २९२ )- धनप्राप्ति और सिद्धिके लिए हमारा संरक्षण कर।

२५ त्वोताः तना त्मना सह्याम (३१६)- तेरे पाससे संरक्षण प्राप्त होनेके बाद हम धनसे सुसंपन्न हों।

२६ ऊतये सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं आ भर ( १२९ )- हमारे संरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुको पराजित करनेवाले, हमेशा विजय प्राप्त करानेवाले, श्रेष्ठ धन हमें भरपूर दे।

२७ हे शतक्रतो ! भद्रं इषं ऊर्जं नः आ भर (१७३) - हे [illegible] कर्म करनेवाले इन्द्र ! कल्याण [illegible] [illegible]में दे।

२८ ऋभु-क्षणं रयिं ददातु ( १९९ )- कारीगरोंके संरक्षण करनेवाले धन हमें इन्द्र देवे।

२९ यत् वीडौ, यत्स्थिरं, यत् पर्शाने पराभृतं तत् स्पार्हं वसु आ भर ( २०७ )- जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो धन स्थिर रूपसे रखा हुआ है, जो धन कठिन स्थानपर भूमिमें गाढा गया है, उस सुन्दर धनको हमें भरपूर दे।

३० पुरु-वसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- बहुतसे धनोंको पासमें रखनेवाला, इन्द्र अपने उपासकोंको अनेक प्रकारके धन देता है।

३१ हे इन्द्र ! वसुजये एहि, चेरवे भागं विदाः, गविष्टये वावृषस्व ( २४० )- हे इन्द्र ! धन देनेके लिए आ, सदाचारी मनुष्योंको धन दे, गायोंकी अपने पास रखनेकी इच्छावालेको गाय देकर बलवान् कर।

३२ दाशुषे रत्नानि धत्ते ( ३०६ )- दानशीलके लिए रत्न दे, अर्थात् धन दे।

३३ याः भुजः असुरेभ्य आ भरः, अस्य स्तोतारं वर्धय, ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ( २५४ )- जो उपभोगके योग्य धन हैं, उन्हें असुरोंके पाससे ले आ, उनकी सहायतासे उपासकोंको महान् कर, जो तेरे लिए आसन फैलाते हैं, उन्हें भी महान् कर।

३४ अवमं वसु तव, मध्यमं त्वं पुष्यसि, परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि, त्वा गोषु न किः वृण्वते ( २७० )- निकृष्ट धन तेरा है, मध्यम धनका तू पोषण करता है, परम श्रेष्ठ धनोंपर भी तेरा ही अधिकार है, गाय देनेवाले तेरा कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता।

३५ असत् रातिः कदाचन मा उपदसत् (२८७)- हमारा दान कभी भी नष्ट न होवे।

३६ चित्रं वृषणं रयिं दाः (३१७)- विलक्षण और बल बढानेवाले धन हमें दे।

३७ ते दक्षिणं हस्तं वसूयवः जगृह्म ( ३१७ )- धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तेरे दायें हाथको पकडते हैं, ( तू उस हाथसे धन देता है )।

३८ त्वा गोनां गोपतिं विद्म ( ३१७ )- तू गायोंका स्वामी है, यह हम जानते हैं, इसलिए तू गाय दे।

३९ अहं सदा याचन् आचुक्रुधं ( २०७ )- मेरे हमेशा मांगते रहनेसे क्या तू गुस्सा हो गया है ?

४० कः ईशानं न याचिषत् (३०७)- अपने स्वामीसे कौन भला नहीं मांगता ? सब अपने स्वामीसे ही मांगते हैं, उसी प्रकार मैं मांगता हूं, अतः क्रोध न करते हुए मुझे धन दे।

४१ सुराधाः मघवा मघानि दाता ( ३३५ )- उत्तम धनसे युक्त इन्द्र धन देता है।

४२ यत् त्वा आदातं राधः मे नास्ति, तत् नः उभया हस्त्या भर ( ३४५ )- तेरे दिए गए धन अब मेरे पास नहीं रहे, इसलिए दोनों हाथोंसे मुझे भरपूर धन दे।

४३ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि ( ३४६ )- उत्तम वीर्यसे युक्त गायोंवाले धन हमें भरपूर दे।

४४ विश्वचर्षणे सुदत्र ! नः द्युम्नं मंहय ( ३६६ ) – हे सब लोगोंके हित करनेवाले, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर महान् बना।

४५ महित्वना राधांसि प्रचोदयते ( ३८६ )- हे इन्द्र ! तू अपने यशके अनुरूप ही धन देता है।

४६ यः पुरा इदं वस्यः नः प्र आ निनाय, तं इन्द्रं ऊतये स्तुवे ( ४०० )- जो इन्द्र पहलेसे ही हमें धन देता आया है उस इन्द्रकी हम अपने संरक्षणके लिए स्तुति करते हैं।

४७ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं दीयते ( ४१४ )- जब युद्ध शुरू होते हैं, उस समय शक्तिशाली वीरोंको धन प्राप्त होता है।

४८ कं हनः ? कं वसौ दधः ? अस्मान् वसौ दधः ( ४१४ )– तू किसको मारता है ? किसको धन देता है ? यह सब तेरे ऊपर है, पर हमें धन दे।

इन्द्र धन प्राप्त करता है और उन्हें अपने उपासकोंको देता है, उन धनोंको लेकर उपासक उत्तम स्थितिमें रहते हैं, धनका अर्थ है गाय, घोडे, रथ, भूमि, सोना, रत्न और दूसरे भी पदार्थ जिनकी सहायतासे मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। सौ, हजार, अयुत-दसहजार आदि शब्द भी मंत्रोंमें प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—

४९ मघवा सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )–इन्द्र हजारों दान देता है।

५० वीडौ, स्थिरं, पर्शाने पराभृतं ( २०७ )- तिजोरीमें रखे, स्थिर और भूमियोंमें गडे हुए ये तीन प्रकारके धन होते हैं, ऐसा कहा है।

ये धन मोहर, रुपये इस प्रकार कुछ होंगे ऐसे मालूम पडता है। सौ, हजार, दसहजार इन संख्याओंमें गिने जाते हों, ऐसी कोई चीज होगी। यह विचारणीय है।

यह धन ऐसा होना चाहिए जो तिजोरीमें रखा जा सके, बैंकमें स्थिर रूपमें रक्खा जा सके, और भूमिमें बर्तनमें बन्द करके गाडा जा सके। सोनेके मोहरके रूपमें ये धन होंगे ऐसा कुछ प्रतीत होता है।

आजकल सौ, हजार, दसहजार तकके कागजके नोट प्रयोगमें आते हैं, पर उस समय इस प्रकार कागजके नोटोंका प्रचलन नहीं था। रत्नोंका प्रयोग था पहले, पर उन्हें भी हजार, दसहजारोंकी संख्यामें देना सम्भव नहीं था, इसलिए सोने, चांदीकी ही मुद्रायें होंगी ऐसा प्रतीत होता है। पर यह विचारणीय है।

## यदि मैं धनवान् हो जाऊं तो ?

यदि मै धनवान् हो जाऊं तो मेरी प्रतिष्ठा बढेगी, यह विचार प्रत्येक मनुष्यका स्वाभाविक है। इस प्रकारका एक वाक्य निम्न मंत्रमें आया हुआ है—

१ **अहं यत् वस्वः ईशीय, मे स्तोता गोपखा स्यात्** ( १२२ )– यदि मैं धनका स्वामी हो जाऊं तो मेरी स्तुति करनेवाला गायका मित्र हो जाए। मै धनवान् हो जाऊं तो मेरी स्तुति होती रहेगी, ऐसा यहां कहा है। धनवान्की सब जगह स्तुति होती है। इन्द्र धनवान् है, इसलिए उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। उसी प्रकार जो धनवान् होगा, उसकी स्तुति सभी करते रहेंगे। क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर वह धन देगा। यहां प्रयुक्त हुआ धन ' वसु ' गौवोंके रूपमें नहीं है, यह व्यवहारमें आने योग्य कोई दूसरा ही धन है, जो हजारोंकी संख्यामें दूसरोंको दिया जाता था।

२ **स्पार्हं वसु आ भर** ( १३४ )– सुन्दर वसु नामका धन हमें भरपूर दे।

३ **सः नः वसूनि आ भर** ( १९० )– वह इन्द्र हमें वसुनामक धन देवे।

४ **राधः कृणुष्व** ( १९४ )– हमें धन दे।

५ **क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन आ संगृभाय** ( १६७ )– शब्द करनेवाले, लेने योग्य, विलक्षण धन दांये हाथसे संग्रह करके हमें दें।

इसमें " चित्रं, ग्राभं, क्षुमन्तं " ये तीन धनके विशेषण हैं। यहां उनका थोडा सा विचार करते हैं।

**चित्रं**– विलक्षण, चमकनेवाले, तेजस्वी।

**ग्राभं**– हाथमें लेने योग्य।

**क्षु–मन्तं** - शब्द करनेवाले, अन्न देनेवाले।

इन शब्दोंके विचारसे यह ज्ञात होता है कि वे धन चमकनेवाले अर्थात् सोने, चांदीके, हाथोंमें अनेक संख्यामें लेने योग्य और शब्द करनेवाले, आवाज करनेवाले होते होंगे। धातुके सिक्के अथवा विशिष्ट प्रकारके टुकडे ही ये हो सकते है। ' आ संगृभाय ' यह शब्द यह बताता है, कि लोग इनका संग्रह करते थे। इससे, ये सिक्के छोटे छोटे टुकडोंके रूपमें थे, यह भी प्रतीत होता है।

६ **नः सुगव्या अश्वया रथया महोनां वरिवस्य** ( १८६ )– हमें उत्तम गाय, उत्तम घोडे और उत्तम रथोंसे समृद्ध कर। इसमें गाय, घोडे और रथ भी संपत्ति हैं ऐसा कहा है, पर यह धन ' ग्राभं ' अनेक संख्याओंमें हाथमें ग्रहण करने योग्य, ' क्षु–मन्तं ' आवाज देनेवाले, और ' चित्रं ' चमकनेवाले नहीं है। इस लिए गाय, घोडे और रथोंकी सम्पत्ति हजारोंकी संख्यामें दिए जानेवाले धनसे भिन्न है।

इस प्रकारका धन वैदिक कालमें उपयोगमें आता था। यह विषय और भी विचारणीय है।

## रथ और घोडे

इन्द्रके रथ थे और रथ चलानेके लिए उत्तम शिक्षित घोडे भी उसके पास थे।

१ **मन्द्रैः मयूर–रोमभिः हरिभिः आयाहि** (२४६)– सुन्दर मोरके रंगके समान अयालवाले घोडोंसे हे इन्द्र ! तू यहां आ।

२ **हरीणां स्थाता** ( १९३ )– घोडोंके रथमें बैठनेवाला इन्द्र।

३ **वृषणा हरी उप युयुजे-वृत्रहा आ जगाम** ( ३०८ )– बलवान् दोनों घोडे उसने रथमें जोड लिए हैं, और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र आ गया है।

४ **ब्रह्मयुजः केशिनः हिरण्यये रथे युक्ताः आ सहस्रं शतं हरयः त्वा आ वहन्तु** ( २४५ )– कहने मात्रसे ही रथमें जुड जानेवाले सुन्दर अयालवाले, सुनहरे रथमें जोडे जानेवाले हजारों और सैकडों घोडे इन्द्रको जहां जाना होता है, वहां पहुंचाते है। इस वचनमें इन्द्रके घोडे कैसे सुशिक्षित थे, यह बताया गया है।

**ब्रह्म–युजः**– सूचनाके शब्द सुनकर ही उठकर खडे हो जानेवाले, मंत्र बोलते ही रथमें जुड जानेवाले। यह उत्तम

सुशिक्षित घोडोंका लक्षण है । इशारा होते ही खुद-ब-खुद जागकर खडे हो जानेवाले । अत्यन्त सुशिक्षित घोडे ही ऐसा कर सकते है ।

केशिनः- उत्तम अयाल ( गर्दन के बाल ) वाले ।

हिरण्यये रथे युक्ताः- सोनेके रथमें जोडे जानेवाले ।

सहस्रं शतं हरयः- हजारों अथवा सौ घोडे ।

एक रथमें हजार अथवा सौ घोडोंका जोडा जाना सम्भव नहीं । इन्द्रके साथ दूसरे अधिकारी भी होंगे, ये घोडे उन्हींके होंगे । बडे लोगोंके रथके साथ अनेक घुडसवार होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके साथ भी होंगे । अथवा आलंकारिक भाषामें यह " किरणों " का वर्णन होगा क्योंकि अनेक स्थलपर " हरी " दो घोडोंके जोडे जानेका वर्णन है । दो घोडोंका रथमें जोडा जाना सम्भव है । अतः हजार और सौ यह वर्णन आलंकारिक होना चाहिए अथवा किरणोंका वाचक होना चाहिए ।

## गाय

इन्द्रका सम्बन्ध जैसा घोडोंके साथ है, वैसा ही गायोंके साथ भी है । जैसे—

१ यज्ञस्य मही रप्सुदा (११७)- यज्ञके लिए बहुतसा दूध देनेवाली गायकी आवश्यकता होती है, क्योंकि यज्ञमें इन्द्रको बुलाया जाता है ।

२ उभा कर्णा हिरण्यया ( ११७ )- गायके दोनों कान सोनेके चिन्हसे सुशोभित होते हैं ।

३ नः रेवतीः तुवि-वाजाः सन्तु ( १५३ )- हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली हों ।

४ श्रवसः च कामः गोमति व्रजे नः आ भज ( ३१८ )- बल अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाला तू हमें गायोंके गोष्ठको दे । गायोंके गोष्ठमें हम रहें ।

५ सबर्दुघां सुदुघां उरुधारां इषं धेनुं इन्द्रं आहुवे ( २९५ )- दूध देनेवाली, सरलतासे दुहनेवाली, बहुत दूध देनेवाली, अन्नरूपी गायके लिए इन्द्रकी मैं प्रार्थना करता हूँ ।

६ नः गव्यूतिं घृतैः आ उक्षतं ( २२० )- हमारे गायोंके स्थानोंपर घीकी वर्षा हो, हमें घी बहुत मिले ।

७ धेनवः गावः वत्सं ( २०१ )- दुधारु गायें अपने बछडेके पास जाती हैं ।

यह गायोंका वर्णन इस ऐन्द्र काण्डमें है । बहुतसी गायें हमारे पास रहें, और दूध व घी खूब मिले, यह तात्पर्य है ।

## इन्द्रकी माता

१ इन्द्रं त्वा देवी जनित्री अजीजनत् ( ३७९ )- तुझ इन्द्रको सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथिवी इन देवियोंने उत्पन्न किया । इस इन्द्रकी दो मातायें है ।

२ वन्वानासः ईंखयन्तीः अवस्युवः जातं तं उपासते ( १७५ )- स्तुतिके योग्य, गति करनेवाली, निरन्तर कार्य करनेवाली उस माताका यह बलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ, उस पुत्रकी वह उपासना करने लगी, उसके पास रहकर उसकी सेवा करने लगी ।

## एक स्थानपर बैठकर स्तुति करना

एक स्थानपर बैठकर, सब संगठित होकर इन्द्र परमेश्वर की उपासना आर्य लोग करते थे ।

१ तत् सचा गाय ( ११५ )- उन स्तोत्रोंको एक स्थानपर बैठकर गावो ।

२ आ इत, निषीदत, इन्द्रं अभि प्र गायत ( १६४ )- आओ, बैठो और, सब मिलकर इन्द्रके स्तोत्र गाओ ।

३ इन्द्रं इत् सचा स्तोत, मुहुः शंसत ( २४२ )- इन्द्रकी एक जगह बैठकर स्तुति करो और उसकी बारबार स्तुति करो ।

४ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि ( २५९ )- यज्ञमें एक जगह मिलकर स्तोत्र गायें और तेज प्राप्त करें ।

५ सत्राच्या धिया मघवान् आगमत् ( २९० )- एकत्र बैठकर गाये गये स्तोत्रोंको सुननेके लिए इन्द्र आता है ।

६ विश्वा ओजसा दिवः पतिं समेत ( ३७२ )- अपने बलसे द्युलोकके स्वामी इन्द्रकी एक जगह इकट्ठे होकर बैठकर स्तुति करो ।

७ वयो यथा, त्वा सीदन्तः अभि नोनुमः (४०७)- पक्षी जैसे एक जगह इकट्ठे होते हैं, उसी प्रकार हम भी एक जगह इकट्ठे होकर तुझे नमस्कार करते है ।

८ सधमाद्ये अपि नः वृधे भव ( २३९ )- यज्ञ स्थानमें एकत्र बैठकर तू इन्द्र ! हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतिमें सहायक हो ।

जहां यज्ञ होता था, वहां सब आर्य आते थे, एक जगह

इकट्ठे होकर बैठते थे और सब मिलकर इन्द्रकी प्रार्थना, स्तुति और उपासना करते थे और एक जगह बैठकर प्रार्थना करनेके कारण उनमें एकता थी। एक जगह इकट्ठे होनेका यह लाभ है।

## ज्ञानी कैसे होता है ?

१ कः ब्रह्मा तं इन्द्रं सपर्यति ( १४२ )– कौन ज्ञानी उस इन्द्रकी उपासना करता है ? एक स्थानपर बैठकर उसकी प्रार्थना करनेसे ज्ञानकी वृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त होता है।

२ उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रो अजायत ( १४३ )– पर्वतकी उपत्यका और नदीके संगम पर बैठकर अपना मन उस परमात्मामें लगानेसे महाज्ञानी बनता है।

ज्ञानी बननेके लिए ऐसी तपस्या करनी चाहिए। पर्वतपर और नदीके संगमपर मनकी एकाग्रताके लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। घरमें भी यदि एकान्त स्थान मिले और मन एकाग्र हो इसके लिए आवश्यक तैय्यारी करके साधना प्रारम्भ होनेपर मन एकाग्र होनेसे जो लाभ होने सम्भव है, वे लाभ हो सकते हैं। थोडे अधिक कष्ट होंगे, बस इतना ही है, पर लाभ होगा अवश्य।

## इन्द्रका रथ और वज्र

१ अनवः (ऋभवः) ते अश्वाय रथं ततक्षुः, त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं ( ४४० )– मनुष्य कारीगर ऋभुओंने इन्द्रके घोडोंके लिए रथ बनाया, और देवोंके कारीगर त्वष्टाने इन्द्रके लिए तेजस्वी वज्र तैय्यार किया।

उत्तमसे उत्तम रथ और वज्र लेकर इन्द्र उत्तम प्रकारसे तैय्यार हो जाता था, और ऋभु रथ इत्यादि बनाते थे और त्वष्टा फौलादके वज्र बनाकर इन्द्रको देता था। युद्ध करने-वाले वीरोंको उत्तमसे उत्तम शस्त्रास्त्र बनाना आवश्यक है, नहीं तो युद्धमें विजय मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन्द्रके पास ऋभु, त्वष्टा आदि उत्तम कारीगर हैं, और युद्धके लिए आवश्यक शस्त्रोंका उत्तम रीतिसे निर्माण करते हैं। इस कारण इन्द्र सदा ही विजयी होता है।

## इन्द्र जख्म ठीक करता है

१ यः अभिश्रिषः ऋते चित् जत्रुभ्यः आतृदः पुरा संधिं संधाता, मघवा पुरू-वसुः विहुतं पुनः निष्कर्ता ( २४४ )– यह इन्द्र जोडनेका कोई साधन न होते हुए भी किसी संधिके टूट जानेपर शीघ्र जोड देता है, और धनवान्, बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र टूटे हुए भागोंको उत्तम रीतिसे फिर जोड देता है, और घावोंको ठीक करता है।

शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध करनेवाले वीरोंको इसका ज्ञान आवश्यक है। युद्धमें शस्त्रोंके जख्म तो होने ही है, पर उनको शीघ्र ही ठीक करनेका ज्ञान होना आवश्यक है। इन्द्र इस विद्यामें कुशल है, इसे उपरोक्त वचन स्पष्ट करता है। अन्य देवोंमें अश्विनीकुमार इस कार्यमें निपुण हैं, पर इन्द्र वीर होते हुए भी घावोंको ठीक करनेमें वह कुशल है। यह यहाँ द्रष्टव्य है।

## दुःख दूर करना

इन्द्र दूसरोंके दुःख दूर करता है। इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ दुष्वप्न्यं परासुव ( १४१ )– बुरे स्वप्नोंको और उनके कारणोंको दूर कर। दुःख देनेवाले स्वप्न आवें ही न ऐसा कर।

२ निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ ( ३९६ )– दुःखोंको दूर कैसे किया जाए यह तू जानता है।

३ अहः अहः शुन्ध्युः परिपदां इव ( ३९६ )– प्रति-दिन अपनी शुद्धता करनेवाला अपनी अनिष्ट अवस्था दूर करता है। उसी प्रकार रोज साफ रहनेसे विपत्तियां दूर होती हैं।

४ अमीवां अप, दुर्मतिं अप, नः अंहसः अप युयोतन ( ३९७ )- रोग दूर करो, दुर्बुद्धि दूर करो और हमसे होनेवाले पाप दूर करो। दुष्ट बुद्धि दूर होनेका अर्थ है, पाप दूर होना और पाप दूर होनेका मतलब है रोगोंका दूर होना।

५ यं द्विषः अति नयाति, तं मर्त्यं अंहः न, दुरितं न अष्ट ( ४२६ )– जिसे शत्रुसे दूर ले जाया जाता है, उस मनुष्यको पाप नहीं लगता और दुष्ट भाव भी उसके पास नहीं आते।

पापके कारण दुःख उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपनेमें पापकी प्रवृत्ति न हो, अतः सावधान रहना चाहिए। अपना शरीर, मन, इन्द्रियें शुद्ध रहें, पापकी प्रवृत्ति दूर हो। इन सबके होनेसे हमसे दुःख स्वयं ही दूर हो जायेंगे, और हम सुखी होंगे। पापसे दूर होनेका यह प्रयत्न प्रत्येकको करना चाहिए।

## विरुद्ध आचरण न करना

हम विरुद्ध आचरण न करें, इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ न कि इनीमसि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक काम नहीं करते।

२ न कि आयोपयामसि ( १७६ )- हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते।

३ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )- मत्रोंमें जो उपदेश किया है। उसीका हम आचरण करते हैं।

४ हे आथर्वण! दोषः आगात्. सवितारं देवं स्तुहि ( १७७ )- हे अथर्ववेदके अध्ययन करनेवाले। यदि तेरे आचरणमें कोई दोष हो गया हो तो जगत्के उत्पन्न करनेवाले देवकी स्तुति कर।

" सविता वै सर्वस्य प्रसविता " सविता यह सब जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव है। उसकी स्तुतिसे सब दोष दूर होते हैं।

५ उग्रं वचः अपावधीः ( ३५३ )- क्रोधयुक्त वातें न कर, इससे वहुत कष्ट होते हैं।

६ अव्रतः न हिनोति, कामं रयिं न स्पृशते (४४१) – शुद्ध आचरण न करनेवाला मनुष्य उस उच्च स्थानको नहीं पा सकता। जितना चाहिए उतना धन नहीं पासकता।

७ विद्वान् मित्रः नः ऋजुनीती नयति ( २१८ )- ज्ञानी मित्र हमें सरल मार्गसे ले जाता है।

८ यं अद्रुहः पान्ति सः मर्त्यः सुनीथः घ ( २०६ ) – जिसकी द्रोह न करनेवाले देव रक्षा करते हैं, वह मनुष्य सुनीतिसे चलनेवाला होता है। उत्तम मार्गसे चलनेवाले मनुष्यको देवोंके संरक्षण मिलते हैं, इसलिए सदाचारसे वर्ताव करें, यह वेदमें कहा है।

९ वि-व्रतानां धर्तारं वरुणं वपा गिरा वन्देत ( २८८ )- विशेष शुद्ध नियमोंके पालन करनेवाले वरुणकी स्तुतिपूर्वक वन्दना करें, और उसके समान स्वयं भी उत्तम नियमोंका पालन करें।

## पुष्टिकारक अन्न खावें

१ नः इषं पीवरीं कृणुहि ( ४५५ )- हमारे अन्न अधिक पोषण करनेवाले कर, और ऐसे अन्न तू खा।

## भाईबन्ध कोई नहीं

१ त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, अ-ना, सनात् अनापिः, युधा इत् आपित्वं इच्छसे (३९९)- हे इन्द्र! तू जन्मसे ही शत्रुरहित है, तेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, तेरा भाई कोई नहीं, युद्धसे तू भाईपनेकी इच्छा करता है।

इन्द्रका कोई भाई नहीं, इस कारण भाईबन्धका झगडा उसके लिए कुछ है ही नहीं। इन्द्र पर शासन करनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि यह ही सब पर अधिकार करता है। इसको किसी मित्रकी भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह इतना सामर्थ्यवान् है, कि यह अकेला ही सारे शत्रुओंका नाश कर सकता है। यह युद्ध द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है, इस कारण जिसके शत्रु दूर होते हैं, वह इससे प्रेम करता है। इस प्रकार इसके चाहनेवाले मित्र वहुत हैं, पर वे इन्द्रकी युद्ध कुशलताके कारण ही मिले हैं।

## घर कैसे हों

१ त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तये छर्दिः दिद्युं शरणं मह्यं [ देहि ] ( २६६ ) – तीन मंजिल, तीन छप्परवाले, रहनेवालोंका कल्याण करनेवाले, आश्रयके योग्य और उत्तम प्रकाशयुक्त घर मुझे दे।

घर तीन मंजिलोंवाले हों, तीन भागवाले हों, उसमें बहुत प्रकाश आवे रहनेवालोंका कल्याण हो, उसमें लोगोंको रहनेकी इच्छा हो, ऐसे सुखकारक घर हों।

## दीर्घायु हों

१ वातः नः हृदे शंभुः मयोभुः भेषजं आवातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् ( १८४ )- वायु हमारे घरमें हृदयको सुख और आरोग्य देनेवाले औषध अपने साथ लावे, इससे हमारी आयु लम्बी हो। घरमें शुद्ध वायु आवे, उसके साथ आरोग्य देनेवाले, शुभ गुण हमारे घरमें मनुष्योंको प्राप्त हों, और इस कारण हम सब दीर्घायु हों।

२ नः तुचे तुनाय जीवसे द्राघीयः आयुः सु कृणोतन ( ३९५ )- हमारे पुत्र पौत्रोंको दीर्घजीवन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ )- उत्तम वीर सन्तान हमारे हों, और वे सब सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें।

## यश प्राप्त हो

१ त्वादातं इत् यशः ( १९५ )- तेरी सहायतासे यश मिले।

२ शवसः पतिः यशाः असि ( २४८ )- तू बलका स्वामी है, ओर यशस्वी है।

इसलिए हम यशस्वी हों, ऐसा कर।

## भूमि घूमती है

भूमि घूमती है, इस विषयका आगेके मंत्रभागमें उल्लेख है-

१ भूमिं व्यवर्तयत् ( १२१ )- उसने भूमिको फिरनेवाली बनाया।

## चन्द्रको सूर्यकी किरणें प्रकाशित करती हैं

१ गोः चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम अमन्वत ( १४७ )- प्रकाशित होनेवाले, चन्द्रके मण्डलमें सूर्यकी गुप्त किरणें विलीन होकर उसे प्रकाशित करती हैं, ऐसा माना जाता है।

## विद्यादेवी

१ पावका वाजिनीवती धियावसुः सरस्वती ( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न और बल देनेवाली, बुद्धि बढाकर धन देनेवाली, सरस्वतीदेवी है।

## सौभाग्य प्राप्त हो

१ अद्य नः प्रजावत् सौभगं सावीः ( १४१ )- आज हमें उत्तम सन्तानोंके साथ सौभाग्य दे।

२ नः मृळयासि ( १७३ )- हमें तू सुखी करता है।

३ स्तोतृभ्यः मृळय ( २१३ )- स्तुति करनेवालोंको सुखी कर।

४ इन्द्रापूषणा वयं स्वस्तये सख्याय वाजसातये हुवेम ( २०२ )- हम इन्द्र और पूषाको अपने कल्याणके लिए, अपने साथ मित्रताके लिए, अन्न और बल बढानेके लिए बुलाते हैं।

## सोमरस

इन्द्रको यज्ञमें बुलाया जाता है, वह आता है और आसन पर बैठता है, उसके बाद उसे सोमरस दिया जाता है। उन सोमरसोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अन्धः ( १२४ )- सोमरस यह अन्न है।

२ द्युम्नितमः ( ११६ )- सोमरस तेजस्वी है, वह चमकता है।

३ इन्दुः ( १४५ )- चन्द्रके समान वह चमकता है।

४ तेन नूनं मदः ( ११६ )- उससे उत्साह और आनन्द मिलता है।

५ यवा शिरः ( १४५ )- जौका आटा और दूध मिलाकर उसे पिया जाता है।

*

६ सोमः विश्वासां सुक्षितीनां चेततुः ( १५४ )- सोम सब उत्तम मनुष्योंका उत्साह बढानेवाला है।

७ नि पूतः ( १५९ )- सोमरस छानकर शुद्ध किया जाता है।

८ दध्याशिरः सोमासः ( २९३ )- सोमरसमें दही मिलाकर वह पिया जाता है।

९ आशीर्वान् ममत्तु ( ३५० )- दूध आदि जिसमें मिलाया जाता है, ऐसा वह सोमरस हमारा उत्साह बढाता है।

१० रयिन्तमः द्युम्नवत्तमः सोमः ( ३५१ )- शोभावाला और तेजस्वी सोमरस है।

११ पुनानः हरिण्या रुचा विश्वा द्वेषांसि तरति ( ४६३ )- सोम शुद्ध होकर अपने हरे रंगके तेजसे सभी शत्रुओंको मारता है। उसके पीनेसे इतना बल अंगमें बढता है।

१२ धारा रोचते। पुनानः हरिः अरुषः ( ४६३ )- इस सोमरसकी धारा चमकती है। छाननेके बाद यह सोमरस चमकता है।

१३ रसिनः गोमतः सुतस्य पिब ( २३९ )- गायके दूधसे मिश्रित सोमको पी।

१४ सोमं सुनोत। पक्तीः पचत ( २८५ )- सोमरस निकालो और पुरोडाशको पकाओ।

१५ धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं नः प्रातः जुषस्व ( २१० )- धानकी खीलसे मिश्रित, पुरोडाशसे तथा स्तोत्रोंसे युक्त हमारे इस सोमरसको सबेरे पी। ( धानावन्तं ) धानको भूंजकर उसका आटा सोमरसमें मिलाते हैं, ( करम्भ ) सत्तू मिले हुए दहीको करम्भ कहते हैं, ( अपूप ) पुए और धानके खील सोमके साथ खाये जाते हैं। यह इन्द्रका सबेरेका नाश्ता है।

१६ अश्मया घ्नता अंशुना क्षपमाणः, यथा आद्वन्, इत्थं उ ( ३०५ )- पत्थरोंसे सोम पीसनेके कारण यजमान थक जानेपर भी बहुतसा अन्न खानेवाले राजाके समान, सामर्थ्यवान् ही होता है, निर्बल नहीं होता।

सोमलता यह एक वनस्पति हिमालयके मौजवान् शिखर पर उगती थी। १०-१२ हजार फीटकी ऊंचाई पर मिलनेवाला सोम अत्युत्तम माना जाता था, यज्ञमें यह सोमलता लाई जाती थी, अथवा गांववालोंसे खरीदी जाती थी। यह लता पत्थरोंसे कूटी जाती थी, और हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकाला जाता था, उसके बाद उसे बारीक छलनीसे छान कर उसमें पानी, दूध, दही मिलाया जाता था, शहद भी उसमें मिलाया जाता था, तब वह पीनेके

लायक होता था। केवल रस तीखा होता था, उसमें पानी, दही अथवा दूध मिलाकर थोडा शहद मिलानेसे वह पीनेके योग्य होता था।

यह रस अन्धेरेमें चमकता था। इसके साथ पुआ, वडे, खीलें और पुरोडाश आदि खानेके लिए दिया जाता था। इसको पीनेके बाद शूर पुरुषोंमें महान् उत्साह उत्पन्न होता था, और उस उत्साहमें वीर पुरुष महान् शौर्यके काम करते थे।

इन्द्र यह रस पेट भरकर पीता था, दूसरे लोग भी इसे पीते थे। आनन्द बढानेवाला. उत्साह बढानेवाला यह पेय होता था। यज्ञमें यह पेय तैय्यार किया जाता था। हवनके करनेके बाद यह पिया जाता था। यह सोमरसका वर्णन है।

## इन्द्र स्तुत्य है

इन्द्र बहुत पराक्रमी है, इसलिए उसकी चारों ओरसे स्तुति की जाती है। देखिए—

१ पुरु-हूतः ( ११५ )- बहुत लोग जिसकी स्तुति करते हैं।

२ गिर्वणः ( १६५ )- प्रशंसनीय।

३ त्वदन्यः गिरः न हि सघत् ( ३७३ )- तुझ इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति नहीं होती।

४ ये त्वा आरभ्य चरामसि, ते इमे वयं ते ( ३७३ ) -जो तुझसे स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं, वे ये हम तेरे ही हैं, तेरे भक्त हैं।

५ महान् असि ( ३४६ )- इन्द्र ! तू महान् है।

६ विश्वा गिरः समुद्र-व्यचसं, रथीनां रथीतमं, वाजानां पतिं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ( ३४३ )- सब स्तुतियां, समुद्रके समान विस्तीर्ण, रथियोंमें मुख्य, बलोंके स्वामी, सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्रके यशको बढाती हैं।

७ वाजानां वाजपतिः, हरिवान् इन्द्रः उक्थेभिः मन्दिष्ठ ( २२६ )· बलोंके और अन्नोंके स्वामी, घोडोंको रखनेवाला इन्द्र स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता है।

८ तव इदं सख्यं अस्तृतं ( २२९ )-तेरी यह मित्रता अटूट है।

९ त्वदन्यः मर्डिता न अस्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय स्तुतिके योग्य और कोई भी नहीं है।

१० ऋचीषमः ( १६९ )- वेदमंत्रोंसे इस इन्द्रकी स्तुति की जाती है।

## इन्द्रकी स्तुति

१ बोधन्मना शक्रः आशिषं शृणोतु ( १४० )- हमारे मनकी इच्छा जाननेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारी स्तुति सुने।

२ चर्षणीनां सम्राजं, गीर्भिः नव्यं, तृषाहं नरं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंके सम्राट्, स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य, शत्रुका पराभव करनेवाले, नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो।

३ ऊतये सुरूप-कृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि ( १६० )- हमारे संरक्षणके लिए, उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

४ इन्द्रं गिरा अभि प्र अर्च ( १६८ )- इन्द्रकी स्तुति करो।

५ इन्द्रं वाणी अनूषत ( १९८ )- इन्द्रकी हमारी वाणी स्तुति करती है।

६ ते गिरः असृग्रं, वृषभं पतिं त्वा प्रति उदहासत ( २०५ )- तेरी स्तुति हमने की, वह बलवान् स्वामी तुझ इन्द्रको पहुंच गई है।

७ महे प्रचेतसे देवाय कद्रु वचः शस्यते, तत् इत् अस्य वर्धनम् ( २२४ )- महान् ज्ञानी इन्द्रकी साधारण स्तुति भी उसके महत्त्वका वर्णन करती है।

८ यथा विदे सु-राधसं इन्द्रं अभि अर्च ( २३५ ) -जैसा जानते हो, वैसा ही इन्द्रकी आराधना करो।

९ अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिषण्यत, वृषणं इत् स्तोत ( २४२ ) दूसरा कुछ न करो, बेकार प्रयत्न मत करो, बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो।

१० इमा गिरः त्वा वर्धन्तु ( २५० )- यह स्तुति तेरा प्रभाव बढाती है।

११ पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूषत ( २५० )- अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध ज्ञानी स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

१२ बृहते ब्रह्म अर्चत ( २५७ )- महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो।

१३ इन्द्रं नः ब्रह्माणि उप भूषत ( २६७ )- इन्द्रको हमारे स्तोत्र अलंकृत करते हैं।

१४ गायत्रिणः त्वा गायन्ति, अर्किणः अर्कं अर्चन्ति, ब्रह्माणः त्वा उद्येमिरे ( ३४२ )- गायन करनेवाले मनुष्य तेरे स्तोत्र गाते हैं, उपासक तेरी उपासना

करते है, और ब्राह्मण तुझ इन्द्रका यह सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा वर्णन करते है।

१५ शुद्धेन साम्ना शुद्धैः उक्थैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवाम ( ३५० )- शुद्ध सामगानसे, शुद्ध स्तोत्रोंसे शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

१६ अप्रहणं शवसः पतिं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसं इन्द्रं गृणीषे ( ३५७ )- धार्मिकोंका संरक्षण करनेवाले, बलके स्वामी, सब शत्रुओंका नाश करनेवाले, नेता, सामर्थ्यवान्, सर्वज्ञ इन्द्रकी स्तुति करो।

१७ विश्वा ओजसा दिवः पतिं समेत ( ३७२ )- सब सामर्थ्यसे द्युलोकके पालक इन्द्रकी एक स्थानपर बैठकर उपासना करो।

१८ यः एक इत् जनानां अतिथिः भूः ( ३७२ )- जो अकेला ही इन्द्र अतिथिके समान लोगोंका पूज्य है।

१९ बृहतीः गिरः चर्षणी-धृतं इन्द्रं अभ्यनूषत ( ३७४ )- बहुत स्तुतियां मनुष्योंके पूज्य इन्द्रकी स्तुति करती हैं।

२० अवसे इन्द्रं सुवृक्तिभिः महय ( ३७७ )- अपने संरक्षणके लिए इन्द्रके महत्त्वको उत्तम वचनोंसे बढावो।

२१ शतं आववृत्याम् ( ३७७ )- इन्द्रकी स्तुति सैकडों समय करो।

इस प्रकार इन्द्रकी स्तुति की जाए, यह इस वर्णनका उद्देश्य है। इन्द्रके गुण गानेवाले, सुननेवाले और दूसरे लोग जो सभामें हैं, उन सबका लाभ इस स्तुतिके श्रवणसे होता है। जैसे—

"वज्रधारी, शूरवीर, पराजित न होनेवाला, हमेशा विजयी, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाला, युद्धमें किसीके आगे न झुकनेवाला इन्द्र है।"

यही इन्द्रकी स्तुति है। वारवार यह कहा गया है। वारवार सुननेसे अपने मनपर उसका परिणाम क्या होगा इसका विचार पाठक करें। इस स्तुतिको करनेवालेमें और सुननेवालेमें, मेरे अन्दर ये गुण आवें, ऐसा भाव उत्पन्न होता है, और यदि वह यत्न करे तो कुछ दिनोंके अनुष्ठानसे उसमें ये गुण आ जायेंगे और तब वह शूर बन सकेगा। स्तुतिसे यह लाभ होता है देवोंके गुण मुझमें आवें ऐसे विचार आनेका मतलब है कि उन्नति प्रारम्भ हो गई। उसके आगे उन गुणोंको अपने अन्दर लानेका यत्न करना चाहिए। ऐसा जो यत्न करेगा वह श्रेष्ठ होगा इसमें कोई शंका ही नहीं है।

## उपमा

वेदोंमें उपमायें देकर विषय समझाया जाता है, वे उपमायें ऐन्द्र-काण्डमें इस प्रकार हैं—

१ गवे शं न ( ११५ )- गायको जैसे घास सन्तोष देते है, उसी प्रकार ये स्तोत्र ( शाकिने इन्द्राय शं ) शक्तिमान् इन्द्रको सन्तोष देते हैं।

२ पुग्रावन्तः यथा पशुं ( १३६ )- जाल हाथमें लिए शिकारी जैसे पशुको खोजते है, उसी प्रकार हम ( त्वा विचक्षते ) तुझ इन्द्रको खोजते है।

३ सिन्धवः समुद्राय इव ( १३७ )- नदियां जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार ( विश्वा कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके उत्साहके आगे झुकती है।

४ गावः धेनवः वत्सं न ( १४६ ) जैसे दुधारु गाय बछडेके पास जाती हैं, उसी तरह हमारी ( इमाः गिरः त्वा अभि प्रनोनुवः ) ये स्तुतियां तुझ इन्द्रके पास जाती है।

५ सुदुघां गोदुहे इव ( १६० )- उत्तम दूध देनेवाली गायको जिस प्रकार दूध-दुहनेके समय बुलाते हैं, उस तरह ( ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि ) अपने संरक्षणके लिए उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको रोज बुलाते हैं।

६ द्यौः न ( १६६ )- जिस प्रकार द्युलोक विस्तीर्ण है, उस प्रकार ( शवः प्रथिना ) इस इन्द्रका बल विस्तृत है।

७ कपोतः गर्भधिं इव ( १८३ )- जिस प्रकार कबूतर कबूतरीके पास जाता है, उसी प्रकार ( अयं ते ) यह तेरे पास आता है।

८ सिन्धवः समुद्रं न ( १९७ )- जिस प्रकार नदियां समुद्रको प्राप्त होती है, उस प्रकार ( इन्दवः त्वा आविशन्तु ) ये सोमरस तुझे प्राप्त होते है।

९ ऋभुं ऋभुक्षणं रयिं न ( १९९ )- कारीगरको जिस प्रकार पोषण करनेवाले अन्न मिलते हैं, उसी प्रकार ( वाजी वाजिनं ददातु नः ) बलवान् इन्द्र हमें धन देवे।

१० वाजयन्तः कूपं यथा ( २१४ )- अन्न उत्पन्न करनेवाले जिस प्रकार कुंएके पानीमे खेतको सींचते हैं, उसी प्रकार ( मंहिष्ठं इन्दुभिः सिञ्च ) महान् इन्द्रको सोमरसोंसे सींचो।

११ युवजानिः महान् इव ( २२७ )- तरुण स्त्रीका पति जिस प्रकार स्त्रीके पास जाता है, उसी प्रकार ( सुतं

उप याहि ) इस सोमके पास तू आ। इसमें समान मनके आकर्षणका वर्णन है।

१२ सुतं वाताप्याय इमशा (२२८)- सोमरसमें पानी मिलानेके लिए लोग जिस प्रकार पानीके नहरोंके पास जाते हैं, उसी तरह ( दीर्घं सुतं कदा अवारुध्यात ) इस महान् यज्ञमें तुझे लानेके लिए तेरे पास कब आयें ?

१३ अदुग्धाः धेनवः न ( २३३ )- जिस तरह लोग न दुही गायके पास जाते हैं, उसी तरह ( अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दृशं त्वा अभिनोनुमः ) इस स्थावर व जंगम जगतके स्वामी और आत्मज्ञानी हम तुझे नम्र होकर कब मिलें ?

१४ स्वसरेषु धेनवः वत्सं. न ( २३६ )- गौशालामें दुधारु गाय जिस तरह अपने बछडेके पास जाती है, उसी प्रकार ( दस्मं ऋतीषहं इन्द्रं गीर्भिः अभि नवामहे ) सुन्दर और शत्रुको हरानेवाले इन्द्रके पास स्तुति करते हुए जाते हैं।

१५ सुद्रुवं नेमिं त्वष्टा इव ( २३८ )- उत्तम लकडीकी धुराको बढई जिस प्रकार उत्तम बनाता है, उसी तरह ( पुरुहूतं गिरा आ नमे ) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रको में प्रणाम करके अनुकूल बनाता हूँ।

१६ पाशिनः धन्वा इव तान् अति आयाहि ( २४६ ) –जाल हाथोंमें धारण करनेवाले शिकारी जिस तरह रेगिस्तानको पार करके जाते हैं, उस प्रकार तू दुष्टोंको पार करके आ।

१७ पाशिनः न, मा त्वा नियेमुः, एहि ( २४६ )- जाल लिए हुए शिकारी जिस प्रकार पक्षियोंको पकडते हैं, उस प्रकार तुझे बीचमें कोई भी न पकडे, तू हमारे पास आ।

१८ वाजयन्तः रथाः इव ( २५१ )- अन्न लेकर जानेवाले रथके समान ( मधुमत्तमाः गिरः त्वा उदीरते ) मधुर स्तोत्र तेरे लिए बोले जाते हैं, वे तुझतक पहुंचते हैं।

१९ यथा गौरः ( मृगः ) तृष्यन् अपाकृतं इरिणं अवैति ( २५२ )- जिस प्रकार प्यासा हिरण पानीसे भरे हुए तालावके पास जाता है, उसी प्रकार तू ( नः तूयं आगहि ) हमारे पास जल्दी आ।

२० भगं न ( २५३ )- भाग्यवान्के समान ( यशसं वसुविदं त्वा पराचरामि ) यशस्वी, धनवान् तेरी हम आराधना करते हैं।

२१ यथा पुत्रेभ्यः पिता ( २५९ )- जैसे पुत्रोंको पिता शिक्षा देता है, वैसे ही ( नः शिक्ष ) तू हमें भी शिक्षा दे।

२२ आपः न ( २६१ )- जैसे पानी सोममें मिलाया जाता है, वैसे ही हम तुझे प्राप्त करते हैं।

२३ सूर्यं श्रायन्तः इव ( २६७ ) जिस प्रकार किरणें सूर्यका सहारा लेती हैं, उसी प्रकार ( विश्वेत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब विश्व इन्द्रका आश्रय लेता है।

२४ भागं न ( २६७ )- पिताके धनके भागको जिस तरह पुत्र पानेकी इच्छा करता है, उसी तरह ( प्रति दीधिमः ) हम अपने पिताके धनमेंसे हिस्सा मिले ऐसा चाहते हैं।

२५ निधया बद्धान् इव ( ३१९ )- बन्धनमें पडे हुएको जैसे मुक्त किया जाता है, उसी तरह ( अस्मान् मुमुग्धि ) हमें मुक्त कर।

२६ चक्रियौ अक्षेण इव ( ३३९ )- जैसे चक्र धुरिके आधारपर रहते हैं, उसी तरह ( पृथिवीं उत द्यां विष्वक् तस्तंभ ) पृथिवी और द्यु ये दोनों ही लोकोंको वह आधार देता है।

२७ वंशं इव त्वा उद्येमिरे ( ३४२ )- बांस जैसे उपर उठाते हैं, उस तरह तुझे उन्नत करते हैं। इन्द्रकी स्तुति गाकर इन्द्रके यशको बढाते हैं।

२८ सूर्यः रश्मिभिः रजः न (३४७)- जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है। उस प्रकार ( इन्द्रियं त्वा आ पृणक्तु ) तेरी इन्द्रियकी शक्ति तुझे भर दे।

२९ रथीः इव ( ३४९ )- रथमें बैठनेवाले वीर जैसे अपने इच्छित स्थानपर पहुंच जाते हैं, उसी प्रकार हमारी ( गिरः ) स्तुतियां तुझे पहुंचती हैं।

३० वत्सं धेनवः गावः इव ( ३४९ )- बछडेके पास जैसे दुधारु गाय जाती है, उस तरह ( त्वा अभि अनूषत ) तेरे पास हमारी स्तुति पहुंचती है।

३१ रथं यथा ( ३५४ )- रथको जैसे हम चलाकर अपने इच्छित स्थानको ले जाते हैं, उसी तरह ( इन्द्रं आ वर्तयामसि ) इन्द्रको हम यज्ञमें लाते हैं।

३२ अंहः न ( ३६५ )- हम पापसे जैसे बचते हैं, उसी तरह ( द्विषः तराति ) शत्रुओंसे भी अपना बचाव करते हैं।

३३ क्षोणीः इव ( ३७३ )- पृथ्वी जैसे सबको आधार देती है, ( नः वचः प्रति हर्य ) उसी तरह हमारी स्तुति स्वीकार कर।

३४ यथा जनयः मर्यं पतिं न परिष्वजन्तः (३७५)- जैसे स्त्रियां अपने पतिका आलिंगन करती हैं, उस तरह

( ऊतये इन्द्रं स्वर्-युवः मतयः अच्छा अनूषत ) अपने संरक्षणके लिए इन्द्रको आत्मज्ञानयुक्त अपनी स्तुतिसे प्राप्त होते हैं।

३५ उषा इव ( ३७९ )– उषा जिस प्रकार प्रकाशसे विश्वको भर देती है, उस प्रकार तू ( उभे रोदसी आ पप्राथ ) पृथ्वी और द्युलोकको अपने तेजसे भर देता है।

३६ गिरिः न ( ३९३ )– पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः दिवस्पतिः ) सबसे महान् तू द्युलोकका स्वामी है।

३७ उदा ग्मन्तः उद्भिः इव ( ४०६ )– पानी लेकर जानेवाले मित्र जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी तरह हम ( त्वा उप ससृग्महे ) तेरे पास आते हैं।

३८ यवसे रणा गावः न ( ४२२ )– जिस प्रकार घासको सुन्दर गायें प्राप्त करती हैं, उसी तरह ( ते सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए हम तेरे पास आते हैं।

३९ पुत्रासः वाज-सातये पितरं न ( ४५९ )– पुत्र अन्न प्राप्तिके लिए जैसे पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हम तेरे पास आते हैं।

४० महिषं वीरं वाज–सातये ( ४५९ )– जिस प्रकार महान् वीरको युद्धमें बुलाते हैं, उसी तरह तुझे अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं।

४१ सूरः सयुग्भिः न ( ४६३ )- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे चमकता है, उसी प्रकार सोमरस ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) अपने तेजसे चमकता है।

४२ नृतः ! नर्यं प्रथमं पूर्व्यं तव तत् अपः दिवि प्रवाच्यं ( ४६६ )– हे इन्द्र ! मनुष्योंका हित करनेवाले तेरे वे अपूर्व कर्म द्युलोकमें प्रशंसनीय हो गए हैं।

४३ देवस्य असुः सहसा रिणन् ( ४६६ )– राक्षसोंके प्राण तू नष्ट करता है। ( देवः= राक्षस )

४४ विश्वं अ–देवं सहसा अभिभुवः ( ४६६ )– सभी असुरोंको तूने अपने सामर्थ्यसे पराजित किया।

## सुभाषित

१ सत्वने सचा गाय ( ११५ )– सामर्थ्यशाली इन्द्रकी एक साथ स्तुति करो।

२ शाकिने शं ( ११५ )– शक्तिमान्‌को सुख प्राप्त होता है।

३ हे शतक्रतो ! ते द्युम्नितमः ( ११६ )–हे सैकडों कर्म करनेवाले वीर ! तेरा आनन्द निश्चयसे तेजको बढानेवाला है।

४ त्वं सहसः वलात् ओजसः अधिजातः ( १२० ) – तू शत्रुको हरानेवाले बल और श्रेष्ठ सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ है।

५ भूमिं व्यवर्तयत् ( १२१ )- उसने भूमिको घुमाते हुए स्थापित किया है।

६ त्वं एक इत् वस्व ( १२२ )– तू अकेला ही धनोंका स्वामी है।

७ हे अनाभयिन् ! ते ररिम ( १२४ ) - हे निर्भयवीर ! तुझे हम आनन्दित करते हैं।

८ नर्यापसं वृषभं अस्तारं ( १२५ )– सार्वजनिक हितके काम करनेवाले, बलवान् और शत्रुपर शस्त्रको फेंकनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

९ हे इन्द्र ! तत् सर्वं ते वशे ( १२६ )- इन्द्र ! ये सब तेरे आधीन हैं।

१० युवा सखा सुनीती आनयत् ( १२७ )– जो तरुण मित्र है, वह सुनीतिसे सुख लाता है।

११ आदिशः सूरः अक्तुषु नः मा अभ्यायमत ( १२८ )– चारों ओरसे शस्त्रोंकी मार करनेवाला शत्रु हमारे ऊपर रात्रीके समय चढाई न करे।

१२ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )– यदि वैसा शत्रु आवे भी तो हम तेरी सहायतासे उसे दूर करें।

१३ ऊतये सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं आभर ( १२९ ) हमारे संरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करानेवाले, हमेशा शत्रुको हरानेवाले, श्रेष्ठ धनसे हमें भर दे।

१४ वयं महाधने अर्भे वृत्रेषु युजं वज्रिणं इन्द्रं हवामहे ( १३० )- हम बडे तथा छोटे युद्धोंमें और घेरने-वाले शत्रुके साथ होनेवाले छोटे युद्धमें सहायताके लिए मित्रके समान इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं।

१५ सहस्रबाह्वे पौंस्यं आददिष्ट ( १३१ )- हजारों भुजाओंवाले राक्षसोंके साथ होनेवाले युद्धमें इन्द्रका बल प्रकट होता है।

१६ विश्वा द्विषः अपभिन्धि ( १३४ )- सब शत्रुओंका नाश कर।

१७ बाधः मृधः परिजहि ( १३४ )– बाधा करने-वाले शत्रुओंको नष्ट कर।

१८ स्पार्हं तत् वसु आभर ( १३४ )– सुन्दर धन हमें भरपूर दे।

१९ यामं चित्रं न्यृंजते ( १३५ )- युद्धमें अद्भुत शूरवीरता वह दिखाता है।

२० विश्वाः कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त ( १३७ )- सब प्रजायें इसके क्रोधके आगे झुकती हैं।

२१ देवानां अवः इत् महत् ( १३८ ) - देवोंसे प्राप्त होनेवाले संरक्षण निश्चयसे महान् हैं।

२२ तत् अस्माकं ऊतये वयं आवृणीमहे ( १३८ )- उन संरक्षणोंको हम अपनी रक्षाके लिए स्वीकार करते हैं।

२३ नः प्रजावत् सौभगं सावीः ( १४१ ) हमें पुत्र पौत्रोंको प्राप्त करानेवाले सौभाग्य दे।

२४ दुष्वप्न्यं परासुव ( १४१ )- दुःखकारक स्वप्न दूर हों।

२५ सः वृषभः युवा तुवि ग्रीवः अनानतः क ? ( १४२ ) - वह बलवान्, तरुण, मजबूत गर्दनवाला, और किसीके आगे न झुकनेवाला इन्द्र कहां है ?

२६ गिरिणां उपह्वरे च नदीनां संगमे धिया विप्रः अजायत (१४३)- पर्वतोंकी उपत्यका और नदियोंके संगम पर बैठकर बुद्धि स्थिर करके मनुष्य ज्ञानी होता है।

२७ चर्षणीनां सम्राजं नृषाहं मंहिष्ठं नरं इन्द्रं प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंमें सम्राट्के समान, शत्रुका पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ नेता इन्द्रकी स्तुति करो।

२८ चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम ( १४७)- चन्द्रके मण्डलमें सूर्यका प्रकाश चमकता है।

२९ अहं पितुः ऋतस्य मेधां परिजग्रह सूर्यः इव अजनि ( १५२ )- मैंने पालन करनेवाली सत्यकी बुद्धि स्वीकार करली है, इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ।

३० नः रेवतीः तुवि-वाजाः सन्तु ( १५३ )- हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली होवें।

३१ विश्वासां सुक्षितीनां चेततुः ( १५४ )- सब उत्तम मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा मिले।

३२ विश्वा-साहं शतक्रतुं चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्र गायत ( १५५ )- सब शत्रुओंके नाश करनेवाले, सैकडों कार्य करनेवाले, सब प्रजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी स्तुति करो।

३३ ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि ( १६० ) -अपने संरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रको रोज हम बुलाते हैं।

३४ त्वं ईशिषे ( १६२ )- तू सभीका स्वामी है।

३५ योगे योगे वाजे वाजे ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे ( १६३ )- प्रत्येक कार्यमें अपनी रक्षाके लिए इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं।

३६ इन्द्रः महान् परः च ( १६६ ) - इन्द्र महान् और श्रेष्ठ है।

३७ वज्रिणे महत्वं अस्तु ( १६६ )-वज्रधारी इन्द्रको यश प्राप्त हो।

३८ द्यौः न शवः प्रथिना ( १६६ )- द्युलोकके समान उसका यश विशाल है।

३९ द्युमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन आ संगृभाय ( १६७ )- तेजस्वी, विलक्षण और ग्रहण करने योग्य धन हमें दायें हाथसे दे।

४० सत्रासाहं ऊतये आच्यावयामसि ( १७० )- सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए अपने पास बुलाते हैं।

४१ हे शतक्रतो ! भद्रं भद्रं इषं ऊर्जं नः आ भर ( १७३ )- हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! हमें कल्याणकारक अन्न और बल भरपूर दे।

४२ नः मृळयासि (१७३)- हमें तू ही सुखी करता है।

४३ न कि इनीमसि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक कार्य नहीं करते।

४४ न कि आयोपयामसि ( १७६ )- हम कोई भी विरुद्ध कार्य नहीं करते।

४५ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )- वेदमंत्रोंमें जो कहा है, वही हम करते हैं।

४६ हे आथर्वण ! दोषः अगात् देवं सवितारं स्तुहि ( १७७ )- हे अथर्वा ! यदि कोई दोष हो गया है तो सवितादेवकी स्तुति कर।

४७ अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नव नवतीः वृत्राणि जघान ( १७९ )- जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे ८१० वृत्रोंको मारा।

४८ ओजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )- तू अपने सामर्थ्यसे शत्रुको हराता है।

४९ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि (१८१) - महान् संरक्षणके साधनोंके साथ हमारे पास आ।

५० वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आवातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् ( १८४ )- यह वायु शान्ति और सुखकारक औषधि हमारे पास लावे और हमारी आयु बढावे।

५१ पावका वाजिनीवती धिया वसुः सरस्वती ( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न देनेवाली और बुद्धिसे धन देनेवाली यह विद्याकी देवी है।

५२ सः नः वसूनि आभरात् ( १९० )- वह हमें भरपूर धन दे।

५३ द्युक्षं दुराधर्षं महि अवः अस्तु ( १९२ )- तेजस्वी और शत्रु जिस पर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे महान् संरक्षण हमें मिलें।

५४ हे अद्रिवः ! राधः कृणुष्व ( १९४ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! हमें धन दे।

५५ ब्रह्म-द्विषः अवजहि ( १९४ )- ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको मार।

५६ त्वादातं इत् यशः ( १९५ )- तेरी सहायतासे ही यश मिलता है।

५७ नः वृतः देवः इन्द्रः शूरः ( १९६ )- हमारे द्वारा वरण किया हुआ इन्द्र देव शूर है।

५८ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा कोई भी महान् नहीं है।

५९ ऋभुक्षणं रयिं ददातु (१९९)- कारीगरोंका रक्षण करनेवाला धन हमें दे।

६० नः इषे ऋभुं ददातु ( १९९ )- हमें अन्न प्राप्त हो इसलिए कारीगरी दे।

६१ वाजी वाजिनं ददातु ( १९९ )- बलवान् इन्द्र हमें बल देवे।

६२ स्थिरः विचर्षणिः महत् भयं अभीपत्, अचुच्युवत् (२००)-जो युद्धोंमें स्थिर रहता है तथा महाज्ञानी है, वह महान् भयको दूर करता है।

६३ हे वृत्रहन् ! त्वत् उत्तरं न किः अस्ति (२०३) - हे वृत्रनाशक इन्द्र। तुझसे महान् कोई नहीं है।

६४ जनानां तरणिं, त्रदं, समानं प्रशंसिषम् ( २०४ )- सब लोगोंको तारनेवाले, शत्रुको कष्ट देनेवाले, सबको समान सुख देनेवाले, इन्द्रकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

६५ यं अद्रुहः पान्ति, स मर्त्यः सुनीथः ( २०६ ) - जिसका संरक्षण द्रोह न करनेवाले देव करते हैं, वह मनुष्य उत्तम और नीतिवाला होता है।

६६ विश्वाः स्पृधः अजयः ( २११ )- सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंपर जय प्राप्त हो।

६७ अपां फेनेन नमुचेः शिरः उदवर्तयः ( २११ ) - इन्द्रने पानीके झागसे नमुचिके सिरको फोडा।

६८ जातः वृत्रहा बुन्दं आददे, के के उग्राः शृण्विरे, मातरं वि पृच्छात् ( २१६ )- उत्पन्न होते ही इन्द्रने बाण हाथमें लिया और अपनी मातासे पूछा कि कौन कौनसे वीर सुने जाते हैं।

६९ ऊतये सुप्रकरस्नं, साधः कृण्वन्तं हवामहे ( २१७ )- हमारे संरक्षणके लिए जो बाहुओंको फैलाता है, और जो संरक्षणके साधनोंको तैय्यार करता है, उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

७० तव इत् सख्यं अस्तृतं ( २२९ )- तेरी ही मित्रता न टूटनेवाली है।

७१ नः पृक्षु तनूषु नृम्णं आधेहि ( २३१ )- हम लोगोंमें नेतृत्त्व करनेवाले बलको बढा।

७२ सत्राजित् पौंस्यं आधेहि ( २३१ )- सब शत्रुओंको एकसाथ जीतनेवाला सामर्थ्य हमें दे।

७३ वीरयुः असि ( २३२ )- शत्रुके साथ लडनेवाला तू है।

७४ शूरः उत स्थिरः असि ( २३२ )- तू शूर वीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है।

७५ ते मनः राध्यं ( २३२ )- तेरा मन आराधनाके योग्य है।

७६ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं त्वा अभिनोनुम- ( २३३ ) इस स्थावर और जंगम जगत्के स्वामी और आत्मज्ञानी तुझे हम नमस्कार करते हैं।

७७ सत्पतिं त्वा नरः वृत्रेषु हवन्ते ( २३४ )- सज्जनोंके उत्तम पालन करनेवाले तुझे युद्धमें सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

७८ काष्ठासु त्वा हवन्ते- ( २३४ ) छोटे युद्धोंमें भी तुझे बुलाते हैं।

७९ पुरुवसुः मघवा सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- बहुत धनवान् इन्द्र हजारों प्रकारसे धन देता है।

८० ऋतीषहं गीर्भिः अभि नवामहे ( २३६ )- बाधक शत्रुको हरानेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं।

८१ विदद्वसुं इन्द्रं ऊतये हुवे ( २३७ )- धनवान् इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं।

८२ सधमादे आपिः नः वृधे बोधि ( २३९ )- एक जगह बैठकर जहां कर्म किए जाते हैं, वहां इन्द्र हमारा मित्र और उन्नति करनेवाला हो।

८३ ते धियः अवन्तु ( २३९ )- तेरी बुद्धियां हमारा संरक्षण करें।

८४ सचा स्तोत, मुहुः शंसत ( २४२ )- एक स्थान पर बैठकर स्तुति करो, बारबार स्तुति करो।

८५ यः सदावृधं विश्वगूर्त्तिं, ओजसा अधृष्टं, धृष्णुं इन्द्रं चकार, तं नकिः कर्मणा नशत् ( २४३ )- जो सदा बढानेवाले, सबके द्वारा स्तुति किए जानेवाले, सामर्थ्यके कारण जो किसीसे दबाया नहीं जा सकता, जो शत्रुओंको मारता है, उस इन्द्रकी जो उपासना करता है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता।

८६ संधिं सन्धाता ( २४४ )- टूटी हुई सन्धियोंको जोडनेवाला।

८७ विन्हुतं पुनः निष्कर्त्ता ( २४४ )- कटे हुए भागोंको फिर ठीक करता है।

८८ त्वदन्यः मर्डिता नाऽस्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय दूसरा कोई भी सुख देनेवाला नहीं है।

८९ अप्रतीनि पुरुवृत्राणि अनुत्तः चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि ( २४८ )- बहुत बलशाली बहुतसे वृत्रोंको स्वयं ही, केवल सब लोगोंके हित करनेके लिए अकेलाही तू मारता है।

९० हे शचीपते शूर इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- हे सामर्थ्यवान् इन्द्र ! सब संरक्षणके साधनोंके साथ तू सामर्थ्यवाला है।

९१ भगं यशसं वसुविदं त्वा परिचरामि ( २५३ )- ऐश्वर्यवान्, यशस्वी और धनवान् तेरी आराधना हम करते हैं।

९२ याः भुजः असुरेभ्यः आ भरः अस्य वर्धय ( २५४ )- जो धन तू असुरोंसे छीनकर लाया, उनसे हमें बढा।

९३ नः क्रतुं आ भर ( २५९ )- हमें अच्छी बुद्धि दे।

९४ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष ( २५९ )- जैसे पिता अपने लडकोंको शिक्षा देता है, उसी प्रकार तू हमें शिक्षा दे।

९५ जीवाः ज्योतिः अशीमहि ( २५९ )- हम जीवित रहकर तेजस्विता प्राप्त करें।

९६ नः मा परावृणक् ( २६० )- हमें दूर मतकर।

९७ त्वं नः ऊती ( २६० )- तू हमारा संरक्षक है।

९८ त्वं न आप्यः ( २६० )- तू हमारा भाई है।

९९ नः सधमाद्ये भव ( २६० )- तू हमारे साथ बैठ।

१०० सत्रा विश्वानि पौंस्या आ भर ( २६२ )- एकसाथ सब बल हमें दे।

१०१- पंच क्षितीनां द्युम्नं आ भर ( २६२ )- पांच जनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें दें।

१०२ परावति अर्वावति वृषा श्रुतः ( २६३ )- दूर और पासके देशोंमें तू ही शक्तिके लिए प्रसिद्ध है।

१०३ शक्र ! परावति असि, अर्वावति असि ( २६४ )- हे इन्द्र ! तू दूर है और पास भी है।

१०४ त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तये छर्दिः शरण मंहि ( २६६ )- तीन मंजिलोंवाला और तीनों ऋतुओंमें सुखकारक, हमारे कल्याणके लिए उत्तम आश्रय देनेवाला घर दे।

१०५ विश्वा इन्द्रस्य भक्षत ( २६७ )- सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है।

१०६ जातः जनिमानि ओजसा करोति ( २६७ )- उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थोंको अपनी शक्तिसे बनाता है।

१०७ अदेवः मर्त्यः सीं न आपः ( २६८ )- ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस धनको प्राप्त नहीं कर सकता।

१०८ हे इन्द्रः ! अवमं मध्यमं पुष्यासि, परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि ( २७० )- हे इन्द्र ! कनिष्ठ और मध्यम धन तेरे ही हैं, श्रेष्ठ धनका तू अकेला ही स्वामी है।

१०९ हे युध्म, खजकृत्, पुरन्दर ! अलर्षि (२७१) - हे योद्धा, संग्राम करनेवाले और शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाले वीर इन्द्र ! तू यहां आ।

११० यः चर्षणीनां राजा, रथेभिः अध्रिगुः याता, विश्वासां पृतनानां तरुता, वृत्र-हा ज्येष्ठं गृणे (२७३) - जो सब मनुष्योंका राजा, रथसे शीघ्र ही आगे जानेवाला, सब शत्रुसेनाका नाश करनेवाला, और वृत्रको मारनेवाला है, उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं।

१११ यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि ( २७४ ) - जहां जहांसे हम डरते हैं, वहांसे हमें निर्भय कर।

११२ नः ऊतये द्विषः विजहि, मृधः विजहि (२७४) - हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओंको दूर कर और द्वेष करनेवालोंका नाश कर।

११३ शग्धि ( २७४ )- वह सामर्थ्यवान् है।

११४ शश्वतीनां पुरां भेत्ता, मुनीनां सखा इन्द्रः ( २७५ )- असुरोंकी बहुतसी नगरियोंका नाश करनेवाला और मुनियोंका मित्र इन्द्र है।

१९५ महः सतः ते महिमा पनिष्टम ( २७६ )- तेरे जैसे महा पुरुषकी महिमाका ही वर्णन किया जाता है।

११६ मह्ना महान् असि ( २७६ )- तू अपने यशसे महान् है।

११७ यः अश्वी रथी सुरूपः गोमान्, इवात्रमाजा वयसा, सदा सचते, चन्द्रैः सभां उपयाति ( २७७ ) जो घोडे रखता है, रथमें बैठता है, उत्तम रूपवाला है, गौयोंको पालता है, धन और अन्नसे युक्त है, ऐसा वह इन्द्र आभूषणोंको पहनकर सभामें जाकर बैठता है।

११८ यत् द्यावः शतं स्युः, उत भूमी शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः, अनुजातं त्वा न अष्ट ( २७८ )- सैकडों द्युलोक, सैंकडों पृथिवी, हजारों सूर्य अथवा जो कुछ भी पीछे उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, वे सब भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते।

११९ वसो इन्द्र ! तं त्वा कः मर्तः आदधर्षति ( २८० )- हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उस तुझे कौनसा मनुष्य भय दिखा सकता है ?

१२० ते श्रद्धा वाजी ( २८० )- तुझ पर श्रद्धा रखनेवाला बलवान् होता है।

१२१ सु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम मित्र ! उत्तम मित्रोंके साथ आ।

१२२ अ-जरं, प्र-हेतारं अ-प्रहितं आशुं जेतारं हेतारं रथीतमं अतूर्तं ऊतये इत ( २८३ )- जरारहित, शत्रुपर प्रहार करनेवाले, कोई भी जिसका विरोध नहीं कर सकता, शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, प्रेरणा करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, जिसे कोई भी मार नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको यहां ला।

१२३ यः सत्राहा विश्वचर्षणिः, तं इन्द्रं वयं हूमहे ( २८६ )- शत्रुओंको एकसाथ मारनेवाले, और सब मनुष्योंका हित करनेवाले उस इन्द्रको हम सहायार्थ बुलाते है।

१२४ हे सहस्रमन्यो ! तुविनृम्ण सत्पते ! समत्सु नः वृधे भव ( २८६ )- हे हजारों उत्साहसे कार्य करनेवाले ! बहुत धनवान्, और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! युद्धमें हमारा यश बढे ऐसा कर।

१२५ शचीभिः दिवानक्तं दिशस्यतं ( २८७ )- तू अपनी शक्तियोंसे हमें रातदिन धन दे।

१२६ वां रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- तेरा दान कभी भी कम न हो !

१२७ असत् रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ ) हमारा दान भी कभी कम न हो।

*

१२८ विव्रतानां धर्त्तारं वरुणं वपा गिरा वन्देत ( २८८ )- विशेष अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले वरुणकी विशेष संरक्षणके लिए स्तुति करके वन्दना करते है।

१२९ गाः पाहि ( २८९ )- गायोंका रक्षण कर।

१३० इन्द्रः हर्योः संमिश्लः वज्री हिरण्ययः (२८९) - इन्द्र अपने रथमें घोडे जोडता है, वज्र धारण करता है, और सुनहरे रथमें बैठता है।

१३१ हे अद्रिवः ! महे शुल्काय त्वा न परादीयसे ( २९१ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! यदि बहुत धन प्राप्त हो तो भी मै तुझे दूसरेको देनेको तैय्यार नहीं।

१३२ हे वज्रिवः ! न अयुताय, न सहस्राय, न शताय ( २९१ )- दस हजार, एक हजार अथवा सौ मिले तो भी मै तुझे छोडनेवाला नहीं।

१३३ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान् ( २९२ )- हे इन्द्र मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है।

१३४ मे अभुंजतः भ्रातुः वस्यान् ( २९२ )- भोग न भोगनेवाले मेरे भाईसे भी तू अधिक धनवान् है।

१३५ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माता तेरे समान है।

१३६ वसुत्वनाय राधसे छदयथः ( २९२ )- धन और अन्नके लिए महान् बना।

१३७ बृहन्त' नीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते ( २९६ ) - बहुत बडे बडे पर्वत भी तुझे अपने कर्तव्यसे डिगा नहीं सकते।

१३८ यत् वसु शिक्षसि, तत् न किः आ मिनाति ( २९६ )- तू जो धन देनेकी इच्छा करता है, उस तेरे दानको कोई भी रोक नहीं सकता।

१३९ यः अयं शिप्री ओजसा पुरः विभिनत्ति ( २९७ )- यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुके नगरोंको तोडता है।

१४० यत् शासः सदसः परि अव्रतं च्यावय ( २९८ )- तू शासन करता है, इसलिए हमारे स्थानसे दुराचारियोंको दूर कर।

१४१ कदाचन स्तरीः नः असि ( ३०७ )- तू कभी भी वांझ गायके समान नहीं होता।

१४२ देवस्य ते दानं भूयः उपोपेत् पृच्यते ( ३०० ) तेरे जैसे देवके दान बहुत होकर हमारे पास आकर बढते है।

१४३ शची-वसु ( ३०४ )- यह इन्द्र अपनी शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाला है।

१४४ दाशुषे रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलको रत्न व धन दे ।

१४५ अहं सदा याचन् अचुक्रुधं ( ३०७ )- क्या हमेशा मांगते रहनेके कारण तू मुझसे नाराज हो गया है ?

१४६ कः ईशानं न याचिषत् ( ३०७ )- अपने स्वामीसे भला कौन नहीं मांगता ।

१४७ वृषणा हरी उपयुयुजे, वृत्रहा आ जगाम ( ३०८ )- बलवान् घोडोंको रथमें जोड लिया है, और वृत्रको मारनेवाला आ गया है ।

१४८ ज्यायः इन्द्रः ईषतः तत् कनीयसः अभि आ भर ( ३०९ )- महान् इन्द्र इच्छा करनेवाले छोटेको भी वह धन भरपूर दे ।

१४९ पुरु-वसुः भरे भरे हव्यः ( ३०९ )- बहुत धनवान् वह इन्द्र प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए बुलाने योग्य है ।

१५० यत् त्वं यावतः ईशिषे एतावत् अहं ईशीय ( ३१० )- तू जितने धनोंका स्वामी है, उतने मुझे मिलें, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ ।

१५१ पापत्वाय न रंसिषं ( ३१० )- पापी होनेको मैं तैय्यार नहीं ।

१५२ त्वं प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभ्यासि ( ३११ ) - तू युद्धमें सभी शत्रुओंका नाश करता है ।

१५३ त्वं अशस्तिहा ( ३११ )- तू दुष्टोंका नाश करता है ।

१५४ जनिता ( ३११ )- शत्रुके लिए आपत्तियोंको पैदा करनेवाला है ।

१५५ तरुष्यतः वृत्रतूः असि ( ३११ )- तू विघ्न करनेवालोंको नष्ट करता है ।

१५६ विश्वं अति ववक्षिथ ( ३१२ )- तू सब विश्वमें व्याप्त है ।

१५७ नः अविता वृधे च असः ( ३१४ )- तू हमारा रक्षक और हमें बढानेवाला है ।

१५८ वसूनि ददः- ( ३१४ )- धन दे ।

१५९ यत् दानवान् अवहन् ( ३१५ )- जब तूने दानवोंको मारा ।

१६० नः सुवित्तं आ भर (३१६)- हमें उत्तम धन दे ।

१६१ त्वोताः तना त्मना सह्याम ( ३१६ )- तुझसे संरक्षित हुए हम स्वयं ही धन कमायें ।

१६२ हे वसूनां वसुपते ! वसूयवः ते दक्षिणं हस्तं जगृह्म ( ३१७ )- हे धनोंके स्वामी ! धनकी इच्छा करने वाले हम तुझे दांये हाथसे पकडते हैं ।

१६३ हे शूर ! चित्रं वृषणं रयिं दाः ( ३१६ )- हे शूर ! अनेक प्रकारके बल बढानेवाले धन दे ।

१६४ यत् पार्याः धियः युनजते नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते ( ३१८ )- जब संकटोंसे पार होनेके लिए बुद्धि-पूर्वक काम किए जाते हैं, तब युद्धके समय लोग इन्द्रको मददके लिए बुलाते हैं ।

१६५ त्वं शूरः नृषाता शवसः चकानः ( ३१५ )- तू शूर, मनुष्योंको धन देनेवाला, बलसे तेजस्वी है ।

१६६ निधया बद्धान् अस्मान् मुमुग्धि ( ३१८ )- पाशोंसे बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

१६७ महे वीराय तवसे तुराय विरप्शिने वज्रिणे स्थविराय अस्मै अपूर्व्या वचांसि तक्षुः ( ३२२ )- महान्, वीर, शक्तिमान्, और शीघ्र कार्य करनेवाले, वज्र-धारी, स्थिर ऐसे इस इन्द्रके लिए अद्‌भुत स्तुति करो ।

१६८ द्रप्सः दशभिः सहस्रैः इयानः कृष्णः अंशुमती अवातिष्ठत्, शच्या धमन्तं तं इन्द्रः आवत्, अथ नृमणाः स्नीहितिं अधद्राः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण असुर दस हजार सैनिकोंके साथ अंशुमती नदी पर आया पर अपने बलसे जगको भय देने-वाले उस असुर पर इन्द्रने आक्रमण किया और उसकी हिंसक सेनाको भी मार डाला ।

१६९ इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि ( ३२४ )- सब शत्रुसेनाओं पर तू जय प्राप्त करता है ।

१७० देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ( ३२५ )- देवके यशको प्रकट करनेवाले काव्यको देख ।

१७१ अद्य ममार स ह्यः समान ( ३२५ ) जो आज मर गया, वही कल पहलेके समान कार्य करने लगता है ।

१७२ त्वं तत् जायमानः अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः शत्रुः अभवः ( ३२६ )- तू उत्पन्न होते ही शत्रुओंसे रहित उन सात असुरोंका शत्रु हुआ ।

१७३ गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दः ( ३२६ )- तू ही अंधकारमें पडे हुए द्यावा पृथिवीयोंको प्रकाशमें लाया ।

१७४ विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः रणं धाः ( ३२६ )- वैभवशाली भुवनोंको और अधिक सुन्दर बनाया ।

१७५ दुवस्युः अर्यः तरुषीः ( ३२७ )- प्रशंसनीय और शत्रुनाशक तू हमें विजयी करता है।

१७६ वृत्रहणं शुष्मं पुरु-धस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुं वज्रिणं भृष्टिमन्तं त्वा गृणीषे ( ३२७ )- वृत्रको मारनेवाले तेजस्वी, अनेक शत्रुओंका नाश करनेवाले, बलवान् युद्धमें स्थिर रहनेवाले, वज्रधारी, शत्रुनाशक ऐसे तुझ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।

१७७ वाजसातौ अस्मिन् भरे शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम ( ३२९ )- धन प्राप्त होनेवाले इस युद्धमें उत्साही धनवान् इन्द्रको अपने मददके लिऐ बुलाते हैं।

१७८ शृण्वन्तं उग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानि संजितं ऊतये हुवेम ( ३२९ )- प्रार्थना सुननेवाले, उग्रवीर, युद्धमें वृत्रका नाश करनेवाले, धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

१७९ वाजिनं देवजूतं सहोवानं रथानां तरुतारं अरिष्टनेमिं पृतनाज्यं, आशुं तार्क्ष्यं स्वस्तये हुवेम ( ३३२ )- बलवान्, देवोंसे सेवित, सामर्थ्यवान, रथोंको संग्रामोंमें पार करनेवाले, तेज अस्त्र पासमें रखनेवाले, शत्रु सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, शीघ्रगामी सुपर्णको अपने कल्याणके लिए हम बुलाते हैं।

१८० त्रातारं अवितारं, हवे हवे सुहवं, शूरं शक्रं इन्द्रं हुवे ( ३३३ )- दुःखोंसे पार करनेवाले, संरक्षण करनेवाले प्रत्येक युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य इस शूर और बलवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं।

१८१ वज्र-दक्षिणं, वि व्रतानां हरीणां, रथ्यं इन्द्रं यजामहे ( ३३४ )- दायें हाथमें वज्रको धारण करनेवाले, तेज दौडनेवाले घोडोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रको हम यज्ञमें बुलाते हैं।

१८२ श्मश्रुभिः दोधुवत्, ऊर्ध्वया वि भुवत् ( ३३४ )- वह अपनी दाढी और मूंछोंको हिलाते हुए सबसे श्रेष्ठ हुआ है।

१८३ सेनाभिः भयमानः राधसा वि ( ३३४ )- अपनी सेनासे शत्रुको भय दिखलाकर धन लेता है।

१८४ सत्रासाहं दाधृषिं तुम्रं महां अपारं वृषभं सुवज्रं इन्द्रं ( ३३५ )- हम एकसाथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, शत्रुको भयभीत करनेवाले, शत्रुओंको भगानेवाले, महान्, अपार बलवान्, उत्तम वज्रधारी इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।

१८५ यं वृत्रं हन्ता, वाजं सनिता, सुराधाः मघवा, मघानि दाता ( ३३५ )- वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाला, अन्न देनेवाला, उत्तम धनवान् है, वह भक्तोंको धन देता है।

१८६ यः मर्तः नः वनुष्यन् अभिदाति, मन्यमानः क्षिप्रीः युधा शवसा उगणाः तुरः, त्वोताः वृष-मणाः अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमें मारनेकी इच्छा करता हुआ हम पर चढाई करता हुआ आता है, जो घमण्डी विनाशक शस्त्रोंको लेकर तेजसे सेनाके साथ चढाई करता है. उसे हम तेरे संरक्षणोंसे रक्षित होकर बलवान् मनसे युक्त होकर पराजित करें।

१८७ विश्वानि विदुषे अरं गमाय जग्मये अपश्चादघ्वने प्रति भर ( ३५२ )- सर्व ज्ञानी, ठीक समय पर पहुंचनेवाले, सबसे पहले पहुंचनेवाले इन्द्रको भरपूर सोम दे।

१८८ उग्रं वचः अपावधीः ( ३५३ )- कठोर भाषण मत करो।

१८९ तुविक्-कूर्मिं ऋतीषहं सत्पतिं त्वा इन्द्रं वर्तयामसि ( ३५४ )- बहुत पराक्रमी, शत्रूओंका पराभव करनेवाले, सज्जनोंके पालक इन्द्रको हम लाते हैं।

१९० त्यं अ-प्रहणं श्रवसः पतिं विश्वासाहं शचिष्ठं विश्ववेदसं नरं गृणीषे ( ३५७ )- उस उपकार करनेवाले बलके स्वामी, सब शत्रुओंको हरानेवाले, शक्तिमान्, सर्वज्ञ नेताकी मैं स्तुति करता हूँ।

१९१ पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितोजाः विश्वस्य कर्मणः धर्ता, पुरुष्टुतः इन्द्रः अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला, तरुण, कवि, अपरिमित सामर्थ्यवाला, सब कर्मोंको धारण करनेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र है।

१९२ हे नरः ! अर्चत, प्रार्चत, धृष्णुं अर्चन्तु ( ३६२ )- हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रका सत्कार करो, खूब सत्कार करो, शत्रूको हरानेवाले इन्द्रका सत्कार सभी करें।

१९३ पुरु-निःषिधे इन्द्राय वर्धनं उक्थं शंस्यं ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रके यश प्रकट करनेवाले स्तोत्र गावो।

१९४ विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं हुवे ( ३६४ )- सब शत्रुसेनाओंपर आक्रमण करनेवाले, शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले, सामर्थ्यके स्वामीको मैं बुलाता हूँ।

१९५ सः बृहतः दिवः ऊती द्विषः तरति ( ३६५)-

यह महान् विभ्व संरक्षणोंसे युक्त होकर सब शत्रुओंको दूर करता है।

१९६ शतक्रतो! विभ्वोः राधसः ते रातिः विभ्वी ( ३६६ )- हे सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! बहुत धनोंके तेरे दान बहुत महान् और विशाल हैं।

१९७ विश्वचर्षणे सुदत्र! नः द्युम्नं मंहय (३६६)- हे सर्व द्रष्टा, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र! हमें धन देकर महान् कर।

१९८ आमुरिं उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं ( ३७० ) - हम शत्रुको मारनेवाले, उग्रवीर, सामर्थ्यवान्, प्रतापी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

१९९ पूर्व्यः सः आ जिगीषन्तं नूतनं एकः इत् वर्तनीं अनु वावृते ( ३७२ )- वह पुराण पुरुष इन्द्र शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले नये वीरोंको अकेला ही विजयके मार्गसे लेजाता है।

२०० बृहती गिरः चर्षणीधृतं वावृधानं अमर्त्यं इन्द्रं अभ्यनूषत ( ३७४ )- हमारी बहुतसी स्तुतियां मनुष्योंका धारणपोषण करनेवाले, बढानेवाले अमर इन्द्रकी प्रशंसा करती है।

२०१ ऊतये शुन्ध्युं इन्द्रं स्वर्युवः उशतीः मतयः अच्छ अनूषत ( ३७५ )- हमारे संरक्षणके लिए पवित्र करनेवाले इन्द्रकी, आत्मशक्ति बढानेवाली, उन्नतिकी इच्छा करनेवाली, हमारी स्तुति प्रशंसा करती है।

२०२ त्यं मेषं वस्वः अर्णवं इन्द्रं गीर्भिः अभिमदत ( ३७६ )- उस शत्रुका पराभव करनेवाले धनके समुद्र इन्द्रको स्तुतिसे आनन्दित करो।

२०३ यस्य मानुषं द्यावः न विचराति ( ३७६ )- जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य द्युलोकके समान सब जगह फैले हुए है।

२०४ भुजे मंहिष्ठं विप्रं अभ्यर्चत ( ३७६ )- भोग प्राप्तिके लिए महान् ज्ञानी इन्द्रकी अराधना करो।

२०५ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० )- जिस इन्द्रने कृष्णकी गर्भवती स्त्रियोंको मारा।

२०६ वज्रदक्षिणं वृषणं अवस्यवे हुवेम ( ३८० ) दायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रको अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम बुलाते हैं।

२०७ हे वज्रिवः! ते तं वृषणं पृक्षु सासहिं लोककृत्नुं मदं गृणीमसि ( ३८३ )- हे वज्रधारी इन्द्र! तेरे उस बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सब लोगोंका हित करनेवाले आनन्दकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

२०८ यः एकः इत् विश्वा कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ )- जो अकेला ही इन्द्र सब शत्रुसेनाओंका विनाश करता है।

२०९ यः एकः इत् दाशुषे मर्ताय वसु विदयते ( २८९ )- जो अकेला ही दान देनेवाले मनुष्यको धन देता है।

२१० अप्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः ( ३८९ )- जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है।

२११ नृतमाय धृष्णवे सुस्तुषे ( ३९० ) मैं श्रेष्ठवीर और शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करता हूँ।

२१२ ओजसा त्वं वृत्रं हंसि ( ३९१ )- अपने सामर्थ्यसे तू वृत्रको मारता है।

२१३ सत्राजित् अगोह्य! विश्वतः पृथु द्विवः, पतिः, नः आगाहि ( ३९३ - हे सब शत्रुओंको जीतनेवाले, जिसे कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्र! तू सब ओरसे विशाल और द्युलोकका स्वामी है। तू हमारे पास आ।

२१४ अत्रिणं निहंसि, तं ईमहे ( ३९४ )- खाऊ शत्रुओंको तू मारता है, अतः तेरी हम प्रार्थना करते हैं।

२१५ समहसः आदित्यासः नः तुचे तुनाय जीवसे द्राघीयः आयुः सुकृणोतन ( ३९५ )- महान् आदित्य हमारे पुत्रपौत्रोंको जीनेके लिए दीर्घायु करें।

२१६ वज्रहस्त! निर्ऋतीनां परिव्रजं वेत्थ ( ३९६ ) - हे वज्रधारी इन्द्र! विघ्न दूर करनेके मार्ग तू जानता है।

२१७ अहः अहः शुन्ध्युः परिपदां ( ३९६ )- प्रतिदिन स्वच्छता रखनेवाला रोगोंको दूर करता है।

२१८ हे आदित्यासः! अमीवां, स्रधं, दुर्मतिं अंहसः नः अप युयोतन ( ३९७ )- हे आदित्यो! रोग, शत्रु, दुष्टबुद्धि, पाप इन सबको हमसे दूर करो।

२१९ त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, अ-नाः, अनापिः ( ३९९ )- हे इन्द्र! तू जन्मसे ही शत्रुरहित है, तेरा नेता कोई नहीं है, और भाई भी कोई नहीं है।

२२० युधा इत् आपित्वं इच्छसे ( ३९९ )- तू युद्धसे ही कोई भाई मिले ऐसी इच्छा करता है।

२२१ यः पुरा वस्यः नः प्र आनिनाय तं इन्द्रं ऊतये स्तुवे ( ४०० )- जिसने हमें पहले भी धन दिया, उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।

२२२ दृढा चित् यमयिष्णवः मा अवस्थात (४०१) – बलवान् और शत्रुको झुकानेवाले वीरो ! हमसे दूर मत रहो।

२२३ श्वसन्तं त्वया युजा प्रति ब्रुवीमहि ( ४०३ ) – क्रूर कर्म करनेके कारण लम्बी सासें लेते हुए शत्रुको तेरी सहायतासे हम ठीक जवाब दें।

२२४ त्वं नः ओजः नृम्णं आ भर, पृतनासहं वीरं आ भर ( ४०५ )- तू हमें सामर्थ्य और धन भरपूर दे, और शत्रुसेनाको पराजित करनेवाला पराक्रम भी हमें दे।

२२५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथिव्याः अहिं निः शासा ( ४१० )- स्वराज्यके संरक्षणकी दृष्टिसे पृथिवीके अहि नामक शत्रुपर तूने शासन किया।

२२६ तं महत्सु आजिषु अर्भे च ऊतिं हवामहे ( ४११ )- उससे बडे और छोटे संग्रामोंमें संरक्षणके साधन मांगते हैं।

२२७ सः वाजेषु नः प्राविषत् ( ४११ )- वह युद्धोंमें हमारा संरक्षण करे।

२२८ अद्रिवन् वज्रिन् इन्द्र ! तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं ( ४१२ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा पराक्रम अजेय है।

२२९ स्वराज्यं अनु अर्चन् मायिनं मृगं वृत्रं मायया अवधीः ( ४१२ )- अपने स्वराज्यकी रक्षाके लिए कपटी वृत्रको तूने कपटसे ही मारा।

२३० प्रेहि अभिहि धृष्णुहि ( ४१३ )- शत्रुपर आक्रमण कर, चारों ओरसे आक्रमण कर और उनका नाश कर।

२३१ ते वज्रः न नियंसते ( ४१३ )- तेरा वज्र किसीसे भी रोका नहीं जा सकता।

२३२ ते शवः नृम्णं ( ४१३ )- तेरे बल शत्रुको झुकानेवाले हैं।

२३३ स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं हनः अपः जय ( ४१३ )- स्वराज्यकी अर्चना करनेके लिए शत्रुको मार और जल जीतकर अपने अधिकारमें ले।

२३४ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं धीयते ( ४१४ )- जब युद्ध शुरु होता है, तब शत्रुको जीतनेवालेको धन मिलता है।

२३५ कं हनः ( ४१४ )- तू किसको मारता है।

२३६ कं वसौ दधः ( ४१४ )- किसको धनमें स्थापित करता है अर्थात् किसे धन देता है।

२३७ नः सूनृतावतः कदा करः ( ४१६ )- हमें सत्यबोलनेवाला कब करेगा, कब धन दान देगा।

२३८ स्तोतृभ्यः इषं आ भर ( ४१९ )- स्तुति करनेवालोंको भरपूर धन दे।

२३९ नः मनः दक्षं उत क्रतुं भद्रं वातय ( ४२२ ) – हमारे मन, बल, कर्म और कल्याण प्राप्त हों इसलिए प्रेरित कर।

२४० शिप्री उपाकयोः हस्तयोः आयसं वज्रं निदधे ( ४२३ )- शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने अपने दोनों हाथोंमें फौलादके वज्रको धारण किया।

२४१ यं सजोषसः द्विषः अति नयन्ति, तं मर्त्यं अंहः न, दुरितं न अष्ट ( ४२६ )- जिसको समान विचार और मनवाले देव शत्रुओंसे दूर करके उन्नतिके रास्ते ले जाते हैं, उस मनुष्यको पाप नहीं लागता और दुर्गति उसके पास फटकती भी नहीं।

२४२ सक्षणिः वृत्राणि परि, नः ऋणया द्विषः तरध्यै ईरसे ( ४२५ )- सामर्थ्यशाली तू शत्रुपर चढाई करनेके लिए जा, हमारे ऋणोंको दूर करनेवाला तू शत्रुओंसे पार होनेके लिए शत्रुपर चढाई करनेके लिए जाता है।

२४३ हे विश्वतो-दावन् ! विश्वतः नः आ भर ( ४३७ )- हे चारों ओरसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र ! चारों ओरसे हमें भरपूर धन दे।

२४४ एष ब्रह्मा ( ४३८ )- यह इन्द्र ज्ञानी है।

२४५ त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं ( ४४० )- त्वष्टाने तेजस्वी वज्र तैय्यार किया।

२४६ रयीषिणः शं पदं मघं ( ४४१ )- धनसे यज्ञ करनेवाले शान्ति, उत्तम स्थान और धन प्राप्ति करते हैं।

२४७ अ-व्रतः नः हिनोति ( ४४१ )- जो व्रतका पालन नहीं करता उसे कुछ भी नहीं मिलता।

२४८ गावः सदा शुचयः ( ४४२ ) -गायें हमेशा शुद्ध रहती हैं।

२४९ युवा श्रुतः इन्द्रः आ स्तोभति- ( ४४५ )- तरुण और प्रसिद्ध इन्द्र सब शत्रुओंको मारता है।

२५० हे अग्ने ! त्वं नः अन्तमः शिवः त्राता भुवः ( ४४८ )- हे अग्ने ! तू हमारे पास कल्याण करनेवाला और संरक्षक है।

२५१ विश्वस्य प्रस्तोभः ( ४५० )- सब शत्रुओंका नाश करनेवाला वह इन्द्र है।

२५२ सु वीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ ) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें।

२५३ नः इषं पीवरीं कृणुहि ( ४५५ )- हमारे अन्नको पुष्टिकारक बना।

२५४ इन्द्रः विश्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र सब विश्वपर राज्य करता है।

२५५ मघवानं उग्रं सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं अप्रतिष्कुतं तं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० )- हम धनवान्, उग्रवीर, बहुत बल धारण करनेवाले, शत्रुसे कभी पराजित न होनेवाले, उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२५६ वज्री राये विश्वा सुपथा करत् ( ४६० )- वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्ग सुगम करता है।

इस प्रकार इस ऐन्द्र काण्डमें सुभाषित हैं। ये व्याख्यान, लेख अथवा पुस्तकोंमें प्रयोग करनेके लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद हैं।

---

# ऐन्द्रकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( ३ ) | | |
| ११५ | ६।४५।१२ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | गायत्री |
| ११६ | ८।९२।१६ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७ | ८।७२।१२ | हर्यतः प्रागाथः | इन्द्रः ( ऋ. अग्निर्हवींषि वा ) | ,, |
| ११८ | ८।९२।२५ | श्रुतकक्षः आंगिरस | इन्द्रः | ,, |
| ११९ | ८।९३।७ | श्रुतकक्षः आंगिरसः | ,, | ,, |
| १२० | १०।१५३।१ | देवजामयः इन्द्रमातरः ऋषिकाः | ,, | ,, |
| १२१ | ८।१४।५ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १२२ | ८।१४।१ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १२३ | ८।२।२५ | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | ,, | ,, |
| १२४ | ८।२।१ | मेधातिथि काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १२५ | ८।९३।१ | सुकक्षश्रुतकक्षौ | ,, | ,, |
| १२६ | ८।९३।४ | सुकक्षश्रुतकक्षौ | ,, | ,, |
| १२७ | ६।४५।१ | भारद्वाजः | ,, | ,, |
| १२८ | ८।९२।३१ | श्रुतकक्षः | ,, | ,, |
| १२९ | १।८।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १३० | १।७।५ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १३१ | ८।४५।१६ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| १३२ | ७।३२।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३३ | ८।४५।१ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| १३४ | ८।४५।४० | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| १३५ | १।३७।३ | कण्वो घौरः | ,, | ,, |
| १३६ | ८।४५।१६ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १३७ | ८।६।४ | वत्सः काण्वः | इन्द्रः | गायत्री |
| १३८ | ८।८३।१ | कुसीदी काण्वः | " | " |
| १३९ | १।१८।१ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १४० | ८।९३।१८ | श्रुतकक्षः आंगिरसः | " | " |
| १४१ | ५।८२।४ | श्यावाश्वः आत्रेयः | " | " |
| १४२ | ८।६४।७ | प्रगाथः काण्वः | " | " |
| १४३ | ८।६।१८ | वत्सः काण्वः | " | " |
| १४४ | ८।१६।१ | इरिम्बिठिः काण्वः | " | " |
| | | ( ६ ) | | |
| १४५ | ८।९२।४ | श्रुतकक्षः आंगिरसः | " | " |
| १४६ | ६।४५।२५ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १४७ | १।८४।१५ | गोतमो राहूगणः | " | " |
| १४८ | ६।५७।४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| १४९ | ८।९४।१ | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः | मरुतः | " |
| १५० | ८।९३।३१ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा | इन्द्रः | " |
| १५१ | ८।९३।१३ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा | " | " |
| १५२ | ८।६।१० | वत्सः काण्वः | " | " |
| १५३ | १।३०।१३ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| १५४ | — | शुनःशेप आजीगर्तिः वामदेवो वा | " | " |
| | | ( ७ ) | | |
| १५५ | ८।९२।१ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| १५६ | ७।३१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| १५७ | ८।२।१६ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः | " | " |
| १५८ | ८।९२।१९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| १५९ | ८।१७।११ | इरिम्बिठिः काण्वः | " | " |
| १६० | १।४।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| १६१ | ८।४५।२२ | त्रिशोकः काण्वः | " | " |
| १६२ | ८।८२।७ | कुसीदी काण्वः | " | " |
| १६३ | १।३०।७ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| १६४ | १।७।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| | | ( ८ ) | | |
| १६५ | ३।५१।१० | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| १६६ | १।८।५ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| १६७ | ८।८१।१ | कुसीदी काण्वः | " | " |
| १६८ | ८।६९।४ | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
| १६९ | ४।३१।१ | वामदेवो गौतमः | " | " |
| १७० | ८।९२।७ | श्रुतकक्ष सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १७१ | १।१८।६ | मेधातिथिः काण्वः | इन्द्रः | गायत्री |
| १७२ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १७३ | ८।९३।१८ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७४ | ८।९४।४ | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ९ ) | | |
| १७५ | १०।१५३।१ | देवजामयः इन्द्रमातरः | ,, | ,, |
| १७६ | १०।१३४।७ | गोधा ऋषिका | ,, | ,, |
| १७७ | — | दध्यङ्ङाथर्वणः | ,, | ,, |
| १७८ | १।४६।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| १७९ | १।८४।१३ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १८० | १।९।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १८१ | ४।३१।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १८२ | ८।६।५ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १८३ | १।३०।४ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १८४ | १०।१८६।१ | उलो वातायनः | ,, | ,, |
| | | ( १० ) | | |
| १८५ | १।४१।१ | कण्वो घौरः | ,, | ,, |
| १८६ | ८।४६।१० | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १८७ | ८।६।१३ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १८८ | ८।९३।१७ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १८९ | १।३०।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १९० | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १९१ | ८।१७।१ | इरिम्बिठिः काण्वः | ,, | ,, |
| १९२ | १०।१८५।१ | सत्यधृतिर्वारुणिः | ,, | ,, |
| १९३ | ८।४६।१ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ११ ) | | |
| १९४ | ८।६४।१ | प्रगाथः काण्वः | ,, | ,, |
| १९५ | ३।४०।६ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १९६ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १९७ | ८।९२।२२ | श्रुतकक्ष आंगिरसः | ,, | ,, |
| १९८ | १।७।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १९९ | ८।९३।३४ | श्रुतकक्षः आंगिरसः | ,, | ,, |
| २०० | २।४१।१० | गृत्समदः शौनकः | ,, | ,, |
| २०१ | ६।४५।१८ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २०२ | ६।५७।१ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २०३ | ४।३०।१ | वामदेवो गौतम : | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १२ ) | | |
| २०४ | ८।४५।२८ | त्रिशोकः काण्वः | इन्द्रः | गायत्री |
| २०५ | १।९।४ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| २०६ | ८।४६।४ | वत्सः काण्वः | " | " |
| २०७ | ८।४५।१ | त्रिशोकः काण्वः | " | " |
| २०८ | ८।९३।१६ | सुकक्ष आंगिरसः | " | " |
| २०९ | — | वामदेवो गौतमः | " | " |
| २१० | ३।५२।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| २११ | ८।१४।१३ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | " | " |
| २१२ | — | वामदेवो गौतमः | " | " |
| २१३ | ८।९३।२५ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| | | ( १३ ) | | |
| २१४ | १।३०।१ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| २१५ | ८।९२।१० | श्रुतकक्ष आंगिरसः | " | " |
| २१६ | ८।४५।४ | त्रिशोकः काण्वः | " | " |
| २१७ | ८।३२।१० | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| २१८ | १।९०।१ | गोतमो राहूगणः | " | " |
| २१९ | ८।५।१ | ब्रह्मातिथिः काण्वः | अश्विनौ मित्रावरुणौ | " |
| २२० | ३।६२।१६ | विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा | इन्द्रः | " |
| २२१ | १।३७।१० | प्रस्कण्वः काण्वः | मरुतः | " |
| २२२ | १।२२।१७ | मेधातिथिः काण्वः | विष्णुः | " |
| | | ( १४ ) | | |
| २२३ | ८।३२।२५ | मेधातिथिः काण्वः | इन्द्रः | " |
| २२४ | — | वामदेवो गौतमः | " | " |
| २२५ | ८।२।१४ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | " | " |
| २२६ | — | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| २२७ | ८।२।१९ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | " | " |
| २२८ | १०।१०५।१ | दुर्मित्रः ( सुमित्रो वा ) कौत्सः | " | " |
| २२९ | १।१५।५ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| २३० | ८।३२।७ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| २३१ | — | विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद् उदलो वा | " | " |
| २३२ | ८।९२।२८ | श्रुतकक्षः आंगिरसः | " | " |
| | | ( १५ ) | | |
| २३३ | ७।३२।२२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | बृहती |
| २३४ | ४।४६।१ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | " | " |
| २३५ | ८।४९।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | " | " |

*

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| २३६ | ८।८८।१ | नोधा गौतमः | इन्द्रः | बृहती |
| २३७ | ८।६६।१ | कलिः प्रागाथः | ,, | ,, |
| २३८ | ७।३२।२० | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २३९ | ८।३।१ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २४० | ८।६१।७ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| २४१ | ७।५९।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | मरुतः | ,, |
| २४२ | ८।१।२ | प्रगाथो घौरः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| | | ( १६ ) | | |
| २४३ | ८।७०।३ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| २४४ | ८।१।१२ | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| २४५ | ८।१।२४ | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| २४६ | ३।४५।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| २४७ | १।८४।१९ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| २४८ | ८।९०।५ | नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ | ,, | ,, |
| २४९ | ८।३।५ | मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा काण्वः | ,, | ,, |
| २५० | ८।३।३ | मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा काण्वः | ,, | ,, |
| २५१ | ८।३।१५ | मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा काण्वः | ,, | ,, |
| २५२ | ८।४।३ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( १७ ) | | |
| २५३ | ८।६१।५ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| २५४ | ८।९७।१ | रेभः काश्यपः | ,, | ,, |
| २५५ | ८।१०१।५ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| २५६ | ८।२।७ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २५७ | ८।८९।३ | नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ | ,, | ,, |
| २५८ | ८।८९।१ | नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ | ,, | ,, |
| २५९ | ७।३२।२६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २६० | ८।९७।७ | रेभः काश्यपः | ,, | ,, |
| २६१ | ८।३३।१ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २६२ | ६।४६।७ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| | | ( १८ ) | | |
| २६३ | ८।३३।१० | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २६४ | ८।९७।४ | रेभः काश्यपः | ,, | ,, |
| २६५ | ८।४६।१४ | वत्सः | ,, | ,, |
| २६६ | ६।४६।९ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २६७ | ८।९९।३ | नृमेधः आंगिरसः | ,, | ,, |
| २६८ | ८।७०।७ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| २६९ | ८।९०।१ | नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| २७० | ७।३२।१६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | बृहती |
| २७१ | ८।१।७ | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| २७२ | ८।६६।७ | कलिः प्रागाथः | ,, | ,, |
| | | ( १९ ) | | |
| २७३ | ८।७०।१ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| २७४ | ८।६१।१३ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| २७५ | ८।९७।१४ | इरिम्बिठिः काण्वः | ,, | ,, |
| २७६ | ८।१०१।११ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| २७७ | ८।४।९ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २७८ | ८।७०।५ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| २७९ | ८।४।१ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २८० | ७।३२।१४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २८१ | ६।५९।६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २८२ | ८।५३।५ | मेध्यः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( २० ) | | |
| २८३ | ८।९९।७ | नृमेधः आंगिरसः | ,, | ,, |
| २८४ | ७।३२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २८५ | ७।३२।८ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २८६ | ६।४६।३ | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| २८७ | १।१३९।५ | परुच्छेपो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| २८८ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| २८९ | ८।३३।४ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २९० | ८।६१।१ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| २९१ | ८।१।५ | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| २९२ | ८।१।६ | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| | | ( २१ ) | | |
| २९३ | ७।३२।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| २९४ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| २९५ | ८।१।१० | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ विश्वामित्र इत्येके | ,, | ,, |
| २९६ | ८।८८।३ | नोधा गौतमः | ,, | ,, |
| २९७ | ८।३३।७ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| २९८ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| २९९ | — | वामदेवो गौतमः | त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः | ,, |
| ३०० | ८।५१।७ | श्रुष्टिगुः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| ३०१ | ८।३।१७ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ३०२ | ८।९९।१ | नृमेधः आंगिरसः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( २२ ) | | |
| ३०३ | ७।८१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | उषा | बृहती |
| ३०४ | ७।७४।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अश्विनौ | ,, |
| ३०५ | — | अश्विनौ वैवस्वतौ | ,, | ,, |
| ३०६ | १।४७।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| ३०७ | ८।१।१० | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| ३०८ | ८।४।११ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ३०९ | ७।३२।२४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३१० | ७।३२।१८ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३११ | ८।९९।५ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३१२ | ८।८८।५ | नौधाः गौतमः | ,, | ,, |
| | | ( २३ ) | | |
| ३१३ | ७।२२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ३१४ | ७।२४।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३१५ | ५।३२।१ | गातुरात्रेयः | ,, | ,, |
| ३१६ | १०।१४८।१ | पृथुर्वैन्यः | ,, | ,, |
| ३१७ | १०।४७।१ | सप्तगुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ३१८ | ७।२७।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३१९ | १०।७३।११ | गोरिवीतिः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| ३२० | १०।१२३।६ | वेनो भार्गवः | वेनः | ,, |
| ३२१ | — | बृहस्पतिर्नकुलो वा | इन्द्रः | ,, |
| ३२२ | ६।३२।१ | सुहोत्रो भारद्वाजः | ,, | ,, |
| | | ( २४ ) | | |
| ३२३ | ८।९६।१३ | द्युतानो मारुतः | ,, | ,, |
| ३२४ | ८।९६।७ | द्युतानो मारुतः | ,, | ,, |
| ३२५ | १०।५५।५ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | ,, | ,, |
| ३२६ | ८।९६।१६ | द्युतानो मारुतः | ,, | ,, |
| ३२७ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| ३२८ | ७।३२।१० | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३२९ | ३।३०।२२ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ३३० | ७।२३।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ३३१ | १०।७३।९ | गोरिवीतिः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| | | ( २५ ) | | |
| ३३२ | १०।१७८।१ | अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः | ,, | ,, |
| ३३३ | ६।४७।११ | भरद्वाजः | ,, | ,, |
| ३३४ | १०।२२।१ | विमद ऐन्द्रः, वसुकृद्वा वासुक्रः | ,, | ,, |
| ३३५ | ४।१७।८ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ३३६ | — | वामदेवो गौतमः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| ३३७ | — | वामदेवो गौतमः | " | " |
| ३३८ | ३।५३।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| ३३९ | १०।८९।४ | रेणुर्वैश्वामित्रः | " | " |
| ३४० | १०।१०।१ | वामदेवो गौतमः | " | " |
| ३४१ | १।८४।१६ | गोतमो राहूगणः | " | " |
| | | ( २६ ) | | |
| ३४२ | १।१०।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | अनुष्टुप् |
| ३४३ | १।११।१ | जेता माधुच्छन्दसः | " | " |
| ३४४ | १।८४।४ | गोतमो राहूगणः | " | " |
| ३४५ | ५।३९।१ | अत्रिर्भौमः | " | " |
| ३४६ | ८।९५।४ | तिरश्चीरांगिरसः | " | " |
| ३४७ | १।८४।१ | गोतमो राहूगणः | " | " |
| ३४८ | ८।३४।१ | नीपातिथिः काण्वः | " | " |
| ३४९ | ८।९५।१ | तिरश्चीरांगिरसः | " | " |
| ३५० | ८।९५।७ | विश्वामित्री गाथिनः | " | " |
| ३५१ | ६।४४।१ | तिरश्चीरांगिरसः शंयुर्बार्हस्पत्यो वा | " | " |
| | | ( २७ ) | | |
| ३५२ | ६।४२।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ३५३ | — | वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वा | " | " |
| ३५४ | ८।६८।१ | प्रियमेधः आंगिरसः | " | " |
| ३५५ | ८।६३।१ | प्रगाथः काण्वः | " | " |
| ३५६ | — | श्यावाश्व आत्रेयः | मरुतः | " |
| ३५७ | ६।४४।४ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | " |
| ३५८ | ४।३९।६ | वामदेवो गौतमः | दधिक्रा | " |
| ३५९ | १।११।४ | जेता माधुच्छन्दसः | इन्द्रः | " |
| | | ( २८ ) | | |
| ३६० | ८।६९।१ | प्रियमेधः आंगिरसः | " | " |
| ३६१ | — | वामदेवो गौतमः | " | " |
| ३६२ | ८।६९।८ | प्रियमेधः आंगिरसः | " | " |
| ३६३ | १।१०।५ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ३६४ | ८।६८।४ | प्रियमेधः आंगिरसः | " | " |
| ३६५ | ६।२।४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ३६६ | ५।३८।१ | अत्रिर्भौमः | " | " |
| ३६७ | १।४९।३ | प्रस्कण्वः काण्वः | उषा | " |
| ३६८ | १।१०५।५ | त्रित आप्त्यः | विश्वेदेवाः | " |
| ३६९ | — | वामदेवो गौतमः | इन्द्रः | " |

*

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( २९ ) | | |
| ३७० | ८.९७।१० | रेभः काश्यपः | ,, | अति जगती |
| ३७१ | १०।१४७।१ | सुवेदाः शैलूषिः | ,, | जगती |
| ३७२ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| ३७३ | १।५७।४ | सव्य आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३७४ | ३।५१।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ३७५ | १०।४३।१ | कृष्ण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३७६ | १।५१।१ | सव्य आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३७७ | १।५२।१ | सव्य आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३७८ | ६।७०।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | द्यावापृथिवी | ,, |
| ३७९ | १०।१३४।१ | मेधातिथिः काण्वः | इन्द्रः | महपंक्तिः |
| ३८० | १।१०१।१ | कुत्स आंगिरसः | ,, | जगती |
| | | ( ३० ) | | |
| ३८१ | ८।१३।१ | नारदः काण्वः | ,, | उष्णिक् |
| ३८२ | ८।१५।१ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| ३८३ | ८।१५।४ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| ३८४ | ८।१२।१६ | पर्वतः काण्वः | ,, | ,, |
| ३८५ | ८।२४।१६ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| ३८६ | ८।२४।१३ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| ३८७ | ८।२४।१९ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| ३८८ | ८।९८।१ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३८९ | १।८४।७ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ३९० | ८।२४।१ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| | | ( ३१ ) | | |
| ३९१ | ८।६१।८ | प्रगाथो घौरः काण्वः | ,, | ,, |
| ३९२ | ६।४३।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ३९३ | ८।९८।४ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ३९४ | ८।१२।१ | पर्वतः काण्वः | ,, | ,, |
| ३९५ | ८।१८।१८ | इरिम्बिठिः काण्वः | आदित्याः | ,, |
| ३९६ | ८।२४।२४ | विश्वमना वैयश्वः | इन्द्रः | ,, |
| ३९७ | ८।१८।१० | इरिम्बिठिः काण्वः | आदित्याः | ,, |
| ३९८ | ७।२२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | विराडुष्णिक् |
| | | ( ३२ ) | | |
| ३९९ | ८।२१।१३ | सौभरिः काण्वः | ,, | ककुप् |
| ४०० | ८।२१।९ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ४०१ | ८।२०।१ | सौभरिः काण्वः | मरुतः | ,, |
| ४०२ | ८.२१।३ | सौभरिः काण्वः | इन्द्रः | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ४०३ | ८।२१।११ | सोभरिः काण्वः | इन्द्रः | ककुप् |
| ४०४ | ८।२०।२१ | सोभरिः काण्वः | मरुतः | ,, |
| ४०५ | ८।९८।१० | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | ,, |
| ४०६ | ८।९८।७ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ४०७ | ८।२१।५ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ४०८ | ८।२१।१ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ३३ ) | | |
| ४०९ | १।८४।१० | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | पंक्तिः |
| ४१० | १।८०।१ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४११ | १।८१।१ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१२ | १।८०।७ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१३ | १।८०।३ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१४ | १।८१।३ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१५ | १।८२।२ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१६ | १।८२।१ | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | ,, | ,, |
| ४१७ | १।१०५।१ | त्रित आप्त्यः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ४१८ | ५।७५।१ | अवस्युरात्रेयः | अश्विनौ | ,, |
| | | ( ३४ ) | | |
| ४१९ | ५।६।४ | वसुश्रुत आत्रेयः | अग्निः | ,, |
| ४२० | १०।२१।१ | विमद ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| ४२१ | ५।७९।१ | सत्यश्रवा आत्रेयः | उषा | ,, |
| ४२२ | १०।२५।१ | विमद ऐन्द्रः | सोमः | ,, |
| ४२३ | १।८२।४ | गोतमो राहूगणः | इन्द्रः | ,, |
| ४२४ | १।८२।४ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ४२५ | ५।६।१ | वसुश्रुत आत्रेयः | अग्निः | ,, |
| ४२६ | १०।१२६।१ | अंहोमुग्वामदेव्यः | विश्वेदेवाः | बृहती |
| | | ( ३५ ) | | |
| ४२७ | ९।१०९।१ | ऋण त्रसदस्यू | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| ४२८ | ९।११०।१ | ऋण त्रसदस्यू | ,, | त्रिपदा अनुष्टुप्पिपीलिकामध्या |
| ४२९ | ९।१०९।४ | ऋण त्रसदस्यू | ,, | द्विपदा विराट् |
| ४३० | ९।१०९।१० | ऋण त्रसदस्यू | ,, | ,, |
| ४३१ | ९।१०९।१३ | ऋण त्रसदस्यू | ,, | ,, |
| ४३२ | ९।११०।२ | ऋण त्रसदस्यू | | त्रिपदा अनुष्टुप् पिपीलिका मध्या |
| ४३३ | ७।५६।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | मरुतः | द्विपदा विराट् |
| ४३४ | ४।१०।१ | वामदेवो गौतमः | अग्निः | पदपंक्तिः |
| ४३५ | — | ऋण त्रसदस्यू | वाजिनः | पुर उष्णिक् |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ४३६ | ९।११०।७ | ऋण त्रसदस्यू | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| | | ( ३६ ) | | |
| ४३७ | — | त्रसदस्युः | इन्द्रः | द्विपदा विराट् |
| ४३८ | — | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| ४३९ | ५।३१।४ | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| ४४० | ५।३१।४ | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| ४४१ | — | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| ४४२ | — | त्रसदस्युः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ४४३ | १०।१७२।१ | संवर्त आंगिरसः | उषा | ,, |
| ४४४ | — | त्रसदस्युः | इन्द्रः | ,, |
| ४४५ | — | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| ४४६ | — | त्रसदस्युः | ,, | ,, |
| | | ( ३७ ) | | |
| ४४७ | ८।५६।५ | पृषध्रः काण्वः | अग्निः | ,, |
| ४४८ | ५।२४।१ | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुः विप्र-बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा | ,, | ,, |
| ४४९ | — | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्र-बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा | इन्द्रः | ,, |
| ४५० | — | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्र-बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा | ,, | ,, |
| ४५१ | १०।१७२।४ | संवर्त आंगिरसः | उषा | ,, |
| ४५२ | १०।१५७।१ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ४५३ | — | कवष ऐलूषः | ,, | ,, |
| ४५४ | ६।१७।१५ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | ,, |
| ४५५ | — | आत्रेयः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ४५६ | यजु० ३६।८ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | एकपदा |
| | | ( ३८ ) | | |
| ४५७ | २।२२।१ | गृत्समदः शौनकः | इन्द्रः | अष्टिः |
| ४५८ | — | गौरांगिरसः | सूर्यः | अतिजगती |
| ४५९ | १।१३०।१ | परुच्छेपो दैवोदासिः | इन्द्रः | अत्यष्टिः |
| ४६० | ८।९७।१३ | रेभः काश्यपः | ,, | अतिजगती |
| ४६१ | १।१३९।१ | परुच्छेपो दैवोदासिः | विश्वेदेवाः | अत्यष्टिः |
| ४६२ | ५।८७।१ | एवयामरुदात्रेयः | मरुतः | अतिजगती |
| ४६३ | ९।१११।१ | अनानतः पारुच्छेपिः | पवमानः सोमः | अत्यष्टि |
| ४६४ | — | नकुलः | सविता | ,, |
| ४६५ | १।१२७।१ | परुच्छेपो दैवोदासिः | अग्निः | ,, |
| ४६६ | २।२२।४ | गृत्समदः शौनकः | इन्द्रः | अष्टिः |

# अथ पावमानं काण्डम् ।

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

### [ ९ ]

( १-१० ) १, ४ अमहीयुराङ्गिरसः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ५ त्रित आप्त्यः; ६ कश्यपो मारीचः; ७ जमदग्निर्भार्गवः; ८ दृढच्युत आगस्त्यः; ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥
पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४६७ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रꣳशर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१० )

४६८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

४६९ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )

४७० यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशꣳसहा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।६१।१९ )

---

### [ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ४६७ ] हे सोम ! ( ते अन्धसः ) तेरे इस अन्नरूपी रसका ( जातं उच्चा ) जन्म ऊंचे ( दिवि ) द्युलोकमें हुआ है, ( सत् उग्रं शर्म ) द्युलोकमें होनेवाले प्रभावशाली सुख और ( महि श्रवः ) महान् अन्न ( भूम्या ददे ) भूमि पर प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

१ ते जातं दिवि उच्चा— तुझ सोमका जन्म द्युलोकमें ऊंचे स्थान पर हुआ है।

२ उग्रं शर्म महि श्रवः भूम्या ददे— वहांसे महान् सुख और उत्तम अन्न पृथ्वी पर हमें प्राप्त होते हैं।

[ ४६८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( इन्द्राय पातवे सुतः ) इन्द्रके पीनेके लिए निकाला गया यह रसरूप तू ( स्वादिष्ठया ) स्वादिष्ट और ( मदिष्ठया ) हर्ष उत्पन्न करनेवाली ( धारया पवस्व ) धारासे प्रवाहित हो ॥ २ ॥

१ इन्द्राय पातवे सुतः— इन्द्रके पीनेके लिए यह रस निकाला गया है।

२ स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व— वह रस स्वादिष्ट और हर्ष बढानेवाला है।

[ ४६९ ] हे सोम ! ( वृषा धारया पवस्व ) बलशाली धारासे तू कलशमें आ और ( मरुत्वते ) मरुत् जिसकी सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( विश्वा ओजसा दधानः ) सब सामर्थ्यसे युक्त होकर ( मत्सरः ) आनन्द बढानेवाला हो ॥ ३ ॥

१ वृषा पवस्व धारया— जोरके प्रवाहसे बर्तनमें रस पडे।

२ मरुत्वते ( इन्द्राय )— इन्द्रके मददके लिए मरुत आते है।

३ विश्वा ओजसा दधानः— सब सामर्थ्योंसे धारण कर।

४ मत्सरः ( मद्-सरः )— आनन्द बढानेवाला हो। सोमरस पीनेसे शक्ति और आनन्द बढता है।

[ ४७० ] हे सोम ! ( ते देवावीः ) तेरा जो देवोंको बुलानेवाला ( अघ-शंस-हा ) पापी और दुष्टोंका नाश करनेवाला, ( वरेण्यः मदः ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला ( यः रसः ) जो रस है, । ( तेन अन्धसा ) उस अन्न रूप रसके साथ ( पवस्व ) कलशमें तू आ ॥ ४ ॥

४७१ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३३।४ )
४७२ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६४।२२ )
४७३ असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६२।४ )
४७४ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।२५।१ )

---

१ देवावीः ( देव-आवीः )— देवोंको प्रिय, देव जिसे पीते हैं।
२ अघ-शंस-हा— पापी और दुष्टोंका नाश करनेवाला।
३ वरेण्यः मदः— श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला।
४ पवस्व— स्वच्छ होनेके लिए बर्तनमें डाला जाता है, । साफ होकर बर्तनमें गिर।

[ ४७१ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं। ( धेनवः गावः मिमंति ) दुधारु गायें दूध दुहनेके लिए शब्द करती हैं, ( हरिः कनिक्रदत् एति ) हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ॥ ५ ॥

१ तिस्रः वाचः उदीरते— तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं।
२ धेनवः गावः मिमंति— दुधारु गायें अपना दूध जल्दी ही दुहानेके लिए शब्द करती हैं।
३ हरिः कनिक्रदत् एति— हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है।
सबेरे यज्ञशालामें क्या होता है, उसका यह वर्णन है।

[ ४७२ ] हे ( इन्दो ) सोमरस ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा तू ( अर्कस्य योनिं ) यज्ञके मध्य भागमें ( आसदं ) बैठनेके लिए ( मरुत्वते इन्द्राय ) मरुत् जिसकी सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( पवस्व ) कलशमें जा ॥ ६ ॥

१ मधु-मत्-तमः— अत्यन्त मीठा।
२ अर्कस्य योनिः— पूजनीय यज्ञ जहां होते हैं, अर्क-पूज्य।
३ पवस्व— रस छाननेके लिए एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें डाला जाता है।

[ ४७३ ] ( गिरि-ष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर होनेवाले सोमका रस ( मदाय असावि ) आनन्द प्राप्तिके लिए निचोडा है, ( अप्सु दक्षः ) पानीमें मिलकर वह बढा है, ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( योनिं आसदत् ) अपने स्थान पर वह आकर बैठा है ॥ ७ ॥

१ गिरि-ष्ठाः अंशुः— पर्वत पर सोमलता होती है।
२ असावि— उसका रस निकाला है।
३ अप्सु दक्षः— पानीमें मिलकर वह बढा है। वह बल बढानेवाला हो गया है।
४ श्येनः न योनिं आसदत्— श्येन पक्षी जैसे पर्वतसे उडकर अपने स्थान पर आता है, उसी प्रकार यह सोम पर्वतसे यहां यज्ञशालामें आया है।

[ ४७४ ] हे ( हरे ) हरे रंगके सोम ! ( दक्ष-साधनः ) बल बढानेका साधन तू ( मदः ) आनन्ददायक ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः पीतये ) देवों और मरुतोंके पीनेके लिए ( पवस्व ) इस बर्तनमें आ ॥ ८ ॥

१ हरिः— सोम हरे रंगका होता है।
२ दक्ष-साधनः— बल बढानेका यह साधन है।
३ मदः— आनन्द बढानेवाला सोमरस है।
४ देवेभ्यः पीतये— यह देवोंके पीनेमें आता है।
५ पवस्व— वह छाना जाता है।

**४७५ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥** ( ऋ. ९।१८।१ )

**४७६ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१०॥** ( ऋ. ९।९।१ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ प्रथमः खंडः ॥ १ ॥ [ स्व० ६ । उ० ३ धा० । ४२ । गा ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ ( कविर्मेधावी ) श्यावाश्व आत्रेयः; २ त्रित आप्त्यः; ३, ८ अमहीयुराङ्गिरसः; ४ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ५, ६ कश्यपो मारीचः; ७ निध्रुविः काश्यपः; ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥

पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

**४७७ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥** ( ऋ ९।३२।१ )

**४७८ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ २ ॥** ( ऋ ९।३३।१ )

---

[ ४७५ ] ( सोमः पवित्रे पर्यक्षरत् ) सोमरस छलनीसे नीचे गिरता है, ( गिरि-ष्ठाः स्वानः ) यह सोम पर्वतपर होता है, वहांसे लाकर इसका रस निकाला जाता है। ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

१ स्वानः— उसका रस निकाला जाता है।

२ सोमः पवित्रे परि-अक्षरत्— सोमरस छलनीमेंसे छाना जाता है, और वह नीचे वर्तनमें गिरता है।

३ मदेषु सर्व-धा असि— आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें वह सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है।

[ ४७६ ] ( कवि-क्रतुः कविः ) बुद्धिको बढानेवाला तथा स्वयं ज्ञानवान् यह सोम ( नप्त्योः हितः ) सोमरस निकालनेके दो तख्तोंके बीचमें रखा गया है, ( दिवः प्रिया वयांसि ) वे द्युलोकके प्रिय पक्षी अर्थात् पहाडके पत्थर ( स्वानैः ) रस निकालनेके लिए ( परियाति ) उसके ऊपर चलते हैं, सोम पत्थरोंसे पीसा जाता है ॥ १० ॥

१ कवि-क्रतुः— सोम बुद्धि और कार्य करनेकी शक्ति बढाता है।

२ नप्त्योः हितः— दो लकडीके पट्टोंके बीचमें सोम रखा जाता है, और दबाकर उसका रस निकाला जाता है।

३ दिवः वयांसि— पहाडके पत्थर, द्युलोकके पक्षी।

४ स्वानैः परियाति— ( स्वानैः-सुवानैः ) रस निकालनेवाले याजक पत्थरोंसे सोम पीसकर उसका रस निकालते हैं।

॥ यहां प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः।

[ ४७७ ] ( मद-च्युतः सोमासः ) आनन्द बढानेवाले सोमरस ( सुताः ) निचोडे गए हैं। ( मघोनां नः विदथे ) हवि देनेवाले हमारे इस यज्ञमें ( श्रवसे प्राक्रमुः ) अन्न और यशके लिए वे रस पात्रमें भरे गए हैं ॥ १ ॥

१ सोमासः मद-च्युताः— सोमरस आनन्द बढानेवाले हैं।

२ मघोनां नः विदथे— हविष्यान्न तैय्यार करके हम यज्ञ करते हैं।

३ श्रवसे प्राक्रमुः— सोमरसरूपी अन्नरस पीनेके लिए उन रसोंको वर्तनोंमें भरा है।

[ ४७८ ] ( विपश्चितः सोमासः ) बुद्धिको बढानेवाले सोमरस ( अपः ऊर्मयः ) पानीके लहरोंके साथ मिलाये जाते हैं, ( महिषाः वनानि इव ) भैंसे जैसे वनमें जाते हैं, उस तरह वे सोमरस ( प्र नयन्त ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

४७९ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६१।२८ )

४८० वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।६५।४ )

४८१ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वꣳ रथीरिव ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।६४।१० )

४८२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६४।४ )

---

१ सोमासः विपश्चितः— सोमरस बुद्धि और उत्साह बढानेवाला है ।
२ अपः ऊर्मयः— पानीकी लहर । पानीमें वे रस मिलाये जाते हैं ।
३ महिषाः वनानि इव— पशु जैसे वनमें जाते है, उसी तरह वे रस पानीमें जाते हैं ।
४ प्र-नयन्त— विशेष पद्धतिसे वे पानीमें मिलाये जाते हैं ।

[ ४७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( सुतः ) निचोडा गया और ( वृषा ) बल बढानेवाला तू ( पवस्व ) पवित्र हो, ( जने नः यशसः कृधि ) लोगोंमें हमें यशस्वी कर, और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंको हरा ॥ ३ ॥

१ हे इन्दो ! सुतः— हे सोम ! तेरा रस निकाला है ।
२ वृषा पवस्व— तू बल बढानेवाला है, तू इस पात्रमें छाना जाता है ।
३ जने नः यशसः कृधि— लोगोंमें तू हमें यशस्वी कर ।
४ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंको पराभूत कर, दूर कर ।

[ ४८० ] हे सोम ! ( हि वृषा असि ) निश्चयसे तू बल बढानेवाला है । हे ( पवमान ) पवित्र होनेवाले सोम ! ( स्व-र्दृशं ) सबको देखनेवाले ( भानुना द्युमन्तं ) तेजसे चमकनेवाले ( त्वा हवामहे ) तुझे हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ हि वृषा असि— निश्चयसे तू बल बढानेवाला है ।
२ पवमानः— छनकर पवित्र होनेवाला, छाननेके बाद वह साफ होता है ।
३ स्वः-दृर्शं— अपने आप चमकनेवाला ।
४ भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे— तेजसे चमकनेवाले तुझे हम बुलाते है, तेरा वर्णन करते हैं ।

[ ४८१ ] ( चेतनः प्रियः इन्दुः ) उत्साह बढानेवाला प्रिय सोमरस ( कवीनां मतिः ) ज्ञानी लोगोंकी स्तुतिके साथ ( पविष्ट ) बर्तन में छाना जाता है, ( रथीः अश्वं इव ) रथका स्वामी जैसे घोडेको चलाता है, उसी प्रकार ( सृजत् ) यह पात्रमें भरा जाता है, ॥ ५ ॥

१ चेतनः प्रियः इन्दुः— उत्साह बढानेवाला होनेके कारण यह सोमरस सभीको अच्छा लगता है ।
२ कवीनां मतिः पविष्ट— ज्ञानी लोगोंके स्तोत्रके साथ-साथ यह छाना जाता है, और बर्तनमें भरा जाता है ।
३ रथीः अश्वं इव सृजत्— रथमें बैठनेवाला जिस प्रकार घोडोंको हांकता है, उसी प्रकार यह सोमरस पात्रमें भरा जाता है ।

[ ४८२ ] ( वाजिनः ) बल बढानेवाले ( आशवः ) और उत्साह बढानेवाले, और ( शुक्रासः सोमासः ) चमकनेवाले सोमरस ( गव्या अश्वया वीरया ) गाय, घोडे और वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा ( प्रासृक्षत ) निचोडे जाते हैं ॥ ६ ॥

१ वाजिनः आशवः सोमासः— ये सोमरस बल और उत्साह बढानेवाले हैं ।
२ गव्या अश्वया वीरया प्रासृक्षत्— गाय, घोडे और वीर पुत्र प्राप्त हों, इस इच्छासे यजमान द्वारा रस निकाला जाता है ।

४८३ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६३।२२ )

४८४ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।६१।१६ )

४८५ परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )

४८६ परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१४।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ ( स्व० ११ । उ० ना । धा० ४९ । हो ॥ )

इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः, पञ्चमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

---

[ ४८३ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) तू चमकनेवाला है, अब पात्रमें छननेके लिए जा, ( ते मदः ) तेरा यह आनन्द बढानेवाला रस ( आयुषक् इन्द्रं गच्छतु ) सबके साथ इन्द्रके पास जावे, ( धर्मणा ) अपनी धारकशक्तिसे ( वायुं आरोह ) वायुसे मिल ॥ ७ ॥

१ देवः पवस्व— तू चमकते हुए छाना जाकर साफ हो ।

२ ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु— तेरा यह आनन्द बढानेवाला रस सबके साथ इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ धर्मणा वायुं आरोह— अपनी धारकशक्तिसे वह वायुको प्राप्त होवे ।

सोमरस शुद्ध होनेके बाद इन्द्र और वायुको दिया जाता है ।

[ ४८४ ] ( पवमानः ) पवित्र हुए इस सोमरसने ( दिवः चित्रं ) द्युलोकमें दीखनेवाले ( बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर तेजको ( तन्यतुं न ) बिजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

सोमरस छनकर शुद्ध हो जानेपर चमकने लगता है, उसको देखकर देखनेवाले समझते हैं कि मानों बिजली ही चमक रही है ।

[ ४८५ ] ( स्वानासः इन्दवः ) निचोडे जानेके बाद ये सोमरस ( बर्हणा गिरा ) मधुर स्तोत्रोंके साथ तथा ( मधोः धारया ) इस मीठे रसकी धाराके साथ ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए ( परि अर्षन्ति ) छाननीसे छाने जाते हैं ॥ ९ ॥

१ स्वानासः-सुवानासः इन्दवः— सोमरस निकालते हुए ( बर्हणा गिरा ) ऊंची आवाजसे स्तोत्र बोले जाते हैं, और उस समय यह मीठे रसकी धारा, पीनेवालोंका आनन्द बढानेके लिए बर्तनमें छोडी जाती है, और छाननीसे छानी जाती है ।

[ ४८६ ] ( कविः ) ज्ञान वर्धक, ( सिन्धोः ऊर्मौ ) सिन्धु नदीके लहरमें ( अधिश्रितः ) मिला हुआ ( पुरु-स्पृहं कारुं बिभ्रत् ) अनेकोंसे प्रशंसनीय, स्तुति करनेवाले यज्ञकर्ताओंको धारण करनेवाला यह सोम ( परि प्रासिष्यदत् ) पात्रमें टपकता है ॥ १० ॥

१ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः— ज्ञान बढानेवाला यह सोमरस नदीके पानीमें मिलाया जाता है । इसमें पानी मिलाया जाता है ।

२ पुरुस्पृहं कारुं बिभ्रत्— प्रशंसनीय याजक एक स्थानपर बैठते हैं । यज्ञमण्डपमें सभी याजक बैठते हैं ।

३ परि प्रासिष्यदत्— यह सोम छाननीसे छाना जाता है । छाननीका नाम " दशापवित्र " है, इस दशा-पवित्रसे यह रस नीचे बर्तनमें पडता है ।

॥ यहां द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ ॥

*

[ १ ]

अथ षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

( १-१० ) १, ८, ९ अमहीयुरांगिरसः; २ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४ प्रभूवसुरांगिरसः; ५ मेध्यातिथिः काण्वः; ६, ७ निध्रुविः काश्यपः; १० उचथ्य आंगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४८७ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१३ )

४८८ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२॥ ( ऋ. ९।४०।१ )

४८९ आविशन्कलशꣳ सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६२।१९ )

४९० असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३६।१ )

४९१ प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा आयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।४१।१ )

४९२ अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६३।२४ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ४८७ ] ( सु-जातं ) उत्तम रीतिसे तैय्यार किये हुए ( अप्तुरं ) पानीमें मिलाये हुए ( भंगं ) शत्रुको मारनेवाले ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधमें मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिषुः ) देव पहुंचे॥ १॥

सोमरस निकालनेके बाद ( अप्-तुरं ) उसमें पानी मिलाया जाता है, ( गोभिः परिष्कृतं ) उसमें गायका दूध मिलाया जाता है, और यह ( भङ्गं ) शत्रुको मारनेवालोंका उत्साह बढानेवाला होता है । उसके पास सोमरस पीनेकी इच्छासे देव आते हैं ।

[ ४८८ ] ( विचर्षणिः ) ज्ञान बढानेवाला ( पुनानः ) पवित्र हुआ सोमरस ( विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् ) सब शत्रुओंपर आक्रमण करता है, ( विप्रं ) उस ज्ञान बढानेवाले सोमको ऋत्विक् ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तोत्रोंसे सुशोभित करते हैं ॥ २ ॥

सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढता है, उस रसको छानकर पीनेसे सब शत्रुओंपर आक्रमण करनेका बल बढता है। उस सोमरसको निकालनेके समय मंत्र बोले जाते हैं इस कारण वे और अधिक सुशोभित होते हैं।

[ ४८९ ] ( सुतः ) सोमरस निकालनेके बाद ( कलशं आविशन् ) कलशमें भरनेके समय ( विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन् ) सब शोभाओंको बढानेवाला ( इन्दुः ) यह सोमरस ( इन्द्राय धीयते ) इन्द्रके लिए दिया जाता है ।॥ ३ ॥

[ ४९० ] ( यथा रथ्यः ) जिस प्रकार रथका घोडा छोडा जाता है, उस प्रकार ( चम्वोः सुतः ) दो लकडियोंके पट्टोंसे निचोडा गया यह सोमरस ( पवित्रे असर्जि ) छाननेके बर्तनमें छोडा जाता है, इस प्रकार यह ( वाजी ) बलवान् सोमरस ( कार्ष्मन् न्यक्रमीत् ) देवोंको आकर्षित करके लाता है और बर्तनमें भरा रहता है ॥ ४ ॥

[ ४९१ ] ( यत् भूर्णयः ) जो शीघ्रता करनेवाले ( त्वेषाः अयासः ) तेजस्वी और गति करनेवाले सोम अपनी ( कृष्णां त्वचं ) काली चमडीको ( अपघ्नन्तः ) दूर करते हुए यज्ञको ( प्र अक्रमुः ) प्रारम्भ करते हैं । ( गावः न ) गायें जिस प्रकार बाडेमें जाती हैं, उसी प्रकार सोमरस यज्ञमें जाता है और यज्ञ करता है ॥ ५ ॥

सोमरसके ऊपरकी काली पपडी रसको छाननेसे दूर हो जाती है, और वह सोमरस छलनीसे नीचे रखे बर्तनमें छाना जाता है । वहांसे वह यज्ञशालामें जाता है, और याजकोंको आगे कार्य करनेके लिए प्रवृत्त करता है।

[ ४९२ ] हे सोम ! ( मत्-सरः ) आनन्द बढानेवाला और ( क्रतु-वित् ) यज्ञकी पद्धति जाननेवाला तू ( मृधः अपघ्नन् ) शत्रुओंको दूर करते हुए ( पवसे ) पवित्र होता है, तू ( अ-देव-युं जनं नुदस्व ) देवकी भक्ति न करनेवाले मनुष्यको दूर कर ॥ ६ ॥

४९३ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६३।६ )

४९४ स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।६१।२२ )

४९५ अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।६१।१ )

४९६ परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।५२।१ )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० ९ । उ० ६ । धा० ३५ । तु ॥ ]

[ २ ]

( १-१४ ) १ मेधातिथिः काण्वः; २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ उचथ्य आङ्गिरसः; ४ अवत्सारः काश्यपः । निध्रुविः काश्यपः; ६, १० असितः काश्यपो देवलो वा; ८, ९ कश्यपो मारीचः; ११ कविर्भार्गवः; १२ जमदग्निर्भार्गवः; १३ अयास्य आंगिरसः; १४ अमहीयुरांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४९७ अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

---

१ अदेवयुं जनं नुदस्व— देवकी भक्ति न करनेवाले मनुष्यको दूर कर ।

२ मृधः अपघ्नन्— शत्रुको नष्ट कर ।

३ पवसे— तुझे शुद्ध किया जाता है, तुझे छाना जाता है ।

[ ४९३ ] हे सोम ! ( मानुषीः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंके लिए हितकारी पानीको प्रेरणा देते हुए ( यया सूर्यं अरोचयः ) जिस प्रकार तूने सूर्यको प्रकाशित किया, ( अया पवस्व ) उसी धारासे नीचेके वर्तनमें छनता हुआ तू जा ॥ ७ ॥

पानी मनुष्योंका हित करनेवाला है, उस पानीको सोमरसमें मिलाया जाता है; तब वह रस और अधिक चमकने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह सूर्यको भी प्रकाशित करता हो, ऐसा यह सोमरस नीचेके पात्रमें छाना जाता और भरा जाता है ।

[ ४९४ ] हे सोम ! ( महीः अपः वव्रिवांसं ) महान् जल प्रवाहोंको अपने अधिकारमें रखनेवाले ( वृत्राय हन्तवे ) वृत्रको मारनेके लिए ( इन्द्रं आविथ ) इन्द्रको उत्साहित कर और ( सः पवस्व ) वह तू नीचे बर्तनमें छनता जा ॥ ८ ॥

वृत्रने जल प्रवाहोंको रोक दिया था, इन्द्रने वृत्रको मारकर जल बहाया । इस इन्द्रका उत्साह सोम पीनेसे ही बढा था । वृत्रका अर्थ है मेघ । इन्द्र मेघोंको तोडता है और पानी बहाता है । बरसात होती है ।

[ ४९५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अया वीती परिस्रव ) इस प्रकार इन्द्रको सोम पिलानेके लिए तू कलशमें छन । ( ते यः ) तेरा यह रस ( मदेषु ) संग्राममें ( नवतीः नव अवाहन ) शत्रुके निन्यानवे नगरोंको तोडनेके लिए इन्द्रको सामर्थ्यशाली बनाता है ॥ ९ ॥

[ ४९६ ] ( द्युक्षं ) तेजस्वी और ( सनद् रयिं ) देने योग्य धनको और ( वाजं ) बलको ( अन्धसा नः परि भरत् ) अपने अन्नरूपी रससे हममें बढा तथा ( स्वानः पवित्रे आ अर्ष ) रस निकालनेके बाद साफ होकर पात्रमें भरा रह ॥ १० ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ४९७ ] ( वृषा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका तथा ( महान् मित्रः न ) महान् मित्रके समान ( दर्शतः ) दर्शनीय सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता है, ( सूर्येण सं दिद्युते ) और सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

सोमरस चमकता है और उसके रस निकालनेका शब्द भी होता है ।

४९८ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२८ )
४९९ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।५१।१ )
५०० तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।५८।१ )
५०१ आ पवस्व सहस्रिणꣳ रयिꣳ सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।६३।१ )
५०२ अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२३।२ )
५०३ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६५।१९ )
५०४ वृषा सोम द्युमाꣳ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।६४।१ )
५०५ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।६४।१३ )

---

[ ४९८ ] हे सोम ! ( ते ) तेरे ( मयो-भुवं ) सुख देनेवाले ( वह्निं ) धन आदि देनेवाले, ( पान्तं ) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले और ( पुरु-स्पृहं ) अनेक लोगों द्वारा चाहने योग्य ( दक्षं ) बलको हम ( अद्य आवृणीमहे ) आज धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ ४९९ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यू ! ( आद्रिभिः सुतं सोमं ) पत्थरोंसे कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्रे आनय ) छाननेके बर्तनके पास ला ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रको पिलानेके लिए ( पुनाहि ) उसे छानकर पवित्र कर ॥ ३ ॥

[ ५०० ] ( सुतस्य अन्धसः धारा ) सोमरसरूपी अन्नरसकी धारा ( मन्दी ) आनन्द देनेवाली है, ( सः तरत् ) वह सोम नीचभावोंसे दूर रहता है और वह ( धावति ) प्रगति करता है ॥ ४ ॥

सोमरसको पीनेके बाद उत्साह बढता है और उस कारण वह उत्तम काम करने लगता है।

[ ५०१ ] ( सोम ) हे सोम ! ( सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं ) हजारों प्रकारसे उत्तम शक्ति बढानेवाले धन ( आ पवस्व ) हमें दे, और ( अस्मे ) हमें ( श्रवांसि धारय ) अन्न दे ॥ ५ ॥

[ ५०२ ] ( प्रत्नासः आयवः ) प्राचीन लोगोंने ( नवीयः पदं ) नवीन उत्तम स्थान ( अनु अक्रमुः ) प्राप्त किया और ( रुचे ) तेजको प्राप्त करनेके लिए ( सूर्यं ) सूर्यके समान तेजस्वी सोमको ( जनन्त ) उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

सूर्यः— सूर्यके समान तेजस्वी दीखनेवाले सोमरसको निकाला।

[ ५०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( द्युमत्तमः ) अत्यन्त तेजस्वी तू ( द्रोणानि ) पात्रमें ( रोरुवत् अर्ष ) शब्द करता हुआ छनता जा, ( वनेषु योनौ आसीदन् ) और तू वनमें और यज्ञशालामें रह ॥ ७ ॥

सोमरसको छानते समय शब्द होता है, उस समय वह बहुत चमकता है, वनोंमें यज्ञशालायें बनाते हैं, उसमें यह सोमरस तैय्यार किया जाता है।

[ ५०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा द्युमान् असि ) तू बलवान् और तेजस्वी है, हे ( देव ) सोमदेव ! तू ( वृषा वृषव्रतः ) बलवान् और बल बढानेके व्रतका पालन करनेवाला है। ( वृषा धर्माणि दध्रिषे ) बल बढानेवाले धर्मोंको तू धारण करता है ॥ ८ ॥

[ ५०५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) ज्ञानी ऋत्विजों द्वारा छाना जाता हुआ तू ( इषे धारया पवस्व ) अन्नरसकी प्राप्तिके लिए धारासे छनता जा, ( रुचा ) तेजसे ( गाः अभि इहि ) गायोंको प्राप्त हो ॥ ९ ॥

ऋत्विज रस निकालते हैं, और वह रस छाना जाता है, बादमें—

१ गाः अभि इहि— गायको प्राप्त हो। गायका दूध उसमें मिलाते हैं। गायको प्राप्त होनेका अर्थ है, सोममें गायका दूध मिलाना। ( रुचा ) यह सोमरस चमकता है।

५०६ मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

५०७ अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।४७।१ )

५०८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।६२।१० )

५०९ प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥ ( ऋ. ९।४४।१ )

५१० अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ( ऋ. ९।६१।२९ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० १५ । उ० २ । धा० ५७ । फो ॥ ]

इति गायत्र्यः ॥

[ ३ ]

( १-१२ ) सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ) ॥ पवमानः सोमः ॥ बृहती ॥

५११ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।४ )

---

[ ५०६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा ) बल बढानेवाला ( देव-युः ) देवताओंको प्राप्त होनेवाला ( अस्म-युः ) हमें मिलनेवाला ( अव्या ) संरक्षण करनेवाला तू ( वारेभिः ) बालोंकी छाननीसे ( मन्द्रया धारया पवस्व ) आनन्द देनेवाली धारासे शुद्ध हो ॥ १० ॥

१ वारेभिः— बालोंकी छाननी, दशापवित्र, इस छलनीसे सोमरस छाना जाता है।
२ देव-युः— छान कर देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है।
३ अस्मयुः— बादमें ऋत्विज भी पीते हैं।

[ ५०७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अया सुकृत्यया ) इस उत्तम कार्यसे तू ( महान् सन् ) सम्मानके योग्य होकर ( अभ्य-वर्धथाः ) महान् होता है, ( मन्दानः इत् ) आनन्द देकर ( वृषायसे ) बल वढाता है ॥ ११ ॥

सोम स्वयं सम्माननीय है, और वह दूसरोंको भी अधिक बलवान् करता है।

[ ५०८ ] ( वि-चर्षणिः ) विशेष ज्ञान बढानेवाला ( हितः पवमानः ) पात्रमें भरा हुआ और शुद्ध किया हुआ ( अयं ) यह सोमरस ( आप्यं ) जलसे मिश्रित होकर ( बृहत् हिन्वानः ) बहुत अन्न देता हुआ ( सचेतति ) प्रसिद्ध होता है ॥ १२ ॥

[ ५०९ ] ( इन्दो ) हे सोम ! ( नः महे तु न ) हमें बहुत धन मिले, इसके लिए ( प्र अर्षसि ) तू कलशमें छाना जाता है। ( अयास्यः न ) अयास्य ऋषि अब ( ऊर्मिं बिभ्रत् ) तेरी लहरोंको धारण करते हुए ( देवान् अभिः ) देवोंकी पूजा करनेके लिए जाता है ॥ १३ ॥

अयास्य ऋषिने सोमरस छान लिया है, और अब वह आगे यज्ञकर्म करनेके लिए जाता है।

[ ५१० ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम शत्रुओंको मारता है, ( अराव्णः ) दान न देनेवालोंको भी मारता है, और ( इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जाता हुआ ( पवते ) छनता है ॥ १४ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ५११ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) पवित्र होते हुए ( अपः वसानः ) पानीसे मिलते हुए ( धारया अर्षसि ) धारासे तू नीचेके बर्तनमें गिरता है, ( रत्न-धा ) रत्न-धन-देनेवाला तू ( ऋतस्य योनिं ) यज्ञके स्थानपर ( आसीदसि ) जाकर बैठता है, और ( देवः ) प्रकाशित होकर ( हिरण्ययः उत्सः ) चमकते हुए बहता है ॥ १ ॥

५१२ परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
दधन्वाꣳ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१ )

५१३ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।१०७।१० )

५१४ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अꣳशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )

५१५ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )

५१६ तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳरति ताꣳइहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

---

[ ५१२ ] ( यः सोमः उत्तमं हविः ) जो यह सोम है, वह उत्तम हवि है। ( नर्यः ) वह मनुष्योंका हित करनेवाला है, ( यः अप्सु अन्तः दधन्वान् ) जो पानीमें मिला हुआ है, ऐसा ( सोमं अद्रिभिः सुषाव ) यह सोमका रस पत्थरोंसे कूटकर यजमान द्वारा निकाला गया है। हे ऋत्विजो ! इस ( सुतं इतः परिषिंचत ) सोमरसमें पानी मिलाओ ॥ २ ॥

[ ५१३ ] हे ( सोम ) सोम ! तेरा ( अद्रिभिः स्वानः ) पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ रस ( अव्यया वाराणि तिरः ) भेडोंके बालोंकी छाननीसे नीचेके पात्रमें छाना जाता है, ( हरिः चम्वोः ) हरे रंगका यह रस वर्तनमें ( पुरि जनः न ) नगरीमें पुरुष जैसे प्रवेश करते हैं, उस प्रकार ( विशत् ) प्रविष्ट होता है, और ( वनेषु सदः दध्रिषे ) लकडीके वर्तनमें अपने स्थान पर रहता है ॥ ३ ॥

१ वन— जंगल, जंगलमें होनेवाले वृक्षोंकी लकडी, लकडीके वर्तन।

[ ५१४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं देव-वीतये ) तू देवोंके पीनेके लिए ( सिन्धुः न ) सिन्धु नदीके समान ( अर्णसा प्रपिप्ये ) पानीसे मिश्रित किया जाता है। ( मदिरः न जागृविः ) तू आनन्ददायक होनेके साथ साथ जाग्रति उत्पन्न करनेवाला भी है, तू ( अंशोः पयसा ) वर्तनमें पानीसे मिलकर ( मधुश्चुतं कोशं अच्छ ) मीठे रसको उढेलनेवाले वर्तनमें जा ॥ ४ ॥

[ ५१५ ] ( सोतृभिः स्वानः ) रस निचोडनेवाले याजकोंके द्वारा निचोडा गया ( सोमः ) सोमरस ( अवीनां स्नुभिः ) बकरीके बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होकर ( अधि याति ) नीचे बर्तनमें पडता है, ( उ ) यह सत्य है, ( अश्वया इव ) घोडीके समान ( हरिता धारया याति ) हरे रंगकी धारासे यह सोम बर्तनमें जाता है, ( मन्द्रया धारया याति ) आनन्ददायक धारासे यह वर्तनमें जाता है ॥ ५ ॥

[ ५१६ ] हे ( इन्दो सोम ) सोमरस ! ( तव ) तेरी ( सख्ये ) मित्रतामें ( दिवे दिवे अहं ) प्रतिदिन मैं ( रराण ) आनन्दित होऊं, ( बभ्रो ) हे सोम ! ( पुरूणि मां न्यवचरन्ति ) बहुतसे दुष्ट मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, ( तान् परिधीन् अतीहि ) उन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ ६ ॥

५१७ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२१ )

५१८ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।१०७।१४ )

५१९ पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०७।६ )

५२० इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०७।१७ )

५२१ पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।
त्वꣳ समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः । ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२३ )

---

[ ५१७ ] हे ( सु-हस्त्या ) उत्तम हाथोंकी अंगुलिसे निकाले गये सोम ! ( मृज्यमानः ) पवित्र करनेवाला तू ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) नीचे पानीके बर्तनमें पडता हुआ शब्द करता है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( पिशंगं ) पीले रंगके ( बहुलं पुरु-स्पृहं रयिं ) बहुत चाहने योग्य धन ( अभ्यर्षसि ) देता है ॥ ७ ॥

१ समुद्रः— पानीसे भरे हुए बर्तन ।
२ पिशंगं रयिं— पीले रंगका सोना, सोनेके सिक्के ।

[ ५१८ ] ( आयवः मनीषिणः ) मनुष्योंका हित करनेवाले, ज्ञान बढानेवाले ( मत्सरासः मदच्युतः सोमासः ) आनन्द देनेवाले, छाननीसे नीचे गिरनेवाले सोमरस ( समुद्रस्य विष्टपे अधि ) पानीसे भरे हुए कलसेमें ( मद्यं मदं ) आनन्द देनेवाले अपने रसको ( अभि पवन्ते ) साफ करके छोडते हैं ॥ ८ ॥

[ ५१९ ] ( जागृविः प्रियः पुनानः ) उत्साही, प्रिय और शुद्ध होनेवाला तू ( अव्याः वारैः परि ) बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है, हे ( अंगिरस्तम ) अंगिरसोंमें श्रेष्ठ सोम ! तू ( विप्रः ) ज्ञानी, ( अभवः ) हुआ है, अतः अब तू ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञको ( मध्वा मिमिक्ष ) मधुर रससे पवित्र कर ॥ ९ ॥

[ ५२० ] ( मदः सुतः सोमः ) आनन्ददायक निचोडा हुआ सोम ( मरुत्वते इन्द्राय पवते ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए शुद्ध होता है, बादमें वह ( सहस्र-धारः ) अनेक धाराओंसे ( अव्यं अत्यर्षति ) बकरीके बालोंकी छलनीसे छनता है, ( तं ) उसे ( आयवः मृजन्ति ) ऋत्विज शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

[ ५२१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विश्वानि वार्या ) सब स्तोत्रोंसे पवित्र हुआ और ( अभि ) मुख्य रूपसे ( वाज-सातमः ) अन्न प्राप्त करनेवाला तू ( पवस्व ) शुद्ध हो, हे सोम ! ( देवेभ्यः मत्सरः ) देवताओंको आनन्द देनेवाला तू ( समुद्रः ) पानीके बीचमें मिलकर ( विधर्मन् ) विशेष गुणधर्मोंसे युक्त होकर ( प्रथमे ) श्रेष्ठ यज्ञमें पवित्र हो ॥ ११ ॥

५२२ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांऽसि च ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२५ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ इति बृहत्यः ॥ स्व० १९ । उ० ३ । धा ९१ । द ॥

[ ४ ]

( १-१० ) १, ९ उशना काव्यः, २ वृषगणो वासिष्ठः; ३, ७ पराशरः शाक्त्यः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५, १० प्रतर्दनो दैवोदासिः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

५२३ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८७।१ )

५२४ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।७ )

५२५ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९७।३४ )

[ ५२२ ] ( मरुत्वन्तः ) मरुतोंसे युक्त ( मत्सराः ) आनन्द देनेवाले ( इन्द्रियाः ) इन्द्रको चाहनेवाले, ( मेधां प्रयांसि ) स्तुति और अन्नको ( अभि ) सामने रखनेवाले ( हयाः पवमानाः ) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस ( धारया पवित्रं असृक्षत ) धाराके रूपमें छाननीमेंसे नीचे गिरने लगते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ५२३ ] हे सोम ! ( तु प्रद्रव ) तू शीघ्र जा, और ( कोशं परि निषीद ) बर्तनमें जाकर रह, ( नृभिः पुनानः ) याजकोंके द्वारा शुद्ध किए जानेके बाद ( वाजं अभ्यर्ष ) अन्न यजमानको दे, ( वाजिनं अश्वं न ) बलवान् घोडेको जैसे शुद्ध करते हैं, उसी प्रकार ( त्वा मर्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले ऋत्विज ( रशनाभिः बर्हिं अच्छ नयन्ति ) अंगुलियोंसे यज्ञ स्थानके पास तुझे लेजाते हैं ॥ १ ॥

[ ५२४ ] ( उशना इव ) उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणः ) स्तोत्र बोलनेवाला ( देवः ) स्तोता ( देवानां जनिमा प्र विवक्ति ) देवोंके जन्म वृत्तान्तोंका वर्णन करता है । ( महि-व्रतः शुचि-बन्धुः पावकः ) महान् व्रत करनेवाला, शुद्ध तेजसे युक्त और शुद्धि करनेवाला ( वराहः ) उत्तम श्रेष्ठ दिनमें निकाला हुआ सोमरस ( रेभन् पदा अभ्येति ) शब्द करते हुए पात्रमें जाता है ॥ २ ॥

[ ५२५ ] ( वह्निः ) हवि लेजानेवाला यजमान ( तिस्रः वाचः ) ऋक्, यजु, साम इन तीनोंसे स्तुति ( प्रेरयति ) करता है, ( ऋतस्य धीतिं ) यज्ञको धारण करनेवाली ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे की गई स्तुति वह बोलता है, ( गोपतिं गावः यन्ति ) बैलके पास जैसे गायें जाती हैं, उसी प्रकार. ( पृच्छमानाः वावशानाः ) पृच्छा करनेवाले, इच्छा करनेवाले तथा ( मतयः ) स्तुति करनेवाले ( सोमं यन्ति ) सोमके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ पृच्छमानाः— श्रेष्ठताका विचार करनेवाले ।
२ वावशानाः— सुखकी इच्छा करनेवाले ।
३ मतयः— बुद्धिमान्, स्तुति करनेवाले ।
४ सोमं यन्ति— सोमयागमें जाते हैं ।

५२६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९७।१ )

५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९६।५ )

५२८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।९०।२ )

५२९ अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९७।४० )

---

[ ५२६ ] ( अस्य प्रेषा ) इस यज्ञका प्रेरक ( हेमना पूयमानः ) सुवर्णसे पवित्र हुआ ( देवः रसं ) दिव्य सोमरस ( देवेभिः समपृक्त ) देवोंको दिया जाता है, ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) निचोडा हुआ यह सोमरस छाननीसे बर्तनमें गिरता है। ( होता मिता ) हवन और यज्ञ करनेवाला तथा ( पशुमन्ति सद्म इव ) गायोंको रखनेवाला जैसे यज्ञशालामें जाता है, उसी तरह सोमरस बर्तनमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ हिरण्यपाणिः अभिषुणोति— ( सा० भा० ) सोनेकी अंगूठी पहने हुए हाथोंसे सोमरस निकाला जाता है।

[ ५२७ ] ( मतीनां जनिता ) बुद्धिको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) द्युलोकको उत्पन्न करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला ( अग्नेः जनिता ) अग्निको उत्पन्न करनेवाला ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्रको उत्पन्न करनेवाला ( उत विष्णोः जनिता ) और विष्णुको उत्पन्न करनेवाला ( सोमः पवते ) सोम पवित्र किया जा रहा है। छाना जारहा है ॥ ५ ॥

सोमयाग प्रारंभ होनेपर देव आते हैं। इसलिए सोमको यहाँ देवोंका लानेवाला या प्रेरक बताया है, उसीको आलंकारिक भाषामें देवोंको उत्पन्न करनेवाला कहा है।

[ ५२८ ] ( त्रि-पृष्ठं ) तीन स्थानोंमें रहनेवाले, ( वृषणं वयो-धां ) बलवान् और अन्नदाता सोमकी ( अंगोषिणं ) ऊंचे स्वरसे ( वाणीः वावशन्त ) स्तोताकी वाणियां स्तुति करती है। ( सिन्धुः वरुणः न ) जैसे पानीमें वरुण रहता है, उसी तरह ( वना वसानः ) पानीमें मिला हुआ सोम ( रत्न-धाः ) रत्न और ( वार्याणि दयते ) धन स्तोताओंको देता है ॥ ६ ॥

[ ५२९ ] ( समुद्रः ) जलमें मिला हुआ ( गो-पाः ) गायोंका पालन करनेवाला, ( वृषा ) बल बढानेवाला ( स्वानः ) रस निकाला हुआ सोम ( प्रथमे ) पहलें ( भुवनस्य विधर्मन् ) प्रजाओंको उत्साह देते हुए ( प्रजाः जनयन् ) प्रजाजनोंकी उन्नति करते हुए ( अक्रान् ) सबसे श्रेष्ठ हो गया है ॥ ७ ॥

१ गोपाः — गायका पालन करनेवाला, सोमरसमें गौ दूध मिलाते है, इसलिए सोम गौवोंको पालनेवाला है।
२ भुवनस्य विधर्मन् — भुवनमें प्राणियोंका उत्साह बढाता है।
३ प्रजाः जनयन् — प्रजाओंमें शक्ति बढाता है।

*

५३० कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ ९।९५।१ )

५३१ एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।८७।४ )

५३२ पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।९६।१३ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ ॥ [ स्व० १८ । उ० ३ । धा० ८७ । जे ॥ ]

[ ५ ]

( १-१२ ) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, १० पराशरः शाक्त्यः, ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ कर्णश्रुद्वासिष्ठः; ६ नोधा गौतमः; ७ कण्वो घौरः; ८ मन्युर्वासिष्ठः; ९ कुत्स आङ्गिरसः; ११ कश्यपो मारीचः; १२ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

५३३ प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९६।१ )

---

[ ५३० ] ( आ सृज्यमानः ) रस निकाले जानेवाला ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( कनिक्रन्ति ) शब्द करता है, छानते समय उसका शब्द होता है, ( पुनानः ) पवित्र किया जाता हुआ ( वनस्य जठरे सीदन् ) वनकी लकडीसे तैय्यार किए गए बर्तनमें पडता हुआ ( नृभिः यतः ) मनुष्यों द्वारा दवाकर निकाला गया सोम ( गां निर्णिजं कृणुते ) गायके दूधका रूप धारण करता है। गौ दुग्धमें वह मिलाया जाता है। इसकी ( मतिं स्वधाभिः जनयत ) स्तुति हविष्यान्नके साथ यज्ञकर्ता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ५३१ ] हे इन्द्र ! ( वृष्णः ते ) बल बढानेवाले तेरा ( एषः स्यः ) यह वह सोम ( मधुमान् वृषा ) मीठा और बलवान् होकर ( पवित्रे पर्यक्षाः ) बर्तनमें टपकता है, उसी प्रकार वह ( सहस्रदाः शतदाः ) हजारों और सैंकडों और ( भूरिदावा ) बहुतसा धन देनेवाला ( वाजी ) बलवान् सोम ( शश्वत्तमं बर्हिः ) निरन्तर चलनेवाले यज्ञमें जाकर ( अस्थात् ) बैठता है ॥ ९ ॥

[ ५३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मीठा तू ( अपः वसानः ) पानीमें मिलकर ( अधि सानोः अव्ये पवस्व ) ऊंचे स्थानपर रखे हुए बकरीके बालकी छलनीसे छनता जा, उसके बाद ( मन्दितमः ) आनन्ददायक और ( इन्द्र-पानः ) इन्द्रके पीने योग्य ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला यह सोम ( घृतवन्ति द्रोणानि ) जलयुक्त पात्रमें ( अवरोह ) जाकर रहता है ॥ १० ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ५३३ ] ( सेनानीः ) सेनाको चलानेवाला ( शूरः सोमः ) शूर सोम ( गव्यन् ) गायकी इच्छा करते हुए ( रथानां अग्रे ) रथके आगे ( प्रैति ) जाता है, ( अस्य सेना हर्षते ) इसकी सेना आनन्दित होती है। ( सखिभ्यः ) मित्रोंके लिए-याजकोंके लिए ( इन्द्र-हवान् भद्रान् कृण्वन् ) इन्द्रकी प्रार्थनाको कल्याणकारी बनाते हुए ( रभसानि वस्त्रा आदत्ते ) तेजस्वी वस्त्रोंको धारण करता है ॥ १ ॥

१ सेनानीः— सेना, याजकोंका समूह ।

२ सोमः गव्यन्- सोम गायकी इच्छा करता है। सोम अपनेमें गायका दूध मिलाया जाए, ऐसी इच्छा करता है।

३ अस्य सेना हर्षते— सब याजकोंको आनन्द होता है ।

४ रभसानि वस्त्रा आदत्ते—तेजस्वी वस्त्रोंको धारण करता है। दूध मिलानेके कारण वह तेजस्वी होता है

५३४ प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।३१ )

५३५ प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमꣳहिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९७।४ )

५३६ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजꣳ सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा सꣳशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९०।१ )

५३७ तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९७।२२ )

५३८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी । ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।९३।१ )

---

[ ५३४ ] ( यत् पूतः अव्यं वारं अत्येषि ) जब पवित्र होनेके लिए बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे वर्तनमें गिरता है, तब ( ते मधुमतीः धाराः प्रासृग्रन् ) तेरी मीठी धारायें बहती हैं। हे ( पवमान ) पवित्र सोम! ( धाम पवसे ) दूधमें तू पवित्र होता है। ( जनयन् ) उत्पन्न होनेके बाद मानों ( अर्कैः सूर्यं अपिन्वः ) तू अपने तेजसे सूर्यको चमकाता हैं ॥ २ ॥

१ धाम पवसे— अपने स्थानसे पवित्र होता है। दूध सोमका स्थान है। सोममें दूध मिलाया जाता है।

२ अर्कैः सूर्यं अपिन्वः— तेजसे सूर्यको पूर्ण करता है। सोमरस विशेष चमकने लगता है।

[ ५३५ ] ( प्र गायत ) सोमकी स्तुति करो, ( देवान् अभि अर्चामः ) देवोंकी हम पूजा करें ( महते धनाय सोमं हिनोत ) बहुत धनकी प्राप्तिके लिए सोमको प्रेरित करो। ( स्वादुः अव्यं वारं अति पवतां ) पश्चात् यह मीठा रस बकरीके बालोंकी छलनीसे छाना जावे ( देवः इन्दुः ) यह तेजस्वी सोमरस ( कलशं अति आसीदतु ) कलसेमें भरा रहे ॥ ३ ॥

[ ५३६ ] ( प्र हिन्वानः ) गति करनेवाला या बहनेवाला ( रोदस्योः जनिता ) द्यावापृथिवीका उत्पादक यह सोम ( इन्द्रं गच्छन् ) इन्द्रके पास जाता हुआ ( वाजं सनिषन् ) अन्नको देता है। ( आयुधा सं शिशानः ) शस्त्रोंको उत्तम रीतिसे तीक्ष्ण करता हुआ यह सोम ( विश्वा वसु हस्तयोः आदधानाः ) सब धन अपने दोनों हाथोंसे धारण करता हुआ ( प्र अयासीत् ) हमें देनेके लिए आया है ॥ ४ ॥

[ ५३७ ] ( वेनतः मनसः वाक् ) उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके मनमें विचारों द्वारा प्रेरित स्तुति ( यत् तक्षत् ) जिसको तैय्यार करती है, उस ( धर्मं ज्येष्ठस्य द्युक्षोः अनीके ) यज्ञके श्रेष्ठ हविके पास सोमकी प्रशंसा होती है, ( आ वरं जुष्टं ) इसके बाद अच्छी तरह तैय्यार किए गए ( प्रतिं ) पालक और ( कलशे ) कलशमें रहनेवाले ( ईं इन्दुं ) इस सोमके पास ( वावशानाः गावः आयन् ) इच्छा करनेवाली गायें आती है ॥ ५ ॥

यज्ञोंमें स्तोत्रोंका गान होता है, सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, वह कलशमें छाना जाता है, और बादमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इस विधिका यह आलंकारिक वर्णन है।

[ ५३८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक जगह रहकर कार्य करनेवालीं बहिनें-अंगुलियां ( मर्जयन्तः ) सोमको शुद्ध करती हैं, ये ( दश धीतयः ) दस अंगुलियां ( धीरस्य धनुत्रीः ) सामर्थ्यवान् सोमको धारण करती और हिलाती हैं। यह ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत् ) सूर्यके द्वारा उत्पन्न दिशाओंमें घुमाया जाता है। ( अत्यः वाजी न ) बेगसे दौडनेवाले घोडेके समान यह सोम ( द्रोणं ननक्षे ) कलसेमें गिरता है ॥ ६ ॥

५३९ अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९४।१ )

५४० इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

५४१ अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।९७।५२ )

---

[ ५३९ ] ( अस्मिन् वाजिनि इव शुभः ) जिस प्रकार घोडेको जेवर पहनाकर उसे सजाते हैं, उसी प्रकार ( सूरे विशः न ) सूर्यकी किरणें उस सोमकी शोभा बढाती हैं, ( धियः अधि स्पर्धन्ते ) बुद्धिपूर्वक अंगुलियां रस निकालनेमें स्पर्धा करती हैं, ( अपः वृणानः ) पानीमें मिलाते हुए और ( कवीयान् पवते ) स्तोत्रोंको सुनते हुए सोम छनता जाता है, जिस प्रकार ( पशुवर्धनाय मन्म व्रजं न ) पशु संवर्धनके लिए गोपाल उत्तम गोशालामें जाता है. ॥ ७ ॥

१ वाजिनि शुभः— जैसे घोडोंको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोममें दूध आदि मिलाकर उसकी शोभा बढाते हैं ।

२ सूरे विशः— सूर्यमें जैसे किरणें चमकती हैं, उसी तरह सोमका तेज चमकता है ।

३ धियः अधि स्पर्धते— बुद्धिपूर्वक अंगुलियां रस निकालनेकी स्पर्धा करती हैं। इस तरह रस बढता है ।

४ कवीयान्— रस निकालते हुए स्तोत्रोंका पाठ किया जाता है ।

५ पवते— सोमरस छाना जाता है।

६ पशुवर्धनाय मन्म व्रजं— पशुसंवर्धनके लिए जैसे गोपाल गोशालामें जाता है, वैसे ही सोम बर्तनमें छाना जाता है ।

[ ५४० ] ( वाजी इन्दुः ) बलवान् ( गोन्योधाः ) नीचे रखे बर्तनमें छाना जानेवाला ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रका बल बढानेवाला ( वरिवः कृण्वन् ) याजकोंको धन देता हुआ ( वृजनस्य राजा सोमः ) बलका राजा सोम ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है । वह ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंको मारता है, और ( अ-रातिं परि बाधते ) दुष्टोंको दूर करता है ॥ ८ ॥

[ ५४१ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इस शुद्ध हुई धारासे ( एना वसूनि पवस्व ) ये धन हमें दे, हे ( इन्दो ) सोम ! ( मांश्चत्वे ) सम्मानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सरसि ) पानीके कलसेमें ( प्र धन्व ) जा । ( यस्य ब्रध्नश्चित् ) जिसका मूल आधार आदित्य ( वातः न ) जिस प्रकार वायुको प्रेरित करता है, उसी तरह ( नरं जूतिं धात् ) नेतासे वेगको वह सोम धारण करता है, और वह सोम ( पुरु-मेधाः चित् ) बहुत बुद्धिमान् इन्द्रको भी ( तकवे ) प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ अया पवा— एक धारसे सोम छाना जाता है । बादमें—

२ सरसि प्र धन्व— पानीके कलसेमें पहुंचता है । छाननेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है ।

३ ब्रध्नः वातः न— सूर्य जैसे वायुको प्रेरित करता है, उस तरह छाननेवाला सोमको गति देता है, और वह ( पुरु-मेधाः तकवे ) बुद्धिमान् इन्द्रको दिया जाता है ।

४ मांश्चत्वे सरसि प्र धन्व— जैसे लोग संमाननीय लोगोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार पानी सम्मानके योग्य सोममें मिलाया जाता है ।

५४२ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।९७।४१ )

५४३ असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निꣳसदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।९१।१ )

५४४ अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।९५।३ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १९ । उ० ३ । धा० ८२ । बा ॥ ]

इति त्रिष्टुभः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

---

[ ५४२ ] ( महिषः सोमः ) महान् बलवान् सोम ( महत् तत् चकार ) उन महान् कार्योंको करता है । उसके कार्य ये हैं-( यत् अपां गर्भः ) पानीको अपने गर्भमें धारण किया, बादमें ( देवान् अवृणीत ) देवोंको प्राप्त किया ( पवमानः इन्द्रे ओजः न्यधात् ) शुद्ध हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्यको स्थापित किया और ( इन्दुः सूर्ये ज्योतिः ) सोमने सूर्यमें तेज ( अजनयत् ) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

१ अपां गर्भः— पानीको अपने गर्भमें धारण किया । सोममें पानी मिलाया जाता है ।

२ देवान् अवृणीत— देवोंका वरण किया । देवोंको पीनेके लिए सोम दिया जाता है ।

३ इन्द्रमें बल बढाया, सूर्यमें तेज बढाया । सोमरस पीनेके कारण देवोंका सामर्थ्य बढा ।

[ ५४३ ] ( मन ऊता ) सबका मन जिसमें संलग्न है, ( प्रथमा मनीषा ) पहले ही जिसकी स्तुति की है, वह ( वक्वा ) शब्द करनेवाला सोम ( आजौ धिया ) यज्ञमें स्तोत्र पाठके साथ ( रथ्ये यथा ) जिस प्रकार संग्राममें घोडे भेजे जाते हैं, उस तरह ( असर्जि ) पानीमें मिलाया जाता है ( दश स्वसारः ) दश अंगुलियां ( सदनेषु वह्निं ) यज्ञ स्थानमें पहुंचनेवाले सोमको ( सानो अधि ) उच्च स्थानपर ( अव्ये अच्छ मृजन्ति ) बकरीके बालोंकी छाननीसे उत्तम रीतिसे शुद्ध करती हैं ॥ ११ ॥

१ मनोता— मन जिस पर लग गया है, वह सोम ।

२ प्रथमा मनीषा— प्रथम जिसकी स्तुति की है, ऐसा सोम ।

३ वक्वा— शब्द करनेवाला; छाने जाते हुए यह शब्द करता है ।

४ आजौ धिया असर्जि— यज्ञमें स्तोत्र पाठ करते हुए सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

५ अव्ये मृजन्ति— बकरीके बालकी छाननीसे छाना जाता है ।

[ ५४४ ] ( अपां ऊर्मयः इव ) पानीकी लहरें जिस प्रकार जल्दी चलती हैं, उस प्रकार ( तर्तुराणाः इत् ) शीघ्रता करनेवाले ऋत्विज ( मनीषाः ) स्तुतियोंको ( सोमं अच्छ प्र ईरते ) सोमके पास शीघ्र प्रेरित करते हैं । ( उशतीः नमस्यन्तीः ) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली और नमस्कार करनेवाली स्तुतियां ( उशन्तं तं उपयन्ति च ) इच्छा करनेवाले सोमके पास पहुंचती हैं । ( सं आविशन्ति च ) और उसमें प्रवेश करती हैं ॥ १२ ॥

सब ऋत्विज सोमकी एकदम स्तुति करते हैं ।

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

( १-९ ) १ अन्धीगुः श्यावाश्विः; २ नहुषो मानवः; ३ ययातिर्नाहुषः; ४ मनुः सांवरणः; ५, ८, अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिष्वा भारद्वाजश्च; ६, ७ रेभसूनू काश्यपौ; ९ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ पवमानः सोमः ॥ अनुष्टुप्; ७ बृहती ॥

अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ ६ ॥

५४५ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानँश्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१ )

५४६ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०१।७ )

५४७ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०१।४ )

५४८ सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१० )

५४९ अभी नो वाजसातमँ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९८।१ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ ५४५ ] ( सखायः ) स्तुति करनेवाले याजको ! ( वः ) तुम ( पुरोजिती अन्धसः ) आगे रखे हुए सोमरूपी अन्नके ( मादयिष्णवे सुताय ) आनन्द देनेवाले इस रसके पास ( दीर्घ-जिन्ह्यं श्वानं अपश्नथिष्टन ) जानेकी इच्छा-वाले वडी जीभ वाले कुत्तेको दूर हटावो ॥ १ ॥

कुत्ते सोमरस न चाटें ऐसा करो ।

[ ५४६ ] ( पूषा भगः रयिः अयं सोमः ) पोषण करनेवाला, सेवन करने योग्य, शोभावान् ऐसा यह सोमरस ( पुनानः अर्षति ) छाना जाता हुआ नीचेके वर्तनमें गिरता हे । ( विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोमरस ( उभे रोदसी व्यख्यत् ) दोनों ही द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

सोमरस चमकता है, इसलिए आलंकारिक भाषामें उसे दोनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला बताया है ।

[ ५४७ ] ( मधुमत्तमाः मन्दिनः ) मीठे और आनन्द बढानेवाले ( सुतासः ) सोमरस ( पवित्रवन्तः ) छनते हुए इन्द्रके लिए तैय्यार होते हे, हे सोम ! ( वः ) तुम्हारे ( मदाः ) ये आनन्ददायक रस ( देवान् गच्छन्तु ) देवोंके पास पहुंचें ॥ ३ ॥

[ ५४८ ] ( गातु-वित्-तमाः ) मार्गोंको उत्तमरीतिसे जाननेवाले ( मित्राः ) मित्रके समान ( स्वानाः ) रस निकाले हुए ( अ-रेपसः ) निष्पाप ( स्वाध्यः ) मनको उत्तमतासे एकाग्र करनेवाले ( स्वः-विदः इन्दवः ) आत्म-ज्ञानी ये ( सोमाः ) सोमरस ( अस्मभ्यं पवन्ते ) हमारे लिए पवित्र होते हैं, छाने जाते हे ॥ ४ ॥

[ ५४९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( शत-स्पृहं ) सैकडों जिसकी प्रशंसा करते हैं ( सहस्र-भर्णसं ) हजारोंका जो पोषण करता है ( तुविद्युम्नं ) वहुत तेजस्वी ( विभा-सहं ) विशेष प्रकाशकी अपेक्षा भी अधिक प्रकाशमान् ( वाज-सातमं ) वल वढानेवाले ( रयिं ) धन ( नः अभ्यर्ष ) हमें दे ॥ ५ ॥

१ विभा-सहं— विशेष तेजस्वी लोकोंसे भी यह सोम अधिक तेजस्वी है ।

५५० अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातंरिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

५५१ आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९९।१ )

५५२ परि त्यंहर्यतंहरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वांइत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९८।७ )

५५३ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसंहता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१३ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १० । उ० ५ । धा० ६१ । म ॥ ]
इत्यनुष्टुभः ( एका बृहती ) ॥

---

[ ५५० ] ( मातरः ) गौमातायें ( पूर्वे आयुनि जातं वत्सं ) पहली आयुमें उत्पन्न हुए बछडेको ( रिहन्ति न ) चाटती हैं, उस प्रकार ( अ-द्रुहः ) द्रोह न करनेवाले जल ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ) इन्द्रके प्रिय और चाहने योग्य सोमको ( अभि नवन्ते ) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अ-द्रुहः इन्द्रस्य प्रियं अभि नवन्ते— द्रोह न करनेवाले जल, इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोमको प्राप्त होते हैं । जल सोमरसमें मिलाया जाता है ।

[ ५५१ ] ( हर्यताय ) सबोंसे पूजनीय और ( धृष्णवे ) शत्रुका पराजय करनेवाले सोमको ( पौंस्यं धनुः आतन्वन्ति ) जैसे पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले धनुष लेकर उसपर डोरी चढाते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज छाननेके लिए तैय्यार करते हैं । ( विपां अग्रे ) विद्वानोंके आगे ( महीयुवः शुक्राः ) पृथ्वीपर पूजित होनेवाले अध्वर्यु स्वच्छ गायके दूधको ( असुराय निर्णिजे ) बलवान् सोमके रूपको चमकानेके लिए ( वयन्ति ) आच्छादित करते हैं ॥ ७ ॥

१ क्षत्रिय जिस प्रकार धनुषपर डोरी चढाकर युद्धकी तैय्यारी करते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज सोम छाननेकी तैय्यारी करते हैं ।

२ स्वच्छ गायके दूधसे सोमरसको ढक देते हैं । अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाते हैं ।

[ ५५२ ] ( हर्यतं हरिं ) सुन्दर हरे रंगके और ( बभ्रुं त्यं ) भूरे रंगके उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) ऊनकी छाननीसे छाना जाता है। ( यः ) वह सोम ( विश्वान् देवान् इत् ) सब देवोंके पास ( मदेन सह परि गच्छति ) अपने आनन्ददायक गुणोंके साथ जाता है ॥ ८ ॥

[ ५५३ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) सोमका रस निकालनेके बाद उस अन्नका ( तत् वचः ) वह वर्णन ( मर्तः न प्रवष्ट ) सभी मनुष्य न सुनें, ( अ-राधसं मखं भृगवः न ) जैसे दान-दक्षिणासे रहित यज्ञको भृगुऋषिने दूर कर दिया उसी प्रकार ( श्वानं अप हत ) कुत्तेको दूर करो ॥ ९ ॥

१ अन्धसः तत् वचः मर्तः न प्रवष्ट— सोमरसके उस वर्णनको सभी आदमी न सुनें। केवल विशेष योग्यतावाले ही उसे सुनें ।

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

( १-१२ ) १-३, ५ कविर्भार्गवः; ४, ६ सिकता निवावरी; ७ रेणुर्वैश्वामित्रः; ८ वेनो भार्गवः; ९ वसुर्भारद्वाजः; १० वत्सप्रिर्भालन्दः; ११ गृत्समदः; शौनकः; १२ पवित्र आङ्गिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ जगती ॥

५५४ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७५।१ )

५५५ अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७९।१ )

५५६ एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।७७।१ )

५५ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।७६।६ )

---

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ ५५४ ] ( चनो-हितः ) अन्न अर्थात् हितकारक सोम ( प्रियाणि नामानि अभि पवते ) प्रिय जलोंमें मिलाकर छाना जाता है । ( येषु यह्वः अभिवर्धते ) उन जलोंमें वह मिलकर बढता है, बादमें ( बृहन् ) महान् होकर ( बृहतः सूर्यस्य ) महान् सूर्यके ( विष्वंचं रथं अधि ) सब जगह जानेवाले रथपर ( विचक्षणः आरुहत् ) विश्वको देखनेवाला सोमदेव चढता है ॥ १ ॥

[ ५५५ ] ( अ-चोदसः ) किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित न होनेवाले ( हरयः स्वानासः ) हरे रंगके उत्तम रीतिसे निकाले गये ( इन्दवः ) सोमरस ( नः बृहद्देवेषु प्र धन्वन्तु ) हमारे यज्ञमें हमें प्राप्त हों । ( अ-रातयः ) दान न करनेवाले ( नः अरयः ) हमारे शत्रु ( इषयः ) अन्नकी इच्छा करते हुए ( अश्नानाः वि चित् ) भूखे-अन्न न पानेवाले ( सन्तु ) होवें, ( नः धिया सनिषन्तु ) हमारे स्तोत्र देवोंको प्राप्त होवें ॥ २ ॥

१ अ-रातयः नः अरयः इषयः अश्नानाः वि चित्— हमारे शत्रुओंको खानेके लिए अन्न न मिलें, वे वैसेही बिना अन्नके भूखे रहें ।

[ ५५६ ] ( इन्द्रस्य वज्रः ) इन्द्रका वज्र मानों यही है, ऐसा ( वपुषा वपुष्टमः ) बलसे बहुत बलशाली ( एषः मधुमान् ) यह मीठा सोमरस ( कोशे प्र अचिक्रदत् ) कलसेमें शब्द करता है । ( ऋतस्य ) यज्ञके लिए ( सुदुघः घृतश्चुतः ) उत्तम रूपसे दूध देनेवालीं, और घी चुवानेवालीं ( वाश्राः पयसा धेनवः च ) रंभाती हुई दुधारु गायें ( अभि अर्षन्ति ) पास आती हैं ॥ ३ ॥

१ सोमके पास दुधारु गायें आती हैं,-सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ।

[ ५५७ ] ( इन्दुः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्थानमें-पेटमें ( प्र उ अयासीत् ) जाता है और वहां जाकर ( सखा ) मित्ररूपी यह सोम ( सख्युः संगिरं ) मित्ररूपी इन्द्रके पेटमें ( न प्र मिनाति ) कोई भी कष्ट नहीं देता, ( युवतीभिः मर्यः इव ) जिस प्रकार तरुण पुरुष अनेक स्त्रियोंके साथ रहता है, उस प्रकार सोम जलके साथ ( सं अर्षति ) मिलकर रहता है । यह सोम ( शत-यामना पथा ) सौ छेदवाले छलनीके रास्ते ( कलशे ) कलशमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ युवतिभिः मर्यः इव सं अर्षति— अनेक स्त्रियोंके साथ जैसे एक पति मिलकर रहता है, उस प्रकार सोम जलमें मिलाया जाता है अर्थात् सोमरस बहुत सारे जलमें मिलाया जाता है ।

५५८ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।७६।१ )
५५९ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८६।१ )
५६० त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ ७ ॥ ऋ ९।७० ।१ )
५६१ इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥ ( ऋ.९।८५।१ )
५६२ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ऋ ९।८२।१ )

---

[ ५५८ ] ( धर्ता कृत्व्यः रसः ) धारणशक्तिसे युक्त कर्म करनेवाला यह सोमरस ( देवतानां दक्षः ) देवताओंका बल बढानेवाला ( नृभिः अनुमाद्यः ) ऋत्विजों द्वारा प्रशंसित ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( दिव पवते ) उपरके बर्तनसे छनता हुआ नीचेके कलशमें गिरता है । ( सत्वभिः सृजानः ) बलवान् ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह रस ( अत्य न ) घोडेके समान ( वृथा ) सरलतासे ही ( पाजांसि ) अपनी शक्तिसे ( नदीषु कृणुते ) नदीके जलमें अपनेको मिलाता है ॥ ५ ॥

[ ५५९ ] ( मतीनां वृषा ) स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला ( वि-चक्षणः ) विशेष ज्ञानी ( अह्नां उषसां दिवः ) दिन, उषा और सूर्यके बलको ( प्रतरीता ) बढानेवाला ( सोमः पवते ) सोम छाना जाता है । ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदीके प्राणरूपी जलमें मिलाया गया ( मनीषिभिः ) ज्ञानी ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह सोमरस ( इन्द्रस्य हार्दि आविशत् ) इन्द्रके पेटमें जानेके लिए ( कलशान् अभि ) कलशमें ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ ५६० ] ( परमे व्योमनि ) श्रेष्ठ यज्ञमें रहनेवाले ( अस्मै ) इस सोमरसके लिए ( त्रि सप्त धेनवः ) इक्कीस गायें ( सत्यां आशिरं दुदुह्रिरे ) निश्चयसे दूध देती हैं, और यह सोम ( यत् ऋतैः अवर्धत ) जब यज्ञसे बढाया जाता है । तब ( अन्या चत्वारि भुवना ) दूसरे चार भुवनोंमें जलके चार बर्तनोंमें निर्णिजे छानकर शुद्ध करनेके लिए ( चारूणि चक्रे ) उत्तम कल्याणकारी पद्धतिसे शुद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥

बारह मास, पांच ऋतु, तीन लोक और यह आदित्य मिलकर २१ गायें है, यह भाव यहां दिखाया है ।

[ ५६१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( सु-षुतः ) उत्तम प्रकारसे रस निकालनेके बाद ( इन्द्राय परिस्रव इन्द्रके लिए प्रवाहित हो, ( अमीवा रक्षसा सह अप भवतु ) रोग राक्षसोंके साथ दूर हो जाएं ( ते रसस्य ) तेरे रसको पीकर ( द्वया विनः ) सत्य और असत्य दोनोंका आचरण करनेवाले दुष्ट आनन्दित न हों । ऐसे दुष्टोंको सोमरस पीनेको न मिले । ( इन्दवः ) सोमरस ( इह ) इस यज्ञमें ( द्रविणस्वन्तः सन्तु ) धनयुक्त होवें ॥ ८ ॥

[ ५६२ ] ( अरुषः वृषा ) तेजस्वी, बलवर्धक ( हरिः सोमः ) हरे रंगका सोमरस ( असावि ) निकाला है । यह ( राजा इव दस्म ) राजाके समान सुन्दर है । ( गाः अभिः ) गायका दूध मिलानेके बाद ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ वह ( पुनानः ) छाने जाते हुए ( अव्यं वारं अत्येषि ) बकरीके बालोंकी बनी छाननीसे छाना जाता है, छाना जानेके बाद ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आ सदत् ) जलयुक्त कलशमें वह जाकर रहता है ॥ ९ ॥

*

५६३ प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया नि. र्णं धिरे ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६८।१ )

५६४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳरिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुऽच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳहिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।८६।४३ )

५६५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।८३।१ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० १५ । उ० ११ । धा० १३७ । पे ॥ ]

इति जगत्यः ॥

[ ८ ]

( १-१२ ) १, ७, ११ अग्निश्चाक्षुषः; २ चक्षुर्मानवः; ३, ४, ९, १० पर्वतनारदौ काण्वौ ( ३, १० शिखण्डिन्याऽप्सरसौ काश्यपौ वा ); ५ त्रित आप्त्यः; ६ मनुराप्सवः; ८, १२ द्वित आप्त्यः; ॥ पवमानः सोमः ॥ उष्णिक् ॥

५६६ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०६।१ )

---

[ ५६३ ] ( मधुमन्तः इन्दवः ) मीठे सोमरस ( देवं अच्छ ) इन्द्र देवके पास ( प्रासिष्यदन्त ) प्रवाहित होते हैं, बर्तनमें डाले जाते हैं ( न धेनवः गावः आ ) जैसे दुधारु गायें बछडेके पास जाती हैं ( बर्हिषदः वचनवन्तः उस्रियाः ) यज्ञशालामें रहनेवाली और शब्द करनेवाली गायें ( ऊदभिः परिश्रुतं निर्णिजं ) अपने थनोंसे टपकनेवाले दूधमें सोमरसको ( धिरे ) धारण करती हैं। सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ॥ १० ॥

[ ५६४ ] ( अंजते ) ऋत्विज सोमरसको गायके दूधमें मिलाते हैं ( वि अंजते ) विशेष रीतिसे मिलाते हैं। ( सं अंजते ) अच्छी तरह मिलाते हैं। देवगण ( क्रतुं रिहन्ति ) इस सोमरसका स्वाद लेते हैं, ( मध्वा अभि अंजते ) शहद और घी उसमें मिलाते हैं। बादमें ( सिन्धोः उच्छ्वासे ) नदीके पानीमें ( पतयन्तं उक्षणं ) पडे हुए सोमको ( हिरण्य पावः ) सोनेसे पवित्र करते हुए ( पशुं गृभ्णते ) तेजस्वी रूप देते हैं ॥ ११ ॥

१ उक्षा- सोम, पशु- ( पश्यति इति ), द्रष्टा, देखनेवाला, अन्धेरेमें चमकनेवाला ।

२ हिरण्य-पावः— हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनकर रस निकालते हैं और बादमें उन्हीं हाथोंसे छानते हैं।

[ ५६५ ] हे ( ब्रह्मणस्पते ) ज्ञानपते सोम ! ( ते पवित्रं विततं ) तेरे पवित्र अंग सब जगह फैले हुए हैं ( प्रभुः गात्राणि पर्येषि ) तू सामर्थ्यशाली होनेके कारण पीनेवालेके शरीरमें स्फूर्ति बढाता है, ( विश्वतः ) सब जगह ही यह नियम है कि ( अ-तप्त तनूः ) तपसे बिना तपे हुए शरीरवाले ( आमः ) कच्चे व्रतवाले मनुष्यको वह फल ( न अश्नुते ) नहीं मिलता, लेकिन ( शृतासः इत् ) परिपक्व होनेके बाद ही ( तत् समासते ) उसे वह प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

॥ यहां नौवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ ५६६ ] ( श्रुष्टे जातासः इन्दवः ) शीघ्र तैय्यार हुए ( स्वः विदः ) आत्मज्ञान बढानेवाले ( इमे हरयः सुताः ) ये हरे रंगके सोमरस ( वृषणं ) बलवान् इन्द्रके पास ( अच्छ यन्तु ) सीधे पहुंचे ॥ १ ॥

५६७ प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्द्रो परि स्रव । द्युमन्तꣳशुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०६।४ )

५६८ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥
( ऋ. ९।१०४।१ )

५६९ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥
( ऋ. ९।१०५।१ )

५७० प्राणा शिशुर्महीनाꣳहिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥
( ऋ. ९।१०२।१ )

५७१ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥
( ऋ. ९।१०६।७ )

५७२ सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
( ऋ. ९।१०६।१० )

५७३ प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥
( ऋ. ९।१०३।१ )

---

[ ५६७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( जागृविः प्रधन्व ) उत्साह युक्त तू बर्तनमें जा, हे ( इन्दो ) सोम ! ( इन्द्राय परिस्रव ) इन्द्रके लिए कलशमें जा, ( द्युमन्तं स्वर्विदं ) तेजस्वी और ज्ञान प्रसारक ( शुष्म आ भर ) बल हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ ५६८ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! हे ऋत्विजो ! ( आ निषीदत ) आओ बैठो, ( पुनानाय प्रगायत ) सोमको छानते हुए सामगान करो, ( शिशुं न ) बालकको जिस प्रकार जेवरोंसे सजाते हैं, उस प्रकार ( श्रिये यज्ञैः परि भूषतः ) शोभाके लिए यज्ञ साधनोंसे इस सोमको अलंकृत करो ॥ ३ ॥

[ ५६९ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( मदाय ) आनन्दको बढानेके लिए ( पुनानं तं अभि गायत ) छानते हुए उस सोमकी स्तुति करो, ( शिशुं न ) बालकको जिस प्रकार सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार ( हव्यैः ) हवनोंसे और ( गूर्तेभिः ) स्तुतियोंसे इसे ( स्वदयन्त ) स्वादिष्ट करो ॥ ४ ॥

[ ५७० ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( महीनां अपां शिशुः ) महान् जलोंका पुत्र सोम ( ऋतस्य दीधितिं हिन्वन् ) यज्ञके प्रकाशक अपने रसको प्रेरणा करता है ( विश्वा प्रिया परिभुवत् ) सब प्रिय हवियोंमें वह व्याप्त होता है, और ( द्विता ) भू और द्युलोकोंमें वह रहता है ॥ ५ ॥

[ ५७१ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( देववीतये ) देवोंको देनेके लिए ( ओजसा धाराभिः पवस्व ) वेगसे और धाराओंसे पात्रमें छनता जा, हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) आनन्द देनेवाला तू ( नः कलशं आ सद ) हमारे कलशमें आकर रह ॥ ६ ॥

[ ५७२ ] ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला ( वाचः अग्रे ) स्तोत्र पाठके बाद ( कनिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( ऊर्मिणा ) धारसे ( अव्यं वारं विधावति ) बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे छनता चला जाता है ॥ ७ ॥

[ ५७३ ] ( पुनानाय वेधसे सोमाय ) पवित्र होनेवाले, कर्म करनेवाले सोमके लिए ( वचः प्रोच्यते ) स्तोत्र बोले जाते हैं, ( मतिभिः जुजोषते ) स्तुतिसे प्रसन्न होनेवालेके लिए ( भृतिं न ) जिस प्रकार सेवकको धन देते हैं, उसी प्रकार ( प्र भर ) विशेष रूपसे स्तोत्र बोलो ॥ ८ ॥

५७४ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥
( ऋ. ९।१०५।४ )

५७५ अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥
( ऋ. ९।१०४।४ )

५७६ पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥
( ऋ. ९।१०६।१३ )

५७७ परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥ १२ ॥
( ऋ. ९।१०३।३ )

इत्याष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ ( स्व० ८ । उ० ३ । धा० ४६ । ठ ॥ )

[ ९ ]

( १ ८ ) १ गौरवीतिः शाक्त्यः; २ उर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः; ३, ८ ऋजिश्वा भारद्वाज ; ४ कृतयशा आंगिरसः; ५ ऋणंचयो राजर्षिः; ६ शक्तिर्वासिष्ठः; ७ ऊरुरांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ ककुप्, ५ यवमध्या गायत्री ॥

५७८ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।१ )

---

[ ५७४ ] सुदक्ष इन्दो ) हे बलवान् सोम ! ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( नः ) हमें ( गोमत् अश्ववत् धनिव ) गाय, घोडोंसे युक्त धन दे। उसके बाद तू ( शुचिं वर्णं ) शुद्ध वर्णको ( गोषु अधि धारय ) गायके दूधमें प्राप्त कर ॥ ९ ॥

गोदूधमें सोमरस मिलाया जाता है, फिर उसका तेजस्वी वर्ण चमकता है।

[ ५७५ ] हे सोम ! ( वसु-विदं त्वा ) धन देनेवाले तेरी ( अस्मभ्यं वाणीः अभि अनूषत ) हमें धन मिलें इसलिए हमारी वाणी बहुत स्तुति करती है। उसी प्रकार हम ( ते वर्णं ) तेरे वर्णको ( गोभिः अभिवासयामसि ) गायके दूधसे आच्छादित करते हैं ॥ १० ॥

[ ५७६ ] ( हर्यतः हरिः ) प्रशंसनीय हरे रंगका सोम ( रंह्या ह्वरांसि अति पवते ) वेगसे बुरे भागोंको दूर करता हुआ नीचेके पात्रमें जाता है। खराब हिस्सेको दूर करता हुआ छनता जाता है। हे सोम ! तू ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंको ( वीरवत् यशः ) पुत्रयुक्त कीर्ति ( अभ्यर्ष ) दे ॥ ११ ॥

[ ५७७ ] ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति ) मीठे रसको कलशमें छोडता है, ( ऋषिणां सप्त वाणीः ) ऋषियोंकी सात पदोंवाली वाणी इस सोमकी ( अभि अनूषत ) स्तुति करती है ॥ १२ ॥

॥ यहां दसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकादशः खण्डः।

[ ५७८ ] हे सोम ! ( मधुमत्तमः ) बहुत मीठा ( क्रतु वित्तमः ) यज्ञके सम्बन्धमें सब कुछ जाननेवाला, ( महि द्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) हर्ष बढानेवाला तू ( इन्द्राय मदः पवस्व ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए पवित्र हो ॥ १ ॥

५७९ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्। वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०८।९ )

५८० आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

ऋ. ९।१०८।७

५८१ एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्। विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

( ऋ. ९।१०८।११ )

५८२ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्। सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

( ऋ. ९।१०८।१३ )

५८३ त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

( ऋ. ९।१०८।३ )

५८४ एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः। क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

( ऋ. ९।१०९।५ )

---

[ ५७९ ] हे ( इषस्पते ) अन्नके स्वामी ( देव ) प्रकाशमान देव सोम ! ( देवयुं ) तू देवोंको प्राप्त होनेवाला है, तू हमें ( द्युम्नं बृहत् यशः ) तेजस्वी और श्रेष्ठ यश ( अभि दीदिहि ) दे, और ( मध्यमं कोशं ) शहदके कलशमें ( वि युव ) जाकर भर जा ॥ २ ॥

[ ५८० ] हे ऋत्विजो ! ( अश्वं न ) घोडेके समान वेगवान् ( स्तोमं ) स्तुतिके योग्य ( अप्तुरं ) जलके समान वेगवान् ( रजस्तुरं ) प्रकाशकी किरणके समान शीघ्रता करनेवाले ( वन-प्रक्षं ) जलसे मिश्रित ( उद्-प्लुतं ) जलके साथ मिले हुए सोमका ( सोत ) रस निचोडो, ( परि षिंचित ) और उसमें दूध मिलाओ ॥ ३ ॥

[ ५८१ ] ( दिवः ) तेजस्वी ऋत्विज ( मदच्युतं सहस्रधारं ) आनन्दके प्रेरक और हजारों धाराओंसे बर्तनमें गिरनेवाले ( वृषभं ) बलवर्धक ( विश्वा वसूनि बिभ्रतं ) सब धनोंके धारण करनेवाले ( एतं त्यं उ ) इस उस सोमका ( दुहं ) रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

[ ५८२ ] ( यः वसूनां ) जो धनोंका ( यः रायां ) जो दूध आदि पदार्थोंका ( यः इडानां ) जो भूमियोंका ( यः सुक्षितानां ) जो उत्तम सन्तानोंका ( आनेता ) देनेवाला है, ( सः ) उस सोमका रस ( सुन्वे ) निकाल लिया है ॥ ५ ॥

[ ५८३ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( द्युमत्तमः ) अत्यन्त तेजस्वी ( त्वं हि ) तू ( दैव्यं जनिमानि ) दिव्य जन्मोंको जानता है, और हे ( अंग ) प्रिय सोम ! तू ( अमृतत्वाय घोषयन् ) अमरताकी घोषणा करता है ॥ ६ ॥

[ ५८४ ] ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द देनेवाला ( अपां ऊर्मिः इव क्रीडन ) जलके लहरके समान खेल करते हुए ( स्यः एषः सुतः ) यह सोमरस ( अव्याः वारेभिः ) बकरीके बालोंसे बने हुए छाननीसे ( धारया पवते ) धार बांधकर कलशमें छाना जाता है ॥ ७ ॥

२ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
५८५ य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज । ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥
( ऋ. ९।१०८।६ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ७ । उ० १ । धा० ४३ । चि ॥ ] इत्युष्णिक्ककुभः ॥

इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्ध, षष्ठप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति छन्दोगप्रकृतिऋक् समाप्ता ॥ इति सौम्यं पावमानं काण्डं पर्व वा समाप्तम् ॥

॥ इति पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः ) समाप्तः ॥ पावमानकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११९

तत्र गायत्र्यः ४६७–५१० ( ४४ ), बृहत्यः ५११–५२२ ( १२ ), त्रिष्टुभः ५२३—
५४४ ( २२ ), अनुष्टुभः ५४५—५५३ ( ९ ), [ तत्र ' आद्दर्यत ' इति ५५१ बृहती ],
जगत्यः ५५४—५६५ ( १२ ), उष्णिक्ककुभः ५६६—५८५ ( २० ), ११९

| | |
|---|---|
| ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ३५२ |
| आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ११४ |
| सर्वयोगः | ५८५ |

---

[ ५८५ ] ( यः ) जो ( उस्रियाः अपि याः ) फैलनेवाले और जलोंको धारण करनेवाले ( अश्मनि अन्तः ) मेघोंमें ( गाः ) जलोंको ( ओजसा निरकृन्तन् ) बलसे छिन्नभिन्न करते हुए तू ( गव्यं अश्व्यं व्रजं ) गाय और घोडोंके समूहको ( अभि तत्निषे ) चारों ओरसे घेरता है। हे ( धृष्णो ) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! ( वर्मी इव आरुज ) कवच धारण करनेवाले वीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ८ ॥

॥ यहां ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पवमानं काण्डम् ॥

# पवमान काण्ड

" पवमान " का अर्थ है, ' शुद्ध होनेवाला, छाना जानेवाला, छानकर जिसका कूडा बाहर निकाल देते हैं, इस प्रकार " पवमान " का अर्थ हुआ वह सूक्त जिसमें सोमको छाननेका वर्णन है। पवमान सूक्तका अर्थ है सोमरस छान कर स्वच्छ करनेका वर्णन करनेवाला सूक्त। " पवमान " इस पदके कारण ही सामवेदके इस काण्डका नाम " पवमान काण्ड " है। ऋग्वेदके नवम मण्डलमें " पवमान सूक्त " ही हैं। उनमेंसे कहीं कहींसे मंत्र लेकर सामवेदके पवमान काण्डकी रचना की है। इस पवमान काण्डमें सोमरस छाननेके, उसे इन्द्रको देनेके और ऋत्विजों द्वारा स्वयं पीनेके वर्णन करनेवाले मंत्र हैं।

सोम यह एक बेल है उसका रंग हरा होता है। उसके रसको निकालकर उसे देवोंको पिलाकर बादमें ऋत्विज लोग स्वयं पीते हैं।

## सोमका उत्पत्ति स्थान

सोमका उत्पत्ति स्थान पर्वतका ऊंचा प्रदेश है। इसलिए उसे—

१ गिरि-ष्ठाः अंशुः ( ४७३ )- ' पर्वत पर होनेवाली सोम बेल है ', ऐसा कहा है ।

२ ते अन्धसः जातं उच्चा दिवि ( ४६७ )- " अन्न-रूप सोमका स्थान ऊंचे प्रदेश द्युलोकमें है। " इससे यह मालूम पडता है कि पर्वतके ऊंचे स्थानपर सोम उगता था। वहांसे वह मैदानोंमें लाया जाता था । देखिए—

१ सत् उग्रं शर्म भूम्या ददे ( ४६७ )- " वे सुख देनेवाले उग्र अन्न भूमिपर लाये गये " पर्वतके ऊंचे भाग पर उगनेवाली यह सोमवल्ली वहींसे यज्ञके लिए भूमीपर लाई गई। ऋग्वेदमें इस सोमको " मौजवान् " कहा गया है।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः ॥ ऋ. ( १०।३४।१ )

" मौजवान् पर्वतपर होनेवाले सोमरसरूपी अन्न अत्यन्त प्रिय हैं, " इस मंत्रमें " मौजवान् " पर्वत पर होनेवाले सोमको उत्तम माना गया है। मौजवान् हिमालयका एक शिखर है। उसपर १२ हजार फीटकी ऊंचाई पर पाया जानेवाला सोम उत्तम माना जाता है। ऊपर ' उच्चा दिवि ' ऊंचे द्युलोकमें यह सोमरूपी अन्न उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है । हिमालय पर्वतपर १२ हजार फीट या उससे अधिककी ऊंचाईके स्थानको द्युलोक समझा जाता है। " त्रिविष्टिप् " इस शब्दका अपभ्रंश होकर " तिब्बत " शब्द बना है । यह " तिब्बत " हिमालय पर्वतमें १२ हजार फीटकी ऊंचाईपर है। त्रिविष्टप् ही द्युलोक या स्वर्गलोक है।

गंगा नदीका नाम " त्रिपथगा " है। स्वर्ग, भूलोक और पाताल लोक इन तीनों स्थानोंपर वह बहती है। वह हिमालयसे निकलकर, भूमिपर बहती हुई नीचे जाकर समुद्रसे मिलती है । इससे भी यह ज्ञान होता है कि हिमालयका ऊंचा प्रदेश ही स्वर्ग है । ओर द्युलोकपर उगनेवाली सोमवल्ली श्रेष्ठ होती है ।

यज्ञ करनेवाले लोग इस मौजवान् पर्वतसे सोमवल्ली लाते थे, अथवा यहांसे लाकर बेचनेवाले लोगोंसे वे खरीदते थे । सोमको गाय देकर खरीदते थे । इस सोमवल्लीको गुच्छेमें बांधकर लाते थे। उन्हें लकडियोंके दो तख्तोंके बीचमें रखते थे—

१ नप्त्योः हितः ( ४७६ )- दो तख्तोंके बीचमें उसे रखा जाता था, इन लकडीकी पट्टियोंको " अभिषवण फलक " कहते थे । इसका अर्थ " सोमरस निकालनेकी पट्टी " है। ये पट्टियां दो होती थीं । प्रत्येक पट्टीकी लम्बाई ओर चौडाई ३६x१८ अंगुल होती थी । दोनों पट्टियोंको मिलाकर रखनेसे ३६ अंगुलकी वर्गाकार पट्टियां हो जाती थीं । इन पट्टियोंपर काले हिरणकी खाल बिछाते थे । उसपर सोमवल्ली रखकर पत्थरोंसे कूटते थे ।

चम्वोः सुतः ( ४९० )-दोनों पट्टियों पर रखकर और सोमका रस निकालकर उसे बर्तनोंमें भरकर रखते थे ।

## पत्थरोंसे कूटना

रस निकालनेके लिए सोमको पत्थरोंसे अच्छी तरह कूटते थे। इन पत्थरोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ कविक्रतुः, नप्त्योः हितः, दिवः प्रिया वयांसि, स्वानैः परियाति ( ४७६ )- ज्ञानी और कर्ममें कुशल इस सोमके पट्टियोंपर रखे जानेके बाद द्युलोकसे प्रियपक्षी अर्थात् कूटनेके पत्थर रस निकालनेवाले अध्वर्युके द्वारा इसपर फिराये जाते थे । अध्वर्युका मतलब है यज्ञ करनेवाले। वे उन पत्थरोंसे सोमवल्ली कूटते थे और उसका रस निकालते थे। यहां पत्थरोंको " प्रिया वयांसि " प्रिय पक्षी कहा है। पर्वतसे जैसे सोमवल्ली लाते थे, वैसे ही पत्थर भी पहाडोंसे ही लाये जाते थे । इसलिए पत्थर ऊपर बैठनेवाले पक्षी ही हैं, यह अलंकारमें कहा है ।

स्वानैः ( सुवानैः )- रस निकालनेवाले ऋत्विज् सोम कूटते थे, उसके बाद उनका रस निकालते थे ।

२ सोमं अद्रिभिः सुषाव ( ५१२ )- सोमरस पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया। यहां " अद्रिः " पद " पर्वत " का वाचक है और वह पद यहां पर्वतपर होनेवाले पत्थरोंका वाचक है। यह वेदकी अपनी विशेष शैली है । उस शैलीको समझानेके लिए यहां कुछ उदाहरण देते है ।

## अंशके लिए पूर्णका प्रयोग

पत्थर पर्वतका अंश है । उस अंशरूपी पत्थरके लिए पूर्ण पर्वतका प्रयोग किया गया है । " पर्वत " का अर्थ पर्वतका अंश " पत्थर " है । इस प्रयोगके और भी उदाहरण हैं, जैसे—

१ अद्रिभिः सुतः ( ४९९ )-

२ अद्रिभिः स्वानः ( ५१३ )- ( अद्रि ) पर्वतोंसे अर्थात् पहाडके पत्थरोंसे कूटकर सोमवल्लीका रस निकाला जाता था, यह रस लकडीके बर्तनोंमें रखा जाता था। उसका वर्णन इस प्रकार किया है ।

३ वनेषु सदः दध्रिषे ( ५१३ )-

४ आसृज्यमानः हरिः कनिक्रन्ति, वनस्य जठरे

सीदन् ( ५३० )- वनको अपना घर बनाया है। सोमका हरे रंगका रस शब्द करता हुआ वनके पेटमें जाता है। " वनेषु सदः " और " वनस्य जठरे " इन वाक्योंका अर्थ है, पात्र-'वनमें वृक्ष होते हैं, उन वृक्षोंसे लकडी बनती है, और उस लकडीसे वर्तन बनते हैं, इसलिए पात्र अंश है और वृक्ष अथवा वन पूर्ण है। इस अंशके लिए पूर्णका प्रयोग यहां हुआ है। इस कारण " वनेषु सदः दधिषे ", अथवा ' वनस्य जठरे सीदन् ' इसका अर्थ है, कि लकडीके वर्तनमें सोमरसका रखा जाना। यह वैदिक वर्णनकी शैली है। " वन " का अर्थ है, " लकडीके वर्तन " यह वेदकी परिभाषा है। यह शैली ठीक तरह समझ लेनी चाहिए, नहीं तो वेदमंत्रोंका अर्थ ठीक तरहसे ध्यानमें नहीं आएगा और अर्थके अनर्थ होनेमें कठिनाई भी नहीं होगी। इस शैलीके दूसरे उदाहरण भी यहां देखने योग्य हैं—

५ कविः सिन्धोः ऊर्मा अधिश्रितः ( ४८६ )- ज्ञानी सिन्धुके लहरोंमें रहता है। ( कविः ) ज्ञानी, ज्ञान बढानेवाला सोम नदीके पानीमें मिलाया जाता है।

६ सोमासः अप ऊर्मयः प्र नयन्त (४७८)- सोमरस पानीके लहरके पास लाया गया। सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

७ मृज्यमानः समुद्रे वाचं इन्वसि ( ५१७ )- शुद्ध होता हुआ यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ जाता है। सोमरस छनते समय पानीके वर्तनमें शब्द करते हुए पडता है। नीचे पानीके वर्तन हैं, उसका निर्देश यहां " समुद्र " पदसे किया है।

८ सोमासः समुद्रस्य विष्टपे अभि पवन्ते (५१८)- सोमरस समुद्रके ऊपरके भागमें छाने जाते हैं। सोमरस पानीके वर्तनमें छाने जाते हैं।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रः ( ५२१ )- देवोंके लिए आनन्द देनेवाला यह सोमरस समुद्रमें मिलाया जाता है, अथवा सोमरसका समुद्र लहरा रहा है। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

१० अत्यः न वृथा पाजांसि नदीषु कृणुते (५५८)- घोडा जैसे सरलतापूर्वक अपनी शक्तिसे स्नान करता है, उसी प्रकार ये सोमरस नदीमें स्नान करते हैं। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है। इस स्थानपर " नदीषु " ( नदियोंमें ) यह पद बहुवचनमें प्रयुक्त हुआ है। अनेक नदियोंमें स्नान करता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है यह कहनेके बजाय सोम नदियोंमें स्नान करता है, ऐसा कहा है।

११ सिन्धूनां प्राणाः कलशान् अभि अचिक्रदत् ( ५५९ )- नदीके प्राण वर्तनमें शब्द करते हुए जाते हैं। इसका अर्थ है कि नदीके प्राणरूपी पानी वर्तनमें भरे जाते समय शब्द करते हैं।

१२ सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं उक्षणं हिरण्यपावः पशुं गृभ्णते (५६४)- नदीके पानीमें पडे हुए बैलको सोनेके आभूषणको पहने हुए हाथोंसे पशु समझकर पकडते हैं। " उक्षा "- बैल, सोमरस; पशु, जानवर, देखनेवाला, चमकनेवाला, नदीके पानीमें सोम मिलाया जाता है, और वह वहां चमकने लगता है, और वह सोनेकी अंगूठी पहने हुए हाथोंसे छाना जाता है। यहां " सिन्धोः उच्छ्वासे " ( नदीके भंवरमें ) यह शब्द नदीके पानीसे भरे हुए वर्तनके लिए प्रयुक्त हुआ है। " पशु " शब्दका अर्थ है, चमकनेवाला सोमरस।

" पश्यति इति पशुः " जो देखता है वह पशु है। देखनेका अर्थ है चमकना। रस चमकता है, वह अपने तेजसे सबको देखता है। उक्षा:- बैल, बल बढानेवाला सोम।

इस प्रकार " अंशके लिए पूर्णका प्रयोग " वेदमें सैकडों स्थानपर आता है। उन्हें समझ लेना अत्यावश्यक है। इसके थोडेसे और भी उदाहरण देखिए—

## दूधमें सोमरसका मिलाना

गायके दूधमें सोम मिलाया जाता है। इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ सुजातं अप्तुरं गोभिः परिष्कृतं इन्दुं ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैय्यार किया गया और शीघ्रतासे पानीमें मिलाया गया सोमरस ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधमें मिलाया जाता है। " गायसे मिश्रित " का अर्थ है " गायके दूधसे मिश्रित "। दूध गायका अंश है, इस अंशके लिए पूर्ण " गाय " का प्रयोग किया है। और भी देखिए—

२ हे इन्दो ! गाः अभि इहि ( ५०५ )- हे सोमरस ! तू गायके पास जा, अर्थात् तू गायके दूधमें मिल जा ! यहां पर " गाः " अनेक गायोंका प्रयोग " गायके दूध " के लिए किया है। उसी प्रकार—

३ नृभिः यतः गाः निर्णिजं कुरुते (५३०)- मनुष्यों-ऋत्विजों द्वारा दबाकर निचोडा गया सोमरस गायका रूप

धारण करता है, अर्थात् सोमरस गायके दूधमें मिलाया जाता है। " गवः निर्णिजं " गायके रूपका मतलब है " गायके दूधका रूप "। गौ शब्द गायके दूधका वाचक है। अंशके लिए पूर्णका प्रयोग वेदमें इस प्रकार होता है। और भी देखिए—

४ कलशे इन्दुं वावशानाः गावः आयन् ( ५३७ )- कलशमें सोमके पास इच्छा करती हुई गायें आईं। इसका अर्थ है कि कलशमें भरे हुए सोमरसमें गायोंका दूध मिलाया जाता है। कलशमें गाय जा ही नहीं सकती। जब एक ही नहीं जा सकती तो फिर अनेक कैसे जा सकती हैं। अतः यहां गायको दूधका वाचक मानना पडेगा।

५ शुचिं वर्णं गोषु अधि धारय ( ५७४ )- शुद्ध वर्णको गायमें स्थापित कर। सोमरसके शुद्ध वर्णको गायके दूधमें मिला। सोमरस और गायके दूधका मिश्रण कर।

६ ते वर्णं गोभिः अभिवासयामसि ( ५७५ )- तेरे सोमके रंगको गायसे आच्छादित करते हैं। सोमरसमें गायका दूध मिलाकर उसमें दूधका सफेदपन हम लाते हैं।

७ रसः हरिः दिवः पवते ( ५७८ )- हरे रंगका सोमरस द्युलोकसे छाना जाता है। " ऊपरके वर्तनसे " सोमरस छाननीसे छाना जाता है। " ऊपरके बर्तनसे " कहनेके बजाय " दिवः " द्युलोकसे कह दिया। द्युलोक हमेशा ऊपर ही है, इसलिए ऊपरके बर्तनको " द्यु " लोकका सूचक मंत्रमें माना गया।

इस प्रकार " अंशके लिए पूर्णके प्रयोग " की वैदिक शैली देखने योग्य है। यह वैदिक मंत्रोंकी विशेषता मननीय है।

## सोमको सोनेसे छूना

सोमवल्ली पत्थरोंसे कूटी जाती थी। ये पत्थर कूटनेके समय पकडनेके लिए ऊपर पतले और नीचेकी ओर गोल और मोटे होते थे। कूटनेके बाद हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर रस बर्तनमें भरते थे। उस हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनते थे। इस सोनेके उस रसके साथ लगनेसे रसमें विशेष गुण उत्पन्न होते थे। इसलिए कहा भी है—

१ हेमना पूयमानः देवः रसः देवेभिः समपृक्त ( ५२६ )- सोनेसे पवित्र होनेवाला यह दिव्यरस देवोंको पिलाया जाता है।

२ हिरण्य-पावः ( ५२७ )- सोनेसे पवित्र होनेवाला यह रस है।

इस प्रकार हाथमें पहनी हुई सोनेकी अंगूठी सोमरससे छूती थी। इससे सोनेसे उसमें कुछ विशेष गुणोंका आना स्वाभाविक है।

इस कूटे हुए सोमका रस हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर निकाला जाता था। उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ साकं उक्षः स्वसारः मर्जयन्तः, दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः ( ५३८ )- एक जगह रहकर कार्य करनेवाली बहनें - हाथकी अंगुलियां सोमको शुद्ध करती हैं, सोमको पीसकर उसका रस निकालती हैं। ये दस अंगुलियां धैर्यवान् सोमको धारण करती हैं, हाथसे रस निकालती हैं। इस प्रकार सोमवल्लीसे रस निकलता था।

## सोमरसमें पानी मिलाना

ऊपर लिखे हुएके अनुसार सोमका रस निकालनेके बाद जो खराब हिस्सा हाथसे बचता उसे " ऋजीष " कहते थे। यह खराब हिस्सा एक तरफ करके रस निकाला जाता था। फिर यह रस छलनीसे छाना जाता था। इसे छाननेके पहले इसमें पानी मिलाते थे। पानीको मिलानेके सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ अप्सु दक्षः ( ४७३ )- पानीमें मिला हुआ सोमरस बल बढानेवाला होता है।

२ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः ( ४८६ )- यह ज्ञान बढानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलाया गया है।

३ मानुषीः अपः हिन्वानः ( ४९३ )- मनुष्योंका हित करनेवाले पानीमें सोमरस मिलाया गया है।

४ महीः अपः विविवांसं ( ४९४ )- महत्त्ववाले जलोंमें सोमरस मिलाया गया है।

५ विचर्षणिः हितः पवमानः अयं आप्यं बृहत् हिन्वानः स चेतति ( ५०८ )- ज्ञानी, हितकारी, शुद्ध किया जानेवाला यह सोमरस महान् जलोंमें मिलानेके बाद शक्तिको बढानेवाला होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सोमरस दुगुने या तिगुने पानीमें मिलाया जाता था।

" बृहत् आप्यं हिन्वानः " अधिक पानीमें वह मिलाया जाता था।

६ अप्सु अन्तः दधन्वान् ( ५१२ )- पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

७ सुतं परि षिंचत ( ५१२ )- सोमरसमें पानी डालो। इससे भी मालूम पडता है कि सोमरससे पानी अधिक होता था।

*

८ अर्णसा प्रपिप्ये ( ५१४ )- पानीमें सोम मिलाया जाता है, " अर्णस् " का अर्थ है पानीका समुद्र । समुद्रमें मिलानेका अर्थ है, बहुतसे पानीमें मिलाना ।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रः विधर्मन् ( ५२१ )- देवोंको देनेके लिए आनन्दवर्धक सोम पानीमें मिलाया जाता है। इसे मिलानेके बाद वह विशेष गुणोंसे युक्त होता है, अर्थात् पीनेके लायक होता है।

१० वना वसानः रत्न-धा ( ५२८ )- पानीमें मिला हुआ सोम रत्नोंको धारण करता है । वह चमकता है ।

११ मधुमान् अपः वसानः ( ५३२ )- मीठा सोम पानीमें मिलाया जाता है।

१२ सरसि प्रधन्व ( ५४१ )- पानीमें जाकर मिल जा।

१३ अपां गर्भः सोमः महिषः ( ५४२ )- पानीमें मिला हुआ सोम बलवान् है । पानीके गर्भमें सोम रहता है, अर्थात् पानी अधिक और सोम थोडा रहता है।

१४ रथ्ये यथा असर्जि ( ५४३ )- युद्धमें जिस प्रकार घोडा भेजा जाता है, उसी प्रकार सोम पानीमें छोडा जाता है।

१५ अ-द्रुहः प्रियं काम्यं अभि नवन्ते ( ५५० )- द्रोह न करनेवाले पानी प्रिय और चाहने योग्य सोमसे मिलनेके लिए जाता है। अर्थात् यह मिश्रण सुन्दर और उत्तम होता है।

१६ सिन्धूनां प्राणाः इन्द्रस्य हार्दि आविशन् ( ५५९ )- नदीके प्राण इन्द्रके प्रिय सोममें मिल गए। इन्द्रको सोमरस बहुत अच्छा लगता है, उसमें नदीके प्राण अर्थात् पानी मिलाया जाता है।

१७ अश्वं न अप्तुरं वनप्रक्षं उदप्रुतं सोत परि षिंचत ( ५८० )- घोडेके समान पानीमें जानेवाला, पानीसे मिश्रित होनेवाला सोम है। उसका रस निकालकर उसमें पानी मिलाओ।

१८ मदिन्तमः अपां ऊर्मिः इव क्रीडन् ( ५८४ )- आनन्द देनेवाला सोम पानीके लहरोंके साथ खेलता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

१९ समुद्रः गोपाः वृषा स्वानः (५२९)- पानीमें और गायके दूधमें मिलानेके बाद वह बल बढानेवाला होता है ।

२० अपः वसानः पुनानः धारया अर्षति ( ५११ )- पानी मिलानेके बाद छाना जाता हुआ सोम धारसे नीचेके बर्तनमें गिरता है।

२१ अंशोः पयसा मधुश्चुतं कोशं अच्छ ( ५१४ )- सोमका दूधसे मिश्रण होनेके बाद वह शहदसे भरे बर्तनमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसमें पहले पानी मिलाकर वह छाना जाता था। हाथोंसे दबाकर निकाला गया सोमरस गाढा होता था, उसमें पानी मिलानेसे वह पतला होता था। उसके बाद वह दशापवित्र अर्थात् बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे वह छाना जाता था, उससे छननेसे सोमवल्लीका मोटा-मोटा भाग उसमें नहीं जाता था, और वह पीनेलायक होता था।

## सोमरसकी छलनी

सोमरस छाननेकी छाननी बकरीके बालोंकी बुनी हुई होती थी। उस छलनीका वर्णन इस प्रकार है—

१ वृषा देवयुः अव्या वारेभिः मंद्रया धारया पवस्व ( ५०६ )- बल बढानेवाला देवोंके पास जानेवाला सोमरस बकरीके बालोंकी छलनीसे धीरे-धीरे छाना जाता है।

२ सोतृभिः स्वानः अवीनां स्नुभिः अभियाति ( ५१५ )- रस निकालनेवाले ऋत्विजों द्वारा निचोडा गया सोमरस बकरीके बालोंसे छाना जाता है ।

३ अव्याः वारैः परि पुनानः ( ५१९ )- बकरीके बालोंसे छनकर वह रस नीचे गिरता है ।

४ पुनानः अव्यं वारं अत्येषि ( ५६२ )- छाना जाता हुआ वह रस भेडकी बालोंकी छाननीसे नीचे गिरता है।

५ पुनानः सोमः ऊर्मिणा अव्यं वारं विधावति ( ५७२ )- छाना जाता हुआ सोमरस लहरोंसे युक्त होकर भेडके बालोंकी छाननीमें दौडकर जाता है। जल्दी ही नीचे छाना जाता है।

६ सुतः अव्या वारेभिः धारया पवते ( ५८४ )- सोमरस निकालनेके बाद वह भेडके बालोंकी छाननीसे शुद्ध होता है।

७ सोमः पवित्रे पर्यक्षरत् (४७५)- सोमरस छलनीसे नीचे चूता है।

८ सहस्रधारः अव्यं अत्यर्षति ( ५२० )- हजारों धाराओंसे, भेडके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है ।

९ पूतः अव्यं वारं अत्येषि ( ५३४ )- शुद्ध होता हुआ तू भेडके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है।

१० स्वादु अव्यं वारं अति पवताम् ( ५३५ )- मीठा यह सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

११ हरिं त्यं वारेण परि पुनन्ति ( ५५२ )– हरे रंगके उस सोमको छलनीमें छानते हैं।

१२ हरिः रंह्या ह्वरांसि अति पवते ( ५७६ )– हरे रंगका यह सोमरस अपनेसे खराव हिस्सेको दूर करते हुए शुद्ध होता है।

इन वचनोंसे सोमरस छाननेकी कल्पना अच्छी तरह की जा सकती है। भेडके बालोंकी बुनी हुई यह छलनी होती है, वह बर्तनके ऊपर बांधी जाती है, और उपरसे एक बर्तनसे धार बांधकर उस छाननीपर पानी मिश्रित सोमरस डाला जाता है। जो कुछ सोममें कूडा करकट होता है, वह रस छाननीपर रह जाता है, और नीचे बर्तनमें शुद्ध रस भर जाता है। छाननीसे छाने विना रसको किसी भी देवताके लिए नहीं दिया जाता। इन्द्रादि देवोंको देनेके लिए, कुछ कुडा सोमरसमें न रहने पाये, इसलिए बडी ही सावधानीसे छाना जाता था। इस प्रकार यह सोमरस छाना जाता था, उसके बाद उसमें दूध आदि मिलाया जाता था। इसलिए पहले इस छाननेके सम्बन्धमें मंत्रमें क्या कहा है, वह द्रष्टव्य है।

## सोमरस छानते हुए शब्द होता है

कोई द्रव पदार्थ जब दूसरे द्रव पदार्थमें डाला जाता है, तब शब्द होता है। उसी प्रकार सोमरसको छानते हुए शब्द होता था। नीचेके बर्तनमें पानी होता था। उसमें छलनीके द्वारा सोमरस छाना जाता था। इस कारण आवाज होती थी। उसका वर्णन वेदमंत्रमें इस प्रकार है—

१ हरिः कनिक्रदत् एति ( ४७१ )– हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

२ सुतासः श्रवसे प्राक्रमुः (४७७)– सोमरस यशके लिए शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें जाता है।

३ सोमासः अपः ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )– सोमरस पानीके लहरोंमें लेजाया जाता है। पानीमें मिलाया जाता है।

४ सुतः वृषा पवस्व ( ४७९ )– रस निकालनेके बाद बल बढानेके लिए छनता जा।

५ पवमानः ( ४८० )– छाना जानेवाला सोम।

६ स्वानासः इन्दवः मधोः धारया मदाय परि अर्षति ( ४८५ )– रस निकाला हुआ सोम मीठी धारासे आनन्द बढानेके लिए छाना जाता है।

७ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः परि प्रासिष्यत् ( ४८६ ) - ज्ञान बढानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलानेके बाद नीचे बर्तनमें गिरता है।

८ सुतः कलशं आविशत् (४८९)- सोमरस कलशमें गिरता है।

९ सुतः पवित्रे असर्जि न्यक्रमीत् ( ४९० )– सोमरस छाननीसे छाना जाता है।

१० भूर्णयः त्वेषा अयासः कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः प्राक्रमुः ( ४९१ )– जल्दीसे जानेवाले तेजस्वी, गतिशील सोमरस अपने हरे रंगके खालको उतार कर बर्तनमें छनते हुए जाते हैं।

११ अया पवस्व ( ४९३ )– इस धारासे छन जा।

१२ अया वीती पवस्व (४९५)– इस रीतिसे शुद्ध हो।

१३ स्वानः पवित्रे आ अर्ष ( ४९६ )– रस निकालनेके बाद छाननीसे छन।

१४ वृषा हरिः कनिक्रदत् ( ४९७ )– बल बढानेवाला यह हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छनता जाता है।

१५ पवित्रे आनय, इन्द्राय पातवे पुनीहि ( ४९९ ) –छलनीमें सोमरस डाल। इन्द्रके पीनेके लिए पवित्र कर।

१६ द्रोणानि रोरुवत् अर्ष ( ५७३ )– बर्तनमें शब्द करता हुआ जा।

१७ मनीषिभिः मृज्यमानः धारया पवस्व ( ५०५ ) –बुद्धिमान् ऋत्विजों द्वारा शुद्ध होनेवाला तू धारासे शुद्ध हो।

१८ इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते (५१०)–इन्द्रके पास जानेके लिए शुद्ध होता है।

१९ अव्यया वाराणि तिरः आ पवसे ( ५१३ )– भेडके बालोंकी बनी छलनीसे सोमरस शुद्ध होता है।

२० हरिः चम्वोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )– हरे रंगका सोमरस बर्तनमें, जिस प्रकार नगरमें मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

२१ सुहस्त्या मृज्यमानः समुद्रे वाचं इन्वति ( ५१७ )– उत्तम हाथोंसे निकाला गया और छाना गया यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है। नीचे बर्तनमें रखे हुए पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

२२ धारया पवित्रं असृक्षत ( ५२२ )– धार बांधकर छलनीसे नीचे सोमरस आता है।

२३ प्रद्रव कोषं परि निषीद ( ५२३ )– बर्तनमें भर जा।

२४ वराहः रेभन् पदा अभ्येति ( ५२४ )- उत्तम विनमें शब्द करता हुआ बर्तनमें जाता है।

२५ सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ( ५२५ )- सोमरस शब्द करते हुए छाननीसे नीचे आता है।

२६ मधुमान् वृषा पवित्रं पर्यक्षाः ( ५३१ )– मीठा और बल बढानेवाला सोमरस छाननीसे टपकता है।

२७ अधिसानौ अव्ये पवस्व ( ५३२ )– ऊंचे स्थान-पर भेडके बालकी छलनीसे छनता जा।

२८ मत्सरः घृतवन्ति द्रोणानि अवरोह ( ५३२ )– आनन्द देनेवाला सोमरस जलके पात्रमें उतरता है।

२९ मधुमतीः धाराः प्रासृग्रतं ( ५३४ ) – मीठी धारा बहती है।

३० देवः इन्दुः कलशं मति आसीदतु ( ५३५ )– तेजस्वी सोमरस कलशमें जाकर बैठता है।

३१ धियः अधिस्पर्धते (५३९)– अंगुलियां रस निकाल-नेके लिए परस्पर स्पर्धा करती हैं।

३२ सोम पुनानः अर्षति ( ५४६ )- सोम छाना जाता हुआ बर्तनमें जाता है।

३३ स्वानाः स्वर्विदः इन्दवः सोमा पवन्ते (५४८) – रस निकालनेके बाद ये तेजस्वी सोमरस छाने जाते हैं।

३४ चनोहितः प्रियाणि नामानि अभि पवन्ते ( ५५४ )– अन्नके समान हितकारी सोम प्रिय जलोंमें मिला-कर छाना जाता है।

३५ येषु यद्धः अभिवर्धते ( ५५४ )– इन जलोंमें मिलानेके कारण सोमरस बढता है।

३६ एष कोशे प्र अचिक्रदत् ( ५५६ )– यह सोम-रस बर्तनमें शब्द करता है।

३७ शतयामना पथा कलशे सं अर्षति ( ५५७ )– सौ छिद्रोंवाली चलनीके रास्तेसे यह सोमरस कलशमें जाता है।

३८ पवमानः कनिक्रदत् ( ५७२ )– सोम छानते समय शब्द करता है।

३९ पुनानः सोमः मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति ( ५७७ )– छाना जाता हुआ सोमरस मीठे रस छानेजाने-वाले बर्तनमें जाता है।

४० मध्यमं कोशं वि युव ( ५७९ )– शहदके बर्तनमें मिल।

इस प्रकार सोम छाना जाता है। ऊपरके बर्तनसे सोम-रस भेडके बालोंसे बने छलनीसे नीचेके पानीके वर्तनमें छाना जाता है, तब उसका शब्द होता था। ये वर्णन ऊपरके मंत्रोंमें अनेक प्रकारसे किये हैं। उनको देखनेसे छाननेकी क्रिया अच्छी तरह ज्ञात होगी।

## सोमका दूधमें मिलाना

सोमरसको पानीमें मिलाकर छाननेके बाद वह दूधमें मिलाया जाता था। इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ सु-जातं अप्तुरं गोभिः परिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैय्यार किये गये सोमरसमें पानी मिलानेके बाद गायका दूध मिलाते हैं, और फिर सब देव सोमके पास जाते हैं। इससे सब प्रक्रियाका ज्ञान हो जाता है, प्रथम सोमरस निकालना, फिर उसमें पानी मिलाकर उसे छानना, उसके बाद उसमें दूध और शहद मिलाना फिर अन्तमें पीना यह सोमरसकी प्रक्रिया थी।

२ रुचा गाः अभि इहि ( ५०५ )– चमकनेवाला सोमरस गायके दूधके पास जाता है, अर्थात् वह गायके दूधमें मिलाया जाता है।

३ सोमः गव्यन् ( ५३३ )– सोम गायके दूधमें मिलाया जाता है।

४ हे पवमान! धाम पवसे ( ५१४ )– हे सोमरस! तू दूधमें मिलाया जाता है, अपना स्थान पवित्र करता है। दूध मिलानेके बाद सोमका घर पवित्र होता है।

५ कलशे इन्दुं वावशानाः गावः आयन् ( ५३७ )– कलशमें सोमरसकी इच्छा करती हुई गायें आईं, अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाया गया।

६ शुक्लाः असुराय निर्णिजे वयन्ति ( ५५१ ) सफेद रंगका गायका दूध बलवान् सोमके रूपको साफ करनेके लिए आच्छादित करता है। दूधमें सोम मिलाया जाता है।

७ सुदुघः घृतश्चुतः वाश्राः पयसा धेनवः अभि अर्षन्ति ( ५५६ )– उत्तम दूध देनेवाली, घी चुआनेवाली, रंभाती हुई गायें सोमके पास आती हैं। अर्थात् सोममें गाय-का दूध मिलाया जाता है।

८ अस्मै त्रिसप्त धेनवः आ शिरं दुदुहिरे ( ५६० )– इस सोमके लिए २१ गायें दूध देती हैं। इन गायोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है।

९ धेनवः वचनवन्तः उस्रियाः ऊधभिः परिस्नुतं निर्णिजं धिरे ( ५६३ )– गायें रंभाती हुई अपने थनसे

टपकनेवाले दूधसे सोमके रूपको धारण करती हैं, अर्थात् दूधमें सोम मिलाकर उसे सफेद बनाती हैं।

१० शुचिं वर्णं गोषु अधिवारय ( ५७४ )- शुद्ध रंगको गायोंमें स्थापित कर। सोमरस गायके दूधमें मिलकर श्वेत रंगका हो जाता है।

११ ते वर्णं गोभिः अभिवासयामसि ( ५७५ )- तेरे सोमके रंगको हम गायके दूधसे आच्छादित करते हैं। अर्थात् सोमरसका हरा रंग गायके दूधसे आच्छादित होनेपर सफेद रंगका दीखने लगता है।

इस प्रकार गायका दूध सोमरसमें मिलानेके बाद वह हरे रंगका सोमरस सफेद दीखने लगता था और चमकने लगता था। इसके बाद वह पिया जाता था। पीनेके पहले उसमें शहद डाला जाता था, जौका आटा आदि इच्छा हो तो मिलाया जाता था, जो भूनकर उसका आटा बनाकर मिलाते थे और फिर उसे पीते थे।

वह चमकता भी था, उसके विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

## सोमरस चमकता है

सोमरस पानी और दूधमें मिलानेके बाद चमकने लगता था, और इनके बिना भी वह चमकता था। इससे ऐसा मालूम पडता है कि उसमें फास्फोरसकी मात्रा अधिक होती होगी। उसके चमकनेका यह गुण बहुत महत्त्वका है, इसी कारण उसे बुद्धिवर्धक, उत्साहवर्धक और आनन्दवर्धक कहा है। अब उसके चमकनेके विषयमें वर्णन देखिए—

१ स्वर्दृशं भानुना द्युमन्तं हवामहे ( ४८० )-स्वयं तेजस्वी और अपने तेजसे चमकनेवाले सोमरसको हम बुलाते हैं, हम उसकी स्तुति करते हैं।

२ देवः पवस्व ( ४८३ )- चमकनेवाला सोम शुद्ध होवे, तू छनता जा।

३ पवमानः वैश्वानरं ज्योतिः दिवः चित्रं अजीजनत् ( ४८४ )- छाना जानेवाला यह सोमरस सब मनुष्यों-का हित करनेवाला, तेजस्वी, द्युलोकमें चमकनेवाला उत्पन्न हुआ।

४ आयवः रुचे सूर्यं जनन्त ( ५०२ )- मनुष्योंने-ऋत्विजोंने तेजके लिए सूर्य-सोम-उत्पन्न किया है।

५ द्युमत्तमः ( ५०३ )- सोम बहुत तेजस्वी है।

६ हे देव ! वृषा द्युमान् असि ( ५०४ )-हे प्रकाशमान् सोम ! तू बल बढानेवाला और तेजस्वी है।

७ हिरण्ययः देवः ( ५११ )- यह सोनेके समान चमकता है।

८ रभसानि वस्त्रा आदत्ते ( ५३३ )- यह सोम तेजस्वी वस्त्र पहनता है।

९ अर्कैः सूर्यं अपिन्वः ( ५३४ )- तेजसे सूर्यको भरता है। सूर्यको भी तेज देता है, इतना यह सोमरस तेजस्वी है।

१० सोमः उभे रोदसी व्यख्यत् ( ५४६ )- सोमरस दोनों ही लोकों-द्यावापृथिवीको-तेजस्वी करता है।

११ विचक्षणः सूर्यस्य रथं अधि आरुहत् ( ५५४ ) - यह ज्ञानी सोमरस सूर्यके रथपर चढ गया है, अर्थात् इससे सूर्यका तेज बढा है, अर्थात् यह स्वयं तेजस्वी है।

१२ राजा इव दस्म ( ५६२ )- राजाके समान यह तेजस्वी दीखता है।

इस प्रकार सोमरस अपने तेजसे चमकता है, इस विषयमें यह वर्णन उपरोक्त मंत्रोंमें आया है। अब इसका एक दूसरा गुण देखिए—

## उत्साह बढानेवाला सोम

सोमरस चमकता है, अर्थात् उसमें स्वाभाविक तेज है। ऐसा कोई पदार्थ उसमें है, जिसके कारण वह चमकता है। अपने चमकनेवाले गुणके कारण ही वह उत्साह बढनेवाला है। देखिए—

१ चेतनः प्रियः इन्दुः ( ४८१ )- यह सोमरस चेतना बढानेवाला है, इस कारण वह सभीको प्यारा है।

२ वाजिनः आशवः सोमासः प्रासृक्षत ( ४८२ )- बलवर्धक और उत्साह बढानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

३ मदिरः जागृविः ( ५१४ )- आनन्द बढानेवाला और उत्साह बढानेवाला, सबको जाग्रत रखनेवाला यह सोम है।

४ मदाय पवते ( ५४० )- आनन्द बढानेवाला यह सोम शुद्ध किया जाता है।

इस प्रकार सोमरस उत्साह बढानेवाला है, ये इस सम्बन्धमें वर्णन हैं। जिस कारण वह चमकता है, इसीलिए वह उत्साह बढानेवाला है। अब उसके आनन्द बढानेवाले गुणोंका वर्णन देखिए—

## आनन्द बढानेवाला सोम

१ मदेषु सर्वधा असि ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले रसोंमें सोमरस सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है।

२ ते मदः इन्द्रं गच्छतु ( ४७८ )- तेरा आनन्द बढानेवाला गुण इन्द्रको प्राप्त हो।

३ मत्सरः क्रतुवित् पवसे ( ४९२ )- आनन्द बढानेवाला और यज्ञमें जानेवाला सोमरस छाना जाता है।

४ सुतस्य अन्धसः धारा मन्दी ( ५०० )- सोमरस रूपी अन्नकी धारा आनन्द देनेवाली है।

५ मन्दानः वृषायसे ( ५०७ )- हे सोम ! तू आनन्द और बल बढानेवाला है।

इस प्रकार यह सोमरस आनन्द बढानेवाला है।

## बुद्धिवर्धक सोम

अब सोमके बुद्धिवर्धक गुण देखें—

१ कविः ( ४८६ )- ज्ञानी, बुद्धिमान्, क्रान्तदर्शी।

२ कवीनां मतिः ( ४८१ )- ज्ञानी लोगोंकी बुद्धि बढानेवाला।

३ कविक्रतुः ( ४७६ )- ज्ञानी और कर्म जाननेवाला।

४ विप्रः अभवः (५१९ )- सोम ज्ञानका बढानेवाला है।

५ पुरुमेधाः ( ५१४ )- बहुत बुद्धिमान्।

६ सोमासः विपश्चितः ( ४७६ )- सोमरस बुद्धि बढानेवाला है।

७ मनीषिणः सोमासः ( ५१८ )- बुद्धि बढानेवाले सोमरस हैं।

इस प्रकार सोम बुद्धिवर्धक है।

## बलवर्धक सोम

सोम पीनेके बाद बल बढाता है।

१ दक्षसाधनः (४७४)- सोमरस बल बढानेवाला है।

२ वृषा असि ( ४८० )- तू बलवान् है।

३ वृषा वृषव्रतः ( ५०४ )- सोम बलवान् हैं, और पीनेवालेके व्रत और बल बढानेवाले हैं।

४ ते दक्षं बलं आवृणीमहे ( ४९८ )- तेरे सामर्थ्य और बल हम ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार उसके बल बढानेवाले गुणका वर्णन है।

## स्वादिष्ट और मीठा सोम

सोम स्वादिष्ट और हर्ष बढानेवाला है।

१ स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व ( ४६८ )- स्वादिष्ट और उत्साहवर्धक धारासे सोमरस छाना जाता है। इस मंत्रमें सोमरस अत्यन्त स्वादिष्ट और हर्ष बढानेवाला है, यह कहा है।

२ तेन अन्धसा पवस्व ( ४७० )- सोममें अन्नका सत्त्व है और वह सुखदायक है।

३ मधुमत्तमः ( ४७२ )- वह अत्यन्त मीठा है।

४ एष मधुमान् ( ५५६ )- यह मीठा है।

इस प्रकारका यह सोमरस है, स्वादिष्ट और मीठा होता था। इस कारण वह लोकप्रिय हो गया था।

## मनुष्योंका हित करनेवाला सोम

सोम मनुष्योंका हित करनेवाला है, यह मं. ५१२ में " नर्यः " शब्दसे प्रगट किया है।

## दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम

सोम शूरवीरोंका उत्साह बढानेवाला है। उससे बल और शौर्य बढता है, इस कारण शूर सोमरसका पान करते हैं, और वे शूर-वीरताके काम करने लगते हैं। इस कारण दुष्टोंका नाश होता है। इस विषयमें निम्न मंत्र है—

१ अघ-शंस-हा ( ४७० )- पापकर्मोंके लिए प्रसिद्ध मनुष्योंका नाश करनेवाला है। सोमरस पीनेसे वीरोंमें उत्साह बढता है, और वह उत्साह पापीलोगोंका नाश करता है।

२ अ-राव्णः अपघ्नन् ( ५१० )- दान न देनेवाले कंजूसोंका सोम नाश करनेवाला है।

३ विश्वाः द्विषः अप जहि ( ४७९ )- सब द्वेष करनेवालोंका नाश करनेवाला है।

४ विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् ( ४८८ )- सब दुष्टोंका नाश कर।

५ मृधः अपघ्नन् ( ४९२ )- वह शत्रुओंको मारता है।

६ अदेवयुं जनं नुदस्व ( ४९२ )- देवोंकी भक्ति न करनेवाले दुष्टोंको दूर कर।

७ ते मदेषु नवतीः नव अवाहन् ( ४९५ )- तेरे पीनेसे उत्साह बढनेके कारण वीरोंने शत्रुके निन्यानवे नगरोंको तोडा।

८ सेनानीः शूरः सोमः रथानां अग्रे एति, अस्य सेना हर्षते ( ५३३ )- सेनाका संचालन करनेवाला शूर सोम रथके अग्रभागमें जाता है और इसकी सेना हर्षित होती है। सोमरस पीनेसे इस प्रकार बल बढता है।

९ रक्षः हन्ति, अरातीः परि बाधते ( ५४० )-

राक्षसोंको मारता और दुष्टोंको पीडा देता है। ऐसा यह सोम है।

१० वृत्राय हन्तवे इन्द्रं आविथ ( ४९४ )- वृत्रको मारनेके लिए इन्द्रका बल बढाया। सोमरस पीनेके कारण वृत्रको मारनेका बल इन्द्रमें बढा।

सोम पीकर शूर सैनिक ऐसा कार्य कर सकते हैं।

## इन्द्रके लिए सोमरस

इन्द्रमें सोमपानसे शौर्य बढता है और वह राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ होता है। इसलिए इन्द्रको सोम देनेकी परिपाटी है, देखिए—

१ इन्द्राय पातवे सुतः ( ४६८ )-इन्द्रको पिलानेके लिए यह सोम तय्यार किया गया है।

२ इन्दु इन्द्राय धीयते ( ४८९ )- सोमरस इन्द्रके लिए है।

३ मधुमत्तमः द्युक्षतमः मदः इन्द्राय पवस्व ( ४७८ )- अत्यन्त मीठा, तेजस्वी और आनन्द बढानेवाला यह सोमरस इन्द्रके लिए छान।

४ मरुत्वते इन्द्राय पवस्व ( ४७२ )- मरुतोंकी सेनाके साथ इन्द्रको यह सोमरस छानकर दे। इन्द्रको पिलानेके साथ उसके सैनिकोंको भी रस पीनेके लिए दिया जाता है। अर्थात् सब उत्साहित होकर शत्रुओंका नाश करते हैं।

५ सुतासः पवित्रवन्तः इन्द्राय क्षरन् ( ५४७ )- सोमरस छाना जानेके बाद इन्द्रको दिया जाता है।

६ इन्दुः इन्द्रस्य निष्कृतं प्र अयासीत्, सख्युः संगिरं न प्रमिनाति ( ५५७ )- सोमरस इन्द्रके पेटमें जाता है, और वहां अपने मित्रके पेटमें कुछ भी कष्ट नहीं देता। सोमरसको पीनेसे इन्द्रको कोई कष्ट नहीं होता।

सोमरस अकेले इन्द्रको ही दिया जाता हो ऐसी बात नहीं, अपितु सभी देवोंको दिया जाता है। देखिए—

७ देवेभ्यः पीतये पवस्व ( ४७४ )- देवोंको पिलाने योग्य सोमरस छान।

८ मदाः देवान् गच्छन्तु (५४७)- सोमरस देवोंको दो।

९ विश्वान् देवान् मदेन सह परि गच्छाति (५५२) -सब देवोंके पास यह सोमरस अपने आनन्द बढानेवाले गुणके साथ जाता है।

इस प्रकार सब देव सोमरस पीते हैं और उस कारण वे उत्साह और आनन्द युक्त होते हैं।



## सोम धन देता है

सोम धनको भी देनेवाला है। इस विषयमें निम्न मंत्र है—

१ रत्नधाः ( ५११ )- सोम रत्न देनेवाला है।

२ वार्याणि दयते ( ५२९ )- सोम धन देता है।

३ सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा वाजी ( ५३१ )- हजारों, सैंकडों और बहुतसा धन देनेवाला सोम है।

४ शतस्पृहं, सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं रयिं न अभ्यर्ष ( ५४९ )- सैंकडोंके द्वारा चाहने योग्य हजारोंका पोषण करनेवाले, तेजस्वी धन हमें दे।

५ पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं रयिं अभ्यर्षसि ( ५१७ ) -पीले रंगके बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य बहुतसे धनको तू देता है।

६ सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं आ पवस्व (५०१ )- हजारों प्रकारके उत्तम पराक्रम करनेवाले धन हमें दे।

७ नः महे तुने प्र अर्षसि ( ५०९ )- हमें बहुत धन प्राप्त हो इसलिए तू छाना जाता है।

सोम धन देता है, अर्थात् सोमयाग करनेवाले यजमानको लोगोंसे धन मिलता है। यज्ञ-याग महान् पवित्र कार्य है। उसमें बडा खर्च होता है। वह धनिकोंसे दानरूपमें मिलता है।

## वेदमंत्रोंका गान

सोमरस निकालते हुए मंत्रोंका पाठ भी साथ-साथ चलता है, उसके सम्बन्धमें ये निर्देश है—

१ तिस्रः वाचः उदीरते ( ४७१ )- तीन वेदोंका पाठ होता है।

२ पुनानाय प्रगायत ( ५६८ )- सोमरसको छानते समय वेद मंत्रोंका गान करो।

३ पुनानं तं अभिगायत ( ५६८ )- सोमरस छानते हुए वेद मंत्रोंका गान करो।

४ ऋषीणां सप्तवाणीः अभि अनूषत ( ५७७ )- ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली वाणी-वेद कहो।

५ इन्द्रवाहान् भद्रान् कृण्वन् ( ५३३ )- इन्द्रकी कल्याण करनेवाली स्तुतिका गान करो।

६ विप्रं धीतिभिः शुम्भन्ते ( ४८८ )- ज्ञानी सोमको छाननेके समय स्तोत्रोंकी शोभा बढाई जाती है।

७ बर्हणा गिरा ( ४८५ )- महान् स्तोत्रोंसे मंत्र बोले जाते हैं।

इस प्रकार वेदपाठ करते हुए सोमरस छाना जाता है।

## यज्ञ कर्ताओंका संगठन

सोम यज्ञकर्ताओंका संगठन करनेवाला है। इस विषयमें मंत्र देखिए—

१ पुरुस्पृहं कारूं विभृत् ( ४८६ )- अनेक जिसकी प्रशंसा करते है, उन यज्ञ कर्त्ताओंको यह सोम संगठित करता है। यज्ञ करनेसे महान् संगठन होता है। यज्ञ संगतिकरणका एक महान् साधन है।

## कुत्तेको दूर करो

यज्ञमें कुत्तेको आने नहीं देना चाहिए। मंत्र भी कहता है—

१ श्वानं अप हत ( ५५३ )- कुत्तेको दूर करो।

२ सुताय दीर्घजिव्हं श्वानं अपश्नाविध्न ( ५४५ )- सोमरसके पास लम्बी जीभवाले कुत्तेको मत जाने दो।

इस प्रकार यज्ञ मण्डपमें कुत्तेको सोमरसके पास नहीं जाने देना चाहिए यह स्पष्ट कहा है।

## उपमा

इस पावमान काण्डमें जो उपमायें आई हैं, और उन उपमाओं द्वारा जो ज्ञान दिया गया है, वह उनके अर्थोंको देखकर समझमें आएगा—

१ श्येनः न गिरिष्ठाः अंशुः योनिं आ सदत् ( ४७३ )- श्येन पक्षीके समान पर्वत पर रहनेवाला सोम यज्ञशालामें जाकर बैठता है। श्येनके समान सोम भी पर्वत पर रहता है, और वहांसे जैसे श्येन पक्षी उडकर अपने स्थानपर जाता है, उसी प्रकार सोम यज्ञशालामें आता है।

२ महिषा वनानि इव, सोमासः अप ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )- भैंसे जिस प्रकार वनमें जाकर पानी पीते हैं, उसी प्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है, और जिस प्रकार भैंसे बलवान् होते है, उसी प्रकार सोमभी बलवान होता है।

३ रथीः अश्वं इव इन्दुः पविष्ट असृजत् ( ४८१ ) -जिस प्रकार रथमें बैठनेवाला घोडेको हांकता है उसी प्रकार सोम छाना जाता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

४ पवमानः दिवः चित्रं ज्योतिः, तन्यतुं न, अजीजनत् ( ४८४ )- छाना जानेवाला सोम, द्युलोकमें चमकने वाले बिजलीके समान, चमकता है।

५ यथा रथ्यः, चम्वोः सुतः पवित्रे असर्जि ( ४९० )- जिस प्रकार रथके घोडे छोडे जाते है, उसी प्रकार बर्तनमें सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं, नीचे छोडे जाते हैं।

६ त्वेषाः अयासः, गावः न प्र अक्रमुः ( ४९१ )- तेजस्वी प्रगमनशील सोमरस, जिस प्रकार गायें गोष्ठमें जाती हैं, उसी प्रकार यज्ञ-मण्डपमें जाता है।

७ यथा सूर्यं अरोचयः, अपः हिन्वानः ( ४९३ )- जिस प्रकार सूर्यको प्रकाशित किया, उसी प्रकार पानीमें जाकर तू भी तेजस्वी हो गया।

८ महान् मित्रो न दर्शत, सूर्येण सं दिद्युते (४९७) -महान् मित्रके समान दर्शनीय सोमरस सूर्यके समान चमकता है।

९ हरि चम्वोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )- हरे रंगका सोम बर्तनमें, नगरमें जिस प्रकार मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

१० मदिरः न जागृविः ( ५१४ )- आनन्दित होनेके समान तू जागृत है।

११ अश्वया इव हरिता धारया याति ( ५१६ )- घोडीके समान, यह सोम हरे रंगकी धारासे बर्तनमें जाता है। घोडी जिस-प्रकार एक लगामसे चलती है, उसी प्रकार यह सोमरस एक धारासे बर्तनमें पडता है।

१२ हयाः पवमानाः, मत्सराः धारया पवित्रं असृक्षत ( ५२२ )- घोडे जैसे धोये जाते हैं, उसी प्रकार सोमरस एक धारासे छानकर शुद्ध किया जाता है।

१३ वाजिनं अश्वं न, त्वा मर्जयन्तः ( ५२३ )- जिस प्रकार बलवान् घोडेको धोते है, उसी प्रकार सोमको छानकर शुद्ध करते हैं।

१४ अत्यः वाजी न, हरिद्रोणं ननक्षे ( ५३८ )- घुडदौडमें दौडनेवाले घोडेके समान, हरे रंगका सोम बर्तनमें जाता है।

१५ वाजिनि इव शुभः, सूरे विशः, पशुवर्धनाय वज्रं न मन्म ( ५३९ )- जिस प्रकार घोडेको जेवरोंसे सजाते है, सूर्यमें किरणें चमकती हैं, जिस प्रकार पशुओंके संवर्धनके लिए ग्वाला विचारशील होकर गायोंके बाडेमें जाता है, उसी प्रकार सोमरस बर्तनमें छाना जाता है, तब यह चमकने लगता है।

१६ मातरः पूर्वे आयुनि जातं वत्सं रिहन्ति न, अद्रुहः इन्द्रस्य काम्यं अभिनवन्ते ( ५५० )- जिस प्रकार गाय पहले पहलके बच्चेको चाटती है, उसी प्रकार

द्रोह न करनेवाले जल इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोममें मिलाये जाते हैं।

१७ अराधसं मखं भृगवः न, श्वानं अप हत ( ५५३ )- जिस प्रकार दान दक्षिणासे रहित यज्ञको भृगुऋषिने त्याग दिया था अर्थात् दूर कर दिया था, उसी प्रकार यज्ञ भूमिसे कुत्तेको दूर करो।

१८ युवतिभिः मर्यः इव, इन्दुः सं अर्षति (५५७)- अनेक स्त्रियोंके साथ जैसे एक पुरुष रहता है, उसी प्रकार सोमरस जलोंके साथ मिलाता है।

१९ अत्यः न, वृथा रसः नदीषु कृणुते ( ५५८ )- जैसे घुडदौडका घोडा दौडता है, उसी प्रकार सरलतासे ही सोमरस नदीके पानीमें मिलया जाता है।

२० श्येनः न, सोमः घृतवन्तं योनिं आ सदत् ( ५६२ )- श्येनके समान सोमरस जलसे भरे हुए बर्तनमें जाकर बैठता है। पानीमें मिलाया जाता है।

११ शिशुं न, श्रिये परिभूषत ( ५६८ )- जिस प्रकार बालकको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोमरसको शोभाके लिए गायके दूधमें मिलाते हैं।

२२ शिशुं न, हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ( ५६९ )- जिस प्रकार बालकको जेवरोंसे सजाते हैं, उसी प्रकार हव्य पदार्थों अर्थात् दूध आदि पदार्थोंसे और स्तुतियोंसे स्वादिष्ट करते हैं।

२३ भृतिं न, सोमाय वचः प्रोच्यते ( ५७३ )- नौकरको जैसे धन देते हैं, उसी प्रकार सोमकी स्तुति करते हैं, यहां प्राचीनकालमें भी नौकर वेतन देकर रखे जाते थे, और उन्हें मासिक अथवा दैनिक वेतन धनके रूपमें दिया जाता था ऐसा प्रतीत होता है।

## सुभाषित

१ तत् उग्रं शर्म, महि श्रवः भूम्या ददे ( ४६७ )- वे शौर्यसे मिलनेवाले सुख और महान् यश अथवा अन्न भूमिपर हमें मिलें।

२ विश्वा ओजसा दधानः मत्सरः ( ४६९ )- सब सामर्थ्यसे युक्त होकर आनन्द बढानेवाला वह सोम हो।

३ ते देवावीः अघशंसहा वरेण्यः मदः ( ४७० )- तेरा आनन्द देवोंके पास पहुंचानेवाला, पापियोंका नाश करनेवाला और श्रेष्ठ है।

४ दक्षसाधनः मदः ( ४७४ )- तेरा यह आनन्द बल बढानेवाला है।

*

५ मदेषु सर्वधा असि ( ४७५ )- आनंद देनेवाले पदार्थोंमें तू सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है।

६ जने नः यशसः कृधि ( ४७९ )- तू लोगोंमें हमें यशस्वी कर।

७ विश्वा द्विषः अप जहि ( ४७९ )- सब शत्रुओंको हरा।

८ स्वर्दृशं भानुना द्युमन्तं त्वा हरामहे ( ४८० )- निरीक्षण करनेवाले और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले तुझे हम बुलाते हैं।

९ चेतनः प्रियः कवीनां मतिः पविष्ट ( ४८१ )- ज्ञान देनेवाला, प्रिय और ज्ञानियोंको बुद्धि देनेवाला शुद्ध होता है।

१० देवः पवस्व ( ४८१ )- तू तेजस्वी और शुद्ध हो।

११ पवमानः वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत् (४८४) - शुद्ध होनेके बाद सब मनुष्योंका हित करनेवाले तेज प्रकट होते हैं।

१२ पुरुस्पृहं कारुं बिभ्रत् ( ४८६ )- बहुतोंसे प्रशंसित कारीगरको धारण करता है। " कारु "= कारीगर याजक।

१३ भंगं देवाः उप अयासिषुः ( ४८७ )- शत्रुका नाश करनेवाले वीरको देव प्राप्त होते हैं।

१४ विचर्षणिः विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् ( ४८८ ) - विशेष ज्ञानी सब शत्रुओंको हराता है।

१५ विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन् ( ४८९ )- सब शोभाको बढाओ।

१६ मत्सरः मृधः अपघ्नन् ( ४९२ )- सोमका आनन्द शत्रुको दूर करनेवाला है।

१७ अ-देव-युं जनं नुदस्व (४९२)- देवकी भक्ति न करनेवाले मनुष्यको दूर कर।

१८ ते यः मदेषु नवतीः नवः अवाहन् ( ४९५ )- तेरा वह उत्साह युद्धमें शत्रुके ९९ नगरोंको तोडता है।

१९ द्युक्षं सनत् रयिं अन्धसा नः परिभरत् (४९६) -तेजस्वी और देने योग्य धन अन्नके साथ हमें दे।

२० ते दक्षं बलं अद्य आवृणीमहे ( ४९८ )- तेरे बल और सामर्थ्यको आज हम ग्रहण करते हैं।

२१ ते बलं मयोभुवं वन्हिं पान्तं पुरुस्पृहं (४९८)- तेरे बल सुखदायी, धन देनेवाले, रक्षा करनेवाले और बहुतों द्वारा प्रशंसित होते हैं।

२२ सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं अस्मै श्रवांसि धारय

( ५०१ )- हजारों प्रकारसे बल बढानेवाले और उत्तम पराक्रम करनेवाले धन दे, और इसे अन्न अथवा यश दे ।

२३ वृषा द्युमान् असि ( ५०४ )- तू बलवान् और तेजस्वी है ।

२४ वृषतमः धर्माणि दध्रिषे ( ५०४ )- तू अत्यन्त बलवान् है और बल बढानेवाले सब गुणधर्मोंको धारण करता है ।

२५ वृषा देवयुः ( ५०६ )- तू बलवान् और देवोंको प्राप्त करनेवाला है ।

२६ अया सुकृत्यया महान् अभ्यवर्धथाः ( ५०७ ) -इस उत्तम शुभ कर्मसे तू महान् होता है ।

२७ मन्दानः वृषायसे ( ५०७ )- तू आनन्दित होकर बलवान् होता है ।

२८ विचर्षणिः हितः स चेतति ( ५०८ )- ज्ञानी हितकारक होकर ज्ञान देते हैं ।

२९ मृधः अराव्णः अपघ्नन् ( ५०९ )- शत्रुओं और दान न देनेवालोंको वह मारता है ।

३० रत्नधा ऋतस्य योनिं आसीदसि ( ५११ )- रत्नोंको धारण करके सत्यके आधारसे वह रहता है ।

३१ नर्यः ( ५१२ )- मानवोंका हित करनेवाला है ।

३२ मदिरः न जागृविः ( ५१४ )- तू आनन्द देनेवाला और जाग्रत रहनेवाला है ।

३३ पुरूणि मां न्यवचरन्ति, तान् परिधीन् अतीहि ( ५१६ )- बहुतसे दुष्ट मुझे कष्ट देते हैं, उन दुष्टोंका तू नाश कर ।

३४ पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं रयिं अभ्यर्षसि (५१७) -पीले सोनेके रंगवाले बहुतों द्वारा प्रशंसनीय बहुतसे धन तू देता है ।

३५ आयवः मृजन्ति ( ५२० )- मनुष्य शुद्ध होते हैं ।

३६ देवः देवानां जनिमा प्र विवक्ति ( ५२४ )- देव देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है ।

३७ रत्नधाः वार्याणि दयते ( ५२८ )- रत्नोंको धारण करनेवाला धनोंको धारण करता है ।

३८ सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा वाजी शश्वत्तमं बर्हिः अस्थात् ( ५३१ )- हजारों, सैकडों और बहुत साधन देनेवाला सामर्थ्यवान् वीर नित्य आसनपर बैठता है ।

३९ सेनानीः शूरः रथानां अग्रे एति ( ५३३ )- सेनाका संचालक शूरवीर रथके आगे दौडता है ।

४० अस्य सेना हर्षते ( ५३४ )-इसकी सेना आनन्दित होती है ।

४१ धाम पवसे ( ५३४ )- अपना घर स्वच्छ रखता है ।

४२ देवान् अभि अर्चाम ( ५३५ )- देवोंकी हम पूजा करते हैं ।

४३ महते हिनोति ( ५३५ )- महान् कार्यके लिए प्रेरित करता है ।

४४ आयुधा संशिशानः ( ५३६ )- शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है ।

४५ विश्वा वसु हस्तयोः आदधानः प्रायासीत् ( ५३६ )- सब धनोंको अपने दोनोंही हाथोंमें रखकर वह आता है ।

४६ अरातीः परि बाधते ( ५४० )- वह शत्रुओंको दूर करता है ।

४७ शतस्पृहं सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहं वाजसातमं रयिं नः अभ्यर्ष ( ५४१ )- सैकडों जिसकी स्तुति करते हैं, हजारों मनुष्योंका जो पोषण करता है, जो तेजस्वी है, जो विशेष प्रकाशमान है, जो बल बढाता है वह धन हमें दे ।

४८ अ-रातयः नः अर्यः इषयः अश्नन्तः चित् सन्तु ( ५५५ )- दान न देनेवाले हमारे शत्रु, अन्नकी इच्छा करते हुए भी अन्न न मिलनेसे भूखे ही रहें ।

४९ युवतिभिः मर्यः सं अर्षति ( ५५७ )- अनेक स्त्रियोंके साथ एक पुरुष आनन्दसे रहता है ।

५० अमीवा रक्षसा सह अप भवतु ( ५३१ )- रोगके कीटाणु राक्षसोंके साथ दूर जावें ।

५१ द्वयाविनः मा मत्सत ( ५६१ )- दो तरहका आचरण करनेवाले ( मनसे और आचरणसे और ) आनन्दित न होवें ।

५२ राजा इव दस्म ( ५६२ )- राजाके समान सुन्दर है ।

५३ अ-तप्त-तनूः तत् आमः न अश्नुते ( ५६६ ) -तप न करनेवाला उस सुखको प्राप्त नहीं कर सकता ।

५४ शृतासः इत् तत् समाशते ( ५६६ )- तपसे तपा हुआही उस आनन्दको पा सकता है ।

५५ द्युमन्तं स्वर्विदं शुष्म आ भर ( ५६७ )- तेजस्वी ज्ञान बढानेवाले बल हमें दे ।

५६ भृतिं न प्रभर ( ५६९ )- नौकरको जिस प्रकार वेतन देते हैं, उस प्रकार हमें धन दें ।

५७ वीरवत् यशः अभ्यर्ष ( ५७६ )- वीर पुत्रोंसे युक्त यश दे।

५८ ऋषीणां सप्तवाणीः अभि अनूषत् ( ५७७ )- ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली वाणी कहो-वेदमंत्र बोलो।

५९ मधुमत्तमः क्रतुवित्तमः महि द्युक्षत्तमः मदः ( ५७८ )- तेरा आनन्द अत्यन्त मीठा, कर्म करनेकी पद्धति जाननेवाला, और अत्यधिक तेजस्वी है।

६० देवयुं द्युम्नं बृहद् यशः अभि दिदीहि ( ५७९ ) -देवोंको प्राप्त करनेवाले तेजस्वी और महान् यश हमें दे।

---

## पवमानकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( ३९ ) | | |
| ४६७ | ९।६१।१० | अहमीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ४६८ | ९।१।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ४६९ | ९।६५।१० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ४७० | ९।६१।१९ | अहमीयुरांगिरसः | " | " |
| ४७१ | ९।३३।४ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ४७२ | ९।६४।२२ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ४७३ | ९।६२।४ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| ४७४ | ९।२५।१ | दृढच्युत आगस्त्यः | " | " |
| ४७५ | ९।१८।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ४७६ | ९।९।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( ४० ) | | |
| ४७७ | ९।३२।१ | श्यावाश्व आत्रेयः | " | " |
| ४७८ | ९।३३।१ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ४७९ | ९।६१।२८ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ४८० | ९।६५।४ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ४८१ | ९।६४।१० | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ४८२ | ९।६४।४ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ४८३ | ९।६३।२२ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| ४८४ | ९।६१।१६ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ४८५ | ९।२०।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ४८६ | ९।२४।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( ४१ ) | | |
| ४८७ | ९।६१।१३ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ४८८ | ९।४०।१ | बृहन्मतिरांगिरसः | " | " |
| ४८९ | ९।६२।१९ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ४९० | ९।३६।१ | प्रभूवसुरांगिरसः | पवमानः सोम | गायत्री |
| ४९१ | ९।४१।१ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| ४९२ | ९।६३।२४ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| ४९३ | ९।६३।७ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| ४९४ | ९।६१।२२ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ४९५ | ९।६१।१ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ४९६ | ९।११।१ | उचथ्य आंगिरसः | " | " |
| | | ( ४२ ) | | |
| ४९७ | ९।२।६ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ४९८ | ९।६५।२८ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ४९९ | ९।५१।१ | उचथ्य आंगिरसः | " | " |
| ५०० | ९।५८।१ | अवत्सारः काश्यपः | " | " |
| ५०१ | ९।६३।१ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| ५०२ | ९।२३।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ५०३ | ९।६५।१९ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ५०४ | ९।६४।१ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ५०५ | ९।६४।१३ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ५०६ | ९।६।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ५०७ | ९।४७।१ | कविर्भार्गवः | " | " |
| ५०८ | ९।६२।१० | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| ५०९ | ९।४४।१ | अयास्य आंगिरसः | " | " |
| ५१० | ९।६१।२५ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| | | ( ४३ ) | | |
| ५११ | ९।१०७।३ | सप्तर्षय [ १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ] | " | बृहती |
| ५१२ | ९।१०७।१ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१३ | ९।१०७।१० | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१४ | ९।१०७।१२ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१५ | ९।१०७।८ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१६ | ९।१०७।१९ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१७ | ९।१०७।२१ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१८ | ९।१०७।१४ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५१९ | ९।१०७।६ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५२० | ९।१०७।१७ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५२१ | ९।१०७।१३ | सप्तर्षयः | " | " |
| ५२२ | ९।१०७।१५ | सप्तर्षयः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( ४४ ) | | |
| ५१३ | ९।८७।१ | उशना काव्यः | पवमानः सोमः | बृहती |
| ५१४ | ९।९७।७ | वृषगणो वासिष्ठिः | ,, | ,, |
| ५१५ | ९।९७।२४ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| ५१६ | ९।९७।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ५१७ | ९।९६।५ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| ५१८ | ९।९०।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ५१९ | ९।९७।४० | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| ५३० | ९।९५।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ५३१ | ९।८७।४ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| ५३२ | ९।९६।१३ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| | | ( ४५ ) | | |
| ५३३ | ९।९६।१ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| ५३४ | ९।९७।३१ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| ५३५ | ९।८७।४ | इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः | ,, | ,, |
| ५३६ | ९।९०।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ५३७ | ९।९७।११ | कर्णश्रुद्वासिष्ठः | ,, | ,, |
| ५३८ | ९।९३।१ | नोधा गोतमः | ,, | ,, |
| ५३९ | ९।९४।१ | कण्वो घौरः | ,, | ,, |
| ५४० | ९।९७।१० | मन्युर्वासिष्ठः | ,, | ,, |
| ५४१ | ९।९७।५२ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |
| ५४२ | ९।९७।४१ | पराशरः शाकत्यः | ,, | ,, |
| ५४३ | ९।९१।१ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ५४४ | ९।९५।३ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ४६ ) | | |
| ५४५ | ९।१०१।१ | अध्रीगुः श्यावाश्विः | ,, | अनुष्टुप् |
| ५४६ | ९।१०१।८ | नहुषो मानवः | ,, | ,, |
| ५४७ | ९।१०१।४ | ययातिर्नाहुषः | ,, | ,, |
| ५४८ | ९।१०१।१० | मनुः सांवरणः | ,, | ,, |
| ५४९ | ९।९८।१ | अम्बीरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | ,, | ,, |
| ५५० | ९।१००।१ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | ,, |
| ५५१ | ९।९९।१ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | बृहती |
| ५५२ | ९।९८।७ | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | ,, | अनुष्टुप् |
| ५५३ | ९।१०१।१३ | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | ,, | ,, |
| | | ( ४७ ) | | |
| ५५४ | ९।७५।१ | कविर्भार्गवः | ,, | जगती |
| ५५५ | ९।७९।१ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ५५६ | ९।७७।१ | कविर्भार्गवः | पवमानः सोमः | जगती |
| ५५७ | ९।८६।१६ | सिकता निवावरी | ,, | ,, |
| ५५८ | ९।७६।१ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ५५९ | ९।८६।१९ | सिकता निवावरी | ,, | ,, |
| ५६० | ९।७०।१ | रेणुर्वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ५६१ | ९।८५।१ | वेनोभार्गवः | ,, | ,, |
| ५६२ | ९।८२।१ | वसुर्भारद्वाजः | ,, | ,, |
| ५६३ | ९।६८।१ | वत्सप्रिर्भालन्दः | ,, | ,, |
| ५६४ | ९।८६।४३ | गृत्समदः शौनकः | ,, | ,, |
| ५६५ | ९।८३।१ | पवित्र आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ४८ ) | | |
| ५६६ | ९।१०६।१ | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | उष्णिक् |
| ५६७ | ९।१०६।४ | चक्षुर्मानवः | ,, | ,, |
| ५६८ | ९।१०४।१ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ५६९ | ९।१०५।१ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ५७० | ९।१०९।१ | त्रित आप्त्यः | ,, | ,, |
| ५७१ | ९।१०६।७ | मनुराप्सवः | ,, | ,, |
| ५७२ | ९।१०६।१० | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | ,, |
| ५७३ | ९।१०३।१ | द्वित आप्त्यः | ,, | ,, |
| ५७४ | ९।१०५।३ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ५७५ | ९।१०५।४ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ५७६ | ९।१०६।१३ | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | ,, |
| ५७७ | ९।१०३।३ | द्वित आप्त्यः | ,, | ,, |
| | | ( ४९ ) | | |
| ५७८ | ९।१०८।१ | गौरवीतिः शाक्त्यः | ,, | ककुप् |
| ५७९ | ९।१०८।३ | ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| ५८० | ९।१०८।७ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | ,, | ,, |
| ५८१ | ९।१०८।११ | कृतयशा आंगिरसः | ,, | ,, |
| ५८२ | ९।१०८।१३ | ऋणंचयो राजर्षिः | ,, | यवमध्या गायत्री |
| ५८३ | ९।१०८।२ | शक्तिर्वासिष्ठः | ,, | ककुप् |
| ५८४ | ९।१०८।५ | ऊरुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ५८५ | ९।१०८।६ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | ,, | ,, |

# अथ आरण्यं काण्डम् ।

## अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[ १ ]

( १-९ ) १ शंयुर्बार्हस्पत्यः ( भरद्वाजः ); २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३, ६ वामदेवो गौतमः; ४ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा; ५ कुत्स आंगिरसः ( गृत्समदः ); ७, ८ अमहीयुरांगिरसः; ९ आत्मा ॥ इन्द्रः; ४ वरुणः; ५, ७, ८ पवमानः सोमः; ६ विश्वे देवाः; ९ अन्नम् ॥ बृहती; २, ४, ५, ९ त्रिष्टुप्; ३, ७-८ गायत्री; ६ एकपाज्जगती ॥

५८६ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।५ )
५८७ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२७।३ )
५८८ यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनंस्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥ ( अथर्व. ६।३३।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ५८६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा ( सु-शिप्र ) सुन्दर ठोढीवाले इन्द्र ! ( ज्येष्ठं ओजिष्ठं ) श्रेष्ठ और बल बढानेवाले ( पपुरि श्रवः ) इच्छा पूर्ण करनेवाले अन्न ( नः आभर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) जो अन्न हम ( दिधृक्षेम ) पासमें रखनेकी इच्छा करते हैं, और जो ( उभे रोदसी ) द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंको ही ( आ पप्राः ) पूर्ण करते हैं, उसे हमें दे ॥ १ ॥

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आभर— सबसे उत्तम और सामर्थ्य बढानेवाले तथा इच्छा पूरी करनेवाले अन्न हमें भरपूर दे ।

२ यत् दिधृक्षेम— जिसको हम अपने पास रखनेकी इच्छा करते हैं, उसे हमें दे ।

[ ५८७ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( जगतः चर्षणीनां राजा ) चलनेवाले पशुओं और मनुष्योंका राजा है, उसी प्रकार ( अधि क्षमा ) इस पृथ्वीपर ( विश्वरूपं यत् ) अनेक रूपोंवाले जो कुछ हैं ( अस्य ) इन सबका वही राजा है । ( ततः दाशुषे वसूनि ददाति ) इसलिए दानशीलको वह धन देता है, उसी प्रकार ( उप-स्तुतं ) पाससे उत्तम स्तुति करनेवालेको ( राधः ) धन ( अर्वाक् चोदत् ) लाकर देता है ॥ २ ॥

१ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां, अधिक्षमा विश्वरूपं यत् अस्य राजा— इन्द्र इस स्थावर जंगम, मनुष्य और इस पृथ्वीपर अनेक रूपोंवाले जितने पदार्थ हैं, उन सबका अकेला ही राजा है ।

२ दाशुषे वसूनि ददाति— दानशीलको वह धन देता है ।

३ उपस्तुतं अर्वाक् राधः चोदत्— उत्तम स्तुति करनेवालेके पास वह धन भेजता है ।

[ ५८८ ] ( यस्य रजो युजः ) जिस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रका ( इदं ) यह दान ( स्वः तुजे जने वनं ) स्वर्गमें और दान देनेवाले जनोंमें प्रशंसनीय है, इसलिए ( इन्द्रस्य बृहत् रन्त्यं ) इन्द्रके दान महान् और रमणीय हैं ॥ ३ ॥

५८९ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय ।
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२४।१५ )

५९० त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

५९१ इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥

५९२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥
( ऋ. ९।६१।१२; वा. य. २६।२९ )

५९३ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥
( ऋ. ७९।६१।११; वा. य.२६।१९ )

---

[ ५८९ ] हे ( वरुण ) उत्तम देव ! ( उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय ) उत्तम बन्धनोंको हमसे दूर कर, ( अधमं पाशं अवश्रथाय ) अधम पाश शिथिल कर और ( मध्यमं पाशं विश्रथाय ) मध्यम पाशको ढीला कर, ( अथ ) इसके बाद हे ( आदित्य ) अदितिके पुत्र वरुण ! ( तव व्रते ) तेरे कार्यमें ( वयं ) हम ( अ-दितये ) हमारा नाश न हो इसलिए ( अनागसः स्याम ) पापरहित होकर रहें ॥ ४ ॥

१ वरुणः— उत्तम देव, श्रेष्ठ ईश्वर ।

२ उत्तम, मध्यम और अधम पाश-बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके बंधन, इनके कारण होनेवाले विघ्न दूर कर ( अव-श्रथाय, उच्छ्रथाय, विश्रथाय ) ढीले कर ।

३ अदितिः— अपराधीनता, स्वतंत्रता, अविनाश ।

४ अदितये अनागसः स्याम— मुक्त होनेके लिए निष्पाप होऊं ।

५ तव व्रते— तेरे नियमके अनुसार मैं रहूं, तेरे नियमोंका पालन करूं ।

[ ५९० ] हे ( सोम ) सोम ! ( पवमानेन त्वया ) शुद्ध होनेवाले तेरी सहायतासे ( भरे ) संग्राममें ( शश्वत् कृतं ) हमेशा किए जानेवाले कर्तव्य ( वयं वि चिनुयाम ) हम विशेष सावधानीसे करें, ( तत् ) इसलिए वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी ( उत द्यौ ) और द्युलोक ये ( मा महन्तां ) मुझे यश प्रदान करें ॥ ५ ॥

१ भरे शश्वत् कृतं वयं चिनुयाम— युद्धमें किए जानेवाले कर्मोंको हम सावधानीसे करें ।

२ तत् मा महन्तां— उसकी सहायतासे मुझे यश प्राप्त होवे ।

[ ५९१ ] हे देवो ( एकं इमं ) इस एकको ( वृषणं कृणुत ) तुम बलवान् करो, उसी प्रकार ( मां ) मुझे भी अपने कार्यमें सफल करो ॥ ६ ॥

[ ५९२ ] हे सोम ! ( सः वरिवो वित् ) धनको अपने पास रखनेवाला वह तू ( नः यज्यवे इन्द्राय ) हमारे द्वारा जिसके लिए यज्ञ किया जाता है, उस पूज्य इन्द्रके लिए ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण और मरुतोंके लिए ( परिस्रव ) उत्तम प्रकारसे छनता जा ॥ ७ ॥

[ ५९३ ] ( एना ) इस सोमकी सहायतासे ( मानुषाणां ) मनुष्योंके ( विश्वानि द्युम्नानि ) सब अन्नोंके ( अर्यः ) पास जाकर ( सिषासन्तः ) उसके उपभोगकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) उस अन्नको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

५९४ अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमाद्मि ॥ ९ ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

( १-७ ) श्रुतकक्ष आंगिरसः; २ पवित्र आंगिरसः; ३, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५ प्रथो वासिष्ठः; ६ गृत्समदः शौनकः; ७ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ ॥ इन्द्रः; २ पवमानः सोमः, ५ विश्वे देवाः; ६ वायुः ॥ गायत्री, जगती, ५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ॥

५९५ त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।१३ )
५९६ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८३।३ )

---

[ ५९४ ] ( देवेभ्यः पूर्वं ) देवोंसे पहले ( अहं ) मैं अन्नरूपी देवता ( अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि नाम ) विनाशरहित यज्ञमें प्रथम उत्पन्न हुआ हूं । ( यः मां ददाति ) जो मुझे दानमें देता है ( सः इत् एवं आवत् ) वह निश्चयपूर्वक इस दानसे सभीका रक्षण करता है । ( अन्नं अदन्तं ) अन्नको स्वयं खानेवाले लोभी मनुष्यको ( अहं अन्नं अद्मि ) मैं अन्न देवता ही खा जाता हूं ॥ ९ ॥

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अन्नं— सब देवोंसे पहले उनके लिए आवश्यक यह अन्न उत्पन्न हुआ । प्राणियोंके उत्पन्न होनेके पहले ही उनका पोषण करनेवाला अन्न उत्पन्न हुआ ।

२ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि— अमर यज्ञके पहले ही यह अन्न उत्पन्न हुआ । उस अन्नके उत्पन्न होनेके बाद यज्ञ किया गया ।

३ यः मां ददाति स आवत्— जो अन्नका दान करता है, वह इस दानसे सबका संरक्षण करता है ।

४ अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अद्मि— अन्नका दान न करते हुए जो स्वयं ही अन्नको खाता है, उस स्वार्थी मनुष्यको वह अन्न देवता ही खा जाता है, नष्ट कर देता है ।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ५९५ ] हे इन्द्र ! ( कृष्णासु ) काली ( रोहिणीषु ) लाल ( परुष्णीषु ) और अनेक रंगोंवाली गायोंमें ( रुशत् पतत् पयः ) तेजस्वी सफेद रंगका दूध ( त्वं अधारयः ) तूने रखा है, यह तेरा अद्भुत सामर्थ्य है ॥ १ ॥

[ ५९६ ] ( उषसः पृश्निः ) उषासे सम्बन्ध रखनेवाला सूर्य ( अग्रियः ) यहां मुख्य है । वही ( अरूरुचत् ) चमकता है । ( उक्षा ) बरसात गिरानेवाला मेघ आकाशमें ( मिमेति ) गडगडाहटका शब्द करता है । ( भुवनेषु वाजयुः ) प्राणियोंमें अन्नकी इच्छा उत्पन्न करके ( मायाविनः ) कर्मोंमें कुशलता दिखानेवाले देवोंने ( अस्य मायया ममिरे ) इस अपनी कुशलतासे जगत्का निर्माण किया । ( नृचक्षसः पितरः ) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले पितरोंने माताके पेटमें ( गर्भं आदधुः ) गर्भ स्थापित किया । इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

१ उषसः पृश्निः अग्रियः अरूरुचत्— उषःकालके बाद उदय होनेवाला सूर्य इस स्थानपर मुख्य है और वह उदय होनेके बाद प्रकाशित होने लगता है ।

२ उक्षा मिमेति— जलोंसे भूमिको सींचनेवाला मेघ आकाशमें गर्जना करता है ।

३ भुवनेषु वाजयुः— प्राणियोंमें अन्न खानेकी इच्छा उत्पन्न होती है ।

४ मायाविनः अस्य मायया ममिरे— जो कुशल हैं वे अपनी कुशलतासे सृष्टिका निर्माण करते हैं ।

५ नृचक्षसः पितरः गर्भं आदधुः— मानवोंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाले पितर माताके पेटमें गर्भ स्थापित करते हैं, जिससे सृष्टि होती है ।

*

५९७ इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।२ )

५९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७।४ )

५९९ प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१८१।१ )

६०० नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।४१।२ )

६०१ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥
( ऋ. ८।८९।५ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

( १-१३ ) १, ५, ७, १० वामदेवो गौतमः; २, ३, गौतमो राहूगणः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ गृत्समदः शौनकः ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ११ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; १२, १३ विश्वामित्रो गाथिनः ( १२ ब्रह्म )॥
१ प्रजापतिः; २, ३ सोमः; ४, ५, ८, १३ अग्निः; ६ अपांनपात्; ७ रात्रिः; ९ विश्वेदेवाः; १० लिंगोक्ताः;
११ इन्द्रः; १२ आत्मा अग्निर्वा ॥ त्रिष्टुप्; १, ७ अनुष्टुप्; ४ गायत्री; ८, ९ जगती; १० महापंक्तिः ॥

६०२ मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥

---

[ ५९७ ] ( इन्द्र इत् ) इन्द्र ही ( हर्योः ) दो घोडोंको अपने रथमें ( सचा संमिश्लः ) एक साथ जोडनेवाला है। ये घोडे ( वचो-युजा ) संकेतसे ही रथमें जुड जानेवाले हैं, इस प्रकार यह ( इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ) इन्द्र वज्र धारण करनेवाला और सोनेके आभूषण धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[ ५९८ ] तू ( उग्रः ) वीर है, इसलिए ( उग्राभिः ऊतिभिः ) वीरतासे युक्त संरक्षणोंसे ( वाजेषु ) छोटे युद्धोंमें ( सहस्र-प्रधनेषु च ) हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले बडे बडे संग्रामोंमें ( नः अव ) हमारा संरक्षण कर ॥ ४ ॥

१ सहस्र प्र-धनं— शत्रुको हरानेके बाद उसे लूटकर अनेकों तरहके धन जिसमें मिलते हैं, ऐसे बडे संग्राम।

२ उग्रा ऊतिः— वीरतासे किए गए संरक्षण।

[ ५९९ ] ( यस्य प्रथः च स-प्रथः च नाम ) जिसके प्रथ और सप्रथ ये नाम हैं, जिनके लिए ( अनुष्टुभस्य हविषः हवि यत् ) अनुष्टुभ छन्दमें मंत्रका पाठकर हविका अर्पण किया जाता है। उत ( द्युतानात् धातुः ) तेजस्वी धाता, सविता, विष्णुके पाससे वसिष्ठने ( रथन्तरं आजभार ) रथन्तर साम प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[ ६०० ] हे ( वायो ) वायुदेव! तू ( नियुत्वान् ) नियुत नामके रथसे ( आ गहि ) आ। ( अयं शुक्रः ) यह चमकनेवाला सोमरस ( ते अयामि ) तेरे लिए तैय्यार किया गया है, ( सुन्वतः गृहं ) तू सोम यज्ञ करनेवालेके घरको ( गन्ता असि ) जाता है ॥ ६ ॥

[ ६०१ ] हे ( अ-पूर्व्य मघवन् ) अद्भुत धनवाले इन्द्र! ( वृत्रहत्याय ) वृत्रके वध करनेके लिए ( यत् जायथाः ) जब तू तैय्यार हुआ ( तत् पृथिवीं अप्रथयः ) तब तूने पृथ्वीको विस्तृत किया ( उत उ दिवं अस्तभ्नाः ) और द्युलोकको ऊपर स्थिर किया ॥ ७ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः।

[ ६०२ ] ( परमेष्ठी प्रजापतिः ) श्रेष्ठ स्थानपर रहनेवाला प्रजाओंका पालक परमेश्वर ( मयि ) मुझमें ( वर्चः ) तेज ( अथो यशः ) और यश ( अथो यज्ञस्य यत्पयः ) और यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाला जो दूध है, उन्हें ( दिवि द्यां इव ) द्युलोकमें जिस प्रकार तेज होता है, उसी प्रकार ( दृंहतु ) बढावे ॥ १ ॥

६०३ सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९१।१८ )

६०४ त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।९१।२२ )

६०५ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारꣳरत्नधातमम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

६०६ ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ४।१।१६ )

---

परमेश्वर मुझे तेज, यश और दूध आदि अन्नके पदार्थ भरपूर देवे, आकाश जिस प्रकार तेजस्वी है, उसी प्रकार मैं भी तेजस्वी होऊं ।

[ ६०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अभिमाति-षाहः ) शत्रुका पराभव करनेवाले ( ते ) तेरे पास ( पयांसि सं यन्तु ) दूध हो, ( वाजाः सं यन्तु ) अन्न तेरे पास हों और ( वृष्णाणि सं ) बल तुझे प्राप्त होवें । ( अमृताय आप्यायमानः ) अमरत्व प्राप्त करनेके लिए बढते हुए ( दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ) द्युलोकमें उत्तम अन्नोंको प्राप्त कर ॥ २ ॥

१ ते पयांसि सं यन्तु— तेरे पास दूध हो, तेरे अन्दर दूध मिलाया जाए । सोमरसमें दूध मिलाते हैं ।

[ ६०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं ) तूने ( इमा विश्वाः ओषधीः अजनयः ) इन सभी औषधियोंको उत्पन्न किया, ( त्वं अपः ) तूने जल उत्पन्न किया, ( त्वं गाः ) तूने गायोंको उत्पन्न किया, ( त्वं उरुः अन्तरिक्षं आ तनोः ) तूने ही विस्तृत अन्तरिक्षको फैलाया ( त्वं तमः ज्योतिषा वि ववर्थ ) तूने अन्धकारका तेजसे नाश किया ॥ ३ ॥

[ ६०५ ] ( पुरः-हितं ) आगे रहनेवाले ( यज्ञस्य देवं ) यज्ञके प्रकाशक ( ऋत्विजं ) ऋतुओंके अनुसार हवन करनेवाले ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( रत्न-धातमं ) रत्नोंको धारण करनेवाले ( अग्निं ईडे ) अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

यज्ञमें अग्निका सामने स्थापन किया जाता है, उसमें हवन किया जाता है । ऋतुओंके अनुसार यज्ञ होता है, वह सब देवोंको बुलकर लाता है, याजकोंके शरीरपर धारण करनेके लिए वह रत्नोंको देता है, ऐसे अग्नि देवकी हम स्तुति करते हैं ।

[ ६०६ ] ( ते ) उन ऋषियोंने ( गोनां नाम ) वाणीके शब्द ( प्रथमं अमन्वत ) स्तुति करनेके योग्य है, यह प्रथम समझा, फिर ( त्रि सप्त परमं नाम जानन् ) तीन गुना सात अर्थात् २१ छन्दोंमें स्तोत्र होते हैं, यह जाना इसके बाद उन्होंने सावधानीसे ( ता जानतीः क्षा अभ्यनूषत ) उस वाणीसे उषाकी स्तुति की, उस ( यशसा ) तेजसे ( अरुणीः गावः आविर्भुवन् ) अरुण रंगकी गायें - किरणें - प्रकट हुईं ॥ ५ ॥

१ ऋषियोंने भाषाके शब्द स्तुतिके योग्य है, यह प्रथम समझा ।

२ उसके बाद २१ छंदोंमें स्तोत्र हो सकते है, यह जाना ।

३ उससे उषा देवताके स्तोत्र बनाये और उनका गान किया ।

४ तब सूर्यकी किरणें बाहर निकलीं, सूर्यका उदय हुआ ।

६०७ समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।३५।३ )

६०८ आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतूंत्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥

६०९ प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।८।१ )

६१० विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।५२।१४ )

६११ यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती । यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसाऽस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् । ॥ १० ॥

---

[ ६०७ ] ( अन्याः संयन्ति ) दूसरे वर्षाके जल मिल जाते हैं, ( अन्याः उपयन्ति ) दूसरे पानी भी इसमें मिलाये जाते हैं, वे सब पानी ( समानं नद्यः ) एक साथ मिलकर नदीके रूपसे ( ऊर्वं पृणन्ति ) वाडवानल-सागरकी अग्नि-को आनन्दित करते हैं, ( तं उ शुचिं दीदिवांसं अपां नपातं ) उस शुद्ध तेजस्वी जलके पौत्ररूपी अग्निके पास ( आपः उपयन्ति ) सब जलप्रवाह पहुंचते हैं ॥ ६ ॥

१ अपां न-पातः— जलोंको नीचे न गिरने देनेवाला मेघ, ( अपां नपातः ) जलोंका पौत्र– अग्नि ।

२ सब पानी मिलकर नदीके रूपमें सागरमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सोमरसमें पानी मिलाया जाता है, दोनों ही तरहके पानी सोमरसमें मिलाये जाते हैं ।

[ ६०८ ] ( भद्रा युवतिः ) कल्याण करनेवाली स्त्री ( प्रगात् ) रात्री आगई है, ( अह्नः केतून् ) दिवसकी किरणोंका ( सं ईर्त्सति ) वह प्रतिबन्ध करनेकी इच्छा करती है, ( विश्वस्य जगतः निवेशनी ) सब जगत्को विश्राम देनेवाली यह ( रात्री भद्रा अभूत् ) रात्री कल्याण करनेवाली है ॥ ७ ॥

[ ६०९ ] ( प्रक्षस्य वृष्णः ) व्यापक, बलवान् ( अरुषस्य ) और तेजस्वी अग्निके ( महः ) तेजकी मैं ( नू ) स्तुति करता हूँ, वे ( नः वचः ) हमारे स्तोत्र ( विदथा ) यज्ञमें ( जातवेदसे ) अग्निके लिए ( प्र ) बोले जाते हैं, ( नव्यसे वैश्वानराय अग्नये ) नवीन, सब मनुष्योंका हितकरनेवाले अग्निके पास वे ( शुचिः चारुः मतिः ) शुद्ध सुन्दर स्तोत्र ( सोमः इव पवते ) सोमके समान जाते हैं ॥ ८ ॥

[ ६१० ] ( विश्वे देवाः ) सब देव ( मम यज्ञं मन्म ) मेरे पूज्य स्तोत्र ( शृण्वन्तु ) सुनें, ( उभे रोदसी ) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक ( अपां नपात् ) और अग्नि मेरे स्तोत्र सुनें, हे ( देवाः ) देवो ! ( वः परिचक्ष्याणि ) तुम्हारे द्वारा न सुनने योग्य ( वचांसि मा वोचं ) स्तोत्रोंको मैं न बोलूं । इसीलिए ( वः अन्तमाः सुम्नेषु इत् मदेम ) तुम्हारे पास जाकर तुम्हारे द्वारा दिए गए सुखोंमें आनन्दित होऊं ॥ ९ ॥

[ ६११ ] ( द्यावा-पृथिवी ) द्युलोक और पृथ्वीलोकके ( यशः मा ) यश मुझे प्राप्त हों, ( इन्द्राबृहस्पती मा यशः ) इन्द्र और बृहस्पतिसे भी मुझे यश मिले ( भगस्य यशः मा विन्दतु ) भग देवका यश मुझे प्राप्त हो, मुझे ( यशः ) यश ( मा प्रति मुच्यताम् ) छोडकर दूर न जाए, ( अस्याः संसदः यशसा ) इस संसदके यशसे मैं दूर न होऊं ( अहं प्रवदिता स्यां ) मैं सभामें भाषण करनेवाला बनूं ॥ १० ॥

६१२ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।३२।१ )

६१३ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ३।२६।७ )

६१४ पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणꣳ सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ १३ ॥ ( ऋ.३।५।५ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

( १-१२ ) वामदेवो गौतमः ३-७ नारायणः ॥ १-२ अग्निः; ३-७ पुरुषः; ८ द्यावापृथिवी; ९-११ इन्द्रः; १२ गावः ॥ अनुष्टुप्; १-२ पंक्तिः; ८, ११, १२ त्रिष्टुप् ॥

६१५ भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥ १ ॥

---

[ ६१२ ] ( वज्री ) वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने ( यानि प्रथमानि ) जिन मुख्य ( वीर्याणि चकार ) पराक्रमके कार्य किए, उस ( इन्द्रस्य ) इन्द्रके उन पराक्रमके कार्योका ( नु प्रवोचं ) मैं वर्णन करता हूं, ( अहिं अहन् ) अहि मेघोंको उसने मारा, ( अनु अपः ततर्द ) उसके बाद उनसे पानी वहाया, और ( पर्वतानां वक्षणाः प्र अभिनत् ) पर्वतपरकी नदियोंको वहने योग्य बनाया ॥ ११ ॥

[ ६१३ ] ( जन्मना अग्निः अस्मि ) मैं जन्मसे ही अग्नि हूँ, मैं ( जात-वेदाः ) सबको जाननेवाला हूँ ( मे चक्षुः घृतं ) मेरी आंखें प्रकाशके साधन घी है, ( अमृतं मे आसन् ) अमरत्व मेरे मुखमें है, ( त्रिधातु अर्कः ) प्राण, अपान और व्यान इन तीनोंमें रहनेवाला प्राण मैं हूँ ( रजसः विमानः ) अन्तरिक्षको मापनेवाला वायु मैं हूँ, ( अ-जस्रं ज्योतिः ) हमेशा तेजसे युक्त रहनेवाला सूर्य मैं हूँ ( सर्वं हविः अस्मि ) सभी प्रकारका हवि मैं हूं ॥ १२ ॥

मैं जन्मसे ही अग्नि-तेजरूप हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ, घृतके हवनसे जो प्रकाश होता है, उसको देखनेवाला मैं हूँ। अमरत्व देनेवाली वाणी मेरे मुखमें है, मैं प्राण हूँ, वायु मैं हूँ, सूर्य मैं हूँ, हवि भी मेरा ही रूप है ।

अग्निका अर्थ है अग्रणी, शरीरमें अग्रणी आत्मा है, और वही ज्ञान स्वरूप है, सभीमें वही है ।

[ ६१४ ] ( अग्निः ) यह अग्नि ( वेः विपः ) गति करनेवाली भूमिके (अग्रं पदं पाति) मुख्य स्थानका रक्षण करती है। ( यह्वः सूर्यस्य चरणं पाति ) महान् अग्नि सूर्यके जानेके मार्गोका रक्षण करती है ( नाभा ) अन्तरिक्षमें ( सप्त शीर्षाणं ) सात गणोंमें रहनेवाले मरुतोंका ( पाति ) रक्षण करती है, ( ऋष्वः अग्निः ) दर्शनीय यह अग्नि ( देवानां उपमादं पाति ) देवोंको आनन्द देनेवाले यज्ञका रक्षण करती है ॥ १३ ॥

अग्नि, भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकका संरक्षण करती है । भूमि पर अग्नि रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे और द्युलोकमें सूर्यरूपसे यह अग्नि रहती है । मरुत् वायु है, वहां विद्युत् अग्नि है, और यज्ञमें अग्नि जो होती है, वह हवनके द्वारा सब देवोंका संरक्षण करती है ।

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६१५ ] ( समिधान अग्ने ) हे प्रदीप्त हुए अग्नि देव ! तेरे ( भ्राजन्ती आसनि ) तेजस्वी मुखमें तेरी ( जिह्वा ) जीभ ज्वाला ( चरति ) हविका भक्षण करती है, हे ( अग्ने वसुवित् ) धनयुक्त अग्ने ! ( सः त्वं ) वह तू ( नः ) हमें ( पयसा ) दूधरूपी अन्नसे युक्त ( रयिं ) धन और ( दृशे वर्चः ) दर्शनीय तेज ( अदाः ) दे ॥ १ ॥

६१६ वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥

६१७ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिᳬ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।९०।१ )

६१८ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।९०।४ )

६१९ पुरुष एवेदᳬ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।९०।२ )

६२० तावानस्य महिमा ततो ज्यायाᳬश्च पूरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।९०।३ )

६२१ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।९०।५ )

---

[ ६१६ ] ( वसन्तः इत् नु रन्त्यः ) वसन्तऋतु निश्चयसे रमणीय है, ( ग्रीष्मः इत् नु रन्त्यः ) ग्रीष्मऋतु भी रमणीय है, ( वर्षाणि शरदः हेमन्तः शिशिरः ) वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें भी ( इत् नु रन्त्यः ) रमणीय है ॥ २ ॥

[ ६१७ ] ( सहस्रशीर्षाः ) हजारों सिरवाला, ( सहस्र-अक्षः ) हजारों आंखोंवाला और ( सहस्रपात् ) हजारों पैरवाला एक पुरुष है, ( सः भूमिं सर्वतो वृत्वा ) वह भूमिको सब ओरसे घेर कर ( दशांगुलं अत्यतिष्ठत् ) दस इन्द्रियोंसे भोगने योग्य इस जगत्को घेरकर भी शेष बचा हुआ है ॥ ३ ॥

[ ६१८ ] ( त्रिपाद् पुरुषः ) तीन भागोंवाला यह पुरुष ( ऊर्ध्वः उदैत् ) ऊंचे स्थानपर रहता है, ( अस्य पादः पुनः इह अभवत् ) इसका चौथा भाग इस संसारमें फिर फिर प्रकट होता है, ( साशन-अनशने अभि ) अन्न खानेवाले और अन्न न खानेवालेके चारों ओर ( तथा विष्वङ् व्यक्रामत् ) विविध रूपोंवाला वह व्याप्त है ॥ ४ ॥

[ ६१९ ] ( यत् भूतं ) जो उत्पन्न हुआ ( यत् च भव्यं ) और जो उत्पन्न होनेवाला है, ( इदं सर्वं पुरुषः एव ) यह सब पुरुष ही है, ( अस्य पादः सर्वा भूतानि ) इसका चौथा भाग ये सब प्राणी हैं, और ( अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतं ) इसके तीन भाग द्युलोकमें अमर हैं ॥ ५ ॥

[ ६२० ] ( अस्य तावान् महिमा ) इस पुरुषकी ऐसी महिमा है, वास्तवमें वह ( पुरुषः ) पुरुष ( ततः ज्यायान् च ) उसकी अपेक्षा भी बडा है, ( उत अमृतत्वस्य ईशानः ) और वह अमरत्वका स्वामी है, ( यत् अन्नेन अतिरोहति ) जो अन्नसे बढते हैं, उनका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६२१ ] ( ततः विराट् अजायत ) उस पुरुषसे विराट् पुरुष हुआ, ( विराजः अधि पूरुषः ) उस विराट् पुरुषका निरीक्षण करनेवाला एक पुरुष है, ( सः जातः ) वह उत्पन्न होते ही ( अति अरिच्यतः ) सबसे श्रेष्ठ हुआ, उसने सबसे पहले ( भूमिं ) पृथ्वी उत्पन्न की और ( अथो पश्चात् पुरः ) बादमें शरीर उत्पन्न किए ॥ ७ ॥

६२२ मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवत॑ स्योने ते नो मुञ्चतम॑हसः ॥ ८ ॥ (अथर्व. ४।२६।१)

६२३ हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी । तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९॥

६२४ यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत । सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा स॑सृजामसि ॥१०॥

६२५ सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्ण॑स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥

६२६ सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥ १२ ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

---

[ ६२२ ] हे ( द्यावा-पृथिवी ) द्युलोक और पृथ्वी लोको ! ( वां सु-भोजसौ ) तुम उत्तम भोजन देनेवाले हो, इस प्रकार ( मन्ये ) मैं मानता हूं ( ये ) जो ये दोनों लोक हैं, वे ( अमितं योजनं ) अपरिमित धन आदि ( अभि अप्रथेथां ) हमें देवें; हे ( द्यावा-पृथिवी ) हे द्युलोक और पृथ्वी लोको ! तुम ( स्योने भवतं ) हमारे लिए सुखदायी होवो, ( ते नः अंहसः मुंचतं ) वे हमें पापसे छुडावें ॥ ८ ॥

[ ६२३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते श्मश्रूणि हरी ) तेरी मूछें हरे रंगकी हो गई हैं, ( उत ते हरितौ हरी ) और तेरे दोनों घोडे पीले रंगके हैं, ( वनर्गवः ) उत्तम गायोंको पालनेवाले ( कवयः पुरुषासः ) ज्ञानी पुरुष ( तं त्वा स्तुवन्ति ) उस तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

१ ते श्मश्रूणि हरी— सोमरस हरे रंगका होता है, उसे पीनेके कारण तेरी मूछें हरे रंगकी हो गई हैं।

[ ६२४ ] ( हिरण्यस्य यत् वर्चः ) सोनेका जो तेज है, ( यत् वा गवां यत् वर्चः ) जो गायोंका तेज है, ( उत ) और ( सत्यस्य ब्रह्मणः वर्चः ) सत्यज्ञानका जो तेज है, ( तेन मा संसृजामसि ) उस तेजसे मैं युक्त होता हूं ॥ १० ॥

[ ६२५ ] हे ( विरप्शिन् इन्द्र ) बहुतसा धन अपने पास रखनेवाले इन्द्र ! ( तत् सहः ओजः न दद्धि ) वह बल और सामर्थ्य हमें दे, ( हि अस्य महतः ईशे ) क्योंकि तू इस महान् बलका स्वामी है, हे इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( क्रतुं न ) यज्ञके समान ( नृम्णं स्थविरं वाजं ) धन और महान् सामर्थ्य ( नः कृधि ) हमें दे, और ( वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेका बल हमें दे ॥ ११ ॥

[ ६२६ ] हे ( सह-ऋषभाः ) बैलोंके साथ रहनेवाली, ( सह-वत्साः ) बछडेके साथ रहनेवाली, ( द्व्यूध्नीः ) दुगुने बडे दुग्धाशयवाली ( विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः ) अनेक रूपोंको धारण करनेवाली गायो ! तुम ( उदेत ) हमारे पास आओ, ( उरुः पृथुः अयं लोकः वः अस्तु ) महान् और विशाल यह लोक तुम्हारे लिए हो, ( इमाः आपः ) ये जल प्रवाह ( सु-प्र-पाणाः इह स्त ) सुखसे पीने योग्य होकर तुम्हें यहां मिलें ॥ १२ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

## [ ५ ]

( १-१४ ) १ शतं वैखानसाः; २ विभ्राट् सौर्यः; ३ कुत्स आंगिरसः; ४-६ सार्पराज्ञी; ७-१४ प्रस्कण्वः काण्वः ॥
सूर्यः; १ अग्निः पवमानः; ४-६ आत्मा वा ॥ गायत्री; २ जगती; ३ त्रिष्टुप् ॥

६२७ अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥ ( ऋ. ९।६६।१९ )

६२८ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१७०।१ )

६२९ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।११५।१ )

६३० आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥
( ऋ. १०।१८९।१; वा. य. ३।६ )

६३१ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥
( ऋ. १०।१८९।२; यजु. ३।७ )

---

### [ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६२७ ] ( अग्ने ) अग्ने ! ( आयूंषि पवसे ) दीर्घ आयु हमें दे, ( नः ऊर्जं इषं च आसुव ) हमें बल और अन्न दे, और ( दुच्छुनां आरे बाधस्व ) राक्षसोंको दूर कर ॥ १ ॥

१ दुच्छुनां— ( दुः-शुनां ) पागल कुत्ते, राक्षस, दुर्दैव, दुःखदायक ।

[ ६२८ ] ( वि-भ्राट् ) विशेष प्रकाशमान् सूर्य ( बृहत् सोम्यं मधु पिबतु ) बहुत सोमरस पीवे, ( यज्ञ-पतौ ) यज्ञ करनेवालेको ( अ-वि-ह्रुतं आयुः दधत् ) कुटिलतारहित आयुष्य प्राप्त हो, ( वात-जूतः यः ) वायुसे युक्त यह सूर्य ( त्मना प्रजाः अभिरक्षति ) स्वयं ही सब प्रजाओंका रक्षण करता है, उससे ( पिपर्ति ) अन्नको पूर्ण करता है और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

१ अ-वि-ह्रुतं आयुः— उपद्रवरहित आयु ।

२ वात-जूतः सूर्यः त्मना प्रजाः अभिरक्षति पिपर्ति— वायुके साथ सूर्य सब प्राणियोंका रक्षण करता है, और उन्हें अन्न देकर पुष्ट करता है ।

[ ६२९ ] ( देवानां चित्रं अनीकं उदगात् ) देवोंका अद्भुत तेज समूहरूपी सूर्य उदय हो गया है, यह मित्र, वरुण और अग्निका ( चक्षुः ) नेत्ररूप है, उदय होते ही इसने ( द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः ) द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षको तेजसे भर दिया हे, ऐसा यह सूर्य ( जगतः तस्थुषः च आत्मा ) जंगम और स्थावर जगत्की आत्मा है ॥ ३ ॥

[ ६३० ] ( अयं गौः ) यह गतिमान् ( पृश्निः ) तेजस्वी सूर्य ( आ अक्रमीत् ) उदय होकर ऊपर हो गया है, ( पुरः मातरं असदत् ) पहले वह पृथ्वी माताको प्राप्त हुआ, फिर वह ( पितरं स्वः च प्रयन् ) द्युलोकरूपी अपने पिताको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

[ ६३१ ] ( अस्य रोचना ) इस सूर्यका प्रकाश ( अन्तः चरन्ति ) आकाशमें संचार करता है । ( प्राणाद् अपानती ) उदयके बाद प्रकाशित होता है और अस्त होनेके बाद वह विलीन हो जाता है । ( महिषः दिवं व्यख्यत् ) यह महान् सूर्य द्युलोकको विशेष रूपसे प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

६३२ त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥
( ऋ. १०।१८९।३; यजु. ३।८ )

६३३ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥
( ऋ १।५०।२; अथर्व. १३।२।१७; २०।४७।१४ )

६३४ अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ३अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥
( ऋ. १।५०।३; अथर्व. १३।२।१८, २०।४७।१५ )

६३५ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥
( ऋ. १।५०।४; अथर्व. १३।२।१९; २०।४७।१६ )

६३६ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं३स्वर्दृशे ॥ १० ॥
( ऋ १।५०।५; अथर्व. १३।२।२०; २०।४७।१७ )

६३७ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ३अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥
( ऋ. १।५०।६; अथर्व. १३।२।२१; २०।४७।१८ )

---

आत्मपक्ष — ( अस्य रोचना ) इस आत्माका तेज ( अन्तः चरति ) शरीरके अन्दर संचार करता है, ( प्राणात् अपानती ) प्राण और अपानके रूपोंसे उसकी गति शरीरमें होती है, यह ( महिषः ) महान् शक्तिमान् आत्मा ( दिवं व्यख्यत् ) मस्तिष्कमें ज्ञानका प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

[ ६३२ ] ( वस्तोः त्रिंशत् धाम विराजति ) दिनके तीस मुहूर्त होते हैं ( अह्नः ) वह सूर्य ( द्युभिः विराजति ) अपनी किरणोंसे प्रकाशित होता है, ( पगङ्गाय वाक् प्रति धीयते ) उस सूर्यकी स्तुति की जाती है ॥ ६ ॥

[ ६३३ ] ( विश्व-चक्षसे सूराय ) सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होनेके बाद ( नक्षत्राः अक्तुभिः ) नक्षत्र रात्रिके साथ साथ ( यथा त्ये तायवः ) जैसे दिनमें चोर छिप जाते हैं, उसी प्रकार ( अप यन्ति ) छिप जाते हैं ॥७॥

[ ६३४ ] ( अस्य केतवः रश्मयः ) इस सूर्यकी प्रकाशकी किरणें ( जनान् अनु वि अदृश्रन् ) लोगोंको देखती हैं, ( यथा भ्राजन्तः अग्नयः ) जिस प्रकार प्रज्वलित हुई अग्निकी किरणें देखती है ॥ ८ ॥

[ ६३५ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( तरणिः ) सबोंको तारनेवाला ( विश्व-दर्शतः ) सबोंके द्वारा देखे जाने योग्य ( ज्योतिष्कृत् असि ) प्रकाश करनेवाला है, ( विश्वं रोचनं आभासि ) सब चमकनेवाले पदार्थोंको प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

अध्यात्मपक्ष— ( सूर्य ) हे सबको प्रेरणा देनेवाले परमात्मन् ! तू ( तरणिः ) सबको तारनेवाला है, ( विश्व दर्शतः ) सबोंके द्वारा साक्षात्कार करनेके योग्य ( ज्योतिष्कृत् असि ) तेजस्वी गोलकोंका तू कर्ता है, ( विश्वं रोचनं आभासि ) सब तेजस्वी लोगोंको तू ही प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[ ६३६ ] हे सूर्य ! तू ( देवानां विशः प्रत्यङ् ) देवोंके प्रजाजन जो मरुत् हैं, उनके सामने ( मानुपान् प्रत्यङ् ) मनुष्योंके आगे, ( विश्वं स्वर्दृशे प्रत्यङ् ) सब विश्वको देखनेके लिए सामने ( उदेषि ) उदय होता है ॥ १० ॥

[ ६३७ ] हे ( पावक वरुण ) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ सूर्य ! ( त्वं ) तू ( जनान् भुरण्यन्तं ) प्राणियोंके पोषण करनेवाले इस लोकको ( येन चक्षसा अनु पश्यसि ) जिस प्रकाशसे देखता है, उस तेरे प्रकाशकी हम स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥

*

६३८ उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥
( ऋ. १।५०।७; अथर्व. १३।२।२२; २०।४७।१९ )

६३९ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥
( ऋ. १।५०।९; अथर्व. १३।२।२४; २०।४७।२१ )

६४० सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥
( ऋ. १।५०।८; अथर्व. १३।२।२३; २०।४७।२० )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति सामवेद-संहितायामारण्यं काण्डं पर्व वा समाप्तम् ॥

---

[ ६३८ ] हे सूर्य ! ( पृथु रजः द्यां उदेषि ) तू इस विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकमें संचार करता है, ( अहा अक्तुभिः मिमानः ) दिनको रात्रीसे नापता हुआ तू ( जन्मानि पश्यन् ) जन्म लेनेवाले प्राणिमात्रको देखता जाता है ॥ १२॥

[ ६३९ ] ( सूर्यः ) सूर्यने ( शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त ) शुद्ध करनेवाले सात घोडोंको अपने रथमें जोडा है, ( रथस्य नप्त्यः ) जो रथको चलाते हैं, ( ताभिः स्वयुक्तिभिः याति ) उनसे और अपनी योजनाओंसे वह सूर्य जाता है ॥ १३ ॥

१ शुन्ध्युवः— सूर्यकिरणें स्वच्छता करनेवाली होती हैं ।

२ सप्त— सूर्यकिरणें सात रंगकी होती हैं ।

३ रथस्य नप्त्यः— रथ चलानेवाली घोडेरूपी किरणें हैं ।

[ ६४० ] ( वि-चक्षण देव सूर्य ) हे प्रकाशक सूर्यदेव ! ( सप्त हरितः ) सात घोडे-सात किरणें ( शोचिष्केशं त्वा ) शुद्ध करनेवाली किरणोंसे युक्त तुझे ( रथे वहन्ति ) रथसे ले जाती हैं ॥ १४ ॥

१ शोचिष्केशः— सूर्यकी किरणें शुद्धता करनेवाली हैं ।

२ सप्त हरितः— सात रंगकी सात किरणें ।

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आरण्यं काण्डम् ॥

# अथ महानाम्न्यार्चिकः ।

( १-१० ) प्रजापतिः ॥ इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा ॥ त्रिकं= [ ९ प्रथमं द्विपदा+ ( २ ) ततस्त्रयः शाक्वराः पादाः + ( ३ ) तत उपसर्गौ + ( ३ ) उभयं ( शाक्वरोपसर्गौ ) + ( ५ ) ततः शाक्वरास्त्रयः पादाः + ( ६ ) उपसर्गः ]

६४१ विदा मघवन् विदा गातुमनुशꣳसिषो दिशः । शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१॥

६४२ आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा३र्नांꣳशुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥

६४३ एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मꣳहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस । आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

६४४ विदा राय सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाꣳअनु ।
मꣳहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

६४५ यो मꣳहिष्ठो मघोनामꣳशुर्न शोचिः । चिकित्वो अभि नो नयेंद्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥

६४६ ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥

---

[ ६४१ ] हे ( मघवन् ) धनवान् परमात्मन् ! ( विदाः ) तू सब जानता है. ( गातुं विदाः ) तू योग्य मार्ग जानता है, ( दिशः अनु शांसिषः ) हम कौनसी दिशासे जायें, उसका हमें उपदेश कर, हे ( पूर्वीणां शचीनां पते ) आदि शक्तिके स्वामी ! ( पुरु-वसो ) हे धनसम्पन्न प्रभो ! ( शिक्ष ) हमें शिक्षा दे ॥ १ ॥

[ ६४२ ] हे ( प्रचेतन ) चेतनता देनेवाले ईश्वर ! हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( स्वः न ) सूर्यके समान ( अंशुः ) तेजस्वी तू ( आभिः अभिष्टिभिः ) इन संरक्षणोंसे ( इषे द्युम्नाय ) अन्न और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें ( प्र चेतय ) प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ ६४३ ] हे ( मंहिष्ठ वज्रिवः ) महान् और वज्रधारी इन्द्र ! तू ( शक्रः एव हि ) सामर्थ्यवान् है, इसलिए हे ( शविष्ठ ) बलवान् प्रभो ! तू हमें राये वाजाय ऋञ्जसे धन और बल अथवा अन्न प्राप्त करनेके लिए समर्थ करता है ( ऋंजसे ) हमें सामर्थ्यवान् कर । ( आ याहि ) हमारे पास आ ( पिब ) यह सोम पी और ( मत्स्व ) आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[ ६४४ ] हे इन्द्र ! ( राये सुवीर्यं विदाः ) धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम सामर्थ्य कैसे प्राप्त करें यह तू जानता है, ( यः शूराणां शविष्ठः ) जिस प्रकार शूर पुरुषोंमें बलवान् है, उस प्रकार जो तू है, हे ( मंहिष्ठ वज्रिन् ) महान् वज्रधारी इन्द्र ! वह तू ( वाजानां पति भव ) सब शक्तियोंका स्वामी है, तू ( वशान् अनु ऋंजसे ) अपने वशमें होकर अनुकूल हुए भक्तोंको सामर्थ्यवान् करता है ॥ ४ ॥

[ ६४५ ] ( यं मघोनां मंहिष्ठः ) जो महान् धनिकोंमें भी बहुत महान् है, ( अंशुः न ) और स्वयं प्रकाशित होने-वालोंके समान ( शोचिः ) प्रकाशमान् है, वैसा तू है, हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवान् ! तू ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यसम्पन्न है, इस लिए ( नः विदे अभिनय ) हमें ज्ञान प्राप्त करानेके लिए योग्य मार्गोंसे ले जा, ( तं ऊ स्तुहि ) तू उसीकी प्रशंसा कर जो ज्ञानमार्गसे जाता है ॥ ५ ॥

[ ६४६ ] ( शक्रः ईशे हि ) शक्तिशाली होते हुए वह स्वामित्व करता है, इसलिए ( ऊतये जेतारं अपराजितं तं हवामहे ) अपने संरक्षणके लिए हम विजयी और पराजित न होनेवाले उस वीरको बुलाते हैं, ( सः नः द्विषः स्वर्षत् ) वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है, वह ही ( क्रतुः ) सत्कर्मोंका कर्ता ( छन्दः ) रक्षक, ( ऋतं ) सत्य भक्त और ( बृहत् ) महान् है ॥ ६ ॥

६४७ इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥

६४८ पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽꣳशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यꣳसंन्यसे ॥ ८ ॥

६४९ प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

६५० एवाह्येऽ३ऽ३ऽ३ व । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।
एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः ॥ १० ॥

इति पञ्च पुरीषपदानि ॥

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥

इति सामवेद संहितायां पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

## पूर्वार्चिकस्य मन्त्रसंख्या

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ आग्नेयस्य | काण्डस्य | ( १–११४ ) | ११४ |
| २ ऐन्द्रस्य | काण्डस्य | ( ११५–४६६ ) | ३५२ |
| ३ पावमानस्य | काण्डस्य | ( ४६७–५८५ ) | ११९ |
| ४ आरण्यकस्य | काण्डस्य | ( ५८६–६४० ) | ५५ |
| ५ महानाम्न्यार्चिकस्य | | ( ६४१–६५० ) | १० |
| | | सर्वयोगः | ६५० |

[ ६४७ ] ( धनस्य सातये ) धनकी प्राप्तिके लिए हम ( अपराजितं जेतारं इन्द्रं ) पराजित न होनेवाले विजयी इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं, ( सः नः द्विषः अति अर्षत् ) वह हमारे शत्रुओंको दूर करे ॥ ७ ॥

[ ६४८ ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( पूर्वस्य ) सबसे पहले रहनेवाले तेरे ( यत् अंशुः मदाय ) जो प्रकाश आनन्द बढानेके लिए है, हे ( वसो ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उसे ( नः सुम्ने आधेहि ) हमारे सुखके लिए हमें दे, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ! ( पूर्तिः शस्यते ) पूर्णता करनेकी शक्तिकी ही सब जगह प्रशंसा होती है, ( नूनं शक्रः वशी ) निश्चयसे तू सामर्थ्यवान् और सबको वशमें करनेवाला है, इसलिए ( तत् नव्यं संन्यसे ) मैं इस नवीन स्तुतिके योग्य तुझे अपने आगे स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ६४९ ] हे ( वृत्रहन् प्रभो ) वृत्रको मारनेवाले प्रभो ! ( जनस्य समर्येषु प्र ब्रवावहै ) श्रेष्ठ मनुष्योंमें तेरी ही हम प्रशंसा करते हैं, ( यः ) जो ( गोषु गच्छति ) गायोंमें रहता है, वह ( सखा ) मित्र ( सुशेवः ) उत्तम प्रकारसे सेवा करने योग्य और ( अ-द्वयुः ) अद्वितीय श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

[ ६५० ] ( एवा हि एव ) यह ऐसा ही है, हे अग्ने ! ( एवा हि ) तुम ऐसे प्रकाशस्वरूप हो, हे इन्द्र ! ( एवा हि ) तुम इस प्रकार शत्रुको हरानेवाले हो, हे ( पूषन् ) पूषा ! ( एवा हि ) तुम ऐसे ही पोषण करनेवाले हो, हे ( देवाः ) सब देवो ! तुम ( एवा हि ) इस प्रकार दिव्यगुणसम्पन्न हो ॥ १० ॥

# आरण्यक काण्ड

संहिता - ब्राह्मण - आरण्यक और उपनिषद् ये प्राचीन वाङ्मयके चार विभाग हैं। संहितामें मंत्रपाठ, ब्राह्मणोंमें यज्ञकाण्ड और आरण्यक तथा उपनिषदोंमें वेदमंत्रोंमें आये हुए अध्यात्म - विद्याका विस्तारसे वर्णन है। इस आरण्यक काण्डमें अन्तके महानाम्नि आर्चिकको तथा कुछ अन्य मंत्रोंको छोडकर शेष सब मंत्र ऋग्वेदके ही हैं। उनका पता हर मंत्रके नीचे दिया हुआ है। जो मंत्र ऋग्वेदमें नहीं हैं, उनका नहीं दिया गया।

आरण्यकोंका विषय अध्यात्मज्ञानका स्पष्टीकरण ही है, । इस प्रकार इस सामवेदीय आरण्यक - काण्डका विषय भी अध्यात्मज्ञानका प्रकटीकरण ही है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद हैं। ऋग्वेदमें देवोंकी स्तुति है, यजुर्वेदमें यज्ञकाण्डका विषय है, सामवेद उपासनाका वेद है, और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान मुख्य है। यद्यपि इस प्रकार ये विभाग हैं, पर प्रत्येक वेदमें किसी न किसी रूपसे अध्यात्मका विषय आ ही गया है। यजुर्वेद कर्मकाण्डका ग्रन्थ है, पर फिर भी उसका अन्तिम चालीसवाँ अध्याय " ईश - उपनिषद् " है। अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञानके अनेक सूक्त हैं।

उसी प्रकार सामवेदके इस आरण्यक - काण्डमें अध्यात्मका विषय आया है। इसके मंत्र यद्यपि ऋग्वेदके ही हैं, पर उनका आशय अध्यात्मकी दृष्टिसे देखना चाहिए।

इसमें अग्नि, इन्द्र, वायु, उषा आदि देवताओंके मंत्र हैं, ये विभिन्न देवता हैं, इनका अध्यात्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कोई यदि समझे, अथवा ऐसा समझकर शंका भी करे, तो उसका निराकरण ऋग्वेदके निम्न मंत्रमें उत्तम रीतिसे किया गया है—

### एक सत्य वस्तु

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
　अथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
　अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
　　　( ऋ. १।१६४।४६; अथर्व. ९।१०।२८ )

( एकं सत् ) सत्य वस्तु एक ही है, पर उस एक ही सत्य वस्तुको ( विप्राः बहुधा वदन्ति ) ज्ञानीलोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीका अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुवर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अर्थात् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम यद्यपि भिन्न - भिन्न हैं, तथापि उन नामोंसे वर्णित की जानेवाली सद्वस्तु एक ही है। इस सिद्धान्तसे बहु - देवतावादका खण्डन होता है और एक - देवतावाद ( सब देवता मिलकर एक देवताका प्रतिपादन करते हैं ) की सिद्धि होती है।

इस आरण्यक काण्डका विचार करते हुए यह आवश्यक है कि हम अपनी दृष्टि एकात्मवाद पर ही केन्द्रित रखें। और इस दृष्टिसे ही इस काण्डका विचार करना चाहिए—

१ अथ तव व्रते वयं अ-दितये अनागसः स्याम ( ५८९ )- हे ईश्वर ! तेरे नियममें रहकर, हमारा विनाश न हो, इसलिए हम पापरहित हों। " दिति " का अर्थ है खण्डित होना, टुकडे होना, विभक्त होना, और अदितिका अर्थ है, अखण्डित स्थिति, स्वतंत्रता अविनाश, मोक्षकी अवस्था। यह अवस्था पानेके लिए मैं पाप - रहित होऊं। परमेश्वरका जो नियम है मनुष्योंकी उन्नतिके लिए उसने जो नियम निश्चित किए हैं, उन नियमोंका पालन करके हम उस पूर्णावस्थाको प्राप्त करें। मुक्त होनेका वर्णन यह मंत्र उत्तम रीतिसे करता है—

### बन्धन ढीले कर

१ उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय।
　मध्यमं पाशं अस्मत् वि श्रथाय।
　अधमं पाशं अस्मत् अव श्रथाय।

उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे तीन बन्धनोंसे मनुष्य बांधा गया है। बुद्धि, मन और शरीर इन तीन स्थानोंमें ये बन्धन हैं। बुद्धिका बंधन अज्ञानसे है, मनका बन्धन विचारोंकी हीनताके कारण हैं और शरीरका बन्धन आचार हीनताके कारण है। बहुतसे मनुष्य इन बन्धनोंसे जकडकर बांध दिये गए हैं। उत्तम सत्यज्ञान प्राप्त करके बुद्धिके पाशोंको ढीले करो, उत्तम विचारोंसे मनके और उत्तम आचारोंसे शरीरके बन्धन दूर करने चाहिए। ऐसा करनेसे तीनों पाशोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है।

२ त्वया भरे शश्वत् कृतं वयं चिनुयाम ( ५९० ) - हे ईश्वर ! तेरी सहायतासे हमेशा करने योग्य स्पर्धाओंमें हम अपने कर्तव्योंको सावधानीसे करें। प्रमाद न करें। मनुष्य इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ तबसे उसके जीवनमें स्पर्धा शुरु हुई, छोटीसी स्पर्धा ही विशाल स्पर्धा अर्थात् संग्रामका रूप धारण कर लेती है। यह स्पर्धा चालू ही है। इस स्पर्धामें अपना कर्तव्य न चूकते हुए विजयी होना ही मनुष्यका कर्तव्य है। पाश या बन्धन ढीले करनेके लिए इसकी आवश्यकता है।

३ वः अन्तमाः सुम्नेषु मदेम ( ६१० )- हे ईश्वर ! तेरे पास रहकर तेरे द्वारा दिए गए सुखमें आनन्दसे हम रहें। मनुष्योंको देवोंके पास जाकर रहना चाहिए। देवोंके कौन-कौनसे गुण हैं उन्हें देखना चाहिए, और वे ही गुण अपने अन्दर बढाकर देवोंके सान्निध्यमें आनन्दसे रहें। मनुष्योंकी उन्नतिका यही साधन है।

वेदोंमें देवोंकी स्तुति इसी लिए है कि उस स्तुतिमें जो देवोंके गुण वर्णित हैं, वे ही गुण उपासक अपनेमें बढावें ! यह ही मनुष्योंकी उन्नति है। " यत् देवा अकुर्वन तत् करवाणि " ( शतपथ ब्राह्मण ) जो देव करते हैं उसीको मैं करूं। यह उन्नतिका नियम है। देवोंकी जो स्तुति है उसका विचार करके, उसका मनन करके उपासक देवताओंके गुण अपने अन्दर अधिकसे अधिक किस तरह बढावें, यह देखना चाहिए देवोंकी स्तुति मानवोंकी उन्नतिमें इस प्रकार सहायक होती है। प्रथम अपनेमें देवत्व लावें, फिर शुभ गुणोंसे उसकी वृद्धि करें। यही अनुष्ठान मनुष्यों द्वारा करना चाहिए।

## बुरे वचन न बोलना

सबसे पहले वाणीकी शुद्धता करनी चाहिए ! वह इस प्रकार है—

१ हे देवाः ! वः परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं ( ६१० )- हे देवो ! तुम्हें अच्छे न लगनेवाले वचनोंको मैं न बोलूं। यह रीति वाणीको शुद्ध करनेकी है। वाणीकी शुद्धिसे बहुतसे काम सिद्ध हो जाते हैं।

## शुद्ध मार्गोंका ज्ञान

अपने आचरणके मार्ग शुद्ध और स्वच्छ होने चाहिए। इस विषयमें ये वेदवचन हैं—

१ हे मघवन् ! विदाः गातुं विदा। दिशः अनु शंसिषः। पूर्वीणां शचीनां पते, पुरुवसो ! शिक्ष। ( ६४१ )- हे धनवान् इन्द्र ! तू सब मार्गोंको जाननेवाला है, उत्तम मार्ग कौनसा है, यह तू जानता है। हम कौनसी दिशासे जाएं इसका तू हमें उपदेश कर। हे आदिशक्तिके स्वामी ! हे धनसम्पन्न प्रभो ! हमें उत्तम शिक्षा दे, और उत्तम मार्गसे हमें चला।

यह प्रार्थना उपासकोंको करनी चाहिए। ईश्वरके पास अनन्य भावनासे ही यह प्रार्थना करनी चाहिए। तब देवगण मार्गको बताते हैं। इस प्रकार निर्दोष मार्ग ध्यानमें आता है। उपासक स्वयं भी कौनसा मार्ग उत्तम है और कौनसा नहीं इसका विचार करके निश्चय करें।

## मुझे श्रेष्ठ होना है

मुझे महान् होना है, यह भावना मनमें होनी चाहिए। इस विषयमें उपदेश इस प्रकार है—

१ तत् नः मित्रो वरुणो मा महन्तां अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ( ५९० )- " इसके लिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक मुझे महान् करें। " इसमें पृथ्वीसे लेकर द्युलोक तक, रहनेवाले सब देव मेरे महान् होनेके काममें सहायक हों, यह प्रार्थना है। मनुष्यको यदि महान् होना है तो उसे इन सब देवोंकी सहायता अवश्य ही चाहिए। मनुष्यके शरीरमें ये सब देवताएं हैं। यदि एक भी देव प्रतिकूल होगा तो वह अवयव रोगी हो जाएगा और उसकी उन्नतिमें रुकावट आ जाएगी।

२ इमं एकं वृषणं कृणुत ( ५९१ )- इसको अद्वितीय शक्तिमान् करो। अद्वितीय शक्तिवाला यदि मनुष्य हो जाए तो उसके महान् होनेमें कोई सन्देह ही नहीं।

३ हे प्रचेतन ! आभिः अभिष्टिभिः इषे द्युम्नाय प्र चेतय ( ६४२ )- हे प्रेरक ईश्वर ! इस अपने संरक्षणसे अन्न व तेज प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर, अर्थात् हम उत्तम मार्गसे जावें तथा अन्नवाले और तेजस्वी होवें।

४ द्यावापृथिवी, इन्द्रा-बृहस्पती, भगस्य यशः मा विन्दतु ( ६११ ) द्यु, पृथ्वी, इन्द्र, बृहस्पति, और भग इन देवोंसे मुझे यश प्राप्त हो।

५ यशः मा प्रति मुच्यतां ( ६११ ) यश मुझे छोडकर दूर न जावे। हमेशा यश मुझे ही मिलता रहे, अर्थात् मैं सदा यशस्वी होऊं।

६ एना मानुषाणां विश्वानि द्युम्नानि अर्यः सिषासन्तः वनामहे ( ५९३ ) इसकी सहायतासे मनुष्योंके

पास रहनेवाले सब तेजोंको प्राप्त करके उसका उपभोग करनेकी इच्छावाले हम उत्तम तेज प्राप्त करें।

७ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रवदिता स्याम् ( ६११ )- इस संसदके यशसे मैं युक्त होऊं और मैं इस सभामें उत्तम भाषण करनेवाला होऊं।

सब प्रकारसे मेरी उन्नति होकर मैं सभामें उत्तम प्रकारसे प्रभावशाली भाषण करनेवाला होऊं, राष्ट्रमें ऐसा मान प्राप्त होना उन्नतिका लक्षण है।

## पूर्णताकी प्रशंसा

जगत्में पूर्णताकी ही प्रशंसा होती है इसलिए कहा है कि—

१ पूर्तिः शस्यते नूनं शक्रः वशी ( ६४८ )- पूर्णता सदा प्रशंसित होती है, निश्चयसे जो शक्तिशाली है वह सभीको वशमें करके अपने अधीन करता है।

२ शक्रः ईशे हि ( ६४६ )- सामर्थ्यवान् ही ईशन करता है। निर्बल शासन नहीं कर सकता इसीलिए कहा है।

३ जेतारं अपराजितं ऊतये हवामहे ( ६४६ )- जो विजयी और अपराजित है उस वीरको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

४ वज्रिवः शविष्ठ ( ६४७ )- हे वज्रधारी बलवान् वीर ! हमारी सहायता कर।

५ राये वाजाय ऋंजसे ( ६४३ )- धन और अन्नकी प्राप्ति करनेके लिए हमें तू समर्थ करता है।

६ यः शूराणां शविष्ठः, वाजानां वाजपतिः, वशान् अनु ऋंजसे ( ६४४ )- जो शूरोंमें अत्यधिक बलवान् है, जो बलिष्ठोंमें भी सबसे अधिक बलवान् है, वह अपने वशमें रहनेवालोंको सामर्थ्यवान् बनाता है।

ऐसी ही शक्ति हमें भी प्राप्त हो, ऐसी इच्छा मनुष्योंको मनमें करनी चाहिए। सामर्थ्यशाली होनेसे धन मिलता है। इस धनके विषयमें निम्न वचन इस काण्डमें हैं।

## धन

जिससे मनुष्य धन्य होता है, वह धन है। धनका अर्थ केवल रुपये ही नहीं है, अपितु घर, पुत्र, गाय, घोडे आदि भी धन हैं। इनको पास रखनेसे मनुष्य धन्य होता है।

१ नः सुम्ने आधेहि ( ६४८ )- हमें सुख देनेवाले धनमें स्थापित कर।

२ धनस्य सातये जेतारं अपराजितं हवामहे ( ६४७ )- धनकी प्राप्तिके लिए विजयी और कभी भी पराजित न होनेवाले वीरको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं।

३ राये सुवीर्यं विदाः ( ६४४ )- धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति अपनेमें किस प्रकार लावें वह तू जानता है।

४ राये वाजाय ऋंजसे ( ६४३ )- धन प्राप्त करनेके लिए हम बल प्राप्त करें, अतः तू हमें सहायता दे।

५ नः ऊर्जं इषं च आसुव ( ६२७ )- हमें सामर्थ्य और अन्न दे।

६ हे विरप्शिन् ! तत् सहः ओजः न दद्धि। अस्य महतः ईशे। नः नृम्णं स्थविरं वाजः कृधि ( ६२५ )- हे बहुतसा धन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! वह साहस और सामर्थ्य हमें दे। इस महान् सामर्थ्यका तू स्वामी है, तू हमको धन और महान् स्थायी बल दे।

७ हिरण्ययस्य, गवां, सत्यस्य ब्रह्मणः, यत् वर्चः, तेन मा संसृजामसि ( ६२४ )- सोना, गाय और सत्य ज्ञानका जो तेज है, उससे मुझे युक्त कर।

८ अमितं योजनं अभि अप्रथेथाम् ( ६२२ )- अपरिमित धन योजनापूर्वक हमें दे।

९ द्यावापृथिवी स्योने भवतं, ते नः अंहसः मुंचतम् ( ६२२ )- द्युलोक और पृथ्वीलोक हमें सुख देनेवाले हों, और वे हमें पापसे बचावें।

हम निष्पाप हों, अर्थात् हमारे पास धन आवे, उसी प्रकार बल और सामर्थ्य भी प्राप्त हो। धन आदि साधन मिलें तो भी आयुके रहनेपर ही उसका उपभोग किया जा सकता है, इसलिए आयुकी कामना हम करें, ऐसा कहा है—

## दीर्घ आयुष्य

१ अग्ने ! आयूंषि पवसे ( ६२७ )- हे अग्ने ! हमें दीर्घायु दे।

२ यज्ञपतौ अ-विह्रुतं आयुः दधत् (६२८)- यज्ञ करनेवालेको उपद्रवरहित दीर्घ आयु दे। इस प्रकार आयु प्राप्त करें यह इच्छा इन वचनोंमें है।

## संरक्षण

हमें धन, बल, तेज, दीर्घायु आदि प्राप्त हों और अपने लिए संरक्षण मिलें यह मनुष्यकी इच्छा स्वाभाविक है। इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रप्रधनेषु नः अव ( ५९८ )- तू महान् वीर है, इसलिए अपने उत्तम संरक्षणोंसे छोटे और बडे युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर।

२ वातजूतः ( सूर्यः ) त्मना प्रजाः अभिरक्षति, पिपर्ति बहुधा विराजति ( ६२८ )- वायुके साथ सूर्य स्वयं ही सब प्रजाओंका संरक्षण करता है, सभी अन्नोंको पूर्ण करता है, और उन्हें विशेष रीतिसे प्रकाशित करता है।

३ सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा ( ६२९ )- सूर्य इस स्थावर और जंगम जगत्का राजा है।

४ सूर्यः तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि विश्वं रोचनं आभासि ( ६३५ )- सूर्य सबको तारनेवाला, सब देखनेवाला, प्रकाश करनेवाला और संरक्षण करनेवाला है। सब विश्वको वह प्रकाशित करता है।

## युद्ध

यदि संरक्षण करना है तो शत्रुके साथ युद्ध करके शत्रुको पराजित करना ही पडता है। उसके बिना उत्तम संरक्षण हो ही नहीं सकता। इसलिए युद्ध करना आवश्यक ही है। इस युद्धके सम्बन्धमें निम्न वचन है—

१ सः नः द्विषः सु अर्षत् ( ६४६ )- वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है।

२ वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ( ६२५ )- युद्धमें शत्रुओंको अपने बलसे पराजित कर।

३ अहिं अहन् ( ६१२ )- शत्रुको तूने मारा।

४ हे अपूर्व्य मघवन्! वृत्रहत्याय जायथाः (६०१) - हे अद्वितीय धनवान् इन्द्र! तू वृत्रको मारनेके लिए उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार शत्रुसे युद्ध करना अत्यावश्यक है, उसको किए बिना प्रजाका संरक्षण हो ही नहीं सकता। युद्धमें उत्तम वीर होने चाहिए। वे वीर कैसे हों यह इन्द्र देवताके वर्णनके द्वारा दिखाया है। इसलिए इन्द्र देवताका वर्णन यहां देखें—

## देवोंके गुण

देवोंमें विशेष सामर्थ्य होता है, इसी सामर्थ्यके कारण उनको देवत्व प्राप्त हुआ है। उन देवोंके गुण देखिए—

१ वज्रहस्त ( ५८६ )- हाथोंमें वज्र धारण करनेवाला इन्द्र।

२ इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ( ५९७ )- इन्द्र वज्र धारण करता है और वह सोनेके आभूषण भी धारण करता है।

३ अभिमातिषाहः ( ६०३ )- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

४ वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, नु प्रवोचं ( ६१२ )- वज्रधारी इन्द्रने प्रथम जो पराक्रम किया उसका मैं वर्णन करता हूं।

५ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा ( ५८७ )-
६ अधिक्षमा विषुरूपं यत् अस्ति ( ५८७ )-
७ दाशुषे वसूनि ददाति ( ५८७ )-
८ उपस्तुतं राधः अर्वाक् चोदत् ( ५८७ )-

इन्द्र स्थावर जंगम और सब मनुष्योंका राजा है। इस पृथ्वीपर अनेक रंगरूपवाले जो कुछ भी पदार्थ हैं, उनका भी वही राजा है। दानशीलको वह अनेक प्रकारके धन देता है। जो उसकी स्तुति करता है, उसके पास वह धन भेजता है।

९ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आभर (५८६)- श्रेष्ठ, बलवर्धक और पूर्णता करनेवाले यश और अन्न हमें भरपूर दे।

१० परमेष्ठीः प्रजापतिः मयि वर्चः अथो यशः पयः दंहतु ( ६०२ )- परमेष्ठी प्रजापति मुझे तेज, यश और दूध देवे।

११ हे अग्ने! नः पयसा रयिं दशे वर्चः अदाः ( ६१५ )- हे अग्ने! हमें दूधके साथ धन और तेज दे। हमें अन्न और तेज दे।

१२ द्यावापृथिवी सुभोजसौ ( ६२२ )- द्युलोक पृथ्वीलोक हमें उत्तम भोजन देवें।

१३ वरिवोवित् (५९२)- धन अपने पास रखनेवाला।

१४ रत्नधातमं अग्निं ईडे ( ६०५ )- रत्न देनेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूं।

ये देवताओंके गुण हैं। उन्हें देखें और उन गुणोंको अपने अन्दर बढानेका उपाय करें और देवत्वसे युक्त हों।

## सभी समय उत्तम हैं

प्रायः लोग समयको दोष देते हैं, पर सभी समय उत्तम हैं—

१ वसन्तः, ग्रीष्मः, वर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः रन्त्यः ( ६१६ ) - ये सभी ऋतुयें रमणीय हैं, सुख देनेवाली हैं, इसलिए समयको दोष देना ठीक नहीं। अपने प्रयत्नमें दोष होते हैं, उन प्रयत्नोंको यथायोग्य करना चाहिए। इसीलिए वेदोंमें मनुष्यको "ऋतु" कहा गया

है। मानवी जीवन क्रतुरूप-यज्ञरूप होना चाहिए। इस उद्देश्यसे कहा है—

## क्रतु

१ सः क्रतुः छन्दः ऋतं बृहत् ( ६४६ )- वह कर्म करनेवाला है, उसका पुरुषार्थ करनेका स्वभाव है, वह सत्य-निष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाला है, इस कारण वह महान् है। ये चार शब्द बहुत ही महत्त्वके होनेके कारण इनके अर्थ आगे दिए जाते हैं—

क्रतुः- निश्चय, शक्ति, बुद्धि, यज्ञ, अन्तःप्रकाश, प्रज्ञा।
छन्दः- आनन्द, इच्छा, निश्चय, तत्परता।
ऋतं- योग्य, सत्य, सामर्थ्य, शूर, पूज्य, तेजस्वी, नियम।
बृहत्- उच्च, महान्, बहुत, सामर्थ्यवान्।

इस प्रकार इनके अनेक उत्तम अर्थ हैं, और वे अर्थ साधकोंको मार्ग दिखाते हैं।

## अन्न

अन्नका यज्ञ किया जाता है। ये अन्न देवोंके पहले भी उत्पन्न हुए—

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि ( ५९४ )- देवोंके पहले, अमरत्व देनेवाले यज्ञके पूर्व मैं अन्न उत्पन्न हुआ। पहले अन्न उत्पन्न हुए और उसके बाद उसे खानेवाले उत्पन्न हुए। घास पहले पैदा हुई और घास खानेवाले पशु बादमें उत्पन्न हुए। फलके वृक्ष पहले पैदा हुए और फल खानेवाले मनुष्य पीछेसे पैदा हुए।

## गायोंमें दूध

१ कृष्णासु रोहिणीषु परुष्णीषु रुशत् पयः अधारयः ( ५९५ )- काली, लाल और अनेक रंगके गायोंमें तेजस्वी दूधको तूने स्थापित किया। यह देवोंका महान् सामर्थ्य है।

२ सहऋषभाः सहवत्साः उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः उदेत (६२६) - बैलोंके साथ रहनेवालीं, बछडोंके साथ रहनेवालीं, दुगुने बडे थनोंवालीं अनेक रंगकी गायें हमारे पास आवें।

## दानका महत्व

अन्न उत्पन्न हुआ, दूध मिलने लगा, और उससे यज्ञ होने शुरु हुए। तब दानका महत्व समझमें आया। उसके संबन्धमें वचन इस प्रकार हैं—

१ यः मां ददाति स आवत् अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अद्मि (५९४)- 'जो मुझ अन्नको दानरूपसे दूसरोंको देता है, उसका संरक्षण होता है, पर जो दान न देता हुआ अन्नको स्वयं ही खाता है उस कंजूस मनुष्यको मैं स्वयं अन्न ही खा जाता हूँ, अर्थात् पहले अन्नका दान करें फिर स्वयं अन्न खावें।

## सच्चा मित्र

१ सखा सुशेवः अद्वयुः ( ६४९ )- वह ही सच्चा मित्र है, जो उत्तम सेवाके योग्य और दोहरा व्यवहार नहीं करता। अन्दरसे दूसरा और बाहरसे दूसरा जो व्यवहार करता है वह सच्चा मित्र नहीं।

## कल्याण करनेवाली रात्री

१ भद्रा युवतिः रात्री प्रागात्, अह्नः केतून् सं ईर्त्सति, विश्वस्य जगतः निवेशनी रात्री भद्रा अभूत् ( ६०८)- कल्याण करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री आ गई है। वह दिनके प्रकाशको रोकती है। सब जगत्को विश्राम देनेवाली यह रात्री निश्चयसे लोगोंका हित करनेवाली है।

## कुत्तोंको दूर करो

१ दुच्छुनां आरे बाधस्व ( ६२७ )- दुष्ट कुत्तोंको दूर कर। दुष्टोंको दूर कर। दुष्ट हमारे काममें विघ्न न पैदा करें ऐसा कर।

## घोडे

देवोंके रथमें घोडे जुते होते हैं। उसका वर्णन उस प्रकार है-

१ इन्द्र इत् हर्योः सचा आ संमिश्लः वचोयुजा (५९७)- इन्द्र ही घोडोंका सच्चा मित्र है और उन घोडोंको अपने रथमें जोडनेवाला है। वे घोडे कहने मात्रसे ही रथमें जुड जानेवाले हैं। इतने वे शिक्षित हैं। इस प्रकार घोडोंको सिखाकर सुशिक्षित करना चाहिए।

२ वायो! नियुत्वान् आगहि ( ६०० )- हे वायो! तू अपने नियुत नामके घोडोंको अपने रथमें जोडकर उनसे आ।

यहां वायुके घोडोंको नियुत कहा है। "नियुत" इस शब्दका अर्थ ही, रथमें उत्तम प्रकारसे जोडे जानेवाले, है।

३ शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त, रथस्य नप्त्यः ( ६३९ )-
४ सप्त हरितः शोचिष्केशं त्वा रथे वहन्ति (६४०) - पवित्रता करनेवाले सात घोडे, पवित्रता करनेवाली सात किरणें जिसकी हैं, ऐसे तुझे रथसे ले जाते हैं।

यह सूर्यका विशेषण "शोचिष्केशं" दिया है। सूर्यकी किरणें शुद्धता करनेवाली होती हैं। सात घोडे ये किरणोंके

सात रंग हैं। अर्थात् सात घोडे व घोडियां आलंकारिक हैं। वायु और इन्द्रके घोडोंका प्रयोग आलंकारिक है। वायु रथमें बैठता है, इन्द्र और सूर्य रथमें बैठते हैं यह भी सब आलंकारिक है। सच्चे घोडेका यहां कोई सम्बन्ध नहीं है।

## नक्षत्र

जिस प्रकार चोर रात्रीमें घूमते हैं और दिनमें छिप जाते हैं, उसी प्रकार तारे रात्रीके समय आकाशमें चमकते हैं और दिनमें सूर्यके आते ही छिप जाते हैं। इसका वर्णन देखिए—

१ नक्षत्रा अक्तुभिः अपयन्ति यथा त्ये तायवः ( ६३३ )– जिस प्रकार चोर रात्रीके समाप्त होनेके साथ साथ विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार नक्षत्र रात्रीके साथ साथ छिप जाते हैं, यह उपमा अलंकारका एक उत्तम उदाहरण है।

## मोक्ष

मनुष्य जो कुछ भी प्रयत्न करता है वह बंधनसे छूटनेके लिए ही करता है। सभी आध्यात्मिक ज्ञान, जो अवतक कहा है, बन्धनसे निवृत्ति और मोक्ष प्राप्तिके लिए ही है। इस विषयमें कहा है—

१ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ( ६०३ )– अमरत्व प्राप्त करनेके लिए उच्चस्थिति प्राप्त करते हुए द्युलोकसे उत्तम अन्न प्राप्त कर। स्वर्गसे उत्तम उपभोग प्राप्त कर।

अमरता प्राप्तिकी इच्छासे जो अनुष्ठान किया जाता है, उन्हें करते हुए मनुष्यकी उन्नति होती रहती है और उसे उन्नतिके मार्गमें स्वर्गके भोग मिलनेसे आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह इस अनुष्ठानके करनेवालेको प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इस अनुष्ठानका साधक पृथ्वीपर रहते हुए भी उसका मन दिव्य आनन्दका लाभ उठाता है। इसे द्युलोकमें जानेकी जरूरत नहीं। उसे यहीं दिव्यसुखकी प्राप्ति होती है और वह सदा आनन्द प्रसन्न रहता है।

## ऋषिका कार्य

१ कवयः पुरुषासः त्वा स्तुवन्ति ( ६२३ )– कवि देवोंकी स्तुति करते हैं। यह स्तुति मनुष्योंको उन्नतिका मार्ग दिखाती है। इसलिए स्तुतिको साधक सावधानीसे करे और उसमें अर्थ और गूढार्थको अपने ध्यानमें लावे।

२ ते गोनां नाम प्रथमं अमन्वत। त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ( ६०६ )– इन ऋषियोंने वाणीके शब्दोंका प्रथम विचार करके स्तुति करने योग्य है ऐसा समझा। यह स्तुति इक्कीस छन्दोंमें हो सकती है, इस प्रकार उस ऋषिने अनुभव किया।

भाषाके शब्दोंमें गूढ अर्थ हैं और उन शब्दोंसे इक्कीस छन्दोंमें स्तोत्र बनते हैं। इस प्रकारका महान् ज्ञान ऋषिको हुआ, यह ज्ञान होनेके बाद अनेक छन्दोंमें स्तोत्र बनाये और मंत्र प्रकट हुए। उन मंत्रोंमें अध्यात्म-विद्या प्रकट हुई, उसे देखनेके लिए मानवजाति उत्पन्न हुई। मानवोंकी कृतकृत्यता इस ज्ञानसे हुई।

## वैश्वानरकी कल्पना

वैश्वानर, विश्वकृष्टि, सब मनुष्य अथवा पृथ्वीके सब मनुष्य मिलकर एक " पुरुष " है, पृथ्वीके सब मनुष्य एक विशाल " शरीर " है। इतनी एकता मनुष्य समाजमें होनी चाहिए, यह ध्येय वेदने इस स्थानपर कहा है। वह मंत्र यहां देखिए—

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ( ६१७ ) – " हजारों सिर, हजारों आंख और हजारों पैरोंवाला एक पुरुष है। वह पृथ्वीके चारों ओर व्याप्त है, दस इन्द्रियोंसे ज्ञात होनेवाले जगत्को व्याप रहा है।

पृथ्वीपर आज लगभग २०० करोड मनुष्य हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंका मानव समाज रूपी एक शरीर है। उस शरीरके २०० करोड मस्तक, चारसौ करोड पैर, चारसौ करोड आंखें आदि हैं। यह पृथ्वीपर चारों ओर है। ये दो सौ करोड मनुष्य परस्पर मिलकर शरीरमें अवयवोंके समान एकताका बर्ताव करें। एक शरीरमें जिस प्रकार सिर, हाथ, पेट और पांव सब एक दूसरेकी मदद करते हुए सुखसे रहते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य एकतासे रहते हुए अपनी उन्नति करें इस सन्देशको व्यवहारमें लानेके लिए सब मिलकर प्रयत्न करें, इसकी यहां सूचना दी है।

## सुभाषित

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आभर (५८६)– श्रेष्ठ और बल बढानेवाले, तृप्त करनेवाले अन्न हमें भरपूर दे।

२ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा ( ५८७ )– इन्द्र- प्रभु - चलनेवाले प्राणियों और मानवोंका राजा है।

३ अधिक्षमा विश्वरूपं यत्, अस्य राजा ( ५८७ )

– इस पृथ्वीपर अनेक रूपवाले जो कुछ भी पदार्थ हैं उनका भी वही राजा है।

४ दाशुषे वसूनि ददाति ( ५८७ )– दानशील मनुष्यको वह राजा धन देता है।

५ उपस्तुतं राधः अर्वाक् चोदत् (५८७)– ईश्वरकी स्तुति करनेवालेको वह धन मिलता है।

६ यस्य रजोयुजः इन्द्रस्य इदं बृहत् रन्त्यं स्वः तुजे जने वनम् ( ५८८ )– इस तेजस्वी इन्द्रके ये महान् रमणीय धन दानी और प्रेरणा करनेवाले लोगोंमें प्रशंसनीय हैं।

७ वरुणः! उत्तमं, अधमं, मध्यमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय ( ५८९ )- हे वरुण! उत्तम, अधम और मध्यम बन्धनोंको हमसे दूर कर।

८ तव व्रते वयं अ-दितये अनागसः स्याम (५८९) – तेरे नियममें रहते हुए हम स्वतंत्रता प्राप्तिके लिए निष्पाप होवें।

९ पवमानेन त्वया भरे शश्वत् कृतं वयं विचिनुयाम ( ५९० )– पवित्र रहनेवाले तेरी सहायतासे हमेशा किए जानेवाले कर्तव्य हम सावधानीसे करते रहें।

१० तत् मा महन्तां ( ५९० )– उसकी सहायतासे मुझे महानता प्राप्त हो।

११ इमं एकं वृषणं कृणुत ( ५९१ )– इस एकको तुम बलवान् करो।

१२ एना मानुषाणां विश्वानि द्युम्नानि अर्यः, सिषासन्तः, वनामहे (५९३) - इसकी सहायतासे मनुष्यों द्वारा इच्छित धनोंके पास जाकर उसके उपभोग करनेकी इच्छा करनेवाले हम उस धनको प्राप्त करते हैं।

१३ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि ( ५९४ )– अमर यज्ञके पहले अन्न उत्पन्न हुआ, मैं भी यज्ञके पहले उत्पन्न हुआ, अतः मैं इस अन्नका यज्ञ करता हूँ।

१४ यः मां ददाति स आवत् ( ५९४ )– जो इस अन्नका दान करता है, वह सबका संरक्षण करता है।

१५ अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अद्मि ( ५९४ )– जो अन्नका दान न करके स्वयं खाता है, उसे मैं अन्न स्वयं खा जाता हूँ।

१६ हे इन्द्र! कृष्णासु, रोहिणीषु, परुष्णीषु रुशत् पयः अधारयः ( ५३५ )– हे इन्द्र! तू काली, लाल और अनेक रंगकी गायोंमें तेजस्वी दूध स्थापित करता है।

१७ उषसः अग्रियः पृश्निः अरूरुचत् ( ५९६ )– उषःकालके बाद उगनेवाला सूर्य प्रकाशने लगता है।

१८ भुवनेषु वाजयुः (५९६)– प्राणियोंमें अन्न खानेकी इच्छा होती है।

१९ मायाविनः अस्य मायया ममिरे ( ५९६ )– कुशल लोग अपनी कुशलतासे पदार्थोंका निर्माण करते हैं।

२० उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रप्रधनेषु च नः अव ( ५९८ ) - तू शूर है, इसलिए अपने विशेष संरक्षणोंसे छोटे और महान् युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर।

२१ परमेष्ठी प्रजापतिः मयि वर्चः, यशः, पयः दृंहतु ( ६०२ )– परमेश्वर मुझे तेज, बल, यश और दूध भरपूर देवे।

२२ अभिमातिषाहः ते पयांसि वाजाः वृष्ण्यानि सं यन्तु ( ६०३ )– तू शत्रुका पराभव करनेवाला है, इस लिए तुझे दूध, अन्न और बलकी प्राप्ति हो।

२३ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ( ६०३ )– मोक्ष प्राप्तिके लिए तू अपनी उन्नति करते हुए द्युलोकमें उत्तम यश प्राप्त कर।

२४ त्वं तमः ज्योतिषा वि ववर्थ ( ६०४ )– तू अन्धकारका तेजसे नाश करता है।

२५ पुरोहितं, यजस्य देवं, ऋत्विजं, होतारं, रत्नधातमं अग्निं ईडे ( ६०५ )– आगे रहनेवाले, यज्ञके प्रवर्तक, ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, देवोंको अपने साथ लानेवाले और उपासकोंको रत्न देनेवाले अग्रणीकी मैं स्तुति करता हूँ।

२६ भद्रा युवतिः रात्री प्रागात् ( ६०८ )– कल्याण करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री आ गई।

२७ विश्वस्य जगतः निवेशनी रात्री भद्रा अभूत् ( ६०८ )– सब जगत्‌को आराम देनेवाली रात्री सबका कल्याण करनेवाली है।

२८ प्रक्षस्य वृष्णः अरुषस्य महः नः वचः ( ६०९ ) – व्यापक, बलवान्, तेजस्वी और महान् देवकी मैं स्तुति करता हूँ।

२९ वैश्वानराय शुचिः चारुः मतिः ( ६०९ )– सब मनुष्योंके हित करनेवालेकी शुद्ध और सुन्दर स्तुति की जाती है।

३० हे देवाः! वः परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं ( ६१० )– हे देवो! तुम्हारे न सुननेके योग्य वाणीको मैं न बोलूं।

३१ वः अन्तमाः सुम्नेषु इत् मदेम ( ६१० )–

तुम्हारे पास रह करके तुम्हारे द्वारा दिए गए सुखमें हम आनन्दसे रहें।

३२ यशः मा प्रति मुच्यतां ( ६११ )- यश मुझे छोडकर दूर न जावे। मुझे यश मिलता रहे।

३३ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रवदिता स्याम् ( ६११ )- इस सभामें मैं तेजस्वितासे बोलनेवाला होऊं।

३४ वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, प्रवोचम् ( ६१२ )-वज्रधारी इन्द्रने जो महान् पराक्रम किए उनका मैं वर्णन करता हूं।

३५ जन्मना जातवेदाः अग्निः अस्मि ( ६१३ )- जन्मसे ही मैं सर्वज्ञ और अग्रणी हूं।

३६ हे वसुवित् अग्ने ! नः पयसा रयिं दृशे वर्चः अदाः ( ६१५ )- हे धनवान् अग्ने ! हमें दूधके साथ धन और दर्शनीय तेज दे।

३७ वसन्तः, ग्रीष्मः, वर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः, रन्त्यः, ( ६१६ )- वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें रमणीय हैं।

३८ सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपात्, पुरुषः, स भूमिं विश्वतो वृत्वा दशांगुलं अत्यातिष्ठत् ( ६१७ ) -हजारों सिर, हजारों आंखें, हजारों पांववाला एक पुरुष है, वह सब पृथ्वीपर चारों ओर व्याप्त होकर दस अंगुलियोंके समान इस विश्वको व्याप्त करके रह रहा है।

३९ त्रिपाद् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत् ( ६१८ )- तीन भागोंवाला यह पुरुष ऊपर स्वर्ग स्थानमें रह रहा है।

४० अस्य पादः इह पुनः अभवत् ( ६१८ )- इसका एक भाग इस जगत्में बार-बार पैदा होता है।

४१ ततः अशन-अनशने अभि विष्वङ् व्यक्रामत ( ६१८ )- बादमें अन्न खानेवाले और न खानेवाले ऐसे विविध रूपोंसे चारों ओर प्रकट होता है।

४२ यत् भूतं यत् च भाव्यं इदं सर्वं पुरुष एव ( ६१९ )- जो उत्पन्न हो चुका और जो होनेवाला है वह सब यह पुरुष ही है।

४३ सर्वा भूतानि अस्य पादः ( ६१९ )- सारे उत्पन्न हुए प्राणी इसके चौथे ही हिस्से हैं।

४४ अस्य तावान् महिमा ( ६२० )- इसकी ऐसी महिमा है।

४५ अमृतत्वस्य ईशानः ( ६२० )- अमरताका वह स्वामी है।

४६ ततः विराट् अजायत ( ६२१ )- इस पुरुषसे विराट् पुरुष हुआ।

४७ विराजः अधि पूरुषः ( ६२१ )- विराट् पुरुषका अधिष्ठाता एक पुरुष है।

४८ स जातः अत्यरिच्यत, भूमिं पश्चात्, पुरः ( ६२१ )- वह उत्पन्न हुए प्राणियोंसे श्रेष्ठ था, पहले भूमि, बादमें भूमिपर उत्पन्न हुए दूसरे पदार्थोंके रूपसे वह प्रकट हुआ।

४९ हे द्यावापृथिवी ! वां सुभोजसौ ( ६२२ )- हे द्यु और पृथ्वी लोको ! तुम ही उत्तम भोजन देनेवाले हो।

५० हे द्यावापृथिवी ! स्योने भवतं ( ६२२ )- हे द्यावापृथिवी ! तुम हमारे लिए सुख देनेवाले होवो।

५१ ते नः अंहसः मुंचतम् ( ६२२ )- तुम हमें पापोंसे छुडावो,

५२ अमितं योजनं अभि अप्रथेथां ( ६२२ )- हमें अपरिमित धन योजनापूर्वक दो।

५३ वनर्गवः कवयः पुरुपासः त्वा स्तुवन्ति (६२३) - गाय पालनेवाले ज्ञानी जन तुझ इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

५४ हिरण्यस्य, गवां, सत्यस्य ब्रह्मणः यत् वर्चः, तेन मां संसृजामसि (६२४)- सोना, गाय और सत्य-ज्ञान इनमें जो तेज है उस तेजसे मुझे युक्त कर।

५५ हे विरप्शिन् ! सहः ओजः नः दद्धि ( ६२५ )- हे बहुत धनवान् ! हमें सामर्थ्य और बल दे।

५६ अस्य महतः ईशे ( ६२५ )- इस महान् बलका तू स्वामी है।

५७ नः नृम्णं स्थविरं वाजं कृधि ( ६२५ )- हमारे लिए धन और स्थायी महान् बल दे।

५८ वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ( ६२५ )- संग्राममें शत्रुओंको पैरोंसे कुचलनेका सामर्थ्य हमें दे।

५९ सह-ऋषभाः सहवत्साः द्विगूध्नीः उदेत (६२६) -बैलोंके साथ रहनेवालीं, बछडोंके साथ आनन्दित, दुगुने बडे दुग्धाशयवालीं गायें हमारे पास आवें।

६० उरुः पृथुः अयं लोकः ( ६२६ )- यह भूलोक तुम्हारे लिए महान् और विस्तृत हो।

६१ अग्ने ! आयूंषि पवसे ( ६२७ )- हे अग्ने ! तू हमें दीर्घ आयु दे।

६२ नः ऊर्जं इषं च आसुव ( ६२७ )- हमें बल और अन्न दे।

६३ दुच्छुनां आरे बाधस्व (६२७)- दुष्टोंको दूर कर।

६४ यज्ञपतौ अविहुतं आयुः दधत् ( ६२८ )- यजमानको उपद्रवरहित आयु दे ।

६५ प्रजाः अभिरक्षति, पिपर्ति ( ६२९ )- वह प्रजाओंका संरक्षण करता है । और अन्नको पूर्ण करता है ।

६६ सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ( ६२९ )- सूर्य स्थावर और जंगम जगत्‌का आत्मा है ।

६७ महिषः दिवं व्यख्यत् ( ६३१ )- यह महान् सूर्य द्यूलोकको प्रकाशित करता है ।

६८ यथा त्ये तायवः, विश्वचक्षसे सूराय, नक्षत्रा अक्तुभिः अपयन्ति ( ६३३ )- जैसे चोर दिनमें छिप जाते हैं, उसी तरह सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होते ही तारे रात्रीके साथ विलीन हो जाते हैं ।

६९ अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु व्यदृश्यन् ( ६३४ )- इस सूर्यकी किरणें लोगोंको देखती हैं । लोगोंका निरीक्षण करती हैं ।

७० तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि (६३५) – तू सबको तारनेवाला, सबोंसे देखने योग्य और प्रकाश करनेवाला है ।

७१ विश्वं रोचनं आभासि ( ६३५ )- सब तेजस्वी पदार्थोंको तू प्रकाशित करता है ।

७२ मानुषान् विश्वं स्वर्दृशे प्रत्यङ् उदेषि (६३६) – मनुष्योंके आगे सब विश्व दीखे इसलिए तू उदय होता है ।

७३ मघवन् ! विदाः (६४१)- हे धनवान् परमात्मन् ! तू सब कुछ जाननेवाला है ।

७४ गातुं विदाः (६४१)- तू उत्तम मार्गोंको जानता है ।

७५ दिशः अनु संशिपः ( ६४१ )- हम कौनसी दिशासे जांए यह बता ।

७६ पूर्वीनां शचीनां पते ! पुरुवसो ! शिक्ष (६४१) – हे आदिशक्तिके स्वामी ! धनवान् ! हमें ज्ञान दे ।

७७ प्रचेतन ! आभिः अभिष्टिभिः इषे द्युम्नाय प्र चेतय (६४२)- हे चेतना देनेवाले देवो ! इन संरक्षणोंसे अन्न और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें उत्तम मार्गसे प्रेरित करो ।

७८ मंहिष्ठः वज्रिवः ! शक्रः एव हि ( ६४३ )- हे महान् वज्रधारी इन्द्र ! तू सामर्थ्यवान् है ।

७९ हे शविष्ठ ! महे वाजाय ऋञ्जसे ( ६४३ )- हे बलवान् ! महान् धन और बल प्राप्त करनेके लिए हमें समर्थ कर ।

८० ऋञ्जसे ( ६४३ )- तू सामर्थ्यशाली बनाता है ।

८१ राये सुवीर्यं विदाः ( ६४४ )- धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम सामर्थ्य किस प्रकार प्राप्त करें, यह जानता है ।

८२ शूराणां शविष्ठः ( ६४४ )- शूरोंमें तू सबसे अधिक शूर है ।

८३ वाजानां पतिः ( ६४४ )- तू बलोंका स्वामी है ।

८४ वशान् अनु ऋञ्जसे ( ६४४ )- अपने अनुकूल रहनेवालोंको तू सामर्थ्यशाली बनाता है ।

८५ मघोनां मंहिष्ठः (६४५)- महान् धनवानोंसे भी तू अधिक धनवान् है ।

८६ अंशुः न शोचिः ( ६४५ )- सूर्यके समान तू प्रकाशमान् है ।

८७ नः विदे अभिनय ( ६४५ )- हमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तू उत्तम मार्गसे ले जा ।

८८ शक्रः ईशे ( ६४६ )- जो सामर्थ्यशाली होता है, वह स्वामी होता है ।

८९ ऊतये जेतारं अपराजितं हवामहे ( ६४६ )- संरक्षणके लिए विजयी और अपराजित वीरको हम बुलाते हैं ।

९० सः नः द्विषः अर्षत् ( ६४६ )- वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है ।

९१ सः क्रतुः छन्दः ऋतं बृहत् ( ६४६ )- वह कर्म करनेवाला, रक्षक सत्यनिष्ठ और महान् है ।

९२ धनस्य सातये अपराजितं जेतारं इन्द्रं हवामहे ( ६४७ )- धनकी प्राप्तिके लिए अपराजित और विजयी इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

९३ पूर्तिः शस्यते ( ६४८ ) पूर्णता करनेकी शक्तिकी प्रशंसा होती है ।

९४ शक्रः वशी ( ६४८ )- सामर्थ्यवान् सबको वशमें करता है ।

९५ यः सखा सुशेवः अद्रयुः ( ६४९ )- जो उत्तम मित्र, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा दोगला व्यवहार न करनेवाला है, वह उत्तम होता है ।

## उपमा

१ दिवि द्यां इव ( ६०२ )- जिस प्रकार द्युलोकमें तेज है, उसी प्रकार ( यज्ञस्य पयः ) यज्ञका दूध होता है ।

२ यथा त्ये तायवः ( ६३३ )- जैसे चोर दिनमें भाग जाते हैं, उसी प्रकार ( नक्षत्रा अक्तुभिः अपयन्ति ) तारे रातके साथ छिप जाते हैं, दिनमें दीखते नहीं ।

३ यथा भ्राजन्तः अग्नयः ( ६३४ )- जिस प्रकार तेजस्वी अग्नि जलती है, उसी प्रकार ( अस्य केतवः रश्मयः ) इस सूर्यकी किरणें चमकती हैं ।

इस आरण्य-काण्डमें इतनी ही उपमायें हैं ।

# आरण्यकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ५८६ | ६।४६।५ | शंयुर्वार्हस्पत्यः ( भरद्वाजः ) | इन्द्रः | बृहती |
| ५८७ | ७।२७।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ५८८ | — | वामदेवो गौतमः | ,, | गायत्री |
| ५८९ | १।२४।१५ | शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा | वरुणः | त्रिष्टुप् |
| ५९० | ९।९७।५८ | कुत्स आंगिरसः ( गृत्समदः ) | पवमानः सोमः | ,, |
| ५९१ | — | वामदेवो गौतमः | विश्वेदेवाः | एकपाद्जगती |
| ५९२ | ९।६१।१२ | अमहीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ५९३ | ९।६१।११ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ५९४ | — | आत्मा | अन्नम् | त्रिष्टुप् |
| | | ( २ ) | | |
| ५९५ | ८।९२।१३ | श्रुतकक्ष आंगिरसः | इन्द्रः | गायत्री |
| ५९६ | ९।८३।३ | पवित्र आंगिरसः | पवमानः सोमः | जगती |
| ५९७ | १।७।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | गायत्री |
| ५९८ | १।७।४ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ५९९ | १०।१८१।१ | प्रथो वासिष्ठः | विश्वेदेवाः | त्रिष्टुप् |
| ६०० | २।४१।२ | गृत्समदः शौनकः | वायुः | गायत्री |
| ६०१ | ८।८९।५ | नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| | | ( ३ ) | | |
| ६०२ | — | वामदेवो गौतमः | प्रजापतिः | अनुष्टुप् |
| ६०३ | १।९१।१८ | गोतमो राहूगणः | सोमः | त्रिष्टुप् |
| ६०४ | १।९१।२२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ६०५ | १।१।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | अग्निः | गायत्री |
| ६०६ | ४।१।१६ | वामदेवो गौतमः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ६०७ | २।३५।३ | गृत्समदः शौनकः | अपांनपात् | ,, |
| ६०८ | — | वामदेवो गौतमः | रात्रिः | अनुष्टुप् |
| ६०९ | ६।८।१ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यः | अग्निः | जगती |
| ६१० | ६।५२।१४ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | विश्वेदेवाः | ,, |
| ६११ | — | वामदेवो गौतमः | लिंगोक्ताः | महापंक्तिः |
| ६१२ | १।३२।१ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| ६१३ | ३।२६।७ | विश्वामित्रो गाथिनः ( ब्रह्म ) | आत्मा अग्निर्वा | ,, |
| ६१४ | ३।५।१ | विश्वामित्रो गाथिनः ( ब्रह्म ) | अग्निः | ,, |



# सामवेदका सुबोध अनुवाद

## ( उत्तरसंहिता ) उत्तरार्चिकः ।

## अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ असितः काश्यपो देवलो वा; २ कश्यपोः मारीचः; ३ शतं वैखानसः; ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ।; ५, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इरिम्बिठिः काण्वः; ८ अमहीयुरांगिरसः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १० उशना काव्यः; ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १२ वामदेवो गौतमः; १३ नोधा गौतमः; १४ कलिः प्रागाथः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ गौरवीतिः शाक्त्यः, १७ अग्निश्चाक्षुषः; १८ अन्धीगुः श्यावाश्विः; १९ कविर्भार्गवः; २० शंयुर्बार्हस्पत्यः; ( तृणपाणिः ) २२ सोभरिः काण्वः; २३ नृमेधः आंगिरसः ॥ १-६, ८-१०, १५-१९ पवमानः सोमः; ४, २०, २१ अग्निः; ५ मित्रावरुणौ; ७ इन्द्राग्नी; ६, ११-१४, २२-२३ इन्द्रः ॥ १-८, १२ ( १-२ ), १५, १८ ( २-३ ), २१ गायत्री; ९, ११, १३, १४, २० प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); १० त्रिष्टुप्; १२ ( ३ ) सोदनिचृत्; १६, २२ काकुभः प्रगाथः = ( विषमा ककुप् समा सतो बृहती १७ उष्णिक्; १८ ( १ ) अनुष्टुप्; १९ जगती; २३ ( १ ) ककुप्, ( २ ) उष्णिक् ( ३ ) पुर उष्णिक् ॥

६५१ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )

६५२ अभि ते मधुना पयोथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।२ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ६५१ ] हे ( नरः ) ऋत्विजो ! ( देवान् अभि इयक्षते ) देवोंके लिए हवन करनेकी इच्छावाले ( पवमानाय अस्मै इन्दवे ) शुद्ध होनेवाले इस सोमकी ( उप गायत ) तुम स्तुति करो ॥ १ ॥

सोमरसको छानकर तैय्यार करके उससे देवोंके लिए हवन किया जाता है । उसे छानते हुए यज्ञ करनेवाले उस सोमके लिए स्तोत्रोंका गायन करते हैं ।

[ ६५२ ] ( ते देवयु देवं ) तेरे देवोंको दिए जानेवाले दिव्य रसको ( देवाय ) इन्द्रदेवके लिए ( मधुना पयः ) मीठे दूधके साथ ( अथर्वाणः ) अथर्ववेदके ऋषियोंने ( अभि-अशिश्रयुः ) मिलाया है ॥ २ ॥

दिव्य सोमरस देवोंको दिये जानेके लिए गायके मीठे दूधके साथ मिलाकर उसे ऋषिलोग तैय्यार करते हैं । अथर्ववेदीयज्ञ करनेवाले सोमरसको दूधके साथ मिलाते हैं ।

६५३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शᳬराजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ ( ती ) ॥ ( ऋ. ९।११।३ )

६५४ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२८ )

६५५ हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥२॥ ( ऋ. ९।६४।२९ )

६५६ ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥ २ ( यि ) ॥ ( ऋ. ९।६४।३० )

६५७ पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६६।१० )

---

[ ६५३ ] हे ( राजन् ) तेजस्वी सोम ! ( सः ) वह तू ( नः गवे शं ) हमारी गायोंका कल्याण कर, ( जनाय शं ) पुत्रपौत्रोंका कल्याण कर ( अर्वते शं ) हमारे घोडोंका कल्याण कर और ( ओषधिभ्यः शं ) औषधियोंका कल्याण कर, तथा ( पवस्व ) तू स्वयं भी छाना जाकर शुद्ध हो ॥ ३ ॥

सोम गाय, घोडे, पुत्रपौत्र और औषधियोंका हित करे और वह स्वयं भी छनकर पवित्र होवे।

[ ३५४ ] ( दविद्युतत्या रुचा ) तेजस्वी कान्तिसे युक्त और ( परिष्टोभन्त्या ) शब्द करनेवाली धारासे युक्त ( शुक्राः सोमाः ) स्वच्छ सोमरस ( गवाशिरः ) गायके दूधमें मिलाकर तैय्यार किये गये हैं ॥ १ ॥

सोमरस चमकता है और धार बांधकर छाना जाता है, तब शब्द होता है, उसमें गायका दूध मिलाकर उसे तैय्यार किया जाता है।

[ ६५५ ] ( वाजी ) बलवर्धक सोमरस ( हेतृभिः हिन्वानः ) स्तोताओंसे प्रशंसित होता है, ( हितः ) वह हित करनेवाला ( वाजं अक्रमीत् ) यज्ञमें चलता आता है, ( यथा ) जिस प्रकार ( वनुषः सीदन्तः ) युद्ध करनेवाले वीर युद्धभूमिमें आक्रमण करते हैं ॥ २ ॥

सोमरसके स्तोत्र गाये जाते हैं, और उनका रस निचोडा जाता है। बादमें वह सोम सबका हित करनेवाला होकर यज्ञमें उसी प्रकार प्रविष्ट होता है, जिस प्रकार योद्धा शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए युद्धभूमिमें प्रविष्ट होते हैं। सोम पीनेके बाद उत्साह बढता है और उससे वीरोंकी वीरता भी बढती है। वे वीर शत्रुओंपर आक्रमण करके यशस्वी होते हैं।

[ ६५६ ] हे ( कवे सोम ) ज्ञानी सोम ! तू ( सूर्यः ) सूर्यके समान ( ऋधक् ) ऊपर चढकर ( सं जग्मानः ) तेजसे युक्त होकर ( स्वस्तये दृशे ) सबके कल्याणके लिए ( दिवा ) दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर ( पवस्व ) छनता जा ॥३॥

सोमरससे ज्ञानयुक्त उत्साह बढता है। जैसे सूर्य ऊपर चढता-चढता तेजस्वी होता है, उसी प्रकार सोमरसकी चमक बढती जाती है। सोमरससे सबका कल्याण होता है, तेज और उत्साह बढता है।

[ ६५७ ] हे ( कवे वाजिन् ) ज्ञानी और बलवर्धक सोम ! ( पवमानस्य ते ) छाने जानेवाले तेरी ( श्रवस्यवः सर्गाः ) यशस्वी धारा ( अर्वन्तः न ) घोडे जैसे घुडसालसे बाहर वेगसे दौडते हैं, उसी प्रकार ( असृक्षत ) बर्तनमें गिरती है ॥ १ ॥

सोमरस ज्ञान और बल बढाता है, छानते समय उसकी धारा छाननीसे नीचेके बर्तनमें उसी प्रकार गिरती है, जिस प्रकार घोडे घुडसालसे बाहर आकर दौडते हैं। घोडे जिस प्रकार वेगसे दौडते हैं, उसी प्रकार सोमकी धारा ऊपरकी छाननीसे नीचेके बर्तनमें वेगसे गिरती है।

६५८ अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६६।११ )

६५९ अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ३ ( कौ ) ॥ ( ऋ ९।६६।१२ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

६६० अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥ ( ऋ ६।१६।१० )

६६१ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।११ )

६६२ स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥( ऋ. ६।१६।१२ )

६६३ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।६२।१६ )

---

[ ६५८ ] ( मधुश्चुतं कोशं अच्छा ) मीठा रस जिसमें भरा जाता है, उस कलशमें ( अव्यये वारे ) भेडके बालसे बनी छलनीसे हम सोमरसको ( असृग्रं ) छानते हैं, ( धीतयः ) हमारी उंगलियां ( अवावशन्त ) वारबार दबाकर रस निचोडनेकी इच्छा करती हैं ॥ २ ॥

बर्तनके ऊपर भेडके बालोंसे बनी छलनी होती है, उससे रस छाना जाता है और वह नीचेके कलशमें गिरता है। हमारी उंगलियां सोम दबाकर रस निचोडनेका प्रयत्न करती हैं।

[ ६५९ ] ( इन्दवः ) सोमरस ( समुद्रं ) जलयुक्त कलसेमें ( गावः धेनवः अस्तं ऋतस्य योनिं न ) जिस प्रकार चलती हुई गायें अपने घर अर्थात् यज्ञस्थानमें ( आ अग्मन् ) जाती है, उसी प्रकार ( अच्छ ) सीधा जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस पानीसे युक्त कलसेमें छाना जाता है, वे सोमरसके प्रवाह कलसेमें उसी वेगसे जाते हैं, जिस वेगसे गायें अपने स्थानमें जाती हैं।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ६६० ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! तू ( गृणानः ) स्तुतिके बाद ( वीतये ) हवि द्रव्योंके भक्षण करनेके लिए और ( हव्य-दातये ) हवि देवोंको पहुंचानेके लिए ( आ याहि ) आ, हमारे यज्ञमें ( होता ) देवोंको बुलानेवाला होकर ( बर्हिषि नि षत्सि ) आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६१ ] हे ( अंगिरः ) सुन्दर अग्ने ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( समिद्भिः ) समिधाओंसे और ( घृतेन ) घीसे ( वर्धयामसि ) हम प्रज्वलित करते हैं, हे ( यविष्ठ्य ) तरुण अग्ने ! ( बृहत् शोच ) तू अधिक प्रकाशित हो ॥ २ ॥

[ ६६२ ] हे ( देव ) तेजस्वी अग्निदेव ! ( सः ) वह तू ( पृथु श्रवाय्यं ) बहुत यशस्वी ( बृहत् सुवीर्यं ) महान् पराक्रम करनेवाले सामर्थ्य ( नः ) हमें ( अच्छ विवाससि ) सरलतासे प्राप्त हों ऐसा कर ॥ ३ ॥

[ ६६३ ] हे ( सुक्रतू ) उत्तम करनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण देवो ! ( नः गव्यूतिं ) हमारे गायके स्थानको ( घृतैः आ उक्षतं ) घीसे सींचो, और ( मध्वा ) मीठे रससे ( रजांसि ) रजो लोक - दूसरे लोकके स्थानको उत्तम रीतिसे सिंचित करो ॥ १ ॥

हमें गायसे भरपूर घी मिले और सब स्थानोंपर मीठा अन्नरस प्राप्त हो।

*

६६४ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२॥ ( ऋ. ३।६२।१७ )

६६५ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥ ३ ॥ ५ ( यि ) ॥ ( ऋ. ३।६२।१८ )

६६६ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥ ( ऋ. ८।१७।१ )

६६७ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१७।२ )

६६८ ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ६ ( फौ ) ॥ ( ऋ. ८।१७।३ )

६६९ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।१ )

६७० इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥२॥ ( ऋ. ३।१२।२ )

---

[ ६६४ ] हे ( शुचि-व्रता ) हे शुद्ध कर्म करनेवाले मित्रावरुणो ! ( उरुशंसा ) बहुत प्रशंसित और ( नमो वृधा ) हविष्यान्नसे बढनेवाले तुम ( द्राघिष्ठाभिः ) महान् स्तुतिसे प्रशंसित होकर ( दक्षस्य मह्ना राजथः ) अपने बलके माहात्म्यसे शोभित होते हो ॥ २ ॥

[ ६६५ ] हे मित्रावरुणो ! ( जमदग्निना ) जमदग्नि ऋषिके द्वारा ( गृणाना ) स्तुति किए गए तुम दोनों ( ऋतस्य योनौ ) यज्ञके स्थानपर ( सीदतं ) बैठो, और ( ऋता-वृधा ) यज्ञको बढानेवाले तुम दोनों ( सोमं पातं ) सोमरस पियो ॥ ३ ॥

[ ६६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आ याहि ) आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुषुमा हि ) सोमरस निकाला है, ( इमं सोमं पिब ) यह सोमरस पी, और ( मम इदं बर्हिः आ सदः ) मेरे इस आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजा ) मंत्र बोलते ही रथमें जुड जानेवाले ( केशिना हरी ) अयालवाले दोनों घोडे ( त्वा आवहतां ) तुझे यहां ले आवें, और यहां आकर तू ( नः ब्रह्माणि ) हमारे स्तोत्र ( उप शृणु ) पाससे सुन ॥ २ ॥

[ ६६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमिनः सुतावन्तः वयं ) सोमयज्ञ करनेवाले और सोमरस तैय्यार करनेवाले हम ( ब्रह्माणः ) ज्ञानी यज्ञकर्ता ( सोमपां त्वा ) सोमरस पीनेवाले तुझे ( युजा हवामहे ) योग्य स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ६६९ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( गीर्भिः ) स्तोत्रोंसे प्रशंसित ( नभः आगतं ) आकाशसे अर्थात् पर्वतके ऊंचे शिखरसे आया हुआ यह ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ सोमरस है ( धिया इषिता ) बुद्धिसे प्रेरित किए गए तुम ( अस्य पातं ) इसका पान करो ॥ १ ॥

सोमलता पर्वतके ऊंचे शिखरसे लाई जाती थी, इसलिए उसे " नभः आगतं " आकाशसे लाया हुआ सोम ऐसा कहा गया है ।

[ ६७० ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ( जरितुः सचा ) स्तुति करनेवालेके सहायक होवो, ( यज्ञः चेतनः जिगाति ) जिससे यज्ञ होता है, और जो चेतना - स्फूर्ति देता है, वह सोम तुम्हें प्राप्त होता है, ( अया ) इस स्तुतिसे बुलाये गये तुम ( इमं सुतं पातं ) इस सोमरसका पान करो ॥ २ ॥

६७१ इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥ ७ ( ता ) ॥
( ऋ. ३।१२।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

६७२ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१० )

६७३ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।१२ )

६७४ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ८ ( ठी ) ॥
( ऋ. ९।६१।११ )

६७५ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।४ )

---

[ ६७१ ] ( यज्ञस्य जूत्या ) यज्ञसे प्रेरित होकर ( कविच्छदा ) स्तुति करनेवालोंको योग्य फल देनेवाले इन्द्र और अग्नि देवोंको ( वृणे ) मैं स्वीकार करता हूँ, ( ता इह ) वे दोनों इस यज्ञमें ( सोमस्य तृम्पतां ) सोमरसके पानसे तृप्त होवें ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः।

[ ६७२ ] हे सोम ! ( ते अन्धसः ) तेरे अन्नरूपी सोमका ( दिवि उच्चा जातं ) द्युलोकमें ऊंचे स्थानपर जन्म हुआ है, तेरे ( उग्रं सत् ) शौर्यको बढानेवाले ( शर्म महि श्रवः ) सुख देनेवाले महान् यशवाले अन्न ( भूमि आददे ) भूमिपर हम प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सोमलता हिमालय पर्वतकी मौजवान् नामक ऊंची चोटीपर उगती है, वहांसे वह पृथ्वीपर लाई जाती है, और यज्ञमें उसका प्रयोग किया जाता है, उस सोमलताका रस शक्तिवर्धक, सुखदायक और पुष्टि करनेवाला है।

[ ६७३ ] हे ( वरिवो-वित् ) धन देनेवाले सोम ! ( सः ) वह तू ( नः यज्यवे ) हमारे पूज्य ( इन्द्राय वरुणाय ) इन्द्र, वरुण और ( मरुद्भ्यः ) मरुतोंके लिए ( परिस्रव ) छनता जा ॥ २ ॥

[ ६७४ ] हे सोम ! ( मानुषाणां ) मनुष्यों द्वारा प्राप्त करने योग्य ( एना विश्वानि द्युम्नानि ) इन सारे धनोंको ( आ अर्यः ) प्राप्त करके तेरी ( सिषासन्तः ) सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) तेरा भजन करते हैं ॥३॥

[ ६७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) छाना जाता हुआ तू ( आपः वसानः ) पानीमें मिलाया हुआ ( धारया अर्षसि ) धार बांधकर बर्तनमें गिरता है। ( रत्नधा ) रत्नोंको देनेवाला और ( उत्सः देवः ) जलरूपसे चमकनेवाला ( हिरण्ययः ) सोनेके समान तेजस्वी तू ( ऋतस्य योनिं आसीदसि ) यज्ञके स्थानपर बैठता है ॥ १ ॥

सोमरस पानीमें मिलाया जाता है, फिर वह छलनीसे छाना जाता है, तब वह चमकता है, ऐसा यह सोम यज्ञमें रखा जाता है।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

६७६ दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्न१ँ सधस्थमासदत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥ २ ॥ ९ ( लु ) ॥ (ऋ. ९।१०७।५)

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

६७७ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ (ऋ. ९।८७।१)

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

६७८ स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥ (ऋ. ९।८७।२)

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २

६७९ ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ५ २ ३ २ ३ १ २

स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्या३१ँ गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥ १० ( हु ) ॥ (ऋ. ९।८७।३)

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

---

[ ६७६ ] ( मधु प्रियं दिव्यं ऊधः ) मीठे, प्रिय और दिव्यरसको ( दुहानः ) दुहनेवाला यह सोम ( प्रत्नं सधस्थं ) प्राचीन यज्ञस्थानपर ( आसदत् ) बैठ गया है, उसके बादमें ( वाजी ) बलवर्धक सोम ( नृभिः धौतः ) यज्ञकर्ताओं द्वारा छाना गया है, । यह ( विचक्षणः ) विशेषरूपसे निरीक्षण करनेवाला सोम ( आपृच्छ्यं धरुणं ) प्रशंसनीय यज्ञको धारण करनेवाले यजमानको ( अर्षसि ) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पर्वतसे सोम यज्ञशालामें लाया जाता है, यज्ञकर्ताओं द्वारा उसका रस निकालकर वह छाना जाता है उसके बाद वह यज्ञ करनेवाले यजमानके पास पहुंचाया जाता है।

[ ६७७ ] हे सोम ! तू ( तु प्र द्रव ) शीघ्र दौडकर आ, ( कोशं परि निषीद ) कलशमें आकर भर जा ( नृभिः पुनानः ) याजकोंसे छाना जानेके बाद ( वाजं अभि अर्ष ) हविरूप अन्न होकर रह, ( वाजिनं अश्वं न ) बलवान् घोडेको जिस प्रकार स्वच्छ करते हे, उसी प्रकार ( त्वा मर्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले ऋत्विज ( बर्हिः अच्छ ) यज्ञ स्थानके पास ( रशनाभिः ) अंगुलियोंसे तुझे ( नयन्ति ) ले जाते है ॥ १ ॥

सोमरस छानकर साफ किया जाता है, घोडेको जिस प्रकार साफ करते हैं, उसी प्रकार सोमरसको साफ करते हैं, और बादमें यज्ञस्थानके पास ले जाते हैं और वहां उसका हवन करते हे।

[ ६७८ ] ( स्वायुधः ) उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त ( अ-शस्ति-हा ) शत्रुका नाश करनेवाला ( वृजना ) उपद्रवोंको दूर करनेवाला, ( रक्षमाणः ) रक्षण करनेवाला ( पिता ) पालन करनेवाला ( देवानां जनिता ) देवोंको उत्पन्न करनेवाला ( सु-दक्षः ) उत्तम बलवान् ( दिवः विष्टम्भः ) द्युलोकको आधार देनेवाला ( पृथिव्याः धरुणः ) पृथिवीको धारण करनेवाला ( देवः इन्दुः पवते ) दिव्य सोम छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस बल और उत्साह बढानेवाला होनेके कारण ऊपरके विशेषण आलंकारिक रूपसे उसे दिए गए हे।

[ ६७९ ] ( विप्रः पुरः एता ) ज्ञानी और आगे आगे चलनेवाला ( जनानां ऋभुः ) लोगोंका तेजस्वी नेता ( धीरः उशना ऋषिः ) धैर्यशाली उशना ऋषि है, ( सः चित् ) वह ही ( आसां गोनां ) इन गायोंमें रहनेवाला ( यत् अपीच्यं गुह्यं नाम ) जो गुप्तरूपसे दूध है, उसे ( काव्येन विवेद ) काव्यकी सहायतासे जानता है ॥ ३ ॥

गौवोंमें जो गुप्तरूपसे रहनेवाला उत्तम दूध है, उसे उशना ऋषिने जान लिया और नेता होनेके कारण उसे सब मनुष्योंको बताया।

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

६८० अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।२२ )

६८१ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ ११ ( यी ) ॥
( ऋ. ७।३२।२३ )

६८२ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।३१।१ )

६८३ कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।३१।२ )

६८४ अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ १२ ( टा ) ॥
( ऋ. ४।३१।३ )

६८५ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८८।१ )

---

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६८० ] हे ( शूर ) शूरवीर इन्द्र ! ( अ-दुग्धाः धेनवः इव ) न दुही गई गायें जिस प्रकार बछडेके पास जाती हैं, उसी प्रकार हम ( अस्य जगतः ईशानं ) इस जंगम जगत्के स्वामी और ( तस्थुषः ईशानं ) स्थावर जगत्के स्वामी ( स्वः दृशं त्वा ) स्वयं सभीका दर्शन करनेवाले तुझे ( अभिनोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[ ६८१ ] हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे समान ( अन्यः ) दूसरा कोई भी ( दिव्यः न ) द्युलोकमें नहीं है, और ( पार्थिवः न ) पृथ्वीपर रहनेवाला भी नहीं है, ( न जातः ) न कोई हुआ और ( नः जनिष्यते ) न कोई होगा, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अश्वायन्तः ) घोडोंकी इच्छा करनेवाले ( वाजिनः ) धनकी इच्छा करनेवाले ( गव्यन्तः ) गायकी इच्छा करनेवाले हम ( त्वा हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८२ ] ( सदा-वृधः ) सदा बढनेवाला ( चित्रः सखा ) विलक्षण मित्र यह इन्द्र ( कया ऊती ) कौन कौनसे संरक्षणके साधनोंसे ( शचिष्ठया कया वृता ) और कौनसी शक्तिसे युक्त होकर ( नः आभुवत् ) हमारे पास आएगा ? ॥ १ ॥

[ ६८३ ] ( मंहिष्ठः ) महान् ( सत्यः ) सत्यकर्म करनेवाला और ( मदानां कः ) आनन्द देनेवालोंमें कौन भला बिशेष आनन्द देनेवाला है ? ( अन्धसः ) सोमरस ऐसे आनन्दका देनेवाला है, क्योंकि वह ( दृढा चित् वसु आरुजे ) सुदृढ रहनेवाले शत्रुओंके धनको विनष्ट करनेके लिए ( त्वा मत्सत् ) तुझे उत्साहित करता है ॥ २ ॥

[ ६८४ ] ( सखीनां जरितॄणां ) अपने मित्र स्तोताओंकी तू ( अविता ) रक्षा करनेवाला है, इसलिए ( नः ) हमारी ( शतं ऊतये ) सेंकडों प्रकारकी रक्षा करनेके लिए ( सु अभि भवासि ) उत्तम प्रकारसे तैय्यार होकर सामने स्थिर रह ॥ ३ ॥

[ ६८५ ] ( स्वसरेषु ) गोशालाओंमें ( वत्सं धेनवः इव ) बछडेके पास जिस प्रकार गायें जाती हैं, उसी प्रकार ( दस्मं ) दर्शनीय और ( ऋतीषह ) शत्रुको हरानेवाले ( वसोः अन्धसः मन्दानं ) पात्रमें रखे हुए सोमरससे आनन्दित होनेवाले ( वः तं इन्द्रं ) तुम्हारे उस इन्द्रकी ( गीर्भिः नवामहे ) स्तोत्रोंसे हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

६८६ द्युक्षꣳ सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजꣳ शतिनꣳ सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥ १३ ( ही ) ॥ ( ऋ. ८।८८।२ )

६८७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रꣳसबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६६।१ )

६८८ न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥ १४ ( जु ) ॥ ( ऋ. ८।६६।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

६८९ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

६९० रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )

---

[ ६८६ ] ( द्यु-क्षं ) द्युलोकमें रहनेवाले ( सु-दानुं ) उत्तम दान देनेवाले ( तविषीभिः आवृतं ) अनेक सामर्थ्योंसे युक्त और ( पुरु-भोजसं ) बहुत भोजन करनेवाले इन्द्रके पाससे ( क्षुमन्तं ) पोषण करनेवाले ( शतिनं सहस्रिणं ) सैंकडों और हजारों धनसे युक्त ( गोमन्तं वाजं ) गायोंसे उत्पन्न किए अन्न ( मक्षु ईमहे ) शीघ्र मिलें ऐसी इच्छा हम करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८७ ] हे ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( सुतसोमे अध्वरे ) सोमयागमें ( तरोभिः ) वेगवान् अश्वोंके साथ रहनेवाले ( विदद्वसुं इन्द्रं ) धनके दान करनेवाले इन्द्रके लिए ( स-बाधः ) शत्रुओंसे ( ऊतये ) रक्षणके लिए ( बृहत् गायन्तः ) बृहत् नामके सामका गायन करो, ( भरं न ) भरण पोषण करनेवाले जिस प्रकार बुलाये जाते हैं, उसी प्रकार ( कारिणं हुवे ) हित करनेवाले इन्द्रको मैं सहायतार्थ बुलाता हूं ॥ १ ॥

[ ६८८ ] ( सु-शिप्रं यं ) सुन्दर ठोडीवाले इस इन्द्रको ( दु-ध्राः न वरन्ते ) दुष्ट शूर असुर भी नहीं हटा सकते, ( स्थिराः न ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले शूर भी इन्द्रको नहीं हटा सकते, ( मुरः ) मरनेवाले शत्रु भी उसका निवारण नहीं कर सकते, ऐसा ( यः ) जो इन्द्र है, वह ( अन्धसः मदे ) सोमरसके आनन्दमें ( आदृत्य शशमानाय ) अन्दरसे स्तुति करनेवाले ( सुन्वते जरित्रे ) सोमयज्ञ करनेवाले स्तोताके लिए ( उक्थ्यं दाता ) प्रशंसनीय धन देता है ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६८९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सुतः ) निकाला हुआ यह सोमरस है, तू ( स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया ) स्वादिष्ट और आनन्द बढानेवाली धारासे ( पवस्व ) छनता जा ॥ १ ॥

[ ६९० ] ( रक्षो-हा ) राक्षसोंका नाश करनेवाला ( विश्व-चर्षणिः ) सब मनुष्योंका हित करनेवाला ( अयोहते द्रोणे ) सोनेके बर्तनमें छनकर ( सधस्थं योनिं ) पासके यज्ञस्थानमें ( अभि आसदत् ) सोमरस जाकर बैठ गया ॥ २ ॥
सोमरसको छानकर सोनेके बर्तनमें भर दिया ।

६९१ वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ १५ (पौ) ॥
( ऋ. ९।१।३ )

६९२ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।१ )

६९३ यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥ १६ (प) ॥ ( ऋ. ९।१०८।२ )

६९४ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०६।१ )

६९५ अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०६।२ )

६९६ अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥ १७ (किं) ॥ ( ऋ. ९।१०६।३ )

---

[ ६९१ ] हे सोम ! तू ( वरिवो-धातमः ) धन देनेवाला ( मंहिष्ठः ) महान् ( वृत्र-हन्तमः ) शत्रुका बुरी तरह नाश करनेवाला ( भुवः ) है, इसलिए ( मघोनां राधः पर्षि ) धनवान् शत्रुके पास रहनेवाले धन हमें दे ॥ ३ ॥

[ ६९२ ] हे सोम ! तू ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ( क्रतु-वित्-तमः ) कर्म करनेके मार्गको उत्तम रीतिसे जाननेवाला ( महि द्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) आनन्द देनेवाला है इसलिए ( इन्द्राय मदः ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए ( पवस्व ) छनकर तैय्यार हो ॥ १ ॥

[ ६९३ ] हे सोम ! ( वृषभः ) बलवान् इन्द्र ( यस्य ते पीत्वा ) जिस तुझे पीकर ( वृषायते ) अधिक बलवान् होता है,( स्वः-विदः अस्य पीत्वा ) आत्मज्ञानी भी इसे पीकर आनन्दित होता है । ( सु-प्र-केतः सः ) उत्तम ज्ञानी वह इन्द्र ( इषः ) शत्रुके अन्नोंको ( एतशः वाजं अभि न ) जिस प्रकार घोडा संग्राममें जाकर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार ( अभ्यक्रमीत् ) अपने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[ ६९४ ] ( श्रुष्टे ) शीघ्र ही ( जातासः इन्दवः ) तैय्यार हुए, चमकनेवाले और ( स्वः-विदः हरयः इमे सुताः ) ज्ञान बढानेवाले हरे रंगके ये सोमरस ( वृषणं इन्द्रं अच्छ यन्तु ) बलवान् इन्द्रके पास शीघ्र पहुंचें ॥ १ ॥

[ ६९५ ] ( भराय ) संग्रामके समय ( सानसिः ) सेवन करनेके योग्य ( अयं सुतः ) यह सोमरस ( इन्द्राय क्षरति ) इन्द्रके लिए छाना जाता है, यह ( जैत्रस्य चेतति ) विजयी इन्द्रको उत्साहित करता है, ( यथा विदे ) जैसा कि सब लोग जानते हैं ॥ २ ॥

[ ६९६ ] ( अस्य इत् मदेषु ) इस सोमके आनन्दमें ( सानसिं ) सेवन करनेके योग्य ( ग्राभं गृभ्णाति ) धनुषको पकडता है, बादमें ( अप्सुजित् इन्द्रः ) पानीके प्रवाहोंको जीतनेवाला इन्द्र ( वृषणं वज्रं च ) बलवान् वज्रको ( सं भरत् ) धारण करता है ॥ ३ ॥

६९७ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानꣳश्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१ )
६९८ यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१०१।२ )
६९९ तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ १८ ( यि ) ॥
( ऋ. ९।१०१।३ )

७०० अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७५।१ )
७०१ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७५।२ )

---

[ ६९७ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः पुरोजिती ) तुम अपने आगे विजय है ऐसा समझकर ( अन्धसः सुताय ) अन्नरूपी इस सोमरससे ( मादयित्नवे ) आनन्द देनेवाला होनेके कारण आनेवाले ( दीर्घ-जिह्वयं ) लम्बी जीभवाले कुत्तेको ( अपश्नथिष्टन ) दूर करो ॥ १ ॥

कुत्ता सोमरसको न चाटे ऐसी सावधानी बरतो ।

[ ६९८ ] ( सुतः कृत्व्यः ) सोमरस यज्ञका सहायक है, ( यः इन्दुः ) वह सोमरस ( पावकया धारया ) शुद्ध होनेवाली धारासे ( अश्वः न ) जैसे घोडा जोरसे दौडता है, उसी प्रकार ( परि प्रस्यन्दते ) छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस यज्ञका सहायक है, वह शुद्ध होनेके लिए छलनीसे छाना जाता है, और नीचेके बर्तनमें अखण्ड धारसे छनता जाता है, घोडा जैसे दौडता है, उसी प्रकार वह नीचेके बर्तनमें वेगसे गिरता है ।

[ ६९९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( दुरोषं ) दुष्टोंका नाश करनेवाले ( तं सोमं अभि ) उस सोमके पास जाकर ( विश्वाच्या धिया ) सबके संरक्षण करनेकी बुद्धिसे ( यज्ञाय ) यज्ञको ( अद्रयः सन्तु ) आदरसे देखनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ ७०० ] ( चनो-हितः ) अन्नरूपसे हित करनेवाला सोम ( प्रियाणि नामानि अभि पवते ) सबको तृप्त करनेवाले पानीको पवित्र करता है, ( येषु ) जिन जलोंमें ( यह्वः अधिवर्धते ) यह महान् सोम बढता है । ( बृहतः सूर्यस्य ) महान् सूर्यके ( विष्वंचं अधिरथं ) सब जगह जानेवाले रथपर ( बृहत् विचक्षणः आरुहत् ) यह महान् और सर्व द्रष्टा सोम चढता है ॥ १ ॥

सोम अन्नरूप है, वह पानीमें मिलाया जाता है, तब वह पानीको पवित्र करता है । पानी मिलानेके कारण सोमरस बढता है, बादमें वह सूर्यके प्रकाशमें रखा जाता है ।

[ ७०१ ] ( ऋतस्य-जिह्वा ) मानों यह यज्ञकी जीभ ही है, ऐसा यह ( वक्ता ) शब्द करनेवाला सोमरूपी ( प्रियं मधु पवते ) प्रिय और मीठा रस छाना जाता है, ( अस्य धियः पतिः ) इस यज्ञकर्मका पालक यह सोम किसीसे ( अ-दाभ्यः ) न दबनेवाला है, और ( पुत्रः ) यजमानरूपी यह पुत्र ( पित्रोः अपीच्यं ) मातापिताके नामको न जाननेवाले ( दिवः रोचनं ) द्युलोकके प्रकाशन करनेवाले ( तृतीयं नाम ) तीसरे नामको ( अधि दधाति ) धारण करता है ॥ २ ॥

सोमरसको छाने जानेके समय उसका शब्द होता है, इसलिए वह सोम वक्ता है । यह न दबाया जानेवाला यज्ञका कर्ता है, यज्ञके बाद इस यज्ञकर्ताको " सोमयाजी " यह तीसरा नाम मिलता है । नक्षत्रपर एक नाम, व्यवहारमें दूसरा नाम और यज्ञ करनेके कारण " सोमयाजी " यह तीसरा नाम उसे मिलता है ।

७०२ अव द्युतानः कलशाꣳअचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥ ३ ॥ १९ ( दि ) ॥
( ऋ. ९।७५।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७०३ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४८।१ )

७०४ ऊर्जो नपातꣳस हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्ववितां भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥ २० ( यु ) ॥ ( ऋ. ६।४८।२ )

७०५ एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )

७०६ यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।१७ )

---

[ ७०२ ] ( द्युतानः ) तेजस्वी सोम ( नृभिः ) ऋत्विजों द्वारा ( हिरण्यये कोशे ) सोनेके कलशमें ( येमानः ) छाना जाता हुआ ( कलशान् अचिक्रदत् ) कलसेमें शब्द करता हुआ भरता है, इस समय ( ऋतस्य दोहनाः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमकी ( अभि अनूषत ) स्तुति करते है, हे सोम ! ( त्रि-पृष्ठः ) तीन सवनोंमें ( उषसः अधि ) उषःकालके प्रकाशके बाद ( विराजसि ) तू चमकता है ॥ ३ ॥

सोमरस ऋत्विजोंके द्वारा सोनेके पात्रमें छाना जाता है, वह शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है । उस समय ऋत्विज इस सोमके स्तोत्र कहते हैं । तीनों ही सवनोंमें यह सोमरस चमकता है ।

॥ यहां पाचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ७०३ ] हे स्तुति करनेवाले ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( यज्ञायज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें ( दक्षसे अग्नये ) प्रदीप्त होनेवाले अग्निकी ( गिरागिरा ) अपनी वाणीसे स्तुति करो । ( च ) और ( वयं ) हम भी ( अमृतं जातवेदसं ) अमर ज्ञानी अग्निकी ( प्रियं मित्रं-न ) प्रिय मित्रके समान ( प्र प्रशंसिषम् ) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ७०४ ] ( ऊर्जः न-पातं ) बल कम न करनेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( हिना सः अयं ) निश्चयसे वह यह अग्नि ( अस्मयुः ) हमारा हित करनेवाला है, ( हव्य-दातये दाशेम ) देवोंको हवि पहुंचानेवाले इस अग्निको हम हवि देते हैं, यह ( वाजेषु अविता ) युद्धोंमें हमारी रक्षा करनेवाला और ( वृधः ) हमारी वृद्धि करनेवाला ( भुवत् ) होवे, ( उत ) और ( तनूनां त्राता भुवत् ) हमारे शरीरोंका रक्षण करनेवाला होवे ॥ २ ॥

[ ७०५ ] हे अग्ने ! ( एहि ) आ, ( ते गिरः ) तेरे स्तोत्रोंको हम ( इत्था सु ब्रवाणि ) इस प्रकार उत्तम रीतिसे कहते हैं, ( उ ) और ( इतराः ) दूसरे स्तोत्रोंको भी कहते हैं, उन्हें तू सुन, ( एभिः इन्दुभिः ) इन सोमरसोंसे ( वर्धासे ) तू बढता है ॥ १ ॥

[ ७०६ ] ( ते मनः ) तेरा मन ( यत्र क्व च ) जहां कहीं है, ( तत्र ) वहां ( उत्तरं दक्षं ) श्रेष्ठ बलका ( दधसे ) तू स्थापन करता है, उसी प्रकार वहां ( योनिं कृणवसे ) घरका भी निर्माण करता है ॥ २ ॥

*

७०७ न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥ २१ ( यी ) ॥
( ऋ. ६।१६।१८ )

७०८ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रꣳ हवामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२१।१ )

७०९ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥ २२ ( च ) ॥ ( ऋ. ८।२१।२ )

७१० अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९८।७ )

७११ वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वाꣳसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥
( ऋ. ८।९८।८ )

७१२ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥ २३ ( यि ) ॥ ( ऋ. ८।९८।९ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥
इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

[ ७०७ ] हे अग्ने ! ( ते पूर्तं अक्षिपत् ) तेरा तेज नेत्रोंको हानिकारक ( नहि भुवत् ) नहीं होता, हे (नेमानां पते ) नियमोंमें रहनेवाले मनुष्योंके स्वामिन् ! ( अथः दुवः ) अब हमारी सेवा तू ( वनवसे ) स्वीकार कर॥ ३ ॥

[ ७०८ ] हे ( अपूर्व्य वज्रिन् ) अपूर्व वज्रधारी इन्द्र ! ( भरन्तः ) तुझे सोमरस देनेवाले और ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( चित्रं त्वां उ ) विलक्षण और श्रेष्ठ तुझे सहायताके लिए ( कच्चित् स्थूरं न ) जैसे कोई बडे आदमीको बुलाता है उसी प्रकार ( हवामहे ) बुलाते हैं॥ १ ॥

[ ७०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कर्मन् ) कर्म करते हुए ( ऊतये ) संरक्षणके लिए ( उपचक्राम ) तेरे पास हम आते हैं, ( यः ) जो ( धृषत् ) शत्रुओंका पराभव करनेवाला ( युवा उग्रः ) तरुण और शूरवीर है ऐसा तू ( नः ) हमारे पास आ, ( सखायः ) हम तेरे मित्र ( सानसिं अवितारं त्वा इत् ) सेवा करने योग्य और संरक्षण करनेवाले तुझे ही सहायताके लिए ( ववृमहे ) स्वीकार करते हैं, ( हि ) यह सभीको मालूम है ॥ २ ॥

[ ७१० ] हे ( गिर्वणः इन्द्र ) हे स्तुत्य इन्द्र ! ( अधा हि ) अब ( त्वा कामे ईमहे ) तेरी अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उदा ग्मन्तः उदभिः इव ) पानी लेजानेवाले मनुष्य जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम ( उप ससृग्महे ) तेरे पास आते हैं ॥ १ ॥

पानी लेजानेवाले जिस प्रकार एक दूसरेपर पानी फेंककर खेलते हैं, उसी प्रकार हम अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिए इन्द्रके पास जाते हैं, वह हमारी इच्छा पूर्ण करेगा, जो भी इच्छा हम इन्द्रसे करते हैं, उसे वह पूरा करता है।

[ ७११ ] ( अद्रिवः शूर ) हे वज्रधारी शूर इन्द्र ! जिस प्रकार ( वार्ण ) समुद्रको ( अव्याभिः वर्धन्ति ) नदियां बढाती है उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र गा-गाकर ( वावृध्वांसं चित् ) महान् बढे हुए ( त्वा दिवेदिवे ) तुझे प्रतिदिन बढाते हैं ॥ २ ॥

[ ७१२ ] ( इषिरस्य ) प्रगतिशील इन्द्रके ( ऊरुयुगे ) महान् जुआवाले-( उरौ रथे ) महान् रथमें ( इन्द्र-वाहा ) इन्द्रको ढोनेवाले, ( वचो-युजा ) शब्दोंसे जुड जानेवाले ( स्वः-विदः ) स्वयं ही जानेके स्थानको जाननेवाले ( हरी ) दोनों घोडे ( गाथया युंजन्ति ) स्तोत्रके बोलते ही जुड जाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥
॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

# प्रथम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, सोम, अग्नि, मित्र, वरुण इत्यादि देवोंके मंत्र हैं। इन देवताओंका गुणवर्णन इस अध्यायमें किया है। देवताओंके ये गुण उपासक अपने अन्दर धारण करें और बढावें इसलिए यह गुणवर्णन है। अतः यहां पहले हम उनके गुणोंका विचार करते हैं—

१ शुचि-व्रता [ ६६४ ]- शुद्ध और पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले, अपवित्र आचरण कभी न करनेवाले।

२ उरु-शंसा [ ६६४ ]- जिनकी प्रशंसा बहुत होती है, सब लोग जिनकी प्रशंसा गाते हैं।

३ नमो-वृधा [ ६६४ ]- अन्नसे बढनेवाले, अपने पास बहुतसा अन्न रखनेवाले, नम्रतासे बढनेवाले।

४ दक्षस्य महा राजथः [ ६६४ ]- अपने सामर्थ्यसे विराजमान् होते हैं। अपनी स्वयंकी महानतासे जो तेजस्वी होता है।

५ ऋता-वृधा [ ६६५ ]- यज्ञको बढानेवाले, सत्यमार्गसे बढनेवाले, सत्यको बढानेवाले।

६ ऋतस्य योनौ सीदतं [ ६६५ ]- यज्ञके स्थानपर बैठते हैं, सत्यकर्मको करनेके लिए तैय्यार रहते हैं।

७ कवि-च्छदा [ ६७१ ]- ज्ञानी जिसकी स्तुति करते हैं। दूरदर्शी लोग जिसका बखान करते हैं।

मित्र और वरुणके उपर्युक्त गुण हैं, अब इन्द्रके गुण देखिए—

१ वृषणः इन्द्रः [ ६९४ ]- बलवान् इन्द्र है।

२ सदा-वृधः [ ६८२ ]- हमेशा बढनेवाला, महान् होनेवाला।

३ चित्रः सखा [ ६८२ ]- अद्भुत और बडा मित्र, सहायक।

४ अप्सु-जित् [ ६९६ ]- अन्तरिक्षमें विजयी होनेवाला, पानीके प्रवाहोंको जीतकर अपने अधिकारमें रखनेवाला।

५ वज्रं संभरत् [ ६९६ ]- वज्र धारण करके लडता है।

६ सानसिं ग्राभं गृभ्णाति [ ६९६ ]- हाथोंमें पकडने योग्य धनुषको हाथमें धारण करके लडता है।

७ कया ऊती कया शचिष्ठया वृता, नः आभुवत् [ ६८२ ]- कौनसे संरक्षणके साधनोंके साथ और कौनसे सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारी सहायताके लिए हमारे पास आवे ?

८ यं सु-शिप्रं दुध्राः न वरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले जिस इन्द्रको कोई भी दुष्ट शत्रु हरा नहीं सकता।

९ स्थिराः यं न वरन्ते [ ६८८ ]- युद्धमें स्थिर रहनेवाले वीर भी जिसे हरा नहीं सकते।

१० मुरः न वरन्ते [ ६८८ ]- वध करनेमें कुशल शत्रु भी जिसका पराभव नहीं कर सकते। नाश करनेमें चतुर शत्रुके वीर भी जिसके आगे स्थिर नहीं रह सकते।

११ देव! रूः त्वं पृथु श्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि [ ६९२ ]- वह तू महान् यशस्वी प्रचण्ड सामर्थ्य हमें सरलतासे मिले ऐसा कर।

१२ वाजेषु अविता [ ७०४ ]- युद्धमें हमारा रक्षण करनेवाला।

१३ वृधः-भुवत् [ ७०५ ]- हमें बढानेवाला।

१४ तनूनां त्राता भुवत् [ ७०४ ]- हमारे शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे।

१५ ते मनः यत्र क्व च, तत्र, उत्तरं दक्षं दधसे, योनिं कृणवसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहां रहता है, वहां तू श्रेष्ठबल बढाता है, और अपना घर निर्माण करता है।

१६ दस्मं ऋतीषहं वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं नवामहे [ ६८५ ]- दर्शनीय शत्रुको हरानेवाले, सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

१७ सखीनां अविता [ ६८४ ]- मित्रोंका रक्षण करनेवाला।

१८ नः शतं ऊतये सु अभि भवासि [ ६८४ ]- हमारे सैकडों प्रकारसे रक्षण करनेके लिए तू उत्तम प्रकारसे तैय्यार रहता है।

१९ स-बाधः ऊतये [ ६८७ ]- बाधा करनेवाले शत्रुओंसे रक्षण करनेके लिए तैय्यार रह।

२० हे अपूर्व्य वज्रिन्! अवस्यवः भरन्तः वयं चित्रं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- हे अद्वितीय शस्त्रधारी इन्द्र! अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम विलक्षण शक्ति धारण करनेवाले तुझे अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं।

२१ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- हम कर्म करते हुए अपने संरक्षणके लिए तेरे पास आते हैं।

२२ यः धृषत् युवा उग्रः नः चक्राम [ ७०९ ]- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला तरुण उग्रवीर हमारे पास हमारे संरक्षणके लिए आवे।

२३ सानसिं अवितारं त्वा ववृमहे [ ७०९ ]- विजयी संरक्षक तुझे हम वरण करते हैं।

२४ गिर्वणः इन्द्र ! त्वा कामे ईमहे, उप ससृग्महे [ ७१० ]- हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

अब सोमके विशेषण देखिए—

१ देवः [ ६५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।
२ देवयुः [ ६५२ ]- देवोंके साथ रहनेवाला।
३ राजन् [ ६५३ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।
४ दाविद्युतत्या रुचा [ ६५४ ]- चमकनेवाले तेजसे युक्त।
५ शुक्रः सोमः [ ६५४ ] वीर्यवान् सोम, स्वच्छ।
६ वाजी [ ६५५ ]- बलवान्।
७ हितः [ ६५५ ]- हितकारक।
८ हेतृभिः हिन्वानः [ ६५५ ]- स्तोताओंके द्वारा प्रशंसित होनेवाला।
९ कविः [ ६५६ ]- ज्ञानी।
१० संजग्मानः [६५६]- तेजस्वी, मिलकर रहनेवाला।
११ दिवा [ ६५६ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।
१२ रक्षो-हा [ ६९० ]- राक्षसोंको मारनेवाला।
१३ विश्व-चर्षणिः [ ६९० ]- सब देखनेवाला।
१४ मंहिष्ठः [ ६९१ ]- महान्।
१५ वृत्रहन्तमः [ ६९१ ]- घेरनेवाले शत्रुको मारनेमें प्रवीण।
१६ वरिवो-धा-तमः [६९१]- अधिक धन देनेवाला।
१७ मधुमत्तमः [ ६९२ ]- अत्यन्त मीठा।
१८ क्रतुवित्तमः [ ६९२ ]- कर्मोंको उत्तम प्रकारसे करनेमें प्रवीण।
१९ महि द्युक्षतमः [ ६९२ ]- महान् तेजस्वी।
२० मदः [ ६९२ ]- आनन्द बढानेवाला।
२१ वृषभः [ ६९३ ]- बलवान्।
२२ तस्य पीत्वा वृषायते [ ६९३ ]- उसके पीनेसे बल बढता है।
२३ स्वः विद् [६९३]- ज्ञान बढानेवाला, जाननेवाला।
२४ सु-प्र-केतः [ ६९३ ]- उत्तम ज्ञानी।
२५ हरयः इन्दवः [ ६९४ ]- हरे रंगका सोम।
२६ चनोहितः [ ७०० ]- अन्नरूपसे हितकर।
२७ द्युतानः [ ७०२ ]- तेजस्वी।
२८ विचक्षणः [ ६७६ ]- विशेष ज्ञानी।
२९ वाजं अभि अर्ष [ ६७७ ]-बल बढा।
३० प्र-द्रव [ ६७७ ]- दौड, वेगसे जा।
३१ पुनानः [ ६७७ ]- साफ होनेवाला, साफ किया जानेवाला।
३२ स्वायुधः [ ६७८ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोंको पासमें रखनेवाला।
३३ अशस्ति-हा [६७८]-अप्रशस्तोंका नाश करनेवाला।
३४ वृजना [ ६७८ ]- उपद्रवकारी शत्रुओंको दूर करनेवाला।
३५ रक्षमाणः पिता [ ६७८ ]- पिताके समान रक्षा करनेवाला।
३६ सु-दक्षः [ ६७८ ]- उत्तम दक्ष।
३७ पृथिव्या धरुणः [ ६७८ ]- पृथिवीका धारण करनेवाला।
३८ विप्रः [ ६७९ ]- ज्ञानी।
३९ जनानां पुर एता [ ६७९ ]- लोगोंके आगे चलनेवाला, नेता।
४० धीरः [ ६७९ ]- धैर्यशाली वीर।
४१ सत्यः [ ६८३ ]- सत्य कार्य करनेवाला।
४२ कृत्व्यः [ ६९८ ]- कर्म करनेवालेका सहायक।
४३ दुरोषं सोमं [६९९]- दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम है।

अब अग्निके विशेषण देखिए—

१ ऊर्जः न-पातः [७०४]- बलको कम न करनेवाला।

इस अध्यायमें ये देवताओंके गुण वर्णित हैं। उन्हें उपासक अपने अन्दर धारण करें और बढावें तथा इन गुणोंसे युक्त होवें, इसलिए इन गुणोंका यहां वर्णन किया है।

इससे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। इन गुणोंमें कुछ गुण इन्द्रके, अग्निके, वरुणके और मित्रके हैं, और कुछ सोमके हैं,। चाहे देवता बडे हों या छोटे, उनके गुणोंकी ओर लक्ष्य रखना चाहिए, और देवत्व प्राप्त करना चाहिए। दूसरेकी ओर ध्यान न देना चाहिए, यह नियम यहां पालनीय है।

## धन प्राप्त करना

मनुष्यकी उन्नतिके सब कार्य धनसे होते हैं। धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। धनका उचित उपयोग करनेसे मनुष्य धन्य होता है। इस प्रकार यह धन मनुष्यको सुख प्राप्त करानेवाला है। इस धनके सम्बन्धमें इस अध्यायमें इस प्रकार कहा है—

१ द्यु-क्षं [६८६]– द्युलोकमें रहनेवाला, तेजस्वी, द्युलोकमें जो कुछ भी है, वह तेजस्वी है, उसी प्रकार धन तेजस्वी है।

२ सु-दानुं [ ६८६ ]– उत्तम दान देने योग्य।

३ तविषीभिः आवृतं [ ६८६ ]– अनेक सामर्थ्योंसे युक्त, जिसके कारण अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्रकट होते हैं।

४ पुरुभोजसं [ ६८६ ]– बहुतसा अन्न देनेवाले। *यदि धन पासमें हो तो बहुतसा अन्न प्राप्त हो सकता है।*

५ क्षु-मन्तं [ ६८६ ] बहुत अन्नसे युक्त।

६ शतिनं सहस्रिणं [ ६८६ ]- सैकडों और हजारों सामर्थ्योंसे युक्त।

७ गोमन्तं वाजं [६८७]– गायोंसे युक्त अन्न देनेवाला।

धनके ये गुण इन मंत्रोंमें कहे हैं, वे मननीय हैं—

८ मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि आ अर्यः सिषासन्तः वनामहे [ ६७४ ]– मनुष्योंके लिए उपयोगी सब धनोंको प्राप्त करके तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

९ रत्नधा देवः हिरण्ययः ऋतस्य योनिं आसीदसि [ ६७५ ]– रत्नोंको धारण करनेवाला यह सुवर्णमय देव यज्ञमें अपने स्थानपर बैठता है। यह देव रत्नोंको धारण करता है। यह अपने भक्तोंको धन देता है।

१० हे इन्द्र ! अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे [ ६८१ ]– हे इन्द्र ! घोडे, गाय और धन अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें यह सब दे।

११ दृढा चित् वसु आरुजे त्वा मत्सत् [ ६८३ ]– सुदृढ रहनेवाले शत्रुओंका धन विनष्ट करनेके लिए यह सोम तुझे प्रसन्न करता है।

१२ जरित्रे उक्थ्यं दाता [ ६८८ ]– स्तुति करनेवालोंको प्रशंसनीय धन देता है।

१३ मघोनां राधः पर्षि [ ६९१ ]– धनवान् शत्रुके पास रखे हुए धन हमें दे।

इस प्रकार धनके विषयमें इस अध्यायमें कहा है। शत्रुके धनको उसे हराकर हम अपने पास ले आवें ऐसी इच्छा यहां है। शत्रुको हरानेका बल अपनेमें हो यह इसका उद्देश्य है। धनके साथ-साथ बल, सामर्थ्य, शूरवीरता आदि गुण अपने अन्दर होने चाहिए यह भाव यहां है।

## देवोंके लिए सोम

सोमरसको तैय्यार करके पहले देवोंको अर्पण करना चाहिए फिर याजकोंको पीना चाहिए। वह दिखानेके लिए कहा है—

१ इन्द्राय मदः पवस्व [ ६९२ ]–

२ इन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः परिस्रव [ ६७३ ]– इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि देवोंके लिए सोमरस छानकर शुद्ध करो।

३ सः अस्मयुः, हव्यदातये दाशेम [ ७०४ ]– वह अग्नि हमारा हित करनेवाला है। उसे हव्य देनेके लिए हम हवनीय द्रव्य देते हैं।

४ पुरोजिती [ ६९७ ]– तुम ऐसा समझो कि जय तुम्हारे सामने है। अपनी पराजय कभी न हो इतना बल अपनेमें होना चाहिए, जरा भी भय न होना चाहिए। तभी विजय निश्चित है।

## सोमरसके पास कुत्ता न आवे

सोमरस जहां रखा जाता है, उस जगह कुत्ता न आवे, इतनी सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए कहा है—

१ सुताय मादयित्नवे दीर्घजिह्व्यं अप श्नथिष्टन [ ६९७ ]– यह सोमरस आनन्द देनेवाला होनेके कारण लम्बी जीभवाला कुत्ता पास न आवे। कुत्तेको बहुत दूर करना चाहिए। वह सोमरसके पास न पहुंचे, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

## स्तुतिसे लाभ

इन्द्रादि देवोंकी स्तुति यज्ञमें मुख्य होती है। देवोंकी स्तुति सुनें और देवोंके समान हों, यह स्तुतिका उपयोग है।

१ नः ब्रह्माणि उप श्रृणु [ ६६७ ]– हमारे स्तोत्रोंको पाससे सुन। “ ब्रह्म ” शब्दका अर्थ है, “ *ज्ञान* ” देनेवाले स्तोत्र। महान् होनेकी शिक्षा देनेवाले स्तोत्र मनुष्योंको महान् होनेकी शिक्षा देते हैं। देवोंके गुण सुनकर उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढानेसे मनुष्य महान् होता है। प्रशंसनीय होता है।

२ मघवन् ! त्वावान् अन्यः दिव्यः न, पार्थिवः न, न जातः न जनिष्यते [ ६८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान दूसरा कोई भी द्युलोकमें अथवा पृथ्वीपर न हुआ है, न होगा। ऐसे अद्वितीय हम स्वयं भी बनें, यह स्तुतिका आशय है।

३ यज्ञायज्ञा दक्षसे अग्नये गिरागिरा [ ७०३ ]- प्रत्येक यज्ञमें चतुर और बलवान् अग्निकी स्तुति करो। जो दक्ष और बलवान् होता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, इसलिए कर्तव्यमें चतुर और बलवान् बनें। ऐसा जो होगा, उसकी सब जगह प्रशंसा होगी।

देवताओंकी स्तुतिसे ऐसा लाभ होता है।

## यज्ञ

यज्ञ देवोंकी सन्तुष्टिके लिए है।

ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ ( गोपथ ब्रा. )

ऋतुओंके सन्धिकालमें हवा बिगडती है, इस कारण दोष दूर करनेके लिए यज्ञ किए जाते हैं। ये यज्ञ ओषधियोंसे होते हैं, अर्थात् जिन रोगोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती है, अथवा जो रोग शुरु हो गए हैं उन रोगोंको दूर करनेवाली औषधियोंके चूर्णसे हवन किए जाते हैं। इससे हवामें रहनेवाले रोगबीज नष्ट हो जाते हैं, और वायु शुद्ध होती है।

१ त्वा समिद्भिः घृतेन वर्धयामसि [ ६६१ ]- तुझे समिधाओं और गायके घीसे हम प्रदीप्त करते हैं। यज्ञमें गायका घी ही डालना चाहिए, और दूसरे घीसे काम नहीं चल सकता।

२ यविष्ठ्य ! बृहत् शोच [६६१]- हे तरुण अग्ने ! तू अधिक प्रकाशित हो, अधिक जल।

३ हव्यदातये आ याहि [ ६६० ]- हवनीय द्रव्योंको देवोंके पास पहुंचानेके लिए आ। अर्थात् तुझमें हम जो भी हवनीय द्रव्य डालें, उन्हें तू देवोंको प्रसन्न करनेके लिए उन्हें देवोंके पास पहुंचा।

४ नः गव्यूतिं घृतैः उक्षतम् [ ६६३ ]- हमारी गायें जहां रहती हैं, वहां गायके घीका सिंचन होकर वह स्थान पवित्र हो। गायके घृतके हवनसे सब स्थान पवित्र होता है, इतना विषको नष्ट करनेका सामर्थ्य गायके घीमें है।

## इन्द्रके घोडे

इन्द्रके घोडे प्रसिद्ध हैं। इन्द्र घोडोंकी नस्ल सुधारता है और उन्हें शिक्षित करता है। इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ तरोभिः इन्द्रं बृहत् गायत [ ६८७ ]- घोडोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको बृहत् नामका साम सुनाओ। "तरु" का अर्थ यहां शीघ्र दौडनेवाले घोडे ऐसा है। युद्धोंमें जिन घोडोंका प्रयोग होता है, वे घोडे इन्द्रके पास रहते हैं।

२ ब्रह्मयुजा केशिनौ हरी त्वा आ वहतां [ ६६७ ]- शब्दोंका संकेत होते ही रथमें जुडजानेवाले, सुन्दर अयालवाले दो घोडे इन्द्रको रथसे ले जाते हैं। घोडोंके अयाल उत्तम होते हैं, इसलिए उन्हे यहां " केशिनौ " कहा गया है।

३ इषिरस्य उरुयुगे उरौ रथे इन्द्रवाहा वचोयुजा स्वर्विदः हरी गाथया युंजन्ति [ ७१२ ]- प्रगतिशील, इन्द्रके महान् जुएवाले रथमें शब्दोंके संकेतसे ही जुड जानेवाले इन्द्रके दोनों घोडे स्वयं ही अपने स्थानपर जानेवाले, स्तोत्रके कहते ही जुड जाते हैं।

इस प्रकार इन्द्रके घोडे हैं। उनको केवल इशारेकी ही जरूरत है, शेष सारा काम वे स्वयं ही कर देते हैं। इतने वे होशियार हैं। यहां यह बताया है कि घोडोंको इस प्रकार शिक्षित करना चाहिए।

## सोम

सोमरसका यज्ञमें बहुत महत्त्व है। यह ऊंचे पर्वतसे लाया जाता है। देखिए—

१ नभः आगतं वरेण्यं सुतं [ ६६९ ]- आकाशसे लाया गया यह महान् सोम है, उसका रस निकाला है। हिमालयके ऊंचे शिखरसे यह सोम लाया गया है।

२ ते अन्धसः दिवि उच्चा जातं [ ६७२ ]- तुझ अन्नरूप सोमकी उत्पत्ति ऊंचे द्युलोकमें हुई है। यहां द्युलोकका अर्थ है हिमालयका ऊंचा शिखर।

३ मधु प्रियं दिव्यं ऊधः दुहानः [६७६]- मीठे प्रिय ऐसे द्युलोकरूपी दुग्धाशयसे यह दुहकर निकाला गया है।

४ दिवः विष्टम्भः देवः [ ६७८ ]- द्युलोकको आधार देनेवाला यह दिव्य सोम है।

इस प्रकार सोमका स्थान ऊंचे हिमालयका शिखर है। वहांसे यह लाया जाता है, और उसका रस निकालकर उससे यज्ञ किया जाता है।

५ उग्रं सत् शर्म महि श्रवः भूमि आददे [ ६७२ ] –उग्रता और वीरता बढानेवाले सुखदायी सोमरसरूपी महान् अन्न भूमिपर आगये हैं। सोम स्वर्गसे पृथ्वीपर लाया

जाता है। सोमरस यश-प्राप्तिके उत्कृष्ट साधन हैं। सोमयज्ञ करनेवालेको महान् यश प्राप्त होता है।

## सोमरसको पानीमें मिलाना

१ सोमः पुनानः, आपः वसानः धारया अर्षति ]६७५]- सोमरसको छाननेसे पहले पानीमें मिलाया जाता है, फिर वह छाननीसे नीचेके बर्तनमें छाना जाता है। वह नीचेके बर्तनमें धार बांधकर पडता है, तब उसका शब्द होता है।

२ धीतयः अवावशन्त [ ६५८ ]- हाथकी अंगुलियां सोमको बारबार दबाकर रस निकालनेकी इच्छा करती हैं। अच्छी तरह दबाये विना उससे सारा रस बाहर नहीं निकलता।

३ बर्हिः अच्छ रशनाभिः नयन्ति [ ६७७ ]- यज्ञस्थानके पास अंगुलियोंसे पकडकर ऋत्विज लोक सोमको लेजाते हैं।

## छलनी

१ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं अच्छ असृग्रं [ ६५८ ]- भेडके बालोंकी बनी छलनीसे मीठा रस भरनेके बर्तनमें में छानता हूं।

भेडके बालोंकी बनी छलनीसे वह रस छाना जाता है।

## सोमरस छानना

१ दिवा पवस्व [ ६५६ ]- दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर छनता जा, चमकता हुआ छनता जा।

२ हे सोम ! इन्द्राय पातवे सुतः स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व [ ६८९ ]- हे सोम ! इन्द्रके लिए स्वादिष्ट और आनन्दकारक धारासे छनता जा।

३ अयोहते द्रोणे सधस्थं योनिं अभि आसदत् [६९०]- सोनेके पात्रमें पास ही यज्ञशालामें सोमरस बैठा है।

४ चनोहितः प्रियाणि नामानि अभिपवते, येषु यह्वः अधि वर्धते [ ७०० ]- अन्नरूप हितकारक सोम सबको तृप्त करनेवाले पानीमें मिलकर छनता जाता है, इस कारण वह महान् सोम बढता जाता है।

५ ऋतस्य जिह्वा वक्ता मधु पवते, अस्य धियः पतिः अदाभ्यः [ ७०१ ]- मानों यह यज्ञकी जिव्हा ही है, ऐसा शब्द करता हुआ मीठा, यज्ञका पालन करनेवाला और न दबनेवाला यह सोमरस छनता जाता है।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है, उस समय इसका शब्द होता है, वह चमकता है। इस सब वर्णनको आलंकारिक भाषामें वेदमें कहा है।



## सोम छाननेके समय साम-गान

जब सोमरस यज्ञमें छाना जाता है, उस समय उद्गाता सामका गायन करते हैं। एक तरफ सामगान चलता है, दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता है।

१ हे नरः ! पवमानाय इन्दवे उप गायत [६५१]- हे याजको ! सोमरस छानते हुए तुम उसके पास बैठकर सामगान करो।

२ ऋतस्य दोहना अभि अनूषत, त्रिपृष्ठः उषसः अधि विराजसि [७०२]- यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति गाते हैं। तीनों सवनोंमें उषःकालके बाद हे सोम ! तू अधिक चमकता है।

## सोमरसमें दूध मिलाना

१ देवयु देवाय मधुना पयः अभि अशिश्रयुः [ ६५२ ]- देवको देनेके लिए तैय्यार किया गया सोमरस मीठे गायके दूधके साथ मिलाया जाता है।

२ रुचाः शुक्राः सोमाः गवाशिरः [६५४]- तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाया जाता है।

३ विप्रः पुर एता जनानां ऋभुः धीरः ऋषिः गोनां अपीच्यं गुह्यं नाम काव्येन विवेद [ ६७९ ]- ज्ञानी, अग्रणी, मनुष्योंका नेता, धैर्यशाली ऋषि गायोंमें जो गुप्तरूपसे दूध है, उसे अपने ज्ञानसे जानता है।

इस प्रकार गायके दूधमें छाना हुआ सोमरस मिलाया जाता है, और बादमें उसे देवोंको अर्पण किया जाता है, उसके बाद उसे दूसरे लोग पीते हैं।

इस प्रकार इस प्रथम अध्यायमें वर्णन है। उसे पाठकगण ध्यानपूर्वक पढें, और बोध प्राप्त करें।

## सुभाषित

१ हे राजन् ! नः गवे, अर्वते, जनाय ओषधिभ्यः शम् [ ६५३ ]- हे राजन् ! गाय, घोडे, मनुष्य, और औषधियें हमारे लिए कल्याणकारी होवें।

२ हितः वाजं अक्रमीत्, यथा वनुषः सीदन्तः [ ६५५ ]- हित करनेवाले वीर युद्धभूमिपर जावें, जिस प्रकार योद्धा युद्धमें जाते हैं।

३ स्वस्तये दृशे दिवा पवस्व [ ६५६ ]- सबका कल्याण हो, इस दृष्टिसे तेजसे युक्त होनेके लिए शुद्ध हो।

४ श्रवस्यवः सर्गाः असृक्षत [ ६५७ ]- यशस्वी कार्य उत्पन्न करें।

५ धीतयः अवावशन्त [६५८]- अंगुलियां कार्य करनेकी इच्छा करती हैं।

६ ऋतस्य योनिं आ अग्मन् [ ६५९ ]- सत्यके मूल केन्द्रमें जा। सत्यके अथवा यज्ञके केन्द्रमें जा।

७ हव्यदातये आयाहि [ ६६० ]- अन्नदान करनेके लिए आ।

८ वर्हिषि नि सत्सि [ ६६० ]- अपने आसनपर बैठ।

९ हे यविष्ठ्य ! बृहत् शोच [ ६६१ ]- हे तरुण ! तू विशेष तेजसे युक्त हो। विशेष तेजस्वी हो।

१० हे देव ! पृथुश्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि [ ६६२ ]- हे देव! बहुत यशवाले महान् सामर्थ्य हमें प्राप्त हों ऐसा कर।

११ शुचिव्रता उरुशंसा नमोवृधा दक्षस्य मह्ना राजथः [ ६६४ ]- शुद्ध निर्दोष व्रतका आचरण करके, बहुत प्रशंसित होकर अन्नकी समृद्धि करके सामर्थ्यकी महानतासे विराजमान् हो।

१२ ऋतावृधा ऋतस्य योनौ सीदतं [६६५]- सत्य, यज्ञ कर्मका संवर्धन करके यज्ञके स्थानपर बैठ।

१३ नः ब्रह्माणि उपश्रृणु [ ६६७ ]- हमारे ज्ञान बढानेवाले स्तोत्रोंको पास आकर सुन।

१४ ब्रह्माणः त्वा युजा हवामहे [६६८]- हम ज्ञानी तुझे मित्रताके नाते सहायताके लिए बुलाते हैं।

१५ यज्ञः चेतनः जिगाति [ ६७० ]- यज्ञ चेतना उत्पन्न करके तुम्हें प्रेरणा देता है।

१६ यज्ञस्य जूत्या कविच्छदा वृणे [६७१]- यज्ञकी प्रेरणासे प्रेरित होकर ज्ञानके छन्द धारण करनेवालोंको मैं स्वीकार करता हूँ।

१७ उग्रं सत् महि श्रवः शर्म [ ६७२ ]- तेरे उग्रता और वीरताको बढानेवाले महान् यश कल्याण करनेवाले हैं।

१८ मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि आ अर्यः सिषासन्तः वनामहे [ ६७४ ]- मनुष्योंको इष्ट सब तेजस्वी धनोंको प्राप्त करके हम तेरी सेवा करनेकी इच्छावाले तेरी सेवा करते हैं।

१९ रत्नधा हिरण्ययः देवः ऋतस्य योनिं आसीदसि [ ६७५ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला, सोनेके समान तेजस्वी देव यज्ञके स्थानपर बैठता है, यज्ञ करता है।

२० वाजी विचक्षणः नृभिः धौतः आपृच्छयं धरुणं अर्षसि [ ६७६ ]- बलवान्, ज्ञानी, वीर नेताओं द्वारा निर्दोष किया गया, प्रशंसनीय कर्मोंको करता है।

२१ स्वायुधः अ-शस्ति-हा वृजना रक्षमाणः देवानां पिता जनिता सु-दक्षः देवः पवते [ ६७८ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला, उपद्रवोंको दूर करनेवाला; संरक्षण करनेवाला, उत्तम व्यवहार करनेवालोंका पालक, चतुर ही शुद्ध होता है।

२२ विप्रः पुरः एता, जनानां ऋभुः धीरः ऋषिः काव्येन विवेद [ ६७९ ]- ज्ञानी, नेता, आगे चलनेवाला, धैर्यशाली, द्रष्टा अपने ज्ञानसे सब जानता है।

२३ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः [ ६८० ]- इस सब स्थावर जंगमके स्वामी और आत्मदर्शीको हम प्रणाम करते हैं।

२४ हे इन्द्र ! त्वावान् अन्यः दिव्यः पार्थिवः न जातः न जनिष्यते [६८१]- हे इन्द्र ! तेरे समान द्युलोक और पृथ्वीपर कोई भी दूसरा न हुआ न होगा। तेरे समान तू ही है।

२५ सदावृधः चित्रः सखा कया ऊत्या कया शचिष्ठया वृता नः आ भुवत् [ ६८२ ]- हमेशा बढनेवाला उत्तम मित्र भला कौनसी संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारी सहायताके लिए हमारे पास आएगा ?

२६ मंहिष्ठः सत्यः मदानां कः [ ६८३ ]- महान्, सत्यका आचरण करनेवाला आनन्द देनेवाला है।

२७ नः शतं ऊतये सु अभि भवासि [ ६८४ ]- हमारा सैंकडों प्रकारसे संरक्षण करनेके लिए तू उत्तम सहायता करनेवाला है।

२८ दस्मं ऋतीषहं अन्धसः मन्दानं इन्द्रं गीर्भिः नवामहे [ ६८५ ]- सुन्दर, शत्रुओंका पराभव करनेवाले, अन्नसे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी वाणीसे हम स्तुति करते हैं।

२९ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिः आवृतं पुरुभोजसं क्षुमन्तं शतिनं सहस्रिणं गोमन्तं वाजं मक्षू ईमहे ( ६८६ )- तेजस्वी उत्तम दान करनेवाले, अनेक सामर्थ्योंसे युक्त, बहुत भोजन देनेवाले अन्नोंसे युक्त, सैंकडों और हजारों प्रकारके गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नकी प्राप्ति शीघ्र हो, ऐसी इच्छा हम करते हैं।

३० सबाधः ऊतये इन्द्रं बृहत् गायत [ ६८७ ]- उपद्रव करनेवाले शत्रुओंसे संरक्षण करनेवाले इन्द्रके लिये बृहत् नामके सामका गान करो।

३१ भरं न कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरण पोषण करनेवालेके समान कार्य करनेवालेको मैं बुलाता हूँ।

३२ सु-शिप्रं दुधाः स्थिराः मुरः न वरन्ते [६८८]- उत्तम साफा बांधनेवाले इन्द्रका प्रतीकार दुष्ट, स्थिर, और मूर्ख शत्रु नहीं कर सकते।

३३ जरित्रे उक्थ्यं दाता [६८८]- स्तुति करनेवालेको वह प्रशंसनीय धन देता है।

३४ रक्षोहा विश्व-चर्षणिः [ ६९० ]- राक्षसोंका वध करनेवाला सब मनुष्योंका हित करता है।

३५ वरिवोधातमः वृत्रहन्तमः मघोनां राधः पर्षि [ ६९१ ]- अधिक धन देनेवाला, शत्रुओंको मारनेवाला तू शत्रुओंके धन छीनकर हमें दे।

३६ मधुमत्तमः क्रतु-वित्तमः महि द्युक्षतमः [६९२] -अत्यन्त मीठा, यज्ञकी विधि उत्तम रीतिसे जाननेवाला महान् तेजस्वी है।

३७ स्वः-विदः सु-प्रकेतः इषः अभ्यक्रमीत् [६९३] -आत्मज्ञानी विशेष विद्वान् शत्रुके अन्नपर अपना अधिकार स्थापित करता है।

३८ जैत्रस्य चेतति [ ६९५ ]- विजय प्राप्त करनेका उत्साह देता है।

३९ इन्द्रः ग्राभं वृषणं वज्रं च गृभ्णाति [६९६]- वह वीर इन्द्र धनुष और बलयुक्त वज्रको धारण करता है।

४० पुरोजिती [ ६९७ ]- अपने सामने विजय है, ऐसा समझ।

४१ नरः दुरोषसं तं विश्वाच्या धिया अद्रयः सन्तु [ ६९९ ]- नेतागण, दुष्टोंका नाश करनेवाले उस वीरका सबका संरक्षण करनेवालेकी बुद्धिसे आदर करें।

४२ विष्वंचं अधिरथं विचक्षणः आरुहत् [७००] -चारों ओर जानेवाले रथपर विशेष ज्ञानी बैठा है।

४३ अस्य धियः पतिः अदाभ्यः [ ७०१ ]- इस कर्मका पालन करनेवाला दबाया नहीं जा सकता।

४४ यज्ञायज्ञा दक्षसे गिरा अमृतं प्रशंसिषम् [७०३]- प्रत्येक यज्ञमें बल प्राप्तिके लिए अपनी वाणीसे अमर देवकी स्तुति करो।

४५ ऊर्जो न-पातं [७०४]- बलको कम न करनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

४६ वाजेषु अविता [ ७०४ ]- युद्धोंमें वह हमारा रक्षण करनेवाला है।

*

४७ वृधः भुवत् [ ७०४ ]- वह हमारी शक्ति बढानेवाला है।

४८ तनूनां त्राता भुवत् [ ७०४ ]- वह हमारे शरीरोंकी रक्षा करनेवाला है।

४९ ते मनः यत्र क्व च तत्र उत्तरं दक्षं दधसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहां कहीं भी हो, उत्तम बलको धारण करता है।

५० योनिं कृणवसे [ ७०६ ]- तू अपना घर तैय्यार करता है

५१ ते पूर्तं अक्षिपत् न हि भुवत् [ ७०७ ]- तेरा तेज आखोंको हानि पहुंचानेवाला नहीं है।

५२ हे अपूर्व्य वज्रिन् ! भरन्तः वयं अवस्यवः चित्रं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- हे अद्वितीय वज्रधारी इन्द्र ! हम तुझे हवनीय पदार्थ देते हैं, अपने संरक्षणके लिए विलक्षण शक्तिवाले तुझे सहायताके लिए बुलाते हैं।

५३ अवितारं त्वा ववृमहे [ ७०९ ]- रक्षण करनेवाले तुझे हम बुलाते हैं।

५४ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- कर्म करते हुए संरक्षणके लिए हम तेरे पास आते हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें सुभाषित हैं। पाठकोंको सरलतासे समझमें आजाए इसलिए इनका अर्थ थोडा विस्तारसे किया हैं।

## उपमा

इस प्रथम अध्यायमें आगे दी हुई उपमायें आई हैं—

१ हितः वाजी वाजं अक्रमीत् यथा वनुषः सीदन्तः [ ६५५ ]-हित करनेवाला सोम यज्ञमें उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार योद्धा वीर युद्धभूमिमें जाते हैं।

२ अर्वन्तः न [ ६५७ ]- घोडे जैसे घुडसालके बाहर जाते हैं, उसी प्रकार " पवमानस्य ते सर्गाः असृक्षत " शुद्ध होनेवाले सोमकी धारा नीचेके वर्तनमें पडती है।

३ धेनवः अस्तं न [ ६५९ ]- गायें जिस प्रकार अपने वाडेमें जाती हैं, उसी प्रकार " इन्दवः समुद्रं कलशं न अच्छ आ अग्मन् " सोमरस पानीके वर्तनमें सीधे जाते हैं।

४ वाजिनं अश्वं न, त्वा मर्जयन्तः [ ६७७ ]- बलवान् घोडेको जिस प्रकार धोते हैं, उसी प्रकार सोमरसको साफ करते हैं।

५ अदुग्धाः धेनवः इव, जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दृशं त्वा अभिनोनुमः [ ६८० ]- बिना दुही हुई गायें

जिस प्रकार अपने बछडेके पास जाती है, उसी प्रकार स्थावर जंगमके ईश्वर तेरे पास नम्र होकर हम आते हैं।

६ स्वसरेषु वत्सं धेनवः इव, दस्मं इन्द्रं गीर्भिः नवामहे [ ६८५ ]- गौशालामें गायें जिस प्रकार अपने बछडेके पास जाती है, उसी प्रकार दर्शनीय इन्द्रके पास अपनी वाणीसे स्तुति करते हुए हम जाते हैं।

७ भरं न, कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरणपोषण करनेवालेको जिस प्रकार आदरसे बुलाते हैं, उसी प्रकार कर्मशील पुरुषको हम बुलाते हैं।

८ एतशः वाजं अभि न, सु प्रकेतः इषः अभ्यक्रमीत् [ ६९३ ]- घोडा जिस प्रकार युद्धमें विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम ज्ञानी इन्द्र सोमरसरूपी अन्नको प्राप्त करता है और उसपर विजय प्राप्त करता है, और उसे पी लेता है।

९ अश्वः न, इन्दुः धारया परि प्रस्यन्दते [ ६९८ ] – घोडेके समान सोम धार बांधकर छाना जाता है, बर्तनमें जाता है।

१० प्रियं मित्रं न, अमृतं जातवेदसं प्रशंसिषम् [ ७०३ ]- प्रिय मित्रके समान अमर अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

११ स्थूरं न, चित्रं त्वा हवामहे [ ७०८ ]- जैसे कोई महान् मनुष्यको बुलाता है, उसी प्रकार विलक्षण, श्रेष्ठ तुझे हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

१२ उदा इव गमन्तः उद्भिः त्वा उप सस्मृग्महे [ ७१० ]- पानी लेकर जानेवाले जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तेरे साथ खेलते हैं।

१३ हे अद्रिवः शूर ! वार्णः यत्याभिः वर्धन्ति, वावृध्वांसं त्वा चित् दिवेदिवे [ ७११ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस प्रकार समुद्रको नदियां बढाती हैं, उसी प्रकार बढनेवाले तुझको हम रोज स्तुतिसे बढाते हैं।

इस प्रकार ये उपमायें इस अध्यायमें आई हैं।

---

# प्रथमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ६५१ | ९।११।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ६५२ | ९।११।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ६५३ | ९।११।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ६५४ | ९।६४।२८ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ६५५ | ९।६४।२९ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ६५६ | ९।६४।३० | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ६५७ | ९।६६।१० | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| ६५८ | ९।६६।११ | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| ६५९ | ९।६६।१२ | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| ६६० | ६।१६।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः | ,, |
| ६६१ | ६।१६।११ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ६६२ | ६।१६।१२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ६६३ | ३।६२।१६ | विश्वामित्रो गाथिनः | मित्रावरुणौ | ,, |
| ६६४ | ३।६२।१७ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ६६५ | ३।६२।१८ | विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ६६६ | ८।१७।१ | इरिम्बिठिः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| ६६७ | ८।१७।२ | इरिम्बिठिः काण्वः | ,, | ,, |
| ६६८ | ८।१७।३ | इरिम्बिठिः काण्वः | ,, | ,, |
| ६६९ | ३।१२।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | इन्द्राग्नी | ,, |
| ६७० | ३।१२।२ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ६७१ | ३।१२।३ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| ६७२ | ९।६१।१० | अमहीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | ,, |
| ६७३ | ९।६१।११ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ६७४ | ९।६१।१२ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ६७५ | ९।१०७।४ | सप्तर्षयः | | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ६७६ | ९।१०७।५ | सप्तर्षयः | ,, | ,, |
| ६७७ | ९।८७।१ | उशना काव्यः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ६७८ | ९।८७।२ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| ६७९ | ९।८७।३ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ६८० | ७।३२।२२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ६८१ | ७।३२।२३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ६८२ | ४।३१।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | गायत्री |
| ६८३ | ४।३१।२ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| ६८४ | ४।३१।३ | वामदेवो गौतमः | ,, | पादनिचृत् |
| ६८५ | ८।८८।१ | नौधा गौतमः | ,, | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ६८६ | ८।८८।२ | नौधा गौतमः | ,, | ,, |
| ६८७ | ८।६६।१ | कलिः प्रागाथः | ,, | ,, |
| ६८८ | ८।६६।२ | कलिः प्रागाथः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| ६८९ | ९।१।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ६९० | ९।१।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ६९१ | ९।१।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ६९२ | ९।१०८।१ | गौरवीति शाक्त्यः | ,, | काकुभः प्रागाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ६९३ | ९।१०८।२ | गौरवीति शाक्त्यः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ६९४ | ९।१०६।१ | अग्निश्चाक्षुषः | पवमानः सोमः | उष्णिक् |
| ६९५ | ९।१०६।२ | अग्निश्चाक्षुषः | " | " |
| ६९६ | ९।१०६।३ | अग्निश्चाक्षुषः | " | " |
| ६९७ | ९।१०१।१ | अन्धीगुः श्यावाश्विः | " | अनुष्टुप् |
| ६९८ | ९।१०१।२ | अन्धीगुः श्यावाश्विः | " | गायत्री |
| ६९९ | ९।१०१।३ | अन्धीगुः श्यावाश्विः | " | " |
| ७०० | ९।७५।१ | कविर्भार्गवः | " | जगती |
| ७०१ | ९।७५।२ | कविर्भार्गवः | " | " |
| ७०२ | ९।७५।३ | कविर्भार्गवः | " | " |

( ६ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ७०३ | ६।४८।१ | शंयुर्बार्हस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | अग्निः | प्रगाथः ( विषमा बृहती समा सतो बृहती ) |
| ७०४ | ६।४८।२ | शंयुर्बार्हस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | " | " |
| ७०५ | ६।१६।१६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | गायत्री |
| ७०६ | ६।१६।१७ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ७०७ | ६।१६।१८ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ७०८ | ८।२१।१ | सोभरिः काण्वः | इन्द्रः | काकुभः प्रगाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ७०९ | ८।२१।२ | सोभरिः काण्वः | " | " |
| ७१० | ८।९८।७ | नृमेध आंगिरसः | " | ककुप् |
| ७११ | ८।९८।८ | नृमेध आंगिरसः | " | उष्णिक् |
| ७१२ | ८।९८।९ | नृमेध आंगिरसः | " | पुरउष्णिक् |



# अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; २, ८, १३-१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेधश्चांगिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ कुसीदी काण्वः; ७ त्रिशोकः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ११ शुनःशेप आजीगर्तिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अवत्सारः काश्यपः; १७ ( १ ) शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; १७ ( २-३ ) मेध्यातिथिः काण्वः; १८ ( १, ३ ) असितः काश्यपो देवलो वा; १८ ( २ ) अमहीयुरांगिरसः; १९ त्रित आप्त्यः; २० सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); २१ शावाश्व आत्रेयः; २२ ( १-२ ) अग्निश्चाक्षुषः; २२ ( ३ ) प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ १-१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषाः; १५ अश्विनौ; १६-२२ पवमानः सोमः ॥ १ ( २-३ )-११; १६-१९, २१; गायत्री, १२, २२ ( १-२ ) उष्णिक्; १३-१५, २० प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १ ( १ ), २२ ( ३ ) अनुष्टुप् ।

७१३ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहꣳ शतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।१ )

७१४ पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ꣳ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।२ )

७१५ इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाꣳ अभिज्ञ्वा यमत ॥ ३ ॥ १ ( वा ) ॥ ( ऋ. ८।९२।३ )

७१६ प्र व इन्द्राय मादनꣳ हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपान्ने ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३१।१ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ७१३ ] ( वः अन्धसः आपान्तं ) तुम्हारे द्वारा दिए गए सोमरूप अन्नका पान करनेवाले, ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले ( शत-क्रतुं ) सैकडों प्रकारके कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां-मंहिष्ठं ) मनुष्योंमें बहुत महान् ( इन्द्रं अभि प्रगायत ) इन्द्रकी स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ७१४ ] ( पुरु-हूतं ) बहुत लोग सहायताके लिए जिसे बुलाते हैं, ( पुरुष्टुतं ) बहुत लोग जिसकी स्तुति करते हैं, ( गाथान्यं ) जो स्तुति करनेके योग्य है, ( सन-श्रुतं ) सनातन कालसे जो प्रसिद्ध है, ( इन्द्रं इति ब्रवीतन ) उस इन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ७१५ ] ( नृतुः ) सबको चलानेवाला ( महोनां वाजानां दाता ) महान् धन और अन्नको देनेवाला ( महान् इन्द्रः इत् अभि-ज्ञुः ) महान् इन्द्र ही हमारे सामने आकर ( नः ) हमें ( आ यमत् ) धन आदि देवे ॥ ३ ॥

१ नृतुः— सबको नचानेवाला, सबको चलानेवाला ।

२ अभिः-ज्ञुः— सामनेसे देखनेवाला ।

[ ७१६ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( हर्यश्वाय ) घोडोंको पास रखनेवाले ( सोम-पान्ने ) सोम पीनेवाले इन्द्रको ( मादनं प्रगायत ) आनन्द देनेवाले स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥

१ हर्यश्वः ( हरि-अश्वः ) लाल घोडे जिसके पास रहते हैं ।

७१७ शꣳसेदुक्थꣳ सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चक्रमा सत्यराधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३१।२ )

७१८ त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वꣳहिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥ २ ( गौ ) ॥
( ऋ. ७।३१।३ )

७१९ वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥ ( ऋ. ८।२।१६ )

७२० न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।१७ )

७२१ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥ ३ ( पा ) ॥
( ऋ. ८।२।१८ )

७२२ इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।१९ )

७२३ यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त सꣳसदः । इन्द्रꣳ सुते हवामहे ॥ २ ॥
( ऋ. ८।९२।२० )

---

[ ७१७ ] ( उत ) और हे मित्रो ! ( सु-दानवे ) उत्तम दान देनेवाले, ( सत्य-राधसे ) सत्यतासे अपने पास धन रखनेवाले इन्द्रके लिए ( उक्थं ) स्तोत्रोंका गान करो, ( नरः ) स्तुति करनेवाले दूसरे लोग जिस प्रकार स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति तुम ( द्युक्षं शंस ) तेजस्वी रीतिसे करो, ( इत् चक्रम ) और हम भी उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ ७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं नः वाज-युः ) तू हमें अन्न देनेवाला हो, हे ( शत-क्रतो ) अनेक प्रकारसे पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं गव्युः ) तू गाय देनेवाला हो, हे ( वसो ) सबको वसानेवाले इन्द्र ! ( त्वं हिरण्ययुः ) तू सोना देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ७१९ ] हे इन्द्र ! ( त्वायन्तः ) तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सखायः ) हम मित्र ( तदिदर्थाः ) उसी प्रयोजनके लिए ( त्वा ) तेरी स्तुति करते हैं, ( उ ) और ( कण्वाः ) कण्वगोत्रमें उत्पन्न होनेवाले लोग भी ( उक्थेभिः जरन्ते ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ७२० ] हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( अपसः ) यज्ञ कर्मोंमेंसे ( तव नविष्टौ ) तेरे नये यज्ञमें ( अन्यत् घेम् ) मैं तेरे स्तोत्रके सिवाय दूसरेके स्तोत्र ( न आ-पपन ) कहूँगा ही नहीं । ( तव इत् उ ) तेरी ही ( स्तोत्रैः चिकेत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूं ॥ २ ॥

[ ७२१ ] ( देवाः ) देवगण ( सुन्वन्तं इच्छन्ति ) सोमयज्ञ करनेवालेसे प्रेम करते हैं, ( स्वप्नाय न स्पृहयन्ति ) आलसीसे प्रेम नहीं करते, ( अतन्द्राः ) परिश्रमी देव ( प्रमादं यन्ति ) परम आनन्द देनेवाले सोमको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[ ७२२ ] ( मद्वने इन्द्राय ) आनन्ददायक सोमरसकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए ( सुतं ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ( नः गिरः परिष्टोभन्तु ) हमारी वाणी उसकी स्तुति करती है, ( कारवः ) स्तोतागण ( अर्कं अर्चन्तु ) स्तुतिके योग्य सोमकी स्तुति करें ॥ १ ॥

[ ७२३ ] ( यस्मिन् ) जिस इन्द्रमें ( विश्वाः श्रियः अधि ) सारी शोभायें रहती है, और ( सप्त संसदः रणन्ति ) जिसकी स्तुति यज्ञके सात ऋत्विज करते हैं, उस ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( सुते हवामहे ) सोमयज्ञमें हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

७२४ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ४ ( ला ) ॥
( ऋ ८।९२।२१ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७२५ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१७।११ )

७२६ शाचिगो शाचिपूजनायꣳरणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१७।१२ )

७२७ यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिं दध्र आ मनः ॥ ३ ॥ ५ ( दि ) ॥
( ऋ. ८।१७।१३ )

७२८ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳ सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥ ( ऋ ८।८१।१ )

७२९ विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८१।२ )

७३० न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ६ ( के ) ॥
( ऋ. ८।८१।३ )

---

[ ७२४ ] ( देवाः ) सब देव ( त्रि-कद्रुकेषु ) यज्ञके तीन दिनमें ( चेतनं ) उत्साह बढानेवाले यज्ञका ( अत्नत ) विस्तार करते हैं। ( तं इत् ) उसीको ( नः गिरः वर्धन्तु ) हमारी वाणी प्रशंसा करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७२५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( अयं सोमः ) यह सोम ( बर्हिषि अधि ) वेदीपर ( निपूतः ) छाना जाता है, ( ईं अस्य एहि ) इसके पास आ ( द्रव ) शीघ्र आ, और ( पिब ) उसे पी ॥ १ ॥

[ ७२६ ] ( शाचि-गो ) सामर्थ्यवान् किरणोंसे युक्त और ( शाचि-पूजन ) शक्तिशाली होनेके कारण पूजे जानेवाले, ( आ-खण्डल ) शत्रुओंको तोडनेवाले हे इन्द्र ! ( ते रणाय ) तुझे सुख हो इसलिए ( अयं सुतः ) यह रस तैय्यार किया है, इसलिए ( प्र हूयसे ) तुझे बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७२७ ] ( शृंगः-वृषः-न-पात् ) किरणोंके विस्तारको संकुचित न करनेवाले इन्द्र ! ( ते प्रणपात् ) तेरा सहायक ( यः कुण्डपाय्यः ) कुण्डपाय्य नामका जो सोम-पानका यज्ञ है, ( अस्मिन् मनः आ नि दध्रे ) उसमें अपना मन लगा ॥ ३ ॥

१ शृंगः-वृषः-न-पात् — किरणोंके प्रसारको कम न करनेवाला। प्रकाशको जो फैलाता है।

२ कुण्ड-पाय्यः— जिसमें बडे बर्तनसे सोम पिया जाता है ऐसा यज्ञ।

[ ७२८ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बडे हाथोंवाला तू ( नः ) हमारे लिए ( क्षु-मन्तं चित्रं ग्राभं ) तेजस्वी, विलक्षण और स्वीकार करनेके योग्य धन ( दक्षिणेन सं गृभाय ) दायें हाथसे धारण कर, धन देनेके लिए हाथोंमें धन धारण कर ॥ १ ॥

[ ७२९ ] हे इन्द्र ! ( तुविकूर्मिं ) अनेक पराक्रम करनेवाले ( तुवि-देष्णं ) देने योग्य बहुतसे धनको अपने पासमें रखनेवाले ( तुवि-मघं ) महान् धनवान् ( तुवि-मात्रं ) महान् आकारवाले ( अवोभिः ) संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त ( त्वा ) तुझे ( विद्म हि ) हम जानते हैं ॥ २ ॥

[ ७३० ] हे ( शूर ) वीर इन्द्र ! ( दित्सन्तं त्वा ) देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( देवाः ) देव और ( मर्तासः ) मनुष्य भी ( न वारयन्ते ) किसी प्रकार हटा नहीं सकते, जिस प्रकार ( हि भीमं गां न ) भयंकर बैलको कोई हटा नहीं सकता ॥ ३ ॥

७३१ अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳसृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥ ( ऋ. ८।४५।२२ )

७३२ मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४५।२३ )

७३३ इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥ ७ (या) ॥ ( ऋ ८।४५।२४ )

७३४ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥ ( ऋ ८।२।१ )

७३५ नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।२ )

७३६ तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥ ८ (थौ) ॥ ( ऋ. ८।२।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

७३७ इदꣳह्यन्वोजसा सुतꣳराधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥ ( ऋ ३।५१।१० )

---

[ ७३१ ] हे ( वृषभ ) बलवान् इन्द्र ! ( सुते त्वा ) सोमयज्ञमें तेरे ( पीतये सुतं अभि सृजामि ) पीनेके लिए सोमरस अच्छी तरह तैय्यार करता हूं, ( तृम्प ) तू उससे तृप्त हो, और ( मदं व्यश्नुहि ) उस आनन्ददायक रसको पी ॥ १ ॥

[ ७३२ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( अविष्यवः मूराः ) रक्षणकी इच्छा करनेवाले मूर्ख ( मा दभन् ) न दबावें, तेरा ( उपहस्वानः मा ) उपहास करनेवाले भी तुझे न दबावें, ( ब्रह्म-द्विषं ) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी ( मा कीं वनः ) तू सहायता न कर ॥ २ ॥

[ ७३३ ] हे इन्द्र ! ( इह ) इस यज्ञमें ( गो-परीणसं ) गायके दूधसे मिला हुआ सोमरस अर्पण करके याजक ( महे राधसे ) बहुत सारा धन प्राप्त करनेके लिए ( त्वा मदन्तु ) तुझे आनन्दित करते हैं। ( यथा गौरः सरः ) जिस प्रकार मृग तालाबपर जाकर पानी पीता है, उसी प्रकार तू ( पिब ) सोमरस पी ॥ ३ ॥

[ ७३४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( इदं सुतं अन्धः ) यह सोमरसरूपी अन्न तू ( उदरं सु-पूर्णं ) पेट भरकर ( पिब ) पी, हे ( अनाभयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तुझे हम सोमरस देते हैं ॥ १ ॥

[ ७३५ ] ( नृभिः धौतः ) याजकोंसे स्वच्छ किया गया, ( अश्नैः सुतः ) पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया यह रस ( अव्या वारैः परिपूतः ) भेडके बालोंसे बनी छलनीसे छाना गया है। ( नदीषु अश्वः न ) नदीमें जिस प्रकार घोडेको धोते है, उसी प्रकार पानीमें धोया हुआ और ( निक्तः ) छानकर तैय्यार किया गया यह रस है ॥ २ ॥

[ ७३६ ] हे इन्द्र ! ( तं ते ) वह रस तुझे देनेके लिए ( यवं यथा ) जिस प्रकार जौका पुरोडाश बनाते हैं, उसी प्रकार ( गोभिः श्रीणन्तः ) गायके दूध आदिसे मिलाकर ( स्वादु अकर्म ) मीठा किया गया है। हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वा अस्मिन् सधमादे ) तुझे इस यज्ञमें आनन्द प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ७३७ ] ( राधानां पते ) हे धनपते ! ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलसे युक्त तू ( इदं सुतं अनु ) इस सोमरसके अनुकूल होकर ( अस्य नु पिब ) इसको पी ॥ १ ॥

७३८ यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।५१।११ )

७३९ प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥ ९ ( पी ) ॥ ( ऋ. ३।५१।१२ )

७४० आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।५।१ )

७४१ पुरुतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रँसोमे सचा सुते ॥ २ ॥ ( ऋ. १।५।२ )

७४२ स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या । गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥ १० ( टी ) ॥ ( ऋ. १।५।३ )

७४३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥ ( ऋ १।३०।७ )

७४४ अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥ ( ऋ १।३०।९ )

---

[ ७३८ ] हे इन्द्र ! ( ते यः ) तेरे लिए यह सोम ( स्वधां अनु असत् ) अन्नके समान है, ( सुते ) इस सोम यज्ञमें तू ( तन्वं नियच्छ ) अपने शरीरको ले जा, और हे ( सोम्य ) सोमके योग्य इन्द्र ! ( सः त्वा ममत्तु ) वह सोम तुझे आनन्दित करे ॥ २ ॥

[ ७३९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सः ते कुक्ष्योः प्राश्नोतु ) वह सोम तेरे कुक्षियोंमें भरा रहे। ( ब्रह्मणा शिरः ) स्तोत्र द्वारा वह तेरे सिरतक-सब शरीरमें-पहुंचे, हे ( शूर ) शूर इन्द्र ! ( राधसा बाहू प्र ) धन देनेके लिए तेरे बाहु भी उसे प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[ ७४० ] हे ( स्तोम-वाहसः सखायः ) यज्ञ करनेवाले मित्रो ! ( तु आ एत ) शीघ्र आओ, ( निषीदत ) बैठो, और ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रको लक्ष्य करके साम-गान करो. ॥ १ ॥

[ ७४१ ] ( सचा ) एक जगह बैठकर ( सुते ) सोम यज्ञमें ( पुरुतमं ) बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले, ( पुरूणां वार्याणां ईशानां ) बहुत श्रेष्ठ धनोंके स्वामी ( इन्द्रं ) इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

१ पुरु-तम — बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाला।

२ तमः — नाश करनेवाला।

३ वार्य — ग्रहण करने योग्य धन।

[ ७४२ ] ( सः घ ) वह निश्चयसे ( नः योगे ) हमारे पुरुषार्थके ( आभुवत् ) कर्ममें सहायक होवे, ( सः राये ) वह धन प्राप्त करनेके कार्यमें ( सः पुरन्ध्यां ) वह बहुत बुद्धि प्राप्त करनेके कार्यमें सहायक होवे, ( सः वाजेभिः नः आगमत् ) वह अन्नके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

१ पुरं-धी — बहुत बुद्धि, स्त्री।

२ योग — अपनी सहायतासे मिले हुए धन, जोडना।

[ ७४३ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( योगे-योगे ) प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें ( वाजे-वाजे ) और प्रत्येक युद्धमें ( तवस्तरं इन्द्रं ) अत्यन्त बलवान् इन्द्रको ( ऊतये हवामहे ) संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७४४ ] ( प्रत्नस्य ओकसः ) अपने प्राचीन घरसे ( तुवि-प्रतिं ) बहुतोंके पास जानेवाले ( नरं ) नेता इन्द्रको ( अनु हुवे ) में सहायताके लिए बुलाता हूं ( यं ते ) जिसको ( पिता पूर्वं हुवे ) मेरे पिताने पहले बुलाया था ॥ २ ॥

१ प्रत्नस्य ओकसः — इन्द्रका प्राचीन घर यह विश्व है। स्वर्गधाम है।

*

७४५ आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥ ११ (ला) ॥
( ऋ. १।३०।८ )

७४६ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाꣳहि षः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

७४७ स प्रथमे व्योमनि देवानाꣳ सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१३।२ )

७४८ तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ १२( वा ) ॥ ( ऋ. ८।१३।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

७४९ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।१; वा. य. ३।५ )

---

[ ७४५ ] ( यदि नः हवं श्रवत् ) यदि वह हमारी प्रार्थना सुन लेगा तो ( सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह ) हजारों तरहके संरक्षणके साधनोंके साथ और ( वाजेभिः ) अन्नके साथ वह ( उप आगमत् ) हमारे पास आयेगा ( आ घ ) यह निश्चित है ॥ ३ ॥

[ ७४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सुतेषु सोमेषु ) सोमरस निकालनेके बाद ( वृधस्य दक्षस्य विदे ) महान् बल प्राप्त करनेके लिए ( क्रतुं उक्थ्यं पुनीषे ) कर्म और स्तोत्रोंको तू पवित्र करता है, ( सः महान् हि ) ऐसा वह तू महान् है ॥ १ ॥

[ ७४७ ] ( सः ) वह इन्द्र ( प्रथमे व्योमनि देवानां सदने ) प्रथम आकाशमें देवोंके घरमें ( वृधः ) यजमानको बढानेवाला ( सुपारः ) उत्तम प्रकारसे दुःखोंसे पार करानेवाला ( सु-श्रवस्तमः ) उत्तम यशस्वी ( सं अप्सुजित् ) राक्षसोंको जीतनेवाला रहता है, उसे हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ सं-अप्सु-जित् — पानीको रोकनेवाले राक्षसोंको जीतनेवाला । पानीको रोकनेवाले मेघ अथवा बर्फ होते हैं, उस प्रतिबन्धको दूर करनेवाला ।

२ देवानां सदनं — स्वर्ग ।

[ ७४८ ] ( तं उ ) उस ( शुष्मिणं इन्द्रं ) बलवान् इन्द्रको ( वाज-सातये| भराय ) अन्न प्राप्त करानेवाले यज्ञके लिए ( हुवे ) बुलाता हूँ । हे इन्द्र ! ( सु-म्ने अन्तमः भव ) सुखके समय हमारे पास रह, उसी प्रकार ( वृधे सखा ) उन्नतिके समय मित्र होकर हमारे पास रह ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ७४९ ] ( वः ) तुम्हारे लिए ( एना नमसा ) इन स्तोत्रोंसे ( ऊर्जः न-पातं ) बलको कम न करनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठं ) प्रिय और चेतना देनेवाले ( अरतिं ) प्रगतिशील ( सु अध्वरं ) उत्तम यज्ञ करनेवाले ( विश्वस्य दूतं ) सभी याजकोंके दूत ( अमृतं अग्निं ) अमर अग्निको ( आ हुवे ) मैं बुलाता हूँ ॥ १ ॥

७५० स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देव१ राधो जनानाम् ॥ २ ॥ १३ (तु) ॥ ( ऋ. ७।१६।२ )

७५१ प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।८१।१ )

६५२ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥ १४ (वा) ॥ ( ऋ ७.८१।२ )

७५३ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।७४।१ )

७५४ युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां१ सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं१ समनसा नि यच्छतं पिबतं१ सोम्यं मधु ॥२॥ १५ (चा) ॥ ( ऋ. ७।७४.२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

---

[ ७५० ] ( सः ) वह अग्नि ( अरुषा विश्व-भोजसा ) तेजस्वी और सर्वभक्षक अश्वोंको ( योजते ) अपने रथमें जोडता है । उसके बाद ( सु-ब्रह्मा ) उत्तम ज्ञानी ( यज्ञः ) पूज्य ( सु-शमी ) उत्तम संयमी ( स्वाहुतः ) उत्तम आहुतियोंसे प्रदीप्त हुआ वह अग्नि देवोंको लानेके लिए ( दुद्रवत् ) जाता है । तब ( देवं ) उस अग्निको ( वसूनां राधः ) धनोंका ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ ७५१ ] ( आयती उच्छन्ती ) आकर चमकनेवाली ( दिवः दुहिता उषाः ) द्युलोककी पुत्री उषा ( प्रति अदर्शि ) दीखने लगी है, वह ( मही तमः उ ) महान् अन्धकारको ( चक्षुषा उप वृणुते उ ) प्रकाशसे हटाती है ( सूनरी ज्योतिः कृणोति ) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ७५२ ] ( सूर्यः ) सूर्य ( सचा ) एकदम ( उस्रियाः ) अपनी किरणोंको फैलाता है, ( उद्यत् ) उदय होनेके बाद ( नक्षत्रं ) आकाशमें ग्रह नक्षत्र प्रकाश फैलाते हैं । हे ( उषः ) उषे ! ( तव सूर्यस्य च ) तेरे और सूर्यके ( व्युषि ) प्रकाश होनेके बाद ( भक्तेन संगमेमहि इत् ) अन्नसे हम युक्त हों ॥ २ ॥

[ ७५३ ] हे ( अश्विना ) अश्विनौ देवो ! ( इमा दिविष्टयः उ ) इस स्वर्गकी इच्छा करनेवाली प्रजायें ( उस्रौ वां हवन्ते ) सबको बसानेवाले तुम्हें सहायताके लिए बुलाती हैं, हे ( शची-वसू ) अपनी शक्तिसे निवास करनेवाले देवो ! ( अयं ) यह स्तुति करनेवाला ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( वां अह्वे ) तुम्हें बुलाता है, ( हि ) क्योंकि तुम ही ( विशं विशं गच्छथः ) प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[ ७५४ ] ( नरा ) हे नेताओ ! अश्विदेवो ! ( युवं ) तुम ( चित्रं भोजनं ददथुः ) विलक्षण भोजन देते हो, ( सूनृतावते चोदेथां ) स्तुति करनेवालेको तुम प्रेरित करते हो, तुम ( स-मनसा ) एक विचारसे ( रथं अर्वाक् नियच्छतं ) रथको इधर रोको और यहां ( सोम्यं मधु पिबतं ) मीठा सोमरस पियो ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

७५५ अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।५४।१ )

७५६ अयꣳ सूर्य इवोपदृगयꣳ सराꣳसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।५४।२ )

७५७ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ १६ ( ते ) ॥ ( ऋ ९।५४।३ )

७५८ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।९ )

७५९ एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥ ( ऋ ९।४२।२ )

७६० दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवाꣳ अजीजनः ॥ ३ ॥ १७ ( हा ) ॥ ( ऋ. ९।४२।४ )

७६१ उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।६ )

७६२ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।१३ )

---

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ७५५ ] ( अस्य ) इस सोमरसके ( प्रत्नां द्युतं अनु ) पुराने तेजको याद करके ( शक्रं सहस्रसां ) तेजस्वी और हजारों इच्छा पूर्ण करनेवाले ( ऋषिं पयः ) ज्ञानवर्धक रसको ( अह्रयः दुदुह्रे ) ज्ञानी गण तैय्यार करते हैं ॥ १ ॥

[ ७५६ ] ( अयं ) यह सोम ( सूर्यः इव ) सूर्यके समान ( उप-दृक् ) सबको देखनेवाला है, ( अयं सरांसि धावति ) यह [ तोस ] जलके पात्रोंमें छाना जाता है, उसी प्रकार ( आ दिवं ) द्युलोकतक यह ( सप्त प्रवते ) सात धाराओंमें वहता है ॥ २ ॥

१ सरांसि— [ तोस ] पानीके बर्तन ।

२ धावति— दौडता है, छाना जाता है ।

[ ७५७ ] ( अयं पुनानः सोमः ) यह पवित्र होनेवाला सोमरस ( विश्वानि भुवना उपरि ) सब भुवनोंपर ( सूर्यः देवः न ) सूर्यदेवके समान ( तिष्ठति ) प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ७५८ ] ( हरिः एषः देवः ) हरे रंगका यह सोम ( प्रत्नेन जन्मना ) पहलेसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निचोडकर ( पवित्रे अर्षति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ७५९ ] ( प्रत्नेन मन्मना ) प्राचीन स्तोत्रोंकी सहायतासे ( एषः देवः ) यह प्रकाशमान् ( कविः ) ज्ञानी सोम ( देवेभ्यः ) देवोंके लिए ( विप्रेण परिवावृधे ) ब्राह्मणों द्वारा बढाया जाता है ॥ २ ॥

[ ७६० ] ( प्रत्नं इत् पयः ) पहलेसे यह रस बर्तनमें ( दुहानः ) निचोडा जाता है, और बादमें ( पवित्रे परिषिच्यसे ) छलनीसे छाना जाता है । यह ( क्रन्दन् ) शब्द करता हुआ ( देवान् अजीजनः ) देवोंको मानों यज्ञमें बुलाता है ॥ ३ ॥

[ ७६१ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( उप-तस्थुषः ) पासमें बैठनेवालोंको ( उप शिक्ष ) समझाकर बता और ( शत्रवे ) शत्रुको ( भियसं आधेहि ) भय हो ऐसा कर तथा ( रयिं विदाः ) धन हमें दे ॥ १ ॥

[ ७६२ ] सोमरस ( जातं ) निकालनेके बाद ( अप्-तुरं ) पानीमें मिलाया जाता है। ( भंगं ) शत्रुके नाश करनेवाले ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधसे मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिषुः ) देव जाते हैं ॥ २ ॥

७६३ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥ १८ ( वौ ) ॥
( ऋ. ९।११।१ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७६४ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३३।१ )
७६५ अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥ ( ऋ ९।३३।२ )
७६६ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ १९ ( वि ) ॥
( ऋ ९।३३।३ )

७६७ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )
७६८ आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ २ ॥ २० ( रु ) ॥ ( ऋ. ९।१०७।१३ )
७६९ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३२।१ )

---

[ ७६३ ] हे ( नरः ) याजको ! ( देवान् अभि इयक्षते ) देवोंके लिए यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले यजमानकी अपेक्षा ( पवमानाय अस्मै इन्दवे ) छाने जानेवाले इस सोमके लिए ( उप-गायत ) सामका गान करो ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ७६४ ] ( विपश्चितः ऊर्मयः सोमासः ) ज्ञान बढानेवाले ये सोमरस ( वनानि महिषाः इव ) जिस प्रकार वनमें भैंसे जाते हैं उसी प्रकार ( आपः प्र नयन्ते ) पानीमें मिलाये जाते है ॥ १ ॥

[ ७६५ ] ( बभ्रवः शुक्राः ) भूरे रंगके ये सोमरस ( ऋतस्य धारया ) पानीकी धाराके साथ ( द्रोणान् ) पात्रमें ( गोमन्तं वाजं ) गौ दूधरूपी अन्नके साथ ( अभि अक्षरन् ) मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६६ ] ( सुताः सोमाः ) सोमरस निचुडनेके बाद इन्द्र, वायु, मरुत्, विष्णु इन देवोंको ( अर्षन्तु ) प्राप्त हों ॥३॥

[ ७६७ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अर्णसा ) पानीमें ( सिन्धुः न ) जिस प्रकार नदियां पानीसे भरी जातीं हैं, उसी प्रकार ( प्र पिप्ये ) मिलाया जाता है। ( मदिरः न जागृविः ) आनन्द देनेवाले पदार्थोंके समान तू उत्साह बढानेवाला है, ( अंशोः ) इस सोमरसको ( पयसा ) दूधमें मिलाओ, बादमें ( मधुश्चुतं कोशं अच्छ ) इस मीठे रसको रखनेके बर्तनमें अच्छी तरह भरो ॥ १ ।

[ ७६८ ] ( हर्यतः सूनुः न ) प्रिय पुत्रके समान ( मर्ज्यः अर्जुनः ) शुद्ध होनेवाला यह स्वच्छ सोमरस ( अत्के आ अव्यत ) बर्तनमें छाना जाता है। ( तं ईं ) उस इस सोमको ( नदीषु ) जलोंमें ( गभस्त्योः ) हाथोंसे ( अपसः रथं यथा ) जिस प्रकार वेगवान् रथको संग्राममें लेजाते हैं उसी प्रकार ( आ हिन्वति ) मिलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६९ ] ( मद-च्युतः सोमासः ) आनन्द बढानेवाले ये सोमरस ( सुताः ) निचोडे जानेके बाद ( विदथे ) यज्ञमें ( मघोनां नः ) हविष्यान्न देनेवाले हमारे ( श्रवसे ) यशके लिए ( प्र अक्रमुः ) सहायक होते हैं ॥ १ ॥

७७० आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥
( ऋ. ९।३२।३ )

७७१ आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३॥ २१ ( ली ) ॥
( ऋ. ९।३२।२ )

७७२ अया पवस्व देवयु रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥१॥ ( ऋ. ९।१०६।१४ )

७७३ पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥२॥ ( ऋ ९।१०६।१३ )

७७४ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ २२ ( लि ) ॥ ( ऋ. ९।१०१।१३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमप्रपाठश्च समाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

[ ७७० ] ( आत् ईं ) और यह सोम ( हंसः यथा गणं ) हंस जिसप्रकार अपने समूहमें जाता है, उसी प्रकार ( विश्वस्य मतिं ) सबकी बुद्धिको ( अवीवशत् ) वशमें करता है, ( अत्यः न ) घोडा जिस प्रकार पानीमें घुसता है, उसी प्रकार ( गोभिः अज्यते ) यह गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २

[ ७७१ ] ( आत् ईं हरिं इन्दुं ) इस हरे रंगके सोमको ( त्रितस्य योषणः ) त्रित ऋषिकी अंगुलियां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रके पीनेके लिए ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कूटती हैं ॥ ३ ॥

[ ७७२ ] हे सोम ! ( देवः-युः ) देवोंसे मिलनेकी इच्छा करनेवाला तू ( अया पवस्व ) धारासे छनता जा, ( रेभन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं विश्वतः पर्येषि ) छलनीसे चारों ओर बाहर गिरता है, और बादमें तेरे ( मधोः धाराः असृक्षत ) मीठे रसकी धारा बाहर गिरने लगती है ॥ १ ॥

[ ७७३ ] ( हर्यतः हरिः ) इच्छा करनेके योग्य यह हरे रंगका सोम ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( वीर-वत् यशः ) वीर पुत्रों सहित यशको ( अभ्यर्षन् ) देकर ( रंह्या ) रमणीय ( ह्वरांसि अति पवते ) छलनीसे छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ७७४ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) निचोडे जानेवाले इस अन्नरूपी सोमके बदलेमें ( तत् वचः ) तेरे हीन वचनको ( मर्तः न प्र वष्ट ) मनुष्य न सुने, हे याजको । ( अ-राधसं श्वानं ) अयोग्य कुत्तेको ( भृगवः मखं न ) जिस प्रकार भृगुने अयोग्य यज्ञको दूर किया था, उसी प्रकार ( अप हत ) दूर करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

# द्वितीय अध्याय

## इन्द्रदेवता

इस द्वितीय अध्यायमें आये हुए इन्द्रके गुण इस प्रकार है—

१ विश्वा-साहः [ ७१३ ] - सब शत्रुओंको हरानेवाला।

२ शत-क्रतुः [ ७१३ ] - सैकडों उत्तम कर्म करनेवाला।

३ चर्षणीनां मंहिष्ठः [ ७१३ ]- मनुष्योंमें अत्यधिक महान् ।

४ इन्द्रः ( इन्+द्रः ) [७१३]- शत्रुओंको फाडनेवाला।

५ पुरु-हूतः [७१४]- जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

६ पुरु-ष्टुतः [ ७१४ ]- बहुतोंके द्वारा प्रशंसित।

७ गाथान्यः [ ७१४ ]- प्रशंसनीय, स्तुत्य।

८ सन-श्रुतः [७१४]- सनातन कालसे जिसकी प्रशंसा होती आई है।

९ नृतु :[ ७१५ ]- सबोंको चलानेवाला, सबोंको अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेवाला।

१० महोनां वाजानां दाता [ ७१५ ]- बहुत धन और अन्न देनेवाला।

११ हर्यश्वः (हरि-अश्वः ) [ ७१६ ]- लाल रंगके घोडे अपने पास रखनेवाला।

१२ सुदानुः [ ७१७ ]- उत्तम दान देनेवाला।

१३ सत्य-राधाः [ ७१७ ]- श्रेष्ठ धन जिसके पास हैं। हमेशा रहनेवाले धन जिसके पास हैं। हित करनेवाले धनोंको जो अपने पास रखता है।

१४ द्यु-क्षः [ ७१७ ]- द्युलोकमें रहनेवाला, द्युलोकमें तेजस्वी।

१५ वाज-युः [ ७१८ ]- अन्न और बल देनेवाला, अन्न और बल जिसके पास भरपूर है।

१६ गव्युः [ ७१८ ]- जो गायोंका पालन करता है, गायें जिसके पास हैं।

१७ वसुः [ ७१८ ]- निवास करानेवाला, धनवान्, आठ वसु जिसके पास हैं। आठ वसु- आपः, ध्रुवः, सोमः, धरः, अनिलः, प्रत्यूषः और प्रभासः। वसुके अर्थ- मिष्ट, मीठा, धन, रत्न, सुवर्ण, उत्तम, जल, घृत, किरण, धनवान्।

१८ हिरण्य-युः [ ७१८ ]- सोना पासमें रखनेवाला, सोनेका दान करनेवाला।



१९ वज्री [ ७२० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला, वज्रधारी।

२० मद्-वा [७२२]- आनन्दित, जिसके पास आनन्द है।

२१ यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि [ ७२२ ]- जिसके पास सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्य हैं।

२२ शाचि-गुः [ ७२६ ]- जो अपनी शक्तिसे सुप्रसिद्ध है, जिसकी इन्द्रियें शक्तिशाली हैं।

२३ शाचि-पूजनः [ ७२६ ]- शक्तिके कारण पूजा जानेवाला।

२४ आ-खण्डलः [ ७२६ ]- शत्रुके टुकडे करनेवाला, शत्रुओंको मारनेमें प्रवीण।

२५ शृंग-वृषः न-पात् [ ७२७ ]- अपने प्रकाशको कम न करनेवाला। किरणोंको चारों ओर फैलानेवाला। जिसके सींगोंका बल कम नहीं होता।

२६ महाहस्ती [ ७२८ ] मजबूत और बडे हाथोंवाला।

२७ महाहस्ती नः क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन संगृभाय [ ७२८ ]- मजबूत हाथोंवाला वह इन्द्र तेजस्वी, अनेक प्रकारके और ग्रहण करने योग्य धन हमें देनेके लिए दायें हाथमें लेता है।

२८ तुवि-कूर्मिः [ ७२९ ]- पराक्रमके अनेक कार्य करनेवाला।

२९ तुवि-देष्णः [ ७२९ ]- देनेके लिए बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला।

३० तुवि-मघः [ ७२९ ]- बहुत धनवान्।

३१ तुवि-मात्रः [ ७२९ ]- मजबूत शरीरका।

३२ अवोभिः त्वा विद्महि [ ७२९ ]- संरक्षणके अनेक साधन वह इन्द्र अपने पास रखता है, यह हमें मालूम है।

३३ शूरः [ ७३० ]- शूरवीर।

३४ वृषभः [ ७३१ ]- बलवान्, बैलके समान सामर्थ्यवान्।

३५ दित्सन्तं त्वा देवाः मर्तासः न वारयन्ते [७३०] -धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे देव और मनुष्य रोक नहीं सकते।

३६ अविष्यवः त्वा मा दभन् [ ७३२ ]- अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले मूर्ख लोग तुझे न दबायें।

३७ ब्रह्मद्विषं मा किं चनः [ ७३२ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवाले की तू सहायता मत कर।

३८ अनाभयी ( अन्-आभयी ) [ ७३४ ]- निर्भय, न डरनेवाला।

३९ राधानां पतिः [ ७३७ ]- अनेक धनोंका स्वामी।

४० गिर्वणः [ ७३७ ]- स्तुत्य।

४१ हे शूर ! राध्वसा बाहू [ ७३९ ]- हे शूर इन्द्र !, तेरी भुजायें धन रखनेवाली हैं।

४२ तवस्तरः [ ७४३ ]- अत्यन्त बलवान्।

४३ तवस्तरं ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- बलवान् वीर इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

४४ तुवि-प्रतिः [ ७४४ ]- बहुतोंके पास सहायता करनेके लिए जानेवाला।

४५ नरः [ ७४४ ]- नेता; आगे चलनेवाला।

४६ प्रत्नस्य ओकसः तुवि-प्रतिं नरं हुवे [ ७४४ ] -अपने पुराने घरसे बहुतोंकी सहायताके लिए जानेवाले नेता इन्द्रको मैं अपने संरक्षणके लिए बुलाता हूँ।

४७ यं ते पिता पूर्वं हुवे [ ७४४ - जिस इन्द्रको तेरे पूर्वजोंने सहायताके लिए बुलाया था।

४८ स महान् हि [ ७४६ ]- वह इन्द्र महान् है।

४९ वृधः [ ७४६ ]- बढानेवाला, शक्तिका विकास करनेवाला।

५० सु-पारः [ ७४६ ]- संकटोंसे पार पहुंचानेवाला।

५१ सुश्रवस्तमः [ ७४६ ]- कीर्तिमान्, यशस्वी।

५२ सं-अप्सुजित् [७४६]- पानीमें रहनेवाले शत्रुओं-को जीतनेवाला।

५३ शुष्मी [ ७४८ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान्।

५४ सुम्ने अन्तमः [ ७४८ ]- सुखके समय पास रहनेवाला।

५५ वृधे सखा [७४८]- उन्नति करानेमें मित्रके समान।

५६ शुष्मिणं इन्द्रं वाजसातये भराय हुवे [ ७४८ ] -बलवान् इन्द्रको अन्नका दान होनेवाले यज्ञमें बुलाता हूँ।

५७ सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह उपागमत् [७४५] हजारों संरक्षणके साधनोंके साथ वह इन्द्र आता है।

५८ सः योगे राये पुरन्ध्या वाजेभिः नः आगमत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र लाभ होनेके समय, धन मिलनेके समय, और बुद्धिके काम करनेके समय अन्नके साथ हमारी तरफ आता है।

५९ हे सखायः ! योगे-योगे, वाजे-वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- हे मित्रो ! प्रत्येक लाभके काम करनेके समय, प्रत्येक युद्धके समय अत्यन्त बलशाली इन्द्रको संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

६० सखायः ! आ एत, निषीदत, इन्द्रं अभि प्र गायत [ ७४० ]- हे मित्रो ! आओ, बैठो, और इन्द्रके गुणोंका गान करो।

६१ सचा सुते पुरूतमं पुरूणां ईशानं वार्याणां इन्द्रं [ ७४१ ]- यज्ञमें बहुत धनोंके स्वामी ऐसे इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो।

इस प्रकार इन्द्रके श्रेष्ठ गुणोंका वर्णन इन मंत्रोंमें आया है। शौर्य, वीर्य, युद्ध कौशल्य, लोगोंकी सहायता करनेकी तैय्यारी, जनताके हित करनेकी तत्परता इत्यादि सद्गुण इन वर्णनोंमें आये हैं।

पर केवल " इन्द्र शूर है " इतना पढनेका कुछ भी उपयोग नहीं, तब तक कि वह शूरता अपनेमें न लाई जाए। वेदोंने जो धर्म बताये हैं, उनका उपयोग तभी हो सकता है, जब उनके अनुसार आचरण किया जाए। अतः पाठक वृन्द उन धर्मोंका आचरण करें और उन्नत हों।

## अग्नि देवता

१ ऊर्जो-न-पात् [ ७४९ ]- बल कम न करनेवाला, उत्साह कम न करनेवाला।

शरीरमें गर्मीके रहनेतक ही इस शरीरमें बल रहता है। शरीरके ठंडे होते ही इसकी हलचल बन्द हो जाती है। इससे यह ज्ञात हो जाएगा कि अग्नि किस प्रकार बलको आधार देनेवाला है।

२ अरतिः [ ७४९ ]- प्रगतिशील।

३ प्रियः चेतिष्ठः [ ७४९ ]- प्रिय और चैतन्य उत्पन्न करनेवाला।

४ अमृतः [ ७४९ ]- अमर, नष्ट न होनेवाला।

५ सु-अध्वरः [ ७४९ ]- उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाला।

६ विश्वस्य दूतः [ ७४९ ]- विश्वका दूत, हवनमें डाले गए पदार्थको सब जगह पहुंचानेवाला।

७ सु-ब्रह्मा [ ७५० ]- उत्तम ज्ञानी।

८ यज्ञः [ ७५० ]- पूज्य।

९ सु-शमी [ ७५० ]- उत्तम संयमी।

१० सु-आहुतः [७५०]- उत्तम आहुति जिसमें पडती है।

११ दुद्रवत् [ ७५० ]- देवोंको लानेके लिए शीघ्र जाता है।

१२ देवं वसूनां राधः [ ७५० ]- इस अग्निदेवको धनोंसे प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य मिलते हैं।

१३ स अरुषा विश्वभोजसा योजते [ ७५० ]- वह तेजस्वी, लाल रंगके घोडोंको अपने रथमें जोडता है।

इतने गुण अग्नि देवताके इस अध्यायमें आए हैं।

## उषा देवता

उषा देवताके गुण भी बडे महत्त्वके और मननीय हैं—

१ आयती उच्छन्ती [ ७५१ ]- उषा आती है और प्रकाश फैलने लगता है। अन्धकार दूर करनेके लिए प्रकाश फैलाना अत्यन्त आवश्यक है।

२ दिवः दुहिता उषा प्रत्यदर्शि [७५१]- द्युलोककी पुत्री उषा दीखने लग गई है। उसका प्रकाश फैलने लग गया है।

३ महीतमः चक्षुषा उप वृणुते [ ७५१ ]- वह उषा महान् अन्धकारको अपनी आंखों-किरणोंसे नष्ट करती है। अन्धकारको प्रकाशसे दूर करती है।

४ सूनरी ज्योतिः कृणोति [ ७५१ [- उत्तम नेतृत्व करनेवाली प्रकाश करती है। अन्धकार दूर करके प्रकाश फैलाती है।

५ सूर्यः सचा उस्रियाः उत्सृजते [ ७५२ ]- उषाके साथ सूर्य आकर अपनी किरणें फैलाता है।

६ उद्यत् नक्षत्रं अर्चिवत् [ ७५२ ]- उदय होते ही नक्षत्र चमकने लगते हैं।

७ हे उषः ! तव सूर्यस्य च व्युषि भक्तेन संगमेमहि [ ७५२ ] - तेरे और सूर्यके प्रकाशके बाद हम अन्नका सेवन करें।

उषा आती है और प्रकाश फैलाकर अन्धकार दूर करना शुरू करती है। उषाके बाद सूर्य उदय होकर प्रकाशने लगता है। तात्पर्य यह कि उषाके उदय होते ही अन्धकारका नाश प्रारम्भ हो जाता है। उसी प्रकार मनुष्यको अपने समाज व राष्ट्रमें अपने कार्यके द्वारा अज्ञानान्धकारका नाश करना चाहिए और अपने समाज व राष्ट्रको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए। उषा प्रतिदिन लोगोंको यह ज्ञान देती है। उस ज्ञानको मनुष्योंको अपने जीवनमें उतारना चाहिए।

## अश्विनौ देवता

१ उस्रिया [ ७५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाले, किरण, प्रकाशकी किरण, बैल, ईश्वर, सूर्य, दिवस, अश्विनीकुमार।

२ उस्रा [ ७५३ ]- प्रभात, प्रकाश, चमकनेवाला आकाश, गाय, पृथ्वी, अश्विनीकुमार।

३ शचीवसू [ ७५३ ]- अपनी शक्तिसे रहनेवाले।

४ नरा [ ७५४ ]- नेतृत्व करनेवाले।

५ युवं चित्रं भोजनं ददथुः [ ७५४ [- तुम विलक्षण गुणकारी भोजन देते हो।

६ सूनृतावते चोदेथां [ ५५४ ]- सत्यमार्गसे चलनेवालेको उत्तम प्रेरणा तुम ही देते हो।

७ समनसा रथं अर्वाक् नियच्छतं [ ७५४ ]- एक विचारवाले होकर अपने रथको इधर लाओ।

८ विशं विशं गच्छथः [ ७५४ ]- तुम प्रत्येक प्रजाजनकी ओर जाते हो। उसके रोगकी चिकित्सा करनेके लिए जाते हो।

९ अवसे वां अह्वे [ ७५३ ]- अपने संरक्षणके लिए तुमको मैं बुलाता हूँ।

१० इमाः दिविष्टयः उस्रौ वां हवन्ते [ ७५३ ]- ये देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली प्रजायें अश्विनौको अपनी सहायताके लिए बुलाती हैं।

अश्विनौ दो देव हैं। इनमें एक शस्त्रक्रियामें कुशल है और दूसरा औषधि - चिकित्सामें। ये दोनों ही रोगीके पास जाते हैं और उसके रोग दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। ये देव हैं पर उनके रोगी मानव होते हैं, अर्थात् ये देव होते हुए भी मनुष्योंकी चिकित्सा करते हैं।

रोगीको ये ऐसा उत्तम भोजन तैय्यार करके देते हैं कि उसको खानेसे ही रोगी भला चंगा हो जाता है। औषधि सेवनकी अपेक्षा औषध मिश्रित भोजनको खानेसे रोगीको अधिक लाभ होता है। क्योंकि औषधि लेते हुए रोगीके मनमें "मैं रोगी हूँ" ऐसी भावना रहती है, पर भोजन खानेमें वैसी भावना नहीं रहती। रोगीको ऐसा मालूम होता है कि "मैं बीमार नहीं हूँ, अपना भोजन मैं खाता हूँ"। अतः मानसिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे औषधिकी अपेक्षा भोजन रूपसे शरीरमें दवाई पहुंचाना और उसकी सहायतासे रोगीको रोग मुक्त करना अधिक लाभदायक है।

वैद्योंको अपने रोगियों पर ऐसे प्रयोग करने चाहिए। खानेके द्वारा रोगियोंके शरीरमें औषध पहुंचाना चिकित्साका एक उत्तम उपाय है।

अश्विनीकुमारोंको "उस्रा" कहा गया है, क्योंकि वे सबेरे रोगियोंकी तरफ जाते हैं। रोगियोंको निरीक्षण करनेके लिए सवेरेका समय उत्तम होता है।

*

## सोम

सोम हिमालयके मौजवान् शिखरपर मिलनेवाली एक बेलका नाम है। इसीलिए वेदोंमें उसे " मौजवान् सोम " कहा है।

## सोमको छानते समय सामगान

यज्ञमें सोमको छानते समय सामगान किया जाता था, उस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ पवमानाय इन्दवे उप गायत [ ७६३ ]- छाने जानेवाले सोमके लिए सामगान बोलो।

इस समय बुरे वचन बोलना ठीक नहीं, ऐसा स्पष्ट कहा है-

२ सुन्वानाय अन्धसः तत् वचः मर्तः न प्रवष्ट [ ७७४ ]- निचोडे जानेवाले इस अन्नरूपी सोमके विषयमें किसीको भी हीन शब्द नहीं बोलने चाहिए। तथा सोमरस निकालते हुए उस स्थानपर कुत्ते न आ पायें ऐसा भी प्रबन्ध करना चाहिए—

३ अराधसं श्वानं अपहत [ ७७४ ]- अनुदार कुत्ता यदि यहां आजाए तो उसे मारकर भगा दो।

## सोमको कूटकर रस निकालना

सोमकी बेल लाई जाती थी, उसे पत्थरोंसे कूटते थे, और उसका रस निकालते थे। इस विषयमें मंत्र इस प्रकार हैं—

१ हरिं इन्दुं योषणः इन्द्राय पीतये अद्रिभिः हिन्वन्ति [ ७७१ ]- हरे रंगके चमकनेवाले सोमको हाथ पत्थरोंसे कूटते हैं और कूटनेके बाद उंगलियां उसे दबाकर उसका रस निकालती हैं। इन्द्रके पीनेको देनेके लिए यह किया जाता है। लकडीके पट्टे पर सोमको रखकर उसे पत्थरोंसे कूटते हैं फिर हाथोंसे उसका रस निकाला जाता है। ऐसे इस रसमें निचोडनेके बाद पानी मिलाकर इसे छाना जाता है। छाननेका वर्णन इस प्रकार है—

१ नृभिः धौतः, अश्मैः सुतः, अव्यावारैः परिपूतः निक्तः [७३५]- याजकोंके द्वारा प्रथम धोया गया, पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया, भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छाना गया यह सोमरस है।

रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाते हैं और बादमें छलनीसे उसे छानते हैं।

२ अयं सरांसि धावति [७५६]- यह सोम सरोवरके पास दौडता हुआ जाता है। यहां " सरः " शब्द पानीका बर्तन है। सोमरस पानीके बर्तनमें जाता है और वहां जाकर पानीसे मिल जाता है।

३ हरिः एषः देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [ ७५८ ] - यह हरे रंगका चमकनेवाला देवोंको देनेके लिए निचोडा गया, वह सोमरस छलनीसे होकर नीचेके बर्तनमें गिरता है।

४ एषः देवः देवेभ्यः विप्रेण परि वावृधे [ ७५९ ]- यह चमकनेवाला दिव्य सोमरस ब्राह्मणोंके द्वारा बढाया जाता है, अर्थात् ब्राह्मण उसमें पानी मिलाकर उसे बढाते हैं, और उसे पीने योग्य बनाते हैं।

५ दुहानः पवित्रे परिषिच्यते [७६०]- रस निकालनेके बाद छलनीसे वह छाना जाता है। छनते समय वह नीचेके कलशमें गिरता है और उसके कारण शब्द होता है, उस अपने शब्दसे वह देवोंको बुलाता है। यह आलंकारिक भाषा है।

६ क्रन्दन् देवान् अजीजनः [ ७६० ]- छलनीसे नीचे गिरते हुए जो सोमका शब्द होता है, उससे मानो वह देवोंको बुलाता है।

७ विपश्चितः ऊर्मयः सोमरसः आपः प्रनयन्ते [ ७६४ ]- ज्ञान बढानेवाले ये सोमरस लहरके रूपमें पानीके पास लेजाये जाते हैं अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

८ हे सोम ! देववीतये अर्णसा प्रपिप्ये [७६६]- हे सोम! तू देवोंके पीनेके लिए पानीमें मिलाया जाता है।

९ नदीषु गभस्त्योः आ हिन्वन्ति [ ७६८ ]- नदीके पानीमें वह सोमरस हाथोंसे मिलाया जाता है। यहां "नदीषु" " नदियोंमें मिलाया जाता है " ऐसा कहा है। " नदीके पानीमें " कहनेके स्थानपर " नदियोंमें " ही कह दिया है। अंशके लिए पूर्णका प्रयोग वेदोंमें होता है। " जल " के लिए " नदी " का प्रयोग आलंकारिक है।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमरस निकालने, पानीमें मिलाने और छाननेका वर्णन है।

१० गोभिः श्रीणन्तः स्वादु अकर्म [ ७३६ ]- गायके दूधमें सोमरस मिलाकर उसे हमने मीठा कर दिया है।

११ जातं अप्तुरं भङ्गं, गोभिः परिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः [ ७६२ ]- सोमरस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाते हैं, उस शत्रुको मारनेवाले सोमको गायके दूधमें मिलाते हैं, तब उसके पास देव जाते हैं। रस निकालना, पानी मिलाना, छानना और उसमें गायका दूध मिलाना बादमें पीना अथवा हवनमें उसकी आहुति देकर फिर पीना। यह क्रम है सोमके तैय्यार करनेका।

१२ बभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया द्रोणान् गोमन्तं वाजं अभि अक्षरन् [ ७६५ ]- स्वच्छ सोमरस पानीकी धाराके साथ कलसेमें तथा गोदुग्धरूपी अन्नके साथ मिलाये जाते हैं।

१३ अंशोः पयसा मधुश्च्युतं कोशं अच्छ [७६७] –सोमरस दूधमें मिलानेके बाद उसे मीठे रसवाले बर्तनमें डालते हैं।

१४ गोभिः अज्यते [ ७७० ]- गायके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है। यहां " गो " पद गायके दूधका वाचक है।

१५ मर्ज्यः अर्जुनः अत्के आ अव्यत् [ ७६७ ]- शुद्ध होनेवाला सोम बर्तनमें छलनीसे छाना जाता है।

१६ रेभन् पवित्रं विश्वतः पर्येषि [ ७७२ ]- शब्द करता हुआ तू छलनीसे नीचेके बर्तनमें जाता है।

१७ अया पवस्व [ ७७२ ]- धार बांधकर छनता जा।

१८ मधोः धारा असृक्षत [ ७७२ ]- मीठे रसकी धारा नीचे गिरती है।

१९ हर्यत हरिः, स्तोतृभ्यः वीरवत् यशः अभ्यर्षन् रंह्या ह्वरांसि अति पवते [ ७७३ [- हरे रंगका सोमरस स्तोताओंको वीर पुत्रोंके साथ मिलनेवाला यश देकर छलनीसे छनता है।

२० अयं सूर्यः इव उपदृक् [ ७५६ ]- यह सूर्यके समान तेजस्वी और सबोंको देखनेवाला है।

२१ अयं पुनानः सोमः विश्वा भुवना उपरि, देवो न सूर्यः तिष्ठति [ ७५७ ]- यह स्वच्छ होनेवाला सोमरस सब भुवनोंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होता है।

इस सोमरसको हवन करके देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है।

२२ हे इन्द्र ! त्वा अस्मिन् सधमादे [ ७३६ ]- हे इन्द्र ! तुझे इस यज्ञमें बुलाया जाता है।

२३ इदं सुतं अनु पिब [७३७]- इस सोमरसको तू पी।

२४ ते यः स्वधां अनु असत [ ७३८ ]- तेरे लिए सोमरस अन्नके समान है।

२५ सुते तन्वं नियच्छ [ ७३८ ] सोमयज्ञमें अपनेको लेजा।

२६ सोम्य ! स त्वा ममत्तु [ ७३८ ]- सोम पीनेवाले इन्द्र ! यह सोम तुझे आनन्द देवे।

२७ स ते कुक्ष्योः प्राश्नातु [७३९]- वह तेरे कोखोंमें भर जावे।

२८ सोम्यं मधु पिबतं [ ७५४ ]- सोमके मधुर रसको पियो।

२९ देवयुः [७७२]- यह सोम देवोंके पास जानेवाला है।

३० विश्वस्य मतिं आ विवशत् [ ७७० ]- सबकी बुद्धियोंको यह अपने अधिकारमें रखता है। सबकी बुद्धिपर अपना प्रभाव डालता है।

३१ उदरं सुपूर्णं सुतं अन्धः पिब [ ७३४ ]- पेट भरकर सोमरसरूपी अन्न पी।

३२ मदच्युतः सोमासः सुताः विदथे मघोनां नः श्रवसे प्राक्रमुः [ ७६९ ]- आनन्द बढानेवाले सोमरस यज्ञमें यजमानका यश बढाते हैं।

## शत्रुको भयभीत करना

सोमरस पीनेके बाद मनका उत्साह बढता है, शरीरकी शक्ति बढती है। और शत्रुको भय हो ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न होता है—

३३ हे सोम ! उपस्थुषः उपशिक्ष, शत्रवे भियसं आधेहि [ ७६१ ] हे सोम ! पास बैठनेवालोंसे कह कि वे शत्रुको भयभीत करें।

शत्रुको भयभीत करने योग्य बल सोमरसको पीनेसे बढता है। सब देव इसे पीकर सामर्थ्यवान् होते हैं और शत्रुओंको हराते हैं।

---

# सुभाषित

इस दूसरे अध्यायमें सुभाषित इस प्रकार हैं—

१ विश्वा-साहं, शतक्रतुं, चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं प्र गायत [ ७१३ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले सैंकडों प्रकारके कर्म करनेवाले मनुष्योंमें बहुत महान् इन्द्रकी स्तुति करो।

२ नृतुः नः महोनां वाजानां दाता [ ७१५ ]- वह इन्द्र सबोंको चलानेवाला और हमें बहुतसे धन और अन्नका देनेवाला है।

३ वः हर्यश्वाय सोम-पाव्ने प्रगायत [ ७१६ ]- हे मित्रो ! तुम घोडोंके रखनेवाले, सोम पीनेवाले इन्द्रके लिए आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंका गान करो।

४ सु-दानवः सत्य-राधसः [ ७१७ ]- यह इन्द्र

उत्तम दान देनेवाला और ईमानदारीसे धन अपने पास रखनेवाला है।

५ वाज-युः, गव्युः, हिरण्य-युः [ ७१८ ]- वह इन्द्र हमें अन्न, गाय, और सोना देनेवाला है।

६ इन्द्र ! त्वायन्तः सखायः त्वा [ ७१९ ]- हे इन्द्र ! तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम मित्र तेरी स्तुति करते हैं।

७ अपसः तव नविष्ठौ अन्यत् न घ आ पपन [ ७२० ]- हे इन्द्र ! यज्ञकर्मोंमेंसे तेरे नये यज्ञमें तेरे स्तोत्रके सिवाय मैं दूसरेके स्तोत्र नहीं कहूंगा।

८ तव इत् उ स्तोमैः चिकेत [ ७२० ]- तेरे ही स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ।

९ देवाः सुन्वंतं इच्छन्ति [ ७२१ ]- देव सोमरस निकालनेवालेकी इच्छा करते हैं, अर्थात् सोमयज्ञ करनेवालेसे प्रेम करते हैं।

१० स्वप्नाय न स्पृहयन्ति [७२१]- आलसी मनुष्यको पसन्द नहीं करते।

११ अ-तन्द्राः प्र-मादं यन्ति [ ७२१ ]- परिश्रमी देवता परम आनन्द देनेवाले सोमको प्राप्त करते हैं, अर्थात् उद्यमी मनुष्य ही सुखको प्राप्त कर सकता है।

१२ यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि [ ७२३ ]- इस इन्द्रमें सभी शोभायें रहती हैं।

१३ सप्त संसदः रणन्ति [ ७२३ ]- इन्द्रकी स्तुति यज्ञके सात ऋत्विज करते हैं।

१४ देवाः त्रि-कद्रुकेषु चेतनं अत्नत [ ७२४ ]- सब देवता यज्ञके तीन दिवसमें उत्साह बढानेवाले यज्ञका विस्तार करते हैं।

१५ शाचि-गोः-शाचि-पूजनः [ ७२६ ]- यह इन्द्र सामर्थ्यवान् किरणोंसे युक्त और शक्तिमान् होनेके कारण पूजा जाता है।

१६ हे आ-खण्डल ! प्र हूयसे [७२६]- हे शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! सोमके लिए तुझे बुलाते हैं।

१७ शृंग-वृषः न पात् [७२७]- किरणोंके विस्तारको कम न करनेवाला यह इन्द्र है।

१८ इन्द्र ! महा-हस्ती न क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन सं गृभाय [ ७२८ ]- हे इन्द्र ! महान् हाथोंवाला तू हमारे लिए तेजस्वी विलक्षण और स्वीकार करने योग्य धन देनेके लिए उन्हें दायें हाथमें धारण कर।

१९ तुविकूर्मिः, तुवि-देष्णः, तुवि-मघः, तुवि-मात्रं अवोभिः [ ७२९ ]- अनेक पराक्रम करनेवाला, देने योग्य बहुतसे धनोंको अपने पास रखनेवाला, महान् धनवान्, महान् आकारवाला, संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त यह इन्द्र है।

२० हे शूर ! दित्सन्तं त्वा देवाः न, मर्तासः न वारयन्ते [ ७३० ]- हे वीर इन्द्र ! दान देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे देव अथवा मनुष्य, कोई भी रोक नहीं सकता।

२१ त्वा अविष्यवः मूराः उपहस्वानः मा दभन् [ ७३२ ]- तुझे रक्षणकी इच्छा करनेवाले मूर्ख और उपहास करनेवाले भी कष्ट न देवें।

२२ ब्रह्म-द्विषं मा कीं वनः [ ७३२ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी तू सहायता मत कर।

२३ राधानां-पते गिर्वणः ! ओजसा पिव [७३७]- हे धनपते ! स्तुत्य इन्द्र ! बलसे युक्त तू इस सोमरसको पी।

२४ हे शूर ! राधसा बाहू प्र [ ७३९ ]- धन देनेके लिए तेरे बाहु भी सोमरसको प्राप्त हों।

२५ पुरू-तमः पुरूणां वार्याणां ईशानः [ ७४१ ]- वह इन्द्र बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाला, और स्वीकार करने योग्य बहुतसे धनोंका स्वामी है।

२६ सः घ नः योगे, रायें, पुरन्ध्यां आ भुवत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र निश्चयसे हमारे पुरुषार्थके कामोंमें, धन प्राप्त करनेके कामोंमें, बहुत बुद्धिका प्रयोग करके किए जानेवाले कार्योंमें सहायक होवे।

२७ योगे-योगे, वाजे-वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- प्रत्येक कर्मके प्रारम्भमें और प्रत्येक युद्धमें अत्यन्त बलवान् इन्द्रको संरक्षण करनेके लिए हम बुलाते हैं।

२८ प्रत्नस्य ओकसः, तुवि-प्रतिं नरं अनु हुवे [ ७४४ ]- अपने पुराने घरसे बहुतोंके पास जानेवाले नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं। " प्रत्नस्य ओकसः " इन्द्रका सनातन घर यह विश्व ही है।

२९ सः महान् हि [ ७४५ ]- वह महान् है।

३० सः देवानां सदने वृधः सु-पारः सु-श्रवस्तमः सं अप्सु-जित् [ ७४७ ]- वह इन्द्र देवोंके स्थानसे यजमानको बढानेवाला, अच्छी तरहसे दुःखोंसे पार करानेवाला, उत्तम यशस्वी और राक्षसोंको जीतनेवाला है।

३१ हे इन्द्र ! सुम्ने अन्तमः भव, वृधे सखा [ ७४८ ]- हे इन्द्र ! सुखके समय भी हमारे पास रह, उसी प्रकार उन्नतिके समय भी हमारे पास रह।

३२ ऊर्जः न-पातं, प्रियं, चेतिष्ठं अरतिं सु-अध्वरं विश्वस्य, दूतं अमृतं अग्निं आ हुवे [ ७४९ ]- बलको कम न करनेवाले प्रिय, ज्ञान देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम यज्ञ करनेवाले सभी याजकोंके लिए दूतके समान उस अमर अग्निको हम बुलाते हैं।

३३ सः अरुषा विश्व-भोजसा योजते [ ७५० ]- वह अग्नि तेजस्वी, सबके भक्षक अश्वोंको अपने रथमें जोडता हैं।

३४ सु-ब्रह्मा, यज्ञः सु-शमी सु-आहुतः [७५१]- वह अग्नि उत्तम ज्ञानी, पूज्य, उत्तम आहुतियोंसे प्रज्वलित हुआ है।

३५ आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता उषाः महीतमः चक्षुषा उप-वृणुते उ [ ७५१ ] - आकर चमकनेवाली द्युलोककी पुत्री उषा महान् अन्धकारका प्रकाशसे निवारण करती है।

३६ सूनरी ज्योतिः कृणुते [ ७५१ ]- उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा प्रकाश करती है।

३७ उषः ! तव सूर्यस्य च व्युषि भक्तेन संगमेमहि [ ७५२ ]- हे उषे ! तेरे और सूर्यके प्रकाश हो जाने पर अन्नसे हम युक्त हों।

३८ अश्विना ! इमाः दिविष्टयः उस्रौ वां हवन्ते [७५३] हे अश्विनौ देवो ! इस स्वर्गकी इच्छा करनेवाली प्रजायें सबको बसानेवाले तुम्हें सहायताके लिए बुलाती हैं।

३९ विशं विशं गच्छथः [ ७५३ ]- तुम प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो।

४० नरा ! युवं समनसा चित्रं भोजनं ददथुः [ ७५४ ]- हे नेता अश्विदेवो ! तुम विलक्षण भोजन देते हो।

४१ शुक्रं सहस्रसां पयः [ ७५५ ]- तेजस्वी और अनेकों प्रकारकी इच्छा पूर्ण करनेवाला यह सोमरस है।

४२ अयं सूर्यः इव उपदृक् [७५६]- यह सोम सूर्यके समान सबको देखनेवाला है।

४३ अयं सोमः विश्वानि भुवना उपरि तिष्ठति [ ७५७ ]- यह सोमरस सब लोकों पर प्रकाशित होता है।

४४ पवमान ! शत्रवे भियसं आधेहि [ ७६१ ]- हे सोम ! शत्रुको भय प्राप्त हो ऐसा कर।

४५ ईं विश्वस्य मतिं आ विवशत् [ ७७० ]- यह सोम सबकी बुद्धिको वशमें करता है।

४६ हर्यतः हरिः स्तोतृभ्यः वीरवत् यशः अभ्यर्षत् [ ७७३ ]- चाहनेके योग्य यह हरे रंगका सोम स्तुति करनेवालोंको वीर पुत्रोंसे युक्त यश देता है।

४७ तत् वचः मर्तः न प्र नष्ट [ ७७४ ]- वह हीन वचन मनुष्य न सुने।

४८ अ-राधसं श्वानं अपहत [ ७७४ ]- अयोग्य कुत्तेको सोमसे दूर करो।

---

## उपमा

इस अध्यायमें निम्नलिखित उपमायें आई हैं—

१ भीमं गां न [ ७३० ]- जिस प्रकार भयंकर बैलका निवारण कोई नहीं कर सकता, उसी प्रकार " दित्सन्तं त्वा न देवाः न मर्तासः वारयन्ते " दान देनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रका निवारण देव अथवा मनुष्य कोई भी नहीं कर सकता।

इस मंत्रमें " गां " पद बैलका वाचक है।

२ यथा गौरः सरः [ ७३३ ]- जिस प्रकार गौर मृग सरोवरपर पानी पीता है, उसी प्रकार " गो-परीणसं पिब " गायके दूधमें मिले हुए सोमरसको पी। मृग सरोवरके पास जाता है और पेट भरकर पानी पीता है, उसी प्रकार इन्द्र भी यज्ञमें जाकर पेट भरकर सोम पीवे।

३ नदीषु अश्वः न [ ७३५ ]- नदीके पानीमें जैसे घोडे धोये जाते हैं, उसी प्रकार " अद्रिभिः सुतः नृभिः धौतः अव्यावारैः परिपूतः " पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया, याजकोंके द्वारा पानीसे धोकर स्वच्छ किया गया, भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छानकर साफ किया गया सोमरस तैय्यार किया जाता है।

४ देवो सूर्यः न [ ७५७ ]- सूर्य जिस प्रकार सबसे ऊंचे स्थानपर शोभित होता है, उसी प्रकार " अयं पुनानः सोमः विश्वा भुवना उपरि तिष्ठति " यह छानकर साफ किया गया सोमरस सब लोकोंमें अन्य सब पेयोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। जैसे सूर्य तेजस्वी और श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सोम तेजस्वी और श्रेष्ठ है।

५ वनानि महिषा इव [७६४]- जैसे व तालाबके पास भैंसे जाते हैं, उसी प्रकार " सोमासः आपः प्र नयन्ते " सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

६ सिन्धुः न [७६७]- जिस प्रकार नदी पानीसे भरी रहती है, उसी प्रकार सोमरस " अर्णसा प्र पिप्ये "

पानीसे पूर्ण किया जाता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

७ मदिरः न जागृविः [ ७६७ ]– आनन्द बढानेवाले पदार्थके समान तू लोगोंको जाग्रत करनेवाला उनका उत्साह बढानेवाला है। सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और उत्साह बढता है।

८ हर्यतः सूनुः न [ ७६८ ]– प्रिय पुत्रके समान यह " मर्ज्यः अर्जनः " शुद्ध होनेवाला और छाना गया सोम प्रिय है।

९ अपसः रथं यथा [ ७६८ ]– वेगवान् रथको जैसे युद्धमें ले जाते हैं, वैसे ही " नदीषु गभस्त्योः आ हिन्वन्ति " सोमरसको नदीके जलोंमें हाथोंसे मिलाते हैं। वेगसे सोम पानीमें ले जाते हैं, जैसे रथ युद्धमें जाता है।

१० हंसः गणं यथा [७७०] - हंस जैसे अपने झुण्डमें जाता है, वैसे ही सोम " विश्वस्य मतिं आविवशत् " सबकी बुद्धियोंमें जाता है, बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा देता है।

११ अत्यः न [ ७७० ]– घोडेको जिस प्रकार नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम " गोभिः अज्यते " गायके दूधमें मिलाते हैं, उसे दूधसे नहलाते हैं।

१२ भृगवः मखं न [ ७७४ ]- जिस प्रकार भृगुओंने अयोग्य यज्ञको दूर किया, उसी तरह यज्ञसे " श्वानं अपहत " कुत्तेको दूर करो।

इस प्रकार दूसरे अध्यायका निरीक्षण यहां किया है। पाठक वृन्द इस अध्यायके मंत्रोंका सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें।

---

# द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ७१३ | ८।९२।१ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| ७१४ | ८।९२।२ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | गायत्री |
| ७१५ | ८।९२।३ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| ७१६ | ७।३२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| ७१७ | ७।३२।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| ७१८ | ७।३२।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| ७१९ | ८।२।१६ | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | " | " |
| ७२० | ८।२।१७ | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | " | " |
| ७२१ | ८।२।१८ | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | " | " |
| ७२२ | ८।९२।१९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| ७२३ | ८।९२।२० | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| ७२४ | ८।९२।२१ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| ७२५ | ८।१७।११ | इरिम्बिठिः काण्वः | " | " |
| ७२६ | ८।१७।१२ | इरिम्बिठिः काण्वः | " | " |
| ७२७ | ८।१७।१३ | इरिम्बिठिः काण्वः | " | " |
| ७२८ | ८।८१।१ | कुसीदी काण्वः | " | " |
| ७२९ | ८।८१।२ | कुसीदी काण्वः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ७३० | ८।८१।३ | कुसीदी काण्वः | इन्द्रः | गायत्री |
| ७३१ | ८।४५।२२ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| ७३२ | ८।४५।२३ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| ७३३ | ८।४२।२४ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| ७३४ | ८।१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ७३५ | ८।१।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ७३६ | ८।१।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| ७३७ | ३।५१।१० | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ७३८ | ३।५१।११ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ७३९ | ३।५१।१२ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| ७४० | १।५।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ७४१ | १।५।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ७४२ | १।५।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ७४३ | १।३०।७ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| ७४४ | १।३०।९ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| ७४५ | १।३०।८ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| ७४६ | ८।१३।१ | नारदः काण्वः | ,, | उष्णिक् |
| ७४७ | ८।१३।२ | नारदः काण्वः | ,, | ,, |
| ७४८ | ८।१३।३ | नारदः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ७४९ | ७।१६।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ७५० | ७।१६।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ७५१ | ७।८१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | उषा | ,, |
| ७५२ | ७।८१।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ७५३ | ७।७४।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अश्विनौ | ,, |
| ७५४ | ७।७४।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| ७५५ | ७।१४।१ | अवत्सारः काश्यपः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७५६ | ९।५४।२ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ७५७ | ९।५४।३ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ७५८ | ९।३।९ | शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ७५९ | ९।४२।२ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ७६० | ९।४२।४ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ७६१ | ९।११९।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७६२ | ९।६१।१३ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ७६३ | ९।११।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( ६ ) | | |
| ७६४ | ९।३३।१ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ७६५ | ९।३३।२ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ७६६ | ९।३३।३ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ७६७ | ९।१०७।११ | सप्तर्षयः | " | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ७६८ | ९।१०७।१३ | सप्तर्षयः | " | " |
| ७६९ | ९।३२।१ | श्यावाश्व आत्रेयः | " | गायत्री |
| ७७० | ९।३२।३ | श्यावाश्व आत्रेयः | " | " |
| ७७१ | ९।३२।२ | श्यावाश्व आत्रेयः | " | " |
| ७७२ | ९।१०६।१४ | अग्निश्चाक्षुषः | " | उष्णिक् |
| ७७३ | ९।१०६।१३ | अग्निश्चाक्षुषः | " | " |
| ७७४ | ९।१०१।१३ | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | " | अनुष्टुप् |

# अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १–१९ ) १ जमदग्निर्भार्गवः; २, ५, १५ अमहीयुरांगिरसः; ३ कश्यपो मारीचः; ४, १० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६–७ मेधातिथिः काण्वः; ८ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ उपमन्युर्वासिष्ठः; १२ शंयुर्बार्हस्पत्यः; १३ वालखिल्याः; प्रस्कण्वः काण्वः; १४ नृमेध आंगिरसः; १६ नहुषो मानवः; १७ ( १–२ ) सिकता निवावरी; १७ ( ३ ) पृश्नियोऽजाः; १८ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; १९ जेता माधुच्छन्दसः; ॥ १–५, १०–११, १५–७ पवमानः सोमः; ६ अग्निः; १७ मित्रावरुणौ; ८, १२–१४, १८–१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १–१०, १५, १८ गायत्री; ११ त्रिष्टुप्; १२–१४ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ), १६, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
( ऋ. ९।६२।२५ )

७७६ त्वꣳसमुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।२६ )

७७७ तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ ( यी ) ॥
( ऋ. ९।६२।२७ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ७७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अग्रियः ) तू आगेके भागमें रहनेवाला अर्थात् मुख्य है, तू ( चित्राभिः ऊतिभिः ) अपनी विलक्षण रक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर ( वचः पवस्व ) हमारी स्तुतिको सुन, उसी प्रकार तू ( विश्वानि काव्या अभि ) अपने सब स्तुतिके काव्योंको सुन ॥ १ ॥

१ अग्रियः— आगे रहनेवाला ।
२ चित्राः ऊतयः— विशेष संरक्षणकी शक्ति अपने पास हो।
३ विश्वानि काव्या अभि— सब स्तुतिके काव्य हों, ऐसे कर्म करने चाहिए ।

[ ७७६ ] हे ( विश्व-चर्षणे ) सबका निरीक्षण करनेवाले सोम ! ( अग्रियः ) तू आगे चलनेवाला होकर ( वाचः ईरयन् ) स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ ( समुद्रियाः आपः ) अन्तरिक्षके जलको ( पवस्व ) प्राप्त कर । सोमरसमें जल मिलाया जाता है ॥ २ ॥

१ विश्व-चर्षणिः— सब कर्मोंका अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिए । सार्वजनिक हित करनेवाला ।
२ अग्रियः— ऊंचे स्थान पर रहें, नेता बनें ।
३ वाचः ईरयन्— दूसरोंकी वाणी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो, ऐसे उत्तम कर्म करने चाहिए ।
४ समुद्रियाः आपः पवस्व— सोमरसमें अन्तरिक्षसे वर्षाके रूपमें प्राप्त होनेवाले जलको मिलावें ।

[ ७७७ ] हे ( कवे ) दूरदर्शी सोम ! ( तुभ्यं ) तेरी ( महिम्ने ) महानताके कारण ( इमा भुवना तस्थिरे ) ये भुवन स्थिर हैं, उसी प्रकार ( धेनवः ) ये गायें ( तुभ्यं धावन्ति ) तुझे दूध देनेके लिए तेरे पास दौड रहीं हैं ॥ ३ ॥

*

७७८ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥१॥ ( ऋ. ९।६१।२८ )

७७९ यस्य ते सख्ये वयꣳसासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।२९ )

७८० या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥ २ ( इ ) ॥ ( ऋ. ९।६१।३० )

७८१ वृषा सोम द्युमाꣳअसि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।१ )

---

१ कविः— दूरदर्शी, आगे होनेवाली बातोंको पहलेसे ही जान लेनेवाला।

२ तुभ्यं महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे — तेरी महिमा बढानेके लिए ये भुवन प्रयत्न कर रहे हैं। अपना यश बढे, इसके लिए यत्न करना चाहिए। अपनी महिमा जिससे कम हो ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए।

३ धेनवः तुभ्यं धावन्ति— गायके दूध सोमरसमें मिलाये जायें, इसलिए गायें सोमके पास जाती हैं। सोमयज्ञके पास पहुंचती हैं।

[ ७७८ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( सुतः वृषा ) निकाला गया यह सोमरस बल बढानेवाला है, तू ( पवस्व ) छनता जा। ( जने ) मनुष्योंमें ( नः यशसः कृधि ) हमें यशस्वी कर. और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंका नाश कर ॥ १ ॥

१ सुतः वृषा— सोमरस बल बढानेवाला है।

२ जने नः यशसः कृधि— मनुष्योंके बीचमें हमें यशस्वी बना।

३ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंको पराजित कर, सब शत्रुओंको नष्ट कर।

[ ७७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( यस्य ते सख्ये ) जिस तेरे मित्र होकर हमने ( तव उत्तमे द्युम्ने ) तेरे उत्तम तेजको प्राप्त किया है, इस कारण ( पृतन्यतः सासह्याम ) सेनाओंके साथ आक्रमण करनेवाले शत्रुको हम पराजित कर सकते हैं ॥ २ ॥

१ तव उत्तमे द्युम्ने सख्ये— तेरी उत्तम और तेजस्वी मित्रताको प्राप्त करके हम उत्तम तेजस्वी बनें।

२ पृतन्यतः सासह्याम— सेनाके साथ चढते चले आनेवाले शत्रुका पराभव हम कर सकें, ऐसा कर।

[ ७८० ] हे ( सोम ) सोम ! ( ते ) तेरे ( या भीमानि ) जो भयंकर ( तिग्मानि आयुधा ) और तीक्ष्ण शस्त्र ( धूर्वणे ) शत्रुके नाश करनेके लिए हैं, उसकी सहायतासे ( समस्य निदः ) सब शत्रुओंकी निन्दासे ( नः रक्ष ) हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

१ भीमानि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे— भयंकर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र शत्रुके नाश करनेके लिए अपने पास रखने चाहिए।

२ समस्य निदः नः रक्ष— सब शत्रुकी निन्दासे हे अपना संरक्षण कर सकते हैं।

उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे मनुष्य अपना उत्तम संरक्षण कर सकता है। इसलिए उत्तम शस्त्रास्त्रोंको अपने पास तैय्यार रखना चाहिए।

[ ७८१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( वृषा द्युमान् असि ) बलवान् और तेजस्वी है, हे ( देव ) सोमदेव ! ( वृषा ) तू कामनाओंको तृप्त करनेवाला है, ( वृषः-व्रतः ) बल बढानेवाले ये तेरे व्रत हैं, तू ( वृषा धर्माणि दध्रिषे ) अपने बलसे सब करने योग्य धर्मोंको धारण करता है ॥ १ ॥

१ वृषा द्युमान्— मनुष्य बलवान् और तेजस्वी हों।

२ देव— देवत्व प्राप्त करें।

३ वृष-व्रतः— बल बढानेवाले व्रतोंका ही पालन करें।

४ वृषा धर्माणि दध्रिषे— अपने बलसे सब कर्तव्योंको स्वयं ही करनेका निश्चय कर।

७८२ वृष्णस्ते वृष्ण्यंशवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।२ )

७८३ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥ ३ (लु) ॥ ( ऋ.९।६४।३ )

७८४ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।४ )

७८५ यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।६ )

७८६ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥ ४ ( यौ ) ॥ ( ऋ ९।६५।५ )

७८७ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।४ )

---

[ ७८२ ] हे ( वृषन् ) बलवान् सोम ! ( वृष्णः ते शवः ) बलवाले तेरा सामर्थ्य ( वृष्ण्यं ) बहुत प्रभावशाली है, ( वनं वृषा ) तेरी सेवा बलको बढानेवाली है, ( सुतः वृषा ) तेरा रस बल बढानेवाला है, ( सः त्वं वृषा इत् असि ) वह तू स्वयं भी बल बढानेवाला है ॥ २ ॥

१ वृषाः ते शवः वृष्ण्यं — बल बढानेवाले तेरा सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली है ।

२ सः त्वं वृषा इत् असि — वह तू निश्चयसे बलवान् है ।

साधक उत्तम बल प्राप्त करके उत्तम सामर्थ्यसे युक्त हों ।

[ ७८३ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृषा ) तू बलवान् है, ( अश्वः न ) घोडेके समान ( सं चक्रदः ) शब्द करता है और ( गाः अर्वतः ) गाय और घोडे देता है, इसलिए ( नः राये दुरः विवृधि ) हमारे लिए धनके द्वार खोल दे ॥३॥

१ नः राये दुरः विवृधि— हमारे लिए धन प्राप्त करनेके दरवाजे खोल दे । धर्म मार्गसे धन मिले, ऐसा कर, सन्मार्गसे धन मिले ।

[ ७८४ ] हे सोम ! तू निश्चयसे ( वृषा हि असि ) बल बढानेवाला है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( स्वः-दृशं ) आत्मदर्शी और ( भानुना द्युमन्तं ) अपने तेजसे तेजस्वी ( त्वा हवामहे ) ऐसे तुझे हम अपने पास बुलाते हैं ॥ १ ॥

१ स्वः-दृश्— अपने तेजसे चमकनेवाला ।

२ भानुना द्युमन्तं — अपने तेजसे तेजस्वी ।

३ हवामहे— तेजस्वीको अपने पास बुलावें, और उसके तेजसे तेजस्वी हों ।

[ ७८५ ] हे सोम ! तू ( आयुभिः मर्मृज्यमानः ) ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया जाता है, और ( यत् अद्भिः परिषिच्यसे ) जब जलसे मिलाया जाता है, तब ( द्रोणे सधस्थं अश्नुषे ) कलसेमें स्थान प्राप्त करता है ॥ २ ॥

ऋत्विज सोमरस छानते हैं, उसे पानीमें मिलाते हैं, और कलशमें भरकर रखते हैं ।

[ ७८६ ] ( सु-आयुध ) उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त सोम ! ( मन्दमानः ) तू आनन्द देनेवाला होकर ( सु-वीर्यं आ पवस्व ) उत्तम वीर्य हमें दे और हे ( इन्दो ) सोम ! ( इह उ सु आगहि ) यहाँ इस यज्ञमें उत्तम रीतिसे आ ॥३॥

१ मन्दमानः सु-वीर्यं आ पवस्व— आनन्द देनेवाला होकर उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे ।

२ सु-आयुध— उत्तम शस्त्रास्त्रोंको पासमें रखना चाहिए । यहां स्रुचा, स्फ्य आदि यज्ञके साधन आयुध शब्दसे अभीष्ट हैं । हर कार्यके अपने पृथक् पृथक् आयुध होते हैं ।

[ ७८७ ] हे सोम ! ( पवित्रं अभ्युन्दतः ) छाननी द्वारा छाने जानेवाले ( पवमानस्य ते ) और पवित्र होनेवाले तुझसे हम ( सखित्वं आ वृणीमहे ) मित्रताकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

७८८ ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।९ )

७८९ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ ५ ( ला ) ॥
( ऋ. ९।६१।६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७९० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।१ )

७९१ अग्निमग्निꣳहवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।२ )

७९२ अग्ने देवाꣳ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ ६ ( यौ ) ॥
( ऋ. १।१२।३ )

७९३ मित्रं वयꣳ हवामहे वरुणꣳ सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२३।४ )

---

[ ७८८ ] हे सोम ! ( ते ये ऊर्मयः ) तेरी जो लहरें हैं, वे ( धारया पवित्रं अभिक्षरन्ति ) एक धारासे छननीसे नीचे गिर रही हैं, ( तेभिः नः मृडय ) उनके द्वारा हमें सुख मिले ऐसा कर ॥ २ ॥

[ ७८९ ] हे सोम ! ( विश्वतः ईशानः ) तू सबका स्वामी है, ( सः पुनानः ) वह तू रस निकाल कर छाना जानेके बाद ( नः ) हमें ( रयिं वीरवतीं इषं आ भर ) धन और पुत्रपौत्रयुक्त अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

१ विश्वतः ईशानः— सब प्रकार सबका स्वामी ।
२ पुनानः— पवित्र होकर ।
३ रयिं वीरवतीं इषं आ भर— धन और पुत्र देनेवाले अन्न हमें भरपूर दे ।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७९० ] ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( विश्व-वेदसं ) सब धन पासमें रखनेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम ढंगसे सिद्ध करनेवाले ( दूतं अग्निं वृणीमहे ) देवोंको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी हम आराधना करते हैं ॥ १ ॥

१ होता— श्रेष्ठ देवोंको बुलाकर लानेवाला ।
२ विश्व-वेदाः— सब प्रकारके धनोंको अपने पास रखनेवाला ।
३ यज्ञस्य सुक्रतुः— यज्ञको उत्तम ढंगसे करनेवाला ।
४ दूतः— हवि देवोंको पहुंचानेवाला ।
५ अग्निः— "अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति" ( निरुक्त )- अग्रणी, आगे ले जानेवाला, मंजिल तक पहुंचानेवाला ।

[ ७९१ ] ( विश्पतिं ) प्रजाओंके पालन करनेवाले ( हव्य-वाहं ) हविको देवोंके पास पहुंचानेवाले ( पुरु-प्रियं ) बहुतोंको प्रिय लगनेवाले ( अग्निं अग्निं ) आगे ले जानेवाले नेता अग्निको ( हवीमभिः सदा हवन्ते ) हवनके मंत्रोंसे हम सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७९२ ] हे ( अग्ने ) अग्नि देव ! ( जज्ञानः ) अरणियोंसे उत्पन्न होनेवाला तू ( वृक्त-बर्हिषे ) आसन फैलानेवाले यजमानके लिए ( इह देवान् आ वह ) इस यज्ञमें देवोंको बुला ला, तू ( नः होता ईड्यः असि ) देवोंको बुलानेवाला, स्तुत्य और हमारा सहायक है ॥ ३ ॥

[ ७९३ ] ( वयं ) हम ( सोम-पीतये ) जो यज्ञमें आनेवाले और पवित्र बलयुक्त हैं, उन ( मित्रं वरुणं ) मित्र और वरुणको ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥

७९४ ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२३।५ )
७९५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ ७ ( त्रा ) ॥
( ऋ. १।२३।६ )

७९६ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥ ( ऋ १।७।१ )
७९७ इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥ ( ऋ १।७।२ )
७९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।४ )
७९९ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ ८ ( खा ) ॥
( ऋ. १।७।३ )

८०० इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९४।४ )
८०१ ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्राय ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९४।५ )

---

[ ७९४ ] ( यौ ऋतेन ) जो सत्यवचनसे ( ऋतावृधौ ) सत्यका संवर्धन करते हैं, जो ( ज्योतिषः-पती ) तेजके स्वामी हैं, ( ता मित्रावरुणा ) उन मित्र और वरुणको मैं ( हुवे ) बुलाता हूँ ॥ २ ॥

१ ऋतेन ऋतावृधौ— सत्य नियमका पालन करके सत्यके मार्गकी उन्नति करते हैं ।

२ ज्योतिषः-पती— प्रकाशके स्वामी, प्रकाश फैलाते हैं ।

[ ७९५ ] ( वरुणः मित्रः ) वरुण और मित्र ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) अपने सब संरक्षणके साधनोंसे ( प्राविता भुवत् ) हमारे संरक्षण करनेवाले हों, ( नः सु राधसः करतां ) और हमें उत्तम धनसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ ७९६ ] ( गाथिनः ) सामगान करनेवालोंने ( इन्द्रं इत् ) इन्द्रकी ही ( बृहत् अनूषत ) बृहत् नामक सामगानसे स्तुति की । ( अर्किणः ) अर्चना करनेवालोंने ( अर्केभिः इन्द्रं ) मंत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति की, उसी प्रकार ( वाणीः इन्द्रं ) स्तोत्रोंसे भी इन्द्रकी ही स्तुति की ॥ १ ॥

[ ७९७ ] ( वज्री हिरण्ययः इन्द्र इत् ) वज्रधारी, सोनेके आभूषण धारण करनेवाला इन्द्र ( वचो-युजा हर्योः ) कहनेसे [ रथमें ] जुड जानेवाले घोडोंको ( सचा ) एक साथ ( आ संमिश्लः ) अपने रथमें जोडनेवाला है ॥ २ ॥

[ ७९८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उग्रः ) वीर तू ( उग्राभिः ऊतिभिः ) संरक्षणके प्रबल साधनोंसे ( सहस्र-प्रधनेषु वाजेषु ) हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें ( नः अव ) हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः नः अव— तू उग्रवीर होकर उग्र संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ।

२ सहस्र-प्रधनेषु वाजेषु नो अव— हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर ।

[ ७९९ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दीर्घाय चक्षसे ) महान् प्रकाशके लिए ( दिवि सूर्यं आरोहयत् ) द्युलोकमें सूर्यको चढाया, उसी प्रकार ( गोभिः अद्रिं व्यैरयत् ) किरणोंसे मेघोंको प्रेरित किया ॥ ४ ॥

[ ८०० ] ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( इन्द्रे ) इन्द्रके पास और ( अग्नौ ) अग्निके पास ( बृहत् नमः सुवृक्तिं ) बहुत अन्न और उत्तम स्तुति ( ऐरयामहे ) पहुंचाते हैं, उसी प्रकार ( धिया धेनाः ) बुद्धिपूर्वक उनकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ८०१ ] ( ता हि ) उस इन्द्र और अग्निकी ( शश्वन्तः विप्रासः ) बहुतसे ज्ञानी मिलकर ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( इत्थं ईडते ) ऐसी स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( स-बाधः ) आपसमें झगडा करनेवाले ( वाज-सातये ) अन्न प्राप्तिके लिए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

८०२ ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥ ९ ( ह्रु ) ॥
( ऋ. ७।९४।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८०३ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )
८०४ तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥ ( ऋ. ९।६५।११ )
८०५ अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ १० ( ट ) ॥
( ऋ. ९।६५।१२ )
८०६ वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१३ )
८०७ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।१४ )

---

[ ८०२ ] ( विपन्यवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( प्रयस्वन्तः ) हविष्यान्नको पासमें रखनेवाले ( सनिष्यवः ) धन पानेकी इच्छा करनेवाले और ( मेध-साता ) यज्ञ करनेवाले हम ( ता वां ) उन तुम दोनों इन्द्र और अग्निको ( गीर्भिः हवामहे ) स्तुतिसे बुलाते है ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८०३ ] हे सोम ! तू ( वृषा ) बल बढानेवाला होकर ( धारया पवस्व ) एक धारासे छनता जा, और तू ( विश्वा ओजसा दधानः ) सब धनोंको अपने बलसे धारण करके ( मरुत्वते मत्सरः ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनन्द देनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ८०४ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( ओण्योः धर्त्तारं ) द्यावापृथिवीको धारण करनेवाले ( स्वः-दृशं वाजिनं ) आत्माको साक्षात् करनेवाले, बलवान् ( तं त्वा ) ऐसे उस तुझे मैं ( वाजेषु हिन्वे ) संग्राममें जानेके लिए प्रेरित करता हूं ॥ २ ॥

[ ८०५ ] हे सोम ! ( अया विपा ) इस अंगुलीसे ( चित्तः हरिः ) निचोडा गया हरे रंगवाला तू ( धारया पवस्व ) एक धारासे कलशमें छनता जा, और ( वाजेषु युजं चोदय ) युद्धमें जानेके लिए अपने मित्र इन्द्रको प्रेरित कर ॥ ३ ॥

[ ८०६ ] ( शोणः वृषा ) लाल रंगवाला बैल ( गाः अभि कनिक्रदत् ) गायको देखकर जिस प्रकार शब्द करता है, उस प्रकार ( नदयन् ) शब्द करनेवाला यह सोम है, हे सोम ! तू ( पृथिवीं उत द्यां एषि ) पृथ्वी और द्युलोकको प्राप्त होता है, ( आजौ ) युद्धमें ( इन्द्रस्य वग्नुः इव ) इन्द्रके शब्दके समान तेरे शब्दको ( आशृण्वे ) मैं सुनता हूँ, ( प्रचेतयन् ) अपने स्वरूपका ज्ञान देता हुआ ( इमां वाचं आ अर्षसि ) इस स्तुतिरूप वाणीको तू प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ ८०७ ] ( रसाय्यः ) प्रथम स्वयं मधुर और ऊपरसे ( पयसा पिन्वमानः ) गायके दूध मिलानेसे और अधिक ( मधुमन्तं ) मधुर हुए ( अंशुं ) सोमको ( ईरयन् एषि ) प्रेरणा करते हुए तू जाता है। हे ( सोम ) सोम ! ( परिषिच्यमानः पवमानः ) पानीमें मिलाकर छाना जानेवाला तू ( संतनिं कृण्वन् ) अपनी धारा बनाते हुए ( इन्द्राय एषि ) इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८०८ एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥ ११ (रि) ॥
( ऋ. ९।९७।१५ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥ ( ऋ ६।४६।१ )

८१० स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ १२ (फु) ॥
[ धा. १० । उ. २ । स्व. ९ ] ( ऋ. ६।४६।२ )

८११ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४९।१ )

---

[ ८०८ ] हे सोम ! ( मदिरः ) उत्साह बढानेवाला तू ( वध-स्नुं ) वृत्रवध होनेके बाद ( उद्ग्राभस्य नमयन् ) पानी बहानेवाले मेघको झुकाते हुए ( मदाय पवस्व ) आनन्द देनेके लिए छनता जा । ( रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः ) तेजस्वी रंगको धारण करते हुए ( सिक्तः ) पानीमें छनते हुए ( गव्युः ) गायके दूधकी इच्छा करते हुए ( नः परि अर्ष ) तू हमारे चारों ओर बह ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातौ ) अन्नकी प्राप्तिके लिए ( त्वां इत् हि हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं, हे इन्द्र ! ( सत्पतिं ) श्रेष्ठ पुरुषोंका पालन करनेवाले तुझे ( नरः ) लोग ( वृत्रेषु [ हवन्ते ] ) शत्रुके उत्पन्न होनेपर बुलाते हैं, उसी प्रकार ( अर्वतः काष्ठासु ) घोडोंके युद्धोंमें भी ( त्वां ) तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ८१० ] ( चित्र वज्रहस्त अद्रिवः ) हे विलक्षण पराक्रमी, वज्रधारी तथा पर्वतपर रहनेवाले इन्द्र ! ( धृष्णुया ) अपनी शत्रुनाशक शक्तिसे ( महः ) महान् हुआ तू ( स्तवानः ) स्तुति किए जानेके बाद ( गां अश्वं रथ्यं संकिर ) गाय, घोडे और रथ उत्तम प्रकारसे हमें दे, ( जिग्युषे ) विजयी पुरुषको ( सत्रा वाजं न ) जैसे एक साथ घोडे आदि पदार्थ तू देता है, उसी प्रकार हमें दे ॥ २ ॥

१ धृष्णुया महः— शत्रुके पराभव करनेकी शक्तिसे महानता प्राप्त होती है ।

२ जिग्युषे सत्रा वाजं— विजयी वीरको सहजमें ही अन्न और बल प्राप्त होता है ।

[ ८११ ] ( पुरू-वसुः मघवा ) बहुत सारा धन पासमें रखनेवाला धनवान् ऐसा ( यः ) जो इन्द्र ( जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवालोंको हजारों प्रकारसे धन देता है, ऐसे ( सु-राधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले उस इन्द्रकी ( वः ) तुम ( यथा-विदे ) जिस प्रकार जानते हो, उस प्रकार ( अभि प्र अर्च ) स्तुति करो ॥ १ ॥

८१२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥ १३ (हि) ॥
[ धा. १६ । उ. ना. । स्व. ३ ] ( ऋ. ८।४९।२ )

८१३ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

८१४ मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥ १४ (ल) ॥
[ धा. १९ । उ. ना. । स्व. १ ] ( ऋ. ८।९९।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८१५ यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१९ )

---

[ ८१२ ] ( धृष्णुया शतानीक इव ) शूरवीर जिस प्रकार शत्रुसेनापर ( प्र जिगाति ) चढाई करता है, उस प्रकार इन्द्र ( दाशुषे वृत्राणि हन्ति ) दान देनेवालेके लिए शत्रुओंको मारता है, ( पुरु-भोजसः ) बहुत साधन अपने पास रखनेवाले ( अस्य ) इस इन्द्रके ( दत्राणि ) दान लोगोंको, ( गिरेः रसाः इव ) जिस प्रकार पर्वतके जल लोगोंको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार ( प्र पिन्विरे ) तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ धृष्णुया शतानीक इव प्र जिगाति— शूर पुरुष अपने शौर्यसे शत्रुसेनापर आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता है।

२ दाशुषे वृत्राणि हन्ति— वह इन्द्र उपकार करनेवालोंकी उन्नतिके लिए शत्रुओंको मारता है, और दाताओंकी रक्षा करता है।

३ गिरेः रसाः इव अस्य दत्राणि प्र पिन्विरे— पर्वतके जल जिस प्रकार सबको मिलते हैं, उस प्रकार इसके दान सबके लिए लाभकारी होते हैं।

[ ८१३ ] हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( भूर्णयः नरः ) हवि देनेवाले यजमान ( इदा त्वां अपीप्यन् ) आज पहले ही दिनसे तुझे सोम देते हैं। ( सः ) वह तू ( स्तोम-वाहसः ) स्तोत्र गानेवालोंकी स्तुतियोंको ( इह श्रुधि ) इस यज्ञमें सुन और ( स्वसरं उपागहि ) यज्ञस्थानमें विराजमान हो ॥ १ ॥

[ ८१४ ] हे ( सु-शिप्रिन् हरिवः गिर्वणः ) सुन्दर शिरस्त्राण धारण करनेवाले, घोडोंका पालन करनेवाले, स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( वेधसः ) तेरी सेवा करनेवाले, ( त्वया आभूषन्ति ) तुझसे उत्तम प्रकारसे सुशोभित करते हैं, ( मत्स्व ) तू सोम पीकर तृप्त हो, हे ( उक्थ्य ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोमरस तैय्यार होनेके बाद तुझे ( तव उपमानि श्रवांसि ) तेरी उपमा देने योग्य अन्न भी दिए जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८१५ ] हे सोम ! ( देववीः ) देवताको देने योग्य ( अघ-शंस-हा ) पापी राक्षसोंको मारनेवाला और ( वरेण्यः मदः यः ते ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला जो तेरा रस है, ( तेन अन्धसा पवस्व ) उस सेवन करने योग्य रसके साथ तू पात्रमें छनता जा ॥ १ ॥

८१६ जघ्निर्वृत्रममित्रियꣳ सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।२० )

८१७ सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदं च्छ्येनो न योनिमा ॥३॥ १५ (चौ) ॥

[ धा. १२ । उ. १ । स्व. नास्ति ] ( ऋ. ९।६१।२१ )

८१८ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।७ )

८१९ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०१।८ )

८२० य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ३ ॥ १६ (फु) ॥

[ धा. १९ । उ. २ । स्व ५ ] ( ऋ. ९।१०१।९ )

८२१ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशाꣳ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१९ )

---

[ ८१६ ] हे सोम ! तू ( अ-मित्रियं वृत्रं जघ्निः ) शत्रुरूपी दुष्टोंका नाश करनेवाला है, तू ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( वाजं सस्निः ) युद्धमें जाता है, और ( गो-षातिः ) गायका दान और ( अश्व-सा असि ) घोडोंका दान तू करता है ॥२॥

१ अ-मित्रियं वृत्रं जघ्निः— शत्रुका वध करना चाहिए ।

२ दिवे दिवे वाजं सस्निः— प्रतिदिन तू युद्ध करता है ।

[ ८१७ ] हे सोम ! तू ( सु-उपस्थाभिः धेनुभिः संमिश्लः ) सुन्दर गायके दूधमें मिलनेपर ( श्येनः न ) जिस प्रकार बाज ( योनिं आसीदं ) अपने घोंसलेमें बैठकर ( न अरुषः भुवः ) तेजस्वी होता है, उसी प्रकार तू चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८१८ ] ( पूषा ) पोषण करनेवाला ( भगः ) भजनीय ( रयिः ) धनके समान ( अयं पुनानः अर्षति ) यह सोम छाने जाते हुए कलशमें जाता है, ( विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोम ( उभे रोदसी व्यख्यत् ) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक पर अपने तेजसे चमकता है ॥ १ ॥

[ ८१९ ] ( प्रियाः घृष्वयः गावः ) प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें ( मदाय समनूषत ) आनन्द प्राप्त करनेके लिए स्तुति करती हैं, ( उ ) यह सत्य है कि ( पवमानासः इन्दवः ) शुद्ध होनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले ( सोमासः ) सोमरस ( पथः कृण्वते ) अपने बहनेके मार्गको बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८२० ] हे ( पवमान ) सोम ! ( यः ओजिष्ठः ) जो सोमरस शक्ति बढानेवाला है, ( यः ) जो ( पंच चर्षणीः ) पांचजनोंको ( अभि ) प्राप्त होता है, और ( येन रयिं वनामहे ) जिसकी सहायतासे हम धन प्राप्त करते हैं उस ( श्रवाय्यं आ भर ) प्रशंसनीय रसको हमें भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ ८२१ ] ( मतीनां वृषा ) बुद्धिका बल बढानेवाला ( विचक्षणः ) विशेष ज्ञानी, ( अह्नां उषसां दिवः प्रतरीता ) दिन, उषा और द्युलोकका तेज बढानेवाला ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदियोंका प्राण ( मनीषिभिः ) विद्वानों द्वारा स्तुति किए जाने योग्य ऐसा यह सोम ( इन्द्रस्य हार्दिं आविशन् ) इन्द्रके हृदयमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते हुए ( कलशान् अचिक्रदत् ) तथा शब्द करते हुए कलशमें जाता है, छाना जाता है ॥ १ ॥

*

८२२ मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुँ सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।२० )

८२३ अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरँ सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥ १७ ( गी ) ॥
[ धा. ३६ । उ. ३ । स्व. ४ ] ( ऋ. ९।८६।२१ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

८२४ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।२८ )

८२५ एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥
( ऋ ८।९२।२९ )

८२६ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥ १८ ( ति ) ॥
[ धा. १४। उ. १ । स्व. ३ ] ( ऋ. ८।९२।३० )

८२७ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमँ रथीनां वाजानाँ सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।११।१ )

---

[ ८२२ ] ( पूर्व्यः कविः ) पहलेसे ही ज्ञानी यह सोम ( मनीषिभिः पवते ) याजकों द्वारा छाना जाता है ( नृभिः यतः ) यज्ञकर्ताओं द्वारा नियन्त्रित यह सोम ( कोशान् पर्यसिष्यदत् ), कलशमें जाता है, ( त्रितस्य इन्द्रस्य नाम जनयन् ) तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होनेवाले इन्द्रके नामको और अधिक प्रसिद्ध करता हुआ ( मधु ) यह मधुर रस ( इन्द्रस्य सख्याय ) इन्द्रकी मित्रताके लिए ( वायुं वर्धयन् ) वायुका सेवन करता हुआ ( क्षरन् ) वर्तनमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८२३ ] ( लोक-कृत् ) लोगोंका हित करनेवाला ( अयं पुनानः ) यह सोम पवित्र होता हुआ ( उषसः अरोचयत् ) उषाको प्रकाशित करता है, ( सिन्धुभ्यः अभवत् ) नदियोंको बढानेवाला यह है, ( अयं हृदे ) यह सोम पेटमें जानेके लिए ( त्रिः-सप्त दुदुहानः ) इक्कीस गायोंका दूध निकालकर ( मत्सरः चारु पवते ) आनन्ददायक होकर उत्तम रीतिसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ८२४ ] हे इन्द्र ! तू ( वीरयुः एव असि हि ) युद्धमें वीरोंका उपयोग करनेवाला है, क्योंकि तू ( शूरः एव ) शूर है, ( उत स्थिरः ) और युद्धमें स्थिर रहनेवाला है, इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं एव ) अराधना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

[ ८२५ ] हे ( तुवी-मघ ) बहुत धनवान् ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( विश्वेभिः धातृभिः ) धारण करनेवाले सब देवताओंको हवि देनेवाले यजमानोंके पास तेरे द्वारा दिए गए ( रातिः ) दान ( धायि चित् ) स्थिररूपसे रहते हैं, ( अथ ) इसलिए, हे इन्द्र ! ( नः सचा ) हमें धन देकर हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ ८२६ ] हे ( वाजानां पते ) अन्नोंके व बलोंके स्वामी इन्द्र ! ( तन्द्र-युः ब्रह्मा इव ) आलसी ब्राह्मणके समान ( मा उ सु भुवः ) तू आलसी मत हो, अपितु ( गोमतः सुतस्य मत्स्व ) गोदुग्ध मिश्रित सोमरससे आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[ ८२७ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियां ( समुद्र-व्यचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतमं ) रथी वीरोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ ( वाजानां पतिं ) बलोंके स्वामी ( सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ) सत्पुरुषोंके संरक्षण करनेवाले इन्द्रका वर्णन करती हैं, और उसके यशको बढाती हैं ॥ १ ॥

८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।११।२ )

८२९ पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥ १९ ( ली ) ॥
[ धा. १८ । उ. नास्ति । स्व. ४ ] ( ऋ. १।११।३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

[ ८२८ ] हे ( शवसः पते ) बलोंकी रक्षा करनेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सख्ये वाजिनः ) तेरी मित्रतामें बलवान् होकर हम ( मा भेम ) न डरें, निर्भय हों, ( जेतारं ) विजयी ( अपराजितं ) पराजित न होनेवाले ऐसे ( त्वां अभि प्रणोनुमः ) तुझे हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[ ८२९ ] ( इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः ) इन्द्रके दान प्राचीनकालसे मिलते आ रहे हैं, ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( गोमतः वाजस्य मघं ) गायसे उत्पन्न हुए अन्नरूपी धन ( यदा मंहते ) जब वह देता है, तब उसके ( रातयः ) दान ( न वि दस्यन्ति ) कम नहीं होते ॥ ३ ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

---

# तृतीय अध्याय

## इन्द्र-देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है —

१ उग्रः [ ७९८ ]- इन्द्र उग्रवीर है, वह शूर है ।

२ वज्रीः-[ ७९७ ]- वह वज्रको धारण करता है ।

३ इन्द्रः ( इन् द्रः ) [७९७]- शत्रुओंको फाडता है ।

४ हिरण्ययः [ ७९७ ]- सोनेके आभूषण धारण करता है ।

५ वचो युजा हर्योः सचा आ संमिश्लः [७९७]- शब्दोंको सुनते ही रथमें जुडजानेवाले ऐसे होशियार घोडे इन्द्रके हैं ।

इन्द्रके घोडे इतनी अच्छी तरह शिक्षित हैं कि शब्द बोलते ही अपनी जगह जाकर खडे हो जाते हैं ।

६ उक्थ्यः [ ८१४ ]- स्तुत्य, प्रशंसनीय ।

७ वाजानां पतिः [८२६]- अन्न और बलोंका स्वामी ।

८ हे इन्द्र ! सहस्र प्रधनेषु वाजेषु नः अव [ ७९८ ]- हे इन्द्र ! हजारों धन जिसमें प्राप्त होते हैं ऐसे युद्धमें हमारी रक्षा कर ।

युद्धमें हजारों प्रकारके धन मिलते हैं । शत्रुओंको हरानेके बाद उसको जो लूटा जाता है, उस लूटमें धन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय मिलनेके बाद शत्रुको लूटनेका अधिकार विजयी वीरोंको है । यह प्रथा वेदोंको मान्य थी, ऐसा दीखता है ।

९ हे इन्द्र ! वीरयुः शूरः असि, स्थिरः असि [ ८२४ ]- हे इन्द्र ! तू वीरोंके साथ रहकर शूरता दिखानेवाला है, और युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला है । क्योंकि उसकी हार कभी भी नहीं होती, इसलिए यह इन्द्र युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहता है ।

१० सत्पतिं नरः वृत्रेषु हवन्ते [ ८०९ ]- उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले इन्द्रको लोग युद्धमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

११ सुशिप्रिन् हरिवः गिर्वणः [ ८१४ ]- उत्तम साफा बांधनेवाला और उत्तम घोडे पालनेवाला प्रशंसनीय इन्द्र है।

१२ धृष्णुया शतानीक इव प्र जिगाति [ ८१२ ]- धैर्यसे सैंकडों सैनिक पासमें रखनेवाले वीरके समान शत्रुपर इन्द्र आक्रमण करता है।

१३ दाशुषे वृत्राणि हन्ति [८१२]- दान देनेवालोंके कल्याण करनेके लिए उनके शत्रुओंको मारता है।

१४ हे इन्द्र ! कारवः वाजसातौ त्वां हवन्ते [८०९] - हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले अन्नके यज्ञमें तुझे बुलाते हैं।

१५ गाथिनः इन्द्रं बृहत् अनूषत, अर्किणः अर्केभिः वाणीः इन्द्रं [ ७९६ ]- स्तोत्र कहनेवाले इन्द्रकी बृहत् साम गाकर स्तुति करते है, अर्चना करनेवाले मंत्रोंसे प्रशंसा करते हैं, सभीकी वाणी इन्द्रका वर्णन करती है।

१६ अवस्यवः इन्द्रे अग्नौ बृहत् नमः सुवृक्तिं प्रेरयामहे [ ८०० ]- अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले इन्द्र और अग्निकी हम महान् स्तुति करते हैं, ऐसा कहते हैं।

१७ विश्वाः गिरः समुद्रव्यचसं रथानां रथीतमं वाजानां पतिं सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् [ ८२७ ]- सब स्तुतियां समुद्रके समान विशाल, श्रेष्ठ रथी, धनोंके स्वामी, उत्तम अधिपति ऐसे इन्द्रके यशको बढाती हैं।

१८ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने महान् प्रकाशके लिए सूर्यको द्युलोक पर चढाया।

१९ गोभिः अद्रिं व्यैरयत् [७९९]- किरणोंसे मेघोंको फोडा और पानी वरसाया।

इन्द्रके ये गुण इन मंत्रोंमें आए हैं। इनमेंसे जो गुण अपनेमें लाये जा सकें उन्हें पाठक लानेका प्रयत्न करें, और जो गुण न आ सकते हों उनका आशय ही पाठक अपने मनमें धारण करें। जैसे " सबके प्रकाशके लिए इन्द्रने सूर्यको आकाश पर चढाया " इस प्रकार सूर्यको चढाना मनुष्योंके वशकी बात नहीं है, फिर भी अज्ञानान्धकारमें पडे हुए मनुष्योंको ज्ञानका प्रकाश देकर उन्हें ज्ञानयुक्त करनेका काम साधकोंसे आसानीसे हो सकता है। अतः साधकोंको ऐसे काम अवश्य करने चाहिए।

" वज्रधारी " इन्द्र है। हम " वज्रधारी " नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे पास वज्र नहीं है, पर हम " शस्त्रधारी " तो हो ही सकते है। इस रीतिसे इन्द्रके गुणोंका ज्ञान इन मंत्रोंमें दिया गया है। उन्हें जानें और उनके आशयको अपने अन्दर लानेका प्रयत्न करें। अब दूसरे देवोंके गुण देखिए—

## अग्नि-देवता

अग्नि देवताके निम्न गुण इस अध्यायमें आए हैं—

१ अग्निः [ ८९० ]- अग्र-णी-आगे ले जानेवाला, अन्ततक पहुंचानेवाला।

२ विश्व-वेदाः [ ७९० ]- सर्वज्ञ, सब धनोंको अपने पास रखनेवाला।

३ यज्ञस्य सुक्रतुः [ ७९० ]- यज्ञका सम्पादन उत्तम रीतिसे करनेवाला, सज्जनोंका सत्कार करनेवाला, सब लोगोंका संगठन करके और दान देकर सबका उद्धार करनेवला।

४ विश्पतिः [ ७९१ ]- प्रजाओंका पालन करनेवाला।

५ पुरु-प्रियः [ ७९१ ]- बहुतोंको प्रिय।

६ हव्यवाह [ ७९१ ]- हवि देवोंको पहुंचानेवाला।

७ दूतः [७९०]- हविको देवों तक पहुंचानेवाला दूत।

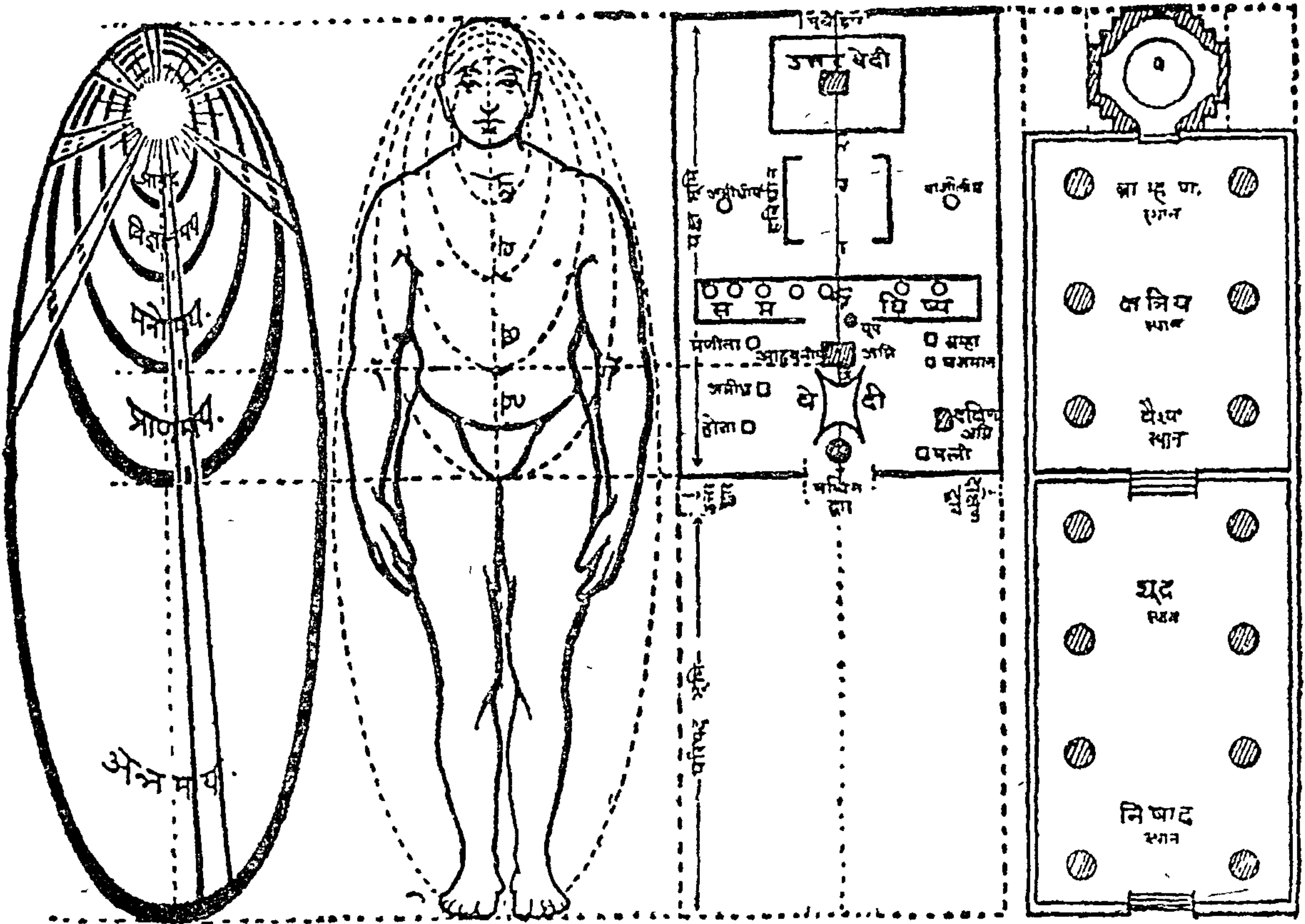
८ होता [ ७९० ]- देवोंको वुलाकर लानेवाला।

९ जज्ञानः वृक्त-वर्हिषे इह देवान् आ वह [७९२]- उत्पन्न होते ही यजमानोंके लिए देवोंको वुलाकर ला।

१० नः होता ईड्यः असि [ ७९० ]- तू हमारा होता और स्तुत्य है।

यहां पर अग्निको देवोंको वुलाकर लानेवाला और यज्ञशालामें उन्हें अपने अपने स्थान पर बैठानेवाला कहा गया है। यहां यज्ञशाला हमारा शरीर है। इस शरीररूपी यज्ञशालामें नेत्र स्थानमें सूर्य, हृदयके स्थान पर चन्द्रमा, फुफ्फुसमें वायु, छातीमें इन्द्र, मुखमें अग्नि, कानमें दिशा ऐसे अनेक अवयवोंमें अनेक देव आकर बसे हुए है और इस देहमें अपना-अपना काम वे करते हैं। ये देव शरीरमें उष्णता रूपी अग्निके रहनेतक ही रहते हैं। शरीरके ठंडे होनेके पहले ही सब निकल जाते है। इसलिए कहा है कि अग्नि शरीररूपी यज्ञशालामें सब देवोंको वुलाकर लाता है और उन्हें अपने-अपने स्थान पर बैठाता है, और उनके द्वारा यहांके सब कार्य करता है। शरीरमें यह अनुभव सभी साधकोंको लेना चाहिए। और अपने शरीर रूपी यज्ञशालामें सब देव कैसे और कहां रहते है, यह जानना चाहिए।

## यज्ञशालाका चित्र



यज्ञशाला शरीरका चित्र है। इस प्रकार अग्निके जो गुण मंत्रमें कहे हैं उन्हें पाठक अपने अन्दर धारण करें।

देवोंको बुलाकर लानेका अर्थ राष्ट्रमें विद्वानोंको बुलाकर लाना है। " विद्वांसो हि देवाः " ( श. ब्रा. ) विद्वान् ही राष्ट्रमें देव हैं। इस प्रकार देवोंके गुण अपने राष्ट्रीय और वैयक्तिक कर्तव्यकी जानकारी दे रहे हैं। उसे जानकर अपनी उन्नति करनी चाहिए।

## इन्द्र-अग्निकी स्तुति

इन्द्र और अग्निकी स्तुति एक ही जगह है, इस विषयमें इस प्रकार कहा है।

१ ऊतये ता इत्था ईडते [ ८०१ ]- अपने संरक्षणके लिए उन दोनोंकी इस प्रकार स्तुति की जाती है।

२ सबाधः वाजसातये ईडते [ ८०१ ]- शत्रुके बाधा डालनेके लिए आनेपर अन्न प्राप्तिके लिए इनकी स्तुति की जाती है।

३ विपन्यतः प्रयस्वन्तः सनिष्यवः मेधसाता ता वां गीर्भिः हवामहे [ ८०२ ]- हविष्यका हवन करनेवाले, धनकी इच्छा करनेवाले, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनों-इन्द्र और अग्निको स्तुति करके बुलाते हैं।

४ यथाविदे सुराधसं इन्द्रं अभि प्र अर्च [ ८११ ] - जैसी जानकारी है वैसी ही उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी आराधना करो।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी स्तुति इस अध्यायमें है।

## मित्र और वरुणकी स्तुति

मित्र और वरुण इन दोनों देवताओंकी स्तुति भी इस अध्याय में है।

१ ऋतेन ऋतावृधौ ज्योतिषस्पती मित्रावरुणा हुवे [ ७९४ ]- सत्य पालनसे, सत्यके मार्गका संवर्धन करनेवाले, तेजोंसे तेजस्वी, मित्र और वरुण हैं, उन्हें मैं सहायताके लिए बुलाता हूं।

इनमें मित्र और वरुणको सत्यका पालन करनेवाला और सत्यमार्गका संवर्धन करनेवाला कहा गया है। सत्यपालन और सत्यमार्ग का संवर्धन ये दोनों गुण कितने महत्व के है,

यह जानकर उन्हें अपनावें। वे तेजस्वी हैं अतः हम भी तेजस्वी बनें।

२ विश्वाभिः ऊतिभिः मित्रः वरुणः प्राविता भुवत् [ ७९५ ]- सब प्रकारके संरक्षणोंके साधनोंसे ये मित्र और वरुण हमारा संरक्षण करते हैं।

अपने संरक्षणके साधन लोग अपने पास रखें और उससे दूसरोंकी भी रक्षा करें।

३ नः सुराधसः करताम् [ ७९५ ]- हमें वे उत्तम धनसे युक्त करें।

## दान

ये देवता दान देते हैं। वे उदार हैं—

१ गाः अर्वतः नः राये दुरः विवृधि [ ७८३ ]- गाय और घोडे तू देता है, इसलिए धन प्राप्तिके दरवाजोंको हमारे लिए खोल दे।

२ अभिषुतः पुनानः नः रयिं वीरवतीं इषं आभर [ ७८९ ]- रस निकालनेके बाद छाने जानेवाला तू हमें धन और पुत्र पौत्रसे युक्त भरपूर अन्न दे।

धन और अन्न पुत्र पौत्रोंसे युक्त हो, घरमें अन्न और धनके साथ उनका उपभोग करनेवाले पुत्र पौत्र भी हों।

३ चित्र वज्रहस्त अद्रिवः ! धृष्णुया महः स्तवानः गां रथ्यां संकिर [ ८१० ] हे विलक्षण पराक्रमी वज्र धारण करनेवाले और किलेमें रहनेवाले इन्द्र ! अपनी शत्रुनाशक शक्तिसे बडी स्तुति होनेके बाद गाय और घोडे हमें उत्तम रीतिसे दे।

४ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति [ ८११ ] बहुत धनवान् इन्द्र अपने स्तोताओंको हजारों प्रकारके धन देता है।

५ पुरुभोजसः अस्य दत्राणि प्रविविरे [ ८१२ ]- बहुत अन्नवाले इस इन्द्रके दान भी बहुतसे हैं।

६ गोषातिः अश्वसा [ ८१६ ]- गाय और घोडोंका दान इन्द्र करता है।

७ इन्द्रस्य: रातयः पूर्वीः [ ८२९ ]- इन्द्रके दान पहलेसे चलते आ रहे हैं।

८ स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य मघं यदा मंहते, ऊतयः न विदस्यन्ति [ ८२९ ]- स्तुति करनेवालोंके लिए जब गायोंसे उत्पन्न हुए अन्नरूपी धन वह देता है, तब भी उसके दान कम नहीं होते।

इस प्रकार इस अध्यायमें दानके वर्णन हैं।

## तेजस्वी

१ हे पवमान ! स्वर्दृशं भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे [ ७८४ ]- हे शुद्ध होनेवाले सोम ! तू आत्मदर्शी और अपने तेजसे तेजस्वी है, ऐसे तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

यहां " स्वः-दृशं " और " भानुना द्युमन्तं " ये गुण महत्वके हैं। सब कुछ अपनी शक्तिसे ही देखें, दूसरेकी शक्तिसे न देखें, दूसरेकी दृष्टिसे न देखें। उसी प्रकार अपने तेजसे तेजस्वी हों, अपने तेजसे विश्वमें चमकें।

## यशस्वी होना

१ जने नः यशसः कृधि [ ७७८ ]- मनुष्योंमें हमें यशस्वी कर।

२ तव श्रवांसि उपमानि [ ८१४ [- तेरे यश उपमा देनेके योग्य हैं।

इस लोकमें अपना यश बढे ऐसी कोशिश प्रत्येकको करनी चाहिए। जीवन यशस्वी करना यहां अत्यन्त आवश्यक है।

## शत्रुको दूर करना

शत्रुको दूर करनेका उपदेश अनेक प्रकारसे इस अध्यायमें आया है।

१ विश्वाः द्विषः अप जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंको दूर कर.

२ ते देववीः अघशंस-हा वरेण्यः मदः [ ८१५ ] - तेरा आनन्द देवोंसे सम्बन्ध जोडनेवाला और पापियोंको मारनेवाला है। पापी दुष्टोंको मार कर दूर करना चाहिए।

३ अमित्रियं वृत्रं जघ्निः [ ८१६ ]- शत्रुओंको तू मारनेवाला है।

४ ते सख्ये, तव उत्तमे सुम्ने, पृतन्यतः सासह्यामः [ ७७९ ]- तेरी मित्रता और तेरी तेजस्वितासे युक्त हुए हम, सेना लेकर अपने ऊपर चढते हुए चले आनेवाले शत्रुओंको हरा सकें।

५ ते या भीमानि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे, समस्य निदः नः रक्ष [७८०]- तेरे पास जो भयंकर और तीक्ष्ण शस्त्र शत्रुओंके नाश करनेके लिए हैं। उनके द्वारा हमारे निन्दकोंसे हमारी रक्षा कर।

६ हे शवसस्पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे साथ मित्रता होने पर हम बलवान् बनकर शत्रुओंसे न डरें।

७ जेतारं अपराजितं त्वा अभि प्रनोनुमः [८२८]-

विजयी और कभी भी पराजित न होनेवाले तुझे हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

शत्रु दूर करनेके विषयमें तथा शत्रुको हराकर उसके नाश करनेके विषयमें इस तरहके वर्णन इस अध्यायमें हैं।

## सोमके गुण

सोम हिमालयकी चोटी पर उगनेवाली एक बेल है। उसका रस देव और यज्ञ करनेवाले पीते हैं, और उसके कारण उनका उत्साह बढता है, शौर्य बढता है, और वे प्रत्येक काममें यशस्वी होते हैं। इस सोमके उत्तम गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं—

१ देवः [ ७८१ ]- तेजस्वी, प्रकाश करनेवाला।
२ द्युमान् [ ७८१ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।
३ इन्दुः [ ७८६ ]- चमकनेवाला।
४ वृषा [ ७७८ ]- बलवान्, शक्तिमान्, सामर्थ्यसम्पन्न।
५ वृषव्रतः [ ७८१ ]- बल बढानेका जिसका व्रत है।
६ कविः [ ७७७ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।
७ अग्रियः [ ७७५ ]- आगे रहनेवाला।
८ सु-आयुधः [७८१]- उत्तमशस्त्र धारण करनेवाला।
९ विश्व-चर्षणिः [ ७७६ ]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला।
१० विश्वतः ईशानः [ ७८९ ]- सबका स्वामी, सबका ईश्वर।

सोमके ये गुण इस अध्यायमें दिए गए हैं। उनमें कुछ गुण आलंकारिक हैं, जैसे " कवि " दूरदर्शी। विद्वान् सोमरस पीते हैं, और उसके कारण उनकी ज्ञानशक्ति उत्तेजित होती है। इसलिए यह सोमरस कवि है।

शूरपुरुष सोमरस पीते हैं और उनका उत्साह बढता है और उसके कारण वे शूरवीरताके काम कर सकते हैं, इसलिए यह शौर्य और बल बढानेवाला है। यह उत्तम शस्त्रोंका प्रयोग करता है, क्योंकि शूरवीर सोमरस पीकर और उत्साहित होकर युद्धमें जाते हैं और वहां अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते हैं। इस प्रकार आलंकारिक रीतिसे इन पदोंको समझें और जिस प्रकार सोम बलवान्, शूर और विजयी है, उसी प्रकार साधक भी बनें।

## सोमकी रक्षणशक्ति

१ चित्राभिः ऊतिभिः वचः पवस्व [ ७७५ ]- अपनी विलक्षण संरक्षणकी शक्तिसे स्तुतिके वचनोंको पवित्र कर।



२ विश्वानि काव्या अभि पवस्व [ ७७५ ]- हमारे स्तुतिके काव्य सुन।

३ हे वृषन्! वृष्णः ते शवः वृष्ण्यं [ ७८२ ]- हे बलवान् देव! तेरे समान बलवान् वीरका सामर्थ्य विशेष प्रभावशाली है।

४ वनं वृषा [ ७८२ ]- तेरा सेवन बल बढानेवाला है।
५ सुतः वृषा [ ७८२ ]- सोमरस बल बढानेवाला है।
६ त्वं वृषा असि [ ७८२ ]- तू बल बढानेवाला है।

सोमरसके ये वर्णन उसके बल बढानेवाले गुणके कारण हैं। सोमरस पीनेसे वीरोंका बल बढता है, इसलिए ये गुण सोमरसके ही हैं ऐसा कह दिया।

## सोमके वीर्य और तेज

सोम वीर्यवान् और तेजस्वी है।

१ विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः उभे रोदसी व्यख्यत् [ ८१८ ]- सब प्राणिमात्रका पालन करनेवाला सोम पृथ्वी और द्युलोकमें अपने तेजसे चमकता है।

२ हे सु-आयुध! मन्दमानः सुवीर्यं आ पवस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम आयुध धारण करनेवाले सोम! तू आनन्द देनेवाला होकर हमें उत्तम वीर्य प्रदान कर। इस स्थानपर सोमको उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला बताया है, उसका तात्पर्य यह है कि वीर लोग सोमरस पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढता है, और वे उत्तम शस्त्र लेकर लडते हैं। यह सब सोम पानसे होता है, इसलिए सोमको ही उत्तम शस्त्रास्त्र लेकर लडनेवाला बता दिया।

३ हे पवमान! ओजिष्ठः श्रवाय्यं आभर, यः पंचचर्षणिः अभि तिष्ठति, येन रयिं वनामहे [ ८२० ] – हे सोम! तू सामर्थ्य बढानेवाला है, इसलिए यश बढानेवाले सामर्थ्य हमें भरपूर दे। पांच प्रकारके लोगोंका कल्याण करनेके लिए तैय्यार रह और हमें धन मिलें ऐसा कर।

सोम पीनेसे ऐसा सामर्थ्य बढता है।

## सोमकी महिमा

१ तुभ्यं महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे [ ७७७ ]- तेरी महिमाके लिए ही ये सारे भुवन स्थिर हैं, अर्थात् सब जगह तेरी महिमा ही सबका उत्साह बढाती है।

२ वृषा धर्माणि दध्रिषे [ ७८१ ]- तू अपने बलसे सब कर्तव्योंको धारण करता है।

इस प्रकार सोमकी महिमा सबका उत्साह बढाती है।

सोममें उत्साह बढानेका सामर्थ्य है, इतना ही इस वर्णनका तात्पर्य है। इसलिए हम सोमके साथ मित्रता करें और उसके उत्साहसे उत्साहित होकर अपने-अपने कार्य करते रहें।

## सोमके साथ मित्रता

१ पवमानस्य ते सखित्वं आवृणीमहे [ ७८७ ]- सोमके साथ मित्रता करनेकी हम इच्छा करते हैं।

२ ते ऊर्मयः धारया पवित्रं अभि क्षरन्ति, तेभिः नः मृड [ ७८८ ]- तेरी लहरें एक धारासे छलनीमें गिरती हैं, उससे हमें सुखी कर।

सोमसे उत्साह बढता है और महान् कार्य करनेकी शक्ति अपने अन्दर बढती है। इसलिए उसके साथ मित्रता करनेकी इच्छा लोग करते हैं। यह मित्रता सोमरस पीनेकी इच्छा ही है। सभीकी इच्छा ऐसी रहती है, क्योंकि उत्साह बढे और हम महान् कार्य करनेमें समर्थ हों ऐसी इच्छा सबके लिए स्वाभाविक है।

## सोमपान

१ वयं सोम-पीतये पूतदक्षसा मित्रं वरुणं हवामहे [ ७९३ ]- हम सोमपान करनेके लिए पवित्र बलसे युक्त मित्र और वरुणको बुलाते हैं।

मित्र और वरुणके बल पवित्र कामोंमें बडे उपयोगी हैं। अतः उनको सोमपानके लिए बुलाया जाता है। इन्द्र आदि दूसरे देवोंको भी ऐसे ही सोमपानके लिए बुलाया जाता है। सब देव यज्ञमें आते हैं, सोम पीते हैं और महान् सार्वजनिक हितके काम करते हैं। उसी प्रकार दूसरे भी यज्ञमें जाकर सोमरसका पान करते हैं और उत्साहसे अपना कर्तव्य करते हैं।

## सोमरस तैय्यार करना

सोम हिमालयसे लाया जाता है, उसे ऋत्विज लकडीके पटले पर रखकर पत्थरोंसे कूटते हैं और अच्छी तरह कूटनेके बाद अंगुलियोंसे दबाकर रस निकालते हैं। कूटनेसे पहले उसे धोया जाता है। इस रसमें रेशे इत्यादि होते हैं इसलिए उसमें पानी मिलाकर भेडके बालोंकी बनी छलनीसे वह रस छाना जाता है। वह रस गाढा होता है अतः पानी मिलाकर उसे पतला किए बिना उसे पिया नहीं जा सकता। इसलिए सोमरस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाते हैं फिर उसे छानकर उसमें गायका दूध, गायका दही, घी, शहद, जौका आटा इनमेंसे जिसकी इच्छा हो उसे मिलाते हैं, फिर उसका हवन होता है और अन्तमें उसे लोग पीते हैं।

## सोममें पानी मिलाना

१ समुद्रियाः आपः पवस्व [ ७८५ ]- अन्तरिक्षरूपी समुद्रका पानी मिलाओ। पृथ्वीके समुद्र खारे पानीके होते हैं। और वह खारा पानी पीनेके लायक नहीं होता। अन्तरिक्षमें मेघ होते हैं, और वह मीठे पानीका समुद्र है। उसका, कुएका अथवा नदी और नहरोंका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ आयुभिः मर्मृज्यमानः यत् अद्भिः परिषिच्यसे द्रोणे सधस्थं अश्नुषे [ ७८९ ]- जब ऋत्विज सोमको छानते हैं, तब वह पानीमें मिलाया जाता है और द्रोण-कलश-में उसे स्थान मिलता है, अर्थात् छना हुआ सोमरस कलसेमें भरा जाता है।

३ रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः सिक्तः गव्युः पर्येषि [ ८०८ ]- तेजस्वी रंग धारण करके पानीके साथ मिलकर गायके दूधकी इच्छा करते हुए सोमरस आगे जाता है।

छाननेके बाद उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। सोमको छलनीसे छाननेका वर्णन इस प्रकार है।

१ अया विपानया हरिः धारया पवस्व [ ८०५ ]- हे सोम! इन अंगुलियोंसे निकाला गया हरे रंगका तू एक धारसे छनता जा।

२ अयं पुनानः अर्षति [ ८१८ ]- यह सोम पवित्र होता-छनता-हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है।

३ नृभिः यतः कोशान् पर्यक्षिष्यदत् [ ८२२ ]- याजकोंके द्वारा निकाला गया यह सोमरस कलसेमें गिरता है।

४ कलशान् अचिक्रदत् [ ८२१ ]- छनता हुआ कलसेमें शब्द करता हुआ जाता है।

## सोमका शब्द करते हुए छनना

१ नदयन् वृषा गाः अभि कानिक्रदत् [ ८०६ ]- शब्द करता हुआ बलवान् सोम गायकी इच्छा करते हुए तथा शब्द करते हुए कलशमें आता है।

ऊपरके बर्तनमें सोमरस रहता है, वह भेडके बालोंकी छननी पर डाला जाता है, और छलनीसे छनता हुआ वह नीचेके बर्तनमें पडता है तब उसका शब्द होता है। यह शब्द बिलकुल स्वाभाविक है। नीचेके बर्तनमें पानी डालने पर जो आवाज होती है, वैसी ही आवाज यहां होती है।

## सोमरसमें दूध मिलाना

छाननेके बाद सोमरसमें इच्छानुसार दूध, दही इत्यादि मिलाया जाता है। इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [ ७७७ ]- गायें तुझ सोमके पास दौडती आती हैं। गायका दूध सोमरसके पास लाया जाता है।

२ रसाय्यः पयसा पिन्वमानः मधुमन्तं अंशुं ईरयन् एषि [८०७]- पहलेसे मीठे फिर गायके दूधसे और अधिक मीठे हुए हुए सोमको प्रेरित करते हुए तू जाता है।

३ प्रिया वृष्वयः गावः मदाय समनूषत पवमानासः इन्दवः सोमासः पयः कृण्वते [ ८१९ ]- प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें सोमके साथ मिलनेके आनन्दको प्राप्त करनेकी इच्छा करती हैं। शुद्ध सोम दूध प्राप्त करते हैं।

४ लोककृत् अयं पुनानः सिन्धुभ्यः अभवत्। अयं हृदे त्रिः सप्त दुहानः मत्सरः चारु पवते [८२३] लोगोंका हित करनेवाला यह छाना जानेवाला सोम नदियोंको बढानेवाला है। इसके लिए इक्कीस गायें दुही जाती हैं, बादमें वह आनन्द देनेवाला होता है।

अर्थात् इसमें पहले नदीका पानी मिलाया जाता है, बादमें गायका दूध।

५ गोमनः सुतस्य मत्स्व [८२६]- गोदुग्ध मिश्रित सोमरससे आनन्दित हो।

इस प्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है और फिर वह पिया जाता है।

## सुभाषित

१ अग्नियः चित्राभिः ऊतिभिः वचः पवस्व [७७५]- नेता होकर अपने विलक्षण संरक्षणोंसे अपने वचन पवित्र कर।

तू अग्रणी हो, अपने पास संरक्षणके साधनोंका संग्रह करके रख और अपनी वाणीको पवित्र विचारोंसे युक्त कर

२ विश्वानि काव्या अभि [७७५] - सब श्रेष्ठ काव्योंको देख, सुन।

३ हे विश्व-चर्षणे! अग्रियः वाचः ईयरन् पवस्व [ ७७६ ]- हे सबके निरीक्षण करनेवाले! नेता होकर अपनी वाणीकी प्रेरणासे सबको पवित्र कर।

४ हे कवे! तुभ्य महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे [ ७७७ ]- हे दूरदर्शी ज्ञानी पुरुष! तेरी महानताके लिए ही ये लोक स्थिर हैं।

५ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [७७७]- गायें तुझे देखकर दौडती हुई आती हैं। ( इतना प्रेम गाय पर है )।

६ वृषा पवस्व [ ७७८ ]- बलवान् होकर शुद्ध हो।

७ जने नः यशसः कृधि [ ७७८ ]- लोगोंमें हमें यशस्वी कर।

८ विश्वाः द्विषः अप जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंका पराभव कर।

९ यस्य ते सख्ये, तव उत्तमे द्युम्ने, पृतन्यतः सासह्याम [ ७७९ ]- तेरे साथ मित्रता होनेके बाद तेरे उत्तम तेजसे तेजस्वी होकर, सैन्यके साथ हम पर चल कर आनेवाले शत्रुको हम हरायें।

१० ते या भीमानि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे, समस्य निदः नः रक्ष [ ७८० ]- तेरे जो भयंकर तीक्ष्ण अस्त्र शत्रुके नाश करनेके लिए हैं, उनकी सहायतासे हमारे सब निन्दक शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

११ वृषा द्युमान् असि [ ७८१ ]- तू बलवान् और तेजस्वी है।

१२ हे देव! वृषा वृषव्रतः वृषा धर्माणि दध्रिषे [ ७८१ ] हे देव! तू बलवान् है बल बढानेका तेरा व्रत है, ऐसा तू बलवान् होकर अपने कर्तव्य स्वयं करता है।

१३ वृषन्! वृष्णः ते शवः वृष्ण्यं [ ७८२ ]- बल बढानेवाले तेरे सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली है।

१४ त्वं वृषा असि [७८२]- तू निश्चयसे बलवान् है।

१५ नः राये दुरः विवृधि [ ७८६ ]- हमारे लिए सम्पत्ति प्राप्त होनेके दरवाजे खोल दे।

१६ स्वः-दृशं भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे [७८४] - स्वयं देखनेकी शक्तिसे युक्त तथा स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए तेरी हम प्रशंसा करते हैं।

१७ आयुभिः मर्मृज्यमान [ ७८५ ]- मनुष्योंके द्वारा शुद्ध होनेवाला।

१८ सु-आयुध! मन्दमानः सुवीर्यं आ पवस्व [७८६]- हे उत्तम शस्त्रोंको पासमें रखनेवाले वीर! तू आनन्द बढानेवाला होकर उत्तम वीरता प्रकट कर।

१९ पवमानस्य ते सखित्वं आवृणीमहे [ ७८७ ]- पवित्रता करनेवाले तेरी दोस्तीकी हम इच्छा करते हैं।

२० नः मृडय [ ७८८ ]- हमें सुखी कर।

२१ विश्वतः ईशानः नः रयिं वीरवतीं इषं आ भर [ ७८९ ]– तू सबका स्वामी होकर हमें वीर पुत्रोंसे युक्त धन और अन्न भरपूर दे।

२२ होतारं विश्व-वेदसं यज्ञस्य सुक्रतुं दूतं अग्निं वृणीमहे [७९०]– देवताओंको बुलाकर लानेवाले, सर्वज्ञ, यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले दूत अग्निका हम वरण करते हैं।

२३ विश्पतिं पुरुप्रियं अग्निं सदा हवन्ते [ ७९१ ] – प्रजाओंके पालक बहुतोंको प्रिय ऐसे अग्रणीको हम हमेशा अपने पास बुलाते हैं।

२४ इह देवान् आ वह [७९२]– यहां देवोंको बुला ला।

२५ नः ईड्यः असि [ ७९२ ]– प्रशंसाके योग्य तू हमारा सहायक है।

२६ पूत-दक्षसा वयं हवामहे [७९३]– जिनके पवित्र सामर्थ्य हैं, उन्हें हम बुलाते हैं।

२७ ऋतेन ऋतावृधौ ज्योतिषस्पती हुवे [ ७९४ ] – सत्यसे सत्यधर्म बढानेवाले तेजस्वी वीरोंको मैं बुलाता हूं।

२८ विश्वाभिः ऊतिभिः प्राविता भुवत् [ ७९५ ]– सब संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो।

२९ नः सुराधसः करतां [ ७९५ ]– हमें उत्तम धनसे युक्त कर।

३० गाथिनः इन्द्रं बृहत् अनूषत [७९६]– हे साम-गायको ! तुम इन्द्रकी बृहत् सामके द्वारा स्तुति करो।

३१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रधनेषु नः अव [ ७९८ ]– उग्रवीर, ! प्रबल संरक्षणके साधनोंसे हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले यज्ञमें हमारी रक्षा कर।

३२ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने विशेष प्रकाशके लिए द्युलोकमें सूर्यको चढाया।

३३ विश्वा ओजसा दधानः [८०३]– सब सामर्थ्योंको धारण कर।

३४ स्व-र्दृशं वाजिनं त्वा वाजेषु हिन्वे [ ८०४ ]– आत्मदर्शी बलवान् ऐसे तुझे संग्राममें जानेकी प्रेरणा करता हूं।

३५ वाजेषु युजं चोदय [८०५]– युद्धमें जानेके लिए मित्रको प्रेरणा दे।

३६ आजौ इन्द्रस्य वग्नु आ शृण्वे [ ८०६ ] युद्धमें इन्द्रके शब्द सुनाई देते हैं।

३७ वधस्नुं नमयन्, मदाय पवस्व ]८०८]– वध करनेवाले शत्रुको झुकाकर आनन्द बढानेके लिए शुद्ध हो।

३८ सत्पतिं नरः वृत्रेषु हवन्ते [८०९]– सज्जनोंके पालन करनेवालेको लोग युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

३९ हे वज्रहस्त अद्रिवन्! धृष्णया मदः गां रथ्यं संकिर [ ८१० ]– हे वज्रधारी इन्द्र। अपनी शत्रु-नाशक शक्तिसे आनन्दित हुआ तू गाय और घोडे हमें दे।

४० जिग्युषे सत्रा वाजं [ ८१० ]- विजयी वीरको एक साथ अन्न और बल मिलते हैं।

४१ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण शिक्षति [ ८११ ]– बहुत धनवान् इन्द्र स्तोताओंको अनेक प्रकारके धन देता है।

४२ यथा विदे सुराधसं इन्द्रं अभि प्र अर्च [८११] – जैसे तुम जानते हो वैसे ही इन्द्रकी आराधना करो।

४३ धृष्णुया शतानीकः इव प्र जिगाति [ ८१२ ]– शूरवीर इन्द्र शत्रुकी सेना पर आक्रमण करता है।

४४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति [ ८१२ ]– दाताके हितके लिए शत्रुओंको मारता है।

४५ पुरुभोजसः अस्य दत्राणि प्र पिन्विरे [८१२]- बहुत अन्नसे युक्त इस इन्द्रके दान सभीके लिए लाभकारी हैं।

४६ तव उपमानि श्रवांसि [८१४]– तेरे यश उपमा देनेके योग्य हैं। तेरे अन्न उपमाके योग्य हैं।

४७ ते मदः देववीः अघशंस-हा वरेण्यः [८१५]– तेरे आनन्द देवोंके पास पहुंचनेवाले और पापियोंका नाश करनेवाले तथा श्रेष्ठ हैं।

४८ अमित्रियं वृत्रं जघ्निः [ ८१६ ]– तू शत्रुरूपी दुष्टोंका नाश करनेवाला है।

४९ दिवे दिवे वाजं सस्निः [ ८१६ ]- प्रतिदिन तू युद्ध करता है।

५० गोषातिः अश्वसा [८१६]– तू गायों और घोडोंका दान करता है।

५१ अरुषः भुवः [ ८१७ ]– तू तेजस्वी हो।

५२ पूषा भगः रयिः [८१८]– यह पोषण करनेवाला, भाग्य बढानेवाला और धन देनेवाला है।

५३ विश्वस्य भूमनः पतिः [८१८]– सब प्राणियोंका पालन करनेवाला।

५४ ओजिष्ठः श्रवाय्यं आ भर [८२०]– बल बढाने-वाला तू प्रशंसनीय धन भरपूर दे।

५५ येन रयिं वनामहे [ ८२० ]– जिससे हमें धन मिले ऐसा कर।

५६ मतीनां वृषा [ ८२१ ]- तू बुद्धिका बल बढानेवाला हो।

५७ पूर्व्यः कविः [ ८२२ ]- पहलेसे ही तू ज्ञानी प्रसिद्ध है।

५८ लोककृत् पुनानः उषसः अरोचयत् [८२३]- लोगोंका हितकारी, यह पवित्र करनेवाला उषःकालमें प्रकाशित होता है।

५९ हे इन्द्र ! वीरयुः असि [ ८२४ ]- हे इन्द्र ! तू वीरोंका उपयोग करनेवाला है।

६० शूरः एव असि [ ८२४ ]- तू शूर है।

६१ स्थिरः असि [ ८२४ ]- तू युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर र.... है।

६२ ते मनः राध्यं [ ८२४ ]- तेरा मन आराधना करनेके योग्य है।

६३ रातिः धायि चित् [ ८२५ ]- तेरे दान स्थिर, टिकनेवाले हैं।

६४ नः सखा [ ८२५ ]- हमारा मित्र हो।

६५ तन्द्रयुः मा सु भव [८२६]- तू आलसी मत हो।

६६ विश्वाः गिरः समुद्र-व्यचसं, रथानां रथीतमं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् [ ८२७ ]- सब स्तुतियां समुद्रके समान विस्तृत, रथीवीरोंमें श्रेष्ठ, बलोंके स्वामी, सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढाती हैं।

६७ हे शवसः-पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी मित्रताके कारण हम बलवान् होकर निर्भय होवें।

६८ जेतारं अ-पराजितं अभि प्रणोनुमः [८२८]- विजयी और अपराजित वीरको हम प्रणाम करते हैं।

६९ इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः [ ८२९ ]- इन्द्रके दान प्राचीनकालसे चलते आ रहे हैं।

७० मघं यदा मंहते, रातयः न विदस्यन्ति [८२९] - जब वह धन देता है, तब उसके दान कम नहीं होते।

## उपमा

इस अध्यायमें निम्न उपमायें आयी हैं।

१ अश्वः न [ ७८३ ]- घोडेके समान ( संचक्रदः ) सोमरस छनते समय शब्द करता है।

२ शोणः वृषा गाः अभि कनिक्रदत् [८०६]- लाल रंगका बैल जिस प्रकार गायकी तरफ देखकर शब्द करता है, उसी प्रकार सोम गायके दूधके साथ मिलते हुए शब्द करता है।

३ जिग्युषे सत्रा वाजं न [ ८१० ]- विजयी पुरुषको एक साथ तू घोडे इत्यादि देता है, उसी प्रकार हमें दे।

४ गिरेः रसाः इव [ ८१२ ]- पर्वतोंसे जैसे जलप्रवाह बहते हैं, उसी प्रकार इनके दान लोगोंकी ओर बहते हैं।

५ श्येनः न योनिं आसीदन् [ ८१७ ]- बाज पक्षी जिस प्रकार अपने स्थान पर बैठ कर सुशोभित होता है, और ( न अरुषाः भुचः ) जिस प्रकार वह चमकता है, उसी प्रकार सोम चमकता है।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं।

---

# तृतीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ७७५ | ९।६२।२५ | जमदग्निर्भार्गवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७७६ | ९।६२।२६ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| ७७७ | ९।६२।२७ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| ७७८ | ९।६१।१८ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ७७९ | ९।६१।१९ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ७८० | ९।६१।१० | अमहीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७८१ | ९।६४।१ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ७८२ | ९।६४।२ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ७८३ | ९।६०।३ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| ७८४ | ९।६५।४ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ७८५ | ९।६५।६ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ७८६ | ९।६५।५ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ७८७ | ९।६१।४ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ७८८ | ९।६१।५ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ७८९ | ९।६१।६ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| ७९० | १।१२।१ | मेधातिथिः काण्वः | अग्निः | " |
| ७९१ | १।१२।२ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ७९२ | १।१२।३ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ७९३ | १।२३।४ | मेधातिथिः काण्वः | मित्रावरुणौ | " |
| ७९४ | १।२३।५ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ७९५ | १।२३।६ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ७९६ | १।७।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | " |
| ७९७ | १।७।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ७९८ | १।७।४ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ७९९ | १।७।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ८०० | ७।९४।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्राग्नी | " |
| ८०१ | ७।९४।५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| ८०२ | ७।९४।६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| ८०३ | ९।६५।१० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | पवमानः सोम | " |
| ८०४ | ९।६५।११ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ८०५ | ९।६५।१२ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ८०६ | ९।९७।१३ | उपमन्युर्वासिष्ठः | " | त्रिष्टुप् |
| ८०७ | ९।९७।१४ | उपमन्युर्वासिष्ठः | " | " |
| ८०८ | ९।९७।१५ | उपमन्युर्वासिष्ठः | " | " |
| | | ( ४ ) | | |
| ८०९ | ६।४६।१ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ८१० | ६।४६।२ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ८११ | ८।५९।१ | वालखिल्याः प्रस्कण्वः काण्वः | " | " |
| ८१२ | ८।४९।२ | वालखिल्याः प्रस्कण्वः काण्वः | " | " |
| ८१३ | ८।९९।१ | नृमेध आंगिरसः | " | " |
| ८१४ | ८।९९।२ | नृमेध आंगिरसः | " | " |

( ५ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ८१५ | ९।६१।१९ | अमहीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ८१६ | ९।६१।२० | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ८१७ | ९।६१।२१ | अमहीयुरांगिरसः | " | " |
| ८१८ | ९।१०१।७ | नहुषो मानवः | " | अनुष्टुप् |
| ८१९ | ९।१०१।८ | नहुषो मानवः | " | " |
| ८२० | ९।१०१।९ | नहुषो मानवः | " | " |
| ८२१ | ९।८६।१९ | सिकता निवावरी | " | " |
| ८२२ | ९।८६।२० | सिकता निवावरी | " | " |
| ८२३ | ९।८६।२१ | पृश्नियोऽजाः | " | " |

( ६ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ८२४ | ८।९२।२८ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | गायत्री |
| ८२५ | ८।९२।२९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| ८२६ | ८।९२।३० | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | " |
| ८२७ | १।११।१ | जेता मधुच्छान्दसः | " | " |
| ८२८ | १।११।२ | जेता मधुच्छान्दसः | " | " |
| ८२९ | १।११।३ | जेता मधुच्छान्दसः | " | " |

# अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ जमदग्निर्भार्गवः; २ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ कविर्भार्गवः; ४ कश्यपो मारीचः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६-७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १० पराशरः शाक्त्यः; ११ पुरुहन्मा आंगिरसः; १२ मेध्यातिथि काण्वः; १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ त्रित आप्त्यः; १५ ययातिर्नाहुषः; १६ पवित्र आंगिरसः; १७ सोभरिः काण्वः; १८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १९ तिरश्चीरांगिरसौ ॥ १-४, ९, १०, १४-१६ पवमानः सोमः ; ५, १७ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ; ७ मरुतः, ७ ( १, ३ ) इन्द्रश्च; ८ इन्द्राग्नी; ११-१३, १८-१९ इन्द्रः ॥ १-८, १४ गायत्री; ९ ( ३ ) द्विपदा विराट्; १० त्रिष्टुप्; ९ ( १-२ ) ११, १३ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १२ बृहती; १५, १९ अनुष्टुप्; १६ जगती; १७ प्रगाथः = ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); १८ उष्णिक् ॥

८३० एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।१ )

८३१ विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।२ )

८३२ कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यꣳ संयतम् ॥ ३ ॥ १ (या) ॥

[ धा. ७ । उ. नास्ति । स्व. २ ] ( ऋ. ९।६२।३ )

८३३ राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१६ )

८३४ आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।१८ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८३० ] ( तिरः पवित्रं ) छाननीमेंसे ( एते आशवः इन्दवः ) ये शीघ्र दौडनेवाले सोमरस ( विश्वानि सौभगा अभि ) सब उत्तम धनकी प्राप्तिके लिए ( असृग्रं ) छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ८३१ ] ( वाजिनः ) बल बढानेवाले और ( पुरुः दुरिता विघ्नन्तः ) बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले ये सोमरस हमारे लिए और ( तोकाय सु-गा ) पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गायें मिलें और ( अर्वतः ) घोडे मिलें, इसलिए ( त्मना कृण्वन्तः ) स्वयं अपना मार्ग बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८३२ ] ये सोमरस ( गवे अस्मभ्यं ) गायोंके लिए और हमारे लिए ( सं-यतं ) बल बढानेवाले ( वरिवः इडां कृण्वन्तः ) धन और अन्न तैय्यार करते हैं, और स्वयं ( सुष्टुतिं अभि-अर्षन्ति ) उत्तम स्तुतियोंको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[ ८३३ ] ( मनौ अधि ) मनुष्यके यज्ञ करने पर ( पवमानः राजाः ) शुद्ध होनेवाला यह सोम राजा ( मेधाभिः ) बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियोंके साथ ( अन्तरिक्षेण ) अन्तरिक्षके मार्गसे ( यातवे ईयते ) कलशमें जानेके लिए आगे जाता है ॥४॥

[ ८३४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( सुष्वाणः ) छाना जाता हुआ तू ( सहः जुवः ) बल प्राप्त करके ( रूपं न ) सुन्दर रूपके समान ( वर्चसे नः आ भर ) हमारा तेज फैले इसलिए हमें बल और तेज भरपूर दे ॥ २ ॥

१ सहः जुवः, रूपं न, वर्चसे नः आ भर— बल तथा सुन्दर रूप प्राप्त होनेके लिए हमारी तेजस्विता अच्छी तरह बढा।

८३५ आ न इन्द्रो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥ २ ( ला ) ॥
[ धा. १४ । उ. नास्ति । स्व २ ] ( ऋ ९।६५।१७ )

८३६ तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥ ( ऋ. ९।४८।१ )

८३७ संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४८।२ )

८३८ अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥ ( ऋ. ९।४८।३ )

८३९ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।४८।५ )

८४० विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ५ ॥ ३ ( हू ) ॥
[ धा० २६ उ० नास्ति स्व० ६ ] ( ऋ. ९।४८।४ )

८४१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१॥ ( ऋ. ९।६४।१३ )

८४२ पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६४।१४ )

---

[ ८३५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( शातग्विनं ) सौ गायोंसे युक्त और ( गवां पोषं ) गायका पोषण करनेवाले तथा ( सु-अश्व्यं ) सुन्दर घोडोंसे युक्त, ( भगत्तिं ) भाग्यके दान ( नः आ वह ) हमें दे ॥ ३ ॥

हमें गाय, घोडे और भाग्य बहुत तादादमें दे ।

[ ८३६ ] ( महो दिवः ) महान् द्युलोकके ( सधस्थेषु ) अनेक स्थानोंमें रहनेवाले ( नृम्णानि बिभ्रतं ) अनेक प्रकारके धनोंको धारण करनेवाले ( चारुं तं त्वा ) सुन्दर ऐसे उस तुझे ( सुकृत्यया ईमहे ) उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ॥ १ ॥

[ ८३७ ] ( संवृक्त-धृष्णुं ) जिसने अपने प्रभावशाली शत्रु नष्ट कर दिए है, ( उक्थ्यं ) ऐसे प्रशंसनीय और ( महामहि-व्रतं ) अनेक महत्वके कार्य करनेवाले ( मदं ) आनन्द देनेवाले ( शतं पुरः रुरुक्षणिं ) शत्रुओंकी सैंकडों नगरियोंको तोडनेवाले [ सोम ] से हम धन मांगते हैं ॥ १ ॥

[ ८३८ ] हे ( सु-क्रतो ) उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! ( रयिः अभि अयत् ) धनके पास पहुंचनेवाले ( राजानं त्वा ) तेजस्वी तुझे ( अतः दिवः ) इस द्युलोकसे ( अ-व्यथी सुपर्णः ) कष्ट या पीडाको न समझनेवाला गरुड ( आ भरत् ) ले आया ॥ ३ ॥

१ अ-व्यथी सुपर्णः— कार्य करते हुए दुःख न माननेवाला गरुड स्वर्गसे - हिमालयके ऊंचे शिखर परसे सोमवल्लीको नीचे ले आया ।

[ ८३९ ] ( अधा ) बादमें ( विचर्षणिः ) विशेष ज्ञानी और ( अभिष्टिकृत् ) इष्ट फल देनेवाला सोम ( इन्द्रियं हिन्वानः ) अपनी शक्तिको उत्तम रीतिसे प्रेरित करके ( ज्यायः महित्वं आनशे ) विशेष श्रेष्ठता प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[ ८४० ] ( रजस्तुरं ) पानीको प्रेरित करनेवाले ( ऋतस्य गोपां ) यज्ञके संरक्षक ( विश्वस्मै स्वर्दृशे साधारणं इत् ) सब स्वप्रकाशमान् देवोंको प्राप्त होनेवाले सोमको ( विः ) गरुड पक्षी ( भरत् ) ले आया ॥ ५ ॥

[ ८४१ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) बुद्धिमान् याजकोंके द्वारा शुद्ध किया गया तू ( इषे धारया पवस्व ) हमारे अन्नके लिए धारसे छनता जा, ( रुचा गाः अभीहि ) तेजसे गायोंको प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ रुचा गाः अभीहि— तेजसे गायोंको प्राप्त हो । चमकनेवाला सोम गायके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

[ ८४२ ] हे ( गिर्वणः हरे ) स्तुतिके योग्य हरे रंगके सोम ! ( आ शिरं सृजानः पुनानः ) दूधके साथ मिलकर छाना जानेवाला तू ( जनाय ऊर्जं वरिवः कृधि ) यजमानके लिए अन्नरूपी धन दे ॥ २ ॥

८४३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥ ४ ( या ) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६४।१५ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८४४ अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।६ )
८४५ यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।८ )
८४६ यो अग्निं देववीतये हविष्माꣳ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥ ५ ( रि ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।१२।९ )

८४७ मित्रꣳहुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीꣳसाधन्ता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२।७ )
८४८ ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२।८ )
८४९ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ ६ ( व ) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।२।९ )

---

[ ८४३ ] हे सोम ! ( वाजिभिः ) अनेक शक्तियोंसे ( द्युतानः ) तेजस्वी दीखनेवाला ( देव-वीतये पुनानः ) देवोंको देनेके लिए पवित्र किया जानेवाला ( हितः ) हितकारी तू सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं याहि ) इन्द्रके स्थानके पास जा ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८४४ ] ( कविः ) दूरदर्शी ( गृह-पतिः ) यज्ञगृहका रक्षण करनेवाली ( युवा ) तरुण ( हव्य-वाट् ) हविको देवोंतक पहुंचानेवाली ( जुह्वास्यः अग्निः ) जुहूनामक मुखवाली अग्नि ( अग्निना समिध्यते ) मंथनसे उत्पन्न की जानेवाली अग्निकी सहायतासे प्रदीप्त की जाती है ॥ १ ॥

[ ८४५ ] हे ( अग्ने देव ) अग्ने ! ( यः हविष्पतिः ) जो हविष्यान्नको देवोंतक पहुंचानेवाला यजमान ( दूतं त्वां सपर्यत ) तुझ दूतकी उत्तम प्रकारसे पूजा करता है, तू ( तस्य प्राविता भव ) उसकी पूरी तरह रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८४६ ] हे ( पावक ) शुद्ध करनेवाले अग्नि ! ( यः हविष्मान् ) जो हवि अर्पण करनेवाला यजमान ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अग्निं आ विवासति ) तुझ अग्निकी आराधना करता है, तू ( तस्मै मृडय ) उसे सुखी कर ॥ ३ ॥

[ ८४७ ] मैं ( पूत-दक्षं मित्रं ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिश-अदसं वरुणं च ) हिंसक शत्रुके नाशक वरुणको ( हुवे ) बुलाता हूं । ये मित्र और वरुण ( घृताचीं प्रियं साधन्ता ) जल उत्पन्न करनेके कार्य सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

[ ८४८ ] ( मित्रा-वरुणौ ) मित्र और वरुण ये देव ( ऋता-वृधौ ) सत्य यज्ञको बढानेवाले है, ( ऋत-स्पृशौ ) सत्यको सार्थक करनेवाले हैं, हे देवो ! तुम दोनों ( बृहन्तं क्रतुं ) इस महान् यज्ञको ( ऋतेन आशाथे ) सत्यसे पूर्ण करते हो ॥ २ ॥

[ ८४९ ] ( कवी ) दूरदर्शी ( तुवि-जाता ) अनेक कर्मोंके लिए उपयोगी ( उरु-क्षया ) अनेक स्थानोंमें रहनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण ( नः दक्षं अपसं दधाते ) हमारे बलको और कार्यको पुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

८५० इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।७ )
८५१ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।४ )
८५२ वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ ३ ॥ ७ ( ति ) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।६।५ )
८५३ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।४ )
८५४ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।५ )
८५५ हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ ८ ( पी ) ॥
[ धा० १० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।६०।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८५६ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१४ )

---

[ ८५० ] ( मन्दू ) आनन्दित और ( समान वर्चसा ) समान तेजस्वी ऐसे मरुद्गण ( अबिभ्युषा इन्द्रेण सं जग्मानः ) निर्भय इन्द्रके साथ रहकर ( सं दृक्षसे हि ) उत्तम दीखते हैं ॥ १ ॥

[ ८५१ ] ( आत् अह ) शीघ्र ही ( स्वधां अनु ) अन्नको लक्ष्य करके ( यज्ञियं नाम दधानाः ) पूज्य नामको धारण करनेवाले मरुत् ( पुनः गर्भत्वं ईरिरे ) फिर गर्भको प्राप्त होते हैं। ॥ २ ॥

[ ८५२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( वीडु चित् ) सुदृढ किलोंको भी ( आ रुजत्नुभिः ) तोडनेवाले ( वह्निभिः मरुद्भिः ) तेजस्वी मरुतोंने ( गुहा चित् ) गुहामें रहनेवाली ( उस्रियाः ) गायोंको ( अनु-अविन्दः ) प्राप्त किया ॥ ३ ॥

[ ८५३ ] ( ता इन्द्राग्नी हुवे ) उस इन्द्र और अग्निको मैं सहायताके लिए बुलाता हूं, ( ययोः ) जिन दोनोंके द्वारा ( पुराकृतं विश्वं इत् ) पहले किए गए सभी पराक्रमोंकी ( पप्ने ) स्तुति की जाती है, वे इन्द्र और अग्नि ( न मर्धतः ) स्तुति करनेवालोंको दुःख नहीं देते ॥ १ ॥

[ ५५४ ] वे ( उग्रा ) उग्रवीर ( मृधः विघनिना ) शत्रुका नाश करनेवाले हैं, उन ( इन्द्र-अग्नी ) इन्द्र अग्निको हम सहायताके लिए ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( तौ ) वे ( ईदृशे ) इसप्रकार इस संग्राममें ( नः मृडातः ) हमें सुखी करें ॥ २ ॥

[ ८५५ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( आर्या ) श्रेष्ठ तुम ( वृत्राणि हथः ) शत्रुओंको मारो, ( सत्पती ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुम ( दासानि हथः ) नीचोंको दूर करो, उसी प्रकार ( विश्वाः द्विषः अप हथः ) सब द्वेष करनेवालोंका नाश करो ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८५६ ] ( मनीषिणः आयवः ) बुद्धिमान् ऋत्विज ( मत्सरासः मदच्युतः सोमासः ) आनन्द बढानेवाले, उत्साही सोमरसोंको ( समुद्रस्य अधि विष्टपे ) जलपात्रके ऊपर रखी हुई छलनीमेंसे ( मद्यं मदं अभि पवन्ते ) आनन्द और उत्साह बढानेके लिए छानते हैं ॥ १ ॥

*

८५७ तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०७।१५ )

८५८ नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥ ३ ॥ ९ ( बु ) ॥
[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०७।१६ )

८५९ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।३४ )

८६० सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।३५ )

८६१ एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३ ॥ १० ( पी ) ॥
[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९७।३६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

---

[ ८५७ ] ( पवमानः देवः ) शुद्ध किया जानेवाला ( राजा ) तेजस्वी सोम ( बृहत् ऋतं समुद्रं ) महान् जलसे युक्त कलशमें ( ऊर्मिणा तरत् ) लहरोंसे युक्त होकर बहता है, ( हिन्वानः ऋतं बृहत् ) प्रेरणा देनेवाला यह सत्य सोमरस ( मित्रस्य वरुणस्य ) मित्र और वरुण द्वारा ( धर्मणा प्र अर्षा ) धारण किए जानेके लिए छाना जाता है, कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८५८ ] ( नृभिः येमाणः ) ऋत्विजोंके द्वारा तैय्यार होनेवाला ( हर्यतः विचक्षणः ) वर्णनीय, विशेषज्ञान बढानेवाला ( देवः राजा ) दिव्य सोम राजा ( समुद्र्यः ) जलोंमें इन्द्रके लिए छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८५९ ] ( वह्निः तिस्रः वाचः प्रेरयति ) यज्ञकर्ता ऋक्, यजु और साम इन तीन वाणियोंका उच्चारण करता है, ( ऋतस्य धीतिं ) यज्ञकी रीति और ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे पवित्र हुए विचारका इसमें उच्चारण किया जाता है, ( गावः गो-पतिं यन्ति ) जिस प्रकार गायें गोपालके पास जाती हैं. उसी प्रकार ( पृच्छमानाः सोमं यन्ति ) गायें शब्द करती हुई सोमके पास जाती है, तब ( वावशानाः मतयः ) इच्छा करनेवाली बुद्धियां उसकी स्तुति करती हैं ॥१॥

[ ८६० ] ( धेनवः गावः ) दुधारु गायें ( सोमं वावशानाः ) सोमकी इच्छा करती हैं, ( विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः ) ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन करते हैं, ( सुतः सोमः ) सोमरस निकालनेके बाद ( पूयमानः ऋच्यते ) छाना जाता हुआ सोम रखे हुए वर्तनोंमें गिरता है, ( त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते ) त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ ८६१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( परिषिच्यमानः ) वर्तनमें पानीसे मिलाया हुआ तथा ( पूयमान ) पवित्र होता हुआ तू ( नः एव स्वस्ति पवस्व ) हमारे कल्याणके लिए छनता जा, ( बृहता मदेन इन्द्रं आविश ) बडे आनन्दसे तू इन्द्रके पेटमें जा, ( वाचं वर्धय ) स्तुतिका संवर्धन कर, ( पुरन्धिं जनय ) बहुत काम करनेवाली बुद्धिको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

८६२ यत् द्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रꣳसूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।५ )

८६३ आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माꣳअव मघवन् गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥ ११ ( ली ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।७०।६ )

८६४ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३३।१ )

८६५ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वब्दीव वꣳसगः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३३।२ )

८६६ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥ १२ ( छा ) ॥

[ धा० २७ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३३।३ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८६२ ] हे इन्द्र ! ( ते ) तेरी बराबरी करनेके लिए ( यत् द्यावः शतं स्युः ) यदि द्युलोक सौ हो जावें, ( उत भूमिः शतं स्युः ) और भूमियां भी सौ होजावें और हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्रं सूर्याः ) हजारों सूर्य हो जावें, तो वे सब भी ( त्वा न अनु न अष्ट ) तेरी बराबरी नही कर सकते, ( जातं न अनु अष्ट ) कोई भी पैदा हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, ( रोदसी ) ये दोनों द्यावापृथिवी भी तेरी समता नहीं कर सकते ॥ १ ॥

[ ८६३ ] हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू अपने ( वृष्ण्या महिना ) सामर्थ्यके महत्वसे युक्त ( शवसा ) बलसे ( विश्वा आ पप्राथ ) सभीको पूर्ण करता है। हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( मघवन् वज्रिन् ) धनवान्, वज्रधारी इन्द्र ! ( गोमति व्रजे ) गायोसे भरे हुए गौशालामें ( चित्राभि ऊतिभिः ) अनेक प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे ( नः अव ) हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८६४ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुका वध करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां वयं घ ) तेरे पास हम ( सुतावन्तः ) सोमरस निकाल कर ( आपः न ) जलप्रवाहके समान आते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र सोमकी शुद्धि करते हुए ( वृक्त-बर्हिषः स्तोतारः ) आसनको फैलाकर स्तुति करनेवाले ( परि उप आसते ) तेरी उपासना करते है ॥ १ ॥

[ ८६५ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( सुते निरेके ) सोमरस निकालनेके बाद ( उक्थिनः नरः ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज ( त्वा स्वरन्ति ) तेरी स्तुति करते हैं, ( सुतं तृषाणः ) सोमरस पीनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्र ( वंसगः ) बैल जैसा ( स्वब्दीव ) शब्द करता हुआ ( कदा ओकः आगमत् ) कब हमारे घर आएगा ? ॥ २ ॥

[ ८६६ ] ( धृष्णो ) हे शूरवीर इन्द्र ! ( कण्वेभिः ) कण्वोंके द्वारा स्तुति किए जानेके बाद उन्हें तू ( सहस्रिणं वाजं आदर्षि ) हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है । हे ( मघवन् विचर्षणे ) धनवान् और ज्ञानी इन्द्र ! तेरे पाससे ( धृषत् ) शत्रुका नाश करनेवाले ( पिशंग-रूपं ) सोनेके समान चमकनेवाले ( गोमन्तं वाजं ) गायसे साथ रहनेवाले धन ( मक्षु ईमहे ) शीघ्र पाना चाहते हैं ॥ ३ ॥

८६७ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा । आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥१॥
( ऋ. ७।३२।२० )

८६८ न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवं तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २ ॥ १३ ( यि ) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ७।३२।२१ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८६९ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३३।४ )

८७० अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३३।५ )

८७१ रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ १४ ( टा ) ॥
[ धा० १८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।३३।६ )

८७२ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।४ )

---

[ ८६७ ] ( तरणिः इत् ) दुःखको पार कर जानेवाला वीर ही ( युजा पुरंध्या ) योग्य और विशाल बुद्धिकी सहायतासे ( वाजं सिषासति ) बल प्राप्त करना चाहता है। हे यज्ञ करनेवालो ! ( वः ) तुम्हारे लिए ( गिरा ) स्तुतिके द्वारा ( पुरु-हूतं इन्द्रं ) बहुतोंके द्वारा स्तुति किये गये इन्द्रको जिस प्रकार ( तष्टा सुद्रुवं नेमिं इव ) बढई लकडीकी धुरि बनाता है, उसी प्रकार ( आ नमे ) नमन करता हूँ ॥ १ ॥

[ ८६८ ] ( द्रविणोदेषु ) धनके दान करनेवाले पुरुषोंकी ( दु-स्तुतिः न शस्यते ) निन्दाकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता है, ( स्रेधन्तं ) दान दाताओंकी स्तुति न करनेवालोंको ( रयिः न नशत् ) धन प्राप्त नहीं होता, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( पार्ये दिवि ) सोमयज्ञके दिन ( मावते ) मुझ जैसोंको, ( देष्णं यत् ) देने योग्य जो धन है, ( तुभ्यं सुशक्तिः इत् ) उन्हें तुझसे उत्तम शक्तिशाली ही प्राप्त करता है ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८६९ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋक्, यजु, साम इन तीन वाणियोंका यज्ञकर्ता उच्चारण करते हैं, ( धेनवः गावः मिमन्ति ) दुधारु गायें रंभाती हैं, ( हरिः कनिक्रदत् एति ) हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ कलशमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ८७० ] ( दिवः शिशुं मर्जयन्तीः ) द्युलोकके पुत्ररूपी सोमको शुद्ध करती हुई ( ब्रह्मीः ) वेदोंमेंसे ( ऋतस्य यह्वीः मातरः ) यज्ञके बडे महत्वका वर्णन करनेवाली स्तुतियां ( अभि अनूषत ) गाई जाती हैं ॥ २ ॥

[ ८७१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( रायः चतुरः समुद्रान् ) धनके चार समुद्रोंको ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( विश्वतः आ पवस्व ) चारों ही ओरसे लाकर दे, और ( सहस्रिणः ) हमारी हजारों इच्छाओंको तृप्त कर ॥ ३ ॥

[ ८७२ ] ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मीठे ( मन्दिनः सुतासः ) आनन्द बढानेवाले सोमरस ( पवित्रवन्तः ) शुद्ध होकर ( इन्द्राय अक्षरन् ) इन्द्रके लिए कलशमें पडते हैं, हे ( सोमाः ) सोमरसो ! ( वः मदाः देवान् गच्छन्तु ) तुम्हारे आनन्ददायक रस देवोंको प्राप्त हों ॥ १ ॥

८७३ इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०१।५ )

८७४ सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणाᳫंसखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥
[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०१।६ )

८७५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८३।१ )

८७६ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८३।२ )

८७७ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥ १६ ( डु ) ॥
[ धा० ३८ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।८३।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

---

[ ८७३ ] ( इन्दुः ) सोमरस ( इन्द्राय पवते ) इन्द्रके लिए छाना जाता है, ( इति देवासः अब्रुवन् ) इस प्रकार स्तुति करनेवाले कहते है, ( वाचः-पतिः ) स्तुतियोंके रक्षक और ( विश्वस्य ओजसः ईशानः ) सब बलोंके स्वामी इस सोमका ( मखस्यते ) यज्ञमें उपयोग किया जाता है ॥ २ ॥

[ ८७४ ] ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया हुआ ( वाचं ईंखयः ) वाणीको प्रेरणा देनेवाला ( रयीणां पतिः ) धनोंका स्वामी ( इन्द्रस्य सखा ) इन्द्रका मित्र ( सोमः ) यह सोम ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( सहस्र-धारः पवते ) हजारों धाराओंसे कलशमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८७५ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) मंत्रोंके स्वामी सोम ! ( ते पवित्रं विततं ) तेरा पवित्र हुआ भाग सब जगह फैला हुआ है, तू ( प्रभुः ) सामर्थ्यवान् ( गात्राणि पर्येषि ) पीनेवालोंके अवयवोंमें व्याप्त होता है, ( विश्वतः अ-तप्त-तनूः ) सब तरफसे शरीरको तपसे बिना तपाये ( आमः तत् न अश्नुते ) अपक्व शरीरसे उस सुखको कोई प्राप्त नहीं कर सकता । ( शृतासः इत् ) जो परिपक्व है, वे ही ( वहन्तः तत् सं आशते ) यज्ञ करते हुए सुख प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ ८७६ ] ( तपोः पवित्रं ) शत्रुको तपानेवाले सोमके पवित्र अंग ( दिवः पदे विततं ) द्युलोकके स्थानमें फैले हुए हैं, ( अस्य तन्तवः ) इसकी किरणें ( अर्चन्तः व्यस्थिरन् ) चमकती हुईं विशेष रीतिसे स्थिर हो गई हैं, ( अस्य आशवः ) इस सोमके जल्दी ही फैलनेवाले रस ( पवितारं अवन्ति ) शुद्ध करनेवालोंकी रक्षा करते हैं, वे ( दिवः पृष्ठं ) द्युलोकके पृष्ठ भाग पर ( तेजसा अधिरोहन्ति ) अपने तेजसे चढकर बैठते है ॥ २ ॥

[ ८७७ ] ( उषसः पृश्निः ) उषःकालमें सूर्य ( अग्रियः अरूरुचत् ) पहले प्रकाशित होता है । ( उक्षा ) वर्षा करनेवाला वह ( भुवनेषु मिमेति ) सब भुवनोंमें जल सींचता है और प्रजाको ( वाज-युः ) अन्नसे युक्त करता है, ( माया विनः ) शक्तिमान् देवता ( अस्य मायया ) इसकी शक्तिसे ( ममिरे ) जगत्का निर्माण करते हैं, ( अस्य ) इस सोमकी शक्तिसे ( नृचक्षसः पितरः ) मानवोंका निरीक्षण करनेवाले पालक ( गर्भं आदधुः ) ओषधिमें गर्भ स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

८७८ प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०३।८ )

८७९ आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥ १७ ( या ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०३।९ )

८८० तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।४ )

८८१ येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१५।५ )

८८२ तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १८ ( ह ) ॥

[ धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१५।६ )

८८३ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ १ ॥

( ऋ. ८।९५।४ )

---

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ८७८ ] ( उप-स्तुतासः ) हे स्तुति करनेवालो ! तुम ( मंहिष्ठाय ) श्रेष्ठ ( ऋताव्ने ) यज्ञ करनेवाले ( बृहते शुक्र-शोचिषे ) महान् तेजस्वी ( अग्नये प्र गायत ) अग्निके लिए स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ८७९ ] ( मघवा द्युम्नी ) धनवान् तेजस्वी ( समिद्धः आहुतः ) प्रदीप्त और हवन किया गया अग्नि ( वीरवत् यशः ) पुत्रोंसे होनेवाला यश ( आ वंसते ) देता है, ( अस्य ) इस अग्निकी ( भवीयर्सी सुमतिः ) हमारे अनुकूल रहनेवाली बुद्धि ( नः अच्छ ) हमारे पास ( वाजेभिः ) अन्नोंके साथ ( कुवित् आगमत् ) अनेक बार आवे ॥ २ ॥

[ ८८० ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते वृषणं ) तेरे मनोरथकी पूर्ति करनेवाले ( पृक्षु सासहिं ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाले ( लोककृत्नं उ ) लोकोंका हित करनेवाले ( हरि श्रियं ) अश्वोंकी शोभा जिसके पास है, ऐसे ( तं मदं ) उस सोम पीनेसे उत्पन्न हुए हुए उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ८८१ ] हे इन्द्र ! ( येन ) जिस उत्साहसे ( आयवे मनवे ) दीर्घायुवाले मनुष्यके हितके लिए ( ज्योतींषि विवेदिथ ) सूर्यादि अनेक तेजस्वी पदार्थ प्रकाशित किए, उसी उत्साहसे युक्त होकर ( अस्य बर्हिषः मन्दानः ) इस यज्ञकर्ताके आसन पर आनन्दित होकर ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ २ ॥

[ ८८२ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् ) तेरे उस बलकी ( अद्या चित् ) आज भी ( पूर्वथा ) पूर्वके समान ( उक्थिनः अनुस्तुवन्ति ) स्तुतिकर्ता स्तुति करते हैं, इस प्रकार तू ( वृषपत्नी अपः ) बलके पालन करनेवालोंको ( दिवे दिवे जय ) प्रतिदिन जीत करके प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९८३ ] ( यः त्वा सपर्यति ) जो तेरी आराधना करता है, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( तिरश्च्या हवं श्रुधि ) उस तिरश्चि ऋषिकी प्रार्थना सुन और ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि ) उत्तम श्रेष्ठ पुत्रसे युक्त और गायोंसे युक्त धनसे हमें पूर्ण कर । ( महान् असि ) तू महान् है ॥ १ ॥

८८४ यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९५।५ )

८८५ तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ १९ (फा) ॥

॥ ६ [ धा० १५ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९५।६ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः । द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

[ ८८४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ) जो ( नवीयसीं ) नयी और ( मन्द्रां गिरं ) आनन्ददायक स्तुति ( ते अजीजनत् ) तेरे लिए करता है, उस स्तोताको ( प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं ) पुरातन यज्ञको बढानेवाली ( चिकित्विन् मनसं ) मनको शुद्ध करनेवाली ( धियं ) बुद्धि दे ॥ २ ॥

[ ८८५ ] हम ( तं उ इन्द्रं स्तवाम ) उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( यं गिरः उक्थानि वावृधुः ) जिसकी महिमा मंत्र और स्तोत्र बढाते हैं, इसलिए ( अस्य ) इस इन्द्रके ( पुरूणि पौंस्या ) महान् पराक्रमोंका हम ( सिषासन्तः वनामहे ) भक्तिसे वर्णन करते हैं. ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

# चतुर्थ अध्याय

इस चौथे अध्यायमें इन्द्रका जो गुण वर्णन किया है, वह इस प्रकार है ।

### इन्द्रके गुण

१ अविभ्युषः [८५०]- निर्भय, किसीसे न डरनेवाला।
२ धृष्णुः [८६६]- शत्रुओंको दूर करनेवाला, शूरवीर।
३ तरणिः [ ८६७ ]- दुःखसे पार होनेवाला ।
४ वृषा [ ८६३ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान् ।
५ वज्रिन् [ ८६३ ]- वज्रधारी, शस्त्रास्त्रधारी ।
६ शविष्ठः [ ८६३ ]- सामर्थ्यवान् ।
७ मघवान् [ ८६३ ]- धनवान् ।
८ वसुः [ ८६५ ]- धनवान्, निवास करानेवाला ।
९ विचर्षणिः [ ८६६ ]- विशेष ज्ञानी



१० पुरु-हूतः [ ८६७ ]- जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

११ अस्य पुरूणि पौंस्या सिषासन्तः वनामहे [ ८८५ ]- इस इंद्रके बहुतसे पराक्रमके कार्योंका वर्णन हम-भक्तिसे करते हैं ।

१२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम वीर्यवान् पुत्र और गायोंसे युक्त धन हमें भरपूर दे ।

१३ हे वृषन् ! वृष्ण्या महिना शवसा विश्वा आ पप्राथ [ ८६३ ]- हे बलवान् इन्द्र ! सामर्थ्य और महान् बलसे तू सब कार्योंको पूर्ण करता है ।

१४ हे इन्द्र ! यः नवीयसीं मन्द्रां गिरं ते अजीजनत्, प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं चिकित्विन् मनसं धियं

[ ८८४ ]- हे इन्द्र ! जो तेरी नई और आनन्द बढानेवाली स्तुति करता है, उसे प्राचीनकालसे ही यज्ञको बढानेवाली और मनको पवित्र करनेवाली बुद्धि तू देता है।

१५ हे इन्द्र ! यत् द्यावः शतं स्युः, यत् भूमिः शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः त्वा न अनु अष्ट, जातं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट [८६२]- हे इन्द्र ! यदि सौ द्युलोक होजायें, सैंकडों भूमियां हो जायें, हजारों सूर्य हो जायें, तो भी वे तेरी बराबरी नहीं कर सकते, उत्पन्न हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, द्यावापृथिवी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते।

इन्द्रके ये गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं, उन्हें उपासक अपने अन्दर लानेका प्रयास करें। जो अपने अन्दर लानेके योग्य न हों तो उनका भावार्थ मनमें लाकर उनको जितना धारण किया जा सकता है, उतना करें।

## इन्द्रका रक्षण

इन्द्र सभीका संरक्षण करता है, इसलिए कहा है—

१ हे मघवन् ! वज्रिन् ! गोमति व्रजे चित्राभिः ऊतिभिः नः अव [ ८६३ ]- हे धनवान् वज्रधारी इन्द्र ! गायोंसे भरी हुई गौशालामें अनेक संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर, अर्थात् हमें गायोंसे भरी हुई गौशाला भी दे और साथ ही हमारा संरक्षण भी कर।

२ हे अद्रिवः ! ते वृषणं पृक्षु सासहिं लोककृत्नुं मदं गृणीमसि [८८०]- हे वज्रधारी इन्द्र ! बलशाली, युद्धमें शत्रुको हरानेवाले लोगोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे उत्साहकी हम प्रशंसा करते है। इन्द्रका उत्साह लोगोंका हित करनेवाला है।

३ ते तत् अद्याचित् पूर्वथा उक्थिनः अनुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस शूरवीरताकी पहलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं।

## इन्द्र धन देता है

इन्द्र स्तुति करनेवालोंको धन देता है, इस विषयमें आगेके मंत्र भाग देखने योग्य हैं—

१ हे धृष्णो ! सहस्रिणं वाजं आदर्षि [ ८६६ ]- हे शूरवीर इन्द्र ! तू हमें हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है।

२ हे मघवन् विचर्षणे ! धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं वाजं मक्षू ईमहे [८६६]- हे धनवान् ज्ञानी इन्द्र ! शत्रुको हरानेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, गायोंके साथ रहनेवाले धन हमें शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं।

३ तरणिः युजा पुरन्ध्या वाजं सिषासति [८६७] – दुःखोंसे पार होनेवाला वीर तेरी उत्तम और विशाल बुद्धिसे बल अथवा धन पानेकी इच्छा करता है।

४ पुरु-हूतं इन्द्रं आनमे [ ८६७ ]- बहुतोंके द्वारा स्तुति किए गए इन्द्रको मैं अपनी सहायताके लिए बुलाता हूं।

५ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः न शस्यते [८६८]- धन देनेवाले इन्द्रादिकी निन्दा करना अच्छा नहीं है, क्योंकि उनकी उत्तम स्तुति ही करनी चाहिए।

६ हे मघवन् ! पार्ये दिवि मावते देष्णं तुभ्यं सुशक्तिः इत् [८६८]- हे इन्द्र ! दुःखोंसे पार करनेवाले दिव्य यज्ञमें मुझ जैसेको देने योग्य जो धन है, वे तेरे पाससे उत्तम शक्तिमान् ही प्राप्त कर सकता है,। शक्तिमान् यज्ञ करता है और धन पाता है।

इन्द्र उपासकोंको धन देता है, इस विषयमें ऊपरके मंत्र भाग मनन करने योग्य हैं। यज्ञमें इंद्रादि देवोंको सोमरस दिया जाता है, इस विषयमें मंत्र भागोंको अब देखिये—

## इन्द्रको सोम देना

यज्ञमें सोमका रस निकाला जाता है, और वह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है। इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ इन्दुः इन्द्राय पवते इति देवासः अब्रुवन् [८७३] – सोम इन्द्रको दिया जाता है ऐसा देवोंने कहा है।

२ रयीणां पतिः दिवेदिवे इन्द्रस्य सखा सोमः सहस्रधारः पवते [ ८७४ ]- ऐश्वर्योंका पालक, प्रतिदिन इन्द्रका मित्र सोम हजारों धाराओंसे छाना जाता है।

३ वाचस्पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मखस्यते [ ८७३ ]- वाणीका पति, सब सामर्थ्योंका ईश्वर ऐसा यह सोम यज्ञमें सन्मानके योग्य है। यज्ञमें इन्द्रको पीनेके लिए दिया जाता है यह सोमका सम्मान है।

४ बृहता मदेन इन्द्रं आविश [ ८६१ ]- हे सोम ! तू महान् आनन्दसे इन्द्रमें प्रवेश कर।

५ वाचं वर्धय पुरन्धिं जनय [८६१]- वक्तृत्वशक्ति बढा और उत्तम बुद्धि निर्माण कर। सोमरस पीनेके बाद जो उत्साह बढता है उससे अच्छी तरह बोलनेकी शक्ति आती है और बुद्धि भी तीव्र होती है।

इस तरह इन्द्रादि देवता सोमरस पीते हैं, और महान् शूरवीरताके काम करते हैं। देखिए—

६ संवृक्त-धृष्णुं महामहिव्रतं मदं शतं पुरः रुरुक्षिणं [ ८३७ ]- जिसने अपने शत्रु हरा दिए, जो महान् महान् कार्य करता है, जो शत्रुके सौ किले तोडता है, उस सोमरसके आनन्दकी हम प्रशंसा करते हैं। सोमरस पीनेसे पराक्रम करनेकी शक्ति अपने अन्दर आती है।

इस प्रकार इन्द्रके वर्णन इस अध्यायमें हैं। अब अग्निके वर्णन देखिए —

## अग्निका वर्णन

इस अध्यायमें अग्निका इसप्रकार गुणवर्णन किया है—

१ कविः [ ८४४ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।

२ युवा [ ८४४ ]- तरुण।

३ गृहपतिः [ ८४४ ]- घरकी रक्षा करनेवाला।

४ पावकः [ ८४६ ]- पवित्र करनेवाला।

५ प्राविता [ ८४१ ]- उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाला।

६ मघवा [ ८७९ ]- धनवान्।

७ द्युम्नी [ ८७९ ]- तेजस्वी।

८ मंहिष्ठः [ ८७८ ]- महान्।

९ ऋतावन् [ ८७८ ]- सत्यपालक, यज्ञ करनेवाला, उत्तम कर्म करनेवाला।

१० बृहत् [ ८७८ ]- बडा, महान्।

११ शुक्रशोचिः [ ८७८ ]- शुद्ध प्रकाशवाला।

१२ हव्यवाट्[८४४]- हवन किए गए पदार्थ देवताओंके पास पहुंचानेवाला।

१३ दूतः [ ८४५ ]- देवोंको हवि पहुंचानेवाला।

१४ वीरवत् यशः आ वंसते [ ८७९ ]- पुत्रपौत्रोंके साथ मिलनेवाला यश प्राप्त कराता है।

१५ अस्य भद्रीयसी सुमतिः नः अद्य वाजेभिः कुवित् आगमत् [८७९]- इसके अनुकूल होनेवाली उत्तम बुद्धि हमारे पास आज अन्नके साथ आवे।

इस तरह अग्निके गुण इस अध्यायमें वर्णन किये हैं, ये गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर धारण कर ले तो उसकी योग्यता कितनी ऊंची हो जाए ?

## सूर्य

सूर्यका वर्णन इस अध्यायके एक ही मंत्रमें किया है, उसे देखिए—

१ उपसः पृश्निः अग्रियः अरूरुचत् [८७७]- उषःकालके बाद सूर्य प्रथम चमकने लगता है।

२ उक्षा भुवनेषु मिमेति [ ८७७ ]- वृष्टि करनेवाला वह सूर्य सब भुवनोंमें जलका सिंचन करता है।

३ मायाविनः अस्य मायया ममिरे [८७७]- कुशल देवता इस सोमके सामर्थ्यसे जगत्में पदार्थोंका निर्माण करते हैं।

उषःकाल होते ही उठना और दूसरोंको प्रकाशके द्वारा मार्ग दिखाना, दूसरोंको जल अर्थात् जीवन देकर अनेक प्रकारके कुशलताके काम करनेके लिए प्रेरणा देना ये बोध इन वचनोंसे मिल सकते हैं।

## मरुत्

मरुत् देवताका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार किया है—

१ मन्दू समानवर्चसा अविभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः संदृक्षसे [ ८५० ]- स्वभावसे आनन्दयुक्त और समान तेजस्वी मरुत् गण निर्भय इन्द्रके साथ रहनेके कारण उत्तम तेजस्वी दीखते हैं।

२ वीळु चित् आरुजत्नुभिः वह्निभिः मरुद्भिः गुहाचित् उस्रियाः अन्वविन्दः [८५२]- मजबूत किले तोडनेवाले तेजस्वी मरुतोंने गुफामें छिपायी गई गायोंको प्राप्त किया।

मरुत् गण ऐसे तेजस्वी और लडाकू वीर हैं, वे शत्रुके किले तोडते हैं और उन पर अपना अधिकार करते हैं। ऐसी वीरता लोग अपने अन्दर बढावें।

## इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्नि इन देवताओंका वर्णन भी इस अध्यायमें आया है। वह अब देखिए —

१ ता इन्द्राग्नी, ययोः पुराकृतं विश्वं पप्ने [८५३] — वे सुप्रसिद्ध इन्द्र और अग्नि हैं, जिनके द्वारा पहले किए गए सब उत्तम कर्मोंका बखान किया जाता है।

२ न मर्धतः [ ८५३ ]— वे कभी भी दुःख नहीं देते।

३ ता उग्रा मृधः विघनिना इन्द्राग्नी हवामहे [८५४]— वे उग्रवीर शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि हैं, उन्हें हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

४ ईदृशे नः मृडातः [ ८५४ ]— ये हमें सुख देते हैं।

५ हे इन्द्राग्नी ! आर्या वृत्राणि हथः [ ८५५ ]- हे इन्द्र और अग्नि ! तुम आर्योंके कल्याण करनेके लिए शत्रुओंके संहार करते हो।

६ हे सत्पती ! दासानि विश्वा द्विषः अप हथः

[ ८५५ ]- हे सत्यपालको ! तुम नीचोंको और उसी प्रकार सब शत्रुओंको मारो और दूर करो।

इस प्रकार उपासक उत्तम वीर बनें और जो शत्रु हों उन्हें दूर करें।

## पानीकी उत्पत्ति

मित्र और वरुण ये दोनों वायु हैं, वे पानी उत्पन्न करते हैं, ऐसा मंत्रमें कहा है—

१ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता [ ८४७ ]- ( पूत-दक्षं मित्रं ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिशादसं वरुणं ) हिंसक शत्रुओंके नाश करनेवाले वरुणको ( हुवे ) में बुलाता हूं, ये दोनों ( घृताचीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके काम करते हैं।

२ रिश-अदस् वरुणः [ ८४७ ]- जंग लगानेवाला, ( ऑक्सीजन वायु ) जो जंग पैदा करता है।

३ पूतदक्षः मित्रः [ ८४७ ]- पवित्र बलवान् वायु ( हाइड्रोजन )।

इसमें " रिश्, रिष्ट ( रस्ट Rust ) ये दोनों धातु किसी धातु ( लोहे आदि ) में जंग लगनेके भावको दिखाते हैं। इंग्लिशका " रस्ट् " ( Rust ) भी संस्कृतके " रिश् " से निकट सम्बन्ध रखता है।

४ मित्रावरुणौ ऋतावृधौ [ ८४८ ]- मित्र और वरुण ये पानी बढानेवाले हैं।

५ कवी तुविजाता उरुक्षया मित्रावरुणा नः अपसं बलं दधाते [ ८४९ ]- ( क-वी ) " क " का अर्थ है जल और " वी " का अर्थ है उत्पन्न करनेवाले, ( तुविजाता ) अनेक कार्यमें उपयोगी, ( उरु-क्षया ) अनेक स्थानों पर रहनेवाले मित्र और वरुण ये वायु हमारे कार्य और बलको पुष्ट करें।

इस मंत्रमें ये दोनों वायु ( घृत-अर्ची धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके कार्य करते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है।

## सोमके गुण

इस अध्यायमें सोमका भी वर्णन है। उसमें सोमके गुण वर्णित हैं। उन्हें अब देखिए—

१ वाजी [ ८३० ]- बलवान्, अन्नवान्।

२ राजा [ ८३३ ]- राज्य चलानेवाला, तेजस्वी, चमकनेवाला।

३ सहः जुवः [ ८३४ ]- बल बढानेवाला।

४ संवृक्त-धृष्णुः [ ८३७ ]- जिसने अपने सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओंको हरा करके नष्ट कर दिया है।

५ मह्रा-महि-व्रतः [ ८३७ ]- अनेक महान् महान् कार्य करनेवाला।

६ सुक्रतुः [ ८३८ ]- उत्तम कर्म करनेवाला।

७ विश्वस्य ओजसः ईशानः [ ८३७ ]- सब सामर्थ्योंका स्वामी।

८ शतं पुरः रुरुक्षी [ ८३७ ]- शत्रुके सैंकडों नगर तोडनेवाला।

९ पुरु दुरिता विघ्नन् [ ८३१ ]- बहुतसे घातक शत्रुओंका-पाप कर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला।

१० तपोः पवित्रं [ ८७६ ]- शत्रुको दुःख देनेवालेका पवित्र भाग।

११ विचर्षणिः [ ८३९ ]- विशेष ज्ञानी।

१२ अभिष्टिकृत् [ ८३९ ]- इच्छित कार्योंको करनेवाला।

१३ ऋतस्य गोपा [ ८४० ]- सत्यका रक्षक, यज्ञका रक्षक।

१४ हितः [ ८४३ ]- कल्याण करनेवाला।

१५ देवः [ ८५७ ]- प्रकाशमान्, दिव्य।

१६ वाचः-पतिः [ ८७४ ]- भाषण देनेवाला, वाणीका स्वामी।

१७ ब्रह्मणः-पतिः [ ८७५ ]- ज्ञानका स्वामी, ज्ञानी।

१८ विचक्षणः [ ८५८ ]- विशेष ज्ञानी, चतुर।

१९ हर्यतः [ ८५८ ]- पूज्य, वन्दनीय।

२० पुरन्धि जनय [ ८६१ ]- विशाल बुद्धि प्रकट करनेवाला।

२१ इन्द्रियं हिन्वानः [ ८३९ ]- अपनी इन्द्रिय शक्तिको उत्साहित करनेवाला।

२२ मनीषिभिः मृज्यमानः [ ८४१ ]- ज्ञानी जिसकी शुद्धता करते हैं, ज्ञानियोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला।

२३ विश्वस्मै स्वर्दृशे साधारणः [ ८४० ]- सब आत्मदर्शी ज्ञानियोंमें साधारणतया रहनेवाला।

२४ वाजिभिः द्युतानः [ ८४३ ]- बलवानोंके द्वारा प्रदीप्त किया गया, बलवान् जिसे आगे स्थापित करते हैं।

२५ मत्सरः मदच्युतः [ ८५६ ]- आनन्द बढानेवाला।

२६ पवमानः [ ८५७ ]- शुद्ध होनेवाला।

२७ बृहत् ऋतं हिन्वानः [ ८५७ ]- महान् सत्य प्रकट करनेवाला, महान् यज्ञ करनेवाला।

२८ दिवः पदे विततः [ ८७६ ]- दिव्य स्थानमें रहनेवाला।

२९ मधुमत्तमः [ ८७२ ]- अत्यन्त मीठा।

३० रयीणां पतिः [ ८७४ ]- धनोंका स्वामी।

३१ रयिः अभि अयत् [८३८]- धनके पास जानेवाला।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित है। सोमरस पीनेसे जो उत्साह और सामर्थ्य बढता है, उससे वीर पुरुष वीरताके काम करते हैं, इसलिए ये गुण सोमके ही है, यह बात आलंकारिक भाषामें कही है। यह बात ध्यानमें रखनेसे ऊपरके गुण सोमके किस प्रकार हैं, यह स्पष्ट हो जाएगा।

## सोमका स्वर्गसे लाया जाना

सोम स्वर्गसे पृथ्वी पर लाया गया, इस प्रकार सोमका वर्णन वेदोंमें अनेक जगह पर आया है। मौजवान् हिमालयके एक ऊंचे शिखरका नाम है। उस ऊंची चोटी पर सोम उगता है और वहांसे लाया जाता है। हिमालयके ऊपरका भाग स्वर्ग है, वहांसे सोम लाया जाता है, इसलिए वह स्वर्गसे लाया गया ऐसा कहते हैं। यह वर्णन अब देखिए—

१ रयिः अभि अयत् राजानं त्वा दिवः अव्यथी सुपर्णः आभरत् [८३८]- धनके पास पहुंचनेवाले तेजस्वी राजाके समान तुझे स्वर्गसे दुःख न माननेवाला गरुड ले आया।

२ ऋतस्य गोपां, विश्वस्मै स्वर्दृशे साधारणं विः भरत् [ ८४० ]- यज्ञके संरक्षण करनेवाले, सब स्वर्गको देखनेवाले, देवोंको साधारण रीतिसे प्राप्त होनेवाले सोमको पक्षी ले आया।

३ तपोः पवित्रं दिवः पदे विततं [ ८७६ ]- शत्रुको ताप देनेवाले सोमके वे पवित्र अंग स्वर्गलोकमें फैले हुए हैं।

४ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [८७६]- स्वर्गकी पीठ पर सोम अपने तेजसे बढता है। सोमकी बेल चमकती है। इस प्रकार सोम स्वर्गसे लाया जाता है, और यज्ञमें उसका रस निकाल कर उसका हवन किया जाता है।

## सोम धन देता है

सोमके धन देनेके विषयमें आगेके मंत्र देखने योग्य हैं—

१ इन्दवः विश्वानि सौभगा अभि [ ८३० ]- सोम सब सौभाग्य देता है।

२ महो दिवः राधस्येषु, नृम्णानि बिभ्रतं, चारुं तं त्वा सुकृत्यया ईमहे [ ८३६ ]- महान् द्युलोकके अनेक स्थानोंमें रहनेवाले अनेक प्रकारके धनोंको धारण करनेवाले, सुन्दर ऐसे तुझ सोमको उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करते हैं।

## सोम गाय और घोडे देता है

१ वाजिनः, पुरु दुरिता विघ्नन्तः, तोकाय सु-गाः अर्वतः त्मना कृण्वन्तः [८३१]- बल बढानेवाले, बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले ये सोमरस हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय और घोडे मिलें, इसलिए स्वयं ही मार्ग बनाते हैं।

२ हे इन्दो! शतग्विनं गवां पोषं, स्वश्व्यं भगात्ति नः आवह [ ८३५ ]- हे सोम! सौ गायोंसे युक्त, गायोंका पोषण करनेवाले सुन्दर घोडोंसे युक्त ऐसे भाग्यके दान हमें दे।

इस प्रकार सोम गाय और घोडे देता है। सोमका यज्ञमें उपयोग होता है और यज्ञमें गाय और घोडे आते हैं। वह मानों सोम ही लाता है इसप्रकार आलंकारिक भाषामें वर्णन है।

## सोमका पानीमें मिलाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, और उसमें पानी मिलाकर उसे छानते हैं, इस विषयके वर्णन आगेके मंत्रोंमें हैं-

१ हे सोम! परिपिच्यमानः, नः स्वस्ति पवस्व [ ८६१ ]- हे सोम। बर्तनमें रखे हुए पानीमें मिलकर हमारे कल्याणके लिए छनता जा।

२ हे सोम! रायः चतुरः समुद्रान् अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व [ ८७१ ]- हे सोम! धनके चारों समुद्रोंको हमारे लिए चारों ओरसे लाकर छनता जा। पानीमें मिलाकर तथा छानकर सोम शुद्ध किया जाता है।

## सोमरस छाना जाता है

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे छाना जाता है—

१ एते आशवः इन्दवः तिरः पवित्रं असृग्रम् [८३०] - ये शीघ्र गति करनेवाले सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं।

२ हे इन्दो! मनीषिभिः मृज्यमानः इषे धारया पवस्व [ ८४१ ]- हे सोम! बुद्धिमान् याजकोंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू हमारे अन्नके लिए छनता जा।

३ वाजिभिः द्युतानः देववीतये पुनानः हितः इन्द्रस्य निष्कृतं याहि [८४३]- अनेक शक्तियोंसे तेजस्वी दीखनेवाला, देवोंको देनेके लिए छनता हुआ, हितका करनेवाला सोम इन्द्रके पास जावे।

४ मनीषिणः आयवः, मत्सरासः मदच्युतः सोमासः समुद्रस्य अधि विष्टपे, मधं मदं अभि पवन्ते [ ८५६ ]- बुद्धिमान् याजक आनन्द बढानेवाले उत्साही

सोमरसोंको, जलके वर्तनके ऊपर रखी हुई छलनीसे आनन्द और उत्साह बढानेके लिए छानते हैं ।

५ पवमानः देवः राजा बृहद् ऋतं समुद्रं ऊर्मिणा तरद्, हिन्वानः ऋतं बृहत् मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र अर्ष |८५७|- शुद्ध किया जानेवाला तेजस्वी सोम राजा, बडे जल युक्त कलशमें धारासे, मित्र और वरुणके लिए छाना जाता है ।

६ नृभिः येमाणः हर्यतः विचक्षणः देवः राजा समुद्र्यः | ८५८ |- ऋत्विजों द्वारा तय्यार किया जानेवाला, वर्णनके योग्य और ज्ञान बढानेवाला वह दिव्य सोमरस जलोंमें मिलाकर छाना जाता है ।

७ सुतः सोमः पूयमानः ऋच्यते, त्रिष्टुभः अर्काः सोमं संनवन्ते | ८६० |- सोमरस छनकर पानीमें गिरता है, उस समय त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

इस प्रकार सोमरस पानीमें मिलाकर छाना जाता है । छाननेके बाद उसमें दूध मिलाया जाता है और पिया जाता है ।

## सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ रुचा गाः अभीहि | ८४१ |- तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाये जाते हैं ।

२ धेनवः गावः सोमं वावशानाः | ८६० |- दुधारु गायें सोमकी इच्छा करती हैं । अपना दूध सोमरसमें मिलाया जाये ऐसी इच्छा करती हैं ।

३ आशिरं सृजानः पुनानः |८४२|- दूधमें मिलाकर सोम छाना जाता है ।

४ धेनवः गावः मिमन्ति, हरिः कनिक्रदत् एति | ८६९ |- दुधारु गायें रंभाती हैं और हरे रंगका सोम शब्द करते हुए कलशमें जाता है ।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । इस वर्णनमें देवताओंका जो गुण वर्णन है, उन्हें साधक अपने अन्दर लावें और बढावें और देवत्व प्राप्त करके यशस्वी बनें ।

## सुभाषित

१ विश्वानि सौभगा अभि अग्रं | ८३० |- सब सौभाग्य - धन - प्राप्त करनेके लिए ये आगे जाते हैं ।

२ वाजिनः, पुरु दुरिता निघ्नन्तः, तोकाय सु-गाः अर्वतः त्मना कृण्वन्तः | ८३१ |- बल बढानेवाले और बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय व घोडे मिलें इसलिए अपने आप यत्न करते हैं ।

३ गवे अस्मभ्यं वरिवः इषां कृण्वन्तः [ ८३२ ]- गायोंके लिए और हमारे लिए श्रेष्ठ धन और अन्न प्राप्त करनेके लिए यत्न करते हैं ।

४ मनो अधि पवमानः राजा मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातवे ईयते [ ८३३ |- मनुष्योंमें शुद्ध होनेवाला राजा अपनी बुद्धिसे उच्च मार्गसे जानेकी कोशिश करता है ।

५ देववीतये सहः वर्चसे नः आ भर [ ८३४ ]- देवत्व प्राप्त करनेके लिए शत्रुको हरानेकी शक्ति हमारे तेज बढानेके लिए हमें भरपूर दे ।

६ शतग्विनं गवां पोषं, स्वश्व्यं भगत्ति नः आ वह |८३५|- सौ गायोंसे युक्त, गायका पोषण करनेवाले तथा उत्तम घोडोंवाले भाग्य हमें दे ।

७ नृम्णानि बिभ्रतं चारुं त्वा सुकृत्यया ईमहे | ८३६ |- अनेक धनोंके धारण करनेवाले सुन्दर ऐसे तुझे उत्तम कर्म करके प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ।

८ संवृक्त-धृष्णुं उक्थ्यं महामहिव्रतं मदं शतं पुरः रुरुक्षिणं |८३७|- जिसने अपने प्रभावी शत्रु नष्ट किए हैं ऐसे प्रशंसनीय और अनेक महत्वके कार्य करनेवाले, आनन्द देनेवाले, शत्रुके सैकडों नगरोंको तोडनेवाले वीरसे हम धन मांगते हैं ।

९ हे सुक्रतो ! रयिः अभि अयत् त्वा राजानं अध्वर्था आभरत् | ८३८ |- हे उत्तम कर्म करनेवाले ! धनके पास जानेवाले तेरे समान राजाको कर्म करनेमें दुःख न माननेवाले मनुष्य लाये हैं ।

१० विचर्षणिः, अभिष्टिकृत्, इन्द्रियं हिन्वानः, ज्यायः महित्वं आनशे | ८३९ |- विशेष ज्ञानी और इष्टकी सिद्धि करनेवाला अपनी शक्तिको प्रयोगमें लाकर श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है ।

११ ऋतस्य गोपां, विश्वस्मै स्वर्दृशे साधारणं भरत् [ ८४० |- सत्यके संरक्षण करनेवाले, अपनी दृष्टिसे देखनेवाले, सबोंके बीचमें साधारण तौरसे रहनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

१२ जनाय वरिवः ऊर्जं कृधि [८४२]- लोगोंमें श्रेष्ठ बल पैदा कर ।

१३ वाजिभिः सृजानः पुनानः हितः [ ८४३ ]-

अनेक शक्तियोंसे तेजस्वी, स्वच्छ तथा निर्दोष रहनेवाला ही हितकारक होता है।

१४ कविः गृहपतिः युवा अग्निः समिध्यते [८४४] – दूरदर्शी, घरका स्वामी, तरुण, आगे रहनेवाला प्रज्वलित किया जाता है, अधिक तेजस्वी किया आता है।

१५ यः सपर्यति तस्य प्राविता भव [ ८४५ ]– जो तेरी पूजा करता है, उसका तू रक्षक हो।

१६ यः अग्निं आ विवासति तस्मै मृडय [ ८४६ ]– जो अग्निकी आराधना करता है उसे सुखी कर।

१७ पूत-दक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं हुवे, घृताचीं धियं साधन्ता [ ८४७ ]– पवित्र बलसे युक्त मित्र और शत्रुको दूर करनेवाले वरुणको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ। वे घृत अर्थात् पौष्टिक पदार्थ प्राप्त करनेवाली बुद्धिको बढाते हैं। पवित्र कार्य करनेवाले बल और शत्रुको दूर करनेके सामर्थ्य जहां होते हैं, वहां पोषण करनेवाले पदार्थ भी रहते हैं।

१८ ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे [८४८]- सत्य बढानेवाले, सत्यको स्पर्श करनेवाले सत्यसे ही महान् कार्य करते हैं।

१९ कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं बलं दधाते [८४९]– अनेक कार्य करनेवाले, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, उत्तम कार्य करनेके बलको धारण करते हैं।

२० मन्दू समान वर्चसा अबिभ्युषा संजग्मानः [ ८५० ]– आनन्दित और तेजस्वी वीर न डरनेवाले वीरके साथ मिल गया है।

२१ वीडु आ रुजत्नुभिः वह्निभिः गुहा उस्रियाः अन्वविन्दः [ ८५२ ]– शत्रुके मजबूत किलोंको तोडनेवाले तेजस्वी वीरोंने शत्रुओं द्वारा चुराकर ले जाई गई और गुहामें छिपाकर रखी गईं गायोंको प्राप्त किया।

२२ ता पुराकृतं विश्वं इत् पप्ने, न मर्धतः [८५३] – उनके द्वारा पहले किए गए सब पराक्रमोंकी स्तुति होती है, वे दुःख नहीं देते।

२३ ता उग्रा विघनिना हवामहे [८५४]– वे बलवान् वीर शत्रुके नाश करनेवाले हैं, उनको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

२४ ईदृशे नः मृडातः [ ८५४ ]– इस प्रकारके इस संग्राममें हमें वे सुखी करते हैं।

२५ आर्या वृत्राणि हथः [८५५]– आर्योंके कल्याणके लिए तुम शत्रुओंको मारो।

२६ सत्पती दासानि हथः [ ८५५ ]– तुम सज्जनोंके पालन करनेवाले हो, इसलिए नीचोंको मारकर दूर करो।

२७ विश्वाः द्विषः अप हथः [८५५]– सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश करो।

२८ वाचं वर्धय [ ८६१ ]– वाङ्मयका संवर्धन कर।

२९ पुरन्धिं जनय [ ८६१ ]– बहुतसे उत्तम कर्म करनेमें समर्थ बुद्धिको उत्पन्न कर।

३० हे वृषन्! वृष्ण्या महिना शवसा विश्वा आ पप्राथ [८६३]– हे बलवान् वीर! सामर्थ्ययुक्त माहात्म्यसे और बलसे तू सब कार्य पूर्ण करता है।

३१ हे शविष्ठ मघवन् वज्रिन्! गोमति व्रजे चित्राभिः ऊतिभिः नः अव [ ८६३ ]– हे बलवान् धनवान् वज्रधारी वीर! गायोंसे भरी हुई गौशालामें विलक्षण प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर।

३२ हे विचर्षणे मघवन्! धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं वाजं मक्षु ईमहे [ ८६६ ]– हे ज्ञानी और धनवान् इन्द्र! तेरे पाससे शत्रुके नाश करनेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, गायोंके साथ रहनेवाले धन शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं।

३३ तरणिः युजा पुरन्ध्या वाजं सिषासति [८६७] – दुःखसे पार हो जानेवाला वीर, विशाल और उत्तम बुद्धिसे बल प्राप्त करनेकी इच्छा करता है।

३४ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः नः शस्यते [ ८६८ ]– धनोंके दान करनेवालोंकी निन्दा करना अच्छा नहीं।

३५ रयिः न नशत् [ ८६८ ]– उस निन्दकको धन नहीं मिलता।

३६ मावते देष्णं तुभ्यं सुशक्तिः [ ८६८ ]– मुझ जैसोंको देने योग्य धनको तुझसे शक्तिशाली ही प्राप्त कर सकते हैं।

३७ धेनवः गावः मिमान्ति [८६९]– दुधारु गायें दूध दुहनेके समय रंभाती हैं।

३८ व्रज्रीः ऋतस्य यह्वीः मातरः दिवः शिशुं मर्जयन्ति [ ८७० ]– ज्ञानी सत्यकी बडी मातायें एक दिनके बच्चेको नहलाती हैं।

३९ रायः अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व [ ८७१ ]– धन हमें चारों ओरसे लाकर दे।

४० वाचः-पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मखस्यते [ ८७३ ]– वाणीका स्वामी - विद्वान् - सब सामर्थ्योंका स्वामी हो तो पूज्य होता है।

४१ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततं [ ८७५ ]- हे ज्ञानके पति - हे ज्ञानी ! तेरे पवित्र कार्य सब जगह फैले हुए हैं।

४२ अततप्ततनूः आमः तत् न अश्नुते [ ८७५ ]- जिसने तप नहीं किया ऐसे अपक्व शरीरवालेको सुख नहीं मिल सकता।

४३ शृतासः इत् तत् समाशते [८७५]- जो परिपक्व होते हैं उन्हें ही वह सुख मिल सकता है।

४४ तपो पवित्रं दिवः पदे विततं [८७६]- शत्रुको ताप देनेवाले वीरोंका वह पवित्र स्थान द्युलोकमें फैला हुआ है।

४५ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- वे [ शत्रुको कष्ट देनेवाले ] द्युलोककी पीठ पर अपने तेजसे चढकर बैठते हैं।

४६ उषसः पृश्निः अग्रियः अरूरुचत् [ ८७७ ]- उषःकालके बाद सूर्य आगे होकर चमकने लगता है।

४७ उक्षा भुवनेषु मिमेति वाजयुः [ ८७७ ]- मेघ पृथ्वी पर बरसात गिराता है और अन्न उत्पन्न करता है।

४८ मंहिष्ठाय ऋतावने बृहते शुक्रशोचिषे प्रगायत [ ८७८ ]- जो श्रेष्ठ, सत्यनिष्ठ और महान् तेजस्वी है उसका वर्णन कर।

४९ मघवा वीरवत् यशः आ वंसते [ ८७९ ]- धनवान् इन्द्र पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाला यश देता है।

५० ते वृषणं पृत्सु सासहिं लोककृत्नुं मदं गृणीमसि [ ८८० ]- बलवर्धक युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाले, लोगोंका हित करनेवाले तेरे उत्साहकी हम प्रशंसा करते हैं।

५१ ते तत् पूर्वथा अद्य उक्थिनः अनुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं।

५२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त और गायोंसे युक्त धनसे हमें पूर्ण कर।

५३ ऋतस्य पिप्युषीं चिकित्विन् मनसं धियं [ ८८४ ]- सत्यका पोषण करनेवाली, मनको शुद्ध करनेवाली शुभ बुद्धि दे।

५४ अस्य पुरूणि पौंस्या सिषासन्तः वनामहे [ ८८५ ]- इसके बहुतसे पराक्रमके कार्योंका वर्णन हम भक्तिसे करते हैं।

---

# चतुर्थाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ८३० | ९।६२।१ | जमदग्निर्भार्गवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ८३१ | ९।६२।२ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८३२ | ९।६२।३ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८३३ | ९।६५।१६ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ८३४ | ९।६५।१८ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ८३५ | ९।६५।१७ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ८३६ | ९।४८।१ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८३७ | ९।४८।२ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८३८ | ९।४८।३ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८३९ | ९।४८।५ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८४० | ९।४८।४ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ८४१ | ९।६४।१३ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ८४२ | ९।६४।१४ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ८४३ | ९।६५।१५ | कश्यपो मारीचः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| | | ( २ ) | | |
| ८४४ | १।१२।६ | मेधातिथिः काण्वः | अग्निः | " |
| ८४५ | १।१२।८ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ८४६ | १।१२।९ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| ८४७ | १।२।७ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | मित्रावरुणौ | " |
| ८४८ | १।२।८ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ८४९ | १।२।९ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ८५० | १।६।७ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | " |
| ८५१ | १।६।४ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | मरुतः | " |
| ८५२ | १।६।५ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | " |
| ८५३ | ६।६०।४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | इन्द्राग्नी | " |
| ८५४ | ६।६०।५ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ८५५ | ६।६०।६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| ८५६ | ९।१०७।१४ | सप्तर्षयः | पवमानः सोमः | प्रगाथः ( विषमा बृहती, |
| ८५७ | ९।१०७।१५ | सप्तर्षयः | " | समा सतो बृहती ) |
| ८५८ | ९।१०७।१६ | सप्तर्षयः | " | द्विपदा विराट् |
| ८५९ | ९।९७।३४ | पराशरः शाक्त्यः | " | त्रिष्टुप् |
| ८६० | ९।९७।३५ | पराशरः शाक्त्यः | " | " |
| ८६१ | ९।९७।३६ | पराशरः शाक्त्यः | " | " |
| | | ( ४ ) | | |
| ८६२ | ८।७०।५ | पुरुहन्मा आंगिरसः | इन्द्रः | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ८६३ | ८।७०।६ | पुरुहन्मा आंगिरसः | " | " |
| ८६४ | ८।३३।१ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | बृहती |
| ८६५ | ८।३३।२ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| ८६६ | ८।३३।३ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| ८६७ | ७।३२।२० | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ८६८ | ७।३२।२१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| | | ( ५ ) | | |
| ८६९ | ९।३३।४ | त्रित आप्त्यः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ८७० | ९।३३।५ | त्रित आप्त्यः | " | " |
| ८७१ | ९।३३।६ | त्रित आप्त्यः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ८७२ | ९।१०१।४ | ययातिर्नाहुषः | पवमानः सोमः | अनुष्टुप् |
| ८७३ | ९।१०१।५ | ययातिर्नाहुषः | ,, | ,, |
| ८७४ | ९।१०१।६ | ययातिर्नाहुषः | ,, | ,, |
| ८७५ | ९।८३।१ | पवित्र आंगिरसः | ,, | जगती |
| ८७६ | ९।८३।२ | पवित्र आंगिरसः | ,, | ,, |
| ८७७ | ९।८३।३ | पवित्र आंगिरसः | ,, | ,, |

( ६ )

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ८७८ | ८।१०३।८ | सोभरिः काण्वः | अग्निः | प्रगाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ८७९ | ८।१०३।९ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८८० | ८।१४।४ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | इन्द्रः | उष्णिक् |
| ८८१ | ८।१४।५ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| ८८२ | ८।१४।६ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| ८८३ | ८।९५।४ | तिरश्चीरांगिरसौ | ,, | अनुष्टुप् |
| ८८४ | ८।९५।५ | तिरश्चीरांगिरसौ | ,, | ,, |
| ८८५ | ८।९५।६ | तिरश्चीरांगिरसौ | ,, | ,, |

# अथ पंचमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १ अकृष्टा माषाः; २ अमहीयुरांगिरसः; ३ मेध्यातिथिः काण्वः; ४, १२ बृहन्मतिरांगिरसः, ५ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६ सुतंभर आत्रेयः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८, २१ गोतमो राहूगणः; ९, १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० दृळ्हच्युत आगस्त्य.; ११ सप्तर्षयः ( भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौम.; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ) १४ रेभः काश्यपः; १५ पुरुहन्मा आंगिरसः; १६ असितः काश्यपो देवलो वा; १७ ( १ ) शक्तिर्वासिष्ठः, १७ ( २ ) उरुरांगिरस·; १८ अग्निश्चाक्षुषः; १९ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २० प्रयोगो भार्गवः; २१ पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः पुत्रावन्यतरो वा; २२ ॥ १-५; १०-१२, १६-१९ पवमानः सोमः; ६, २० अग्निः; ७ मित्रावरुणौ; ८, १३-१५, २१ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी; २२ ॥ १, ६ जगती; २-५, ७-१०, १२; १६, २० गायत्री; ११, १५ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १३ विराट्; १४ ( १ ) अति जगती, १४ ( २-३ ) उपरिष्टाद् बृहती; १७ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप समा सतोबृहती ); १८ उष्णिक् १९ त्रिष्टुप्; २१- अनुष्टुप् ॥

८८६ प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।४ )

८८७ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।६ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८८६ ] हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! (ते) तेरी (आश्विनीः धेनवः) वेगवान् दुधारु गायें (दिव्याः) दिव्य हैं, (पयसा) अपने दूधसे (धरीमणि) कलशमें (प्र असृग्रन्) पहुंचती हैं। ऋषिषाण) हे ऋषिके द्वारा निकाले गए सोमरस! (ये वेधसः त्वा मृजन्ति) जो ज्ञानी ऋत्विज तुझे छानते हैं (ते) वे ऋत्विज (अन्तरिक्षात्) ऊपरके बर्तनसे (स्थाविरीः असृक्षत) स्थिर धाराओंसे नीचेके कलशमें तुझे पहुंचाते हैं ॥ १ ॥

[ ८८७ ] (पवमानस्य ध्रुवस्य सतः) छाने जानेवाले स्थिर सोमकी (रश्मयः केतवः उभयत परियन्ति) किरणें दोनों ही तरफसे फैलती हैं, (यदि) जब (पवित्रे हरिः अधिमृज्यते) छलनीसे हरे रंगका सोम छाना जाता है, उस समय (सत्ता) स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला सोम (योनौ कलशेषु निषीदति) कलशरूपी बर्तनमें जाकर रहता है ॥ २ ॥

*

८८८ विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ १ (वी) ॥
[ धा० ३९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८६।५ )

८८९ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१६ )

८९० पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।१८ )

८९१ पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वꣳस्वर्दृशे ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥
[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६१।१७ )

८९२ प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥ ( ऋ. ९।४१।१ )

८९३ सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२॥ ( ऋ. ९।४१।२ )

८९४ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४१।३ )

८९५ आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४१।४ )

---

[ ८८८ ] ( विश्वचक्षः ) सब जगह देखनेवाले सोम ! ( प्रभोः सतः ते ) प्रभुत्वकी इच्छा करनेवाले तेरी ( ऋभ्वसः केतवः ) बडी बडी किरणें ( विश्वा धामानि परियन्ति ) सब जगह पहुंचती हैं, तब हे ( सोम ) सोम ! ( व्यानशी ) व्यापक स्वभावका तू ( धर्मणा पवसे ) अपने स्वभाव धर्मसे शुद्ध होता है, और ( विश्वस्य भुवनस्य पतिः ) सब भुवनोंका स्वामी तू ( राजसि ) चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८८९ ] ( पवमानः ) पवित्र किया जानेवाला सोम ( बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर नामके तेजको ( दिवः चित्रं तन्यतुं न ) द्युलोकमें विलक्षण तेजस्वी बिजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है, वह चमकता है ॥ १ ॥

[ ८९० ] हे ( राजन् पवमान ) तेजस्वी शुद्ध होनेवाले सोम ! ( तव मदः ) तेरा उत्साह बढानेवाला तथा ( अ-दुच्छुनः रसः ) राक्षसोंको न मिलनेवाला रस ( अव्यं वारं वि अर्षति ) बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे बर्तनमें पडता है ॥ २ ॥

[ ८९१ ] हे सोम ! ( पवमानस्य ते ) शुद्ध किए जानेवाले ऐसे तेरा ( दक्षः द्युमान् रसः ) बलवान् और तेजस्वी रस ( विराजति ) चमकता है ( विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे ) सर्व व्यापक तेरी ज्योति यहां दीखती है ॥ ३ ॥

[ ८९२ ] ( गावः न ) गायोंके समान ( भूर्णयः ) शीघ्र जानेवाला ( त्वेषाः अयासः ) तेजस्वी गतिमान् ( यत् ) जो सोम ( कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः ) काली चमडी [ छाल ] को दूर करके ( प्र अक्रमुः ) बर्तनमें गिरता है, उसकी प्रशंसा होती है ॥ १ ॥

[ ८९३ ] ( सु-वितस्य ) सुखदाई सोमकी ( दुराय्यं अति सेतुं ) दुष्प्राप्य बन्धनको दूर करनेके लिए हम ( वनामहे ) प्रार्थना करते हैं, ( अ-व्रतं दस्युं साह्याम ) सत्कर्म न करनेवाले शत्रुको हम हरायें ॥ २ ॥

[ ८९४ ] ( वृष्टेः स्वनः इव ) वृष्टिके शब्दके समान ( पवमानस्य ) शुद्ध किए जानेवाले सोमका शब्द ( श्रूयते ) सुना जाता है । उस समय ( शुष्मिणः विद्युतः ) बलशाली सोमकी किरणें ( दिवि चरन्ति ) आकाशमें संचार करती हैं ॥ ३ ॥

[ ८९५ ] हे ( इन्दो सोम ) रसरूप सोम ! तू ( महीं इषं ) बहुतसा अन्न ( गोमत् ) गायोंके साथ ( हिरण्यवत् ) सोनेके साथ ( अश्ववत् ) घोडोंके साथ और ( वीरवत् ) पुत्रपौत्रोंके साथ हमें ( आ पवस्व ) दे ॥ ४ ॥

८९६ पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।४१।५ )

८९७ परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३ ( भी ) ॥

[ धा० ३९ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ ९।४१।६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८९८ आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३९।१ )

८९९ परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ ९।३९।२ )

९०० अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३९।४ )

९०१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥ ( ऋ. ९।३९।३ )

९०२ आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३९।५ )

९०३ समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ४ ( जी ) ॥

[ धा० ३२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।३९।६ )

---

[ ८९६ ] हे ( विश्व-चर्षणे ) सबको देखनेवाले सोम ! ( पवस्व ) शुद्ध हो, और अपने इस रससे ( मही रोदसी ) इन महान् द्युलोक और पृथ्वीलोकको ( सूर्यः रश्मिभिः उषाः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद सब विश्वको भर देता है उसी प्रकार ( आ पृण ) भर दे ॥ ५ ॥

[ ८९७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विष्टपं रसा इव ) इस भूलोकको जैसे पानी घेरे हुए है, उसी प्रकार अपनी ( शर्मयन्त्या धारया ) सुखदायक धारासे ( नः विश्वतः परि सर ) हमें चारों ओरसे घेर ले ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८९८ ] हे ( बृहन्मते ) बुद्धिमान् सोम ! ( प्रियेण धाम्ना ) अपने प्रिय शरीरसे-धारासे ( आशु परि अर्ष ) शीघ्र आ, ( यत्र देवाः ) जहां देव रहते हैं ( इति ब्रुवन् ) ऐसा कहते हैं, उस यज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ ८९९ ] ( अनिष्कृतं परिष्कृण्वन् ) संस्काररहित स्थानको संस्कारयुक्त करते हुए ( जनाय इषः यातयन् ) लोगोंको अन्न देनेके लिए ( दिवः वृष्टिं परिस्रव ) द्युलोकसे वर्षा कर ॥ २ ॥

[ ९०० ] ( यः दिवः परि रघुयामा ) जो द्युलोकके ऊपर धीरे धीरे चलता है, ( सः अयं ) वह यह सोम ( पवित्रे आ ) छलनीसे छाना जाता है, और ( सिन्धोः ऊर्मा वि अक्षरत् ) पानीके लहरमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ ९०१ ] ( सुतः त्विषिं दधानः ) सोमरस तेजस्विता धारण करके ( विचक्षाणः विरोचयन् ) सबका निरीक्षण करके सबको प्रकाशमान् करते हुए ( ओजसा ) वेगसे ( पवित्रे आ एति ) छलनीसे शीघ्र छाना जाता है ॥ ४ ॥

[ ९०२ ] ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( परावतः अथो अर्वावतः ) दूरसे और पाससे ( आ विवासन् ) शुद्ध करके ( इन्द्राय ) इन्द्रको ( मधु ) यह मधुर रस ( सिच्यते ) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[ ९०३ ] ( समीचीनाः ) स्तुति करनेवाले एक जगह संगठित होकर ( अनूषत ) स्तुति करते हैं, ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( हरिं इन्दुं ) हरे रंगके सोमको ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कूटते हैं ॥ ६ ॥

९०४ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१ )

९०५ पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२ )

९०६ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥ ५ ( ह ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ.-९।६५।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

९०७ जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।११।१ )

९०८ त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं च्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।११।६ )

---

[ ९०४ ] ( उस्रयः जामयः स्वसारः ) सब जगह जानेवाली, आपसमें प्रेमसे रहनेवाली बहिनें - अंगुलियां ( मही-युवः ) महान् कार्य - सोमरस निकालनेका कार्य करती हैं, और ( सूरं पतिं ) श्रेष्ठ स्वामी ऐसे ( महां इन्दुं ) महान् सोमरसको ( हिन्वन्ति ) निकालती हैं, सोमरसको निचोडती हैं ॥ १ ॥

[ ९०५ ] हे ( रुचा रुचा ) तेजसे ( देव पवमान ) चमकनेवाले तथा शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंको देनेके लिए निचोडा गया तू ( विश्वा वसूनि आ विश ) सब धन हमें दे, सब धनोंमें तू प्रविष्ट होकर रह ॥ २ ॥

[ ९०६ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सुष्टुतिं वृष्टिं ) उत्तम स्तुतिके योग्य वर्षाको ( देवेभ्यः दुवः ) देवताओंसे प्राप्य होनेवाले आशीर्वादके समान ( आ पवस्व ) हमारे पास पहुंचा, ( इषे संयतं ) अन्न प्राप्त हो इसके लिए वर्षा कर ॥ ५ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९०७ ] ( जनस्य गोपा ) लोगोंका रक्षक ( जागृविः सुदक्षः ) जागृत और उत्तम कर्ममें कुशल ( अग्निः ) अग्नि ( नव्यसे सुविताय अजनिष्ट ) नये प्रकारसे लोगोंका कल्याण हो इसलिए प्रकट हुआ है, उसके बाद ( घृत-प्रतीकः ) घृतसे प्रज्वलित किया गया ( बृहता दिविस्पृशा ) महान् द्युलोकको स्पर्श करनेवाले तेजसे युक्त ( शुचिः ) शुद्धता करनेवाला अग्नि ( भरतेभ्यः ) यज्ञ करनेवाले लोगोंके लिए ( द्युमत् विभाति ) प्रकाशमान् होकर चमकता है ॥ १ ॥

[ ९०८ ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( अंगिरसः ) अंगिरस ऋषियोंने ( गुहा-हितं ) गुहामें रखे हुए ( वने वने शिश्रियाणं ) प्रत्येक वृक्षके आश्रयसे रहनेवाले ( त्वां अन्वविन्दन् ) तुझ अग्निको प्राप्त किया । ( महत् सहः सः ) महान् बलसे युक्त तू अग्नि ( मथ्यमानः जायसे ) मंथन करके पैदा किया जाता है । हे ( अंगिरः ) अंगोंमें रहनेवाले अग्ने ! ( त्वां सहसः पुत्रं आहुः ) तुझे सामर्थ्यका पुत्र कहते हैं ॥ २ ॥

९०९ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथꣳस बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ६ ( वे ) ॥
[ धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. ५।११।२ )

९१० अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳहवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।४१।४ )

९११ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥ ( ऋ. २।४१।५ )

९१२ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ ७ ( पि ) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. २।४१।६ )

९१३ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४।१३ )

९१४ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।१४ )

९१५ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ८ ( ठी ) ॥
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।८४।१५ )

---

[ ९०९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( यज्ञस्य केतुं ) यज्ञके ध्वज, ( पुरोहितं ) आगे रखे गए ( देवैः सरथं ) देवोंके साथ एक रथपर बैठनेवाले ( प्रथमं अग्निं ) मुख्य अग्निको ( त्रि-सधस्थे ) तीन जगह ( सं इन्धते ) अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं, उसके बाद ( सुक्रतुः होता सः ) उत्तम कर्म करनेवाला तथा देवोंके लिए हवन; करनेवाला वह अग्नि ( बर्हिषि ) अपने स्थानमें ( यजथाय ) यज्ञ करनेके लिए ( निषीदत् ) बैठता है ॥ ३ ॥

[ ९१० ] हे ( ऋतावृधा मित्रावरुणा ) यज्ञको बढानेवाले मित्र और वरुण ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( अयं सोमः सुतः ) यह सोम निकालकर और छानकर रखा गया है, इसलिए ( इह ) यहां इस यज्ञमें ( मम इत् हवं श्रुतं ) मेरी ही प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ ९११ ] हे ( राजानौ अनभिद्रुहा ) तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुणो ! ( ध्रुवे उत्तमे सहस्र-स्थूणे सदसि ) स्थिर, श्रेष्ठ और हजार खम्भोंवाले इस यज्ञ मण्डपमें ( आशाते ) आकर बैठो ॥ २ ॥

[ ९१२ ] ( सम्राजा ) सम्राट् ( घृतासुती ) घृतरूपी अन्न खानेवाले ( आदित्या ) अदितिके पुत्र ( दानुनः पतिः ) धनके स्वामी ऐसे ( ता ) वे मित्र और वरुण ( अनवह्वरं ) कुटिलतासे रहित यजमानकी ( सचेते ) सहायता करते हैं ॥ ३ ॥

[ ९१३ ] ( अ-प्रति-ष्कुतः ) जिसका कोई विरोधी नहीं ऐसे ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दधीचः अस्थभिः ) दधीचिकी हड्डियोंसे ( नवतीः नव ) निन्यानवे ( वृत्राणि जघान ) घेरनेवाले शत्रुओंको मारा ॥ १ ॥

[ ९१४ ] ( पर्वतेषु अपश्रितं ) पर्वतोंमें रखा हुवा ( अश्वस्य यत् शिरः ) घोडेका जो सिर है, उसे ( इच्छन् ) प्राप्त करनेकी इन्द्रने इच्छा की, उस इन्द्रने ( शर्यणावति तत् विदत् ) शर्यणावती सरोवरके पास उसे प्राप्त किया और उससे असुरोंका संहार किया ॥ २ ॥

[ ९१५ ] ( अत्राह ) यहां ( गोः चन्द्रमसः गृहे ) गमन करनेवाले चन्द्रमाके मण्डलमें ( त्वष्टुः अपीच्यं नाम ) सूर्यकी गुप्त किरणें रात्रीके समय प्रकाशित होती हैं ( इत्था अमन्वत ) ऐसा माना जाता है ॥ ३ ॥

९१६ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९४।१ )
९१७ शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९४।२ )
९१८ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ९ ( चा ) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।९४।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९१९ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२५।१ )
९२० सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२५।३ )
९२१ पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ १० ( ख ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।२५।२ )

९२२ तवाहꣳसोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳरति ताꣳइहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

---

[ ९१६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( इयं वां पूर्व्य-स्तुतिः ) यह तुम दोनोंकी अपूर्व स्तुति ( अस्य वामस्य मन्मनः ) इस सुन्दर और मननीय विद्वान्से ( अभ्रात् वृष्टिः इव ) जिस प्रकार मेघसे वर्षा होती है, उसी प्रकार ( अजनि ) उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥

[ ९१७ ] हे इन्द्राग्नी ! ( जरितुः हवं शृणुतं ) स्तोताकी प्रार्थना तुम सुनो, ( गिरः वनतं ) उसकी स्तुति सुनो ( ईशाना ) शासन करनेवाले तुम दोनों ( धियः पिप्यतं ) उसके कर्मोंका फल दो ॥ २ ॥

[ ९१८ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता स्वरूप इन्द्र और अग्ने ! ( नः ) हमें ( पापत्वाय मा रीरधतं ) पापके कामोंमें न लगाओ, ( अभिशस्तये मा ) हिंसाके कामोंमें हमें युक्त मत करो, ( निदे नः मा ) और निंदाके लिए भी हमें मत लगाओ ॥ १ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९१९ ] हे ( हरे ) हरे रंगके सोम ! ( दक्ष-साधनः मदः ) बल व उत्साह बढानेवाला तू ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः ) देवों और मरुतोंके तथा ( वायवे ) वायुके ( पीतये पवस्व ) पीनेके लिए पवित्र हो ॥ १ ॥

[ ९२० ] ( वृषा कविः ) बलवर्धक ज्ञानी ( योनौ अधि ) अपने स्थान पर ( पवमानः प्रियः ) शुद्ध होनेके कारण प्रिय और ( अदाभ्यः ) न दबाया जानेवाला सोम ( देवैः संशोभते ) देवोंके साथ उत्तम प्रकारसे शोभित होता है ॥ २ ॥

[ ९२१ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( धिया हितः ) विचार कर अच्छी तरह रखा गया तू ( कनिक्रदत् ) शब्द करते हुए ( योनिं अभि आरुहः ) कलशोंमें गिरता है, ( धर्मणा वायुं आरुहः ) अपने गुणोंसे वायुको प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९२२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए ( अहं दिवे दिवे रारण ) मैं प्रतिदिन यत्न करता हूँ, हे ( बभ्रो ) कान्तिमान् सोम ! ( पुरूणि मां ) बहुतसे राक्षस मुझे ( नि अव चरन्ति ) कष्ट देते हैं ( तान् परिधान् अति इहि ) उन शत्रुओंको नष्ट कर ॥ १ ॥

९२३ तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २ ॥ ११ ( ति ) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०७।२० )

९२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।४०।१ )

९२५ आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४०।२ )

९२६ नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ १२ (चा) ॥
[ धा० १२ । उ० १९ । स्व० २ ) ( ऋ. ९।४०।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

९२७ पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
( ऋ. ७।२२।१ )

९२८ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हꣳसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
( ऋ. ७।२२।२ )

---

[ ९२३ ] हे ( बभ्रो ) भूरे रंगके सोम ! ( उत नक्तं उत दिवा ) रात अथवा दिन ( तव ऊधनि अहं ) तेरे पास मैं रहूं, ( ते घृणा ) अपने तेजसे ( तपन्तं ) चमकनेवाले तुझे तथा ( परं सूर्यं ) दूर चमकनेवाले सूर्यको ( शकुनाः इव अति पप्तिम ) पक्षीके समान हम देखते हैं ॥ २ ॥

[ ९२४ ] ( पुनानः विचर्षणिः ) पवित्र होनेवाला निरीक्षक सोम ( विश्वा मृधः अक्रमीत् ) सब शत्रुओंको हराता है, उस ( विप्रं ) ज्ञानी सोमको ऋत्विज ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तुतियोंसे सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

[ ९२५ ] ( अरुणः ) अरुण रंगका सोम ( योनिं आरुहत् ) कलशमें घुसता है, बादमें ( वृषा इन्द्रः ) बलवान् इन्द्र ( सुतं गमत् ) उस सोमरसके पास जाता है, और ( ध्रुवे सदसि ) स्थिर स्थानमें ( सीदतु ) रहता है ॥ २ ॥

[ ९२६ ] ( इन्दो सोम ) हे सोमरस ! ( अस्मभ्यं ) हमें ( नु ) शीघ्र ही ( महां सहस्रिणं रयिं ) महान् और अनेकों प्रकारके धन ( विश्वतः आ पवस्व ) चारों ओरसे लाकर दे ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ९२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरस पी, ( त्वा मदन्तु ) तुझे ये रस आनन्द देवें, हे ( हर्यश्व ) घोडे पालनेवाले इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( सोतुः बाहुभ्यां ) सोमरस निकालनेवालेकी भुजाओं द्वारा ( सु-यतः आद्रिः ) पकडा हुआ पत्थर ( यं सुषाव ) जिस रसको निकालता है, वह रस ( अर्वा न ) घोडेके समान तुझे आनन्द देवे ॥ १ ॥

[ ९२८ ] हे ( हर्यश्व इन्द्र ) हरि नामक घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते युज्यः ) तेरे योग्य ( चारुः मदः ) उत्तम आनन्द देनेवाला ( यः अस्ति ) जो सोम है ( येन वृत्राणि ) जिसके उत्साहसे तू वृत्रोंको ( हंसि ) मारता है, हे ( प्रभूवसो ) बहुत धनवान् ! ( सः त्वा ममत्तु ) वह सोम तुझे आनन्द देवे ॥ २ ॥

९२९ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ १३ ( चा ) ॥
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२२।३ )

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९७।१० )

९३१ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९७।१२ )

९३२ समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रꣳ सोमस्य पीतये ।
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ३ ॥ १४ ( ची ) ॥
[ धा० २२ । उ० १ स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९७।११ )

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।१ )

---

[ ९२९ ] हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( यां प्रशस्तिं वाचं ) जिस स्तुतिरूप वाणीसे ( वसिष्ठः ते अर्चति ) वसिष्ठ तेरी अर्चना करता है, ( इमां सु आ बोध ) उस स्तुतिको तू उत्तम रीतिसे समझकर स्वीकार कर और ( इमा ब्रह्म ) इस ज्ञानको अथवा इस अन्नको ( सधमादे जुषस्व ) यज्ञशालामें सेवन कर ॥ ३ ॥

[ ९३० ] ( विश्वाः पृतनाः ) सब संग्राममें शत्रुको ( अभिभूतरं इन्द्रं ) पराजित करनेवाले इन्द्रकी ( नरः सजूः ततक्षुः ) सब लोग मिलकर स्तुति करते हैं । ( राजसे जजनुः ) इन्द्रका तेज बढानेके लिए स्तोतागण उसका सामर्थ्य बढाते हे ( क्रत्वे वरे स्थेमनि ) अपने कर्तृत्वसे श्रेष्ठ स्थानोंमें रहनेवाले ( आमुरिं ) शत्रुको मारनेवाले ( उग्रं ओजिष्ठं ) वीर व महा बलिष्ठ ( तरसं तरस्विनं ) श्रेष्ठ और शीघ्रतासे सब काम करनेवाले इन्द्रकी सब स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ९३१ ] ( विप्राः अभि स्वरे ) ऋत्विज महान् स्वरसे स्तोत्र कहते हुए ( मेषं नेमिं चक्षसा नमन्ति ) शक्तिमान् व्यापक इन्द्रको आंखसे देखकर ही पहले नमस्कार करते हैं । हे स्तुति करनेवालो ! ( सु-दीतय अ-द्रुहः ) उत्तम तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले ( वः ) तुम ( अपि ) भी ( तरस्विनः ) शीघ्रतासे ( कर्णे ) इन्द्रके कानोंतक पहुंचे ऐसे स्वरसे ( ऋक्वभिः सं ) ऋचाओंके द्वारा उसकी स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ९३२ ] ( रेभासः ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज ( सोमस्य पीतये ) सोमरस पीनेके लिए ( इन्द्रं उ सम-स्वरन् ) इन्द्रकी ही उत्तम रीतिसे मिलकर स्तुति करते हैं ( यत् ) जब ( स्वः पतिः ) स्वर्गका पालक इन्द्र ( वृधे ) यजमानको महान् करनेकी इच्छा करता है, उस समय ( धृत-व्रतः ) व्रतोंका आचरण करनेवाला इन्द्र ( ओजसा ऊतिभिः सं ) अपने सामर्थ्यसे व अपने संरक्षणके साधनोंसे ( सं ) युक्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९३३ ] ( यः चर्षणीनां राजा ) जो मनुष्योंका राजा है, ( रथेभिः याता ) जो रथसे जानेवाला है, ( अध्रि-गुः ) जो आगे जानेवाला है, ( विश्वासां पृतनानां तरुता ) जो सब शत्रुओंसे भक्तको पार करानेवाला है, ( यः वृत्रहा ) जो शत्रुका नाश करनेवाला है, उस ( ज्येष्ठं गृणे ) श्रेष्ठ इन्द्रकी में स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

९३४ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥ २ ॥ १५ ( चि ) ॥
[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।७०।२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

९३५ परि प्रिया दिवः कविर्वयांꣳसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )

९३६ स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३ )

९३७ प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥ १६ ( रि ) ॥
[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।९।२ )

९३८ त्वꣳ ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।३ )

९३९ येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानाꣳ सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवाꣳस्याशत ॥ २ ॥ १७ ( पौ ) ॥
[ धा० ११ । उ० ९ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।१०८।४ )

---

[ ९३४ ] ( पुरुहन्मन् ) हे अनेक शत्रुको मारनेवाले इन्द्रके उपासक ! ( अवसे तं इन्द्रं शुम्भ ) अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ( यस्य विधर्तरि ) जिसकी संरक्षण शक्तिमें ( द्विता ) दोनों प्रकारकी शक्तियां हैं, विनाश और कृपा करनेकी दोनों प्रकारकी शक्तियां हैं, वह इन्द्र ( दर्शतः महान् वज्रः ) दर्शनीय और महान् वज्रको ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके समान ( हस्तेन प्रति धायि ) हाथमें धारण करता है ॥ २ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ९३५ ] ( कविः ) ज्ञानी ( कविक्रतुः ) बुद्धिसे कर्म करनेवाला ( नप्त्योः हितः ) पटले पर रखा गया, ( दिवः परिप्रिया वयांसि ) द्युलोकसे अति प्रिय पक्षीरूप पत्थरोंसे निकाला गया सोमरस ( स्वानैः ) रस निकालनेवाले अध्वर्युओंसे ( परि याति ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ ८३६ ] ( शुचिः जातः ) शुद्ध हुआ हुआ ( महान् सः ) महान् वह सोम नामक ( सूनुः ) पुत्र ( मही ऋतावृधा जाते मातरा ) महान् यज्ञको प्रकाशित करने-बढानेवाले-प्रसिद्ध माता द्यु और पृथ्वीको ( अरोचयत् ) प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ९३७ ] हे सोम ! ( प्र प्र क्षयाय ) तेरे निवासके लिए यत्न करनेवाले ( अद्रुहः ) द्रोह न करनेवाले और ( पन्यसे जनाय ) स्तुति करनेवाले मनुष्यके लिए ( वीति ) भक्षणके ( जुष्टः ) उपयोगमें लाया गया तू ( पनिष्टये अर्ष ) स्तुतिको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

[ ९३८ ] ( दैव्य पवमान ) दिव्य सोम ! ( द्युमत्तमः त्वं हि ) अत्यन्त तेजस्वी ऐसा तू ( अङ्ग ) शीघ्र ( घोषयन् ) घोषणा करके ( जनिमानि ) अपने दिव्य जन्मको लक्ष्यमें रखकर ( अमृततत्वाय ) अमरपनको प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९३९ ] ( नव-ग्वा दध्यङ् ) नौ गायोंका पोषण करनेवाला दध्यङ् ऋषि ( येन अपोर्णुते ) जिस सोमके द्वारा यज्ञका द्वार खोलता है, ( विप्रासः येन आपिरे ) यज्ञ करनेवाले विप्रोंने जिस सोमकी सहायतासे गायें प्राप्त कीं, ( देवानां सुम्ने ) देवोंके यज्ञसे सुख प्राप्त होनेपर ( चारुणः अमृतस्य श्रवांसि ) श्रेष्ठ अन्नकी सहायतासे मिलनेवाले अन्नको ( येन आशत ) जिस सोमकी सहायतासे यजमान प्राप्त करते हैं, वह तू सोम देवोंको प्राप्त हो ॥ २ ॥

*

९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०६।१० )

९४१ धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०६।११ )

९४२ असर्जि कलशाꣳ अभि मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ १८ ( फा ) ॥
[ धा० १० । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०६।१२ )

९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥ ( ऋ.९।९६।५ )

९४४ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणाꣳ स्वधितिर्वनानाꣳ सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९६।६ )

---

[ ९४० ] ( पुनानः सोमः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( ऊर्मिणा ) अपनी धारासे ( अव्यं वारं विधावति ) भेडके बालोंकी छलनीसे नीचे पडता है । ( पवमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( वाचः अग्रे कनिक्रदत् ) स्तोत्र पाठके बाद शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९४१ ] ( वाजिनं ) बलवान् ( वने क्रीडन्तं ) जलमें मिलाया जानेवाला, ( अति अविं ) छलनीसे छाना जानेवाला सोम ( धीभिः मृजन्ति ) स्तोत्रोंकी सहायतासे ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया जाता है ( त्रिपृष्ठं ) तीन बर्तनोंमें रहनेवाले सोमरसकी ( मतयः अभि समस्वरन् ) स्तोत्र प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ ९४२ ] ( वाजयुः ) अन्नसे युक्त होनेवाला ( मीढ्वान् ) और जलमें मिलनेवाला सोम ( कलशान् अभि असर्जि ) कलशमें गिरता है । ( सप्तिः न ) घोडा जैसे संग्राममें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( वाचं जनयन् ) शब्द करते हुए ( असिष्यदत् ) बर्तनमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ९४३ ] ( मतीनां जनिता ) स्तुतियोंको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) द्युलोकको प्रकट करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथिवीका जनक ( अग्नेः जनिता ) अग्निका जनक ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यका जनक ( इन्द्रस्य उत विष्णोः जनिता ) इन्द्र और विष्णुका जनक ( सोमः पवते ) सोम शुद्ध किया जाता है ॥ १ ॥

इन देवोंको सोम यज्ञशालामें लाता है, इसलिए वह इनको उत्पन्न करता है ऐसा आलंकारिक वर्णन इस मंत्रमें किया है । सोमके होने पर ही ये देव यज्ञशालामें आते हैं ।

[ ९४४ ] ( देवानां ब्रह्मा ) देवोंमें ब्रह्मा ( कवीनां पदवीः ) कवियोंमें शब्दोंकी योजना करनेवाला ( विप्राणां ऋषिः ) विप्रोंमें ऋषि ( मृगाणां महिषः ) पशुओंमें भैंस ( गृध्राणां श्येनः ) पक्षियोंमें बाज ( वनानां स्वधितिः ) हिंसकोंमें शस्त्ररूप यह सोमरस ( रेभन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं अति एति ) छलनीसे कलशमें छाना जाता है ॥ २ ॥

९४५ प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९ ( फू ) ॥
[ धा० २० । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।९७।७ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

९४६ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥
( ऋ. ८।१०२।७ )

९४७ अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥
( ऋ. ८।१०२।८ )

९४८ अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ २० ( डा ) ॥
[ धा० ८ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०२।९ )

९४९ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥
( ऋ. १।८४।४ )

[ ९४५ ] ( सिन्धुः वाचः ऊर्मिं न ) जिस प्रकार बहनेवाली नदीकी लहरें शब्द करती हुई चलती हैं, उसी प्रकार ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( मनीषाः गिरः स्तोमान् ) मनको अच्छे लगनेवाले शब्दोंको ( प्रावीविपत् ) प्रेरणा देता है, ( वृषभः ) बलवान् ऐसा यह सोम ( अन्तः पश्यन् ) अपने अन्दर देखकर ( गोषु जानन् ) गायोंमें वृष है यह जानकर ( अवराणि ) कम न होनेवाले ( इमा वृजना ) इन बलोंको ( आतिष्ठति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ९४६ ] हे ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( अध्वराणां नप्त्रे ) बलवान्के नाती ( सहस्वते वृधानां ) बलवान्को बढानेवाले ( पुरुतमं अग्निं ) श्रेष्ठ अग्निके ( अच्छ ) पास जाओ ॥ १ ॥

१ अध्वरः ( अ-ध्वरः )- जिसका नाश नहीं किया जा सकता ऐसा बलवान् ।

[ ९४७ ] ( त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव ) जिस तरह बढई लकडीको ठीक करता है, उसी प्रकार ( अयं ) यह अग्नि ( नः आभुवत् ) हमें ठीक करता है, ( अस्य क्रत्वा यशस्वतः ) इसके कर्मसे हम यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

[ ९४८ ] ( देवेषु ) देवोंमें ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( विश्वाः श्रियः ) सब ऐश्वर्योंको ( अभिपत्यते ) प्राप्त होता है, ऐसा यह अग्नि ( नः ) हमारे पास ( वाजैः उपागमत् ) अन्नके साथ आवे ॥ ३ ॥

[ ९४९ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( ज्येष्ठं मदं ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाले ( अमर्त्यं ) दिव्य ऐसे ( सुतं इमं पिब ) इस सोमरसको पी । ( ऋतस्य सादने ) यज्ञकी शालामें ( शुक्रस्य धाराः ) ये तेजस्वी सोमकी धारायें ( त्वां अक्षरन् ) तुझे प्राप्त होनेके लिए नीचे गिरती हैं ॥ १ ॥

९५० न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे । न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥२॥

( ऋ. १।८४।६ )

९५१ इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ३ ॥ २१ ( र ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८४।५ )

९५२ इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह । पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥

९५३ इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

९५४ इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥ २२ ( ङ ) ॥

[ धा० ११ । उ० ५ । स्व० १ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥
॥ इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥
॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

[ ९५० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ( यत् ) जिसके कारण तू ( हरी यच्छसे ) अपने घोडोंको रथमें जोडता है, उस कारण ( त्वत् ) तेरेसे बढकर ( रथीतरः न किः ) श्रेष्ठ वीर दूसरा कोई नहीं है, ( मज्मना ) बलमें ही ( त्वा अनु नकिः ) तेरे समान दूसरा कोई नहीं है। ( सु-अश्वः ) उत्तम घोडे पालनेवाला भी ( न किः आनशे ) दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

[ ९५१ ] हे ऋत्विजो ! ( नूनं इन्द्राय अर्चत ) निश्चयसे तुम इन्द्रकी ही पूजा करो, ( उक्थानि च ब्रवीतन ) [ इन्द्रके लिए ही ] स्तोत्र बोलो। ( सुताः इन्दवः अमत्सुः ) छाना हुआ सोमरस इन्द्रको आनन्द देवे। ( ज्येष्ठं सहः ) श्रेष्ठ बलवान् इन्द्रको ( नमस्यत ) नमस्कार करो ॥ ३ ॥

[ ९५२ ] हे ( हरिह शूर इन्द्र ) घोडे पासमें रखनेवाले शूरवीर इन्द्र ! ( आयाहि ) आ, ( प्र वह ) हविष्यान्नको स्वीकार कर, ( चारुः मदाय ) उत्तम आनन्द प्राप्त हो इसलिए ( न चकानः ) इस समय इच्छा करते हुए ( सुतस्य मधोः ) मधुर सोमरस ( मतिः ) अपनी इच्छानुसार ( पिब ) पी ॥ १ ॥

[ ९५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( दिवः न ) जैसे द्युलोकसे ( सुवाचः मदः ) उत्तम स्तुतिका आनन्द ( त्वा उप अस्थुः ) तुझे प्राप्त होता है, और जैसे ( स्वः न ) उस स्वर्गीय आनन्दको तू भोगता है, उसी प्रकार ( सुतस्य अस्य मधोः ) इस मधुर सोमरससे ( जठरं नव्यं न ) अपने पेटको ( आ पृणस्व ) भर ले ॥ २ ॥

[ ९५४ ] ( तुराषाट् इन्द्रः ) जल्दी ही शत्रुको हरानेवाला इन्द्र ( मित्रः न ) मित्रके समान ( वृत्रं जघान ) शत्रुको मारता है, ( यतिः न वलं बिभेद ) जिस प्रकार संयमी वीर वल राक्षसको मारता है, तथा ( सोमस्य मदे ) सोमके आनन्दमें ( भृगुं न शत्रून् सासहे ) भृगु जैसे शत्रुओंको हराता है, उस प्रकार तू शत्रुओंको हरा ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



# पञ्चम अध्याय

## इन्द्रके गुण

इस अध्यायमें इन्द्रके गुण इस प्रकार वर्णित हैं—

१ अ-प्रतिष्कुतः [ ९१३ ]- जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता।

२ चर्षणीनां राजा [ ९३३ ]- सब मनुष्योंका राजा, सबका शासक।

३ रथेभिः याता [ ९३३ ]- रथसे जानेवाला, जिसके साथ बहुतसे रथ होते हैं। जिसके साथ सरदारोंके रथ रहते हैं।

४ अग्रि-गुः [ ९३३ ]- आगे जानेवाला।

५ ज्येष्ठः [ ९३३ ]- श्रेष्ठ, सबसे बडा।

६ तुराषाट् [ ९५४ ]- शीघ्रतासे शत्रुको हरानेवाला।

७ हरिः [९५२]- घोडोंको पासमें रखनेवाला, दुःखोंका हरण करनेवाला।

८ शूरः [ ९५२ ] शूरवीर।

९ तरस्वी [ ९३१ ]- शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला।

१० स्वः-पति [९३२]- स्वर्गका स्वामी, आत्मविजयी।

११ धृत-व्रतः [९३२]- नियमोंका पालन करनेवाला।

१२ पुरुहन्मा [ ९३४ ]- अनेक शत्रुओंको मारनेवाला।

१३ ज्येष्ठं सहः [९५१]- जिसके पास श्रेष्ठ सामर्थ्य है।

१४ इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवती नव वृत्राणि जघान [ ९१३ ]- इन्द्रने दधीचीकी हड्डियोंके अस्त्रोंसे ९९ राक्षस मारे।

१५ विश्वासां पृतनानां तरुता वृत्रहा [९३३]- सब शत्रुकी सेनाओंको हरानेवाला इन्द्र है।

१६ इन्द्रः वृत्रं जघान [९५४]- इन्द्रने वृत्रको मारा।

१७ इन्द्रः वलं बिभेद [९५४]- इन्द्रने वलको मारा।

१८ सोमस्य मदे शत्रून् सासहे [ ९५४ ]- सोमके आनन्दमें सब शत्रुओंको इन्द्रने पराजित किया।

१९ मज्मना त्वा अनु न किः [ ९५० ]- बलमें तेरे समान कोई नहीं है।

२० सु-अश्वः न किः [ ९५० ]- उत्तम घोडे पालनेवाला भी तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है।

२१ हे इन्द्र! यत् हरी इच्छसे, त्वत् रथीतरः न किः [ ९५० ]- हे इन्द्र। तू घोडे अपने रथमें जोडता है, इसलिए तेरी अपेक्षा महान् रथमें बैठनेवाला वीर दूसरा कोई नहीं है।

२२ ज्येष्ठं सहः नमस्यत [ ९५१ ]- इन्द्रके श्रेष्ठ साहसपूर्ण कार्यको नमस्कार करो।

२३ यस्य विधर्तरि द्विता [ ९३४ ]- जिसकी धारकशक्तिमें दो शक्तियां हैं। एक कृपा करनेकी शक्ति और दूसरी विनाश करनेकी शक्ति।

२४ दर्शतः महान् वज्रः हस्तेन प्रतिधायि [९३४] - देखने योग्य महान् वज्रको वह हाथोंमें शत्रुको मारनेके लिए धारण करता है।

२५ पुरु-हन्-मन्! अवसे तं इन्द्रं शुम्भ [५३४] - हे बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले भक्त! अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर।

२६ नूनं इन्द्राय अर्चत, उक्थानि च ब्रवीतन [९५१]- निश्चयसे इन्द्रकी अर्चना करो, उसके स्तोत्र कहो।

२७ रेभासः इन्द्रं समस्वरन् [९३२]- स्तोता इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

२८ यत् स्वः-पति वृधे, धृतव्रतः ओजसा ऊतिभिः सं [ ९३२ ]- जब स्वर्गका स्वामी संवर्धन करनेकी इच्छा करता है, तब वह नियमानुसार चलनेवाला अपने सामर्थ्य और संरक्षणके साधनोंसे सहायता करता है।

२९ विप्राः अभिस्वरे मेषं नेमिं नमन्ति [ ९३१ ]- ज्ञानी एक आवाजसे उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं।

## अग्निके गुण

अब इस अध्यायमें आए हुए अग्निके गुणोंको देखें—

१ जागृविः [ ९०७ ]- जागृत रहनेवाला।

२ सु-दक्षः [ ९०७ ]- चतुर।

३ जनस्य गोपा [ ९०७ ]- मनुष्योंका रक्षक।

४ शुचिः [ ९०८ ]- शुद्ध, पवित्र, निर्मल।

५ अंगिरसः [ ९०८ ]- अंग-प्रत्यंगमें जो प्रकाशता है।

६ यज्ञस्य केतुः [ ९०९ ]- यज्ञकी पताका, चिन्ह।

७ सुक्रतुः [ ९०९ ]- उत्तम कर्म करनेवाला।

८ सहस्वान् [ ९४६ ]- सामर्थ्यसे युक्त।

९ सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- लोगोंका कल्याण करनेके लिए उत्पन्न हुआ।

१० द्युमत् भाति [९०७]– तेजस्वी प्रकाशित होता है।

११ महतः सहः सः मथ्यमानः जायसे [९०८]– महान् बलसे मथने पर वह प्रकट होता है।

१२ अस्य क्रत्वा यशस्वन्तः [९४७]– इसके कार्यसे हम यशस्वी होते हैं।

१३ देवेषु अयं अग्निः विश्वाः श्रियः अभि पत्यते [ ९४४ ]– देवोंमें यह अग्नि सब शोभाओंको स्थापित करता है।

१४ नः वाजैः उपागमत् [ ९४४ ]– हमारे पास वह अग्नि अन्न और बलके साथ आवे।

१५ त्वा सहसः पुत्रं आहुः [९४४]– तू बलसे उत्पन्न होता है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें हुआ है।

## मित्र और वरुण

अब मित्र और वरुण इनका वर्णन देखिए—

१ ऋतावृधा मित्रावरुणा [ ७१० ]– सत्य अथवा यज्ञको बढानेवाले मित्र और वरुण हैं।

२ राजानौ अनभिद्रुहे ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्थूणे सदसि आशाते [ ९११ ]– ये दो राजा हैं, वे परस्पर लडते नहीं और स्थिर तथा हजार खम्भोंवाली उत्तम सभामें वे बैठते हैं।

३ सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनः-पती अनवह्वरं सचेते [९१२]– वे दोनों सम्राट् हैं, घी मिला हुआ अन्न खाते हैं, आदित्यके पुत्र और धनके स्वामी हैं, वे कुटिल व्यवहार न करनेवालेकी सहायता करते हैं।

इस प्रकार मित्र और वरुणका वर्णन यहां किया है।

## इन्द्र और अग्नि

अब इन्द्र और अग्निके वर्णन देखिए—

१ हे इन्द्राग्नी ! इयं वां पूर्व्यस्तुतिः, अस्य मन्मनः अजनि [ ९१६ ]– हे इन्द्र और अग्ने ! यह तुम दोनोंकी अपूर्व स्तुति इन मनन करनेवाले विद्वानोंसे उत्पन्न हुई है।

२ हे इन्द्राग्नी ! जरितुः हवं शृणुतं, गिरः वनतं, ईशाना धियः पिप्यतं [ ९१७ ]– हे इन्द्र और अग्ने ! स्तोता प्रार्थना करता है, उसे तुम सुनो, उसकी स्तुति सुनो, तुम दोनों ही अधिकारी हो, इसलिए उसके योग्य कर्मोंका उत्तम फल दो, अथवा उसकी बुद्धिको परिपक्व करो।

३ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापत्वाय रीरधम् [९१८] –हे इन्द्र और अग्ने ! हमें पापमें प्रवृत्त मत करो।

४ अभिशस्तये मा, निदे नः मा [ ९१८ ]– हिंसा करनेके कार्यमें प्रवृत्त मत करो, निन्दनीय कर्मोंमें भी मत लगाओ।

अर्थात् तुम हमारी प्रवृत्ति अच्छे कामोंकी ओर ही लगाओ, इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना की गई है, कि हमारी प्रवृत्ति उत्तम कामोंकी ओर ही हो, खराब कामोंकी ओर न हो। देवताओंके गुण इसीलिए वर्णित हैं। देवोंके गुणोंको हम धारण करें, यही उत्तम प्रवृत्ति है, इसके विरुद्ध जो है, वह असत् या बुरी प्रवृत्ति है। मनुष्य सत्प्रवृत्तिको धारण करें और असत्प्रवृत्तिको अपनेसे दूर रखें।

यज्ञमें सोमरस तैय्यार करते हैं, और उसे इन्द्रको अर्पित करते हैं। इस विषयमें वर्णन अब देखिए—

## इन्द्रको सोम

१ सुतः आ विवासन् इन्द्राय मधु सिच्यते [९०२] – सोमरस निकालनेके बाद उसे छानकर शुद्ध करके इन्द्रको वह मीठा रस दिया जाता है। इसको मीठा करनेके लिए उसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

२ इन्द्राय पातवे हरिं इन्दुं अद्रिभिः हिन्वन्ति [ ९०३ ]– इन्द्रको सोमरस पीनेको देनेके लिए हरे रंगका सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है।

३ वृषा इन्द्रः सुतं गमत्, ध्रुवे सदसि सीदतु [ ९२५ ]– बलवान् इन्द्र सोमयागके स्थान पर जाता है और स्थिर यज्ञशालामें जाकर बैठता है।

४ हे इन्द्र ! सोमं पिब, त्वा मदन्तु [ ९२७ ]– हे इन्द्र ! तू सोमरस पी, ये सोमरस तुझे आनन्द देवें।

५ हे हर्यश्व ! ते सोतुः बाहुभ्यां सुयतः अद्रिः यत् सुषाव [ ९२७ ]– हे उत्तम घोडे रखनेवाले इन्द्र ! रस निकालनेवालेके हाथोंके द्वारा पकडे गए पत्थरोंसे यह रस निकाला गया है।

६ हे इन्द्र ! ज्येष्ठं मदं अमर्त्यं इमं सुतं पिब [९४९] – हे इन्द्र ! श्रेष्ठ अमर और दिव्य आनन्द देनेवाले इस सोमरसको पी।

७ ऋतस्य सादने शुक्रस्य धाराः त्वां अक्षरन् [ ९४९ ]– यज्ञके स्थान पर इस वीर्यवान् सोमरसकी धारा तेरे लिए निकली है, तेरी तरफ बह रही है।

८ चारुः मदाय सुतस्य मधो मतिः पिब [ ९५२ ]- उत्तम आनन्द प्राप्त होनेके लिए यह मधुर सोमरस इच्छानुसार पी।

९ हे इन्द्र ! सुतस्य मधोः मदः त्वा उप अस्थुः जठरं पृणस्व [ ९५३ ]- हे इन्द्र ! इस मीठे सोमरसका आनन्द तुझे मिले, अतः पेट भर कर पी।

इस प्रकार सोमरस इन्द्रको और अन्य देवताओंको दिया जाता था, वे सब यज्ञशालामें बैठकर पीते और उत्साहित होकर अपने कार्य उत्तम रीतिसे करते थे।

## स्वर्गसे सोम

१ यः दिवस्परि रघुयामा [ ९०० ]- जो द्युलोक पर रहता है, वह यह सोम है, हिमालयके शिखरपर ऊंचे ठिकाने सोम उगता है। वहांसे यज्ञ करनेवाले यजमान उसको लाकर यज्ञमें उसका उपयोग करते हैं।

## सोमके गुण

१ पवमानः [८८६]- शुद्ध, पवित्र, छाना जानेवाला।

२ ऋषि-षाणः [८८६]- ऋषि यज्ञमें जिसका उपयोग करते हैं।

३ ध्रुवः [ ८८७ ]- स्थैर्य देनेवालः।

४ हरिः [८८७]- दुःखोंका हरण करनेवाला, हरे रंगका।

५ विश्वचक्षः [ ८८८ ]- सब देखनेवाला, सर्व द्रष्टा।

६ प्रभुः [ ८८८ ]- स्वामी।

७ विश्वस्य भुवनस्य पतिः [८८८]- सम्पूर्ण भुवनोंका स्वामी।

८ व्यानशी [ ८८८ ]- व्यापक, सब पर प्रभाव डालनेवाला।

९ दक्षः द्युमान् रसः [ ८९१ ]- बलवान् और तेजस्वी रस।

१० अ-दुच्छुनः [८९०]- दुष्टोंको प्राप्त न होनेवाला।

११ विश्वं स्वः ज्योतिः [ ८९१ ]- सब प्रकारसे तेजस्वी ज्योति।

१२ विश्व-चर्षणिः [ ८९६ ]- सब देखनेवाला।

१३ बृहन्मतिः [ ८९८ ]- महान् बुद्धिवाला।

१४ कविः [ ९२० ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।

१५ वृषा [ ९२० ]- बलवान्।

१६ प्रियः [ ९२० ]- प्रिय।

१७ अ-दाभ्यः [ ९२० ]- न दबनेवाला, कोई भी जिसे दबा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवान्।



१८ देवैः सं शोभते [९२०]- देवोंके साथ सुशोभित होता है।

१९ कविक्रतुः [ ९३५ ]- उत्तम कर्म करनेवाला।

२० मतीनां, दिवः, पृथिव्याः, अग्नेः, सूर्यस्य, इन्द्रस्य, विष्णोः जनिता सोमः [९४३]- बुद्धि, द्युलोक, पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु इनमें उत्साह पैदा करनेवाला।

ये सोमके गुण हैं, सोमरस पीनेसे ये गुण उत्साहके कारण बढते हैं, इसलिए ये सोमके गुण हैं ऐसा कहा है।

## शत्रुको हरानेवाला सोम

१ हे इन्दो ! तव सख्ये अहं दिवे दिवे रारण ! हे बभ्रो ! पुरूणि मां अवचरन्ति, तान् परिधीन् अति इहि [ ९२२ ]- हे सोम ! तेरी मित्रतामें मैं रहूं, ऐसी इच्छा मैं प्रतिदिन करता हूं, क्योंकि हे सोम ! बहुतसे शत्रु मुझे वारबार कष्ट देते हैं, उन्हें तू दूर कर।

२ पुनानः विचर्षणिः विश्वाः मृधः अक्रमीत् [ ९२४ ]- छाना जानेवाला, विशेषज्ञानी, सोम सब शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें दूर करता है।

३ हे हर्यश्व इन्द्र ! ते युज्यः चारुः मदः यः अस्ति, येन वृत्राणि हंसि [९२८]- हे लाल रंगके घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरे योग्य यह उत्तम आनन्द है, जिससे तू शत्रुओंको मारता है।

इस प्रकार वीरोंमें ऐसा उत्साह उत्पन्न करता है कि वे उसके कारण शत्रुके विनाशके कामोंको करनेके लिए योग्य होते हैं। ऐसा इस सोमरसका प्रभाव है।

## अंगुलियोंका रस निकालना

सोमकी बेलको पत्थरके पाट पर रखकर पत्थरोंसे कूटा जाता है, और उंगलियोंसे दबाकर उसका रस निकाला जाता है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ उस्रियाः, जामयः, स्वसारः, महीयुवः, सूरं पतिं महां इन्दुं हिन्वन्ति [९०४]- सब जगह जानेवालीं, बहिनके समान एक मतसे काम करनेवालीं ऐसी उंगलियां, महान् कार्य करनेकी इच्छा करके, श्रेष्ठ स्वामी महान् सोमको दबाकर उसका रस निकालती हैं।

सोमका रस निकालना एक बडा काम है, क्योंकि उससे सोमयज्ञ सिद्ध होता है और उससे सब देव सन्तुष्ट होते हैं।

## सोम धन देता है

१ देवेभ्यः सुतः विश्वा वसूनि आविश [ ९०५ ]- देवोंके लिए निकाला गया सोमरस हमारे लिए सब धनोंमें प्रविष्ट होवे, अर्थात् सब धन हमें देवे ।

२ हे इन्दो सोम ! अस्मभ्यं महां सहस्रिणं रयिं विश्वतः आ पवस्व [ ९२६ ]- हे तेजस्वी सोम ! तू हमें महान् और हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे दे ।

सोमयागमें सब लोग धन देते हैं, तब वह धन सोम ही देता है, ऐसा कहा जाता है ।

## सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, बादमें उसमें पानी मिलाते हैं, तत्पश्चात् उसे छाना जाता है, और छाने हुए सोमरसको कलशमें भरकर रखते हैं । इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ यः दिवः परि रघुयामा, सः अयं पवित्रे आ सिन्धोः ऊर्मा वि अक्षरत् [ ९०० ]- जो सोम द्युलोक पर होता है वह सोम छलनीसे छाना जाता है । वह नदीके लहरमें टपकता है । नदीका पानी मिलाकर वह छाना जाता है ।

२ वाजिनं वने क्रीडन्तं अति अविं धीभिः मृजन्ति [ ९४१ ]- बलवान् सोमको पानीमें मिलाकर भेडके बालोंकी बनी छलनीसे स्तोत्र बोलकरके याजक छानते हैं ।

३ वाजयुः मीढ्वान् कलशान् अभि असर्जि [ ९४२ ] – अन्न देनेवाला पानीमें मिलाया हुआ सोम कलशमें छाना जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलानेका वर्णन है । इसके बाद वह छाना जाता है, उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

## सोमरसका छाना जाना

१ हे ऋषिषाण ! ये वेधसः त्वा मृजन्ति, ते अन्तरिक्षात् स्थाविरीः असृक्षत् [ ८८६ ]-हे ऋषियोंके द्वारा निकाले गए सोम ! जो ज्ञानी तुझे निकालते हैं, वे ऊपरके बर्तनसे एक धारसे नीचेके वर्तनमें तुझे पहुंचाते हैं, छानते हैं ।

२ यदि पवित्रे हरिः अधिमृज्यते सत्ता योनौ निषीदति [ ८८७ ]- जब छलनीसे हरे रंगका सोम छाना जाता है, उस समय स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला यह सोम कलशमें जाकर बैठता है ।

३ हे राजन् पवमान ! तव मदः अदुच्छुनः रसः अव्यं वारं वि अर्षति [ ८९० ]- हे सोम ! तेरा आनन्द देनेवाला तथा बुरे और दुष्ट लोगोंको न मिलनेवाला रस भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छनकर नीचे जाता है ।

४ ओजसा पवित्रे शीघ्रं आ एति [ ९०१ ] –वेगसे छलनीके द्वारा शीघ्र छाना जाता है ।

५ हे हरे ! दक्षसाधनः मदः देवेभ्यः पीतये पवस्व [ ९१९ ]- हे हरे रंगके सोम ! बल बढानेके साधन तेरे आनन्द देनेवाले रस देवोंके पीनेके लिए छानकर तैय्यार किये जाते हैं ।

६ पुनानः सोमः ऊर्मिणा अव्यं वारं वि धावति [ ९४० ]– छाना जानेवाला सोम धारसे भेडके बालोंकी छलनीसे दौडता हुआ नीचेके वर्तनमें पडता है ।

इस प्रकार सोम छाना जाता है और वह छलनी भेडके बालोंकी बनी होती है ।

## सोममें गायका दूध मिलाना

१ हे पवमान ! ते आश्विनीः धेनवः दिव्या, पयसा धरीमणि प्र असृग्रन् [ ८८६ ]- हे सोम ! तेरी वे वेगवान् गायें दिव्य हैं, वे अपने दूधसे कलशमें पहुंचती हैं । कलशमें छने हुए सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ।

२ वृषभः अन्तः पश्यन्, गोषु जानन्, अवराणि क्ष्मा वृजना आ तिष्ठति [ ९४५ ]- बलवान् सोमरस अपने अन्दर देखता है, और गायमें दूध है यह जनता है, कम न होनेवाले बलोंको वह गायके दूधसे प्राप्त करता है ।

इस प्रकार आलंकारिक भाषासे सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है इसका वर्णन इन मंत्रोंमें किया है ।

## सोमका अन्न देना

१ हे इन्दो सोम ! महीं इषं गोमत् आ पवस्व [ ८९५ ]- हे तेजस्वी सोम ! तू बडे अन्न तथा गायोंसे युक्त धन हमें दे ।

२ प्र प्र क्षयाय अद्रुहः पन्यसे जनाय वीति जुष्टः पनिष्टये अर्ष [ ९३७ ]- हे सोम ! तेरे निवास करनेके लिए यत्न करनेवाले, द्रोह न करनेवाले और स्तुति करनेवाले मनुष्यके खानेके लिए प्रयुक्त हुआ तू स्तुतिको प्राप्त हो ।

## सोमका शब्द

सोमरसको छाने जाते समय उसका शब्द होता है । उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ वृष्टेः स्वनः इव पवमानस्य श्रूयते [८९४]- वर्षाकी जैसी आवाज होती है उसी प्रकार छाने जानेवाले सोमकी आवाज सुनी जाती है।

२ धिया हितः कनिक्रदत् योनिं अभि आरुहः [ ९२१ ]- बुद्धिसे यज्ञमें रखा गया सोम शब्द करता हुआ कलसेमें जाता है।

३ पवमानः वाचः अग्रं कनिक्रदत् [ ९४० ]- छाना जाता हुआ सोम शब्द करता है।

४ त्रिपृष्ठं मतयः अभि समस्वरत् [ ९४१ ]- तीन वर्तनोंमें स्तुतिके साथ - साथ सोम शब्द करते हुए जाता है।

५ पुनानः वाचं जनयन् असिष्यदत् [ ९४२ ]- छाना जाता हुआ सोम शब्द करते हुए वर्तनमें पडता है।

६ सोमः रेभन् पवित्रं अति एति [ ९४४ ] सोम शब्द करते हुए छलनीमेंसे छनता जाता है।

७ पवमानः मनीषाः गिरः स्तोमान् प्रावीविपत् [ ९४५ ]- शुद्ध होता हुआ सोम मनको प्रिय लगनेवाले शब्दोंको प्रेरणा देता है।

इस तरह सोमरस छाना जाता हुआ शब्द करते हुए छलनीमेंसे नीचेके वर्तनमें पडता है, उसका आलंकारिक वर्णन ऊपरके मंत्रोंमें किया है। किसी वर्तनमें पहले ही द्रव पदार्थ रखा हो और उस पर ऊपरसे द्रव पदार्थ गिराया जाए तो शब्द तो होना ही हुआ। उसी प्रकारका यह शब्द है। नीचेके वर्तनमें दूध है और उसीमें ऊपरसे सोमरस छलनीसे गिरने लग जाये, तो उसका शब्द तो होगा ही। वह ही सोमका शब्द है।

## सोमका तेज

सोमलता तेजस्वी है। उसका रस भी तेजस्वी है। इस तेजस्विताका वर्णन इस प्रकार है—

१ पवमानस्य ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परियन्ति [८८७]- छाने जानेवाले स्थिर सोमकी किरणें दोनों ही ओर फैलती हैं।

२ पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत् [ ८८९ ]- छाना जानेवाला सोम महान् व्यापक तेज उत्पन्न करता है।

३ पवमानस्य ते दक्षः द्युमान् रसः विराजति [ ८९१ ]- छाने जानेवाले सोमके बलवर्धक तेजस्वी रस सुशोभित होते हैं।

४ विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे [८९१]- सोमका अपना तेज दीखता है।

५ शुष्मिणः विद्युतः दिवि चरन्ति [ ८९४ ]- बलवान् सोमकी किरणें द्युलोकमें फैलती हैं।

६ मही रोदसी आ पृण [ ८९६ ]- विशाल द्यावा-पृथ्वीको अपने तेजसे भर दे।

७ सुतः त्विषिं दधानः विचक्षणः विरोचयन् [ ९०१ ]- सोमरस तेज धारण करते हुए तेजस्वी होकर चमकने लगता है।

८ रुचा देवः पवमानः [ ९०५ ]- तेजसे सोमदेव सुशोभित होता है।

९ शुचिः जातः महान् सः सूनुः मही ऋतावृधा जाते मातरा अरोचयत् [ ९३६ ]- शुद्ध हुआ हुआ सोम नामक पुत्र महान् यज्ञको बढानेवाली प्रसिद्ध माता द्यावा-पृथ्वीको प्रकाशित करता है।

१० दैव्य पवमान ! द्युमत्तमः त्वं [ ९३८ ]- हे प्रकाशमान् सोम ! तू तेजस्वी है।

इस प्रकार सोम तेजस्वी है।

## सुभाषित

१ ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परियन्ति [८८७] -स्थिर और उत्तम कार्य करनेवालोंका तेज दोनों ओर फैलता है।

२ हे विश्वचक्षः ! प्रभोः सतः ते ऋभ्वस्य केतवः विश्वा धामानि परियन्ति [ ८८८ ]-हे सबके निरीक्षण करनेवाले निरीक्षक ! शासन करनेकी इच्छावाले तेरा महान् प्रकाश सब स्थानमें पहुंचता है।

३ धर्मणा पवसे [ ८८८ ]- अपने धर्मसे शुद्ध होता है।

४ विश्वस्य भुवनस्य पतिः राजसि [ ८८८ ]- तू सब भुवनोंका स्वामी होकर चमकता है।

५ पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः दिवः चित्रं तन्यतुं न अजीजनत् [ ८८९ ]- पवित्र हुआ सोम महान् तथा सब मनुष्योंके हित करनेवाले तेजको, द्युलोकमें चमकने वाली बिजलीके समान, उत्पन्न करता है।

६ हे राजन् ! तव मदः अ-दुच्छुनः [ ८९० ]- हे राजन् ! तेरा आनन्द दुष्ट नहीं पा सकते।

७ ते दक्षः द्युमान् विराजति [ ८९१ ]- तेरा तेजस्वी बल प्रकाशित होता है ।

८ विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे [ ८९१ ]- सब विश्वमें आत्माकी ज्योति दीखती है ।

९ त्वेषाः अयासः प्र अक्रमुः [ ८९२ ]- तेजस्वी और क्रियाशील ही प्रगति करते हैं ।

१० अ-व्रतं दस्युं साह्याम [८९३]- सत्कर्म न करनेवाले शत्रुको हम पराजित करें ।

११ शुष्मिणः विद्युतः दिवि चरन्ति [ ८९४ ]- बलशाली बिजलीका प्रकाश द्युलोकमें फैलता है ।

१२ वृष्टेः स्वनः श्रूयते [ ८९४ ]- वृष्टिका शब्द सुनाई दे रहा है ।

१३ गोमत्, अश्ववत्, हिरण्यवत्, वीरवत् महीं इषं आ पवस्व [ ८९५ ]- गाय, घोडे, सोना और वीर-पुत्रोंसे युक्त महान् अन्न हमें दे ।

१४ हे विश्व-चर्षणे ! मही रोदसी आपृण [८९६] -हे सब लोगोंके हित करनेवाले वीर ! तू अपने तेजसे इस महान् द्युलोक और पृथ्वीलोकको भर दे ।

१५ सूर्यः रश्मिभिः उषाः न [ ८९६ ]- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद जगत्को भर देता है, उसी प्रकार तू भी अपने तेजसे जगत्को भर दे ।

१६ नः शर्मयन्त्या धारया विश्वतः परिसर [८९७] -हमें सुख देनेवाले अन्नरसकी धारासे चारों ओरसे घेर ले ।

१७ हे बृहन्मते ! प्रियेण धाम्ना आशुः परि अर्ष [ ८९८ ]- हे बुद्धिमान् ! अपने प्रिय जीवनसे युक्त होकर शीघ्र इधर आ ।

१८ अनिष्कृतं परिष्कृण्वन् जनाय इषः यातयन्, परिस्रव [८९९]- असंस्कृतको सुसंस्कृत करते हुए, लोगोंको अन्न देते हुए चारों ओर भ्रमण कर ।

१९ त्विषिं दधानः, विचक्षणः विरोचयन्, ओजसा शीघ्रं आ एति [ ९०१ ]- तेज धारण करके, सबको देखनेवाला, स्वयं प्रकाशमान् होनेवाला अपने सामर्थ्यसे शीघ्र प्रगति करता है ।

२० उस्रयः जामयः स्वसारः महीयुवः सूरं पतिं हिन्वन्ति [ ९०४ ]- तेजस्वी तथा एक जगह रहनेवाली बहिनें महान् कार्यमें स्वयंको लगाकर अपने तेजस्वी पतिको भी उत्तम कार्यमें प्रेरित करती हैं ।

२१ रुचा विश्वा वसुनि आ विश [ ९०५ ]- अपने तेजसे सब धनोंमें तू प्रविष्ट होकर रह ।

२२ जनस्य गोपा, जागृविः सुदक्षः अग्निः, नव्यसे सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- मनुष्योंका संरक्षण करनेवाला, जाग्रत और चतुर, आगे ले चलनेवाला, नये मार्गसे सबका कल्याण करनेके लिए प्रकट हुआ है ।

२३ बृहता दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः द्युमत् भाति [ ९०७ ]- महान् आकाशको स्पर्श करनेवाले तेजसे पवित्र हुआ हुआ वह वीर भारतदेशमें लोगोंके हितके लिए तेजस्वी होकर चमकता है ।

२४ सः महत् सहः [ ९०८ ]- वह शत्रुका पराभव करनेवाले महान् बलसे युक्त है ।

२५ त्वां सहसः पुत्रं आहुः [ ९०८ ]- तुझे सामर्थ्य या बलका पुत्र कहते हैं ।

२६ राजानौ अनभिद्रुहौ ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्थूणे सदसि आशाते [ ९११ ]- जो राजा आपसमें भिडते नहीं, वे स्थिर, उत्तम और हजार खम्भोंवाली सभामें बैठते हैं ।

२७ सम्राजा दानुनः पती अनवह्वरं सचेते [९१२] -वे सम्राट् धनके स्वामी होकर कुटिलता रहित सत्कर्मकी सहायता करते हैं ।

२८ अ-प्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवतीः नव वृत्राणि जघान [ ९१३ ]- जिसको कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्रने ऋषिकी हड्डियोंसे ९९ वृत्रोंको मारा, शत्रुको मारनेके लिए ऋषिने अपनी हड्डी राष्ट्रहितके लिए समर्पित की ।

२९ गोः चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम इत्था अमन्वत [ ९१५ ]- गमन करनेवाले चन्द्रमाके मण्डल पर सूर्यकी गुप्त किरणें इस प्रकार प्रकाशित होती हैं । सूर्यकी किरणें चन्द्र पर जाकर पडती हैं, वहासे उनका परावर्तन होकर रात्रिके समय पृथ्वीपर उस चन्द्रमाका प्रकाश पडता है ।

३० ईशानाः धियः पिप्यतं [ ९१७ ]- तुम दोनों ही स्वामी हो, इसलिए हमारी बुद्धिको पूरी तरह विकसित करो ।

३१ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापत्वाय मा, अभि-शस्तये मा, निदे मा, रीरधतं [ ९१८ ]- हे नेता, इन्द्र और अग्निओ ! हमें पापके कार्योंमें मत लगाओ, हिंसा करनेमें प्रवृत्त न करो, तथा निन्दाके कार्योंमें भी मत युक्त करो ।

३२ वृषा कविः प्रियः अदाभ्यः संशोभते [९२०]- बलवान् कवि, प्रिय, तथा न दबाया जानेवाला होता है, वह सुशोभित होता है ।

३३ धिया हितः धर्मणा आरुहः [ ९२१ ]- बुद्धिसे जो हितकारक है, वह अपने गुण धर्मसे उन्नत होता है ।

३४ पुरूणि मां नि अवचरन्ति तान् परिधीन् अति इहि [ ९२२ ]- बहुतसे दुष्ट शत्रु मुझे कष्ट देते है, उन्हें दूर कर ।

३५ ते घृणा तपन्तं अति पतिम [ ९२३ ]- तू अपने तेजसे चमकता है, ऐसा हम देखते हैं ।

३६ विचर्षणिः विश्वाः मृधः अक्रमीत् [ ९२४ ]- विशेष निरीक्षण करनेवाला अपने सब शत्रुओंको हराता है ।

३७ विप्रं धीतिभिः शुम्भन्ति [९२४]- उस ज्ञानीको सब विद्वान् स्तुतियोंसे सुशोभित करते हैं ।

३८ वृषा इन्द्रः ध्रुवे सदसि सीदति [ ९२५ ]- बलवान् इन्द्र स्थिर सभामें बैठता है ।

३९ अस्मभ्यं महां सहस्रिणं रयिं विश्वतः आ पवस्व [ ९२६ ]- हमें महान्, हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे लाकर दे ।

४० ते युज्यः चारुः मदः य अस्ति, येन वृत्राणि हंसि [ ९२८ ]- तेरा योग्य और उत्तम उत्साह जो है, उससे तू शत्रुको मारता है ।

४१ विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं इन्द्रं नरः सजूः ततक्षुः [९३०]- सब शत्रुके सैनिकोंको हरानेवाले इन्द्रकी सब लोग मिल करके स्तुति करते हैं ।

४२ राजसे जजनुः [ ९३० ]- उसका तेज बढाते हैं।

४३ क्रत्वे वरे स्थेमनि, आमुरिं उग्रं ओजस्विनं, तरसं तरस्विनं [ ९३० ]- अपने कार्यसे श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र और महा बलवान्, श्रेष्ठ और शीघ्रतासे कार्य करनेवालेकी स्तुति की जाती है ।

४४ विप्राः अभिस्वरे मेषं नेमिं नमन्ति [ ९३१ ]- ज्ञानी महान् स्वरसे शक्तिमान् और व्यापक इन्द्रको नमस्कार करते हैं ।

४५ सु-दीतयः अ-द्रुहः वः तरस्विनः कर्णे क्रक्वभिः सं [९३१]- उत्तम तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले तुम शीघ्रतासे इन्द्रके कानोंतक पहुंचनेवाले स्वरके द्वारा मन्त्रोंसे उसकी स्तुति करो ।

४६ यत् स्वः पतिः वृधे, धृतव्रतः ओजसा ऊतिभिः सं [ ९३२ ]- जब स्वर्गका स्वामी इन्द्र भक्तका संवर्धन करना चाहता है, तब नियमोंका पालन करनेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होता है ।

४७ चर्षणीनां राजा अध्रिगुः, विश्वासां पृतनानां तरुता वृत्रहा ज्येष्ठं गृणे [ ९३३ ]- मनुष्योंका शासक, प्रगति करनेवाला, सब शत्रुकी सेनाओंसे पार करानेवाला इन्द्र है, उस श्रेष्ठ इन्द्रकी मै स्तुति करता हूँ ।

४८ पुरुहन्-मन ! अवसे तं इन्द्रं शुम्भ [ ९३४ ] – हे शत्रुके मारनेवाले इन्द्रके उपासक ! अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

४९ यस्य विधर्तरि द्विता [ ९३४ ]- जिसकी संरक्षण शक्तिमें दोनों प्रकारकी शक्तियां हैं । एक शत्रुके विनाश करनेकी शक्ति और दूसरी भक्त पर कृपा करनेकी शक्ति ।

५० महान् दर्शतः वज्रः हस्तेन प्रतिधायि [९३४] – महान् दर्शनीय वज्रको वह हाथसे धारण करता है ।

५१ शुचिः जातः मही ऋतावृधा मातरा अरोचयत् [ ९३६ ]- शुद्ध हुआ हुआ अपनी बडी, सत्य बढानेवाली माताओंको प्रकाशित करता है ।

५२ द्युमत्तमः त्वं जनिमानि अमृतत्वाय [ ९३८ ] – अत्यंत तेजस्वी तू अपने जन्ममें अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर ।

५३ अस्य क्रत्वा यशस्वन्तः [९४७]- इसके पुरुषार्थ प्रयत्न से हम यशस्वी होते हैं ।

५४ अयं विश्वाः श्रियः अभि पत्यते, नः वाजे उपागमत् [९४८]- यह सब ऐश्वर्योंसे युक्त है, वह हमारे पास अन्नके साथ आवे ।

५५ यत् हरी यच्छसे त्वत् रथीतरः न किः [९५०] – जिस कारण तू अपने दोनों ही घोडे रथमें जोडता है, उस कारण तेरी अपेक्षा उत्तम रथी और वीर दूसरा कोई नहीं है ।

५६ मज्मना त्वा अनु न किः [ ९५० ]- बलमें तेरे समान कोई दूसरा नहीं है ।

५७ सु अश्वः न किः आनशे [९५०]- उत्तम घोडे पालनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है ।

५८ ज्येष्ठं सहः नमस्यत [ ९५१ ]- शत्रुको हरानेवाले बलको धारण करनेवाले इन्द्रको नमस्कार करो ।

५९ तुराषाट् इन्द्रः वृत्रं जघान [९५४]- शीघ्रतासे शत्रुको हरानेवाला इन्द्र शत्रुको मारता है ।

६० यतिः न वलं विभेद [ ९५४ ]- संयमी पुरुषके समान वल नामक राक्षसको मारता है ।

६१ भृगुः न शत्रून् सासहे [ ९५४ ]- भृगुके समान शत्रुको हराता है ।

---

## उपमा

अब इस अध्यायमें जितनी उपमायें है, उनको देखें—

१ दिवः चित्रं तन्यतुं न [ ८८९ ]– आकाशमें जिस प्रकार बिजली चमकती है, उसी प्रकार ( पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) सोमका महान् और विश्वका नेतृत्व करनेवाला तेज फैलता है।

२ गावः न [ ८८२ ]– गायके समान - गायके दूधके समान ( भूर्णयः त्वेषाः अयासः कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः प्र अक्रमुः ) शीघ्रगामी तथा तेजस्वी सोमरस काली छालको दूर करते हुए नीचेके वर्तनमें गिरता है। गायका दूध सोमरस में जब मिलाया जाता है, तब सोमका काला रंग दूर होता है और वह सोम नीचे रखे वर्तनमें पडता है।

३ वृष्टेः स्वनः इव [ ८९४ ]– वृष्टिका जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार ( पवमानस्य श्रूयते ) सोमका शब्द सुनाई देता है।

४ सूर्यः रश्मिभिः उषाः न [ ८९६ ]– सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद विश्वको जैसे व्याप्त करता है वैसे ही ( विचर्षणे ! मही रोदसी आ पृण ) हे सबको देखनेवाले सोम ! तू इस महान् द्यावापृथिवीको [ अपने तेजसे ] भर दे।

५ विष्टपं रसा इव [ ८९७ ]– इस भूलोकको जिस प्रकार पानी व्याप्त करता है, उसी प्रकार ( हे सोम ! धारया विश्वतः परि सर ) हे सोम ! तू अपनी रसकी धारासे चारों ओर व्याप्त हो।

६ अभ्रात् वृष्टिः इव [९१६]– मेघसे जैसे वृष्टि होती है, उसी तरह ( इयं पूर्व्यस्तुतिः अस्य मन्मनः अजनि ) यह अपूर्व स्तुति इस विद्वान्से हुई है।

७ ते घृणा तपन्तं परं सूर्यं शकुना इव अति पतिम [ ९२३ ]– अपने तेजसे चमकनेवाले दूरके सूर्यको जैसे पक्षी देखते हैं, उसी प्रकार मैं चमकनेवाले सोमको देखता हूं।

८ अर्वा न [९२७]– घोडा जैसे आनन्द देता है, उसी प्रकार ( अद्रिः खलु सुषाव ) पत्थर जो सोमका रस निकालते हैं, वह तुझे आनन्द देता है।

९ देवः सूर्यः न [ ९३४ ]– सूर्य देव जैसा तेजस्वी है, उसी प्रकार ( दर्शतः महान् वज्रः ) दर्शनीय महान् वज्र तेजस्वी है।

१० सप्तिः न [ ९४२ ]– जैसे घोडा युद्धमें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः वाचं जनयन् असिष्यदत् ) छाना जानेवाला सोम शब्द करता हुआ कलसेमें जाता है।

११ सिन्धुः वाचः ऊर्मिं न [ ९४५ ]– जिस प्रकार नदी शब्द करती हुई बहती है, उसी प्रकार ( पवमानः स्तोमान् प्रावीविपत् ) छाना जानेवाला सोम स्तुतियोंको प्रेरित करता है।

१२ त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव [ ९४७ ]– जिस प्रकार बढई साधनोंसे लकडीको सुन्दर बनाता है, उसी प्रकार ( अयं नः आ भुवत् ) यह अग्नि हमें सुन्दर बनाती है।

१३ दिवः न [९५३]– द्युलोकसे जैसे प्रकाश आता है उसी प्रकार ( सुतस्य मदः ) सोमरससे आनंद मिलता है।

१४ स्वः न [ ९५३ ]– स्वर्गीय आनन्दके समान सोमका आनन्द है।

१५ नव्यं न [ ९५३ ]– नवीन होनेके समान ( जठरं पृणस्व ) अपना पेट भरकर सोमरस पी।

१६ मित्रः न [ ९५४ ]– मित्र जैसे सहायता करता हैं, उसी प्रकार ( इन्द्रः वृत्रं जघान ) इन्द्रने वृत्रको मारकर सहायता की।

१७ यतिः न [ ९५४ ]– संयमी वीर जैसे शत्रुको मारता है, उसी प्रकार इन्द्रने ( वलं विभेद ) बल राक्षसको मारा।

१८ भृगुः न [ ९५४ ]– भृगु जैसे शत्रुका नाश करता है, उसी तरह इन्द्र ( शत्रून् सासहे ) शत्रुका पराभव करता है।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं।

# पञ्चमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ८८६ | ९।८६।४ | अकृष्टा माषाः | पवमानः सोमः | जगती |
| ८८७ | ९।८६।६ | अकृष्टा माषाः | ,, | ,, |
| ८८८ | ९।८६।५ | अकृष्टा माषाः | ,, | ,, |
| ८८९ | ९।६१।१६ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | गायत्री |
| ८९० | ९।६१।१८ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ८९१ | ९।६१।१७ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ८९२ | ९।४१।१ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८९३ | ९।४१।२ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८९४ | ९।४१।३ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८९५ | ९।४१।४ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८९६ | ९।४१।५ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| ८९७ | ९।४१।६ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| ८९८ | ९।३९।१ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ८९९ | ९।३९।२ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९०० | ९।३९।३ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९०१ | ९।३९।४ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९०२ | ९।३९।५ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९०३ | ९।३९।६ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९०४ | ९।६५।१ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ९०५ | ९।६५।२ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ९०६ | ९।६५।३ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| ९०७ | ५।११।१ | सुतंभर आत्रेयः | अग्निः | जगती |
| ९०८ | ५।११।६ | सुतंभर आत्रेयः | ,, | ,, |
| ९०९ | ५।११।२ | सुतंभर आत्रेयः | ,, | ,, |
| ९१० | २।४१।४ | गृत्समदः शौनकः | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ९११ | २।४१।५ | गृत्समदः शौनकः | ,, | ,, |
| ९१२ | २।४१।६ | गृत्समदः शौनकः | ,, | ,, |
| ९१३ | १।८४।१३ | गोतमो राहूगणः | इन्द्रः | ,, |
| ९१४ | १।८४।१४ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ९१५ | १।८४।१५ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ९१६ | ७।९४।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्राग्नी | ,, |
| ९१७ | ७।९४।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ९१८ | ७।९४।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ९१९ | ९।२५।१ | दृढच्युत आगस्त्यः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ९२० | ९।२५।२ | दृढच्युत आगस्त्यः | ,, | ,, |
| ९२१ | ९।२५।३ | दृढच्युत आगस्त्यः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ९२२ | ९।१०७।१९ | सप्तर्षयः | पवमानः सोमः | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ९२३ | ९।१०७।२० | सप्तर्षयः | ,, | ,, |
| ९२४ | ९।४०।१ | बृहन्मतिरांगिरस | ,, | गायत्री |
| ९२५ | ९।४०।२ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९२६ | ९।४०।३ | बृहन्मतिरांगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| ९२७ | ७।२२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | विराट् |
| ९२८ | ७।२२।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ९२९ | ७।२२।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| ९३० | ८।९७।१० | रेभः काश्यपः | ,, | अतिजगती |
| ९३१ | ८।९७।११ | रेभः काश्यपः | ,, | उपरिष्टाद्बृहती |
| ९३२ | ८।९७।१२ | रेभः काश्यपः | ,, | ,, |
| ९३३ | ८।७०।१ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ९३४ | ८।७०।२ | पुरुहन्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| ९३५ | ९।९।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ९३६ | ९।९।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९३७ | ९।९।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९३८ | ९।१०८।३ | शक्तिर्वासिष्ठः | ,, | काकुभः प्रगाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ९३९ | ९।१०८।४ | ऊरुरांगिरसः | ,, | ,, |
| ९४० | ९।१०६।१० | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | उष्णिक् |
| ९४१ | ९।१०६।११ | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | ,, |
| ९४२ | ९।१०६।१२ | अग्निश्चाक्षुषः | ,, | ,, |
| ९४३ | ९।९६।५ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ९४४ | ९।९६।६ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| ९४५ | ९।९६।७ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| | | ( ७ ) | | |
| ९४६ | ८।१०२।७ | प्रयोगो भार्गवः | अग्निः | गायत्री |
| ९४७ | ८।१०२।८ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| ९४८ | ८।१०२।९ | प्रयोगो भार्गवः | ,, | ,, |
| ९४९ | १।८४।४ | गोतमो राहूगणः | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| ९५० | १।८४।६ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ९५१ | १।८४।५ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| ९५२ | — | पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | ,, | तृचात्मक सूक्तम् |
| ९५३ | — | पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | ,, | ,, |
| ९५४ | — | पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | ,, | |



# अथ षष्ठोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ ( अकृष्टा माषावयः ) त्रयः ऋषयः; २ कश्यपो मारीचः; ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा; ५ अवत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अरुणो वैतहव्यः; ८ उरुचक्रिरात्रेयः; ९ कुरुसुतिः काण्वः; १० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रा-वरुणिः ); १४, १५, २३ गोतमो राहूगणः; १७ ( १ ) उर्ध्वसद्मा आंगिरसः, १७ ( २ ) कृतयशा आंगिरसः, १८ त्रित आप्त्यः; १९ रेभसूनू काश्यपौ; २० मन्युर्वासिष्ठः; २१ वसुश्रुत आत्रेयः; २२ नृमेध आंगि-रसः ॥ १-६, ११-१३; १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ९, १४-१५, २२-२३ इन्द्रः, १० इंद्राग्नी ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ बृहती, १४, १५, २१ पंक्तिः; १७ काकुभः प्रगाथः- ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ); १८, २२ उष्णिक्; १९, २३ अनुष्टुप्; २० त्रिष्टुप् ॥

९५५ गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वꣳ सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।३९ )

९५६ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयꣳ स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।३८ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ९५५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( गो-वित् ) गायोंको पासमें रखनेवाला, ( वसु-वित् ) धनको पासमें रखनेवाला, ( हिरण्य-वित् ) सोनेको पासमें रखनेवाला ( रेतो-धाः ) वीर्य धारण करनेवाला ( भुवनेषु अर्पितः ) भुवनोंमें रहने-वाला ऐसा तू ( पवस्व ) छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! तू ( सुवीरः ) उत्तमवीर और ( विश्व-वित् ) सर्व ज्ञानी ( असि ) है, हे ( नरः ) नेता सोम ! ( तं त्वा ) उस तेरी ( इमे गिरा उपासते ) ये ऋत्विज स्तोत्रसे उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ ९५६ ] हे ( पवमान वृषभ सोम ) शुद्ध होनेवाले बलवर्धक सोम ! ( त्वं विश्वतः नृचक्षाः असि ) तू सब प्रकारसे मनुष्योंका साक्षी है । ( ताः विधावसि ) उनके पास तू जाता है ( सः नः ) वह तू हमारे लिए ( पवस्व ) छनता जा, उसकी सहायतासे ( वयं ) हम ( वसुमत् हिरण्यवत् ) धन और सुवर्णसे युक्त होकर ( भुवनेषु जीवसे स्याम ) लोकोंमें जीवनवाले हों. ॥ २ ॥

९५७ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥ १ ( खी ) ॥
[ धा० ४१ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८६।३७ )

९५८ पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।७ )

९५९ केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे । ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।८ )

९६० जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ २ ( पा ) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६४।९ )

९६१ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२४।१ )

९६२ अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२४।२ )

९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२४।३ )

९६४ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२४।५ )

---

[ ९५७ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ईशानः ) सबका स्वामी तू ( हरितः सुपर्ण्यः युजानः ) हरे रंगके शीघ्र चलनेवाले घोडोंको रथमें जोडकर ( इमा भुवनानि ) इन सब भुवनोंमें ( ईयसे ) जाता है । ( ताः ) वे ( ते ) तेरे रस ( मधुमत् घृतं पयः ) मीठे और चमकनेवाले जलोंमें ( क्षरन्तु ) छाने जायें । हे ( सोम ) सोम ! ( कृष्टयः ) यज्ञ करनेवाले मनुष्य ( तव व्रते तिष्ठन्तु ) तेरे यज्ञकर्ममें संलग्न रहें ॥ ३ ॥

[ ९५८ ] हे ( विश्ववित् ) सर्वज्ञ सोम ! ( पवमानस्य ते सर्गाः ) छनकर शुद्ध होनेवाली तेरी धारायें ( सूर्यस्य रश्मयः इव ) सूर्यकी किरणोंके समान ( न प्रासृक्षत ) इस वक्त नीचे गिर रही हैं ॥ १ ॥

[ ९५९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया गया तू ( केतुं कृण्वन् ) ज्ञानका प्रसार करते हुए ( विश्वा रूपा ) सब रूपोंसे युक्त होकर ( दिवः परि अभ्यर्षसि ) अन्तरिक्षके मार्गसे जाता है और हमें ( पिन्वसे ) अनेक प्रकारके धन देता है ॥ २ ॥

[ ९६० ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके समान ( जज्ञानः ) प्रकट होनेवाला तू ( विधर्मणि ) छलनीसे ( क्रन्दन् ) शब्द करते हुए ( वाचं इष्यसि ) स्तुतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९६१ ] ( पवमानासः इन्दवः सोमासः ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्राधन्विषुः ) नीचेके बर्तनमें गिरते हैं, ( श्रीणानाः ) वे सोमरस दूधमें मिलाकर ( अप्सु वृंजते ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ९६२ ] ( गावः [ इन्दवः ] ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्रवता यतीः ) नीचेके बर्तनमें जाते हुए ( आपः न ) पानीके समान ( अभि अधन्विषुः ) छलनीसे नीचे छाने जाते हैं । ( पुनानाः ) छने हुए ये सोमरस ( इन्द्रं आशत ) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ९६३ ] हे ( पवमान सोम ) छाने जानेवाले सोम ! ( इन्द्राय मादनः ) इन्द्रको उत्साह देनेवाला तू ( प्र धन्वसि ) छलनीसे नीचे गिरता है, बादमें ( नृभिः यतः ) ऋत्विजोंके द्वारा ( विनीयसे ) तू यज्ञ स्थानके पास ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ ९६४ ] हे ( इन्दो ) सोम ! तू ( यत् अद्रिभिः सुतः ) जब पत्थरों द्वारा कूटकर रस निकालनेके बाद ( पवित्रं परिदीयसे ) छलनीके पास ले जाया जाता है, तब ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके पेटमें जाने योग्य होता है ॥ ४ ॥

९६५ त्वꣳसोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२४।४ )

९६६ पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२४।६ )

९६७ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशꣳसहा ॥ ७ ॥ ३ ( है ) ॥

[ धा० ४१ । उ० नास्ति । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।२४।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

९६८ प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२०।१ )

९६९ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।२०।२ )

९७० परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२०।३ )

९७१ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवꣳरयिम् । इषꣳस्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२०।४ )

९७२ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२०।५ )

९७३ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥ ( ऋ ९।२०।६ )

---

[ ९६५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृमादनः ) मनुष्योंको आनन्द देनेवाला ( चर्षणी-धृतिः ) ऋत्विजोंके द्वारा धारण किया गया ( त्व पवस्व ) तू छनता जा, ( यः सस्निः ) जो सोम शुद्ध और ( अनुमाद्यः ) प्रशंसनीय है ॥ ५ ॥

[ ९६६ ] हे सोम ! ( उक्थेभिः अनुमाद्यः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य ( अद्भुतः शुचिः पावकः ) अद्भुत, शुद्ध और पवित्र तू ( वृत्रहन्तमः पवस्व ) शत्रुका नाश करनेवाला होकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[ ९६७ ] ( सुतः मधुमान् ) निचोडा गया, मीठा ( शुचिः पावकः ) पवित्र, शुद्ध ( देवावीः ) देवोंको तृप्त करनेवाला और ( अघ-शंस-हा सः ) पापी असुरोंका नाशक ऐसा वह सोम ( उच्यते ) वर्णित होता है ॥ ७ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ९६८ ] ( कविः ) ज्ञानी सोम ( देव-वीतये ) देवोंके देनेके लिए ( अव्या वारेभिः ) भेडके बालोंकी छलनीसे ( अव्यत ) छाना जाता है । ( साह्वान् ) शत्रुको हरानेवाला सोम ( विश्वाः स्पृधः अभि ) सब दुष्टोंको हराता है ॥ १ ॥

[ ९६९ ] ( पवमानः ) पवित्र होनेवाला ( स हि स्म ) वह सोम ही ( जरितृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( गोमन्तं सहस्रिणं वाजं ) गायोंसे युक्त हजारों प्रकारके अन्न ( आ इन्वति ) देता है ॥ २ ॥

[ ९७० ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( मती ) हमारी स्तुतिके लिए ( मृज्यसे ) छाना जाता है, ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( चेतसा ) बुद्धिपूर्वक ( विश्वानि श्रवः विदः ) अनेक प्रकारके अन्न दे ॥ ३ ॥

[ ९७१ ] हे सोम ! ( मघवद्भ्यः स्तोतृभ्यः ) धनवान् स्तोताओंके लिए ( बृहत् यशः ) महान् यश ( ध्रुवं रयिं ) स्थायी धन ( अभ्यर्ष ) दे और ( इषं आ भर ) अन्नभी भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ९७२ ] हे ( वह्ने ) यज्ञ करनेवाले ( अद्भुत सोम ) अद्भुत सोम ! ( सुव्रतः पुनानः राजा इव ) उत्तम कर्म करनेवाले पवित्र हृदयवाले राजाके समान ( गिरः आ विवेशिथ ) हमारी स्तुतिको तू स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

[ ९७३ ] ( वह्निः ) यज्ञ करनेवाला ( अप्सु दुष्टरः ) जलमें मिलाया जानेवाला ( गभस्त्योः मृज्यमानः ) हाथोंसे साफ किया जानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( चमूषु सीदति ) वर्तनमें जाकर रहता है ॥ ६ ॥

*

९७४ क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ४ ( को ) ॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।२०।७ )

९७५ यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥ ( ऋ.९।५५।१ )

९७६ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।५५।२ )

९७७ उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।५५।३ )

९७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ ५ ( हि ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।५५।४ )

९७९ यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।७ )

९८० सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।८ )

९८१ त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६२।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

---

[ ९७४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( क्रीडुः ) खेल करनेवाला ( मखः न ) यज्ञके समान ( मंह-युः ) दान देनेकी इच्छा करनेवाला तू ( स्तोत्रे ) स्तुति करनेवालेको ( सुवीर्यं दधत् ) उत्तम वीरता देकर ( पवित्रं गच्छसि ) छलनी पर जाता है ॥ ७ ॥

[ ९७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नः ) हमारे लिए ( पुष्टं पुष्टं यवं यवं ) अत्यधिक पौष्टिक रसको ( अन्धसा परिस्रव ) अन्नकी धारासे बहाता रह ( च ) और ( विश्वा सौभगा ) सब ऐश्वर्य दे ॥ १ ॥

[ ९७६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ते अन्धसः स्तवः ) तेरे अन्नके स्तोत्र ( तव यथा जातं ) तेरे लिए जैसे बनाये गए हैं, उसी प्रेमके साथ तू ( प्रिये बर्हिषि निषदः ) प्रिय आसन पर बैठ ॥ २ ॥

[ ९७७ ] ( उत सोम ) और हे सोम ! ( नः ) हमें तू ( मक्षूतमेभिः अहभिः ) बहुत जल्दी ही ( गो-वित् ) गाय देनेवाला ( अश्ववित् ) घोडे देनेवाला, ( अन्धसा पवस्व ) और अन्न देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ९७८ ] हे ( सहस्रजित् ) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम ! ( यः जिनाति ) जो तू शत्रुओंको जीतता है और ( शत्रुं अभीत्य हन्ति ) शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें मारता है, पर ( न जीयते ) स्वयं शत्रुसे कभी जीता नहीं जाता ( सः पवस्व ) ऐसा वह तू धारसे छनता जा ॥ ४ ॥

[ ९७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ते ) तेरी ( मधुश्चुतः याः धाराः ) मीठी रसकी जो धारायें हैं, वे ( ऊतये असृग्रन् ) संरक्षणके लिए हैं, ( ताभिः पवित्रं आसदः ) उन धाराओंके साथ तू छलनी पर चढ ॥ १ ॥

[ ९८० ] हे सोम ! ( सः ) वह तू ( अव्यया वाराणि ) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे ( तिरः ) छनता है, ( ऋतस्य योनिं आसीदन् ) यज्ञके स्थानपर बैठकर ( इन्द्राय पीतये अर्ष ) इन्द्रके पीनेके लिए तू तैय्यार हो, छन ॥२॥

[ ९८१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( स्वादिष्ठः ) तू स्वादिष्ट है, और ( वरिवो-वित् ) धन देनेवाला है, इसलिए तू ( अंगिरोभ्यः ) अंगिराऋषियों के लिए ( घृतं पयः परिस्रव ) तेजस्वी दूध दे ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

९८२ तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९१।५ )
९८३ वातोपजूत इषितो वशाँ॑ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे
आ ते यतन्ते रथ्यो३यथा पृथक् शर्धां॑स्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९१।७ )
९८४ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं॑होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥ ७ (बु) ॥
[ धा० ३९ । उ० ३ । स्व० ५ ] ( ऋ. १०।९१।८ )
९८५ पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां॑सुमतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७०।१ )
९८६ ता वां॑ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७०।२ )

---

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९८२ ] हे अग्ने ! ( यत् ) जब तू ( ओषधीः वनानि च ) औषधी और वन ( अभिसृष्टः ) जलानेके लिए लेता है, ( स्वयं आसनि ) तब स्वयं अपने मुंहमें ( अन्नं परिचिनुषे ) स्थावर और जंगमरूपी जगत्‌के अन्नको डालता है, उस समय ( तव श्रियः ) तेरी किरणें ( वर्ष्यस्य विद्युतः इव ) वर्षाकालमें बिजलीके समान ( उषसां ऊतयः इव ) अथवा उषःकालके प्रकाशके समान ( चिकित्रे ) दीखने लगती ह ॥ १ ॥

[ ९८३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यत् वातोपजूतः ) जब तू वायुके द्वारा कंपाया जाता है, तब ( वशान् अनु ) प्रिय वनस्पतियोंमें ( तृषु इषितः ) शीघ्र प्रेरित होकर ( अन्ना वेविषत् ) अपने अन्नको घेरता है, और ( वितिष्ठसे ) वहीं पर रहता है, तब ( अजरस्य धक्षतः ते ) बुढापारहित तरुणके समान भस्म करनेकी इच्छावाले तेरे ( शर्धांसि ) तेज ( रथ्यः यथा ) रथपर चढे हुए वीरके समान ( पृथक् आयतन्ते ) पृथक् पृथक् बढते हुए दिखाई देते हैं ॥ २ ॥

[ ९८४ ] ( मेधाकारं ) बुद्धिको बढानेवाले ( विदथस्य प्रसाधनं ) यज्ञके साधन ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( परि-भू-तरं ) शत्रुके पराभव करनेवाले ( मतिं ) बुद्धिके प्रेरक ( अग्निं ) अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं। हे अग्ने ! ( त्वां इत् ) तुझे ही ( अर्भस्य हविषः ) थोडेसे हविष्यान्नको खानेके लिए ( त्वां इत् महः ) और तुझे ही बहुतसी हवि खानेके लिए ( समानं वृणते ) एकत्र होकर प्रार्थना करते हैं, बुलाते हैं, ( त्वत् अन्यं न ) तेरे सिवाय और किसी देवता को नहीं बुलाते ॥ ३ ॥

[ ९८५ ] हे मित्र और वरुणो ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरूरुणा अवः ) बहुतसे संरक्षणके साधन ( नूनं अस्ति ) निश्चयसे हैं, यह ( हि ) प्रसिद्ध ही है, ( चित् ) और ( वरुण मित्र ) हे मित्र और वरुण ! हमें ( वां सुमतिं वंसि ) तुम्हारी अनुकूल और उत्तम बुद्धि प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९८६ ] हम स्तोता ( अ-द्रुह्वाणा ) द्रोह न करनेवाले ( ता वां ) तुम दोनोंकी ( सम्यक् ) अच्छी तरह स्तुति करते है। ( वयं ) हम ( वां मित्रा स्याम ) तुम्हारे मित्र हों और ( इषं ) अन्नको ( च धाम ) और स्थानको ( अश्याम ) प्राप्त करें ॥ २ ॥

९८७ पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाꣳसुत्रात्रा। साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥ ३ ॥ ८ (य) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ५।७०।३ )

९८८ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७६।१० )

९८९ अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मदेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७६।११ )

९९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥ ३ ॥ ९ (ह्री) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।७६।१२ )

९९१ इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतꣳशम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।७ )

९९२ या वाꣳसन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥२॥ ( ऋ. ६।६०।८ )

९९३ ताभिरा गच्छतं नरोपेदꣳसवनꣳसुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० (ह्रा) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० २ ] ( ऋ. ६।६०।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९९४ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१९ )

---

[ ९८७ ] हे ( मित्रा ) मित्र और वरुणो ! तुम ( नः ) हमारी ( पायुभिः पातं ) संरक्षणके साधनोंसे रक्षा करो, ( उत ) और ( सुत्रात्रा त्रायेथां ) उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारा पालन करो, हम भी ( तनूभिः ) अपने शारीरिक सामर्थ्योंसे ( दस्यून् साह्याम ) शत्रुका पराभव करें ॥ ३ ॥

[ ९८८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( चमू सुतं सोमं पीत्वा ) वर्तनमें रखे हुए सोमरसको पीकर ( ओजसा सह उत्तिष्ठन् ) बल लगाकर उठकर ( शिप्रे अवेपयः ) अपनी ठुड्डीको हिला ॥ १ ॥

[ ९८९ ] हे ( स्पर्धमान इन्द्र ) स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा अनु ) तेरे अनुकूल ( उभे रोदसी ) दोनों ही द्युलोक और पृथ्वीलोक ( मदेतां ) आनन्दित होते हैं ( यत् ) जब तू ( दस्युहा भवः ) शत्रुका नाश करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[ ९९० ] ( अष्टापदीं ) आठ चरणकी ( नव-स्रक्तिं ) नई कल्पनासे युक्त ( ऋता-वृधं ) सत्यको बढानेवाली ( तन्वं वाचं ) छोटी ही स्तुति ( अहं परिममे ) में करता हूं ॥ ३ ॥

[ ९९१ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( युवां ) तुम दोनोंकी ( इमे स्तोमाः अभ्यनूषत ) ये स्तुति करनेवाले स्तुति करते हैं, हे ( शं-भुवा ) सुख देनेवाले इन्द्र और अग्नि ! ( सुतं पिबतं ) सोमरसको पिओ ॥ १ ॥

[ ९९२ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरु-स्पृहः ) बहुतों द्वारा प्रशंसा करनेके योग्य ( दाशुषे ) दान देनेवालेकी सहायताके लिए ( याः नियुतः सन्ति ) जो घोडियां हैं ( ताभिः आगतं ) उनकी सहायतासे यहां आओ ॥ २ ॥

[ ९९३ ] हे ( नरा इन्द्राग्नी ) नेता इन्द्र और अग्ने ! ( इदं सुतं सवनं उप ) इस शुद्ध किए गए सोमरसके पास ( सोम-पीतये ) सोम पीनेके लिए ( ताभिः आगच्छतं ) उन घोडियोंके साथ आओ ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९९४ ] ( सोम ) हे सोम ! ( द्युमत्तमः ) तेजस्वी तू ( वनेषु योनौ आसीदन् ) लकडीके पात्रमें रहकर ( द्रोणानि अभि ) द्रोण कलसेमें ( रोरुवत् अर्ष ) शब्द करते हुए जा ॥ १ ॥

९९५ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२० )

९९६ इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ११ ( ला ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६५।२१ )

९९७ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )

९९८ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ २ ॥ १२ ( फ ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।१०७।९ )

९९९ यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

१००० वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ॥ २ ॥( ऋ. ९।१९।३ )

१००१ युवंहि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥ १३ ( पु ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ९।१९।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

---

[ ९९५ ] ( अप्सा ) पानीके साथ मिले हुए ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र, वायु ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण, मरुत् ( विष्णवे अर्षन्तु ) और विष्णुके लिए कलसेमें आवें ॥ २ ॥

[ ९९६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तोकाय ) हमारे पुत्रोंके लिए ( इषं दधत् ) अन्न दे; ( सहस्रिणं ) हजार प्रकारके धन ( विश्वतः अस्मभ्यं आ पवस्व ) चारों ओरसे हमारे लिए लाकर दे ॥ ३ ॥

[ ९९७ ] ( सोतृभिः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा ( स्वानः सोमः ) निचोडा गया सोमरस ( अवीनां स्नुभिः ) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे ( अधि याति ) वेगसे छाना जाता है, यह रस ( उ ) निश्चयसे ( अश्वया इव ) घोडीके समान ( हरिता धारया ) हरे रंगकी धारासे ( मन्द्रया धारया ) आनन्दकारक धारासे ( याति ) कलसेमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९९८ ] ( गोमान् सोमः ) गायोंसे युक्त सोम ( अनूपे गोभिः अक्षाः ) कलसेमें गायके दूधके साथ टपकता है, ( सोमः दुग्धाभिः अक्षाः ) सोम दूधके साथ टपकता है, ( समुद्रं न ) जिस प्रकार समुद्रमें नदियां गिरतीं हैं उसी प्रकार ( सं वरणानि अग्मन् ) सोमरसरूपी अन्न कलसेमें गिरता है, ( मन्दी मदाय तोशते ) आनन्ददायक सोम आनन्द प्राप्तिके लिए कूटा जाता है ॥ २ ॥

[ ९९९ ] ( सोम ) सोम ! ( यत् ) जो ( चित्रं उक्थ्यं दिव्यं ) विलक्षण, प्रशंसनीय और दिव्य ( पार्थिवं वसु ) ऐसा पृथ्वीके ऊपर धन है ( तत् ) वह धन ( पुनानः नः आभर ) शुद्ध होनेवाला तू हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[ १००० ] ( आयूंषि पुनानः ) याजकोंके आयुओंको पवित्र करनेवाला ( वृषा स्तनयन् ) बलसे शब्द करता हुआ हे सोम ! ( अधि बर्हिषि ) आसन पर ( हरिः सन् ) हरे रंगका होता हुआ तू ( योनिं आसदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १००१ ] ( सोम च इन्द्र ) हे सोम और इन्द्र ! ( युवं हि स्वः पती स्थः ) तुम दोनों निश्चयसे सबके स्वामी हो, ( गोपती ईशाना ) गोपालक और ऐश्वर्योंके स्वामी ऐसे तुम ( धियं पिप्यतं ) हमारी बुद्धियोंको पुष्ट करो ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१००२ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )

१००३ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८१।२ )

१००४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कꣳ हनः कꣳ वसौ दधोऽस्माꣳ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥ १४ (खु)॥
[ धा० २६ । उ० २ । स्व० ९ ] ( ऋ. १।८१।३ )

१००५ स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४।१० )

१००६ ता अस्य पृशनायुवः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रꣳ हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।११ )

---

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १००२ ] ( वृत्र-हा इन्द्रः ) शत्रुनाशक इन्द्र ( मदाय शवसे ) आनन्द तथा बलकी प्राप्तिके लिए ( नृभिः वावृधे ) याजकों द्वारा ही और अधिक महान् किया गया है, ( तं इत् ) उसके पाससेही ( महत्सु आजिषु ) महान् संग्रामोंमें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( ऊतिं हवामहे ) हम संरक्षण मांगते है, ( सः वाजेषु ) वह युद्धमें ( नः प्राविषत् ) हमारा संरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १००३ ] हे ( वीर ) वीर इन्द्र ! ( सैन्यः असिः ) तू सैनिक है, इसलिए ( भूरि परादादिः असि ) शत्रुका बहुतसा धन हरण करनेवाला है, ( दभ्रस्य चित् वृधः ) छोटोंको तू महान् करनेवाला है। ( सुन्वते यजमानाय शिक्षसि ) सोमयाग करनेवाले यजमानोंको तू धन देता है, क्योंकि ( ते भूरि वसु ) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

[ १००४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध उत्पन्न होते हैं तब ( धृष्णवे धना धीयते ) विजयी वीरको धन मिलता है, हे इन्द्र ! युद्धके समय ( मदच्युता हरी युंक्ष्व ) मद चुआनेवाले घोडे रथमें जोड। ( कं हनः ) किसको मारना है और ( कं वसौ दधः ) किसको धनमें स्थापित करना है यह निश्चित कर। हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अस्मान् वसौ दधः ) हमें धनोंमें स्थापित कर ॥ ३ ॥

[ १००५ ] ( स्वादोः ) मीठे ( इत्था विषूवतः मधोः ) और इस प्रकार सब यज्ञमें व्यापनेवाले मीठे सोमरसको ( गौर्यः पिबन्ति ) सफेद रंगकी गायें पीती हैं ( याः इन्द्रेण शोभथाः ) जो इन्द्रके साथ रहकर सुशोभित होती हैं। ( वृष्णाः सयावरीः मदन्ति ) बलशाली इन्द्रके साथ जानेवाली गायें आनन्दित दीखती हैं ऐसी ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) दूध देकर निवास करनेवाली गायें अपने राज्यमें रहती हैं ॥ १ ॥

[ १००६ ] ( ताः अस्य ) वे इस इन्द्रके ( पृशनायुवः पृश्नयः ) स्पर्शकी इच्छा करनेवाली गायें ( सोमं श्रीणन्ति ) अपना दूध सोमरसमें मिलाती हैं। ( इन्द्रस्य प्रियाः धेनवः ) इन्द्रकी प्रिय गायें ( सायकं वज्रं हिन्वन्ति ) शत्रुनाशक वज्रको प्रेरणा देती हैं। ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) अपना दूध देकर अपने राज्यमें रहती हैं ॥ २ ॥

१००७ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ १५ ( व ) ॥
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व १ ]( ऋ. १।८४।१२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१००८ असाव्यꣳशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।४ )
१००९ शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥
( ऋ ९।६२।५ )
१०१० आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसꣳ सधमादे ॥ ३ ॥ १६ ( चु ) ॥
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।६२।६ )
१०११ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।९ )

---

[ १००७ ] ( प्रचेतसः ताः ) विशेष बुद्धिवाली वे गायें ( अस्य सहः ) इस इन्द्रके साहसको ( नमसा सपर्यन्ति ) अपने दूधरूपी अन्नसे पूजती हैं, ( पूर्व-चित्तये ) पूर्वके कामोंको समझानेके लिए ( अस्य पुरूणि व्रतानि ) इस इन्द्रके पहलेके बहुतसे कामोंका ( सश्चिरे ) ध्यान दिलाती हैं, ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) दूध देकर अपने राज्यमें इस इन्द्रके अनुकूल होकर रहती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १००८ ] ( गिरिष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर उगनेवाले सोमका ( मदाय असावि ) आनन्दके लिए रस निकाला है। ( अप्सु दक्षः ) बादमें पानीमें भी मिलाया है, उसके बाद ( श्येनः न ) बाज पक्षीके समान ( योनिं आसदत् ) यह अपने स्थान पर बैठता है ॥ १ ॥

[ १००९ ] ( देव-वातं शुभ्रं अन्धः ) देवोंको देनेके लिए स्वच्छ और सुन्दर अन्न अर्थात् ( नृभिः सुतं ) ऋत्विजोंके द्वारा तैय्यार किए गए ( अप्सु धौतं ) पानीमें मिलाये गए सोमरसको ( गावः ) गायें ( पयोभिः स्वदन्ति ) अपना दूध मिलाकर स्वादिष्ट बनाती हैं ॥ २ ॥

[ १०१० ] ( आत् ) बादमें ( हेतारं ईं मधोः रसं ) स्फूर्ति देनेवाले इस सोमरसको ( सधमादे अमृताय अशूशुभन् ) यज्ञमें अमरत्व प्राप्त करनेके लिए ऋत्विज ( अश्वं न ) घोडेके समान सुशोभित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०११ ] ( इषस्पते देव ) हे अन्नके स्वामी सोमदेव ! ( देवयुं द्युम्नं बृहत् यशः ) देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसे तेजस्वी और महान् अन्न ( अभि दिदीहि ) हमें दे, ( मध्यमं कोशं वियुव ) शहदके बर्तनमें जाकर रह ॥ १ ॥

१०१२ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥ १७ ( डां ) ॥

[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ ९।१०८।१० )

१०१३ प्राणा शिशुर्महीना ँ हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०२।१ )

१०१४ उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

( ऋ ९।१०२।२ )

१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥ १८ ( री ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१०२।३ )

१०१६ पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥१॥

( ऋ. ९।१००।६ )

१०१७ त्वा ँ रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२॥

( ऋ. ९।१००।७ )

---

[ १०१२ ] हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बलशाली सोम ! ( चम्वोः सुतः ) कलसेमें रखा हुआ तू ( वह्निः न ) सब प्रजाओंका चालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार ( विशां विश्पतिः ) तू प्रजाओंका पालक होकर ( आ वच्यस्व ) कलसेमें आ, ( गविष्टये ) गाय पानेकी इच्छावाले यजमानकी ( धियः जिन्वन् ) बुद्धियोंको प्रेरित करते हुए ( दिवः अपः वृष्टिं रीतिं ) द्युलोकसे जैसे पानी गिरता है, उसी प्रकार ( पवस्व ) नीचेके बर्तनमें तू छनता जा ॥ २ ॥

[ १०१३ ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( महीनां शिशुः ) जलोंका पुत्र सोम ( ऋतस्य दीधितिं हिन्वन् ) यज्ञके प्रकाशक अपने रसको प्रेरित करते हुए ( विश्वा प्रिया परिभुवत् ) सर्व प्रिय हविकी अपेक्षा भी अधिक महत्वका होता है, और ( अध द्विता ) बादमें द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंके बीचमें रहता है ॥ १ ॥

[ १०१४ ] ( त्रितस्य गुहा ) त्रित नामके ऋषिकी गुहामें ( पाष्योः पदं ) दो पटलोंके बीचके स्थानमें ( यत् उप अभक्त ) जब उन सोमोंको प्राप्त किया, ( अध ) तब ( यज्ञस्य सप्त धामभिः ) यज्ञके सात छन्दोंसे ( प्रियं अभि ) प्रिय सोमकी ऋत्विज स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

[ १०१५ ] हे सोम ! ( धारया ) अपने रसकी धारासे ( त्रितस्य त्रीणि ) त्रितके तीनों सवनोंमें ( पृष्ठेषु रयिं एेरयत् ) सामगानके शुरु होनेपर धन देनेवाले इन्द्रको प्रेरित कर, क्योंकि ( सु-क्रतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला स्तोता ( अस्य योजना ) इस इन्द्रके स्तोत्रोंका ही ( वि मिमीते ) उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( सुतः ) रस तैय्यार करनेके बाद तू ( इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः ) इन्द्र विष्णु और सब देवोंके लिए ( मधुमत्तरः ) अत्यन्त मीठा होकर ( वाज-सातये ) अन्नकी प्राप्तिके लिए ( पवित्रे धारया पवस्व ) छलनीमेंसे धारासे टपक ॥ १ ॥

[ १०१७ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( विधर्मणि ) यज्ञमें ( अ-द्रुहः धीतयः ) द्रोह न करनेवाली अंगुलियां ( हरिं ) हरे रंगवाले ( त्वां पवित्रे रिहन्ति ) तुझे छलनीमें उसी प्रकार दबाती है जिस प्रकार ( जातं वत्सं मातरः न ) नये उत्पन्न हुए बछडेको गायें चाटती हैं ॥ २ ॥

१०१८ त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ३ ॥ १९ (ता) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१००।९ )

१०१९ इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

१०२० अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ २ ॥ ( ऋ ९।९७।११ )

१०२१ अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ ३ ॥ २० ( पी ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९७।१२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१०२२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।६।४ )

---

[ १०१८ ] ( महीव्रत ) यज्ञरूप महान् व्रत करनेवाले सोम ! ( त्वं ) तू ( द्यां च पृथिवीं च ) द्युलोक और पृथ्वीको ( अति जभ्रिषे ) उत्तम रीतिसे धारण करता है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( महित्वना द्रापिं ) तू अपने महत्वके योग्य कवचको ( प्रति अमुंचथाः ) धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१९ ] ( वाजी ) बलवान् ( गोन्योघा ) रस जिससे बहता है, ऐसा ( इन्दुः सोमः ) सोम ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रमें साहस उत्पन्न करके ( मदाय पवते ) आनन्द बढानेके लिए छाना जाता है, ( वृजनस्य राजा ) बलका राजा ( वरिवः कृण्वन् ) स्तोताओंको धन देता है, ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंका नाश करता है, और ( अ-रातिं परि बाधते ) शत्रुओंको कष्ट देता है ॥ १ ॥

[ १०२० ] ( अध ) उसके बाद ( अद्रिदुग्धः ) पत्थरोंसे रस निकाला गया सोम ( मध्वा धारया पृचानः ) मीठी धारासे देवोंको तृप्त करता हुआ ( रोम तिरः पवते ) भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है। ( इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः ) इन्द्रके साथ मित्रताकी इच्छा करते हुए ( देवः मत्सरः इन्दुः ) चमकनेवाला आनन्दवर्धक सोम ( देवस्य मदाय पवते ) इन्द्रके उत्साहको बढानेके लिए छाना जाता है ॥ २ ॥

[ १०२१ ] ( धर्माणि व्रतानि ) धार्मिक व्रतोंको ( ऋतुथा वसानः ) ऋतुओंके अनुकूल करते हुए ( पुनानः इन्दुः ) छाना जानेवाला सोम ( अभि पवते ) कलशमें छाना जाता है, ( देवः ) तेजस्वी सोम ( स्वेन रसेन देवान् पृंचन् ) अपने रससे देवोंको सन्तोष देता हुआ, ( दश क्षिपः ) दस अंगुलियोंके द्वारा ( सानो अव्ये अव्यत ) ऊंचे स्थानमें रखे गए बालोंकी छलनीमें पहुंचाया जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १०२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( द्युमन्तं अजरं ) तेजस्वी और जरारहित ऐसे ( ते ) तुझे हम ( आ इधीमहि ) अधिक प्रदीप्त करते हैं, ( यत् ह ते स्या पनीयसी समित् ) जब तेरी यह प्रशंसनीय समिधा ( द्यवि दीदयति ) द्युलोकमें प्रकाशने लगती है, तब हे अग्ने ! तू ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे ॥ १ ॥

*

१०२३ आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्य१ँ हूयत इष१ँ स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥ ( ऋ. ५।६।९ )

१०२४ ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इष१ँ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ २१ (रा) ॥
[ धा० २८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।६।९ )

१०२५ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९८।१ )

१०२६ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्व१ँ सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महा१ँ असि ॥ २ ॥
( ऋ. ८।९८।२ )

१०२७ विभ्राजं ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे । ॥ ३ ॥ २२ (व) ॥
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९८।३ )

१०२८ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रिय१ँ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४।१ )

---

[ १०२३ ] ( सुश्चन्द्र ) हे श्रेष्ठ आनन्द देनेवाले ! ( दस्म ) शत्रुनाशक ( विश्पते ) प्रजापालक और ( हव्यवाट् ) हवि पहुंचानेवाले ( ज्योतिषस्पते अग्ने ) प्रकाशमान् अग्ने ! ( शुक्रस्य ते ) प्रदीप्त हुए तेरे अन्दर ( ऋचा हविः आ हूयते ) मंत्र बोलकर हवि दी जाती है, ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ २ ॥

[ १०२४ ] हे ( शवसस्पते, विश्पते सुश्चन्द्र ) बलके स्वामी, प्रजापालक और अति तेजस्वी अग्ने ! ( उभे दर्वी ) दोनों ही बर्तन ( आसनि श्रीणीषे ) तेरे मुखके पास पहुंचाये जाते हैं, ( उत उ ) और ( उक्थेषु नः उत्पुपूर्याः ) स्तुति करनेके बाद हमें तू पूर्ण करता है, ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ १०२५ ] हे उद्गाताओ ! ( विप्राय बृहते ) ज्ञानी महान् ( ब्रह्मकृते विपश्चिते ) ज्ञान फैलानेवाले विद्वान् ( पनस्यवे इन्द्राय ) और प्रशंसाके योग्य इन्द्रके लिए ( बृहत् साम गायत ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ १ ॥

[ १०२६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं अभिभूः असि ) तू शत्रुओंको हरानेवाला है, ( त्वं सूर्यं अरोचयः ) तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू ( विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि ) सब कार्य करनेवाला, सब देवोंके समान महान् है ॥२॥

[ १०२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ज्योतिषा दिवः रोचनं ) अपने तेजसे सूर्यका प्रकाशक तथा ( स्वः विभ्राजन् ) अपना प्रकाश फैलानेवाला तू ( आगच्छ ) आ, ( देवाः ते सख्याय येमिरे ) सब देव तेरे साथ मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०२८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोम तैय्यार किया है, ( शविष्ठ धृष्णो ) हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( सूर्यः रश्मिभिः रजः न ) सूर्य किरणोंसे जैसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( त्वा इन्द्रियं आ पृणक्तु ) तुझे सोमपानसे महान् शक्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

१०२९ आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीन९ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।३ )

१०३० इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणा९ सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ३ ॥ २३ ( पा ) ॥
[ धा० १०। उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।८४।२ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ३ ॥

॥ इति तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

[ १०२९ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( रथं आ तिष्ठ ) रथपर चढ ( ते हरी ब्रह्मणा युक्ता ) तेरे दोनों ही घोडे हमने मंत्रोंसे जोड दिये है, ( ग्रावा ) सोमको कूटनेवाला पत्थर ( वग्नुना ) मनको आकर्षित करनेवाले शब्दोंसे ( ते मनः ) तेरा मन ( आर्वाचीनं सुकृणोतु ) हमारी ओर आकर्षित करे ॥ २ ॥

[ १०३० ] ( अ-प्रति-धृष्ट-शवसं इन्द्रं इत् ) न हराये जाने योग्य बलसे युक्त इन्द्रको ( ऋषीणां मानुषाणां ) ऋषि और ऋत्विजोंके द्वारा ( सुष्टुतीः ) की गई स्तुतियोंके पास ( यज्ञं च ) और यज्ञके पास ( हरी ) घोडे ( उप वहतः ) पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

# षष्ठ अध्याय

इस छठे अध्यायमें इन्द्र देवताके वर्णन इस प्रकार हैं—

## इन्द्र

१ हे स्पर्धमान इन्द्र ! यत् त्वं दस्युहा भवः, उभे रोदसी अनु मदेताम् [ ९८९ ]- हे स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! जब तू शत्रुका नाश करनेवाला होता है, तब दोनों ही द्युलोक और भूलोक आनन्दसे तेरे अनुकूल होते हैं।

२ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं धीयते [ १००४ ]- जब युद्ध शुरु होते हैं, तब विजयी वीरको धन मिलते हैं।

३ वृत्रहा इन्द्रः मदाय शवसे नृभिः वावृधे [ १००२ ]- वृत्रके नाश करनेवाले इन्द्रके आनन्द व बलको बढानेके लिए लोग उसका यश बढाते हैं।

४ तं महत्सु आजिषु अर्भे ऊतिं हवामहे [१००२]- उस इन्द्रको बडे तथा छोटे युद्धोंमें अपनी रक्षाके लिए हम बुलाते हैं।

५ सः वाजेषु नः प्राविषत् [ १००२ ]- वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है।

६ हे इन्द्र ! त्वं अभिभूः असि [ [illegible] ]- हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको जीतनेवाला है।

७ हे शविष्ठ धृष्णो ! आगहि [ १०२८ ]- हे बलवान् और विजयी इन्द्र ! हमारी सहायताके लिए आ।

८ अ-प्रति-धृष्टशवसं इन्द्रं ऋषीणां मानुषाणां सुष्टुतिः यज्ञं च हरी उपवहतः [ १०३० ]- जिसके धैर्य और साहस कभी कम नहीं होते, उस इन्द्रको ऋषि और

मनुष्योंकी स्तुतियोंके पास अर्थात् यज्ञके पास उसके घोडे ले जाते हैं।

९ हे इन्द्र ! सोमं पीत्वा ओजसा सह उत्तिष्ठन् शिप्रे अवेपयः [ ९८८ ]- हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने सामर्थ्यसे उठ और अपनी ठोढीको कंपा, अपनी शूरवीरता दिखा।

१० हे वीर ! सेन्यः असि, दभ्रस्य चित् वृधः [ १००३ ] हे वीर इन्द्र ! तू सेनाके साथ रहता है, छोटोंको तू बडा बनाता है।

११ प्रचेतसः ताः गावः अस्य महः नमसा वर्धयन्ति [ १००७ ]- बुद्धियुक्त वे गायें इस इन्द्रके सामर्थ्यको अपने दूधसे बढाती हैं।

१२ पूर्वचित्तये अस्य पुरूणि व्रतानि सश्चिरे [ १००७ ]- पहलेके पराक्रमोंकी याद दिलानेके लिए इसके बहुतसे साहसिक कार्योंका वर्णन किया जाता है।

१३ वृत्रहन् रथं आतिष्ठ [१०२९]- हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! अपने रथपर बैठ।

१४ मदच्युता हरी युंक्ष्व, कं हनः, कं वसौ दधः, अस्मान् वसौ दधः [ १००४ ]- मदोन्मत्त घोडोंको रथमें जोड, और किसको मारना है और किसको धन देना है. इसका विचार कर। हमें धन दे।

१५ सुन्वते यजमानाय शिक्षसि, ते भूरिवसु [ १००३ ]- सोमयज्ञ करनेवाले यजमानको तू धन देता है, तेरे पास बहुतसा धन है।

१६ अस्य ताः पृशनायुवः पृश्नयः सोमं श्रीणन्ति [ १००६ ]- उस इन्द्रकी उत्तम गायें अपना दूध सोमरसमें मिलाती हैं।

१७ वाजी सोमः इन्द्रे सहः इन्वन् मदाय पवते [ १०१९ ]- बलवान् सोम इन्द्रका सामर्थ्य बढाकर उसका आनन्द बढाता है।

१८ हे इन्द्र ! त्वं सूर्यः अरोचयः, त्वं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि [ १०२६ ]- हे इन्द्र ! तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू सब कर्म करनेवाला है, तू सबोंका देव है और तू महान् है।

१९ विप्रः बृहत् ब्रह्मकृत् विपश्चित् [ १०२५ ]- इन्द्र ज्ञानी, महान्, ज्ञानका प्रसार करनेवाला और विद्वान् है।

२० इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः देवः इन्दुः [ १०२० ] -इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला यह तेजस्वी सोमरस है।

इस प्रकार इन्द्रके गुणोंका वर्णन इस अध्यायमें आया है। अब अग्निके गुण देखें—

## अग्नि

इस अध्यायमें अग्निके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अजरः [ ९८३ ]- जरारहित, सदा तरुण, वृद्धावस्था जिसके पास आती नहीं।

२ मेधाकारः [ ९८४ ]- बुद्धिके कार्य करनेवाला, बुद्धि बढानेवाला।

३ विदथस्य प्रसाधनः [ ९८४ ]- युद्धका और यज्ञका साधन।

४ होता [ ९८४ ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला, हवन करनेवाला।

५ परिभूतरः [ ९८४ ]- शत्रुओंको हरानेवाला।

६ मतिः [ ९८४ ]- बुद्धिमान्।

७ द्युमान् [ १०२२ ]- तेजस्वी।

८ सुश्चन्द्रः [ १०२३ ]- उत्तम तेजस्वी।

९ दस्मः [ १०२३ ]- दर्शनीय, सुन्दर।

१० विश्पतिः [ १०२३ ]- प्रजापालक।

११ ज्योतिषस्पतिः [ १०२३ ]- तेजस्वियोंका पालक।

१२ हव्यवाट् [ १०२३ ]- हवन किए गए पदार्थोंको ठीक स्थानपर पहुंचानेवाला।

१३ शुक्रः [ १०२३ ]- शुद्ध, वीर्यवान्।

१४ शवसस्पतिः [ १०२४ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान्।

१५ धक्षन् [९८३]-जलानेवाला, शत्रुओंको जलानेवाला

१६ हविः आहूयते [ १०२३ ]- अग्निमें हविर्द्रव्योंका हवन होता है।

१७ उभे दर्वी आसनि श्रीणीषे [ १०२४ ]- दोनों ही जुहू आदि बर्तनोंको अपने मुखके पास ले जाते हो, आहुतिका हवन करनेके लिए पात्रको अग्निके पास पहुंचाते हैं।

१८ स्तोतृभ्यः इषं आभर [ १०२२ ]- स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे।

१९ त्वां इत् अर्भस्य हविषः, त्वां इत् महः, समानं वृणुते त्वत् अन्यं न [ ९८४ ]- तुझे ही थोडीसी और बहुतसी हवि देनेके लिए बुलाया जाता है, तेरे सिवाय और किसी दूसरेको नहीं बुलाया जाता।

२० हे अग्ने ! यत् ओषधिः वनानि च अभिसृष्टः, स्वयं आसन्, अन्नं परिचिनुषे, तव श्रियः, वर्षस्य

विद्युतः इव, चिकिते [ ९८२ ]- जब तू ओषधी, वनस्पति और वनोंको जलानेकी इच्छा करता है, तब तेरे मुखमें अन्न पडता है और उस समय तेरी किरणें वर्षामें बिजलीके समान चमकने लगती हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें अग्निका वर्णन है।

## इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निकी मिलीजुली स्तुति भी इस अध्यायमें है—

१ इन्द्राग्नी शंभुवा [ ९९१ ]- इन्द्र और अग्नि ये कल्याण करनेवाले हैं।

२ सोमपीतये आगच्छतं [ ९९३ ]- सोमपान करनेके लिए आओ।

३ नरा इन्द्राग्नी ! वां पुरुस्पृहा दाशुषे याः नियुतः सन्ति, ताभिः आगतं [ ९९२ ]- हे नेतृत्व करनेवाले इन्द्र और अग्निदेवो ! तुम्हारे बहुतों द्वारा प्रशंसाके योग्य, तथा दानशीलोंकी सहायता करनेवाले जो घोडे है, उन्हें जोडकर तुम आओ।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निके मिलेजुले वर्णन हैं। ये देव सबका कल्याण करते रहते हैं। सबका हित करना ही इनका स्वभाव है, इस कारण ये हमेशा नेतृत्व करते हैं। ये उदार चित्तवाले मनुष्योंकी सहायता करते हैं। इसलिए सब यज्ञ करनेवाले इनको यज्ञमें बुलाते हैं।

## मित्र और वरुण

मित्र और वरुणकी भी संयुक्त स्तुति इस अध्यायमें आई है। उनके वर्णन यहां इस प्रकार है —

१ हे मित्रा ! नः पायुभिः पातं [ ९८७ ]- हे मित्र और वरुणो ! तुम हमारे मित्र हो, इसलिए संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करो।

२ सुत्रात्रा त्रायेथां [ ९८७ ]- उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारी अच्छी तरह रक्षा करो।

३ तनूभिः दस्यून् साह्याम [९८७]- अपने शारीरिक सामर्थ्यसे हम शत्रुओंको हरावें।

४ अद्रुहाणा वां सम्यक् मित्रा स्याम [ ९८६ ]- तुम दोनों आपसमें द्रोह न करनेवाले हो, अतः हम तुम्हारे मित्र होकर रहें।

५ इषं च धाम अश्यामः [ ९८६ ]- अन्न और घर तुम्हारे द्वारा हमें प्राप्त हों।

६ वां पुरुरुणा अत्र नूनं अस्ति [ ९८५ ]- तुम दोनोंके बहुतसे संरक्षण हमें प्राप्त हों।

७ वां सुमतिं वंसि [ ९८५ ]- तुम्हारी उत्तम और अनुकूल बुद्धि हमें प्राप्त हो।

इस प्रकार मित्र और वरुण इन दोनोंकी सहायताका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

## सोमके गुण

अब इस अध्यायमे आये हुए सोमके गुणोंको देखिए—

१ इन्दुः [ ९५५ ]- तेजस्वी, चन्द्रके समान प्रकाशमान्।

२ गोवित् [ ९५५ ]- गायोंसे युक्त, गायका दूध जिसमें मिलाया जाता है।

३ वसुवित् [ ९५५ ] धनसे युक्त, निवासक शक्तिसे युक्त।

४ हिरण्यवित् [ ९५५ ]- सोनेसे युक्त।

५ रेतोधाः [९५५]- वीर्य बढानेवाला, वीर्यको धारण करनेवाला।

६ सु-वीरः [ ९५५ ]- उत्तम वीर।

७ विश्व-वित् [ ९५५ ]- सब जाननेवाला।

८ वृषभः [ ९५६ ]- बलवान्।

९ पवमानः [ ९५६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१० विश्वतः नृचक्षाः [९५६]- सब तरफसे मनुष्योंको देखनेवाला।

११ ईशानः [ ९५७ ]- स्वामी, शासक।

१२ नृमादनः [ ९६५ ]-मनुष्योंका आनन्द बढानेवाला।

१३ चर्षणी-धृतिः [ ९६५ ]- मनुष्योंको धारण करनेवाला।

१४ सस्निः [ ९६५ ]- शुद्ध, जीतनेवाला।

१५ अनुमाद्यः [ ९६५ ]-प्रशंसनीय।

१६ अद्भुतः [ ९६६ ]- अद्भुत, विलक्षण।

१७ पावकः [ ९६६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१८ वृत्रहन्तमः [ ९६६ ]- शत्रुको मारनेवाला।

१९ शुचिः [ ९६६ ]- शुद्ध।

२० मधुमान् [ ९६७ ]- मीठा, मधुर।

२१ देवावीः [ ९६७ ]- देवोंको मिलने योग्य।

२२ अघः-शंस-हा [ ९६७ ]- पापियोंका नाश करनेवाला।

२३ कविः [ ९६७ ]- ज्ञानी, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी।

२४ साह्वान् [ ९६७ ]- शत्रुको हरानेवाला।

२५ क्रीळुः [ ९७४ ]- खेलनेमें कुशल।

२६ मंहयुः [ ९७४ ]- महत्व युक्त, दान देनेवाला।

२७ सुवीर्यं दधत् [ ९७४ ]- उत्तम वीर्यसे युक्त, उत्तम शूर।

२८ स्वादिष्ठः [ ९८१ ]- स्वादयुक्त, रुचिकर।

२९ वरिवोवित् [ ९८१ ]- धनयुक्त, दान देनेवाला।

३० द्युमत्तमः [ ९९४ ]- अति तेजस्वी।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें आए हैं। सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढता है। इसलिए ये गुण मानों सोमके ही हैं ऐसा कहा है।

## स्वर्गमें सोम

सोमकी बेल स्वर्गमें उगती है। स्वर्ग हिमालयकी ऊंची चोटी पर है। वहां पर यह बेल उगती है। इसलिए सोम स्वर्गसे लाया जाता है, ऐसा वर्णन वेदोंमें है।

१ हे सोम ! दिवस्परि विश्वा रूपा अभ्यर्षसि [ ९५९ ]- हे सोम ! तू स्वर्ग पर अनेक रूप धारण करके रहता है।

२ गिरिष्ठाः अंशुः मदाय असावि [ १००८ ]- पर्वत पर उगनेवाले सोमके रसको आनन्दके लिए निकालते हैं।

३ श्येनः न योनिं आसदत् [१००८]- बाज पक्षीके समान ( पर्वतसे आकर ) यज्ञमें बैठता है।

## सोमका पत्थरोंसे कूटा जाना

सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है—

१ अद्रिभिः सुतः पवित्रं परि दीयसे, इन्द्रस्य धाम्ने अरं [ ९६४ ]- पत्थरोंसे कूटकर निकाले गए रसको छलनीसे छानते हैं, और तब बादमें इन्द्रको देने योग्य होता है।

२ सोमः इन्द्रः च। यूयं स्वपती स्थ। गोपती ईशाना धियं पिप्यतं [ १००१ ]- सोम और इन्द्र ! तुम निश्चयसे सबके स्वामी हो, तुम दोनों गायके पालन करनेवाले हो, तुम सब पर अधिकार करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धि पुष्ट करो।

सोमरस पीनेके बाद बुद्धिमें महान् उत्साह उत्पन्न होता है, और महान् महान् कार्य करनेका सामर्थ्य अन्दर पैदा होता है।

## सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है—

१ अप्सु दुष्टरः गभस्त्योः मृज्यमानः चमूषु सीदति [९७३]- पानीमें मिलाया गया सोम हाथोंसे साफ किये जानेके बाद बर्तनमें गिरता है।

२ अप्सा सोमाः इन्द्राय वायवे अर्षन्तु [ ९९५ ] - पानीमें मिलाये जानेके बाद सोमरस इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है।

३ ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ ९५७ ]- तेरे वे रस मीठे जल और दूधमें मिलाये जाते हैं।

४ मधोः रसं सधमादे अमृताय अशूशुभन् [१०१०] - मीठे सोमके रस यज्ञमें पानीके साथ मिलकर शोभा पाते हैं।

इस प्रकार पानीमें सोमरस मिलाये जानेके बाद वे छाने जाते हैं।

## सोमरसका छाना जाना

१ देववीतये अव्या वारेभिः अव्यत [९६८]- देवोंको देनेके लिए भेडके बालोंकी बनी हुई छलनीसे सोमरस छाना जाता है।

२ हे सोम ! सु-वीर्यं दधत् पवित्रं गच्छसि [९७४]- हे सोम ! उत्तम सामर्थ्य धारण करके तू छननेके लिए छलनीके पास जाता है।

३ ते मधुश्चुतः धाराः असृग्रन्, ताभिः पवित्रं आ सदः [ ९७९ ]- तेरी मीठी धारा निकलने लगी, उन धाराओंसे युक्त होकर तू छलनी पर जाकर बैठ गया है।

४ सः अव्यया वाराणि तिरः इन्द्राय पातवे अर्ष [ ९८० ]- वह तू भेडके बालोंकी बनी हुई छलनीसे इन्द्रके पीनेके लिए छनता जा।

५ सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः पवित्रे धारया पवस्व [ १०१६ ]- रस निकाले जानेके बाद देवोंको देनेके लिए अधिक मीठा होकर धार बनाकर छलनीसे छनता जा।

६ अ-द्रुहः धीतयः हरिं त्वां पवित्रे रिहन्ति [ १०१७ ]- द्रोह न करनेवाली अंगुलियां हरे रंगके तुझ सोमको छलनी पर रखकर दबाती हैं।

७ अद्रिदुग्धः रोम तिरः पवते [१०२०]- पत्थरोंसे रस निकालनेके बाद वे सोमरस बालोंकी छलनीसे छाने जाते हैं।

८ देवः स्वेन रसेन देवान् पृञ्चन् सा नो अव्ये अव्यत [१०२१]- दिव्य सोम अपने रससे देवोंको सन्तोष देते हुए ऊंचे स्थान पर रखे हुए भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

इसप्रकार सोमरसको निकालकर उसे पानीमें मिलाकर भेडकी बालोंकी छलनीसे वह छाना जाता है, बादमें वह गायके दूधमें मिलाया जाता है।

## सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

१ देववातं शुभ्रं अन्धः नृभिः सुतं, अप्सु धौतं, गावः पयोभिः स्वदयन्ति [१००९]- देवोंको देनेके लिए स्वच्छ सुन्दर अन्न ऋत्विजों द्वारा तैय्यार किए गए हैं, इस प्रकार तैय्यार किए गए तथा पानीमें मिलाये गए उन सोमरसोंको गायें अपने दूधसे स्वादिष्ट बनाती हैं।

२ श्रीणानः अप्सु वृज्यते [ ९६१ ]- सोमरस गायके दूधमें और पानीमें मिलाया जाता है।

३ सोमः अनूपे गोभिः अक्षाः [ ९९८ ]- सोमरस कलशमें गायके दूधके साथ टपकता है।

४ सोमः दुग्धाभिः अक्षाः [ ९९८ ]- सोमरस दूधके मिलाये जाने पर टपकता है।

इसप्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलानेसे वह स्वादिष्ट बनता है, ऐसे वर्णन अनेक मंत्रोंमें आए हैं।

## सोमका धन देना

१ हे सोम ! नः विश्वा सौभगा, पुष्टं यवं परिस्रव [ ९७५ ]- हे सोम ! हमें सब सौभाग्य और पुष्टिकारक अन्न दे।

२ हे सोम ! चित्रं उक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसुः नः आ भर [ ९९९ ]- हे सोम ! विलक्षण, प्रशंसनीय, दिव्य और पार्थिव धन हमें भरपूर दे।

## दीर्घजीवन प्राप्त होना

१ हे सोम ! भुवनेषु जीवसे स्याम [ ९५६ ]- हे सोम ! इस भुवनमें हम दीर्घजीवन प्राप्त कर सकें, ऐसा कर।

## सोमका अन्न देना

१ सः गोमन्तं सहस्रिणं वाजं आ इन्वति [९६९]- वह सोम हमें गायोंसे युक्त अनेक प्रकारके अन्न देता है।

२ नः विश्वानि श्रवः विदः [ ९७० ]- हमें सब प्रकारके अन्न दे।

३ हे सोम ! स्तोतृभ्यः बृहद् यशः ध्रुवं रयिं इषं आ भर [९७१]- हे सोम स्तुति करनेवालोंको महान् यश, स्थिर धन और अन्न भरपूर दे।

४ अस्माकं तोकाय इषं दधत् [ ९९६ ]- हमारे पुत्रपौत्रोंको अन्न दे।

५ हे वृषस्पते देव ! द्युम्नं बृहत् यशः देवयुं अभि दिदीहि [ १०११ ]- हे धनपते सोमदेव ! तेजसे युक्त विपुल अन्न, जो देवोंको दिया जाता है, हमें भी दे।

इसप्रकार सोम भरपूर अन्न देता है।

## सोमका शत्रुओंको दूर करना

१ साह्वान् विश्वाः स्पृधः [९६८]- सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हरानेवाला सोम है।

२ सहस्रजित्, यः जिनाति, न जीयते, शत्रुं अभीत्य हन्ति [९७८]- हजारों शत्रुओंको सोम जीतता है, पर कभी स्वयं पराजित नहीं होता। शत्रु पर आक्रमण करके उन्हें जानसे मारता है।

३ वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन्, रक्षः हन्ति, अरातिं परि बाधते [ १०१९ ]- यह सोम बलका राजा है, वह उपासकोंको धन देता है, राक्षसोंको मारता है, और शत्रुओंको दूर करता है।

इसप्रकार इस अध्यायमें इन देवोंके गुणोंका वर्णन है। प्रत्येक व्यक्ति इन गुणोंसे युक्त हो, यह आवश्यक है।

---

# सुभाषित

१ गोवित् वसुवित् हिरण्यवित् रेतोधाः भुवनेषु अर्पितः [ ९५५ ]- गाय, धन, सोना और पराक्रमको अपने पास रखनेवाला तू भुवनोंका कल्याण करनेके लिए समर्पित हुआ है।

२ हे सोम ! सुवीरः विश्ववित् असि [ ९५५ ]- हे सोम ! तू उत्तम वीर और सर्वज्ञ है।

३ हे वृषभः ! विश्वतः नृचक्षाः असि [ ९५६ ]- हे बलवर्धक सोम ! तू सब प्रकारसे मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला है।

४ ताः विधावसि [ ९५६ ]- उन प्रजाओंके पास तू जाता है।

५ वसुमत् हिरण्यवत् भुवनेषु जीवसे स्याम [ ९५६ ]– धन और सोनेसे युक्त होकर भुवनोंमें दीर्घजीवन प्राप्त करनेवाले हम होवें।

६ ईशानः हरितः सुपर्ण्यः युञ्जानः इमा भुवनानि ईयसे [ ९५७ ]– तू स्वामी अपने रथमें उत्तम चलनेवाले घोडे जोडकर इन भुवनोंमें फिरता है।

७ ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ ९५७ ]- वे तेरे लिए घी और दूध देवें।

८ कृष्टयः ते व्रते तिष्ठन्तु [ ९५७ ]– मनुष्य तेरे नियममें रहें।

९ केतुं कृण्वन् दिवः परि अभ्यर्षसि [ ९५९ ]– प्रकाश करते हुए तू द्युलोक पर जाता है।

१० देवः सूर्यः न जज्ञानः क्रन्दन् वाचं इष्यसि [ ९६० ]– सूर्यदेवके समान प्रकट होकर शब्द करते हुए स्तुतिको प्राप्त होता है।

११ नृमादनः चर्षणी–धृतिः अनुमाद्यः [ ९६५ ]– मनुष्योंको आनन्द देनेवाला और मनुष्योंको धारण करनेवाला प्रशंसाके योग्य है।

१२ अद्भुतः शुचिः पावकः वृत्रहन्तमः अनुमाद्यः [ ९६६ ]– अद्भुत, शुद्ध और पवित्र करनेवाला तथा शत्रुका नाश करनेवाला वीर प्रशंसाके योग्य होता है।

१३ शुचिः पावकः देवावीः अघशंसहा [ ९६७ ]– निर्दोष, पवित्र और देवोंको प्राप्त करनेवाला वीर पापी दुष्टोंका नाश करता है।

१४ कविः देववीतये विश्वाः स्पृधः साह्वान् [ ९६८ ] –ज्ञानी देवत्व प्राप्त करनेके लिए सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हराता है।

१५ सः पवमानः जरितृभ्यः गोमन्तं सहस्रिणं वाजं आ इन्वति [ ९६९ ]– वह सोम स्तोताओंको गायोंसे उत्पन्न होनेवाले हजारों प्रकारके धन देता है।

१६ सः नः चेतसा विश्वानि श्रवः विदः [ ९७० ] –वह तू हमें बुद्धिपूर्वक अनेक प्रकारके धन व अन्न दे।

१७ स्तोतृभ्यः बृहद् यशः ध्रुवं रयिं अभ्यर्ष, इषं आभर [ ९७१ ]– स्तुति करनेवालोंको महान् यश, स्थिर धन और भरपूर अन्न दे।

१८ सुव्रतः पुरातनः राजा इव गिरः आविवेशिथ [ ९७२ ]– उत्तम नियमोंके चलानेवाले राजाके समान हमारी स्तुति सुन।

१९ अंहयुः स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् [ ९७४ ]– दान देनेवाला तू स्तुति करनेवालेको उत्तम बल दे।

२० नः पुष्टं यवं अन्धसा विश्वा सौभगा च परि-स्रव [ ९७५ ]- हमें पोषण करनेवाला अन्न और सब उत्तम भाग्य दे।

२१ नः गोवित् अश्ववित् अन्धसा पवस्व [ ९७७ ] –हमें गाय घोडे और अन्न दे।

२२ हे सहस्रजित् ! यः जिनाति, न जीयते, शत्रुं अभीत्य हन्ति [ ९७८ ]- हे हजारों शत्रुओंको जीतने-वाले वीर ! जो जीतता है, पर स्वयं जीता नहीं जाता तथा जो शत्रुओंको घेरकर मारता है, वह वीर है।

२३ वरिवोवित् घृतं पयः परिस्रव [ ९८१ ]- तू धन देनेवाला घी और दूध हमें दे।

२४ अजरस्य धक्षतः ते शर्धांसि, रथ्यः यथा, पृथक् आयतन्ते [ ९८३ ]- जरारहित अर्थात् तरुण और शत्रुओंको जलानेवाले तेरे सामर्थ्य रथीवीरके समान पृथक् पृथक् बढते हुए दिखाई देते हैं।

२५ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनं परिभूतरं मतिं अग्निं [ ९८४ ]- बुद्धिको बढानेवाला, यज्ञका साधन, शत्रुको हरानेवाला, बुद्धिमान्, अग्निके समान तेजस्वी ऐसा जो होता है उसकी प्रशंसा की जाती है।

२६ वां पुरूरुणा अवः नूनं अस्ति [ ९८५ ]– तुमसे अनेक प्रकारके संरक्षण प्राप्त होते हैं।

२७ वां सुमतिं वंसि [ ९८५ ]- तुम्हारी उत्तम बुद्धि हमारे अनुकूल हो।

२८ अ–द्रुह्वाणा सम्यक् मित्रा वयं स्याम, इषं धाम च अश्याम [ ९८६ ]– द्रोह न करनेवाले तुम्हारे हम उत्तम मित्र हों तथा अन्न और घरको प्राप्त करें।

२९ हे मित्रा ! पायुभिः नः पातं, सुत्रामा त्रायेथां, तनूभिः दस्यून् साह्याम [ ९८७ ]- हे मित्रो ! तुम संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करो, उत्तम रक्षण करने-वाले तुम हमारा पालन करो, उसीप्रकार अपने शारीरिक सामर्थ्योंसे शत्रुका पराभव हम कर सकें, ऐसा करो।

३० हे इन्द्र ! सोमं पीत्वा, ओजसा सह उत्तिष्ठन् [ ९८८ ]- हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने सामर्थ्यसे उठ खडा हो।

३१ हे स्पर्धमान इन्द्र ! यत् दस्युहा भवः, त्वा

उभे रोदसी अनुमदेताम् [ ९८९ ]- हे स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! जब तू दुष्टोंको मारनेवाला होता है, तब दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक आनन्दसे तेरे अनुकूल होते हैं ।

३२ अष्टापदीं नव-स्रक्तिं ऋतावृधं तन्वं वाचं अहं परिममे [ ९९० ]- आठ पद युक्त, नयी कल्पनाओंसे युक्त तथा सत्यको बढानेवाली छोटी छोटी वाणियोंको मैं बोलता हूं ।

३३ इन्द्राग्नी शं भुवा [ ९९१ ]- इन्द्र और अग्नि कल्याण करनेवाले हैं ।

३४ अस्माकं तोकाय इषं दधत्, सहस्रिणं अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व [ ९९६ ]- हमारे लडकोंके लिए अन्न दे और हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे हमें दे ।

३५ यत् चित्रं उक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसुः पुनानः आ भर [ ९९९ ]- जो विलक्षण, प्रशंसनीय, दिव्य और पार्थिव धन है, उन धनोंको शुद्ध होकर हमें दे ।

३६ आयूंषि पुनानः स्तनयन्, हरिः सन् अधि बर्हिषि, योनिं आ सदः [ १००० ]- अपना जीवन पवित्र करते हुए, बलवान् होकर भाषण करते हुए, लोगोंके दुःख दूर करते हुए अपने स्थान पर आकर आसन पर बैठ ।

३७ युवं सत्पती ईशाना गोपती धियं पिप्यतं [१००१]- उत्तम स्वामी, ऐश्वर्यके अधिकारी, गायके पालन करनेवाले तुम बुद्धियोंको पुष्ट करो ।

३८ तं महत्सु आजिषु, अर्भे ऊतिं हवामहे, सः वाजेषु नः प्राविशत् [ १००२ ]- उसे महान् संग्रामोंमें उसी प्रकार छोटे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं । वह युद्धमें हमारा संरक्षण करे ।

३९ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरिः परादविः असि [ १००३ ]- हे वीर ! तू सेनासे युक्त है, शत्रुके बहुतसे धनको हरण करनेवाला है ।

४० दभ्रस्य चित् वृधः [१००३]- छोटोंको तू बडा करनेवाला है ।

४१ सुन्वते यजमानाय शिक्षसि [ १००३ ]- सोम यज्ञ करनेवालेको तू धन देता है ।

४२ ते भूरि वसु [१००३]- तेरे पास बहुत धन है ।

४३ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धना धीयते [ १००४ ]- जब युद्ध होते हैं तब विजयी वीरोंको धन मिलता है ।

४४ मदच्युता हरी युंक्ष्व [१००४]- मद चुआनेवाले घोडे रथमें जोड ।

*

४५ कं हनः, कं वसौ दधः [ १००४ ]- किसको मारना है और किसको धनोंमें स्थापित करना है, इसका विचार कर ।

४६ अस्मान् वसौ दधः [ १००४ ]- हमें धनमें स्थापित कर ।

४७ अस्य पुरूणि व्रतानि सश्चिरे [ १००७ ]- इसके बहुतसे काम स्मरणमें आते हैं ।

४८ हे इषस्पते देव ! द्युम्नं बृहद् यशः देवयुं अभि दिदीहि [ १०११ ]- हे अन्नपते देव ! तेजस्वी महान् यश अथवा अन्न, जिसकी देवगण इच्छा करते हैं, हमें दे ।

४९ वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन्, रक्षः हन्ति, अरातिं परि बाधते [ १०१८ ]- बलका राजा धन देता है, राक्षसोंको मारता है और शत्रुओंको कष्ट देता है ।

५० द्युमन्तं अजरं आ इधीमहि [१०२२]- तेजस्वी और जरारहित ऐसे तुझे हम अधिक प्रदीप्त करते हैं ।

५१ स्तोतृभ्यः इषं आ भर [१०२२]- स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ।

५२ सुश्चन्द्र, दस्म, विश्पते, ज्योतिषस्पते, हव्यवाट् अग्ने ! इषं आ भर [१०२३]- उत्तम आनन्द देनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, प्रजापालक, तेजस्वी, हविको यथास्थान पहुंचानेवाले अग्ने ! हमें भरपूर अन्न दे ।

५३ त्वं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि [१०२३] - तू सब कर्मोंको करनेवाला, सबका देव और महान् है ।

५४ ज्योतिषः रोचनं स्वः विभ्राजन् आगच्छ [ १९२७ ]- तू तेजस्वी सूर्यका प्रकाशक और द्युलोकको प्रकाशित करनेवाला है, ऐसा तू यहां आ ।

५५ शविष्ठ धृष्णोः ! आ गहि [१०२८]- हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले वीर ! तू यहां आ ।

५६ त्वं अभिभूः असि [१०२९]- तू शत्रुको हरानेवाला है ।

५७ अप्रतिधृष्ट-शवसं इन्द्रं ऋषीणां मानुषाणां यज्ञं हरी उप वहतः [ १०३० ]- अपराजित वीर इन्द्रको ऋषि और मनुष्योंके यज्ञमें घोडे रथमें बैठाकर लाते हैं ।

---

## उपमा

इस अध्यायमें जो उपमायें हैं, उन्हें अब देखिए—

१ सूर्यस्य रश्मयः इव [ ९५८ ]- सूर्यकी किरणोंके समान ( ते सर्गाः प्रासृक्षत ) सोमकी धारायें फैलती हैं ।

२ देवः सूर्यः न [ ९६० ]– दिव्य सूर्यके समान तू सोम ( विधर्मणि जज्ञानः ) यज्ञमें प्रकट होता है।

३ आपः न [९६२]– पानीके प्रवाहके समान ( इन्दवः अभि अधन्विषुः ) सोमरस छलनीसे छनते हैं।

४ सुव्रतः पुरातनः राजा इव [ ९६२ ]– उत्तम नियमोंके पालन करनेवाले पुराने राजाके समान ( सोम ! गिरः आविवेशिथ ) हे सोम ! तू स्तुतिको स्वीकार कर।

५ मखः न [ ९७४ ]– यज्ञके समान ( मंहयुः ) दान देनेकी इच्छा करता है।

६ वर्षस्य विद्युतः इव [९८२]– वर्षाकालमें बिजलीके समान ( तव श्रियः चिकित्रे ) तेरी किरणें चमकती हैं।

७ उषसां ऊतयः इव [९८२]– उषःकालकी किरणोंके समान तेरी किरणें चमकती हैं।

८ रथ्यः यथा [ ९८३ ]– रथी वीरके समान ( ते शर्धांसि पृथक् अयतन्ते ) तेरे सामर्थ्य बढते हैं।

९ अश्वया इव [ ९९७ ]– घोडीके समान ( हरिता धारया याति ) हरे रंगकी धारासे सोम जाता है।

१० समुद्रं न [९९८]– समुद्रमें जैसे जलप्रवाह जाकर मिल जाते हैं, उसीप्रकार ( संवरणानि अग्मन् ) सोमरसरूपी अन्नप्रवाह कलशमें जाते हैं।

११ श्येनः न [ १००८ ]– बाज जिसप्रकार अपने घोंसलेमें आता है, उसीप्रकार यह सोम ( योनिं आसदत् ) अपने कलशमें आता है।

१२ अश्वं न [ १०१० ]– जैसे संग्राममें जानेवाले घोडेको सजाते हैं, उसी प्रकार ( मधोः रसं सधमादे अशूशुभन् ) मीठे सोमरसको यज्ञमें सुशोभित करते हैं, दूध आदि मिलाकर अच्छा बनाते हैं।

१३ वह्निः न [ १०१२ ]– सब प्रजाओंका पालक जैसे तेजस्वी राजा होता है, उसीप्रकार हे सोम तू ! ( विश्पतिः आ वच्यस्व ) प्रजाका पालक बनकर कलशमें जाता है।

१४ गावः जातं वत्सं न [१०१७]– गाय जिस प्रकार नये उत्पन्न हुए बछडेको चाटती है, उसीप्रकार ( धीतयः हरिं रिहन्ति ) अंगुलियां हरे रंगके सोमको दबाती हैं, दबाकर रस निकालती हैं।

१५ सूर्यः रश्मिभिः रजः न [ १०२८ ]– सूर्य जिसप्रकार किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( त्वा इन्द्रियं आ पृणक्तु ) तुझे सोमपानसे महती इन्द्रियशक्ति भर देती है।

इसप्रकार इस अध्यायमें उपमायें हैं।

## षष्ठाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ९५५ | ९।८६।३९ | [ अकृष्टा माषादयः ] त्रयः ऋषयः | पवमानः सोमः | जगती |
| ९५६ | ९।८६।३८ | [ अकृष्टा माषादयः ] त्रयः ऋषयः | ,, | ,, |
| ९५७ | ९।८६।३७ | [ अकृष्टा माषादयः ] त्रयः ऋषयः | ,, | ,, |
| ९५८ | ९।६४।७ | कश्यपो मारीचः | ,, | गायत्री |
| ९५९ | ९।६४।८ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ९६० | ९।६४।९ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| ९६१ | ९।२४।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९६२ | ९।२४।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९६३ | ९।२४।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९६४ | ९।२४।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ९६५ | ९।२४।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ९६६ | ९।२४।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९६७ | ९।२४।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| ९६८ | ९।२०।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९६९ | ९।२०।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७० | ९।२०।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७१ | ९।२०।४ | असितः कश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७२ | ९।२०।५ | असितः कश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७३ | ९।२०।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७४ | ९।२०।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ९७५ | ९।५५।८ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ९७६ | ९।५५।२ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ९७७ | ९।५५।३ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ९७८ | ९।५५।४ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| ९७९ | ९।६२।७ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| ९८० | ९।६२।८ | जमदग्निर्भा ीवः | ,, | ,, |
| ९८१ | ९।६२।९ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| ९८२ | १०।९१।५ | अरुणो वैतहव्यः | अग्निः | जगती |
| ९८३ | १०।९१।७ | अरुणो वैतहव्यः | ,, | ,, |
| ९८४ | १०।९१।८ | अरुणो वैतहव्यः | ,, | ,, |
| ९८५ | ५।७०।१ | उरुचक्रिरात्रेयः | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ९८६ | ५।७०।२ | उरुचक्रिरात्रेयः | ,, | ,, |
| ९८७ | ५।७०।३ | उरुचक्रिरात्रेयः | ,, | ,, |
| ९८८ | ८।७६।१० | कुरुसुतिः काण्वः | इन्द्र | ,, |
| ९८९ | ८।७६।११ | कुरुसुतिः काण्वः | ,, | ,, |
| ९९० | ८।७६।१२ | कुरुसुतिः काण्वः | ,, | ,, |
| ९९१ | ६।६०।७ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यः | इन्द्राग्नी | ,, |
| ९९२ | ६।६०।८ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| ९९३ | ६।६०।९ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ९९४ | ९।६५।१९ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | पवमानः सोम | ,, |
| ९९५ | ९।६५।२० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ९९६ | ९।६५।२१ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ९९७ | ९।१०७।८ | सप्तर्षयः | ,, | बृहती |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ९९८ | ९।१०७।१९ | सप्तर्षयः | पवमानः सोमः | बृहती |
| ९९९ | ९।११।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | गायत्री |
| १००० | ९।११।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १००१ | ९।११।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| १००२ | १।८१।१ | गोतमो राहूगणः | इन्द्रः | पंक्तिः |
| १००३ | १।८१।२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १००४ | १।८१।३ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १००५ | १।८४।१० | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १००६ | १।८४।११ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १००७ | १।८४।१२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| १००८ | ९।६२।४ | जमदग्निर्भार्गवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १००९ | ९।६२।५ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| १०१० | ९।६२।६ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| १०११ | ९।१०८।९ | उर्ध्वसद्मा आंगिरसः | ,, | काकुभः प्रागाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| १०१२ | ९।१०८।१० | कृतयशा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १०१३ | ९।१०२।१ | त्रित आप्त्यः | ,, | उष्णिक् |
| १०१४ | ९।१०२।२ | त्रित आप्त्यः | ,, | ,, |
| १०१५ | ९।१०२।३ | त्रित आप्त्यः | ,, | ,, |
| १०१६ | ९।१००।६ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | अनुष्टुप् |
| १०१७ | ९।१००।७ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | ,, |
| १०१८ | ९।१००।९ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | ,, |
| १०१९ | ९।९७।१० | मन्युर्वासिष्ठः | ,, | त्रिष्टुप् |
| १०२० | ९।९७।११ | मन्युर्वासिष्ठः | ,, | ,, |
| १०२१ | ९।९७।१२ | मन्युर्वासिष्ठः | ,, | ,, |
| | | ( ७ ) | | |
| १०२२ | ५।६।४ | वसुश्रुत आत्रेयः | अग्निः | पंक्तिः |
| १०२३ | ५।६।५ | वसुश्रुत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १०२४ | ५।६।९ | वसुश्रुत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १०२५ | ८।९८।१ | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | उष्णिक् |
| १०२६ | ८।९८।२ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १०२७ | ८।९८।३ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १०२८ | १।८४।१ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १०२९ | १।८४।३ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १०३० | १।८४।२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |



# अथ सप्तमोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-२४ ) १ ( अकृष्टमाषादयः ) त्रयः; २, ११ कश्यपो मारीचः; ३ मेधातिथिः काण्वः; ४ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; ५ अवत्सारः काश्यपः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७, २१ कुत्स आंगिरसः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ९ त्रिशोकः काण्वः; १० श्यावाश्व आत्रेयः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीच; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ), १३ ऊरुमहीयुरांगिरसः; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ ( १, ३, २-पूर्वार्धः ) मान्धाता यौवनाश्वः, १६ ( २ उत्तरार्धः ) गोधा ऋषिका; १७ असितः काश्यपो देवलो वा; १८ ( १ ) ऋणंचयो राजर्षिः, १८ ( २ ) शक्तिर्वासिष्ठः; १९ पर्वतनारदौ काण्वौ; २० मनुः सांवरणः, २२ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा; २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः ॥ १-६, ११-१३, १७-२१ पवमानः सोमः; ७, २२ अग्निः, ८ आदित्यः, ९, १४-१६ इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी; २३ विश्वे देवाः, २४ ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३-१५, १७ गायत्री; १२ प्रगाथः = विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १६ महापंक्तिः; १८ ( १ ) यवमध्या गायत्री, १८ ( २ ) सतो बृहती; १९ उष्णिक्; २० अनुष्टुप्; २१ त्रिष्टुप्; २२ द्विपदा विराट्; २३ द्विपदा त्रिष्टुप्; २४ ॥

१०३१ ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नꣳ स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१० )

१०३२ अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १०३१ ] ( यज्ञस्य ज्योतिः ) यज्ञका प्रकाश करनेवाला सोम ( देवानां प्रियं मधु पवते ) देवोंको प्रिय लगनेवाले मीठे रसको देता है । वह ( पिता ) पालन करनेवाला ( जनिता ) उत्पादक ( विभू-वसुः ) बहुत सारा धन अपने पास रखनेवाला ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द बढानेवाला ( मत्सरः ) उत्साह बढानेवाला ( इन्द्रियः ) इन्द्रको प्रिय लगनेवाला ( रसः ) सोमरस ( स्वधयोः ) द्यावापृथिवीमें ( अपीच्यं रत्नं दधाति ) छिपे हुए धन यजमानको देता है ॥ १ ॥

[ १०३२ ] ( दिवः पतिः ) द्युलोकका स्वामी ( शतधारः ) सैकडों धाराओंसे छाना जानेवाला ( विचक्षणः वाजी ) बुद्धिमान् और बलवान् ( हरिः ) हरे रंगका सोमरस ( अभिक्रन्दन् कलशं अर्षति ) शब्द करता हुआ कलशमें जाता है । ( सिन्धुभिः ) जलोंसे मिश्रित होकर ( अविभिः मर्मृजानः ) बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होता हुआ यह ( वृषा ) बलवान् सोम ( मित्रस्य सदनेषु सीदति ) मित्रके यज्ञके पात्रमें जाकर रहता है ॥ २ ॥

१०३३ अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनꣳ स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥
[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ( ऋ. ९।८६।१२ )

१०३४ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥१॥ ( ऋ. ९।६४।४ )

१०३५ शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥ ( ऋ ९।६४।५ )

१०३६ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ २ ( वी ) ॥
[ धा० २० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६४।६ )

१०३७ पवस्व देववीरति पवित्रꣳसोम रꣳह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )

१०३८ आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥ ( ऋ ९।२।२ )

१०३९ अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )

[ १०३३ ] हे सोम ! तू ( सिन्धूनां अग्रे ) जल मिलानेके पहले ( पवमानः अर्षसि ) शुद्ध होनेके लिए जाता है। ( वाचः अग्रे गच्छसि ) स्तुतिके लिए पूज्य होकर जाता है। ( गोषु अग्रियः गच्छसि ) गायोंके आगे आगे चलता है। ( वाजस्य स्वायुधः ) बलके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त होकर ( महत् धनं भजसे ) बडे-बडे धन प्राप्त करता है। ( सोम सोतृभिः सूयसे ) हे सोम ! तू ऋत्विजों द्वारा निचोडा जाता है ॥ ३ ॥

[ ०३४ ] ( वाजिनः ) बलवान्, ( शुक्रासः आशवः सोमासः ) तेजस्वी और गतिमान् सोम ( गव्या, अश्वया, वीरया ) गाय, घोडे और पुत्र यजमानको प्राप्त हों इसलिए ( प्र असृक्षत ) अपना रस छोडते हैं ॥ २ ॥

[ १०३५ ] ( ऋतायुभिः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजों द्वारा ( शुंभमानाः ) सुशोभित हुए और ( गभस्त्योः मृज्यमानाः ) हाथोंसे शुद्ध किए जानेवाले सोमरस ( अव्यये वारे ) भेडके बालोंकी छलनीसे ( पवन्ते ) शुद्ध किये जाते हैं ॥ २ ॥

[ १०३६ ] ( ते सोमाः ) वे सोमरस ( दाशुषे ) दान देनेवाले यजमानको ( दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवा ) द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपरके ( विश्वा वसु ) सब धन ( आ पवन्तां ) देवें ॥ ३ ॥

[ १०३७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देववीः ) देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छा करनेवाला तू ( रंह्या पवित्रं अति पवस्व ) वेगपूर्वक छलनीसे छनता जा। हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृषा ) बल बढानेवाला तू ( इन्द्रं विश ) इन्द्रमें प्रविष्ट हो ॥ १ ॥

[ १०३८ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृषा द्युम्नवत्तमः धर्णसिः ) बलवान् तेजस्वी और सबका धारण करनेवाला तू ( महि प्सरः ) बहुत अन्न और जल ( आ वच्यस्व ) हमें दे और ( योनिं आ सदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १०३९ ] ( सुतस्य वेधसः धारा ) रस निचोडे गए सोमकी धारा ( प्रियं मधु अधुक्षत ) अच्छे लगनेवाले मीठे रसको बर्तनमें इकट्ठा करती है। ( सु-क्रतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम ( अपः वसिष्ट ) जलमें मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

१०४० महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२।४ )

१०४१ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।५ )

१०४२ अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सꣳसूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥ ( ऋ ९।२।६ )

१०४३ गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।२।७ )

१०४४ तं त्वा मदाय धृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।२।८ )

१०४५ गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।२।१० )

१०४६ अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाꣳइव ॥ १० ॥ ३ ( कै ) ॥
[ धा० ९१ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।२।९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१०४७ सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥ ऋ. ९।४।१ )

---

[ १०४० ] हे सोम ! ( यत् गोभिः वासयिष्यसे ) जब तू गायके दुधमें मिलाया जाता है, तब ( महान्तं त्वा ) महत्वसे युक्त तुझमें ( सिन्धवः महीः अपः ) नदीका बहुतसा पानी भी ( अनु अर्षन्ति ) मिलाया जाता है ॥ ४ ॥

[ १०४१ ] ( समुद्रः ) जलमय ( दिवः विष्टम्भः ) द्युलोकका धारण करनेवाला और ( धरुणः ) आधार देनेवाला और ( अस्मयुः सोमः ) हमें चाहनेवाला सोम ( पवित्रे अप्सु मामृजे ) बर्तनके पानीमें वारबार धोया जाता है ॥५॥

[ १०४२ ] ( वृषा महान् हरिः ) बलवर्धक, महान् और हरे रंगका तथा ( मित्रः न दर्शतः ) मित्रके समान दर्शनीय सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता है और ( सूर्येण सं दिद्युते ) सूर्यके समान चमकता है ॥ ६ ॥

[ १०४३ ] हे (इन्दो ) सोम ! ( ते ओजसा ) तेरे सामर्थ्यसे ( अपस्यवः गिरः ) कर्मकी इच्छा करनेवाले स्तोता, स्तुतिके मंत्र ( मर्मृज्यन्ते ) कहते हैं और ( याभिः मदाय शुम्भसे ) इन स्तुतियोंसे आनन्द बढानेके लिए तू अलंकृत किया जाता है ॥ ७ ॥

[ १०४४ ] हे सोम ! ( तव महे प्रशस्तये ) तेरी महान् स्तुतिके लिए ( लोककृत्नुं तं त्वा ) लोगोंका हित करनेकी इच्छावाले तुझे ( धृष्वये मदाय ) शत्रुका नाश करनेके लिए और आनन्द बढानेके लिए ( ईमहे ) हम प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[ १०४५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा ) यज्ञकी मुख्य आत्मा तू ( गोषा नृषा ) गाय देनेवाला, पुत्र देनेवाला तथा ( अश्वसा उत वाजसा ) घोडे और अन्न देनेवाला ( असि ) है ॥ ९ ॥

[ १०४६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृष्टिमान् पर्जन्य इव ) वर्षा करनेवाले मेघके समान ( अस्मभ्यं ) हमको ( इन्द्रियं ) बलवर्धक सामर्थ्य ( मधोः धारया पवस्व ) मधुर रसकी धारासे दे ॥ १० ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १०४७ ] ( महिश्रवः पवमान सोम ) हे बहुत प्रशंसनीय शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( सन ) देवोंको प्राप्त हो तथा ( जेषि ) तू शत्रुओंको जीत ( अथ ) बादमें ( नः वस्यसः कृधि ) हमें यशस्वी कर ॥ ४ ॥

१०४८ सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥
( ऋ. ९।४।२ )

१०४९ सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।४।३ )

१०५० पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।४।४ )

१०५१ त्वꣳसूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।४।५ )

१०५२ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।४।६ )

१०५३ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसꣳरयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।४।७ )

१०५४ अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।४।८ )

१०५५ त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।४।९ )

१०५६ रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ ४ ( चा ) ॥
[ धा० २२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४।१० )

---

[ १०४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( ज्योतिः सन ) हमें तेज दे, ( स्वः च विश्वा सौभगा सन ) सुख और सब सौभाग्य दे, ( अथ ) बादमें ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०४९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( दक्षं क्रतुं सन ) बल और यज्ञ करनेका सामर्थ्य दे, ( मृधः अपजहि ) शत्रुओंको हरा, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याणयुक्त कर ॥ ३ ॥

[ १०५० ] हे ( पवीतारः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ऋत्विजो ! ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सोमं पुनीतन ) सोमरसको पवित्र करो। ( अथ नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणसे युक्त करो ॥ ४ ॥

[ १०५१ ] हे सोम ! ( त्वं ) तू ( तव क्रत्वा ) अपने कार्यसे और ( तव ऊतिभिः ) अपने संरक्षणोंसे ( नः सूर्ये आ भज ) हमें सूर्यकी उपासनामें स्थापित कर। ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ५ ॥

[ १०५२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तव क्रत्वा ) तेरे द्वारा दिए गए ज्ञानसे ( तव ऊतिभिः ) तेरी रक्षामें रहकर हम ( ज्योक् सूर्यं पश्येम ) बहुत समयतक सूर्यको देखें, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[ १०५३ ] हे ( स्वायुध सोम ) उत्तम शस्त्रोंको धारण करनेवाले सोम ! ( द्वि-बर्हसं रयिं अभ्यर्ष ) दोनों स्थानोंके धन हमें दे। ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें सुखी कर ॥ ७ ॥

[ १०५४ ] हे ( वाजिन् ) बलवान् सोम ! ( समत्सु अनपच्युतः ) युद्धमें न हारनेवाला और ( सासहिः ) शत्रुको हरानेवाला तू ( अभि अर्ष ) कलसेमें छनता जा ( अथ ) और ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ८ ॥

[ १०५५ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! लोग ( विधर्मणि ) विविध फल देनेवाले यज्ञमें ( यज्ञैः त्वा अवीवृधन् ) पूजनीय स्तोत्रोंसे तेरे महत्त्वको बढाते हैं। ( अथः नः वस्यसः कृधि ) अतः हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[ १०५६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( नः ) हमें ( चित्रं आश्विनं ) विलक्षण, घोडोंसे युक्त और ( विश्वायुं ) सब लोगोंका हित करनवाले ( रयिं ) धनको ( आभर ) भरपूर दे। ( अथः न वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ १० ॥

१०५७ तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।५८।१ )

१०५८ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।५८।२ )

१०५९ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।५८।३ )

१०६० आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५ ( हा ) ॥

[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५८।४ )

१०६१ एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।२२ )

१०६२ अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।२३ )

१०६३ उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ ६ ( वि ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६२।२४ )

१०६४ इमंस्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९४।१ )

---

[ १०५७ ] ( मन्दी सः ) आनन्द देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) शीघ्र ही छलनीसे नीचे गिरता है, ( सुतस्य अन्धसः धारा ) इस सोमरसरूपी अन्नकी धारा ( धावति ) दौडती है। ( मन्दी सः तरत् धावति ) आनन्द देनेवाला वह सोम छनता हुआ दौडता है ॥ १ ॥

[ १०५८ ] ( वसूनां उस्रा ) धन देनेवाली ( देवी ) चमकती हुई धारा ( मर्तस्य अवसः वेद ) यजमानकी रक्षाके प्रकारको जानती है, ( सः मन्दी तरत् धावति ) वह आनन्द देनेवाली धारा शीघ्रतासे बहती है ॥ २ ॥

[ १०५९ ] ( ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः ) ध्वस्र और पुरुषन्तिके ( सहस्राणि आदद्महे ) हजारों प्रकारके धनोंको हम ग्रहण करते हैं। ( मन्दी सः ) आनन्द देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) शीघ्रतासे दौडता है ॥ ३ ॥

[ १०६० ] ( ययोः ) जिस कारण ध्वस्र और पुरुषन्तिके ( त्रिंशतं सहस्राणि ) तीन सौ और हजार ( तना आदद्महे ) वस्त्रोंको हम स्वीकार करते हैं, ( मन्दी सः तरत् धावति ) आनन्द देनेवाला वह सोम शीघ्र ही नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ ४ ॥

[ १०६१ ] ( मदिन्तमस्य एते सोमाः ) परम आनन्द देनेवाले सोमके ये रस ( गृणानाः ) स्तुतिके बाद ( महे शवसे ) हमें उत्तम बल प्रदान करनेके लिए ( धारया असृक्षत ) एक धारसे कलसेमें गिरते हैं ॥ १ ॥

[ १०६२ ] हे सोम ! तू ( वीतये ) देवोंके पीनेको देनेके लिए ( नृम्णा गव्यानि ) मनुष्योंको आनन्द देनेवाले दूध आदियोंसे ( पुनानः अर्षसि ) पवित्र हुआ हुआ कलशमें जाता है। ( वाजः सनत् परिस्रव ) अन्न देता हुआ तू कलशमें उतरता है ॥ २ ॥

[ १०६३ ] ( उत ) और हे सोम ! ( जमदग्निना गृणानः ) जमदग्निके द्वारा प्रशंसित हुआ हुआ तू ( नः ) हमें ( गोमतीः ) गायोंसे युक्त ( परिष्टुभः ) प्रशंसनीय ( विश्वाः इषः ) सब अन्न ( अर्ष ) दे ॥ ३ ॥

[ १०६४ ] ( अर्हते जातवेदसे ) पूज्यनीय अग्निके लिए ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक किए गए ( इमं स्तोमं ) इस स्तोत्रको ( रथं इव ) रथके समान ( सं महेम ) हम पूज्यनीय करते हैं। ( अस्य संसदि ) इसकी आराधनामें ( नः प्रमतिः ) हमारी बुद्धि ( भद्रा हि ) उत्तम चलती है। ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( वयं मा रिषाम ) हम दुःखी या पीडित न हों ॥ १ ॥

*

१०६५ भरामेध्मं कृणवामा हवींऽषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतराऽ साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९४।४ )

१९६६ शकेम त्वा समिधंऽ साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याऽ आ वह तान्ह्यूऽश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥ ७ ( छौ ) ॥
[ धा० ३७ । उ० २ । स्व० १० ] ( ऋ. १।९४।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१०६७ प्रति वाऽसूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणऽ रिशादसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६६।७ )

१०६८ राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।६६।८ )

१०६९ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषऽस्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ ८ ( झा ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० २ ] ( ऋ. ७।६६।९ )

१०७० भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
( ऋ ८।४५।४० )

---

[ १०६५ ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( इध्मं भराम ) हम तेरे लिए समिधा एकत्रित करते हैं ( वयं ) हम ( पर्वणा पर्वणा ) प्रत्येक पर्वमें ( चितयन्तः ) तुझे प्रदीप्त करते हुए ( ते हवींषि कृणवाम ) तेरे लिए हवि तैय्यार करते हैं। वह तू ( जीवातवे ) हमारे दीर्घजीवनके लिए ( धियः प्रतरां साधय ) हमारे यज्ञकर्मको पूर्ण कर। हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें रहकर ( वयं मा रिषाम ) हम कभी दुःखी न हों ॥ २ ॥

[ १०६६ ] हे अग्ने ! ( त्वा समिधं शकेम ) तुझे हम उत्तम रीतिसे जलाते हैं। ( धियः साधय ) हमारे यज्ञादि कर्म उत्तम रीतिसे सिद्ध कर। ( त्वे आहुतं हविः ) तुझमें आहुतिके द्वारा दी गई हविको ( देवाः अदन्ति ) देवगण खाते हैं। ( त्वं आदित्यान् आ वह ) तू अदितिके पुत्रोंको बुलाकर ला ( तान् हि उश्मसि ) यहां हम उनकी इच्छा करते हैं ( अग्ने ) हे अग्ने ! ( तव सख्ये वयं मा रिषाम ) तेरी मित्रतामें हम नष्ट न हों॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः।

[ १०६७ ] हे मित्र और वरुण देवो ! ( सूरे उदिते ) सूर्यके उदय होने पर ( वां मित्रं वरुणं ) तुम दोनों मित्र और वरुणकी तथा ( रिशादसं अर्यमणं ) शत्रुनाशक अर्यमाकी तथा ( प्रति ) प्रत्येक देवताओंकी ( गृणीषे ) स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[ १०६८ ] हे ( विप्राः ) ज्ञानियो ! ( इयं मतिः ) यह स्तुति ( हिरण्यया राया ) हितकारक और रमणीय धनके साथ ( अवृकाय शवसे ) क्रूरतारहित बलकी प्राप्तिके लिए और ( मेध-सातये ) यज्ञकी सिद्धिके लिए तुम्हें स्वीकार हो ॥ २ ॥

[ १०६९ ] हे ( देव वरुण ) वरुणदेव ! ( सूरिभिः सह ) विद्वानोंके साथ ( ते ) तेरी भी स्तुति करनेवाले हम धनवान् ( स्याम ) होंवे। हे ( मित्र ) मित्र ! तेरी भी स्तुति करनेवाले हम धनवान् हों तथा ( इषं च स्वः धीमहि ) अन्न और स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ १०६० ] हे इन्द्र ! तू ( विश्वाः द्विषः अप भिन्धि ) सब शत्रुओंका नाश कर ( बाधः मृधः परि जहि ) बाधा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर। ( स्पार्हं तत् वसु आभर ) और चाहने योग्य धन हमें दे ॥ १ ॥

१०७१ यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४५।४२ )

१०७२ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥ ९ ( चू ) ॥
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।४५।४१ )

१०७३ यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ १ ॥
( ऋ. ८।३८।१ )

१०७४ तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३८।२ )

१०७५ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥ १० ( टा ) ॥
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३८।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१०७६ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२२ )

१०७७ तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥
( ऋ. ९।६४।२३ )

---

[ १०७१ ] हे इन्द्र ! ( ते दत्तस्य ) तेरे द्वारा दिए गए ( भूरेः यस्य ) बहुतसे जिस धनको ( विश्वं आनुषक् वेदति ) सब मनुष्य क्रमसे जानते हैं ( तत् स्पार्हं वसु नः आभर ) उस चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १०७२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वीडौ ) जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) और जो जमीनमें स्थिर स्थानपर रखा हुआ है ( यत् पर्शाने ) जो छूनेके योग्य जगहमें रखा हुआ है, तथा जो ( पराभृतं ) शत्रुसे छीनकर लाया गया धन है ( तत् स्पार्हं वसु नः आभर ) वह चाहने योग्य धन हमें दे ॥ ३ ॥

[ १०७३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ही ( ही ) निश्चयसे ( यज्ञस्य ऋत्विजा स्थ ) यज्ञके ऋत्विज हो। ( वाजेषु कर्मसु ) युद्धके समान कर्मोंमें भी तुम ( सस्नी ) शुद्ध रहते हो इसलिए ( तस्य बोधतं ) इस स्तुतिको तुम जानकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

[ १०७४ ] हे ( तोशासा ) शत्रुको मारनेवाले ( रथ-यावाना ) रथसे जानेवाले ( वृत्र-हणा ) घेरनेवाले शत्रुओंके नाश करनेवाले ( अ-पराजिता ) पराजित न होनेवाले ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( तस्य बोधतं ) उस मेरी स्तुतिको सुनकरके स्वीकार करो ॥ २ ॥

[ १०७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( नरः ) ऋत्विजोंने ( अद्रिभिः ) पत्थरोंसे ( मदिरं मधु अधुक्षन् ) आनन्द देनेवाला मीठा सोमरस निकालकर तैय्यार किया गया है ( तस्य बोधतं ) उस सम्बन्धी मेरी स्तुति तुम जानो ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १०७६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ऐसा तू ( अर्कस्य योनिं आसदं ) पूज्य यज्ञके स्थानमें बैठनेके लिए तथा ( मरुत्वते इन्द्राय पवस्व ) मरुतोंके साथ आनेवाले इन्द्रके लिए तू शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १०७७ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( तं धर्णसिं त्वां ) उस धारणशक्तिसे युक्त तुझे ( वचोविदः विप्राः ) वाक्यका अर्थ जाननेवाले ज्ञानी ( परिष्कृण्वन्ति ) सुशोभित करते हैं। ( आयवः ) ऋत्विजलोग ( त्वा सं मृजन्ति ) तुझे उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

१०७८ रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ ११ ( ल ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६४।२४ )

१०७९ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२१ )

१०८० पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानाꣳ सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २ ॥ १२ ( ति ) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०७।२२ )

१०८१ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।७ )

१०८२ समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सꣳ सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।८ )

१०८३ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ १३ ( टि ) ॥

[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६१।९ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।१३ )

---

[ १०७८ ] हे ( कवे ) क्रान्तदर्शी सोम ! ( पवमानस्य ते रसं ) पवित्र होनेवाले तेरे रसको ( मित्रः वरुणः अर्यमा मरुतः पिबन्तु ) मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुत् पीवें ॥ ३ ॥

[ १०७९ ] ( सु-हस्त्या ) सुन्दर अंगुलियोंसे ( मृज्यमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) कलशमें शब्द करता हुआ गिरता है । हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( पिशंगं पुरुस्पृहं ) सोनेके रंगके तथा अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( बहुलं रयिं अभ्यर्षसि ) बहुत धन तू देता है ॥ १ ॥

[ १०८० ] ( वृषः पुनानः ) बल बढानेवाला, शुद्ध होनेवाला ( अव्यये वारे पवमानः ) भेडके बालोंकी छलनीसे छननेवाला ( वने अचिक्रदत् ) पानीमें शब्द करते हुए गिरता है । हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( देवानां ) देवताओंके लिए ( गोभिः अंजानः ) गायके दूधके साथ मिलाया जाता है और ( निष्कृतं अर्षसि ) शुद्ध किए हुए स्थानपर तू जाता है ॥ २ ॥

[ १०८१ ] ( सिन्धु-मातरं त्यं एतं ) सिन्धु जिसकी माता है ऐसे इस सोमको ( दशक्षिपः ) दस अंगुलियां ( मृजन्ति ) शुद्ध करती हैं । वह सोम ( आदित्येभिः समख्यत ) आदित्योंको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ १०८२ ] ( सुतः ) सोमरस ( पवित्रे ) कलशमें ( इन्द्रेण सं एति ) इन्द्रको प्राप्त होता है । ( उत वायुना आ ) और वायुको भी प्राप्त होता है । तथा ( सूर्यस्य रश्मिभिः सं ) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

[ १०८३ ] हे सोम ! ( मधुमान् चारुः सः ) मीठा और सुन्दर वह तू ( नः ) हमारे यज्ञमें ( भगाय, वायवे, पूष्णे, मित्रे, वरुणे च पवस्व ) भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुणके लिए पवित्र हो ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १०८४ ] ( क्षुमन्तः ) अन्नके पास रहनेवाले हम ( याभिः ) जिन गायोंके साथ रहकर ( मदेम ) आनन्दका उपभोग करते हैं, ( इन्द्रे सधमादे ) उस इन्द्रके साथ एक स्थानपर रहकर ( नः ) हमारी वे गायें ( रेवतीः ) दूध और घी देनेवाली और ( तुविवाजाः सन्तु ) बलसे युक्त हों ॥ १ ॥

१०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥
( ऋ. १।३०।१४ )

१०८६ आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १४ ( ठी ) ॥
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।३०।१५ )

१०८७ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥ ( ऋ १।४।१ )

१०८८ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥ ( ऋ १।४।२ )

१०८९ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ १५ (कौ)॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।४।३ )

१०९० उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३४।१ )

१०९१ दीर्घꣳ ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः । पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३४।६ )

---

[ १०८५ ] हे ( धृष्णो ) धैर्यवान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे समान ( त्मना युक्तः ) बुद्धिसे युक्त होकर ( ईयानः ) प्रार्थना करनेके बाद ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंके लिए इष्ट पदार्थ ( घ आ ऋणोः ) अवश्य दे, ( चक्र्योः अक्षं न ) जिस प्रकार दोनों चक्रोंको रथकी धुरा मिलाती है या संयुक्त करती है उसीप्रकार स्तोताओंको धनसे संयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०८६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यत् दुवः कामं ) उपासकोंका जो इच्छित धन है वह ( जरितॄणां आ ऋणोः ) स्तुति करनेवालोंको दिला ( शचीभिः अक्षं न ) जिस प्रकार रथकी उत्तम अवस्थासे उसके हालको भी गति मिलती है, उसीप्रकार स्तुति करनेवालोंको धन मिले ॥ ३ ॥

[ १०८७ ] ( सुरूपकृत्नुं ) सुन्दर रूप करनेवाले इन्द्रको ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( द्यवि द्यवि जुहूमसि ) प्रतिदिन हम बुलाते हैं । ( गोदुहे सुदुघां इव ) दूध दुहनेके समय ग्वाले जिस प्रकार दुधारू गायोंको बुलाते हैं, उसी प्रकार हम इन्द्रको बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १०८८ ] हे ( सोमपाः ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! सोमरस पीनेके लिए ( नः सवना उप आगहि ) हमारे यज्ञोंके सवनोंमें आ । ( सोमस्य पिब ) सोम पी, और तू ( रेवतः मदः गोदाः इत् ) धनवानोंको आनन्द और गायें देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १०८९ ] ( अथ ) सोम पीनेके बाद ( ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम ) तेरे पास रहनेवाली उत्तम बुद्धियोंको हम जानें, तू भी हमारे पास ( आ गहि ) आ । ( नः मा अति ख्यः ) हमें छोडकर दूसरोंको उस ज्ञानको मत बता ॥ ३ ॥

[ १०९० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उभे रोदसी ) दोनों ही द्युलोक और पृथ्वीलोकको ( उषाः इव ) उषा जिस प्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार तू भी ( यत् आपप्राथ ) जब भर देता है तब ( महीनां महान्तं ) महान्से महान् ( चर्षणीनां सम्राजं त्वा ) मनुष्योंके सम्राट् तुझे ( देवी जनित्री ) देवमाता अदिति ( अजीजनत् ) उत्पन्न करती है, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माता उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १०९१ ] हे ( मन्तुमः ) ज्ञानवान् इन्द्र ! ( दीर्घं अंकुशं यथा ) महान् शस्त्रको धारण करनेके समान ( शक्तिं बिभर्षि ) तू शक्तिको धारण करता है, हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( यथा अजः पूर्वेण पदा ) जैसे बकरा आगेके पांवसे ( वयां यमः ) डालीको नियंत्रित करता है उसीप्रकार तू शत्रुको नियंत्रित करता है, तुझे ( देवी जनित्री अजीजनत् ) अदितिदेवीने जन्म दिया है, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माताने तुझे प्रकट किया है ॥ २ ॥

१०९२ अव स दुर्हृणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥ १६ ( यौ ) ॥
[ धा० ४२ । उ० नास्ति । स्व० १० ] ( ऋ १०।१३४।२ )

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१०९३ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१८।१ )
१०९४ त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१८।२ )
१०९५ त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥ १७ ( खा ) ॥
[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१८।३ )
१०९६ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।१३ )
१०९७ यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ २ ॥ १८ ( ली ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१०८।१४ )

---

[ १०९२ ] ( दुर्हृणायतः मर्त्तस्य ) दुष्ट शत्रुके ( स्थिरं अव तनुहि ) स्थायी बलको क्षीण कर, ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हमें दास बनाना चाहता है ( तं ईं अधस्पदं कृधि ) उसे नीचे दबा दें। ( देवी जनित्री अजीजनत् ) अदिति माताने तुझे उत्पन्न किया है, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माताने तुझे प्रकट किया है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १०९३ ] ( गिरिष्ठाः स्वानः सोमः ) पर्वतपर रहनेवाला, रस निकाला गया सोम ( पवित्रे परि अक्षरत् ) छलनीसे टपकता है । हे सोम ! ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्ददायक पदार्थोंमें तू सर्वसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

[ १०९४ ] हे सोम ! ( त्वं विप्रः ) तू ज्ञानी है, ( त्वं कविः ) तू दूरदर्शी है, तू ( अन्धसः जातं मधु प्र ) अन्नसे उत्पन्न मधुर रसको देता है । ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवाले रसोंमें तू सबसे उत्तम है ॥ २ ॥

[ १०९५ ] हे सोम ! ( सजोषसः विश्वेदेवासः ) एक कार्यको जुटकर करनेवाले सब देव ( त्वे पीतिं आशत ) तेरा रस पीनेकी इच्छा करते हैं । ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवालोंमें सबकी अपेक्षा तू ही अधिक श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[ १०९६ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( वसूनां आ नेता ) धनोंको लानेवाला ( यः रायां ) जो गायोंको लानेवाला ( यः इडां ) जो अन्न लानेवाला, ( यः सुक्षितीनां ) जो उत्तम पुत्रोंको और नौकरोंको देनेवाला है, ( सः सुन्वे ) उस सोमके रसको निकाला जाता है ॥ १ ॥

[ १०९७ ] हे सोम ! ( यस्य ते इन्द्रः पिबात् ) जिस तेरे रसको इन्द्र पीता है, ( यस्य मरुतः ) जिसका रस मरुत् पीते हैं ( वा ) अथवा ( यस्य अर्यमणा भगः ) जिसके रसको अर्यमाके साथ भग देव पीते हैं, ( येन महे अवसे ) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिए ( मित्रावरुणा आ ) मित्र और वरुणको बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( इन्द्रः आ ) इन्द्रको बुलाया है ॥ २ ॥

१०९८ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०५।१ )

१०९९ सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०५।२ )

११०० अयं दक्षाय साधनोऽयꣳ शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १९ ( यि ) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०५।३ )

११०१ सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१० )

१००२ ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१२ )

११०३ सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥ २० ( वा ) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०१।११ )

---

[ १०९८ ] हे ( सखायः ) ऋत्विजरूपी मित्रो ! ( वः मदाय ) तुम देवताओंको आनन्द देनेके लिए ( पुनानं तं अभि गायत ) छाने जानेवाले उस सोमके स्तोत्रोंका गायन करो। ( शिशुं न ) जिसप्रकार मातायें बालकको सुशोभित करती हैं, उसीप्रकार सोमको ( हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ) हवि और स्तुतियोंके द्वारा और स्वादिष्ट बनाओ ॥ १ ॥

[ १०९९ ] ( देवावीः मदः ) देवोंका रक्षक और आनन्ददायक, ( मतिभिः परिष्कृतः ) स्तुतियोंसे शुद्ध किया गया और ( हिन्वानः इन्दुः ) याजकोंको प्रेरणा देनेवाला सोम ( सं अज्यते ) पानीसे मिलाया जाता है। ( मातृभिः वत्सः इव ) माताके द्वारा बच्चा जिसप्रकार नहलाया, धुलाया जाता है, उसीप्रकार सोम पानीके द्वारा साफ किया जाता है ॥ २ ॥

[ ११०० ] ( अयं दक्षाय साधनः ) यह सोम बल बढानेका साधन है, ( अयं शर्धाय ) यह सोम बल बढानेके लिए और ( पीतये ) पीनेके लिए है, ( अयं सुतः ) इसका रस निकालनेके बाद ( देवेभ्यः मधुमत्तरः ) वह देवोंके लिए अधिक मीठा होता है ॥ ३ ॥

[ ११०१ ] ( मित्राः स्वानाः ) मित्रके समान हितकारक, निचोडे गए ( अरेपसः स्वाध्यः ) निष्पाप और उत्तम लक्ष्य देने योग्य ( स्वः विदः ) आत्मदर्शी ( गातु वित्तमाः इन्दवः सोमाः ) प्रशंसनीय, चमकनेवाले सोमरस ( अस्मभ्यं पवन्ते ) हमारे लिए कलशमें छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११०२ ] ( पुतासः विपश्चितः ) पवित्र और ज्ञानी ( दध्याशिरः ) दहीके साथ मिले हुए ( घृते जिगत्नवः ) जलमें मिलाये जानेवाले ( ध्रुवाः ते सोमासः ) कलशमें रहनेवाले वे सोमरस ( सूरासः न ) सूर्यके समान ( दर्शतासः ) दर्शनीय हैं ॥ २ ॥

[ ११०३ ] ( गोः अधि त्वचि ) बैलके चमडेपर ( चितानाः ) रहनेवाले ( वि अद्रिभिः सुष्वानासः ) अनेक पत्थरोंसे कूटे जानेवाले ( वसुविदः ) धन देनेवाले ये सोम ( अस्मभ्यं अभितः इषं समस्वरन् ) हमें चारों ओरसे धन देते हैं ॥ ३ ॥

११०४ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।५२ )

११०५ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिँ सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।५३ )

११०६ महीमे अस्य वृष नाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥ २१ ( कि ) ॥
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।९७।५४ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

११०७ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।२४।१ )

११०८ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।२४।२ )

---

[ ११०४ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इस पवित्र धारासे ( एना वसूनि ) इन धनोंको हमें ( पवस्व ) दे । हे ( इन्दो ) सोम ! ( मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व ) इस पूजाके योग्य पात्रोंमें तू जाकर मिल जा, ( यस्य ) जिसके रसको पीकर ( ब्रध्नः चित् ) सूर्य भी ( वातः न ) वायुके समान ( जूतिं ) वेगको प्राप्त होता है, और ( पुरुमेधाः चित् ) अत्यधिक बुद्धिमान् इन्द्र ( तकवे मह्यं ) सोम प्राप्त करनेवाले मुझे ( नरं धात् ) नेता होनेके योग्य पुत्रको देता है ॥ १ ॥

[ ११०५ ] हे सोम ! ( उत श्रवाय्यस्य तीर्थे ) और स्तुतिके योग्य ऐसे तेरे स्थानपर ( नः श्रुते ) हमारे यज्ञमें ( एना पवया ) इस पवित्र धारसे ( पवस्व ) तू छनता जा । ( नैगुतः ) शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम ( षष्टिं सहस्रा वसूनि ) साठ हजार धन ( रणाय ) शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए ( धूनवत् ) हमें देवे, ( पक्वं वृक्षं न ) जैसे वृक्ष पके हुए फल देते हैं, उसीप्रकार हमें धन दे ॥ २ ॥

[ ११०६ ] ( मही वृष, नाम ) बहुत सारे बाणोंको मारना और शत्रुको झुकाना ( इमे अस्य शूषे ) ये दोनों ही सोमके कार्य सुखकारी हैं ! ये काम ( मांश्चत्वे ) घोडोंके साथ होनेवाले युद्धमें किए जाते हैं ( वा पृशने ) अथवा बाहुओंके युद्धमें ( वा वधत्रे ) अथवा हाथोंसे शत्रुओंके कत्ल करनेके समय किए जाते हैं, ( निगुतः अस्वापयन् ) जो शत्रुओंके सोते हुए अथवा ( स्नेहयत् ) शत्रुके भागते समय किए जाते हैं, हे सोम ! ( अमित्रान् ) तब शत्रुओंको दूर कर ( इतः अपाचितः ) यहांसे शत्रुओंको तू दूर कर, ( अप अच ) उन्हें बहुत दूर कर ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ११०७ ] हे अग्ने ! ( वरूथ्यः त्वं ) सेवा करनेके योग्य तू ( नः अन्तमः ) हमारे पास रह, ( उत ) और ( त्राता ) हमारा रक्षक हो, तथा हमारा ( शिवः भव ) कल्याण करनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ११०८ ] ( वसुः वसुश्रवाः अग्निः ) निवासक और धनोंके लिए प्रसिद्ध अग्रणी तू ( अच्छ नक्षि ) सीधे हमारे पास आ, और ( द्युमत्तमः रयिं दाः ) तेजस्वी होकर हमें धन दे ॥ २ ॥

१११९ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥ २२ ( वा ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।२४।३ )

१११० इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५७।१ )

११११ यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५७।२ )

१११२ आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥ ३ ॥ २३ ( छा ) ॥

[ धा० १२ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १०।१५७।३ )

१११३ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायता यं जुजोषते ॥ १ ॥

१११४ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ २ ॥

१११५ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ३ ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

[ ११०९ ] हे ( शोचिष्ठ दीदिवः ) तेजस्वी और प्रकाशनेवाले अग्निदेव ! ( सुम्नाय सखिभ्यः ) सुखके लिए और मित्र तथा पुत्रादिकी प्राप्तिके लिए ( नूनं ईमहे ) निश्चयसे हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[ १११० ] ( इमा भुवना ) ये भुवन ( नु कं सीषधेम ) हमारे सुखके साधन बनें । ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः च ) इन्द्र और सब देव हमें सुख देवें ॥ १ ॥

[ ११११ ] ( आदित्यैः सह इन्द्रः ) आदित्योंके साथ इन्द्र ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञको ( तन्वं च ) और हमारे शरीरको ( प्रजां च ) और पुत्रपौत्रोंको ( सीषधातु ) उत्तम सफल करे ॥ २ ॥

[ १११२ ] ( आदित्यैः मरुद्भिः ) आदित्य और मरुतोंके तथा ( सगणः इन्द्रः ) गणोंके साथ रहनेवाला इन्द्र ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( भेषजा करत् ) औषधें तैय्यार करे, रोग दूर करे ॥ ३ ॥

[ १११३ ] हे मनुष्यो ! ( विप्राय वृत्रहन्तमाय ) ज्ञानी और वृत्रको मारनेवाले ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( वः ) तुम ( गाथं प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( यः जुजोषते ) जिन्हें वह सुनता है ॥ १ ॥

[ १११४ ] ( सु-अर्काः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी मरुत ( अर्कं अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं । ( श्रुतः युवा आ स्तोभति ) ज्ञानी युवा प्रशंसित होता है, ( सः इन्द्रः ) वही इन्द्र है ॥ २ ॥

[ १११५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते मधुमति प्रक्षे ) तेरे उत्तम निरीक्षणमें ( उपक्षियन्तः ) रहनेवाले हम ( पुष्येम ) पुष्ट हों और ( रयिं धीमहे ) धनोंको धारण करें ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

*

# सप्तम अध्याय

इस सातवें अध्यायमें अन्य देवताओंका वर्णन करनेवाले कुछ ही मंत्र हैं। जब कि सोमके वर्णन करनेवाले बहुत ज्यादा हैं। पहले हम अन्य देवोंका वर्णन देखेंगे, क्योंकि देवोंके लिए ही सोम है। प्रथम इन्द्रके वर्णन देखिए—

## इन्द्र

१ सुरूपकृत्नुं ऊतये द्यविद्यवि जुहुमसि [ १०८७ ] –सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं। जगत्में जो सौन्दर्य है, वह इन्द्रका ही बनाया हुआ है। ऐसे उस इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

२ आगहि, नः मा अतिख्यः [ १०८९ ]– हमारे पास आ, हमें छोडकर हमारी बात किसी दूसरेको न बता।

३ हे मन्तुमः ! दीर्घं अंकुशं शक्ति विभर्षि [ १०९१] –महान् शस्त्रके समान बलशाली शक्तिको तू धारण करता है। इन शस्त्रोंसे तू शत्रुके साथ लडकर उसको हरा।

४ हे सोमपाः ! नः सवना आगहि, सोमस्य पिब, रेवतः मदः गोदाः [ १०८८ ]– हे सोम पीनेवाले इन्द्र ! तू हमारे यज्ञमें आ, सोम पी। धनवानोंकी प्रसन्नता गाय देनेवाली होती है।

## इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है

१ दुर्हणायतः मर्त्तस्य स्थिरं अवतनुहि [ १०९२ [ –दुष्ट शत्रुके स्थिर बलको क्षीण कर।

२ यः अस्मान् अभिदासति तं अधस्पदं कृधि [१०९२]– जो हमें दास बनाना चाहता है, उसे दबा दे।

इन्द्रके ही ये कार्य हैं, इसलिए चारों ओरसे इन्द्रकी प्रशंसा होती है।

## इन्द्रको सोम दिया जाना

१ इन्द्राय पातवे सोमं पुनीतन [ १०५० ]– इन्द्रके पीनेके लिए तुम सोम छानकर तैय्यार करो।

२ हे इन्द्र ! विश्वा द्विषः अप भिन्धि [ १०७० ]– हे इन्द्र ! हमारे सब प्रकारके शत्रुओंको मार दे। इन्द्र सोमरस पीता है और उससे उत्साहित होकर ऐसे शूरवीरताके काम करता है।

३ बाधः परिजहि, स्पार्हं तद् आभर [ १०७० ] –बाधा डालनेवाले शत्रुओंको जीत और चाहने योग्य धनोंको हमें भरपूर दे। सोमपानके बाद इन्द्र यह सब करता है।

## इन्द्रका धन देना

१ हे इन्द्र ! ते दत्तस्य भूरेः यस्य विश्व-मानुषः आनुपक् वेदति [ १०७१ ]- हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए धनको सब मनुष्य एक साथ जानते हैं।

२ हे इन्द्र ! यत् वीडौ, यत् स्थिरे, यत् विपर्शाने, यत् पराभृतं तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७२ ]– हे इन्द्र ! जो धन मजबूत खजानेमें है, जो स्थिर जगहमें रखा हुआ है, न छुने योग्य जगहमें रखा हुआ है अथवा जो शत्रुओंको पराजित करके लाया गया है, उस चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे।

इस प्रकार इन्द्र धन देता है।

## अग्नि

अग्नि देवताके सम्बंधमें क्या कहा है, अब उस पर विचार करते हैं —

१ हे अग्ने ! ते सख्ये वयं मा रिषाम [ १०६४ ]– हे अग्ने ! तेरे साथ मित्रता होनेके बाद हमारा नाश होनेवाला नहीं है। तू हमारा मित्र हो गया है इसका मतलब ही यह है कि हमारी हर प्रकारसे रक्षा निस्सन्देह होगी।

२ हे अग्ने ! इध्मं भराम, ते हवींषि कृणवाम, जीवातवे धियः प्रतरां साधय [ १०६५ ]– हे अग्ने ! हम तेरे लिए समिधा एकत्रित करते हैं, तेरे लिए हवन सामग्री एकत्रित करते हैं, हमें दीर्घायु प्राप्त हो इसलिए हमारी बुद्धि श्रेष्ठ कर, हमारे कर्मोंको यशके साथ पूर्ण कर।

३ त्वं आदित्यान् आ वह [१०६६]– तू आदित्योंको यहां ले आ।

४ हे अग्ने ! त्वं नः अन्तमः, त्राता शिवः भव [ ११०७ ] हे अग्ने ! तू हमारे पासका मित्र है, अतः तू हमारा रक्षण करनेवाला और कल्याण करनेवाला हो।

५ वसुः वसुश्रवाः अग्निः द्युमत्तमः रयिं दाः [ ११०८ ]– हे अग्ने ! तू प्रत्यक्ष धन है, धनके लिए प्रसिद्ध है, तू अत्यन्त तेजस्वी है, ऐसा तू हमें धन दे।

६ हे शोचिष्ठ दीदिवः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशित होनेवाले अग्निदेव ! हमें सुख और पुत्रपौत्र मिलें इसलिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

इस प्रकार अग्निके सम्बन्धमें इस अध्यायमें मंत्र हैं। अब इन्द्र और अग्निके मंत्र देखिए—

## इन्द्र और अग्नि

१ तोशासा रथयाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्राग्नी ! तस्य बोधत [ १०७४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम शत्रुको मारनेवाले वीर हो, तुम रथसे जाते हो, वृत्रादि असुरोंको मारते हो, तुम्हारी कभी भी पराजय नहीं होती। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें तुम जानो।

२ वां अद्रिभिः मदिरं मधु अधुक्षन् [ १०७५ ]- तुम्हारे लिए पत्थरोंसे कूटकर यह आनन्ददायक रस निकाला गया है - इस रसको स्वीकार करो।

## मित्र, वरुण और अन्य देव

१ हे विप्राः ! इयं मतिः हिरण्यया राया, अवृकाय शवसे मेधसातये [ १०६८ ]- हे ज्ञानी मित्र और वरुणो ! हितकारक और रमणीय धनकी प्राप्तिके लिए, क्रूरतारहित बलकी प्राप्तिके लिए और बुद्धिकी प्राप्तिके लिए हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो।

२ इषं च स्वः धीमहि [ १०६९ ]- हम अन्न और आनन्द प्राप्त करनेवाले होवें।

३ आदित्यैः सह इन्द्रः नः यज्ञं, तन्वं प्रजां च सीषधातु [ ११११ ]- बारह आदित्योंके साथ इन्द्र हमारे यज्ञमें आवे तथा हमारे शरीरको और हमारे पुत्रपौत्रोंको उत्तम सहायता देवे।

इस प्रकार मित्र, वरुण और अन्य देवोंका वर्णन आया है। अब हम सोमका वर्णन, जिसका कि इस अध्यायमें विशेष महत्व है, देखते हैं।

## देवोंके लिए सोम

१ [ सुतः ] आदित्येभिः समख्यत [ १०८१ ]- सोम आदित्योंको प्राप्त होता है।

२ इन्द्रे वायुना सूर्यस्य रश्मिभिः सं [ १०८२ ]- इन्द्र, वायु और सूर्य किरणोंको भी प्राप्त होता है।

३ हे सोम ! यस्य ते इन्द्रः पिबात्, मरुतः, अर्यम्णा, भगः, मित्रावरुणा [ १०९७ ]- हे सोम ! तेरा रस इन्द्र पीता है, और मरुत्, अर्यमा, भग, मित्र और वरुण भी पीते हैं।

इस प्रकार यज्ञमें सब देव सोमरस पीते हैं।

## पर्वत पर सोम होता है

१ गिरिष्ठाः स्वानः सोमः पवित्रे परि अक्षरत्, मदेषु सर्वधा असि [ १०९३ ]- पर्वतपर होनेवाला सोम, रस निकालनेके बाद छलनीसे छाना जाता है। वह आनन्द बढानेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक आनन्द बढानेवाला है।

## सोम यज्ञकी आत्मा है

१ हे इन्दो ! यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा [ १०४५ ]- हे सोम ! तू यज्ञकी पहलेसे ही आत्मा है।

सोम न हो तो यज्ञ भी नहीं हो सकता। इसलिए इसको यज्ञकी आत्मा कहा है।

## सोमके गुण

१ यज्ञस्य ज्योतिः [ १०३१ ]- यज्ञका तेज।

२ प्रियं मधु [ १०३१ ]- प्रिय और मीठा।

३ पिता [ १०३१ ]- पिता, पालक।

४ जनिता [ १०३१ ]- उत्पन्नकर्ता, नाना प्रकारकी शान्ति उत्पन्न करनेवाला।

५ विभुः वसुः [१०३१]- बहुतसा वैभव जिसके पास है।

६ मदिन्तमः [ १०३१ ] -अत्यन्त आनन्द देनेवाला।

७ मत्सरः [ १०३१ ]- आनन्द देनेवाला।

८ इन्द्रियः [ १०३१ ]- इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाला, इन्द्रकी शक्ति बढानेवाला।

९ दिवः पतिः [ १०३२ ]- द्युलोकका स्वामी, द्युलोक पर रहनेवाला।

१० विचक्षणः [ १०३२ ]- विशेष ज्ञानी।

११ वाजी [ १०३२ ]- बलवान्, अन्नवान्।

१२ हरितः [ १०३२ ]- हरे रंगका।

१३ शुक्रः [ १०३४ ]- स्वच्छ, वीर्यवान्, बल बढानेवाला, बलवान्।

१४ आशुः [ १०३४ ]- शीघ्रतासे कार्य करनेवाला।

१५ सोमः [ १०३४ ]- सोम लता, सोमरस।

१६ इन्दुः [ १०३८ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।

१७ वृषा [ १०३८ ]– बलशाली, कामनाओंकी तृप्ति करनेवाला।

१८ द्युम्नवत्तमः [ १०३८ ]– बहुत चमकनेवाला।

१९ धर्णसिः [ १०३८ ]– धारकशक्ति बढानेवाला।

२० स्वायुधः [ १०५३ ]– उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त।

२१ मित्रः [ ११०१ ]– मित्रके समान हित करनेवाला।

२२ अरेपाः [ ११०१ ] निर्दोष, निष्कलंक।

२३ स्वाध्यः [ ११०१ ]– उत्तम निरीक्षण करनेवाला।

२४ स्वर्विदः [११०१]–स्वर्गको जानेवाला, आत्मज्ञानी।

२५ गातुवित्तमः [११०१]– उत्तममार्ग जाननेवाला।

२६ पूतः [ ११०२ ]- पवित्र, छना हुआ।

२७ विपश्चित्तः [ ११०२ ]– ज्ञानी।

२८ दध्याशिरः [ ११०२ ]– दही जिसमें मिलाया जाता है।

२९ घृते जिगत्नुः [११०२]– पानीमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला।

३० ध्रुवः [११०२]– जिसका परिणाम स्थिर रहता है।

३१ दर्शतः [ ११०२ ]– दर्शनीय, सुन्दर, देखने योग्य।

३२ वसुविद् अस्मभ्यं द्रपं समस्वरन् [ ११०३ ]– धनको पासमें रखनेवाला हमें उत्तम धन देवे।

३३ रसः स्वधयोः अपीच्यं रत्नं दधाति [१०३१] सोमरस इस द्युलोक और पृथ्वीलोकके उत्तम धनोंको देता है।

इस प्रकार इस सोमका वर्णन इस अध्यायमें है। सोमरस पीनेके बाद जो गुण वीरोंमें अथवा पीनेवालोंमें दिखाई देते हैं, वे सोमके ही हैं ऐसा समझना चाहिए। उपासक अपनेमें जो गुण बढाने योग्य हों उन्हें बढावें।

## बैलके चमडे पर कूटते हैं

१ गोः अधि त्वचि चितानाः वि अद्रिभिः सुष्वाणासः [ ११०३ ]– गाय अर्थात् बैलके चमडेपर अर्थात् चमडेको फैलाकर उस पर सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं। चमडेपर लकडीके पटले रखकर उसपर सोम कूटकर रस निकालते हैं।

## सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद वह छाननेके पहले पानीमें मिलाया जाता है—

१ सिन्धुभिः अनिभिः मर्मृजानः [१०२२]– नदीका पानी मिलाकर छलनीसे वह रस छाना जाता है।

२ सिन्धूनां अग्रे पवमानः अर्षसि [ १०३३ ]– नदियोंके पानीके पास वह शुद्ध होनेके लिए जाता है।

३ सुहस्त्या मृज्यमानः समुद्रे वाचं इन्वति [ १०७९ ]–उत्तम हाथोंकी अंगुलियोंसे शुद्ध किया जानेवाला सोमरस पानीके बर्तनमें शब्द करता हुआ जाता है।

४ मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व [ ११०४ ] इस उत्तम पानीमें मिल।

५ वृषा मित्रस्य सदनेषु सीदति [ १०३२ ]– यह बल बढानेवाला सोम मित्ररूपी यज्ञमें जाकर बैठता है, अर्थात् पानीके बर्तनमें रखा जाता है।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है।

## सोमका छाना जाना

सोमरस पानीमें मिलाकर उसे भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं।

१ गभस्त्योः मृज्यमानः अव्ये वारे पवते [१०३५] – हाथोंसे शुद्ध किया जानेवाला सोमरस भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है।

२ देववीः रंह्या पवित्रं अति पवस्व [ १०३७ ]– देवोंके पास जानेवाला सोम वेगसे छलनीसे छाना जाता है।

३ समुद्रः दिवः विष्टम्भः धरुणः सोमः पवित्रे अप्सु मामृजे [ १०४१ ]– जलमय द्युलोकको धारण करनेवाला सोम छलनीसे छानकर पानीमें शुद्ध किया जाता है।

४ आयवः त्वा सं मृजन्ति [ १०७७ ]– ऋत्विज तुझे उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं।

५ वृषा पुनानः अव्यये वारे पवमानः वने अचिक्रदत् [ १०८० ] बल बढानेवाला सोम भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता हुआ पानीमें शब्द करता हुआ गिरता है।

## सोमका शब्द करते हुए छाना जाना

१ अभिक्रन्दन् कलशं अर्षति [ १०३२ ]– शब्द करता हुआ कलशमें जाता है।

२ वृषा महान्, हरिः मित्रः न दर्शतः अचिक्रदत् [ १०४२ ]– बल बढानेवाला, महान्, दुःख दूर करनेवाला, मित्रके समान दर्शनीय, सोम शब्द करता हुआ बर्तनमें गिरता है।

नीचेके बर्तनमें पानी रहता है, उसमें ऊपरकी छलनीसे रस गिरनेसे शब्द होता है।

## सोमरस चमकता है

१ सोमः सूर्येण सं दिद्युते [ १०४२ ]- सोम सूर्यके समान चमता है ।

## सोमका गायके दूधमें मिलाया जाना

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे दूधमें मिलाते हैं।

१ गोषु अग्रं गच्छति [ १०३३ ]- गायके आगेके भागमें गिरता है। गायके दूधमें सोमरस मिलाया जाता है।

२ यत् गोभिः वासयिष्यसे, महान्तं त्वा सिन्धवः महीः अपः अनु अर्षन्ति [ १०४० ]- जिस समय तुझमें गायका दूध मिलाया जाता है, उससे पहले नदीका पानी अथवा दूसरा पानी लेकर मिलाया जाता है।

३ वीतये नृम्णा गव्यानि पुनानः अर्षसि [१०६२] -सोमरसको पीनेके पहले उत्तम गायका दूध स्वच्छ सोममें मिलाया जाता है।

## सोमरस पीना

१ सजोषसः विश्वेदेवासः त्वे पीतिं आशत [ १०९५ ]- एक साथ कार्य करनेवाले सब देव सोमको पीनेकी इच्छा करते हैं।

## सोम अन्न देता है

१ महि प्सरः आ च्यवस्व [ १०३८ ]- बहुत सारा अन्न हमें दे ।

२ नः गोमती विश्वा इषः अर्ष [१०६३]-हमें गायोंसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके धन दे । सोमरसमें गायके दूध, दही आदि पदार्थ मिलाये जाते है, इसलिए सोमरस पीनेसे गायोंसे मिलनेवाले धन प्राप्त होते हैं, ऐसा होता है। इस प्रकार सोम अन्न देता है । वह बल भी बढता है—

## सोम बल बढाता है

१ हे इन्दो ! [ अस्माकं ] इन्द्रियं मधोः धारया पवस्व [१०४६]- हे सोम ! हमारी इन्द्रियशक्ति अपनी मीठी धारासे बढा।

२ दक्षं क्रतुं सन [ १०४९ ]- बल और कर्मशक्ति बढा ।

३ अयं दक्षाय, शर्धाय, वीतये साधनः [ ११०० ] - यह सोम बल, सामर्थ्य और अन्नोंका साधन है, अर्थात् वह बल और सामर्थ्य बढानेवाला है ।

## सोम दीर्घायु देता है

१ तव क्रत्वा, तव ऊतिभिः ज्योक् सूर्यं पश्येम [१०५२]- हे सोम ! तेरी कर्तृत्वशक्ति और तेरे संरक्षणोंसे हम चिरकालतक सूर्यको देखते रहें । अर्थात् हम दीर्घ आयुवाले हों । सोम यदि ठीक रीतिसे पिया जाए तो आयु दीर्घ होती है ।

## सोम संरक्षण करता है

१ वसूनां उस्रा देवी मर्तस्य अवसः वेद [१०५८] - धन देनेवाली, चमकनेवाली सोमकी धारा संरक्षण करनेके हर प्रकारको जानती है ।

२ सोमाः महे अवसे धारया असृक्षत [ १०६१ ]- सोमरस महान् रक्षणके लिए धार बांधकर कलशमें गिरता है। इस प्रकार सोमरस अपने संरक्षणकी शक्ति बढाता है और वीरोंको अपनी रक्षा करनेमें समर्थ बनाता है ।

## सोम लोकसेवा करता है

१ लोककृत्नुं त्वा धृष्णवे मदाय ईमहे [ १०४४ ]- लोगोंका हित करनेवाले तुझ सोमको शत्रुके नाश करनेके लिए तथा आनन्द बढानेके लिए हम स्वीकार करते हैं। सोम पीनेसे वीरोंके शरीरोंमें उत्साह बढाता है, उसके कारण लोकसेवाके महान् महान् कार्य किये जा सकते हैं ।

## सोम शत्रुओंको दूर करता है

१ हे सोम ! दक्षं क्रतुं सन । मृधः अप जहि । नः वस्यसः कृधि [ १०४९ ]- हे सोम ! हमें बल और कर्म करनेके सामर्थ्य दे । शत्रुओंको दूर कर और हमारा कल्याण कर ।

२ हे वाजिन् ! समत्सु अनपच्युतः सासहिः अभि अर्ष [१०५४]- हे बलवान् सोम ! तू युद्धमें न हारनेवाला तथा शत्रुओंका हरानेवाला होकर आगे जा।

३ मही वृष-नाम इमे अस्य शूषे [११०६]- बहुतसे बाणोंकी शत्रुपर वर्षा करना और शत्रुको झुकाना ये सोमके दो सामर्थ्य हैं।

४ मांश्चत्वे, पृशने, वधत्रे, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयन्, अमित्रान्, अपाचितः, इतः अपचितः [११०६]- घोडोंके युद्धोंमें, बाहुओंके युद्धोंमें, हाथोंके युद्धोंमें शत्रुको सुलानेके समय अथवा शत्रुओंको भगानेके समय तू शत्रुओंको दूर कर और यहांसे भी शत्रुओंको दूर कर ।

इस प्रकार सोम शत्रुओंको दूर करता है। सोमरस पीनेसे वीरोंमें इस प्रकारसे युद्ध करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

## सोम धन देता है

१ सोमाः दाशुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवाः विश्वा वसु आ पवन्तां [ १०३६ ]- सोमरस दाताको स्वर्गीय, अन्तरिक्षीय और पार्थिव अर्थात् सभी प्रकारके धन देवे।

२ हे सोम ! गोषा, नृषा, अश्वसा उत वाजसा असि [ १०४५ ]- हे सोम ! तू गाय देनेवाला, पुत्र देनेवाला, घोडे देनेवाला, और अन्न देनेवाला है।

३ महिश्रवः सोम ! जेषि, नः वस्यसः कृधि [ १०४७ ]- हे प्रशंसित सोम ! तू विजय प्राप्त करता है। हमें यशस्वी कर।

४ ज्योतिः सन ! स्वः च विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेज दे। सुख तथा सब सौभाग्य दे।

५ द्विबर्हसं रयिं अभ्यर्ष [१०५३]- दोनों ही स्थानों पर उपयोगी होनेवाले धन दे।

६ नः चित्रं, अश्विनं, विश्वायुं रयिं आ भर [१०५६] - हमें विलक्षण, घोडोंसे युक्त, सब लोगोंका हित करनेवाले धन भरपूर दे।

७ सहस्राणि आदद्महे [ १०५९ ]- सहस्र प्रकारके धन हम प्राप्त करते हैं।

८ त्रिशतं सहस्राणि तना आदद्महे [ १०६० ]- तीनसौ और हजारों वस्त्रोंको हम लेते हैं।

९ पिशंगं पुरुस्पृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि [१०७९] - सुनहरे रंगके बहुतसे धन हमें दे।

१० सोमः वसूनां आ नेता, रायां, इडां, सुक्षितीनां [ १०९६ ]- सोम हमें धन, ऐश्वर्य, अन्न, तथा उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है।

११ अया पवा पवा वसूनि पवस्व [ ११०४ ]- इन धाराओंसे ही तू हमें धन दे।

१२ वैयुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत् [ ११०५ ]- शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम साठहजार धन शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए देवे।

१३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [१०२३]- बल बढानेके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त तू सोम ! महान् धन प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह सोम अनेक प्रकारके धन और ऐश्वर्यका देनेवाला है। सोम यदि शरीरमें वीरता लाता है, तो वह शत्रुको हराकर बहुतसा धन दे सकता है, इसमें कोई शंका नहीं। इस प्रकार विचार करनेसे यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि सोमसे किस प्रकार धन प्राप्त होता है।

---

## सुभाषित

१ यज्ञस्य ज्योतिः प्रियं मधु पवते [१०३१]- यज्ञकी ज्योति प्रिय और मधुर भाव उत्पन्न करती है।

२ विभूवसुः मदिन्तमः मत्सरः अपीच्यं रत्नं दधाति [ १०३१ ]- बहुतसा धन पासमें रखनेवाला और आनन्द बढानेवाला गुप्त स्थानमें रत्न धारण करता है, गुप्त स्थानमें धन रखता है।

३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०३३ ]- युद्धके लिए उत्तम शस्त्रोंसे तैय्यार हुआ हुआ वीर ही धन प्राप्त करता है।

४ ते दाशुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवा विश्वा वसु आ पवन्तां [ १०३६ ]- वह दाताको दिव्य, अन्तरिक्षीय और पार्थिव धन देता है।

५ वृषा द्युम्नवत्तमः धर्णसिः माहि प्सरः आ वच्यस्व [ १०३८ ]- तू बलवान् तेजस्वी और सबोंका धारण करनेवाला होकर बहुत अन्न हमें दे।

६ वृषा महान् हरिः, मित्रः नः दर्शतः [ १०४२ ]- बलवान्, महान्, दुःखोंका हरण करनेवाला और मित्रके समान दर्शनीय है।

७ लोककृत्नुं त्वा धृष्णवे मदाय ईमहे [१०४४]- लोगोंका कल्याण करनेवाले, तुझे शत्रुओंका नाश करनेके लिए और आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम प्राप्त करते हैं।

८ जेषि, अथ नः वस्यसः कृधि [१०४७]- तू विजय प्राप्त करता है, इसलिए हमें यशस्वी कर।

९ ज्योतिः सन, विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेजस्विता दे और सब सौभाग्य-ऐश्वर्य-दे।

१० दक्षं क्रतुं सन [१०४९]- बल और कर्मशक्ति दे।

११ मृधः अप जहि [ १०४९ ]- शत्रुओंको हरा।

१२ तव क्रत्वा तव ऊतिभिः नः आ भज [१०५१]

– अपने पुरुषार्थसे और अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी सहायता कर।

१३ ज्योक् सूर्यं पश्येम [ १०५२ ]– बहुत वर्षोंतक हम सूर्यको देखें। हमें दीर्घायु दे।

१४ हे स्वायुधः द्विबर्हसं रयिं अभ्यर्ष [ १०५३ ]– हे उत्तम शस्त्रास्त्र चलानेवाले वीर ! हमें दोनों ही जगहके धन दे।

१५ हे वाजिन् ! समत्सु अनपच्युतः सासहिः अभि अर्ष [ १०५४ ]– हे बलवान् वीर ! युद्धोंमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला तथा शत्रुओंको हरानेवाला होकर आगे जा।

१६ नः चित्रं विश्वायुं रयिं आ भर [ १०५६ ]– हमें विलक्षण, और पूर्ण आयु देनेवाले धन भरपूर दे।

१७ वसूनां उस्रा देवी मर्तस्य अवसः वेद [१०५८] – धन देनेवाली देवी मनुष्यके संरक्षणके सारे कार्य जानती है।

१८ नः गोमतीः विश्वाः इषः अर्ष [ १०६३ ]- हमें गायोंसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके अन्न दे।

१९ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा [१०६४]– इस सभामें हमारी बुद्धि उत्तम कल्याण करनेवाली हो।

२० हे अग्ने ! तव सख्ये वयं मा रिषाम [ १०६४ ] –हे अग्ने ! तेरी मित्रतामें रहकर हम निश्चयसे नष्ट होनेवाले नहीं।

२१ जीवातवे धियः प्रतरां साधय [१०६५]- दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिए हमारी बुद्धिकी पूर्णता कर।

२२ इयं मतिः हिरण्यया राया, अवृकाय शवसे मेधसातये [ १०६८ ]–यह बुद्धि हितकारक और रमणीय धन, क्रूरतारहित बल, बुद्धि और वैभवकी प्राप्ति करनेवाली हो।

२३ इषं च स्वः धीमहि [१०६९]- अन्न और स्वर्गीय आनन्द हमें प्राप्त हो।

२४ विश्वाः द्विषः अपभिन्धि [१०७०]- सब शत्रुओंका नाश कर।

२५ बाधः मृधः परिजाहि [ १०७० ]- बाधा करनेवाले और हिंसा करनेवाले शत्रुओंको दूर कर।

२६ स्पार्हं तत् वसु आभर [ १०७० ]- चाहने योग्य धनको हमें दे।

२७ ते दत्तस्य भूरेः विश्वमानुषः आनुषक् वेदति तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७१ ] तेरे द्वारा दिए गए धनको सब मनुष्य एकदम जानेंगे। अतः चाहने योग्य धन हमें दे।



२८ यत वीडौ, यत् स्थिरे, यत् विपर्शाने पराभृतं तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७२ ]– जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो स्थिर स्थानपर है तथा जो किसीसे न छुये जाने योग्य स्थानमें रखा हुआ है तथा जो शत्रुओंसे छीनकर लाया गया है, वे चाहने योग्य धन हमें भरपूर दे।

२९ तोशासा, रथयावाना, वृत्रहणा, अपराजिता [१०७४]- शत्रुओंको मारनेवाले, रथोंसे जानेवाले, शत्रुओंका नाश करनेवाले और पराजित न होनेवाले वीर हैं।

३० पिशंगं पुरुस्पृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि [१०७९] –सुनहरा, बहुतों द्वारा चाहने योग्य बहुत सारा धन हमें दे।

३१ ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यविद्यवि जुहूमसि [१०८७] हमारे संरक्षणके लिए उत्तम रूप बनानेवाले इन्द्रको हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

३२ मा नः अति ख्यः [ १०८९ ]– हमें दूर मत कर।

३३ हे मन्तुम ! दीर्घं अंकुशं शक्तिं बिभर्षि [१०९१] –हे ज्ञानवान् वीर ! तू महान् शक्तिवाले शस्त्रोंको धारण करता है।

३४ मदेषु सर्वधा असि [१०९४]- आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे श्रेष्ठ है।

३५ वसूनां, रायां, इडां सुक्षितीनां आ नेता [ १०९६ ]– वह धन, ऐश्वर्य, अन्न और उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है।

३६ नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत् [ ११०५ ]- शत्रुका नाश करनेवाला वीर साठहजार धन हमारे आनन्दके लिए देवे।

३७ मही वृष नाम इमे अस्य शूषे [ ११०६ ]- बहुत सारे बाण मारकर शत्रुको झुकानेवाला ही वीर है।

३८ मांश्चत्वे, पृशने, वधत्रे, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयत् [ ११०६ ]– यह कार्य घोडोंके युद्धमें, बाहुओंके युद्धमें, हाथोंके युद्धमें, शत्रुओंको सुलानेके समय अथवा शत्रुओंको भगानेके समय ही किया जाता है।

३९ अभित्रान् अपचितः इतः अपाचितः [११०६] –शत्रुओंको दूर कर, शत्रुओंको यहांसे भगा।

४० अग्ने ! नः अन्तमः त्राता शिवः भव [११०७] हे अग्रणी ! तू हमारे पास रह और हमारा रक्षण और कल्याण कर।

४१ द्युमत्तमः रयिं दाः [ ११०८ ]- तू तेजस्वी है, इसलिए हमें धन दे।

४२ शोचिष्ठः दीदिवः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशमान् देव ! सुखके लिए और मित्र प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं।

४३ इमा भुवना कं सीषधेम [ १११० ]- ये भुवन सुखके साधन बनें।

४४ इन्द्रः तन्वं प्रजां च सीषधातु [ ११११ ]- इन्द्र हमारे शरीर और पुत्रोंको सुखी करे।

४५ इन्द्र अस्मभ्यं भेषजा करत् [ १११२ ]- इन्द्र हमें औषधि प्रदान करे।

४६ वः उप प्र अर्च [ १११३ ]- तुम इन्द्रकी पाससे उपासना करो।

---

## उपमा

इस सातवें अध्यायमें उपमायें निम्न प्रकार हैं—

१ मित्रः न [१०४२]- मित्रके समान ( हरिः दर्शतः ) सोम देखने योग्य है।

२ वृष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १०४६ ]- वर्षा करनेवाले मेघके समान ( अस्माकं इन्द्रियं मधोः धारया पवस्व ) हमारा इन्द्रियसामर्थ्य मीठे रसकी धारासे पवित्र हो। मेघकी धारा और सोमरसकी धाराकी समानता यहां दिखाई है।

३ रथं इव [ १०६४ ]- रथ जिस प्रकार बनाते हैं, उसीप्रकार ( इमं स्तोमं सं महेम ) इन स्तोत्रोंको हम कहते हैं, इन स्तोत्रोंकी महिमाका वर्णन करते हैं।

४ चक्रयोः अक्षं न [ १०८५ ]- रथके दोनों ही पहियोंको जिसप्रकार धुरा मिलाता है या संयुक्त करता है, हे इन्द्र ! उसीप्रकार हमसे धनोंको संयुक्त कर।

५ शचीभिः अक्षं न [१०८६]- जिसप्रकार गाडीकी गतिसे उसकी धुराको गति मिलती है, उसीप्रकार ( जरितॄणां आ ऋणोः ) स्तोताओंकी प्रार्थनाके द्वारा तू उन्हें प्राप्त हो।

६ गो दुहे सुदुघां इव [१०८७]- गाय दुहनेके समय जिसप्रकार सरलतासे दूध देनेवाली गायोंको बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( सुरूप कृत्नुं ऊतये द्यवि द्यवि जुहूमसि ) उत्तम रूपवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

७ उषा इव [१०९०]- उषा जिसप्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार ( हे इन्द्र ! उभे रोदसी आ पप्राथ ) हे इन्द्र ! तू अपने प्रकाशसे द्यु और पृथ्वी दोनों लोकोंको भर दे।

८ यथा दीर्घं अंकुशं [ १०९१ ]- जिसप्रकार वीर हाथोंमें प्रखर शस्त्रोंको धारण करते हैं, उसीप्रकार तू ( शक्तिं बिभर्षि ) शक्तिको धारण करता है।

९ यथा अजः पूर्वेण पदा वया यम [१०९१]- जिस प्रकार बकरा अपने अगले पैरसे डालीको झुकाता है, उसीप्रकार तू शत्रुओंका नाश करता है अथवा ( देवी जनित्री अजीजनत् ) अदितिदेवीने तुझे पहले उत्पन्न किया।

१० शिशुं न [१०९८]- जिसप्रकार छोटे बालकको सजाते हैं, उसीप्रकार ( हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ) हवि और स्तुतियोंसे इस सोमको और स्वादिष्ट बनाते हैं।

११ मातृभिः वत्सः इव [१०९९]- जिसप्रकार मां अपने बच्चेको पानीसे साफ करती है, उसीप्रकार ( इन्दुः सं अज्यते ) सोम पानीमें धोया जाता है।

१२ सूरासः न [११०२]- सूर्यके समान ( सोमासः दर्शतासः ) सोमरस दर्शनीय हैं।

१३ वातः न [११०४]- वायुके समान ( ब्रध्नः जूतिं ) सूर्य वेगका आश्रय लेता है।

१४ वृक्षं पक्वं न [ ११०५ ]- वृक्ष जिसप्रकार पके हुए फलोंको देता है, उसीप्रकार ( नैगुतः वसूनि धूनवत् ) सोम धन देता है।

# सप्तमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १०३१ | ९।८६।१० | [ अकृष्ट माषावयः ] त्रयः ऋषयः | पवमानः सोमः | जगती |
| १०३२ | ९।८६।११ | [ अकृष्ट माषावयः ] त्रयः ऋषयः | " | " |
| १०३३ | ९।८६।१२ | [ अकृष्ट माषावयः ] त्रयः ऋषयः | " | " |
| १०३४ | ९।६४।४ | कश्यपो मारीचः | " | गायत्री |
| १०३५ | ९।६४।५ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| १०३६ | ९।६४।६ | कश्यपो मारीचः | " | " |
| १०३७ | ९।२।१ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०३८ | ९।२।२ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०३९ | ९।२।३ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४० | ९।२।४ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४१ | ९।२।५ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४२ | ९।२।६ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४३ | ९।२।७ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४४ | ९।२।८ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४५ | ९।२।१० | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १०४६ | ९।२।९ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| १०४७ | ९।४।१ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०४८ | ९।४।२ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०४९ | ९।४।३ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५० | ९।४।४ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५१ | ९।४।५ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५२ | ९।४।६ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५३ | ९।४।७ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५४ | ९।४।८ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५५ | ९।४।९ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | " | " |
| १०५६ | ९।४।१० | हिरण्यस्तूपः आंगिरसः | " | " |
| १०५७ | ९।५८।१ | अवत्सारः काश्यपः | " | " |
| १०५८ | ९।५८।३ | अवत्सारः काश्यपः | " | " |
| १०५९ | ९।५८।२ | अवत्सारः काश्यपः | " | " |
| १०६० | ९।५८।४ | अवत्सारः काश्यपः | " | " |
| १०६१ | ९।६२।२२ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| १०६२ | ९।६२।२२ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |
| १०६३ | ९।६२।२४ | जमदग्निर्भार्गवः | " | " |

*

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १०६४ | १।९४।१ | कुत्स आंगिरसः | अग्निः | जगती |
| १०६५ | १।९४।२ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |
| १०६६ | १।९४।३ | कुत्सः आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १०६७ | ७।६६।७ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | आदित्यः | गायत्री |
| १०६८ | ७।६६।८ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १०६९ | ७।६६।९ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १०७० | ८।४५।४० | त्रिशोकः काण्वः | इन्द्र | ,, |
| १०७१ | ८।४५।४२ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| १०७२ | ८।४५।४१ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| १०७३ | ८।३८।१ | श्यावाश्व आत्रेयः | इन्द्राग्नी | ,, |
| १०७४ | ८।३८।२ | श्यावाश्व आत्रेयः | ,, | ,, |
| १०७५ | ८।३८।३ | श्यावाश्व आत्रेयः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १०७६ | ९।६४।२२ | कश्यपो मारीचः | पवमानः सोमः | ,, |
| १०७७ | ९।६४।२३ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| १०७८ | ९।६४।२४ | कश्यपो मारीचः | ,, | ,, |
| १०७९ | ९।१०७।२१ | सप्तर्षयः | ,, | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| १०८० | ९।१०७।२२ | सप्तर्षयः | ,, | ,, |
| १०८१ | ९।६१।७ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | गायत्री |
| १०८२ | ९।६१।८ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| १०८३ | ९।६१।९ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ५ ) | | |
| १०८४ | १।३०।१३ | शुनःशेप आजीगर्तिः | इन्द्रः | ,, |
| १०८५ | १।३०।१४ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १०८६ | १।३०।१५ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १०८७ | १।४।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १०८८ | १।४।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १०८९ | १।४।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १०९० | १०।१३४।१ | मान्धाता यौवनाश्वः | ,, | महापंक्तिः |
| १०९१ | १०।१३४।६ | मान्धाता यौवनाश्वः ( पूर्वार्धस्य ) गोधा ऋषिका ( उत्तरार्धस्य ) | ,, | ,, |
| १०९२ | १०।१३४।२ | मान्धाता यौवनाश्वः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| १०९३ | ९।१८।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| १०९४ | ९।१८।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १०९५ | ९।१८।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १०९६ | ९।१०८।१३ | ऋणंचयो राजर्षिः | ,, | यवमध्या गायत्री |
| १०९७ | ९।१०८।१४ | शक्तिर्वासिष्ठः | ,, | सतो बृहती |
| १०९८ | ९।१०५।१ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | उष्णिक् |
| १०९९ | ९।१०५।२ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ११०० | ९।१०५।३ | पर्वतनारदौ काण्वौ | ,, | ,, |
| ११०१ | ९।१०१।१० | मनुः सांवरणः | ,, | अनुष्टुप् |
| ११०२ | ९।१०१।१२ | मनुः सांवरणः | ,, | ,, |
| ११०३ | ९।१०१।११ | मनुः सांवरणः | ,, | ,, |
| ११०४ | ९।९७।५२ | कुत्स आंगिरसः | ,, | त्रिष्टुप् |
| ११०५ | ९।९७।५३ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११०६ | ९।९७।५४ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |

( ७ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| ११०७ | ५।२४।१ | बन्धु, सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | अग्निः | द्विपदा विराट् |
|  |  | क्रमेण गोपायना लौपायना वा | ,, | ,, |
| ११०८ | ५।२४।२ | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | ,, | ,, |
|  |  | क्रमेण गोपायना लौपायना वा | ,, | ,, |
| ११०९ | ५।२४।३ | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | ,, | ,, |
|  |  | क्रमेण गोपायना लौपायना वा | ,, | ,, |
| १११० | १०।१५७।१ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः | विश्वेदेवाः | द्विपदा त्रिष्टुप् |
| ११११ | १०।१५७।२ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः | , | ,, |
| १११२ | १०।१५७।३ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः | ,, | ,, |
| १११३ | — | — | — | — |
| १११४ | — | — | — | — |
| १११५ | — | — | — | — |



# अथ अष्टमोऽध्यायः ।



अथ चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १ ( २-३ ) वृषगणो वासिष्ठः; १ ( ४-१२ ), २ ( १-९ ) असितः काश्यपो देवलो वा; २ ( १०-१२ ), ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ यजत आत्रेयः, ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ सिकता निवावरी; ८ पुरुहन्मा आंगिरसः; ९ पर्वतनारदौ काण्वौ शिखण्डिन्याबप्सरसौ काश्यपौ वा; १० अग्नयो धिष्ण्यो ऐश्वराः १२ वत्सः काण्वः; १३ नृमेध आंगिरसः; १४ अत्रिर्भौमः ॥ १-२, ७, ९-११ पवमानः सोमः ३, १२ अग्निः; ४ मित्रावरुणौ; ५, ८, १३-१४ इन्द्रः; ६ इन्द्राग्नी ॥ ( १-३, ) ३ त्रिष्टुप्; १ (४-१२), २, ४-६, ११-१२ गायत्री; ७ जगती; ८ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); ९ उष्णिक्; १० द्विपदा विराट्; १३ ( १-२ ) ककुप् १३ ( ३ ) पुर उष्णिक्; १४ अनुष्टुप् ॥

१११६ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।७ )

१११७ प्र हꣳसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
अङ्गोषिणं पवमानꣳ सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।८ )

१११८ स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९७।९ )

---

[ ६ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १११६ ] ( उशना इव ) उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणः ) काव्य बोलनेवाला ( देवः ) स्तुति करनेवाला ( देवानां जनिमा विवक्ति ) देवोंकी जीवन-कथाओंको उत्तम प्रकारसे कहता है। ( महि-व्रतः ) महान् कार्य करनेवाला ( शुचिः-बन्धुः पावकः वराहः ) शुद्ध बन्धुके समान पवित्र होनेवाला और उत्तम दिनोंमें तैय्यार किया गया सोम ( रेभन् पदा अभि-एति ) शब्द करते हुए पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

[ १११७ ] ( हंसासः वृषगणाः ) ज्ञानी वृषगण नामक ऋषि ( अमात् ) शत्रुके सामर्थ्यसे डरकर ( तृपला वग्नुं अच्छ अस्तं अयासुः ) सोम कूटनेका शब्द जहां हो रहा था, उस स्थानपर उसी समय गए। ( सखायः ) वे मित्ररूप ऋषि ( अङ्गोषिणं ) स्तुतिके योग्य, ( दुर्मर्षं ) शत्रुओंके द्वारा न सहने योग्य तथा ( पवमानं ) शुद्ध होते हुए सोमके लिए ( वाणं साकं प्रवदन्ति ) वाण नामक बाजेको बजाने लगे ॥ २ ॥

[ १११८ ] ( उरुगायस्य जूतिं ) अनेकोंके द्वारा की गई स्तुतिसे प्राप्त होनेवाली गतिको ( सः योजते ) वह सोम प्राप्त करता है। ( वृथा क्रीडन्तं गावः न मिमते ) सहज ही क्रीडा करनेवालेकी गतिको दूसरे गति करनेवाले माप नहीं सकते। ( तिग्मशृंगः ) तीक्ष्ण तेजसे युक्त सोम ( परीणसं कृणुते ) प्रकाश फैलाता है ( दिवा हरिः ददृशे ) दिनमें हरा दीखता है और ( नक्तं ऋज्रः ) रातमें प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ३ ॥

११११९ प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

११२० हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

११२१ राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०।३ )

११२२ परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥ ( ऋ ९।१०।४ )

११२३ आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१०।५ )

११२४ अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।६ )

११२५ समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥ ( ऋ ९।१०।७ )

११२६ नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।१०।८ )

---

[ १११९ ] ( रथाः इव ) रथ और ( अर्वन्तः न ) घोडे जिसप्रकार ( श्रवस्यवः ) यशकी इच्छा करते हुए ( राये प्राक्रमुः ) धन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं, उसीप्रकार ( स्वानासः सोमासः ) छाने जाते हुए सोम शब्द अथवा पराक्रम करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११२० ] युद्धमें जानेवाले ( रथाः इव ) रथके समान ( हिन्वानासः ) गतिमान् सोमको ( भरासः कारिणां इव ) भार ढोकर जानेवाले मजदूरके हाथोंपर जिसप्रकार बोझ रखते हैं, उसीप्रकार लोग ( गभस्त्योः दधन्विरे ) हाथोंमें धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[ ११२१ ] ( सोमासः ) ये सोम ( प्रशस्तिभिः राजानः न ) स्तुतियोंद्वारा राजा तथा ( सप्तधातृभिः यज्ञः न ) सात ऋत्विजोंके द्वारा यज्ञ जिसप्रकार सुशोभित होता है, उसीप्रकार ( गोभिः अंजते ) गायके घी आदियोंसे सुशोभित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

[ ११२२ ] ( स्वानासः इन्दवः ) निचोडे गए सोम ( बर्हणा गिरा ) महान् स्तोत्रोंसे प्रशंसित होनेके बाद ( मधोः धारया ) मीठे रसकी धारासे ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए ( परि अर्षन्ति ) कलशमें गिरते हैं ॥ ७ ॥

[ ११२३ ] ( विवस्वतः अपानासः ) इन्द्रके पीनेके लिए ( उषसः भगं जिन्वन्तः ) उषाका तेज बढाते हुए ( सूराः ) सोमरस ( अण्वं वितन्वते ) शब्द करते हैं ॥ ८ ॥

[ ११२४ ] ( मतीनां कारवः ) स्तुति करनेवाले ( प्रत्नाः ) प्राचीन ( वृष्णः हरसः ) बलवान् सोमको लानेवाले ( आयवः ) मनुष्य ऋत्विज ( द्वारा अप ऋण्वन्ति ) यज्ञके दरवाजे खोलते हैं ॥ ९ ॥

[ ११२५ ] ( समीचीनासः ) श्रेष्ठ ( जातयः ) जातिके ( एकस्य पदं पिप्रतः ) अकेले सोमके स्थानको पूर्ण करते हुए ( सप्त आशत ) सात होतागण यज्ञ करनेके लिए बैठते हैं ॥ १० ॥

[ ११२६ ] ( चक्षुषा सूर्यं दृशे ) आखोंसे सूर्यको देखनेके लिए ( नाभिः ) यज्ञकी नाभिरूप सोमको ( नः नाभा आददे ) अपनी नाभिके पास अर्थात् पेटके समीप रखता हूं ( कवेः अपत्यं ) इसप्रकार करनेसे सोमके पुत्ररूपी तेजको मैं ( आ दुहे ) पूर्ण तेजस्वी करता हूं ॥ १० ॥

११२७ अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ १ (भ्रै) ॥
[ धा० ५७ । उ० ४ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१०।९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ २ ]

११२८ असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७।१ )
११२९ प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७।२ )
११३० प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।७।३ )
११३१ परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।७।४ )
११३२ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।७।५ )
११३३ अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।७।६ )

---

[ १२७ ] ( सूरः ) इन्द्र ( चक्षसा ) नेत्रोंसे ( दिवः प्रियं पदं ) द्युलोकमें प्रिय और ( गुहाहितं ) हृदयमें रखे हुए सोमको ( अभि पश्यति ) देखता है ॥ १२ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११२८ ] ( अस्य योजना विदानाः ) इस यजमानके द्वारा बनाये गए देवता सम्बन्धी योजनाओंको जानकर ( सुश्रियः इन्दवः ) उत्तम सुशोभित हुए हुए सोम ( धर्मन् ) धर्मके समान ( ऋतस्य पथा ) यज्ञके मार्गसे ( असृग्रं ) तैय्यार किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११२९ ] ( हविःषु वन्द्यः हविः ) हवियोंमें प्रशंसनीय सोम ( महीः अपः विगाहते ) बहुत सारे जलोंमें स्नान करता है । ( मधोः अग्रियः धाराः प्र ) मीठे रसकी मुख्य धार कलशमें गिरती है ॥ २ ॥

[ ११३० ] ( अग्रियः युजा वाचः प्र ) हवियोंमें मुख्य यह सोम स्तोत्रोंको प्रकट करता है । ( वृषः सत्यः अध्वरः ) बलवान्, सत्यस्वरूप और हिंसा न करनेवाला सोम ( सद्म अभि ) यज्ञशालामें ( वने अचिक्रदत् ) जलमें शब्द करता हुआ आता है ॥ ३ ॥

[ ११३१ ] ( कवि नृम्णा पुनानः ) यह दूरदर्शी सोम अपने बलोंसे मनुष्योंको शुद्ध करते हुए ( काव्या यत् परि अर्षति ) जब स्तुतिको प्राप्त होता है तब ( स्वः वाजी सिषासति ) स्वर्गसे बलवान् इन्द्र यज्ञमें आनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

[ ११३२ ] ( यत् ईं ) जब इस सोमको ( वेधसः ऋण्वन्ति ) ऋत्विज प्रेरणा देते हैं तब ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( स्पृधः अभिसीदति ) शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए तैय्यार होता है ( विशः राजा इव ) प्रजाओंके शत्रुओंको दूर करनेके लिए जिसप्रकार राजा जाता है, उसीप्रकार यह सोम भी जाता है ॥ ५ ॥

[ ११३३ ] ( हरिः प्रियः ) हरे रंगका प्रिय सोम ( वनेषु ) पानीमें मिलाया जाकर जब ( अव्याः वारे परि-सीदन्ति ) बालोंकी बनी छलनीसे छान. जाता है, तब ( रेभः मती वनुष्यते ) शब्द करते हुए स्तुतिको वह स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

११३४ स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥ ( ऋ. ९।७।७ )

११३५ आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त उर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥ ( ऋ. ९।७।८ )

११३६ अस्मभ्यꣳ रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥ ( ऋ ९।७।९ )

११३७ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ( ऋ. ९।६५।२८ )

११३८ आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥ ( ऋ. ९।६५।२९ )

११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनुष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥ २ ( ज ) ॥

[ धा० ३८ । उ० ९ । स्व० ११ ] ( ऋ. ९।६५।३० )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

---

[ ११३४ ] ( यः अस्य धर्मणा रणा ) जो यजमान इस सोमके निचोडने आदि कार्योंमें व्यस्त रहता है, ( सः वायुं इन्द्रं अश्विना ) वह वायु, इन्द्र और अश्विनौ देवोंके पास ( मदेन साकं गच्छति ) आनन्द देनेवाले सोमके साथ पहुंचता है ॥ ७ ॥

[ ११३५ ] जिन यजमानोंके ( मधोः ऊर्मयः ) मीठे सोमकी लहरें ( मित्रे वरुणे भगे पवन्ते ) मित्र, वरुण और भगके लिए बहती हैं, वे यजमान ( अस्य [ सोमस्य ] विदानाः ) इस सोमके महत्वको जानकर ( शक्मभिः ) सुखसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

[ ११३६ ] हे ( रोदसी ) द्युलोक और पृथिवी देवो ! तुम ( मध्वः वाजस्य सातये ) इस मधुर सोमरसरूपी अन्नकी प्राप्तिके लिए ( अस्माकं ) हमें ( रयिं श्रवः वसूनि ) धन, अन्न और सम्पत्ति ( संजितं ) तथा जय प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

[ ११३७ ] हे सोम ! यज्ञ करनेवाले हम ( मयो भुवं ) सुख देनेवाले ( वह्निं ) धन देनेवाले ( पान्तं ) संरक्षण करनेवाले ( पुरु-स्पृहं ) अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( ते दक्षं अद्य आ वृणीमहे ) तेरे बलको आज अपने पास चाहते हैं ॥ १० ॥

[ ११३८ ] हे सोम ! ( मन्द्रं आ ) आनन्द देनेवाले तेरी हम आराधना करते हैं। ( वरेण्यं आ ) श्रेष्ठ या चाहने योग्य तेरी हम सेवा करते हैं। ( विप्रं आ ) ज्ञानयुक्त तेरी हम उपासना करते हैं। ( मनीषिणं आ ) बुद्धिसे युक्त तेरी हम स्तुति करते है ( पान्तं पुरुस्पृहं आ ) रक्षण करनेवाले और अनेकों द्वारा स्तुति करने योग्य तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ ११ ॥

[ ११३९ ] हे ( सुक्रतो ) उत्तम यज्ञ करनेवाले सोम ! ( रयिं आ ) धनके लिए हम प्रार्थना करते है, ( सुचेतुनं आ ) उत्तम ज्ञानके लिए हम प्रार्थना करते हैं, ( तनुषु आ ) पुत्रपौत्रोंके लिए हम प्रार्थना करते हैं। ( पान्तं पुरुस्पृहं आ ) रक्षण करनेवाले और बहुतों द्वारा प्रशंसनीय तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ र ३ २ ३ २
११४० मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
कवि॰ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
१ २र ३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
११४१ त्वां विश्वे अमृतं जायमान॰शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।७।४ )
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
११४२ नाभिं यज्ञाना॰ सदन॰ रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
३ २ ३ २ र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वैश्वानर॰ रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥ ३ ( कु ) ॥
[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ६।७।२ )
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
११४३ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ ५।६८।१ )
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
११४४ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।६८।२ )
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
११४५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ४ ( र ) ॥
[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ५।६८।३ )

---

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११४० ] ( दिवः मूर्धानं ) द्युलोकके मस्तक, ( पृथिव्याः अरतिं ) भूमिमें जानेवाले, ( वैश्वानरं ) सब मनुष्योंके हितकारक, ( ऋते आ जातं ) यज्ञके लिए उत्पन्न हुए हुए, ( कविं सम्राजं ) ज्ञानी और सम्राट्, ( जनानां अतिथिं ) लोगों द्वारा पूजनीय, और ( आसन् ) देवताओंके मुखरूपी ( नः पात्रं अग्निं ) हमारे संरक्षक अग्निको ( देवाः आ जनयन्त ) ऋत्विज यज्ञमें अरणियोंसे उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

[ ११४१ ] हे ( अमृत ) अमर अग्ने ! ( विश्वे देवाः ) सब देव सब ऋत्विज ( जायमानं त्वां ) प्रकट होते ही तुझे ( शिशुं न अभि सं नवन्ते ) बालकके समान सम्मानित करते हैं। हे ( वैश्वानर ) विश्वके नेता अग्ने ! ( यत् पित्रोः अदीदेः ) जब पालन करनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें तू प्रदीप्त हुआ, तब यजमान ( तव क्रतुभिः ) तेरे यज्ञके कारण ( अमृतत्वं आयन् ) देवत्वको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

[ ११४२ ] ( यज्ञानां नाभिं ) यज्ञकी नाभि ( रयीणां सदनं ) धनके भण्डार ( महां आहावं ) जिसमें बडी बडी आहुतियें दी जाती हैं ऐसी अग्निकी ( अभि सं नवन्ते ) ऋत्विजलोग स्तुति करते हैं। ( वैश्वानरं ) सब विश्वके नेता ( अध्वराणां रथ्यं ) हिंसारहित यज्ञके चालक ( यज्ञस्य केतुं ) यज्ञके ध्वज ऐसे अग्निको ( देवाः जनयन्त ) ऋत्विजोंने मथ करके उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

[ ११४३ ] हे ऋत्विजो ! ( वः मित्राय वरुणाय ) तुम मित्र और वरुणके लिए ( विपा गिरा गायत ) मोटी आवाजसे गायन करो। ( महि-क्षत्रौ ) महान् क्षात्रतेजसे युक्त मित्र और वरुणो ! ( ऋतं बृहत् ) यज्ञके स्थानपर बडी स्तुति सुननेके लिए आओ ॥ २ ॥

[ ११४४ ] ( या मित्रः वरुणः च ) जो मित्र और वरुण ( उभा सम्राजा ) दोनों ही सम्राट् हैं, ( घृत-योनी देवा ) जल उत्पन्न करनेवाले तथा प्रकाशमान् ( देवेषु प्रशस्ता ) देवोंमें प्रशंसनीय हैं ॥ २ ॥

[ ११४५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण ( नः ) हमें ( दिव्यस्य पार्थिवस्य ) द्युलोकपरके और पृथ्वीपरके ( महः रायः शक्तं ) महान् धन देनेमें समर्थ हैं। हे देवो ! ( वां ) तुम दोनोंके ( महि क्षत्रं ) महान् क्षात्रबल ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

११४६ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥ ( ऋ. १।३।४ )

११४७ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥ ( ऋ. १।३।५ )

११४८ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥ ५ ( ही ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।३।६ )

११४९ तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

( ऋ ६।६०।१० )

११५० य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥ ( ऋ ६।६०।११ )

११५१ ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥ ६ ( य ) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।६०।१२ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

११५२ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतꣳसखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१६ )

---

[ ११४६ ] हे ( चित्रभानो इन्द्र ) विशेष प्रकाशमान् इन्द्र ! ( आयाहि ) आ। ( अण्वीभिः सुताः ) अंगुलियोंसे निचोडे गए ( तना पूतासः ) उत्तम शुद्ध करके रखे गए ( इमे ) ये सोमरस ( त्वायवः ) तेरे लिए हैं ॥ ५ ॥

[ ११४७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( धिया इषितः ) बुद्धिसे प्रेरित होकर ( विप्रजूतः ) ऋत्विजों द्वारा बुलाया गया तू ( सुतावतः वाघतः ) सोमरस तैय्यार करके स्तुति करनेवालोंके द्वारा बोले जानेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्रोंको सुननेके लिए ( उप आयाहि ) यज्ञके पास आ ॥ २ ॥

[ ११४८ ] हे ( हरिवः ) घोडे पालनेवाले इन्द्र ! तू ( तूतुजानः ) शीघ्र ही ( ब्रह्माणि उप ) स्तोत्र सुननेके लिए पास आ और ( सुते नः चनः दधिष्व ) इस यज्ञमें हमारी हवियोंको ग्रहण कर ॥ २ ॥

[ ११४९ ] ( यः अर्चिषा ) जो अपने तेजसे ( विश्वा वना ) सब वनोंको ( परिष्वजत् ) घेर लेता है, और ( जिह्वया कृष्णा कृणोति ) ज्वालासे सबको काला कर देता है । ( तं ईडिष्व ) उस अग्निकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[ ११५० ] ( यः मर्त्यः ) जो ऋत्विज ( इद्धे ) प्रदीप्त हुई अग्निमें ( इन्द्रस्य सुम्नं ) इन्द्रको सुखदायक हवि ( आ विवासति ) अर्पण करता है, उसके ( द्युम्नाय ) तेजके लिए ( सुतराः अपः ) उत्तम और सरलतासे पार करने योग्य पानी इन्द्र देता है ॥ २ ॥

[ ११५१ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( ता ) वे तुम ( इन्द्रं च अग्निं आ वोढवे ) इन्द्र और अग्निको देवताओंकी ओर पहुंचानेके लिए ( नः ) हमें ( वाजवतीः इषः ) बल बढानेवाले अन्न और ( आशून् अर्वतः ) शीघ्र चलनेवाले घोडे ( पिपृतं ) दो ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ११५२ ] ( इन्दुः ) सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके पेटमें ( प्रो अयासीत् ) गया । ( सखा ) मित्ररूपी यह सोम ( सख्युः न ) अपने मित्ररूपी इन्द्रके ( सं गिरं न प्रमिनाति ) पेटमें कोई कष्ट नहीं देता, ( मर्यः युवतिभिः इव ) पुरुष जैसे तरुण स्त्रियोंसे मिलता है, उसीप्रकार ( सोमः समर्षति ) सोम पानीके साथ मिलाया जाता है, बादमें वह सोम ( शतयामना पथा ) सैंकडों तरहसे जाने योग्य मार्गसे ( कलशे ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११५३ प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।
२ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।१७ )

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११५४ आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ७ ( ठि ) ॥

[ धा० २८ । उ० २ । स्व० ३ । ( ऋ ९।८६।१८ )

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११५५ न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।३ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११५६ अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २ ॥ ८ ( ही ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ऋ. ८।७०।४ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ११५३ ] हे सोम ! ( वः धियः ) तुम्हारी बुद्धिका ध्यान करनेवाले ( मन्द्रयुवः ) आनन्दवर्धक ( पनस्युवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( विपन्युवः ) स्तोताजन ( संवरणेषु प्राक्रमुः ) यज्ञमण्डपमें यज्ञकर्म करने लगते हैं, तब ( स्तुभः ) स्तुति करनेवाले ( हरिं क्रीडन्तं ) हरे रंगके तथा खेलनेवाले तुम सोमकी ( अभ्यनूषत ) स्तुति करते हैं, उस समय ( धेनवः ) गायें ( पयसा इत् अभिशिश्रयुः ) अपने दूधसे इस सोमकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

[ ११५४ ] ( पवमान इन्दो सोम ) हे शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! ( या [ इट् ] ) जो अन्न ( नः अहन् त्रिः असश्चुषी ) हमारे एकदिनके तीनों सवनोंमें बाधा न डालते हुए ( क्षुमत् वाजवत् ) प्रसिद्ध बलवर्धक ( मधुमत् सुवीर्यं दोहते ) उत्तमतासे युक्त उत्तम वीरपुत्र देता है । उस ( नः संयुतं पिप्युषीं इषं ) हमारे द्वारा लाये गए पोषक अन्नको ( ऊर्मिणा पवस्व ) अपनी लहरोंसे शुद्ध कर ॥ ३ ॥

[ ११५५ ] ( यः ) जो यज्ञकर्ता ( सदावृधं विश्वगूर्तं ) सदा बढानेवाले, सबोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य, ( ऋभ्वसं ) महान् ( ओजसा अधृष्टं ) अपनी शक्तिसे अपराभूत अर्थात् शत्रुसे न हारनेवाले ( धृष्णुं ) पर शत्रुओंको हरानेवाले ( न इन्द्रं ) प्रशंसित इन्द्रका ( यज्ञैः चकार ) यज्ञोंसे सत्कार करता है, ( तं ) उसको ( कर्मणा न किः नशत् ) अपने कर्मोंसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ १ ॥

[ ११५६ ] ( यस्मिन् जायमाने ) जिस इन्द्रके प्रकट होते ही ( महीः उरुज्रयः धेनवः ) महान् वेगवान् गायें ( समनोनवुः ) उसे प्रणाम करती हैं, उसीप्रकार ( द्यावः क्षामीः समनोनवुः ) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी जिसके आगे झुकते हैं उस ( अषाढं उग्रं ) शत्रुको हरानेवाले, भयंकर और ( पृतनासु सासहिं ) युद्धमें साहस दिखानेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
११५७ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत । शिशुं नः यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०४।१ )

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ५ १ २ ३ १ २र
११५८ समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं३मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥
( ऋ. ९।१०४।२ )

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
११५९ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ९ (पि)॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०४।३ )

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
११६० प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१६ )

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
११६१ स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१७ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
११६२ प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० (पु) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०९।१८ )

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
११६३ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।२२ )

१ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र २ ३ १ २ ३ १ २
११६४ य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२३ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ११५७ ] हे ( सखायः ) ऋत्विजो ! ( आ निषीदत ) बैठो, ( पुनानाय प्रगायत ) शुद्ध होनेवाले सोमके लिए गान करो, ( शिशुं न ) बालकको जिसप्रकार पिता आभूषणोंसे सजाता है, उसीप्रकार ( यज्ञैः श्रिये परिभूषत ) यज्ञोंसे इसकी शोभा बढाओ ॥ १ ॥

[ ११५८ ] हे ऋत्विजो ! ( गय-साधनं ) घरके साधनरूप ( देवाव्यं मदं ) देवोंके रक्षक और आनन्द बढानेवाले ( द्वि-शवसं ईं ) दोनों प्रकारके बल बढानेवाले इस सोमको ( मातृभिः वत्सं न ) माताओंके साथ जिसप्रकार बच्चे मिलकर रहते हैं, उसीप्रकार ( अभि संसृजत ) जलोंके साथ मिलाओ ॥ २ ॥

[ ११५९ ] ( शर्धाय ) वेगके लिए ( वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( मित्राय, वरुणाय ) मित्र और वरुणके लिए ( यथा शंतमं ) जिसप्रकार अधिक सुख हो उसप्रकार ( दक्ष-साधनं पुनाता ) बल बढानेवाले सोमको शुद्ध करो ॥ ३ ॥

[ ११६० ] ( वाजी सहस्रधारः ) बलवान् और अनेक धाराओंसे छाना जानेवाला सोम ( अव्यं वारं पवित्रं तिरः प्राक्षाः ) बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११६१ ] हे ( सहस्र-रेताः ) अनेक बलोंसे युक्त ( अद्भिः मृजानः ) जलसे धोया जानेवाला ( गोभिः श्रीणानः सः वाजी ) गायके दूधसे मिलाया जानेवाला वह बलवान् सोम ( अक्षाः ) छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ११६२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृभिः येमानः ) ऋत्विजोंके द्वारा नियममें रखा गया ( अद्रिभिः सुतः ) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया तू ( इन्द्रस्य कुक्षा ) इन्द्रके पेटमें ( प्र याहि ) भर जा ॥ ३ ॥

[ ११६३ ] ( ये सोमासः ) जो सोम ( परावति ) दूरके देशमें तथा ( ये अर्वावति सुन्विरे ) जो पासके देशमें छाने जाते हैं, ( वा ये अदः शर्यणावति ) अथवा जो इस शर्यणावत् नामक सरोवरके पास छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११६४ ] ( ये आर्जीकेषु ) जो सोम ऋजीक देशमें ( ये कृत्वसु ) जो कर्म करनेवालोंके देशमें ( पस्त्यानां मध्ये ) जो नदीके किनारे ( वा ये पंचसु जनेषु ) अथवा जो पंचजनोंके बीचमें छाना जाता है, वह हमें सुख देवे ॥ २ ॥

११६५ ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ ११ (चि) ॥
[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६५।२४ )

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

११६६ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।११।७ )

११६७ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।११।८ )

११६८ समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥ १२ ( ठा ) ॥
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।११।९ )

११६९ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९८।१० )

११७० त्वꣳ हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥
( ऋ. ८।९८।११ )

११७१ त्वाꣳ शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥ १३ (ल)॥
[ धा १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९८।१२ )

---

[ ११६५ ] ( स्वानाः देवासः इन्दवः ) निचोडे गए ये चमकनेवाले सोमरस ( नः दिवस्परि ) हमें द्युलोकसे ( वृष्टिं सुवीर्यं आ पवन्ताम् ) वृष्टि और उत्तम पराक्रम युक्त अन्न देवें ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ११६६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( वत्सः ) वत्स ऋषि ( गिरा त्वां कामये ) तेरी स्तुति करके मांगता है, कि ( ते मनः ) तेरा मन ( परमात् चित् सधस्थात् ) बहुत ऊंचे स्थानसे भी ( आ यमत् ) यहां आवे ॥ १ ॥

[ ११६७ ] हे अग्ने ! ( तू ( पुरुत्रा हि सदृङ् असि ) सब जगह एक जैसी दृष्टि रखनेवाला है, इस कारण तू ( विश्वाः दिशः अनु प्रभुः ) सब दिशाओंके अनुकूल प्रभू है, इसलिए ( समत्सु त्वा हवामहे ) संग्राममें तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ११६८ ] ( समत्सु वाजयन्तः ) संग्राममें बलका उपयोग करनेवाले हम ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( वाजेषु ) संग्राममें ( चित्र-राधसं ) विलक्षण पराक्रम करनेवाले ( अग्निं हवामहे ) अग्निको सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११६९ ] ( शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र ) हे सैकडों कर्म करनेवाले विशेष ज्ञानी इन्द्र ! तू ( नः नृम्णं ओजः आ भर ) हमें पौरुषयुक्त बल भरपूर दे, उसीप्रकार ( पृतना-सहं वीरं आ ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाले वीरपुत्र दे ॥ १ ॥

[ ११७० ] हे ( वसो शतक्रतो ) निवासक और सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः पिता बभूविथ ) तू हमारा पिता है । ( त्वं माता ) तू माता है । ( अथ ते सुम्नं ईमहे ) इसलिए तेरे पास हम सुख मांगते हुए आते हैं ॥ २ ॥

[ ११७१ ] हे ( सहस्कृत ) बलके लिए प्रसिद्ध ( शुष्मिन् ) सामर्थ्यवान् और ( पुरुहूत ) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( वाजयन्तं त्वा उपब्रुवे ) बलवान् तेरी हम स्तुति करते हैं ( सः नः सुवीर्यं रास्व ) वह तू हमें उत्तम वीर्य दे ॥ ३ ॥

११७२ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥ ( ऋ ९।३९।१ )

११७३ यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥
( ऋ ९।३९।२ )

११७४ यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥ १४ ( पी ) ॥
[ धा० २९ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।३९।३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥ चतुर्थप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

[ ११७२ ] हे ( अद्रिवः चित्र इन्द्र ) वज्रधारी विलक्षण बलवान् इन्द्र ! ( त्वादातं यत् मे इह नास्ति ) तेरे द्वारा दिए गए जो धन मेरे पास यहां नहीं हैं। हे ( विदद्वसो ) धनयुक्त इन्द्र ! उन धनोंको ( तत् उभयाहस्ती ) दोनों ही हाथोंसे ( नः आभर ) हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[ ११७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे ) जिसे तू तेजस्वी और श्रेष्ठ मानता है ( तत् आभर ) वह धन हमें भरपूर दे। ( ते वयं ) वे हम ( तस्य अकूपारस्य ) उस उत्तम धनके ( दावनः ) दान लेनेवाले होवें ॥ २ ॥

[ ११७४ ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते दिक्षु प्रराध्यं ) तेरा नाना दिशाओंमें प्रशंसनीय ( श्रुतं बृहत् यत् मनः अस्ति ) तथा सुप्रसिद्ध महान् जो मन है, ( तेन दृढा चित् ) इस मनसे दृढसे दृढ धनको भी ( वाजं सातये आदर्षि ) बल बढानेके लिए हमें दे ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

# अष्टम अध्याय

देवोंका राजा इन्द्र है। उसके गुण इस आठवें अध्यायमें इसप्रकार हैं—

१ चित्र-भानुः [ ११४६ ]– विलक्षण प्रकाश करनेवाला।

२ सदा-वृधः [ ११५५ ]– हमेशा बढते रहनेवाला।

३ विश्व-गूर्तः [ ११५५ ]– सबके द्वारा स्तुति करने योग्य, प्रशंसनीय।

४ ऋभ्वसः [ ११५५ ]– महान्, बडा।

५ ओजसा अ-धृष्टः [ ११५५ ]– अपनी विशेष शक्तिके कारण कभी भी हारनेवाला नहीं है, हमेशा विजयी।

६ अषाढः [ ११५६ ]– शत्रुको हरानेवाला, स्वयं कभी न हारनेवाला।

७ उग्रः [ ११५६ ]– उग्रवीर, शूर।

८ पृतनासु सासहिः [ ११५६ ]– युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला, संग्राममें विजयी।

९ शतक्रतुः [ ११६९ ]- सैकडों महान् कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला।

१० विचर्षणिः [ ११६९ ]- विशेष ज्ञानी।

११ वसुः [ ११६९ ]- धनवान्, निवास करानेवाला।

१२ सहस्कृतः [ ११७१ ]- बलके लिए प्रसिद्ध।

१३ पुरुहूतः [ ११७१ ]- बहुत लोग जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं।

१४ वाजयन् [ ११७१ ]- बलशाली, सामर्थ्यवान्।

१५ अद्रिवः [ ११७२ ]- वज्र हाथोंमें धारण करनेवाला। पहाडपर किलेमें रहनेवाला।

१६ चित्रः [ ११७२ ]- विलक्षण, बलशाली।

१७ विदद्वसुः [ ११७२ ]- धनयुक्त, धनका दान करनेवाला।

१८ विवस्वान् [ ११७३ ]- विशेष तेजस्वी।

ये गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं। ये गुण यदि उपासक अपने अन्दर बढालें तो उनकी चारों ओर प्रशंसा होगी। मनुष्य इस रीतिसे उन्नत हों, इसीलिए ये देवोंके गुण यहां कहे हैं। अब इन्द्रके दूसरे वर्णन देखें—

१ धिया इषितः विप्रजूतः सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि उप आयाहि [ ११४७ ]- हे इन्द्र ! बुद्धिपूर्वक प्रार्थना करके बुलाया गया, ब्राह्मणोंके द्वारा निमंत्रित, सोमरस जिसके लिए तैय्यार किया गया है, जिसकी स्तुति चलती है ऐसा तू स्तोत्रोंको सुननेके लिए यज्ञके पास आ।

२ यः मर्त्यः इन्द्रे इन्द्रस्य सुम्नं हविः आ विवासति, द्युम्नाय सुतराः अपः [ ११५० ]- जो मनुष्य प्रदीप्त अग्निमें इन्द्रको प्रिय लगनेवाले हवि द्रव्योंका अर्पण करता है उसके तेजके लिए इन्द्र वृष्टि करके उत्तम तैरने योग्य पानी देता है।

इन्द्र देवताके प्रेमके लिए कुछ विशेष हवनीय द्रव्य हैं। अग्नि जलाकर उन द्रव्योंका हवन करनेसे अच्छी वर्षा होती है, और उससे बहुत पानी होता है। ये हवन द्रव्य कौनसे हैं उनकी खोज आवश्यक है।

३ ओजसा अ-प्रधृष्टं इन्द्रं यज्ञैः चकार, तं न किः कर्मणा नशत् [ ११५५ ]- अपने सामर्थ्यसे नित्य विजयी इन्द्रका यज्ञोंसे जो सत्कार करता है, उसे अपने कर्मोंमें कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। इतना उस यज्ञकर्त्ताका सामर्थ्य बढता है। यज्ञ करनेका अर्थ केवल सत्कार करना ही नहीं है, अपितु ( १ ) सत्कारके योग्य सज्जनोंका राष्ट्रमें सत्कार हो, ( २ ) राष्ट्रमें संघटन हो, ( ३ ) सत्पात्रको दान देकर लोक कल्याण करें, ऐसे तीन प्रकारके कार्य यज्ञमें करने होते हैं। ये कार्य राष्ट्रहितकी दृष्टिसे जो करता है उसका सामर्थ्य उसकी इस लोकसेवाके कारण बढता है, इसलिए उसका कोई नाश नहीं कर सकता।

४ हे इन्द्र ! नृम्णं ओजः पृतनासहं वीरं नः आ भर [ ११६९ ]- हे इन्द्र ! हमें पौरुषयुक्त बल दे, और युद्धमें शत्रुका नाश करनेवाला पुत्र भी दे।

५ हे शुष्मिन् ! त्वां उपब्रुवे, नः सुवीर्यं रास्व [ ११७१ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी मैं प्रार्थना करता हूं। तू हमें सामर्थ्य दे।

६ हे इन्द्र ! यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे तत् आ भर तस्य अकूपारस्य दावनः विद्याम [ ११७३ ]- तेरे विचारमें जो धन तेजस्वी और श्रेष्ठ है, वे धन हमें भरपूर दे। उस उत्तम और श्रेष्ठ धनके लेनेवाले हम हों।

७ हे इन्द्र ! त्वा दातं यत् मे इदं नास्ति, तत् उभयाहस्ती नः आ भर [ ११७२ ]- तेरे द्वारा दिए गए जो धन मेरे पास नहीं है, उन्हें तू हमें दोनों हाथोंसे भरपूर दे।

८ हे वसो शतक्रतो ! त्वं नः पिता, त्वं माता बभूविथ ! अध ते सुम्नं ईमहे [ ११७० ]- हे निवासक और सैकडों कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिए तुझसे हम सुख मांगते हैं।

९ हे अद्रिवः ! ते दिक्षु प्रसाध्यं श्रुतं बृहत् यत् मनः अस्ति, तेन दृढा चित् वाजं सातये आदर्षि [११७४]- हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा सब दिशाओंमें प्रशंसनीय जो विशाल मन है। उस अपने मनसे जो धन दृढ हो गए हैं उनको भी हमारे बल बढानेके लिए हमें दे।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

## अग्नि

१ तव क्रतुभिः अमृतत्वं आयन् [११४१]- यजमान यज्ञोंके द्वारा अमृतत्वको प्राप्त होगया।

२ वैश्वानरं अध्वराणां रथ्यं यज्ञस्य केतुं देवाः जनयन्त [ ११४२ ]- विश्वका नेता, हिंसारहित यज्ञकर्मका संचालक, यज्ञके ध्वज ऐसे तुझ अग्निको देवोंने उत्पन्न किया।

३ यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजत्, जिव्हया

कृष्णा करोति तं ईडिष्व [ ११६१ ]- जो अपनी ज्वालासे सब जंगलोंको जला डालता है, और अपनी ज्वालासे सब काला करता है, उस अग्निकी स्तुति कर।

अग्नि अपनी ज्वालासे जंगलको भस्म कर देता है, और जिस मार्गसे वह वनको जला देता है, वहां वहां काला कर देता है। ऐसा यह अग्निदेव स्तुति करनेके योग्य है।

४ अवसे चित्र-राधसं अग्निं हवामहे [ ११६८ ]- अपने संरक्षणके लिए विलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्निको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

५ दिवः मूर्धानं पृथिव्याः अरतिं वैश्वानरं ऋते आजातं, कविं सम्राजं जनानां अतिथिं आसन्, नः पात्रं देवाः आ जनयन्त [ ११४० ]- द्युलोकके मस्तकके स्थानपर रहनेवाले, पृथ्वीपर फिरनेवाले, विश्वके नेता, यज्ञके लिए उत्पन्न हुए, ज्ञानी और सम्राट्, लोगोंकी ओर अतिथिके रूपमें जानेवाले, देवोंके मुख और हमारे संरक्षक ऐसे अग्निको देवोंने उत्पन्न किया।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

## इन्द्र और अग्नि

१ इन्द्रं अग्निं च आ वोढवे नः वाजवतीः इषः, आशून् अर्वतः पिपृतं [ ११५१ ]- इन्द्र और अग्निको देवोंकी ओर पहुंचानेके लिए हमें बल बढानेवाले अन्न और चंचल घोडे दो।

ऐसे वैसे अन्न हमें नहीं चाहिए, अपितु बल बढानेवाले चाहिए। घोडे भी ऐसे वैसे नहीं, अपितु तेज दौडनेवाले और अत्यन्त चपल चाहिए। यह शब्द योजना यहां देखने योग्य है।

## मित्र और वरुण

इस अध्यायमें मित्र और वरुणकी भी थोडीसी स्तुति आई है, जो इसप्रकार है—

१ मित्राय वरुणाय विप्रा गिरा गायत । महि क्षत्रौ! ऋतं बृहत् [ ११६३ ]- मित्र और वरुणके लिए स्तोत्रोंको बडी आवाजसे गाओ। महान् बलोंको धारण करनेवाले मित्रावरुणो! यज्ञमें तुम्हारी बडी स्तुति हो रही है, उसे सुननेके लिए आओ।

२ उभा सम्राजा घृतयोनी देवा देवेषु प्रशस्ता [ ११४४ ]- मित्र और वरुण ये दोनों ही महान् सम्राट् हैं। वे जल उत्पन्न करनेवाले देव हैं इसलिए वे सब देवोंमें अत्यधिक प्रशंसित हैं।

३ ता नः दिव्यस्य पार्थिवस्य महः रायः शकतं, वां देवेषु महि क्षत्रम् [ ११४५ ] वे मित्र और वरुण द्युलोक और पृथिवीपरके सब महान् धन देनेमें समर्थ हैं। तुम दोनोंके महान् क्षात्रबल देवोंमें भी प्रसिद्ध हैं।

४ शर्धाय वीतये मित्राय वरुणाय यथाशंतमं दक्षसाधनं पुनाता [ ११५९ ]- बल बढानेके लिए और देवोंको देनेके लिए तथा मित्र और वरुणको जिसप्रकार आनन्द हो, उसप्रकार बल बढानेके साधनरूप सोमको शुद्ध करो।

## देवोंके लिए सोमरस

सोमरस यज्ञमें निचोडते हैं, वह देवोंको दिया जाता है, बादमें यज्ञ करनेवाले पीते हैं। इस विषयमें थोडासा वर्णन इस प्रकार है—

१ स वायुं, इन्द्रं, अश्विना मदेन साकं गच्छति [ ११३४ ]- वह सोमरस वायु, इन्द्र, अश्विनौ आदि देवोंके पास अपने स्वाभाविक आनन्दके साथ पहुंचता है।

२ मधोः ऊर्मयः मित्रे वरुणे भगे पवन्ते [ ११३५ ] -इस सोमरसकी लहरे मित्र, वरुण और भग आदि देवोंके पास पहुंचती हैं।

३ हे सोम ! नृभिः येमानः अद्रिभिः सुतः इन्द्रस्य कुक्षा प्र याहि [ ११६२ ]- हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया तू इन्द्रके पेटमें जाता है।

## सोम स्वर्गमें रहता है

१ इन्दवः नः दिवस्परि वृष्टिं सुवीर्यं आ पवन्तां [ ११६५ ]- सोमरस हमारे लिए स्वर्गलोकसे वृष्टि और उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति लाता है।

## सोमके गुण

१ देवः [ १११६ ]- चमकनेवाला, स्वर्गमें रहनेवाला।

२ महिव्रतः [ १११६ ]- महान् कार्य करनेवाला।

३ शुचि-बन्धुः [ १११६ ]- शुद्ध बन्धुके समान।

४ पावकः [ १११६ ]- शुद्ध, पवित्र करनेवाला।

५ वराहः [ १११६ ]- बलवान्, जिसपर संस्कार अच्छे दिनोंके पडे हैं।

६ इन्दुः [ ११५२ ]- तेजस्वी।

७ सखा [११५२]-मित्र, मित्रके समान हित करनेवाला।

८ गयसाधनः [ ११५८ ]- यज्ञ स्थानका मुख्य साधन, घरका मुख्य साधन।

९ देवाव्यः [११५८]- देवोंके देवत्वकी रक्षा करनेवाला।

१० द्विशवस् [ ११५८ ]- दो प्रकारके बल जिसके पास हैं। दिव्य और पार्थिव बल जिसके पास है।

इसप्रकार इस सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं।

## सोमका चमकना

१ तिग्मशृंगः परीणसं कृणुते, दिवा हरिः ददृशे, नक्तं ऋज्रः [ १११८ ]- वह सोम तीक्ष्ण किरणोंसे प्रकाश करता है, दिनमें हरा दीखता है और रातमें चमकता है।

## सोमके बल

सोमरसमें सामर्थ्य बढानेका गुण है। इसीलिए उस रसको देव पीते हैं, और राक्षसोंका संहार करते हैं। सोमके ये बल वेदमंत्रोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित हैं। उनमेंसे कुछ स प्रकार हैं—

१ ते मयोभुवं वन्हिं पान्तं पुरुस्पृहं दक्षं अद्य आवृणीमहे [ ११३७ ]- हे सोम ! तेरे सुखदायी, इष्ट-स्थानपर पहुंचानेवाले, संरक्षण करनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित ऐसे बलोंको आज हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं।

२ मन्द्रं वरेण्यं विप्रं मनीषिणं पान्तं पुरुस्पृहं आ वृणीमहे [ ११३८ ]- आनन्द बढानेवाले, श्रेष्ठ ज्ञानपूर्ण, बुद्धियुक्त, संरक्षण करनेवाले, बहुतों द्वारा चाहने योग्य ऐसे जो तेरे बल हैं उन्हें हम पानेकी इच्छा करते हैं।

३ हे सुक्रतो। रयिं सुचेतुनं तनूषु पान्तं पुरुस्पृहं आ वृणीमहे [ ११३९ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, उत्तम पुत्रपौत्र, उत्तम संरक्षण और प्रशंसनीय बल हम तुझसे प्राप्त करें ऐसी इच्छा करते हैं।

सोमरसमें ये गुण हैं। वे गुण हमारे अन्दर आवें और हम उन गुणोंसे युक्त हों ऐसी हमारी इच्छा है। हर एक उन्नति करनेवालेको ऐसी ही इच्छा करनी चाहिए।

सोमको पत्थरोंसे कूटकर उसका रस निकालते हैं। उस रसमें पानी मिलाकर छानते हैं। इस सम्बंधी वर्णन इस प्रकार है—

## सोमका पानीमें मिलाया जाना

१ वन्द्यः हविः मंहीः अपः विगाहते [ ११२९ ]- अत्यन्त वन्दनीय सोम बहुत सारे पानीमें स्नान करता है। अर्थात् बहुतसे पानीमें वह मिलाया जाता है।

२ वृषः सत्यः अध्वरः सद्म अभि वने अचिक्रदत् [ ११३० ]- बलवान् सत्यस्वरूप, हिंसारहित सोम यज्ञशालामें पानीमें शब्द करता हुआ मिलाया जाता है।

३ हरिः प्रियः वनेषु अव्या वारे परिसीदति [११३३]- हरे रंगका प्रिय सोमरस पानीमें मिलाये जानेके बाद भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

ऐसा यह सोम पानीमें मिलाकर छाना जाता हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है, तब उसका शब्द होता है।

## छानते समय सोमका शब्द

१ रेभन् पदा अभ्येति [ १११६ ]- सोम शब्द करते हुए पात्रमें गिरता है।

२ सूराः अण्वं वितन्वते [ ११२३ ]- सोमरस शब्द करते हैं।

३ वाजी सहस्रधारः अव्यं वारं तिरः प्राक्षाः [११६०]- बलवान् सोम हजारों धाराओंसे भेडके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है।

एक कलशमें जलमिश्रित सोमरस भरा जाता है। दूसरे कलशमें शुद्ध पानी रहता है। उस दूसरे कलशके मुंहपर भेडके बालोंकी छलनी रखी जाती है और उस पर जल मिश्रित सोमरस डाला जाता है। इस पर वह सोमरस छन-छनकर नीचेके बर्तनमें गिरता है। गिरते समय उसकी आवाज होती है, यह आलंकारिक वर्णन है।

## गायके दूधमें सोमरस मिलाना

छाने हुए सोमको गायके दूधमें मिलाया जाता है—

१ धेनवः पयसा इत् अभि शिश्रयुः हरिं क्रीडन्तं अभ्यनूषत [ ११५३ ]- गायें अपने दूधका मिश्रण इस सोमरसके साथ करती हैं। खेलनेवाले हरे रंगके सोमको वे सुशोभित करती हैं।

२ सहस्ररेताः अद्भिः मृजानः गोभिः श्रीणानः अक्षाः [ ११६१ ]- हजारों प्रकारके बलसे युक्त सोमरसमें पहले पानी मिलाया जाता है, फिर गायका दूध मिलाया जाता है। फिर यह रस बर्तनमें छाना जाता है।

३ सोमासः गोभिः अंजते [ ११२१ ]- सोमरस गायके दूधसे सुशोभित होते हैं।

इन स्थलोंमें "गायका दूध" न कहकर केवल "गाय"

कहा है, यह वेदकी आलंकारिक भाषा है। सोम गायके साथ मिलाया जाता है इसका अर्थ है कि सोमरस गायके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

## सोमके लिए बाजे

सोमरस निकालनेके समय जैसे मंत्र बोले जाते हैं, जैसे सामका गान किया जाता है, उसीप्रकार बाजे भी बजाये जाते हैं—

१ सखायः दुर्मर्षं पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]-वे ऋषि मित्र शत्रुओंके लिए असह्य ऐसे शुद्ध होनेवाले सोमके लिए "वाण" नामक बाजे बजाते हैं। सामगानके समय ये बाजे बजाये जाते हैं। "वाण" सम्भवतः एक चर्मवाद्य था। और अनेक ऋषि उस वाद्यको सोमरस तैय्यार करनेके समय बजाते थे, ऐसा प्रतीत होता है।

## जयके द्वारा सम्पत्तिकी प्राप्ति

१ हे रोदसी ! मध्वः वाजस्य सातये अस्माकं रयिं श्रवः वसूनि संजितं [ ११३६ ]- हे द्यावापृथिवी ! सोम-रूपी अन्नकी प्राप्तिके लिए हमें धन, अन्न और ऐश्वर्य, विजयकी प्राप्तिके बाद मिले। अर्थात् पहले हमारी विजय हो उसके बाद हमें ऐश्वर्य भी प्राप्त हो।

## सोम अन्न देता है

१ नः संयतं पिप्युषीं इषं ऊर्मिणा पवस्व, या [ इद् ] क्षुमत्, वाजवत्, मधुमत् सुवीर्यं दोहते [ ११५४ ]- हमारे द्वारा लाये गए पोषक अन्नको हे सोम ! तू अपनी लहरोंसे शुद्ध कर, जो अन्न प्रसिद्ध बलवर्धक और मधुरतायुक्त उत्तम बल देता है। जिससे वीर पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा यह सोम शत्रु दूर करता है।

## सोम शत्रु दूर करता है

१ पवमानः स्पृधः अभिसीदति विशः राजा इव [ ११३२ ]- यह सोम प्रजाओंके पालन करनेवाले राजाके समान शत्रुको हराता है ।

२ विश्वाः दिशः अनु प्रभुः समत्सु त्वा हवामहे [११६७]- हे सोम ! तू सब दिशाओंके अनुकूल रहनेवाला प्रभु है। इसलिए युद्धमें सहायताके लिए हम तुझे बुलाते हैं।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है।

---

## सुभाषित

१ काव्यं ब्रुवाणः देवः देवानां जनिमा विवक्ति [ १११६ ]- काव्योंका कहनेवाला सोमदेव अन्य देवोंके जन्मके वृत्तान्त कहता है।

२ सखायः दुर्मर्षं पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]- वे मित्र शत्रुओंको असह्य तथा शुद्ध होनेवाले सोमके लिए वाण नामक बाजा बजाते हैं। अनेक लोग मिलकर बाजे बजाते हैं।

३ दिवा हरिः ददृशे, नक्तं ऋज्रः [ १११८ ]- सोम दिनमें हरे रंगका दीखता है और रातमें चमकता है।

४ रथाः इव, अर्वन्तः न श्रवस्यन्तः राये प्राक्रमुः [ १११९ ]- रथ और घोडे यशकी इच्छा करते हुए धन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं।

५ प्रशस्तिभिः राजानः न गोभिः अञ्जते [ ११२१ ] -स्तुतियोंसे जिसप्रकार राजागण शोभित होते हैं, उसीप्रकार गायके दूधसे सोमरस सुशोभित होते हैं।

६ धर्मन् ऋतस्य पथा असृग्रम् [ ११२८ ]- धर्मके समान सत्यके मार्गसे वे जाते हैं।

७ पवमानः स्पृधः विशः राजा इव अभिसीदति [ ११३२ ]- सोमरस स्पर्धा करनेवाली प्रजाओंके राजाके समान शत्रुओंको नष्ट करता है।

८ रोदसी अस्मभ्यं रयिं श्रवः वसूनि संजितं [ ११३६ ]- द्युलोक और पृथ्वीलोक हमारे लिए धन, यश, ऐश्वर्य तथा जय प्राप्त करावें।

९ हे सोम ! ते मयोभुवं पान्तं पुरुस्पृहं दक्षं अद्य आवृणीमहे [ ११३७ ]- हे सोम ! तेरे सुखदायी, संरक्षण करनेमें समर्थ तथा बहुतों द्वारा प्रशंसाके योग्य, बलकी हम इच्छा करते हैं।

१० हे सोम ! मन्द्रं वरेण्यं, विप्रं मनीषिणं पान्तं पुरुस्पृहं आ [ ११३८ ]- हे सोम ! आनन्द देनेवाले, श्रेष्ठ, ज्ञानी, मननशील, संरक्षक और बहुतों द्वारा चाहने योग्य ऐसे तेरी हम भक्ति करते हैं।

११ हे सुक्रतो ! रयिं सुचेतनं तनुषु पान्तं पुरुस्पृहं आ [ ११३९ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, पुत्रपौत्र तथा संरक्षणकी प्राप्तिके लिए बहुतों द्वारा जिसकी स्तुति होती है ऐसे इस सोमकी प्रार्थना करते हैं।

१२ वां देवेषु महि क्षत्रं [ ११४५ ]- तुम्हारी देवोंमें महान् शूरवीरता है।

१३ नः वाजवतीः इषः आशून् अर्वतः पिपृतं [ ११५१ ]- हमें बल बढानेवाले अन्न और चंचल घोडे दो।

१४ सखा सख्युः संगिरं न प्रमिनाति [ ११५२ ]- मित्र मित्रको कष्ट नहीं देता।

१५ मर्यः युवतिभिः [ ११५२ ]- पुरुष स्त्रियोंके साथ आनन्दसे रहता है।

१६ नः संयतं पिप्युषीं इषं ऊर्मिणा पवस्व [ ११५४ ] -हमें पोषक अन्न अपनी लहरोंसे दे। भरपूर दे।

१७ द्युमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यं दोहते [ ११५४ ] सोम प्रसिद्ध, बलवर्धक तथा मधुरतायुक्त धन देता है।

१८ सदावृधं विश्वगूर्तं ऋभ्वसं ओजसा अधृष्टं धृष्णुं इन्द्रं कर्मणा नकिः नशत् [ ११५५ ]- सदा बढानेवाले, प्रशसनीय, महान्, अपनी शक्तिसे न हारनेवाले पर शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रको अपने प्रयत्नसे कोई भी नहीं हरा सकता।

१९. अषाळ्हं उग्रं पृतनासु सासहिं इन्द्रं [ ११५६ ] -शत्रुको हरानेवाले, उग्रवीर और युद्धमें विजयी इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं।

२० सखायः आ निषीदत, पुनानाय प्रगायत [ ११५७ ]- हे मित्रो। आओ, बैठो और शुद्ध होनेवालेकी प्रशंसा करो।

२१ विश्वाः दिशः अनु प्रभुः, समत्सु त्वा हवामहे [ ११६७ ]- सब दिशाओंमें तू योग्यशासक है, इसलिए तुझे युद्धमें सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

२२ समत्सु वाजयन्तः अवसे वाजेषु चित्रराधसं अग्निं हवामहे [ ११६८ ]- युद्धमें बलका उपयोग करनेवाले हम संग्राममें अपने संरक्षणके लिए विलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्रणीको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२३ हे शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र ! नः नृम्णं ओजः आभर, पृतनासहं वीरं आ [ ११६९ ]- हे सैकडों कर्म करनेवाले ज्ञानी इन्द्र ! हमें पौरुषयुक्त बल भरपूर दे और युद्धमें शत्रुको हरानेवाला पुत्र दे।

२४ हे वसो शतक्रतो ! त्वं नः पिता, त्वं माता बभूविथ। अध ते सुम्नं ईमहे [ ११७० ]- हे निवासक इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिए तेरे पास सुख मागते हैं।

२५ सहस्कृत शुष्मिन् पुरुहूत ! वाजयन्तं त्वां उपब्रुवे। नः सुवीर्यं रास्व [ ११७१ ]- हे बलके लिए प्रसिद्ध और सामर्थ्यवान् तथा सभीके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! बलसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं, तू हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दे।

२६ हे विद्वद्वसो ! हे अद्रिवः चित्र इन्द्र ! तत् उभया हस्ती नः आभर [ ११७२ ]-हे धनवान्, वज्रधारी, विलक्षण और बलवान् इन्द्र ! वे धन दोनों ही हाथोंसे हमें भरपूर दे।

२७ हे इन्द्र ! यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे तत् आभर [ ११७२ ]- हे इन्द्र ! जिसे तू तेजस्वी और चाहने योग्य मानता है, उसे हमें भरपूर दे।

२८ ते वयं तस्य अकूपारस्य दावनः विद्याम [ ११७३ ]- वे हम उस उत्तम धनके दानको लेनेकी इच्छा करते हैं।

२९. हे अद्रिवः ! ते दिक्षु प्रराध्यं श्रुतं बृहत् मनः अस्ति, तेन दृढा चित् वाजं सातये आदर्षि [ ११७४ ] हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा नाना दिशाओंमें जानेवाला प्रसिद्ध और विशाल मन है। उस मनसे कठिनतासे मिलनेवाले धनोंको भी बल बढानेके लिए हमें दे।

## उपमा

अब इस अध्यायमें आयी हुई उपमाओंको देखिए--

१ उशना इव [ १११६ ]- उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणाः ) कवि काव्योंको बोलता है।

२ रथाः इव अर्वन्तः न [ १११९ ]- रथ और घोडोंके समान ( श्रवस्यवः सोमासः राये प्राक्रमुः ) यशकी इच्छा करनेवाले सोमरस धन पानेके लिए प्रयत्न करते हैं।

३ रथाः इव [ ११२० ]- युद्धमें जानेवाले रथके समान ( हिन्वानासः गभस्त्योः दधिरे ) प्रेरित हुए हुए सोमरस हाथोंमें धारण किए जाते हैं। पीनेके लिए सोमपात्र हाथसे पकडे जाते हैं।

४ भरासः कारिणां इव [ ११२० ]- भार उठाकर ले जानेवाले मजदूरोंके हाथोंपर जिसप्रकार बोझ उठाकर रखा जाता है, उसीप्रकार सोमपात्र सोम पीनेके लिए हाथोंमें उठाये जाते हैं।

५ प्रशस्तिभिः राजानः न [ ११२१ ]- स्तुतियोंसे जैसे राजा खुश होते हैं, उसीप्रकार सोमरस ( गोभिः अंजते ) गायके दूधसे सुशोभित होते हैं ।

६ सप्त-धातृभिः यज्ञः न [ ११२१ ]- सात ऋत्विजों द्वारा जैसे यज्ञ सिद्ध होता है, उसीप्रकार सोम गायके दूधसे सिद्ध होता है ।

७ शिशुं न [ ११४१ ]- लडकेकी जैसे उसकी माता देखभाल करती है, उसीप्रकार ( जायमानं त्वां अग्निं ) नये जलाये गए उस अग्निकी ऋत्विज देखभाल करते हैं ।

८ शिशुं न [११५७]- बालकको जैसे पिता आभूषणोंसे सजाता है, उसीप्रकार ऋत्विज ( यज्ञैः श्रिये परिभूषत ) यज्ञोंसे अग्निकी शोभा बढाते हैं ।

९ मर्यः युवतिभिः इव [११५२]- पुरुष जैसे स्त्रियोंके साथ आनन्दसे रहता है, उसीप्रकार ( सोमः समर्षति ) सोम पानीके साथ रहता है ।

१० इन्द्रं न [ ११५५ ]- इन्द्रका जैसे लोग ( यज्ञैः चकार ) यज्ञोंसे सत्कार करते हैं, उसीप्रकार सोमका भी सत्कार यज्ञोंसे करते हैं ।

११ मातृभिः वत्सं न [ ११५८ ]- माताओंके साथ जिसप्रकार लडका रहता है, उसीप्रकार ( ईं अभि सं-सृजत ) इस सोमको जलोंके साथ मिलाओ ।

१२ विशः राजा इव [ ११३२ ]-प्रजाओंका राजा जैसे शत्रुओंको दूर करता है, उसीप्रकार ( पवमानः स्पृधः अभि सीदति ) सोम शत्रुओंको दूर करता है ।



# अष्टमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १११६ | ९।९७।७ | वृषगणो वासिष्ठः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १११७ | ९।९७।८ | वृषगणो वासिष्ठः | " | " |
| १११८ | ९।९७।९ | वृषगणो वासिष्ठः | " | " |
| १११९ | ९।१०।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | गायत्री |
| ११२० | ९।१०।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२१ | ९।१०।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२२ | ९।१०।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२३ | ९।१०।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२४ | ९।१०।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२५ | ९।१०।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२६ | ९।१०।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२७ | ९।१०।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| ११२८ | ९।७।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११२९ | ९।७।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३० | ९।७।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३१ | ९।७।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३२ | ९।७।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११३३ | ९।७।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ११३४ | ९।७।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३५ | ९।७।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३६ | ९।७।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११३७ | ९।६५।१८ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ११३८ | ९।६५।१९ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| ११३९ | ९।६५।३० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| ११४० | ६।७।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः | त्रिष्टुप् |
| ११४१ | ६।७।४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ११४२ | ६।७।२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ११४३ | ५।६८।१ | यजत आत्रेयः | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ११४४ | ५।६८।२ | यजत आत्रेयः | " | " |
| ११४५ | ५।६८।३ | यजत आत्रेयः | " | " |
| ११४६ | १।३।४ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | " |
| ११४७ | १।३।५ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ११४८ | १।३।६ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | " | " |
| ११४९ | ६।६०।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ११५० | ६।६०।११ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| ११५१ | ६।६०।१२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| | | ( ४ ) | | |
| ११५२ | ९।८६।१६ | सिकता निवावरी | पवमानः सोमः | जगती |
| ११५३ | ९।८६।१७ | सिकता निवावरी | " | " |
| ११५४ | ९।८६।१८ | सिकता निवावरी | " | " |
| ११५५ | ८।७०।३ | पुरुहन्मा आंगिरसः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| ११५६ | ८।७०।४ | पुरुहन्मा आंगिरसः | " | " |
| | | ( ५ ) | | |
| ११५७ | ९।१०४।१ | पर्वतनारदौ काण्वौ, शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा। | पवमानः सोमः | उष्णिक् |
| ११५८ | ९।१०४।२ | पर्वतनारदौ काण्वौ, शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा | " | " |
| ११५९ | ९।१०४।३ | पर्वतनारदौ काण्वौ, शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा | " | " |
| ११६० | ९।१०९।१६ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | " | द्विपदा विराट् |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११६१ | ९।१०९।१७ | अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| ११६२ | ९।१०९।१८ | अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः | ,, | ,, |
| ११६३ | ९।६५।२२ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | गायत्री |
| ११६४ | ९।६५।२३ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |
| ११६५ | ९।६५।२४ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा | ,, | ,, |

( ६ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११६६ | ८।११।७ | वत्सः काण्वः | अग्निः | ,, |
| ११६७ | ८।११।८ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| ११६८ | ८।११।९ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| ११६९ | ८।९८।१० | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | ककुप् |
| ११७० | ८।९८।११ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७१ | ८।९८।१२ | नृमेध आंगिरसः | ,, | पुर उष्णिक् |
| ११७२ | ५।३९।१ | अत्रिर्भौमः | ,, | अनुष्टुप् |
| ११७३ | ५।३९।२ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |
| ११७४ | ५।३९।३ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |



# अथ नवमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, ३, ४ असितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उचथ्य आंगिरसः; ६, ७ अमहीयुरांगिरसः; ८, १५ निध्रुविः काश्यपः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० सुकक्ष आंगिरसः; १२ कविर्भार्गवः; १३ देवातिथिः काण्वः; १४ भर्गः प्रागाथः; १६ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १७ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; १८ उशना काव्यः; १९ नृमेध आंगिरसः; २० जेता माधुच्छन्दसः ॥ १-८, ११-१२, १५-१७ पवमानः सोमः; ९, १८ अग्निः; १०, १३, १४, १९-२० इन्द्रः ॥ १-९ त्रिष्टुप्; २-८, १०-११, -१५, १८ गायत्री; जगती १३, १४ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १६-२० अनुष्टुप्; १७ द्विपदा विराट्; १९ उष्णिक् ॥

११७५ शिशुं जज्ञानꣳ हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९६।१७ )

११७६ ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९६।१८ )

११७७ चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिꣳ सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥
[ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।९६।१९ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११७५ ] ( जज्ञानं शिशुं ) अभी अभी उत्पन्न होनेके कारण बालकके समान रहनेवाले ( हर्यतं ) सबोंके द्वारा पूज्य इस सोमको ( मरुतः मृजन्ति ) मरुत शुद्ध करते हैं। ( गणेन विप्रं शुम्भन्ति ) सात संख्याके इस ज्ञानवर्धक सोमको सुशोभित करते हैं, उसके बाद ( कविः सोमः काव्येन ) यह ज्ञानी सोम स्तोत्रके काव्योंसे ( कविः गीर्भिः ) जो स्तुति प्रारम्भ हुई है, उसे सुनते हुए ( रेभन् पवित्रं अत्येति ) शब्द करते हुए छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११७६ ] ( ऋषिः-मना ) ऋषिके समान मनवाला ( ऋषि-कृत् ) ऋषियोंको बनानेवाला ( स्वर्षाः सहस्र-नीथः ) सबका सेवन करनेवाला, हजारों स्तुतियोंसे प्रशंसित ( कवीनां पदवीः ) कविकी योग्यताको प्राप्त हुआ हुआ ( यः सोमः ) जो सोम है वह ( महिषः ) अत्यन्त पूज्य ( तृतीयं धाम सिषासन् ) तीसरे धाममें रहनेवाले और ( स्तुप् ) स्तुत्य होकर ( विराजं अनु विराजति ) विशेष तेजस्वी बने हुए इन्द्रको और अधिक प्रकाशित करता है ॥२॥

[ ११७७ ] ( चमूषद् श्येनः ) कलशमें रहनेवाला प्रशंसनीय ( शकुनः ) शक्तिमान् ( विभृत्वा ) गति करनेवाला ( गो-विन्दुः ) गाय प्राप्त करनेवाला, गायके दूधमें मिलाया जानेवाला ( द्रप्सः ) बहनेवाला ( अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः ) जलके लहरोंके समुद्रमें मिलाया जानेवाला ( आयुधानि बिभ्रत् ) शस्त्रोंको धारण करनेवाला ( महिषः ) यह बलवान् सोम ( तुरीयं धाम विवक्ति ) चतुर्थ धाममें रहता है, ऊंचे स्थानमें विराजता है ॥ ३ ॥

११७८ एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )

११७९ पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )

११८० इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।८।३ )

११८१ मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥ ( ऋ. ९।८।४ )

११८२ देवेभ्यस्त्वा मदाय कꣳ सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥ ( ऋ. ९।८।५ )

११८३ पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८।६ )

११८४ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७॥ ( ऋ. ९।८।७ )

११८५ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतꣳ स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।८।९ )

११८६ वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥९॥ २ ( ति )॥
[ धा० ३९ । उ० १ । स्व० १३ ] ( ऋ. ९।८।८ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

---

[ ११७८ ] ( एते सोमाः ) ये सोमरस ( अस्य वीर्यं वर्धन्तः ) इस इन्द्रका सामर्थ्य बढाते हुए ( इन्द्रस्य कामं प्रियं ) इन्द्रको प्रिय लगनेवाले रसकी ( रसं अभि अक्षरन् ) वृष्टि करते है, रस नीचेके बर्तनमें छनकर गिरता है ॥ १ ॥

[ ११७९ ] हे ( पुनानासः चमूषदः ) छने हुए और बर्तनमें रखे हुए सोमरसो ! ( वायुं अश्विना गच्छन्तः ) वायु और अश्विनौको प्राप्त होकर ( ते ) वे तुम ( नः सुवीर्यं धत्त ) हमें उत्तम वीरता दो ॥ २ ॥

[ ११८० ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) छाना जाता हुआ तू ( इन्द्रस्य राधसे ) इन्द्रकी आराधनाके लिए ( हार्दि चोदय ) हृदयोंको प्रेरित कर । मैं ( देवानां योनिं आ सदं ) देवोंके यज्ञस्थानमें आकर बैठ गया हूँ ॥ ३ ॥

[ ११८१ ] हे सोम ! ( त्वा दशक्षिपः मृजन्ति ) तुझे दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं । ( सप्तधीतयः हिन्वन्ति ) सात होतागण तुझे सन्तुष्ट करते हैं, ( विप्राः अनु अमादिषुः ) ज्ञानी तेरा अनुसरण करके तुझे प्रसन्न करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११८२ ] हे सोम ! ( मेष्यः अति सृजानं ) बालोंकी छलनीसे छाना जानेवाले ( कं त्वा ) सुख बढानेवाले तुझे ( देवेभ्यः मदाय ) देवोंको आनन्द देनेके लिए ( गोभिः संवासयामसि ) गायके दूधमें मिलाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११८३ ] ( पुनानः ) शुद्ध होकर ( कलशेषु आ ) कलशोंमें आकर रहनेवाला ( अरुषः हरिः ) चमकनेवाला हरे रंगका सोम ( गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत ) गायके वस्त्रोंको पहनता है। अर्थात् गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥६॥

[ ११८४ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मघोनः नः ) धनसे युक्त हमारे लिए ( आ पवस्व ) छनता जा । ( विश्वाः द्विषः अप जाहि ) सब शत्रुओंको नष्ट कर ( सखायं आ विश ) और अपने मित्र इन्द्रके पेटमें प्रविष्ट हो जा ॥ ७ ॥

[ ११८५ ] हे सोम ! ( नृ-चक्षसं ) मनुष्यका निरीक्षण करनेवाले ( इन्द्र-पीतं ) इन्द्रके द्वारा पिये जाने योग्य तथा ( स्वर्विदं त्वां ) सबको जाननेवाले तुझे प्राप्त करके ( वयं प्रजां इषं भक्षीमहि ) सन्तान और अन्न प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[ ११८६ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( दिवः वृष्टिं परिस्रव ) द्युलोकसे वृष्टि कर । ( पृथिव्याः अधि द्युम्नं ) पृथिवी पर अन्न उत्पन्न कर । ( पृत्सु नः सहः धाः ) संग्राममें उपयोगी होनेवाले सामर्थ्य हमें दे ॥ ९ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

११८७ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ( ऋ. ९।१३।१ )

११८८ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१३।२ )

११८९ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१३।३ )

११९० उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१३।४ )

११९१ अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१३।६ )

११९२ ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥ ( ऋ. ९।१३।५ )

११९३ वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥ ( ऋ ९।१३।७ )

११९४ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥ ( ऋ. ९।१३।८ )

---

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११८७ ] ( सहस्रधारः ) हजारों धाराओंसे ( अति अविः ) बालोंकी छलनीसे ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( वायोः इन्द्रस्य ) वायु और इन्द्रके पीनेके लिए ( निष्कृतं अर्षति ) बर्तनमें जाता है ॥ १ ॥

[ ११८८ ] हे ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले उद्गाता आदि याजको ! तुम ( पवमानं विप्रं ) शुद्ध होनेवाले, ज्ञानी ( देववीतये सुष्वाणं ) देवोंके पीनेके लिए छाने जानेवाले सोमके लिए ( अभि प्र गायत ) मंत्रोंका गान करो ॥ २ ॥

[ ११८९ ] ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( गृणानाः ) प्रशंसित होनेवाले ( सहस्र-पाजसः सोमाः ) हजारों प्रकारके बल बढानेवाले ये सोमरस ( पवन्ते ) शुद्ध किए जाते है ॥ ३ ॥

[ ११९० ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( द्युमत् सुवीर्यं पवस्व ) तेजस्वी और उत्तम सामर्थ्य हमें दे । ( उत ) और ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( बृहतीः इषः ) बहुतसा अन्न हमें दे ॥ ४ ॥

[ ११९१ ] ( वाजसातये हियानाः ) संग्रामके लिए प्रेरित हुए हुए सोमरस ( आशवः न ) शीघ्रगामी घोडेके समान ( हेतृभिः ) ऋत्विजोंके द्वारा ( अव्यं वारं वि अति असृग्रं ) बालोंकी बनी छलनीसे छाने जाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११९२ ] ( ते स्वानाः देवासः इन्दवः ) वे निचोडे गए दिव्य सोमरस ( नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं आ पवन्तां ) हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम सामर्थ्य देवें ॥ ६ ॥

[ ११९३ ] ( वाश्राः इन्दवः ) शब्द करनेवाले सोम ( मातरः वत्सं न ) गायें जैसी बछडेके पास जाती है, उसी प्रकार ( अभि अर्षन्ति ) कलशमें जाते हैं और ( गभस्त्योः दधन्विरे ) हाथोंसे धारण किए जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ११९४ ] सोम ( इन्द्राय जुष्टः ) इन्द्रको दिया जाता है, हे सोम ! वह तू ( मत्सरः पवमानः ) आनन्द देनेवाला और छाना जानेवाला ( कनिक्रदत् ) शब्द करते हुए ( विश्वाः द्विषः अप जाहि ) सब शत्रुओंको नष्ट कर ॥८॥

११९५ अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ३ ( दु ) ॥
[ धा० ३९ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।१३।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

११९६ सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१२।१ )
११९७ अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥ ( ऋ. ९।१२।२ )
११९८ मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
( ऋ. ९।१२।३ )
११९९ दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥ ( ऋ. ९।१२।४ )
१२०० यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥ ( ऋ. ९।१२।५ )
१२०१ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥ ( ऋ. ९।१२।६ )
१२०२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥ ( ऋ ९।१२।७ )

---

[ ११९५ ] हे ( पवमानाः ) सोमो ! ( अ-राव्णः अपघ्नन्तः ) दान न देनेवाले शत्रुओंका नाश करते हुए तथा ( स्वः-दृशः ) अपने तेजसे चमकते हुए तुम ( ऋतस्य योनौ सीदत ) यज्ञके स्थानपर बैठो ॥ ९ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११९६ ] ( ऋतस्य सुताः ) यज्ञके लिए तैय्यार किये गए ( मधुमत्तमाः इन्दवः ) बहुत मीठे और तेजस्वी ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय धारया असृग्रं ) इन्द्रके लिए धारासे छनते जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११९७ ] हे ( विप्राः ) ऋत्विजो ! ( सोमस्य पीतये ) सोम पीनेके लिए ( इन्द्रं अभि अनूषत ) इन्द्रकी सेवा करो । ( धेनवः गावः वत्सं न ) दुधारु गायें जिसप्रकार अपने बछडेकी सेवा करती हैं, उसीप्रकार तुम इन्द्रकी सेवा करो ॥ २ ॥

[ ११९८ ] ( मदच्युत् सोमः ) आनन्द बढानेवाला सोम ( सदने क्षेति ) यज्ञशालामें निवास करता है, ( सिन्धोः ऊर्मा विपश्चित् ) जैसे नदीके तरंगोंमें यह ज्ञानी सोम रहता है, उसीप्रकार यह ( गौरी अधिश्रितः ) गांधर्वीमें भी रहता है । छलनीमें शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

[ ११९९ ] ( यः ) जो ( सुक्रतुः कविः विचक्षणः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला, महान् ज्ञानी यह ( सोमः ) सोम है, वह ( दिवः नाभा ) अन्तरिक्षकी नाभिके समान ( अव्या वारे महीयते ) वालोंकी छलनीके ऊपर महत्वशाली होता है ॥४॥

[ १२०० ] ( यः सोमः ) जो सोम ( कलशेषु आ ) कलशोंमें ( पवित्रे अन्तः आहितः ) छलनीके बीचमें रखा हुआ है, ( तं इन्दुः परिषस्वजे ) उस सोमको जल स्पर्श करे ॥ ५ ॥

[ १२०१ ] ( इन्दुः ) सोम ( मधुश्चुतं कोशं जिन्वन् ) मीठारस जिसमें टपकता है उस बर्तनको पूरा भर देता है । वह ( समुद्रस्य अधि विष्टपि ) जलके आश्रय स्थान पर ( वाचं प्र इष्यति ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२०२ ] ( नित्यः स्तोत्रः वनस्पतिः ) नित्य जिसकी स्तुति की जाती है ऐसा वनका स्वामी सोम ( मानुषा युजा हिन्वानः ) मनुष्योंको संगठन करनेके लिए प्रेरित करता हुआ ( सबर्दुघां ) सबसे मीठे वचन बोलनेवालेके ( अन्तः धेनां ) अन्तःकरणमें रहनेवाली स्तुतिको स्वीकार करे ॥ ७ ॥

*

१२०३ आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥ ( ऋ. ९।१२।९ )

१२०४ अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥ ४ ( मे )॥

[ धा० ४० । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१२।८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२०५ उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥ ( ऋ ९।५०।१ )

१२०६ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥ ( ऋ. ९।५०।२ )

१२०७ अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ ९।५०।३ )

१२०८ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।५०।४ )

१२०९ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥ ५ ( का )॥

[ धा० ३१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५०।५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

---

[ १२०३ ] हे ( पवमान इन्दो ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सहस्रवर्चसं स्वाभुवं ) सहस्र तेजोंसे युक्त अपना घर तथा ( रयिं ) धन ( अस्मे धारय ) हमें दे ॥ ८ ॥

[ १२०४ ] ( कविः सुतः ) ज्ञानी सोमरस ( परावति विप्रः सः ) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले ज्ञानीके समान ( धारया ) अपनी धारसे ( दिवः प्रिया ) द्युलोकसे प्रिय स्थानकी ओर ( अभि हिन्वे ) प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२०५ ] हे सोम ! ( सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव ) समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते शुष्मासः उत् ईरते ) तेरे वेगसे बहनेकी आवाज निकलती है । ऐसा तू ( वाणस्य पविं चोदय ) वाण नामक बाजेके समान शब्द कर ॥ १ ॥

[ १२०६ ] ( ते प्रसवे ) तेरी उत्पत्ति होनेके बाद ( मखस्युवः तिस्रः वाचः उत् ईरते ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विज ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्र बोलने लगते है । ( यत् सानवि अव्ये एषि ) तब तू ऊंचे स्थानपर रखे हुए बालोंकी बनी छलनीमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२०७ ] ( प्रियं हरिं ) प्रिय और हरे रंगके ( अद्रिभिः ) पत्थरों द्वारा कूटे गए ( मधुश्चुतं-पवमानं ) मीठे सोमरसको छाननेवाले ऋत्विज ( अव्याः वारैः परि हिन्वन्ति ) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ॥ ३ ॥

[ १२०८ ] ( मदिन्तम कवे ) हे परम हर्ष बढानेवाले सोम ! ( अर्कस्य योनिं आसदं ) इन्द्रके पेटमें जानेके लिए ( पवित्रं धारया आ पवस्व ) छलनीसे धार बांधकर छनता जा ॥ ४ ॥

[ १२०९ ] हे ( मदिन्तम ) आनन्द देनेवाले सोम ! ( अक्तुभिः गोभिः अंजानः ) तेजस्वी, गायके दूध आदि पदार्थोंके साथ मिलकर ( पवस्व ) छनता जा और ( इन्द्रस्य जठरं आ विश ) इन्द्रके पेटमें जा ॥ ५ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१२१० अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६१।१ )

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२११ पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।२ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
१२१२ परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६१।३ )

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
१२१३ अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।२५ )

३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
१२१४ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।२६ )

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१२१५ न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ ७ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६१।२७ )

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३२
१२१६ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६३।७ )

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
१२१७ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६३।८ )

---

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२१० ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अया वीति परिस्रव ) इस रीतिसे इन्द्रके पीनेके लिए तू छनता जा । ( ते यः मदेषु ) तेरा यह रस संग्राममें ( नव-नवतीः अवाहन् ) निन्यानवे शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ १ ॥

[ १२११ ] ( सद्यः पुरः ) उसी समय शत्रुके नगरोंका नाश यह सोम करता है । ( इत्था ) इस प्रकार ( धियें दिवोदासाय ) यज्ञ करनेवाले दिवोदासके लिए ( शंबरं ) शम्बरासुरको ( अध त्यं तुर्वशं ) और उमस तुर्वशको ( यदुं ) और यदुको ( अवाहन् ) इन्द्रने मारा ॥ २ ॥

[ १२१२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अश्वविन् ) घोडे प्राप्त करनेवाला तू ( नः ) हमें ( गोमत् हिरण्यवत् अश्वं ) गाय और सोनेंसे युक्त घोडेको और ( सहस्रिणीः इषः ) अनेक प्रकारके अन्नको ( परि क्षर ) दे ॥ ३ ॥

[ १२१३ ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम शत्रुको मारकर ( अराव्णः अप ) दान न देनेवाले दुष्टोंको दूर करके ( इन्द्रस्यः निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२१४ ] हे ( पवमान इन्दो ) छाने जानेवाले सोम ! ( नः महः रायः आ भर ) हमें बहुतसा धन भरपूर दे । ( मृधः जाहि ) शत्रुओंको मार और ( वीरवत् यशः रास्व ) पुत्रोंसे युक्त यश दे ॥ २ ॥

[ १२१५ ] हे सोम ! ( यत् पुनानः ) जब छाना जानेवाला तू ( मखस्यसे ) यज्ञ करनेवालोंको धन देनेकी इच्छा करता है, तब ( राधः दित्सन्तं त्वा ) धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( शतं चन-हुतः ) सैंकडों शत्रु भी ( न आमिनन् ) रोक नहीं सकते ॥ ३ ॥

[ १२१६ ] हे सोम ! ( मानुषीः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंको हितकारक जल देनेवाले तूने ( यया धारया सूर्यं अरोचयः ) जिस चमकनेवाली धारासे सूर्यको प्रकाशित किया, ( अया पवस्व ) उसी धारासे छनता जा ॥ १ ॥

[ १२१७ ] ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( मनावधि ) मनुष्यको इष्ट ( अन्तरिक्षेण यातवे ) अन्तरिक्षके मार्गसे जानेके लिए ( सूरः एतशं अयुक्त ) सूर्यके एतश नामक घोडेको उसके रथमें जोडता है ॥ २ ॥

१२१८ उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ ८ ( का ) ॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६३।९ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१२१९ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३।१ )

१२२० प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३।२ )

१२२१ उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥ ९ ( टी ) ॥
[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।३।३ )

१२२२ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।७ )

[ १२१८ ] ( उत इन्दुः ) और सोम ( इन्द्रः इति ब्रुवत् ) इन्द्र इन्द्र कहता हुआ ( त्या हरितः ) तेरे घोडोंको ( सूरः रथे ) सूर्यके रथमें ( यातवे अयुक्त ) जानेके लिए जोडता है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १२१९ ] हे देवो ! ( वः ) तुम ( यः मर्त्येषु निध्रुविः ) जो मानवोंमें रहता है, जो ( ऋतावा ) यज्ञ करनेवाला ( तपुर्मूर्धा ) तथा शत्रुओंको कष्ट देनेवाला तेज है, ( घृतान्नः ) घी ही जिसका अन्न है तथा ( पावकः ) जो पवित्रता करनेवाला है, ऐसे ( अग्निभिः सजोषाः ) अनेक अग्नियोंके साथ ( यजिष्ठं अग्निं देवं ) परम पूज्य अग्निको ( अध्वरे दूतं कृणुध्वं ) हिंसारहित यज्ञमें दूत करो ॥ १ ॥

[ १२२० ] ( यवसे अविष्यन् ) घास खाते हुए ( प्रोथत् अश्वः न ) हिनहिनानेवाले घोडेके समान ( महः संवरणात् ) महान् वेगसे फैलनेवाला दावानल ( यदा व्यस्थात् ) जब वृक्षके बीचमें पहुंचता है, तब ( आत् अस्य शोचिः ) इसकी ज्वालायें ( अनुवातः वाति ) वायुके अनुकूल होकर चलती हैं, ( अध ) और हे अग्ने ! ( ते व्रजनं कृष्णं अस्ति ) तेरा मार्ग काला है ॥ २ ॥

[ १२२१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नव-जातस्य वृष्णः ) नये उत्पन्न हुए हुए और वृष्टि करनेवाले ( यस्य ते ) जिस तेरी ( अजराः इधानाः उच्चरन्ति ) न नष्ट होनेवाली जलती हुई ज्वालायें ऊपर आती हैं, तब हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अरुषः धूमः दूतः ) प्रकाश करनेवाला धुआंरूपी दूतवाला तू ( द्यां अच्छ समेषि ) द्युलोकमें जाता है, और वहां ( देवान् हि ईयसे ) देवोंको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ १२२२ ] ( महे वृत्राय हन्तवे ) महान् वृत्रको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं वाजयामसि ) उस इन्द्रको हम बलवान् बनाते हैं । ( वृषा सः वृषभः भुवत् ) वह पहलेसे बलवान् होता हुआ भी और अधिक बलवान् होता है ॥ १ ॥

१२२३ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
( ऋ ८।९३।८ )

१२२४ गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥ १० (छे) ॥
[ धा० १७ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९३।९ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२२५ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥ ( ऋ. ९।५१।१ )

१२२६ तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत । पवमानस्य मरुतः ॥ ॥ ( ऋ. ९।५१।२ )

१२२७ दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ११ ( खा ) ॥
[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५१।३ )

१२२८ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७६।१ )

---

[ १२२३ ] ( सः इन्द्रः दामने कृतः ) वह इन्द्र दान देनेके लिए ही पैदा हुआ है ( स ओजिष्ठः मदे हितः ) वह प्रभावशाली इन्द्र बल बढानेके लिए और सोमको पीनेके लिए हुआ है ( द्युम्नीः श्लोकी स सोम्यः ) तेजस्वी प्रशंसित ऐसा वह इन्द्र सोम पीनेके योग्य है ॥ २ ॥

[ १२२४ ] ( गिरा संभृतः ) स्तुतियों द्वारा प्रशंसित ( वज्रः न ) वज्रके समान ( सबलः अनपच्युतः ) बलवान् इसीलिए दूसरोंसे न दबाये जानेवाला ( उग्रः अ-स्तृतः ) उग्रवीर और अपराजित इन्द्र ( ववक्षे ) धन देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२२५ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( अद्रिभिः सुतं सोमं ) पत्थरों द्वारा कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्रे आनय ) छलनीमें लाकर रख और ( इन्द्राय पातवे पुनाहि ) इन्द्रके पीनेके लिए छान ॥ १ ॥

[ १२२६ ] ( त्ये देवाः मरुतः ) वे देव और मरुत्, हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव मधोः पवमानस्य अन्धसः ) तेरे मधुर और पवित्र अन्नरूपी रसको ( वि आशत ) खाते हैं ॥ २ ॥

[ १२२७ ] हे ऋत्विजो ( मधुमत्तमं दिवः पीयूषं ) बहुत मीठे द्युलोकके अमृत ( उत्तमं सोमं ) इस उत्तम सोमको ( वज्रिणे इन्द्राय सुनोत ) वज्रधारी इन्द्रके लिए तैय्यार करो ॥ ३ ॥

[ १२२८ ] ( कृत्व्यः रसः ) कर्तव्य करनेवाला यह रस ( देवानां दक्षः ) देवोंका बल बढानेवाला ( नृभिः अनु माद्यः ) ऋत्विजोंके द्वारा प्रशंसनीय ( धर्ता ) सबोंको धारण करनेवाला ( दिवः पवते ) अन्तरिक्षमें रखे छलनीसे छाना जाता है । ( हरिः ) यह हरे रंगवाला और ( सत्वभिः सृजानः ) बलवान् ऋत्विजोंके द्वारा छाना जानेवाला यह रस ( अत्यः न ) घोडेके समान ( नदीषु ) पानीमें ( वृथा ) सरलतासे ही ( पाजांसि कृणुते ) अपने बलोंको प्रकट करता है ॥ १ ॥

१२२९ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७६।२ )

१२३० इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥ १२ (चा) ॥
[ धा० २७ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।७६।३ )

१२३१ यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।१ )

१२३२ यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ १३ ( कि ) ॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।४।२ )

१२३३ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१ )

---

[ १२२९ ] यह सोम ! ( शूरः न ) शूरके समान ( गभस्त्योः आयुधा धत्ते ) हाथोंमें शस्त्र धारण करता है। ( स्वः सिषासन् ) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला ( रथिरः गविष्टिषु ) रथमें बैठनेवाले वीरकी गायोंकी इच्छा करनेवाला ( इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन् ) इन्द्रका बल बढाते हुए यह ( इन्दुः ) सोम ( अपस्युभिः मनीषिभिः ) यज्ञ करनेवाले विद्वान् ऋत्विजोंके द्वारा ( हिन्वानः अज्यते ) प्रेरित हुआ हुआ गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १२३० ] हे ( सोम पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( तविष्यमाणः ) बढाया जानेवाला तू ( इन्द्रस्य जठरेषु ) इन्द्रके पेटमें ( ऊर्मिणा आ विश ) धार बंधकर जा। ( विद्युत् अभ्रा इव ) बिजली जिसप्रकार मेघोंको बरसाती है, उसीप्रकार ( नः रोदसी प्र पिन्व ) हमारे लिए द्युलोक और भूलोकको फलयुक्त कर। ( धिया नः ) कर्मके द्वारा हमारे लिए ( शश्वतः वाजान् उप माहि ) शाश्वत अर्थात् कभी क्षीण न होनेवाले अन्न दे ॥ ३ ॥

[ १२३१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् ) यद्यपि तू ( प्राक्, अपाक्, उदक् वा न्यक् ) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचेकी दिशामें ( नृभिः हूयसे ) ऋत्विजोंके द्वारा सहायतार्थ बुलाया जाता है, तो भी ( सिम ) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! ( अनवे ) अनुराजाके लिए ( पुरु नृषूतः असि ) तेरी बहुत स्तुति की गई है। हे ( प्रशर्ध ) शत्रुको हरानेवाले इन्द्र ! ( तुर्वशे ) तुर्वशके लिए भी उसीप्रकार तेरी स्तुति की गई है ॥ १ ॥

[ १२३२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यद् वा ) अथवा ( रुमे, रुशमे, श्यावके, कृपे ) रुम, रुशम, श्यावक और कृपके लिए ( सचा मादयसे ) एक साथ प्रसन्न किया जाता है। उसीप्रकार ( ब्रह्म-वाहसः ) स्तुति करनेवाले ( कण्वासः ) कण्व ( स्तोमेभिः ) स्तोत्रोंसे तुझे वशमें करनेकी इच्छा करते हैं। इसलिए ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( आगहि ) आ ॥ २ ॥

[ १२३३ ] ( उभयं इदं वचः ) दोनों ही प्रकारके स्तुतिके वचन ( नः अर्वाक् ) हमारे सामने ( इन्द्रः शृणवत् ) इन्द्र सुने। ( मघवान् शविष्ठः ) वह धनवान् और बलवान् इन्द्र ( सत्राच्या धिया ) हमारी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर ( सोमपीतये आगमत् ) सोमपान करनेके लिए हमारे पास आवे ॥ १ ॥

१२३४ तꣳ हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामꣳ हि ते मनः　　॥ २ ॥ १४ ( ची ) ॥
[ धा० १७। उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६१।२ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[ ८ ]

१२३५ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ १ ॥ ( ऋ ९।६३।२२ )

१२३६ पवमान नि तोशसे रयिꣳ सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमा विश ॥२॥ ( ऋ ९।६३।२३ )

१२३७ अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम्　॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६३।२४ )

१२३८ अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्　॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९८।१ )

१२३९ वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो　॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९८।५ )

---

[ १२३४ ] ( धिषणे ) द्युलोक और भूलोक ( स्वराजं वृषभं तं हि ) स्वयं प्रकाशवान् और बलवान् उस इन्द्रको ( ओजसा निष्टतक्षतुः ) अपने बलसे प्रकट करते हैं। ( उत ) और हे इन्द्र ! ( उपमानां प्रथमः ) उपमा देनेके योग्योंमें प्रथम तू ( निषीदसि ) अपने स्थानपर बैठता है। ( हि ते मनः सोमकामं ) क्योंकि तेरा मन सोमकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १२३५ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) चमकनेवाला तू छनता जा। ( ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु ) तेरा आनन्ददायक रस इन्द्रके पास जावे। ( धर्मणा वायुं आरोह ) अपनी शक्तिसे तू वायुको प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १२३६ ] हे ( पवमान इन्दो ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( श्रवाय्यं रयिं नि तोशसे ) प्रशंसनीय धनके लिए शत्रुओंको पीडा देता है, ऐसा तू ( समुद्रं आविश ) कलशके पानीमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

[ १२३७ ] हे सोम ! ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला तथा ( क्रतुवित् ) यज्ञ कर्मको जाननेवाला तू ( पवसे ) शुद्ध होता है। शुद्ध हुआ हुआ तू ( मृधः अपघ्नन् ) शत्रुओंको दूर करके ( अदेवयुं जनं नुदस्व ) नास्तिक मनुष्योंको दूर कर ॥ ३ ॥

[ १२३८ ] हे ( इन्दो ) तेजस्वी सोम ! ( नः ) हमें ( वाजसातमं ) बल बढानेवाले ( शतस्पृहं ) सैकडों लोगोंके द्वारा प्रशंसित ( सहस्रभर्णसं ) हजारों मनुष्योंका भरण पोषण करनेवाले ( तुविद्युम्नं ) अति तेजस्वी ( विभासहं ) विशेष प्रकाशमान् ऐसे ( रयिं अभि अर्ष ) धन दे ॥ १ ॥

[ १२३९ ] हे ( वसो ) निवासक सोम ! ( पुरुस्पृहः वसोः ) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सबको बसानेवाले ( अस्य ते राधसः ) ऐसे इस तेरे धनके पास ( नेदिष्ठतमाः स्याम ) हम रहनेवाले हों। ( अध्रि-गो ) गायके पास रहनेवाले सोम ! ( ते इषः सुम्ने ) तेरे द्वारा दिए गए अन्नके आनन्दसे हम सुखी हों ॥ २ ॥

१२४० परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९८।३ )

१२४१ पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ १ ॥ ( ऋ ९।१०९।४ )

१२४२ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।५ )

१२४३ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ १७ ( हि ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०९।६ )

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१२४४ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।१ )

१२४५ कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।२ )

१२४६ त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥ १८ ( यी ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।८४।३ )

---

[ १२४० ] ( गव्ययुः ) गायके दूधकी इच्छा करनेवाला ( ऊर्ध्वः यः ) श्रेष्ठ यह सोम ( भ्राजा न ) तेजसे जिसप्रकार चमकना चाहिए उसप्रकार चमकता है और ( अध्वरे धारा याति ) अहिंसक यज्ञमें धारासे पहुंचता है। ( स्वानः स्यः इन्दुः ) छाना जानेवाला वह सोम ( मदच्युतः अव्ये परि अक्षरत् ) आनन्द बढानेके लिए बालोंकी छलनीमेंसे टपकता है ॥ ३ ॥

[ १२४१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् रससे युक्त ( पिता ) पालन करनेवाला तु ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थान अपने रससे ( अभि पवस्व ) भर दे ॥ १ ॥

[ १२४२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( शुक्रः ) चमकनेवाला तू ( देवेभ्यः पवस्व ) देवोंके लिए छनता जा । ( दिवे पृथिव्यै ) द्युलोकको, पृथ्वीलोकको तथा ( प्रजाभ्यः शं ) प्रजाओंको सुख मिले ॥ २ ॥

[ १२४३ ] हे सोम ! तू ( शुक्रः पीयूषः ) तेजस्वी और पीनेके योग्य ( दिवः धर्ता असि ) द्युलोकका धारण करनेवाला है । ( वाजी ) बलवान् तू ( सत्ये ) यज्ञमें ( विधर्मन् पवस्व ) विविध कर्म करनेके समय छनता जा ॥ ३ ॥

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १२४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( प्रेष्ठं अतिथिं ) प्रिय अतिथिरूप ( मित्रं इव प्रियं ) मित्रके समान प्रिय ( रथं न वेद्यं ) रथके समान धन प्राप्तिका हेतु ( वः स्तुषे ) तेरी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १२४५ ] ( देवासः ) सब देवोंने ( कविं इव प्रशस्यं ) कविके समान प्रशंसनीय ( यं ) जिस अग्निको ( मर्त्येषु इति ) मनुष्योंमें ( द्विता ) गार्हपत्य और आवहनीय इन दोनोंके रूपमें ( न्यादधुः ) स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १२४६ ] हे ( यविष्ठ ) सदा तरुण रहनेवाले इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( दाशुषः नॄन् पाहि ) दान करनेवाले मनुष्योंका रक्षण कर ( गिरः शृणुहि ) स्तुति सुन । ( उत त्मना तोकं रक्ष ) और अपने प्रयत्नसे पुत्रका रक्षण कर ॥ ३ ॥

१२४७ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥( ऋ ८।९८।४ )

१२४८ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
( ऋ. ८।९८।५ )

१२४९ त्वꣳ हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥ १९(फे)॥
[ धा० २० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९८।६ )

१२५० पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।११।४ )

१२५१ त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् । त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥
( ऋ. १।११।५ )

१२५२ इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।११।८ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥
॥ इति पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५-१ ॥
॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

[ १२४७ ] हे ( प्रिय ) हित करनेवाले, ( सत्राजित् ) सब शत्रुओंको जीतनेवाले तथा ( अ-गोह्य ) किसीके द्वारा न दबाये जानेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) सब तरहसे बडा तूं ( दिवः पतिः ) द्युलोकका स्वामी ( नः आगधि ) हमारे पास आ ॥ १ ॥

[ १२४८ ] ( सत्य सोमपाः इन्द्र ) हे सत्यके पालक और सोम पीनेवाले इन्द्र ! तू ( उभे रोदसी ) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको ( ( अभि बभूथ ) अपने प्रभावसे ढक देता है । ऐसा तू ( सुन्वतः वृधः ) सोमयाग करनेवालेको बढानेवाला और ( दिवः पतिः असि ) द्युलोकका स्वामी है ॥ २ ॥

[ १२४९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ( शश्वतीनां पुरां धर्ता ) शत्रुओंके बहुतसे नगरोंको तोडनेवाला, ( दस्योः हन्ता ) शत्रुका नाश करनेवाला ( मनोवृधः ) यज्ञ करनेवाला, मनुष्योंके मनोंको बढानेवाला और ( दिवः पतिः असि ) द्युलोकका स्वामी है ॥ ३ ॥

[ १२५० ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाला, ( युवा ) सदा तरुण, ( कविः अमितौजाः ) ज्ञानी और अपरिमित पराक्रमवाला, ( विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता ) सब यज्ञ कर्मोंका पोषण करनेवाला, ( वज्री पुरुष्टुतः ) वज्रधारी और बहुतों द्वारा प्रशंसित ऐसा ( इन्द्रः अजायत ) इन्द्र प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

[ १२५१ ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( त्वं ) तूने ( गोमतः वलस्य ) गायको चुराकर ले जानेवाले असुरकी ( बिलं अपावः ) गुफाको फोडा, तब ( तुज्यमानासः देवाः ) हारे हुए देव ( अ-बिभ्युषः ) न घबराते हुए ( त्वां आविषुः ) तुझसे आकर मिले ॥ २ ॥

[ १२५२ ] स्तुति करनेवाले ( ओजसा ईशानं इन्द्रं ) सामर्थ्यसे सबके स्वामी होनेवाले इन्द्रकी ( स्तोमैः अभ्यनूषत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे । ( यस्य रातयः सहस्रं ) जिसके दान हजारों है ( उत वा ) अथवा ( भूयसीः सन्ति ) बहुत ज्यादा है ॥ ३ ॥

॥ यहां नववां खण्ड समाप्त हुआ ॥
॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

# नवम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्रके गुण इसप्रकार हैं—

१ वृषाः [ १२२२ ]- बलवान्।

२ वृषभः [ १२२२ ]- सामर्थ्यवान्।

३ ओजिष्ठः [ १२२३ ]- सामर्थ्यवान्।

४ बले-हितः [ १२२३ ]- बलसे युक्त, बलोंसे हित करनेवाला।

५ सबलः [ १२२४ ]- बलवान् सामर्थ्ययुक्त।

६ उग्रः [ १२२४ ]- उग्रवीर।

७ अस्तृतः [ १२२४ ]- पराजित न होनेवाला, न हारनेवाला।

८ अनपच्युतः [१२२४]- अन्य किसीसे न दबनेवाला।

९ वज्रः न [१२२४]- वज्रके समान कठिन, बलशाली।

१० वज्री [ १२५० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला।

११ प्रशर्ध [ १२३१ ]- शत्रुको हरानेवाला।

१२ शविष्ठः [ १२३३ ]- सामर्थ्यवान्।

१३ स्वराट् [१२३४]- तेजस्वी, स्वयं राज्य करनेवाला।

१४ सोम्यः [ १२२३ ]- उत्तम मनवाला।

१५ श्लोकी [ १२२३ ]- जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसनीय।

१६ उपमानां प्रथमः [१२३४]- उपमा देनेके योग्योंमें सर्व प्रथम।

१७ प्रेयः [ १२४७ ]- सबको प्रिय।

१८ सत्राजित् [ १२४७ ]- अनेक शत्रुओंको एकदम जीतनेवाला।

१९ अगोह्यः [ १२४७ ]- जो छिपा नहीं रह सकता, अपने सामर्थ्यसे प्रसिद्ध होनेवाला।

२० विश्वतः पृथुः [ १२४८ ]- सब प्रकारसे महान्।

२१ दिवः पतिः [ १२४८ ]- द्युलोकका स्वामी।

२२ दामने कृतः [ १२२३ ]- दान देनेके लिए प्रसिद्ध।

२३ पुरां भिन्दुः [१२५०]- शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला।

२४ युवा [ १२५० ]- तरुण, चाहे कितनी भी उम्र लम्बी हो जाए फिर भी हमेशा तरुण रहनेवाला।

२५ कविः [ १२५० ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।

२६ अमितौजाः [ १२५० ]- अपरिमित शक्तिसे युक्त।

२७ विश्वस्य कर्मणः धर्ता [ १२५० ]- सब श्रेष्ठ कर्मोंका करनेवाला।

२८ पुरुष्टुतः [१२५०]- अनेक जिसकी स्तुति करते हैं।

२९ ओजसा ईशानः [ १२५२ ]- अपने सामर्थ्यसे शासक बननेवाला।

३० महे वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि [ १२२२ ] -महान् वृत्रको मारनेके लिए उस इन्द्रके बलका हम वर्णन करते हैं।

३१ हे इन्द्र ! प्राक्, अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः हूयसे [ १२३१ ]- हे इन्द्र ! तुझे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणसे वीर नेता सहायताके लिए बुलाते हैं।

३२ त्वं दाशुषः नॄन् पाहि [ १२४६ ]- तू दानशील नेताओंकी व उसके पुत्रपौत्रोंकी रक्षा कर।

३३ त्मना तोकं रक्ष [ १२४६ ]- अपने पुत्रपौत्रोंकी रक्षा कर।

३४ हे अद्रिवः ! त्वं गोमतः वलस्य बिलं अपावः [ १२५१ ]- हे इन्द्र ! तूने गायोंको चुराकर ले जानेवाले राक्षसकी गुफाको तोडा।

३५ तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविशुः [ १२५१ ]- हारे हुए सब देव न डरते हुए तेरे आश्रयमें आ गए।

३६ यस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूयसीः सन्ति [ १२५२ ]- इन्द्रके दान हजारों अथवा उनसे भी अधिक हैं।

३७ इन्द्रः उभे रोदसी अभि बभूथ [ १२४८ ]- इन्द्रने दोनों ही लोक अपने तेजसे भर दिए।

## इन्द्रको सोम देना

यज्ञ करनेवाले इस इन्द्रको सोमरस निचोडकर दिया करते थे। इस विषयक वर्णन इस अध्यायमें इसप्रकार हैं—

१ अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रे आनय, इन्द्राय पातवे पुनाहि [ १२२५ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए सोमरस छलनीके पास ला और इन्द्रके पीनेके लिए छानकर तैय्यार कर।

२ मधुमत्तमं दिवः पीयूषं सोमं इन्द्राय सुनोत [ १२२७ ]- अत्यन्त मीठे द्युलोकके ये अमृत अर्थात् सोमरस इन्द्रके लिए तैय्यार करो।

३ तविष्यमाणः इन्द्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा आविश [ १२३० ]- बढाया जानेवाला यह सोमरस इन्द्रके पेटमें लहरोंसे जावे। इन्द्रका पेट उस रससे अच्छी तरह भर जावे।

४ ते मनः सोमकामं [ १२३४ ]–हे इन्द्र ! तेरा मन सोमरस पीनेकी इच्छा करता है।

५ ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु [ १२३५ ]- हे सोम ! तेरा आनन्द बढानेवाला रस इन्द्रके पास जावे।

६ सखायं आ विश [ ११८४ ]- हे सोम ! मित्ररूपी इन्द्रमें तू प्रविष्ट हो।

७ इन्द्राय जुष्टः मत्सरः पवमानः [११९४]–इन्द्रको दिया जानेवाला आनन्दवर्धक सोमरस शुद्ध किया जाता है।

८ सुताः सोमाः इन्द्राय धारया असृग्रं [ ११९६ ] सोमरस इन्द्रको देनेके लिए धार बांधकर छाने जाते हैं।

९ इन्द्रस्य जठरं आ विश [ १२०९ ]- हे सोम ! इन्द्रके पेटमें भर जा।

१० इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते [ १२१३ ]- इन्द्रके स्थानपर पहुंचनेके लिए सोमरस-शुद्ध किया जाता है।

इसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिए जानेका वर्णन है।

## देवोंके लिए सोमरस

जिसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिया जाता है, उसीप्रकार दूसरे देवोंको भी दिया जाता है।

१ महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वा धाम अभि पवस्व [ १२४१ ]- महान् समुद्रके समान रससे भरा हुआ सोम, सभीके पालक देवोंके सब स्थानोंतक जाता है। सब देवोंको वह प्राप्त होता है।

२ शुक्रः देवेभ्यः पवस्व [ १२४२ ]- चमकनेवाला सोमरस देवोंके लिए छाना जाता है।

३ दिवे पृथिव्यै प्रजाभ्यः शं [ १२४२ ]- द्युलोक, पृथ्वीलोक और प्रजाओंको सुख मिले, इसलिए हे सोम ! तू शुद्ध हो।

## द्युलोकमें सोम

सोम स्वर्गमें अर्थात् हिमालयके ऊंचे शिखर पर पैदा होता है—

१ शुक्रः पीयूषः दिवः धर्त्ता असि [ १२४३ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी और अमृतके समान तथा द्युलोकमें रहनेवाला है।

## सोमके गुण

१ विप्रः [ ११७५ ]- ज्ञानी।

२ कविः [ ११७५ ]- दूरदर्शी।

३ हर्यतः [ ११७५ ]- पूज्य।

४ ऋषिमनाः [ ११७६ ]–ऋषिके समान शुद्ध मनसे युक्त।

५ ऋषिकृत् [ ११७६ ]- ऋषि बनानेहारा।

६ स्वर्षाः [ ११७६ ]- सबका तत्व जाननेवाला।

७ सहस्रनीथः [११७६]–हजारों रास्तोंको जाननेवाला।

८ महिषः [ ११७६ ]- बल बढानेवाला।

९ कवीनां पदवीः [ ११७६ ]- ज्ञानीकी पदवी जिसे प्राप्त हो गई है।

१० स्तुप् [ ११७६ ]- स्तुत्य।

११ विराट् [ ११७६ ]- विशेष तेजस्वी।

१२ श्येनः [११७६]- प्रशंसनीय गरुडके समान द्युलोकमें रहनेहारा।

१३ शकुनः [ ११७६ ]- शक्ति बढानेवाला।

१४ गोविन्दुः [ ११७६ ]- गाय प्राप्त करनेवाला।

१५ द्रप्सः [ ११७६ ]- रसरूप।

१६ नृचक्षाः [११८५]–मानवोंका निरीक्षण करनेवाला।

१७ स्वर्विद् [ ११८५ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, स्वर्गको जाननेवाला।

१८ सोमाः इन्द्रस्य वीर्यं वर्धन्तः [ ११७८ ]- सोमरस इन्द्रका बल बढाता है।

सोमरसके ये गुण हैं। इनमेंसे कुछ गुण इन्द्रके गुणके समान ही है। देव सोमरस पीते है, उससे उनका उत्साह बढता है और इससे अनेक महत्वके कार्य वे करते हैं। यह देवोंका सामर्थ्य सोमरसके पीनेसे बढता है, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, ऐसा वर्णन किया है।

## सोम यज्ञ स्थानमें बैठता है

यज्ञ करनेवाले हिमालयके शिखरपरसे सोम लाते हैं और सोमयाग करते हैं। उस समय सोमवल्लीको भी यज्ञमण्डपमें रखते हैं, इसलिए कहा है—

१ स्वर्दृशः ऋतस्य योनौ सीदत [११९५]– स्वर्गमें रहनेवाले सोम यज्ञ स्थानमें आते हैं।

२ मदच्युतः सोमः सादने क्षेति, गौरी अधिश्रितः [ ११९८ ]– आनन्द और उत्साह बढानेवाला सोम, यज्ञशालामें रहता है। गान - सामगानोंके द्वारा वह शुद्ध होता है। उसे शुद्ध करते हुए सामका गायन शुरु होता है।

३ वाजी सत्ये विधर्मन् पवस्व [ १२४३ ]– बल बढानेवाला सोम यज्ञशालामें शुद्ध होता है।

इसप्रकार सोमका यज्ञशालाके साथ सम्बन्ध है।

## सोम संगठन करनेवाला है

१ नित्य-स्तोत्रः वनस्पतिः मानुषा युजा हिन्वानः [ १२०१ ]- नित्य प्रशंसित होनेवाली सोमवल्ली मनुष्योंको संगठित करती है। मानवोंको यज्ञके कारण एकत्रित करती है।

## सोमरसका पानीमें मिलाना

सोमका रस निचोडनेके बाद पानीमें मिलाया जाता है।

१ अत्यः न नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते [ १२२८] -घोडेके समान यह सोम नदीमें अनायास ही अपने बलोंको प्रकट करता है। घोडा जिसप्रकार पानीमें अपना बल दिखाता है, उसीप्रकार सोम जलमें मिलकर उत्साह बढानेकी अपनी शक्ति दिखाता है।

२ हे सोम ! समुद्रं आ विश [१२३६]- हे सोम ! कलशमें रखे हुए पानीमें प्रवेश कर। पानीमें मिल।

इसप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है।

## सोमके लिए सामगान

सोमरस छाननेके समय सामगान किया जाता है। इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ हे अवस्यव ! पवमानं विप्रं देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत [ ११८८ ]- हे अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवाले याजको। शुद्ध होनेवाले, ज्ञानी, देवोंके पीनेके लिए जिसका रस निकाला गया है, ऐसे सोमको लक्ष्य करके वेदमंत्रों-सामों-का गान करो।

सोमरसके निकालने और छाने जाने तक सामवेदका गान यज्ञमण्डपमें होता रहता था। एक तरफ उद्गाता साम गान करते थे और दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता था।

## सोमका छाना जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाकर वह छलनीसे छाना जाता था। इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ कविः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- ज्ञानी सोम छलनीसे छाना जाता है।

२ त्वा दशक्षिपः मृजन्ति [११८१]- हे सोम ! तुझे दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं।

३ सहस्रधारः अत्यविः पुनानः सोमः [ ११८७ ]- हजारों धाराओंसे भेडके बालोंकी छलनीसे सोम छाना जाता है।

४ होतृभिः अव्यं वारं वि अति अक्षरं [११९१] -ऋत्विजोंके द्वारा सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

५ सुक्रतुः कविः सोमः दिवः नाभा अव्या वारे महीयते [ ११९९ ]- उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी सोम स्वर्गके नाभिस्थान अर्थात् ऊपरके कलशसे बालोंकी छलनी पर शोभित होता है अर्थात् छाना जाता है।

६ सोमः पवित्रे अन्तः आहितः [ १२०० ]- सोमरस छलनी पर रखा जाता है।

७ इन्दुः मधुश्चुतं कोशं जिन्वन् समुद्रस्य अधि विष्टपि वाचं प्रेष्यति [१२०१]- सोमरस रखनेके बर्तनमें गिरता है, तब जलके कलशमें वह शब्द करता हुआ गिरता है।

८ अद्रिभिः प्रियं हरिं मधुश्चुतं पवमानं अव्याः वारैः परि हिन्वति [ १२०७ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए प्रिय और हरे रंगके मीठे सोम रसको भेडके बालोंकी छलनीसे छानते हैं।

९ पवित्रं धारया आ पवस्व [ १२०८ ]- छलनीसे धार बांधकर छनता जा।

१० स्वानः इन्दुः अव्ये परि अक्षरत् [ १२४० ]- निकाला गया सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छनता जाता है।

## सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

सोमरस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाकर छानते हैं। बादमें उसमें गायका दूध मिलाते हैं—

१ मदिन्तमः अक्तुभिः गोभिः अञ्जानः पवस्व [ १२०९ ]- हे आनन्दवर्धक सोम ! तेजस्वी गायके दूधके साथ मिलकर शुद्ध हो।

२ गव्ययुः ऊर्ध्वः यः आजा न अध्वरे धारा याति [ १२४० ]- गायके दूधसे मिलाया जानेवाला, श्रेष्ठ यह सोम तेजसे चमकता है और यज्ञमें धारासे छनता है।

३ मेष्यः अति सृजानं त्वा देवेभ्यः मदाय गोभिः सं वासयामसि [ ११८२ ]- हे सोम ! भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जानेके बाद देवोंको आनन्द देनेके लिए तुझे गायके दूधमें हम मिलाते हैं। प्रथम वह छाना जाता है, उसके बाद वह देवोंको अच्छा लगे इसलिए उसमें गायका दूध मिलाते हैं।

४ पुनानः कलशेषु आ, अरुषः हरिः गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत [ ११८३ ]- सोमरसको छानकर

कलशमें भरनेके बाद वह हरे रंगका चमकनेवाला सोम गायके दूधके वस्त्रोंको पहनता है। गायके दूधमें मिलाया जाता है।

इसप्रकार सोमरसको गायके दूधमें मिलानेका वर्णन है। गायके वस्त्रोंको सोम पहनता है यह आलंकारिक वर्णन है। सोममें गायके दूधको मिलानेका मतलब ही गायका वस्त्र पहनना है। " गायके साथ मिलता है " यह भाव भी कई मंत्रोंमें आया है, उसका भी अर्थ गायके दूधमें मिलाना है। " अंशके लिए पूर्णका उपयोग " वैदिक अलंकारमें कई जगह दिखाई पडता है। " दूध " अंश है और " गाय " पूर्ण है इसलिए दूधके लिए गायका उपयोग किया है। यह वेदकी शैली है।

## सोमका शब्द

सोमरस छानकर कलशमें भरा जाता है, तब उस कलशमें भरनेका उसका शब्द होता है।

१ सिन्धोः स्वनः इव ते शुष्मासः उदीरते [१२०५] –जिसप्रकार नदी अथवा समुद्रकी लहरोंका शब्द होता है उसीप्रकार सोमका शब्द सुना जाता है। सोमको कलशमें डालते समय उसका शब्द होता है।

२ वाणस्य पविं चोदय [ १२०५ ]– वाण नामक बाजेका जैसा शब्द होता है वैसा शब्द कर।

यह शब्द कलशमें डालते समय द्रव पदार्थोंका जैसा होता है, वैसा होता है।

## सोम अन्न देता है

सोमरस एक प्रकारका पौष्टिक और बल बढानेवाला अन्न है।

१ सोम! स्वर्विदं त्वां, वयं प्रजां इषं भक्षीमहि [११८५]– हे सोम ! स्वर्गको जाननेवाले तुझे प्राप्त करके तथा सन्तति व अन्न प्राप्त करके हम आनन्दसे रहें।

२ हे इन्दो ! वाजसातये बृहतीः इषः पवस्व [ ११९० ]– हे सोम ! हम अन्न दान करें इसलिए बहुत सारा अन्न हमें दें।

३ नः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववित् सहस्रिणीः इषः परिस्रव [ १२१२ ]– हे सोम ! हमें गाय, सोना, घोडा और हजारों प्रकारका अन्न दे।

४ धिया नः शश्वतः वाजान् उपमाहि [१२३०]– कर्म करके हमें हमेशा रहनेवाले बलवर्धक अन्न दे।

५ हे अध्रिगो ! ते इषः सुम्ने [ १२३९ ]– हे गायको आगे करनेवाले सोम ! तेरे अन्न सुख बढानेवाले हैं। गायको आगे करनेवाला सोम अर्थात् गायका दूध जिसमें मिलाया जाता है वह सोम।

सोमका रस दूधमें मिलनेसे वह एक उत्तम प्रकारका अन्न होता है।

## सोम बल बढाता है

सोमरसको छानकर उसमें दूध मिलानेसे वह पुष्टिकारक अन्न होता है—

१ सहस्र-पाजसः सोमाः पवन्ते [११८९]– हजारों प्रकारकी शक्ति बढानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

२ द्युमत् सुवीर्यं पवस्व [ ११९० ]– तेजस्वी उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे।

सोमरसरूपी जो अन्न है उसमें ऐसा विलक्षण सामर्थ्य है इसमें शंका नहीं।

## सोम धन और उत्तम वीर्य देता है

१ ते स्वानाः देवासः इन्दवः नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं आ पवन्ताम् [ ११९२ ]– वे निचोडे गए दिव्य सोम हमें हजारों प्रकारके उत्तम वीर्य और धन देवें।

२ हे पवमान ! सहस्रवर्चसं स्वाभुवं रयिं अस्मे धारय [१२०३]– हे शुद्ध होनेवाले सोम ! हजारों तेजोंसे युक्त ऐसे अपने स्वयंके घर हमें दे।

३ हे इन्दो ! नः महः रायः आभर, वीरवत् यशः रास्व [१२१४]– हे सोम ! हमें बडे बडे घर दे और पुत्र-पौत्रोंसे युक्त यश दे।

४ मखस्यसे राधः दित्सन्तं त्वा शतं चन ह्रुतः नः आमिनन् [ १२१५ ]– यज्ञ करनेवालोंको तू जब धन देनेकी इच्छा करता है, तब सैकडों कुटिल शत्रु भी तेरा प्रतिबन्ध नहीं कर सकते।

५ हे इन्दो ! नः वाजसातमं शतस्पृहं, सहस्र-भर्णसं तुविद्युम्नं विभासहं रयिं अभि अर्ष [ १२३८ ]– हे सोम ! हमें बल देनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित, हजारोंका भरणपोषण करनेवाले तेजस्वी, विशेष दीप्तिवाले धन दे।

६ पुरुस्पृहः वसोः ते राधसः नेदिष्ठतमाः स्याम [ १२३९ ]– बहुत सारे लोग तेरे धनकी प्रशंसा करते हैं अतः उस धनके पास हम पहुंचें।

## शत्रुको दूर कर

१ विश्वाः द्विषः अप जहि [ ११८४-११९४ ]- सब शत्रुओंको हरा।

२ पृत्सु नः सहः धाः [११८६]- युद्धमें अपने शत्रुओंको जीतनेका सामर्थ्य हममें बढा।

३ पवमान ! अराव्णः अपघ्नन्तः [ ११९४ ]- हे सोमरस ! तू दान न देनेवाले कजूंसोंको दूर करनेवाला है।

४ ते यः मदेषु नवनवतीः अवाहन् [ १२१० ]- तेरा यह रस संग्राममें ९९ शत्रुओंको हराता है।

५ सद्यः पुरः [ १२११ ]- उसी समय शत्रुके नगरोंका यह नाश करता है।

६ दिवोदासाय शम्बरं तुर्वशं यदुं अवाहन् [१२११] -दिवोदासके कल्याण करनेके लिए शम्बर, तुर्वश और यदुओंको इन्द्रने मारा।

७ सोमः मृधः अपघ्नन्, अराव्णः अप [ १२१३ ] सोम शत्रुओंको मारता है और दान न देनेवालोंको भी दूर करता है।

८ मृधः जाहि [ १२१४ ]- शत्रुओंको हरा।

९ शूरः न गभस्त्योः आयुधा धत्ते [ १२२९ ]- शूरके समान यह सोम हाथोंमें शस्त्रोंको धारण करता है।

१० मत्सरः ऋतुवित् मृधः अपघ्नन् [ १२३७ ]- यह आनन्द देनेवाला सोम कर्म करनेके सब ज्ञानको जानता है और शत्रुओंको मारता है।

११ हे इन्द्र ! त्वं शश्वतीनां पुरां धर्त्ता, दस्योः हन्ता असि [ १२४९ ]- हे इन्द्र ! तू शत्रुओंकी शाश्वत नगरियोंका और दुष्टोंका नाश करनेवाला है।

---

## सुभाषित

१ जज्ञानं हर्यतं शिशुं मृजन्ति [ ११७५ ]- अभी अभी जन्मे हुए उस पूज्य बालकको शुद्ध करते है, साफ करते हैं।

२ गणेन विप्रं शुम्भन्ति [ ११७५ ]- सब समूहमें मिलकर ज्ञानकी पूजा करते है। सत्कार करते है।

३ कविः गीर्भिः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- कवि भाषणके द्वारा पवित्रताके पास पहुंच गया है।

४ ऋषिमना ऋषिकृत्, सहस्रनीथः, कवीनां पदवीः महिषः तृतीयं धाम सिषासन् विराजं अनु विराजति [ ११७६ ]- ऋषिके समान जिसका पवित्र मन है, जो ऋषियोंका निर्माण करता है, जो अनेक मार्गोंसे उत्तम कार्य करता है, जो ज्ञानीकी पदवीको प्राप्त हुआ है, ऐसा जो महान् और शक्तिमान् होनेके कारण सर्वोच्च तृतीय स्थानमें रहता है वह विशेष तेजस्वी होनेके समान विराजमान् होता है।

५ चमूपद् शकुनः गोविन्दुः महिषः तुरीयं धाम विवक्ति [ ११७७ ]- समूहमें सन्मानपूर्वक रहनेवाला, गाय पालनेवाला, चतुर्थ स्थानमें अर्थात् सर्वोत्तम स्थानमें विराजता है।

६ एते अस्य वीर्यं वर्धन्तः [ ११७८ ]- ये वीर इसका पराक्रम बढाते है।

७ पुनानासः चमूषदः ते नः सुवीर्यं धत्त [११७९] -वे पवित्र होनेवाले समूहमें सन्मानसे रहनेवाले तुम हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दो।

८ पुनानः राधसे हार्दि चोदय, देवानां योनिं आसदं [ ११८० ]- शुद्ध होकर सिद्धि प्राप्त करनेके लिए लोगोंके हृदयमें शुद्ध प्रेरणा कर। देवोंके स्थानमें मैं बैठा हुआ हूँ।

९ विप्राः त्वा अनु अमादिषुः [ ११८१ ] ज्ञानी तुझे आनन्द देते हैं।

१० विश्वाः द्विषः अप जहि [ ११८४ ]- सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराजित कर।

११ सखायं आ विश [ ११८४ ]- मित्रके पास बैठ।

१२ नृचक्षसं स्वर्विदं त्वां वयं प्रजां इषं भक्षीमहि [११८५]- मनुष्योंके निरीक्षण करनेवाले तुझ आत्मज्ञानीको प्राप्त करके सुसन्तान और अन्न प्राप्त करके आनन्दसे रहें।

१३ पृथिव्याः अधि द्युम्नं [ ११८६ ]- पृथिवी पर तेजस्वी अन्न उत्पन्न कर।

१४ पृत्सु नः सहः धाः [११८६]- संग्राममें उपयोगी हों ऐसे शत्रुको हरानेवाले सामर्थ्य हमें दे।

१५ अवस्यवः ! पवमानं विप्रं देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत [ ११९९ ]- अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवालो ! शुद्ध, ज्ञानी, देवोंके पीनेके लिए निचोडे गए सोमरसको लक्ष्य करके स्तोत्रोंका गान करो।

१६ द्युमत् सुवीर्यं पवस्व [ ११९० ]- तेजस्वी उत्तम सामर्थ्य हमें दे।

१७ नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं पवन्ताम् [११९२] - हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य दो।

१८ पवमानः कनिक्रदत् विश्वाः द्विषः अप जहि [ ११९४ ] - तू शुद्ध होते हुए तथा शब्द करते हुए सब शत्रुओंको दूर कर।

१९ अराव्णः अपघ्नन्तः स्वर्दृशः ऋतस्य योनौ सीदत [११९५]- अनुदार शत्रुओंको मार कर, अपने तेजसे युक्त होकर यज्ञके स्थान पर बैठो।

२० सहस्रवर्चसं स्वाभुवं रयिं अस्मे रास्व [१२०३]- हजारों प्रकारके तेजसे युक्त घर और धन हमें दे।

२१ कविः विप्रः दिवः प्रिया अभि हिन्वे [१२०४] - ज्ञानी, बुद्धिमान् द्युलोकसे प्रिय स्थानकी ओर प्रेरणा करता है।

२२ ते मदेषु नव-नवतीः अवाहन् [१२१०]- तेरा उत्साह युद्धमें निन्यानवे शत्रुओंको मारता है।

२३ सद्यः पुरः [ अवाहन् ] [१२११]- उसी समय शत्रुओंके नगरोंको इसने तोडा।

२४ नः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववित् सहस्रिणीः इषः परिस्रव [ १२१२ ]- हमें गाय, सोना और घोडोंसे युक्त हजारों प्रकारके अन्न दे।

२५ सोमः मृधः अपघ्नन् अराव्णः अप [ १२१३ ] हे सोम ! हिंसक और दान न देनेवाले शत्रुओंका नाश कर।

२६ नः महः रायः आ भर, मृधः जहि, वीरवत् यशः रास्व [ १२१४ ]- हमें बहुत सारा धन भरपूर दे। शत्रुओंको मार और पुत्रोंके साथ मिलनेवाले यश और अन्न दे।

२७ राधः दित्सन्तं त्वा शतं चन हुतः न आमिनन् [ १२१५ ]- धन देनेकी इच्छावाले तुझे सैकडों शत्रु भी धन देनेसे नहीं रोक सकते।

२८ सः वृषा वृषभः भुवत् [१२२२]- वह बलवान् और अधिक बलवान् हो गया है।

२९ स दामने कृतः [ १२२३ ]- वह देनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है।

३० स ओजिष्ठः बले हितः [ १२२३ ]- वह बलशाली वीर बलके कार्योंमें ही स्थापित किया गया है।

३१ गिरा सम्भृतः सबलः अनपच्युतः उग्रः अस्तृतः ववक्षे [ १२२४ ]- वाणीसे प्रशंसित, बलवान् होनेके कारण अपने कर्तव्यसे विमुख न होनेवाला, उग्रवीर और कभी न हारनेवाला ऐसा वह इन्द्र धन देनेकी इच्छा करता है।

३२ शूरः नः गभस्त्योः आयुधं धत्ते [ १२२९ ] शूरके समान वह हाथोंमें शस्त्र धारण करता है।

३३ प्राक्, अपाक्, उदक् वा न्यक् नृभिः हूयसे [ १२३१ ]- पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें लोग तुझे सहायताके लिए बुलाते हैं।

३४ उपमानां प्रथमः निषीदसि [ १२३४ ]- उपमा देने योग्य मनुष्योंमें सबसे मुख्य होकर तू बैठता है।

३५ अवाय्यं रयिं नितोशसे [ १२३६ ]- प्रशंसनीय धनके लिए तू शत्रुओंको पीडा देता है।

३६ पुरुस्पृहस्य वसोः राधसः नेदिष्ठतमाः स्याम [१२३९]- बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य, सिद्धि देनेवाले धनके बहुत ही पास रहनेवाले हम होवें।

३७ प्रजाभ्यः शं [१२४२]- प्रजाओंका कल्याण हो।

३८ शुक्रः वाजी सत्ये विधर्मन् [१२४३]- तेजस्वी, बलवान् और सत्यमार्गसे अनेक काम करनेवाला तू है।

३९ त्वं दाशुषे नॄन् पाहि [ १२४६ ]- तू दान देनेवाले मनुष्यकी रक्षा कर।

४० त्मना तोकं रक्ष [ १२४६ ]- अपने प्रयत्नसे अपनी सन्तानोंकी रक्षा कर।

४१ सत्राजित् अगोह्यः विश्वतः पृथुः [ १२४७ ]- सब शत्रुओंको जीतनेवाला, किसीके आगे न दबनेवाला, सबसे बडा वीर तू है।

४२ शश्वतीनां पुरां धर्ता, दस्योः हन्ता, मनोः वृधः असि [ १२४९ ]- तू शत्रुओंकी शाश्वत नगरियोंको तोडनेवाला, शत्रुको मारनेवाला और मनको बलवान् करनेवाला है।

४३ पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः विश्वस्य कर्मणः धर्ता वज्री पुरुष्टुतः अजायत [ १२५० ]- शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला तरुण, ज्ञानी, अपरिमित शक्तिशाली, सब कर्मोंको धारण करनेवाला, वज्रधारी और बहुतोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य तू उत्पन्न हुआ है।

४४ त्वं गोमतः वलस्य बिलं अपावः [ १२५१ ]- तूने गायोंको चुरानेवाले वल राक्षसकी गुफाको फोडा।

४५ तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविषुः

[ १२५१ ]- हारे हुए देवोंने फिर न घबराते हुए तेरा ही आसरा लिया।

४६ यस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूयसीः सन्ति, तं ओजसा ईशानं इन्द्रं स्तोमैः अभ्यनूषत [१२५२]- जिसके दान हजारों अथवा उससे भी अधिक हैं, उस सामर्थ्यसे युक्त इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं।

---

## उपमा

१ जज्ञानं शिशुं न [ ११७५ ]- नये-नये जन्मे हुए बच्चेको जिसप्रकार साफ रखते हैं, उसीप्रकार ( हर्यतं मरुतः मृजन्ति ) पूज्य सोमको मरुत् साफ करते हैं।

२ वाजसातये हियानाः आशवः न [ ११९१ ]- युद्धके लिए तैय्यार हुए हुए चंचल घोडेके समान ( हेतृभिः अव्यं वारं अति असृग्रं ) ऋत्विजोंके द्वारा सोमरस छलनीसे छाना जाता है।

३ मातरः वत्सं न [ ११९३ ]- गायें जिसप्रकार अपने बछडेके पास जाती हैं, उसीप्रकार ( इन्दवः अभि अर्षन्ति ) सोमरस कलशमें जाते हैं।

४ धेनवः गावः वत्सं न [ ११९७ ]- दुधारु गायें अपने बछडेके पास जिसप्रकार जाती हैं, उसीप्रकार ( विप्राः इन्द्रं अभि अनूषत ) ऋत्विज इन्द्रके पास जाते हैं।

५ मदच्युत् सोमः सादने क्षेति [ ११९८ ]- आनंद देनेवाला सोम जिसप्रकार यज्ञशालामें रहता है, उसीप्रकार ( सिन्धोः ऊर्मा विपश्चित् ) नदीके पानीमें सोम रहता है, और उसीप्रकार ( गौरी अधिश्रितः ) गानोंके बीचमें सोम शुद्ध होता है।

६ सुक्रतुः कविः विचक्षणः [ ११९९ ]- उत्तम यज्ञ करनेवाला जिसप्रकार ज्ञानी और महान् विद्वान् होता है, उसीप्रकार ( सोमः दिवः नाभा ) सोम द्युलोकमें ऊंचे स्थानपर रहता है।

७ परावति कविः विप्रः [ १२०४ ]- जैसे श्रेष्ठ स्थानमें कवि और ज्ञानी रहता है, उसीप्रकार ( धारया दिवः प्रिया अभि हिन्वे ) धारसे युक्त होकर द्युलोकमें प्रिय स्थानके पास सोम रहता है।

८ सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव [ १२०५ ]- समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते शुष्मासः उदीरते ) तेरी-सोमरसकी-तीव्रताके शब्द सुनाई देते हैं।

९ प्रोथत् अश्वः न [ १२२० ]- हिनहिनानेवाले घोडेके समान ( महः संवरणात् यदा व्यस्थात् ) महान् वेगसे जंगलकी अग्नि फैलती है।

१० वज्रः न [१२२४]- वज्रके समान ( सबलः अनपच्युतः ) बलवान् और न दबनेवाला इन्द्र है।

११ अत्यः न [ १२२८ ]- घोडेके समान ( नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते ) नदीके पानीमें सोम अनायास ही अपने बल दिखाता है। सोम पानीमें मिलाया जाता है।

१२ शूरः न [ १२२९ ]- शूरके समान ( गभस्त्योः आयुधा धत्ते ) सोम हाथोंमें शस्त्र धारण करता है।

१३ विद्युत् अभ्रा इव [ १२३० ]- बिजली जैसे बादलोंसे पानी बरसाती है, उसीप्रकार ( रोदसी प्रपिन्वे ) द्युलोक और भूलोक फल देते हैं।

१४ भ्राजा न [ १२४० ]- तेजसे जैसे कोई चमकता है, वैसे ही सोम ( अध्वरे धारा याति ) यज्ञमें अपनी धारासे जाता है। वहां जाकर चमकता है।

१५ प्रियं मित्रं इव [ १२४४ ]- प्रिय मित्रके समान ( प्रेष्ठं अतिथिं स्तुषे ) सर्व प्रिय अग्निकी स्तुति करता हूं।

१६ रथं न वेद्यं [ १२४४ ]- रथके समान धन प्राप्त करानेवाले अथितिकी मैं स्तुति करता हूं।

१७ कविं इव प्रशस्यं [ १२४५ ]- कविके समान प्रशंसनीय।

१८ गिरिः न [ १२४७ ]- पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) चारों ओरसे महान् ऐसा ( दिवः पतिः ) द्युलोकका शासक इन्द्र है।



# नवमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| ११७५ | ९।९६।१७ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| ११७६ | ९।९६।१८ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | " | " |
| ११७७ | ९।९६।१९ | प्रतर्दनो दैवोदासिः | " | " |
| ११७८ | ९।८।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | गायत्री |
| ११७९ | ९।८।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८० | ९।८।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८१ | ९।८।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८२ | ९।८।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८३ | ९।८।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८४ | ९।८।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८५ | ९।८।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८६ | ९।८।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| ११८७ | ९।१३।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८८ | ९।१३।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११८९ | ९।१३।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९० | ९।१३।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९१ | ९।१३।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९२ | ९।१३।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९३ | ९।१३।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९४ | ९।१३।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९५ | ९।१३।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| ११९६ | ९।१२।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९७ | ९।१२।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९८ | ९।१२।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ११९९ | ९।१२।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२०० | ९।१२।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२०१ | ९।१२।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२०२ | ९।१२।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२०३ | ९।१२।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२०४ | ९।१२।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |

# अथ दशमोऽध्यायः ।



अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ पराशरः शाक्त्यः; २ शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा; ४, ७, राहूगण आंगिरसः; ५ ( १-४ ), ५ ( प्रथम पादः ; प्रियमेध आंगिरसः; ५ ( शेषास्त्रयः पादाः ) ६ ( प्रथमः पादः ) १४ नृमेध आंगिरसः; ६ ( शेषास्त्रयः पादाः ) इध्मवाहो दार्ढच्युतः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० वत्सः काण्वः; ११ शतं वैखानसः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १३ वसुर्भारद्वाजः; १५ भर्गः प्रागाथः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुराप्सवः; १८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १९ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; २० अमहीयुरांगिरसः; २१ त्रिशोकः काण्वः; २२ गोतमो राहूगणः; २३ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥ १-७, ११-१३, १६-२० पवमानः सोमः, ८ पवमानाध्येता, १०, १४-१५, २१ ( २-३ ), २२-२३ इन्द्रः; ९ अग्निः, २१ ( १ ) अग्नीन्द्रौ ॥ १, ९ त्रिष्टुप्; २-७, १०-११, १६, २०-२१ गायत्री; ८, १८, २३ अनुष्टुप्; १२ ( १-२ ), १४, १५ प्रगाथः- ( बृहती, सतो बृहती ); १३ ( ३ ), १९ द्विपदा विराट्, १३ जगती, १७, २२ उष्णिक् ॥

१२५३ अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।४० )

१२५४ मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।४२ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १२५३ ] ( समुद्रः गो-पाः ) पानी बरसानेवाला, रक्षक सोम ( प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् ) सबसे पहले भुवनोंको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( प्रजाः जनयन् अक्रान् ) प्रजाओंको उत्पन्न करके सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ । ( वृषा स्वानः ) बलवर्धक सोमके रसको निकालनेके बाद ( अद्रिः सोमः ) आवरणीय वह सोम ( अधिसानो अव्ये पवित्रे ) अधिक ऊंचे रखे गए बालोंकी छलनीमें ( बृहत् वावृधे ) अधिक बढता है ॥ १ ॥

[ १२५४ ] हे ( देव सोम ) दिव्य सोम ! ( नः इष्टये राधसे ) हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिए ( वायुं मत्सि ) वायुको प्रसन्न कर । ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( मित्रावरुणा मत्सि ) मित्र और वरुणको सन्तुष्ट कर। ( मारुतं शर्द्धः मत्सि ) मरुतोंके बलको आनन्दित कर । ( देवान् मत्सि ) देवोंको सन्तुष्ट कर ( द्यावापृथिवी [ मत्सि ] ) द्युलोक और पृथिवीको प्रसन्न कर ॥ २ ॥

१२५५ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः　　　॥ ३ ॥ १ ( टै ). ॥

[ धा० २८ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ ९।९७।१ )

१२५६ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम्　　॥ १ ॥ ( ऋ ९।३।१ )

१२५७ एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे　　॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।६ )

१२५८ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३।४. )

१२५९ एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३।५ )

१२६० एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३।३ )

१२६१ एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।३।२ )

१२६२ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥ ( ऋ ९।३।७ )

---

[ १२५५ ] ( महिषः सोमः ) महान् पूज्य सोम ( महत् तत् चकार ) उस महान् कार्यको करता है । ( यत् ) जो कार्य ( अपां गर्भः ) पानीके गर्भवाला यह सोम ( देवान् आवृणीत ) देवोंकी सेवा करनेके लिए करता है । ( पवमानः ) छनकर इस सोमने ( इन्द्रे ओजः अदधात् ) इन्द्रमें बल बढाया, उसीप्रकार इस ( इन्दुः ) सोमने ( सूर्ये ज्योतिः अदधात् ) सूर्यमें तेज स्थापित किया ॥ ३ ॥

[ १२५६ ] ( एषः अमर्त्यः देवः ) यह अमर देव सोम ( द्रोणानि अभि आसदं ) कलशमें बैठनेके लिए ( पर्णवीः इव ) पक्षीके समान ( दीयते ) वेगसे जाता है ॥ १ ॥

[ १२५७ ] ( विप्रैः अभिष्टुतः ) ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित ( एषः देवः ) यह देव सोम ( दाशुषे रत्नानि दधत् ) दाताको रत्न देता हुआ ( अपः विगाहते ) जलोंमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२५८ ] ( पवमानः एषः शूरः ) छाना जानेवाला यह शूर वीर सोम ( विश्वानि वार्या ) सब धन ( सत्वभिः यन्निव ) अपने बलकी सहायतासे प्राप्त करते हुए ( सिषासति ) हमें देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

[ १२५९ ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाना जानेवाला दिव्य सोम ( रथर्यति ) यज्ञमें जानेके लिए रथकी इच्छा करता है । ( दिशस्यति ) और हमें इष्ट पदार्थ देनेकी इच्छा करता है और ( वग्वनुं आविष्कृणोति ) शब्द करता है ॥ ४ ॥

[ १२६० ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाना जानेवाला दिव्य सोम ( ऋतायुभिः विपन्युभिः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा, लोग ( हरिः ) घोडेको जिसप्रकार ( वाजाय मृज्यते ) संग्राममें जानेके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार सजाया जाता है ॥ ५ ॥

[ १२६१ ] ( विपा कृतः ) अंगुलियों द्वारा निचोडा गया, ( अ-दाभ्यः ) तथा न दबाया जानेवाला ( एष पवमानः देवः ) यह शुद्ध होनेवाला दिव्य सोम ( ह्वरांसि अति धावति ) शत्रुओंको कुचलता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२६२ ] ( धारया पवमानः एषः ) धारसे छाना जानेवाला यह सोम ( कनिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( रजांसि तिरः ) शत्रुके लोकोंको हराता हुआ यज्ञस्थानसे ( दिवं विधावति ) स्वर्गलोकको जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ७ ॥

१२६३ एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।३।८ )

१२६४ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।३।९ )

१२६५ एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २ (दू) ॥

[ धा० ३४ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।३।१० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१२६६ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ( ऋ. ९।१५।१ )

१२६७ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१५।२ )

१२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१५।७ )

१२६९ एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४॥ ( ऋ ९।१५।३ )

१२७० एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥ ( ऋ. ९।१५।५ )

[ १२६३ ] ( सु-अध्वरः पवमानः एषः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला तथा छाना जानेवाला यह सोम ( अस्तृतः ) अपराजित अर्थात् विजयी होकर ( रजांसि तिरः ) शत्रुके लोकोंको नष्ट करके ( दिवं व्यासरत् ) स्वर्गको जाता हुआसा प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

[ १२६४ ] ( हरिः एषः देवः ) हरे रंगका यह दिव्य सोम ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन जन्मसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निचुड कर ( पवित्रे अर्षति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ ९ ॥

[ १२६५ ] ( एष उ स्यः ) यही वह सोम ( पुरुव्रतः जज्ञानः ) बहुत कर्म करनेके लिए उत्पन्न हुआ हुआ और ( इषः जनयन् ) अन्न उत्पन्न करता हुआ ( सुतः धारया पवते ) रसकी धारासे छनता जाता है ॥ १० ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२६६ ] ( शूरः ) शूरवीर तथा ( अण्व्या ) अंगुलियोंसे दबाकर निकाला गया ( एषः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्थानके पास ( आशुभिः रथेभिः ) शीघ्रगामी रथोंसे ( गच्छन् ) जानेकी इच्छा करता हुआ ( धिया याति ) बुद्धिपूर्वक जाता है ॥ १ ॥

[ १२६७ ] ( एषः ) यह सोम ( बृहते देवतातये ) महान् यज्ञके लिए ( पुरू धियायते ) बहुतसे कर्म करनेकी इच्छा करता है। ( यत्र ) जिस यज्ञमें ( अमृतासः आशत ) अमर देव बैठते हैं ॥ २ ॥

[ १२६८ ] ( आयवः ) ऋत्विज ( महीः इषः प्रचक्राणं ) बहुत अन्न उत्पन्न करनेवाले ( एतं मर्ज्यं ) इस शुद्ध होनेके योग्य सोमको ( द्रोणेषु उप मृजन्ति ) कलशमें छानकर रखते हैं ॥ ३ ॥

[ १२६९ ] ( हितः एषः ) हवियोंमें रखा हुआ यह सोम ( विनीयते ) आहवनीय स्थानकी ओर लेजाया जाता है। ( अन्तः शुन्ध्यावता पथा ) यहां शुद्ध होनेके मार्गसे ( यदि भूर्णयः ) अध्वर्यु आदि ( तुजन्ति ) उसे देवोंकी ओर ले जाते हैं ॥ ५ ॥

[ १२७० ] ( वाजी ) बलवान् और ( शुभ्रेभिः अंशुभिः ) शुभ्र किरणोंसे युक्त ( एषः ) यह सोम ( सिन्धूनां पतिः भवन् ) प्रवाहित होनेवाले रसोंका स्वामी होकर ( रुक्मिभिः ईयते ) याजकोंके साथ जाता है ॥ ६ ॥

१२७१ एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥ ( ऋ. ९।१५।४ )

१२७२ एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाꣳ अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥ ( ऋ. ९।१५।६ )

१२७३ एतमु त्यं दश क्षिपो हरिꣳ हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ३ (के) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१५।८ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१२७४ एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत । गच्छन्वाजꣳ सहस्रिणम् ॥१॥ ( ऋ. ९।३८।१ )

१२७५ एतं त्रितस्य योषणो हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥ ( ऋ. ९।३८।२ )

१२७६ एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥ ( ऋ. ९।३८।४ )

१२७७ एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४॥ ( ऋ. ९।३८।५ )

---

[ १२७१ ] ( ओजसा नृम्णा दधानः ) अपने सामर्थ्यसे धनोंको धारण करते हुए ( एषः ) यह सोमरस ( यूथ्यः वृषा शिशीते ) जिसप्रकार झुण्डमें बैल अपने सींगोंको हिलाता है, उसीप्रकार ( शृंगाणि दोधुवत् ) अपनी किरणोंको हिलाता है ॥ ६ ॥

[ १२७२ ] ( वसूनि पिब्दनः ) बैठनेवाले राक्षसोंको पीडा देनेवाला ( एषः ) यह सोम ( परुषा अति ययिवान् ) अपनी शक्तिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, और ( शादेषु अव गच्छति ) मारने योग्य राक्षसोंको कुचलता हुआ चला जाता है ॥ ७ ॥

[ १२७३ ] ( सु-आयुधं ) उत्तम शस्त्रोंका उपयोग करनेवाले तथा ( मदिन्तमं ) अत्यन्त आनन्ददायक ( त्यं हरिं एतं उ ) उस हरे रंगके सोमको ( यातवे ) देवोंके पास ले जानेके लिए ( दश क्षिपः हिन्वन्ति ) दसों अंगुलियां दबाकर रस निकालती हैं ॥ ८ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १२७४ ] ( एषः ) यह ( रथः ) रथके समान वेगवान् तथा ( वृषा स्यः ) बलवान् सोम ( सहस्रिणं वाजं ) हजारों प्रकारके अन्न देनेके लिए ( गच्छन् ) कलशमें जाते हुए ( अव्या वारेभिः ) बालोंकी छलनीके द्वारा ( अव्यत ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२७५ ] ( त्रितस्य योषणः ) त्रितकी अंगुलियां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेके वास्ते देनेके लिए ( एतं हरिं इन्दुं ) इस हरे रंगके सोमको ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कूटती हैं ॥ २ ॥

[ १२७६ ] ( स्यः एषः ) वह यह सोम ( मानुषीषु विक्षु ) मनुष्यकी प्रजाओंमें ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान तथा ( योषितं गच्छन् जारः न ) स्त्रीके पास जाते हुए जारके समान ( आ सीदति ) जाकर बैठता है ॥ ३ ॥

[ १२७७ ] ( दिवः शिशुः ) द्युलोकका यह पुत्र ( यः इन्दुः ) जो सोम है वह ( वारं आ विशत् ) छलनीमें प्रवेश करता है, ( एषः स्यः ) वह यह ( मद्य· रसः अव चष्टे ) आनन्द बढानेवाला सोमरस सबको देखता है ॥ ४ ॥

१२७८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३८।६ )

१२७९ एषं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ४ ( वी ) ॥

[ धा० २३ । उ० ८ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।३८।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२८० एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥ (ऋ. ९।२८।१)

१२८१ एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२८।२ )

१२८२ एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२८।३ )

१२८३ एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ ऋ. ९।२८।४ )

१२८४ एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

( ऋ. ९।२८।५ [ प्रथमः पादः ]; ऋ. ९।२७।५ [ त्रयः पादाः ] )

---

[ १२७८ ] ( पीतये सुतः ) देवोंके पीनेके लिए निचोडा गया ( हरिः धर्णसिः ) हरे रंगका और सबको धारण करनेवाला ( स्यः एषः ) वह यह सोम ( प्रियं योनिं ) अपने प्रिय स्थान कलशमें ( क्रन्दन् अभि अर्षति ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

[ १२७९ ] ( त्यं एतत् ) उस इस सोमको ( दशः हरितः ) दसों अंगुलियां ( अपस्युवः मर्मृज्यन्ते ) यज्ञ करनेकी इच्छा करती हुई साफ करती हैं। ( याभिः ) जिन अंगुलियोंसे ( मदाय शुम्भते ) इन्द्रका आनन्द बढानेके लिए सोम छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२८० ] ( वाजी ) बलवान् सोम ( नृभिः हितः ) याजकोंके द्वारा कलशमें रखा गया है। ( विश्ववित् मनसः पतिः ) सर्वज्ञ और मनका स्वामी ( एषः ) यह सोम ( अव्यं वारं विधावति ) बालोंकी छलनीकी ओर दौडता है ॥ १ ॥

[ १२८१ ] ( देवेभ्यः सुतः एषः ) देवोंको देनेके लिए निकाला गया यह सोम ( पवित्रे अक्षरत् ) छलनीसे छाना जाता है। ( विश्वा धामानि आविशन् ) वह सब धामोंमें - देवोंके शरीरोंमें - प्रवेश करता है ॥ २ ॥

[ १२८२ ] ( अमर्त्यः वृत्र-हा ) अमर और शत्रुओंका नाश करनेवाला ( देव-वी-तमः देवः एषः ) देवोंको बहुत अच्छा लगनेवाला यह दिव्य सोम ( अधि योनौ शुभायते ) अपने कलशमें सुशोभित होता है ॥ ३ ॥

[ १२८३ ] ( वृषा एषः ) बल बढानेवाला यह सोम ( कनिक्रदत् ) शब्द करते हुए ( दशभिः जामिभिः यतः ) दसों अंगुलियोंके द्वारा दबानेके बाद ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें दौडता हुआ पहुंचता है ॥ ४ ॥

[ १२८४ ] ( पवित्रे ) छलनीमें रहनेवाला ( मत्सरः मदः ) आनन्द बढानेवाला तथा प्रसन्नता देनेवाला ( एषः पवमानः ) यह शुद्ध किया जानेवाला सोमरस ( द्यवि सूर्यं अधि अरोचयत् ) द्युलोकमें सूर्यको प्रकाशित करता है॥५॥

१२८५ एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ५ ( के ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।२७।५ [ प्रथमः पादः ]; ऋ. ९।२६।४ [ त्रयः पादाः ] )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१२८६ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२७।१ )

१२८७ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२७।२ )

१२८८ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२७।३ )

१२८९ एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२७।४ )

१२९० एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२७।६ )

१२९१ एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ ६ ( शु ) ॥

[ धा० ३१ । उ० ३ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।२८।६ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

---

[ १२८५ ] ( वाचः पतिः ) स्तुतिका स्वामी ( अदाभ्यः एषः ) और न दबाया जानेवाला यह सोम ( संवसानः ) जलादियोंमें मिलाये जानेके लिए ( विवस्वता सूर्येण ) प्रकाशमान् सूर्यके द्वारा ( हासते ) छोडा जाता है । बर्तनमें छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२८६ ] ( कविः अभिष्टुतः ) कवियों - ज्ञानियों - के द्वारा प्रशंसित होनेवाला ( पुनानः ) छाना जानेवाला ( द्विषः अपघ्नन् ) शत्रुओंको मारनेवाला ( एषः ) यह सोम ( अधि तोशते ) काले हिरणके चमडेपर कूटा जाता है ॥१॥

[ १२८७ ] ( दक्ष-साधनः स्वर्जित् एषः ) बल बढानेके साधनोंको और स्वर्ग - सुख - को जीतनेवाला यह सोम ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र और वायुके लिए ( पवित्रे परि षिच्यते ) छलनीसे टपकता हुआ नीचेके कलशमें गिरता है ॥२॥

[ १२८८ ] ( दिवः मूर्धा ) द्युलोकका सिर ( वृषा सुतः ) बलवान् और रसरूप ( विश्ववित् एषः सोमः ) सर्वज्ञ सोम ( वनेषु नृभिः नीयते ) लकडीके बर्तनमें ऋत्विजों द्वारा ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ १२८९ ] ( गव्युः हिरण्ययुः ) गौ दूधमें मिलाया जानेवाला, सोनेका स्पर्श जिसमें होता है ऐसा ( इन्दुः सत्राजित् ) चमकनेवाला और जीतनेवाला ( अस्तृतः ) अपराजित ( एषः पवमानः ) यह शुद्ध होनेवाला सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ टपकता है ॥ ४ ॥

[ १२९० ] ( वृषा हरिः ) बल बढानेवाला हरे रंगका ( पुनानः इन्दुः ) पवित्र होनेवाला और चमकनेवाला ( शुष्मी एषः ) सामर्थ्यवान् यह सोम ( अन्तरिक्षे आसिष्यदत् ) छलनीसे टपकता है और ( इन्द्रं आ ) इन्द्रके पास पहुंचता है ॥ ५ ॥

[ १२९१ ] ( देवावीः अघशंसहा ) देवोंका रक्षक और पापी शत्रुओंका नाश करनेवाला, ( अ-दाभ्यः पुनानः ) न दबनेवाला और शुद्ध होनेवाला ( शुष्मी एषः अर्षति ) बलवान् यह सोम कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

*

[ ६ ]

१२९२ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षाꣳसि देवयुः ॥ १ ॥ ( ऋ ९।३७।१ )

१२९३ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।३७।२ )

१२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३७।३ )

१२९५ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यꣳसह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३७।४ )

१२९६ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥ ( ऋ ९।३७।५ )

१२९७ स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मꣳहयन् ॥ ६ ॥ ७ ( खे ) ॥

[ धा० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ऋ.९।३७।६ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२९८ यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतꣳरसम् ।
सर्वꣳस पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।३१ )

---

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १२९२ ] ( देवयुः ) देवोंको प्राप्त होनेवाला ( पीतये सुतः ) इन्द्रादि देवोंके पीनेके लिए तैय्यार किया गया तथा ( वृषा ) बल बढानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( रक्षांसि निघ्नन् ) राक्षसोंका नाश करता हुआ ( पवित्रे अर्षति ) छलनीसे नीचे उतरता है ॥ १ ॥

[ १२९३ ] ( विचक्षणः हरिः ) सबोंको देखनेवाला, हरे रंगका ( धर्णसिः सः ) सबोंको धारण करनेवाला वह सोम ( पवित्रे ) छलनीसे ( कनिक्रदत् योनिं अभि अर्षति ) शब्द करता हुआ कलशमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२९४ ] ( वाजी दिवः रोचनं ) बलवान्, द्युलोकमें चमकनेवाला ( रक्षोहा पवमानः सः ) राक्षसोंका नाश करनेवाला, शुद्ध होनेवाला वह सोम ( अव्ययं वारं विधावति ) बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ १२९५ ] ( सः ) वह सोम ( त्रितस्य अधि सानवि ) त्रितके महान् यज्ञमें ( पवमानः ) छाना जाता हुआ ( जामिभिः सह ) महान् तेजोंसे ( सूर्यं अरोचयत् ) सूर्यको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[ १२९६ ] ( वृत्रहा वृषा ) शत्रुको मारनेवाला बलवान् ( सुतः ) रस निचोडनेके बाद ( वरिवोवित् ) धन देनेवाला ( अदाभ्यः सः सोमः ) न दबनेवाला वह सोम ( वाजं इव असरत् ) घोडेके समान कलशमें जाता है ॥ ५ ॥

[ १२९७ ] ( देवः इन्दुः सः ) [ द्युलोकमें ] प्रकाशित होनेवाला वह सोम ( कविना इषितः ) अध्वर्युके द्वारा प्रेरित ( इन्द्राय मंहयन् ) इन्द्रको महानता देकर ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२९८ ] ( यः ) जो ( ऋषिभिः सम्भृतं रसं ) ऋषियोंके द्वारा एकत्रित किए गए रसका तथा ( पावमानीः ) पवमानके मंत्रोंका ( अध्येति ) अध्ययन करता है । ( सः ) वह ( मातरिश्वना स्वदितं सर्वं ) वायुके द्वारा चखे हुए सारे ( पूतं अश्नाति ) पवित्र अन्नका भक्षण करता है ॥ १ ॥

१२९९ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतꣳरसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरꣳसर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।३२ )

१३०० पवमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳहितम् ॥ ३ ॥

१३०१ पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥

१३०२ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

१३०३ पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्याꣳश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ८ ( ती ) ॥

[ धा० ४४ । उ० १ । स्व० ४ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

---

[ १२९९ ] ( यः ऋषिभिः संभृतं रसं ) जो ऋषियों द्वारा एकत्र किए गए साररूपी ( पावमानीः अध्येति ) शुद्ध करनेवाले मंत्रोंका अध्ययन करता है, ( तस्मै सरस्वती ) उसे विद्यादेवी ( क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे ) दूध, घी, शहद और पानी देती है ॥ २ ॥

[ १३०० ] ( पावमानीः ) शुद्ध करनेवाले ( स्वस्त्ययनीः ) कल्याण करनेवाले ( सु-दुघा ) उत्तम फल देनेवाले ( घृतश्चुतः ) घीकी वृष्टि करनेवाले ये मंत्र ( हि ऋषिभिः संभृतः रसः ) ऋषियोंके द्वारा एकत्र किए गये साररूप है। ( ब्राह्मणेषु अमृतं हितं ) वेदपाठी ब्राह्मणोंमें मानों यह अमृत ही रख दिया है ॥ ३ ॥

[ १३०१ ] ( देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः ) देवों द्वारा तैय्यार की गई पवित्रता करनेवाली यह देवतारूपी ऋचा ( नः ) हमें ( इमं अथो अमुं लोकं ) इस और उस लोकको ( दधन्तु ) देवें। और उस लोकमें ( नः कामान् समर्धयन्तु ) हमारा मनोरथ सफल करें ॥ ४ ॥

[ १३०२ ] ( देवाः ) देव ( येन पवित्रेण ) जिस पवित्र साधनसे ( सदा आत्मानं पुनते ) हमेशा अपनेको पवित्र करते है। ( तेन सहस्रधारेण ) उन हजारों तरहके साधनोंसे ( पावमानीः नः पुनन्तु ) पवित्र करनेवाली वह ऋचायें हमें पवित्र करें ॥ ५ ॥

[ १३०३ ] ( पावमानीः ) पवित्र करनेवाली और ( स्वस्त्ययनीः ) कल्याण करनेवाली जो ऋचायें है ( ताभिः नान्दनं गच्छति ) उनके सहयोगसे मनुष्यको आनन्दपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। वह ( पुण्यान् भक्षान् च भक्षयति ) पवित्र अन्न खाता है ( अमृतत्वं गच्छति ) और अमरत्वको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ]

१३०४ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानु॒ रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१२।१ )

१३०५ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१२।२ )

१३०६ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥
[ धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१२।३ )

१३०७ महा॒ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमा॒ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६।१ )

१३०८ कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।३ )

---

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १३०४ ] ( यः स्वे दुरोणे ) जो अपने यज्ञस्थानमें ( समिद्धः दीदाय ) अग्निको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करता है । उस ( यविष्ठं ) तरुण ( ऊर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुं ) इस विशाल द्यावापृथिवीके बीचमें विशेष प्रकाशमान् ( स्वाहुतं ) उत्तम रीतिसे आहुति दिये गये ( विश्वतः प्रत्यंचं ) सर्वत्र गमन करनेवाले अग्निके पास ( महा नमसा अगन्म ) हम महान् नमस्कार करते हुए जाते है ॥ १ ॥

[ १३०५ ] ( मह्ना ) अपने महान् प्रभावसे ( विश्वा दुरितानि साह्वान् ) सब पापोंको दूर करनेवाला ( जातवेदाः सः अग्निः ) ज्ञानका प्रसार करनेवाला अग्नि ( दमे आ स्तवे ) यज्ञशालामें प्रशंसित होता है, ( सः गृणतः नः ) वह स्तुति करनेवाले हमें ( दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत् ) पापोंसे और निन्दित कर्मोंसे सुरक्षित रखता है, ( उत मघोनः अस्मान् ) और हविको पासमें रखनेवाले हमारा रक्षण करता है ॥ २ ॥

[ १३०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं वरुणः उत मित्रः ) तू वरुण और मित्र है । ( वसिष्ठाः त्वां मतिभिः वर्धन्ति ) जितेंद्रिय ऋषि तुझे बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियोंसे संवर्धित करते है, ( त्वे वसु ) तेरे पास जो धन हैं वे ( सुषणनानि सन्तु ) हमारे द्वारा स्वीकारने योग्य हों । ( यूयं ) तुम ( नः ) हमें ( सदा स्वस्तिभिः पात ) हमेशा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ३ ॥

[ १३०७ ] ( यः इन्द्रः ) जो इन्द्र ( वृष्टिमान् पर्जन्यः इव ) वृष्टि करनेवाले मेघके समान ( तेजसा महान् ) अपने तेजसे महान् है, वह इन्द्र ( वत्सस्य स्तोमैः वावृधे ) वत्सके स्तोत्रोंसे बढता है, इन्द्रका यश बढता है ॥ १ ॥

[ १३०८ ] ( यत् ) जब ( कण्वाः ) कण्वोंने ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( स्तोमैः यज्ञस्य साधनं अक्रत ) स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधन बनाया, तब ( आयुधा जामि ब्रुवत ) आयुध - युद्ध - का कोई कारण बचा नहीं ऐसा लोग कहने लगे ॥२॥

१३०९ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ १० ( टि ) ॥
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६।२ )

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१३१० पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६६।२५ )

१३११ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६६।२६ )

१३१२ पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ११ ( छु ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६६।२७ )

१३१३ परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वां यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१ )

१३१४ नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥ ( ऋ ९।१०७।२ )

---

[ १३०९ ] ( यत् ) जब ( पिप्रतः वह्नयः ) आकाशको अपने वेगसे भरनेवाले वाहनरूपी घोडे, ( ऋतस्य प्रजां ) यज्ञमें जानेके लिए तैय्यार हुए हुए इन्द्रको ( प्र भरन्त ) वेगसे लेकर जाते है, तब ( विप्राः ) ऋत्विज ( ऋतस्य वाहसा ) यज्ञको प्रेरणा देनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करने लगते है ॥ ३ ॥

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ।

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १३१० ] ( जिघ्नतः ) शत्रुका नाश करनेवाले ( हरेः अजिरशोचिषः ) हरे रंगके और सब जगह अपना तेज फैलानेवाले ( पवमानस्य ) छाने जानेवाले सोमकी ( चन्द्राः जीराः असृक्षत ) तेजस्वी धारा बहने लगी है ॥ १ ॥

[ १३११ ] ( रथीतमः ) उत्तम रथमें बैठनेवाला, ( शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ) अपने तेजसे अधिक तेजस्वी ( हरिः चन्द्रः ) हरे रंगके तेजवाला ( मरुद्गणः पवमानः ) मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला तथा छाना जानेवाला यह सोम है ॥ २ ॥

[ १३१२ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( वाजसातमः ) बहुत अन्न और बल देनेवाला तू ( स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् ) स्तुति करनेवालेको उत्तम वीरपुत्र अथवा उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य देता है ॥ ३ ॥

[ १३१३ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( उत्तमं हविः ) उत्तम हविरूप है और ( यः नर्यः आ ) जो मानवोंका हित करनेवाला है वह ( अप्सु अन्तः दधन्वान् ) पानीमें मिलाया जाता है । ( सोमः अद्रिभिः सुषाव ) उस सोमको अध्वर्युओंने पत्थरोंसे कूटकर उसका रस निकाला है । उस ( सुतं ) सोमरसको ( इतः परि षिंचत ) यहांसे ऊपर लाकर सींचो ॥ १ ॥

[ १३१४ ] हे सोम ! ( अ-दब्धः ) न दबनेवाला ( सुरभिन्तरः ) अत्यन्त सुगंधित ( नूनं पुनानः ) अब शुद्ध होता हुआ ( अविभिः परिस्रव ) तू बालोंकी छलनीसे छनता जा । ( सुते चित् ) छननेके बाद ( अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः ) अन्न और गोदुग्धसे मिलाकर ( उत्तरं अप्सु त्वा मदामः ) फिर तुझे पानीमें मिलाकर प्रसन्न करते है ॥ २ ॥

१३१५ परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥ १२ (खा) ॥
[ धा० १६ । उ० २ । स्व ७ ] ( ऋ ९।१०७।३ )

१३१६ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययꣳ श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।८२।१ )

१३१७ पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८२।३ )

१३१८ कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥ १३ (गू) ॥
[ धा० २६ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।८२।२ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

[ १० ]

१३१९ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।३ )

---

[ १३१५ ] ( देवमादनः क्रतुः ) देवोंको आनन्द देनेवाले यज्ञका साधन ( इन्दुः विचक्षणः ) तेजस्वी और ज्ञानी ( स्वानः ) सोम ( चक्षसे परि ) सबका निरीक्षण करनेके लिए कलशमें उतरे ॥ ३ ॥

[ १३१६ ] ( अरुषः वृषा ) तेजस्वी और बल बढानेवाला ( हरिः सोमः असावि ) हरे रंगका सोम शुद्ध किया है, यह ( राजा इव दस्मः ) राजाके समान दर्शनीय है। ( गाः अभि अचिक्रदत् ) गायोंको देखकर शब्द करने लगता है, गायके दूधमें मिलनेके बाद शब्द करता है तथा ( पुनानः अव्ययं वारं अत्येषि ) पवित्र होनेवाला वह सोम भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है। ( श्येनः न ) बाज पक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आसदत् ) पानीसे भरे हुए कलसेमें जाकर पहुंचता है ॥ १ ॥

[ १३१७ ] ( महिषस्य पर्णिनः पर्जन्यः पिता ) बडे बडे पत्तेवाले सोमका उत्पन्न करनेवाला पर्जन्य-मेघ है। वह ( पृथिव्याः नाभा गिरिषु क्षयं दधे ) पृथिवीके नाभिस्थानमें रहनेवाले पर्वतोंमें निवासस्थान बनाता है। ( स्वसारः आपः गाः ) अंगुलियां, जल और गायें ( अभिः उदासरन् ) उसके सामने आती हैं, ( वीते अध्वरे ) श्रेष्ठ यज्ञोंमें ( ग्रावभिः सं वसते ) पत्थरोंके साथ वह मिलकर रहता है ॥ २ ॥

[ १३१८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( कविः ) यह ज्ञानी सोम ( वेधस्या माहिनं पर्येषि ) यज्ञ करनेकी इच्छासे छलनी पर जाता है ( मृष्टः ) शुद्ध करनेके बाद ( अत्यः न ) घोडेके समान ( वाजं अभ्यर्षसि ) संग्राममें जाता है। हे सोम ! ( दुरिता अपसेधन् ) पापोंको दूर करते हुए ( नः मृड ) हमें सुखी कर। ( घृता वसानः निर्णिजं परि यासि ) तू जलमें मिलनेके बाद छलनीमें जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहां नौवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ १३१९ ] हे पुरुषो ! ( श्रायन्तः सूर्यं इव ) सूर्यके आश्रयसे रहनेवाली किरणें जिसप्रकार सूर्यका आधार लेती हैं, उसीप्रकार ( विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब धन इन्द्रके आश्रयसे रहते है । ( जातः ) प्रकट हुआ हुआ इन्द्र ( वसूनि ओजसा जनिमानि ) जिन धनोंको अपने सामर्थ्यसे प्रकट करता है उन धनोंके ( भागं न प्रति दीधिमः ) भागको हम पितासे प्राप्त होनेके समान धारण करते हैं ॥ १ ॥

१३२० अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥ १४ ( लू ) ॥
[ धा १९ । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।९९।४ )

१३२१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१३ )

१३२२ त्वꣳ हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ २ ॥ १५ ( बा ) ॥
[ धा० २० । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६१।१४ )

॥ इति दशमः खण्डः ॥ १० ॥

[ ११ ]

१३२३ त्वꣳ सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मꣳहयद्रयिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।१ )

१३२४ त्वꣳ सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥ ( ऋ. ९।६७।२ )

---

[ १३२० ] ( अलर्षिरातिं वसुदां उप स्तुहि ) निष्पाप पुरुषोंको और भक्तोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर। क्योंकि ( इन्द्रस्य रातयः भद्राः ) इन्द्रके दान कल्याणकारी होते हैं। ( यः मनः दानाय चोदयन् ) जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है ( विधतः अस्य कामं न रोषति ) वह उपासना करनेवाले इस यजमानकी इच्छा नष्ट नहीं करता ॥ २ ॥

[ १३२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जिन दुष्टोंसे हम डरते हैं ( ततः नः अभयं कृधि ) उनसे हमें निर्भय कर। हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( नः तत् तव ऊतये शग्धि ) हमें उस अपने रक्षणसे सुरक्षित करनेके लिए तू समर्थ हो। ( द्विषः विजहि ) द्वेष करनेवालोंका पराभव कर तथा ( मृधः वि ) हमारे शत्रुओंको हरा ॥ १ ॥

[ १३२२ ] हे ( राधसस्पते ) धनपते इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ही ( महः राधसः क्षयस्य ) महान् धनके स्थानका ( विधर्ता असि ) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला है। हे ( गिर्वणः ) स्तुत्य और ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( सुतावन्तः वयं हवामहे ) सोमयज्ञ करनेवाले हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ १३२३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मन्द्रः ओजिष्ठः ) आनन्द बढानेवाला और बहुत सामर्थ्यवाला तू ( अध्वरे धारयुः असि ) हिंसारहित यज्ञमें सोमरसकी धारासे युक्त होकर रहता है। इसलिए ( मंहयत् रयिः त्वं पवस्व ) धन देनेवाला तू शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३२४ ] हे सोम ! ( सुतः ) निचोडा गया ( त्वं मदिन्तमः ) तू अत्यन्त आनन्द बढानेवाला ( दधन्वान् ) यज्ञको धारण करनेवाला ( मत्सरिन्तमः इन्दुः ) परम उत्साह बढानेवाला और चमकनेवाला ( सत्राजित् अस्तृतः ) सब शत्रुओंको जीतनेवाला और पराजित न होनेवाला है ॥ २ ॥

१३२५ त्वᳪं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तᳪं शुष्ममा भर ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६७।३ )

१३२६ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०६।७ )

१३२७ तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०६।८ )

१३२८ आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ १७ ( वौ ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।१०६।९ )

१३२९ परि त्यᳪं हर्यतᳪं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाᳪं इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९८।७ )

१३३० द्विर्यं पञ्च स्वयशसᳪं सखायो अद्रिसᳪंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९८।६ )

---

[ १३२५ ] हे सोम ! ( अद्रिभिः सुष्वाणः त्वं ) पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया तू ( कनिक्रदत् अभ्यर्ष ) शब्द करता हुआ कलशमें जा । ( द्युमन्तं शुष्मं आभर ) तेजस्वी सामर्थ्य हमें दे ॥ ३ ॥

[ १३२६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( देववीतये ) देवोंको देनेके लिए ( ओजसा धाराभिः पवस्व ) वेगसे धार बंधकर छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मीठा तू ( नः कलशं आ सदः ) हमारे कलशमें आकर रह ॥१॥

[ १३२७ ] ( उदप्रुतः तव द्रप्साः ) पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस ( मदाय इन्द्रं वावृधुः ) आनन्दके लिए इन्द्रका यश बढाते हैं । बादमें ( देवासः कं त्वां अमृताय पपुः ) देवगण सुखस्वरूप तुझे अमर होनेके लिए पीते हैं ॥ २ ॥

[ १३२८ ] ( वृष्टि-द्यावः ) द्युलोकसे वृष्टि करानेवाले ( स्वः-विदः ) स्वर्गको जाननेवाले ( रीत्यापः सुतासः ) पृथ्वीपर पानीकी वृष्टि करनेवाले ये सोमरस ( पुनानाः इन्दवः ) स्वच्छ होनेवाले और तेजस्वी हैं । हे सोमरसो ! तुम ( नः रयिं आ धावत ) हमें धन प्राप्त हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

[ १३२९ ] ( हर्यतं हरिं ) पुण्य और पाप दूर करनेवाले ( बभ्रुं त्यं ) उस भूरे रंगके सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) छलनीसे छानकर शुद्ध करते हैं । ( यः विश्वान् देवान् ) जो सब देवोंके पास ( मदेन सह इत् ) आनन्दकारक गुणोंके साथ ( परि गच्छति ) जाता है ॥ १ ॥

[ १३३० ] ( द्विः पंच सखायः ) दस अंगुलियां ( स्वयशसं अद्रिसंहतं ) स्वयं यशस्वी और पत्थरोंसे कूटे गए ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं यं ) इन्द्रको प्रिय और इष्ट ऐसे जिस सोमको ( ऊर्मयः ) जलोंके द्वारा ( प्रस्नापयन्ते ) स्नान करवाती हैं ॥ २ ॥

१३३१ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥ १८ ( जी ) ॥
[ धा० २२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९८।१० )

१३३२ पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )

१३३३ प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।११ )

१३३४ शिशुं जज्ञानꣳ हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०९।१२ )

१३३५ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥ ( ऋ. ९।६१।१३)

१३३६ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सꣳसꣳशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदꣳ सनिः ॥ २ ॥
( ऋ ९।६१।१४ )

१३३७ अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६१।१५ )

॥ इति एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

---

[ १३३१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको देनेके लिए ( दक्षिणा-वते वीराय ) यज्ञमें दक्षिणा देनेवाले वीरके लिए और ( सदना-सदे नरे ) यज्ञमें बैठनेवाले यजमानके लिए ( परि-षिच्यसे ) तू कलशमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ १३३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अश्वः न ) घोडेके समान ( निक्तः ) धोकर शुद्ध किया गया ( वाजी ) वेगवान् तू ( महे दक्षाय धनाय पवस्व ) शत्रुको हरानेवाली शक्ति, बल और धनके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३३३ ] हे सोम ! ( सोतारः ) रस निकालनेवाले ऋत्विज ( ते रसं ) तेरे रसको ( मदाय पुनन्ति ) आनन्द प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा ( महे द्युम्नाय सोमं ) महान् तेजस्वी सोमरसोंको छानते हैं ॥ २ ॥

[ १३३४ ] ( शिशुं जज्ञानं ) नये पैदा हुए बच्चेको जैसे शुद्ध करते है उसीप्रकार ऋत्विग्गण ( देवेभ्यः ) देवोंको देनेके लिए ( हरिं इन्दुं सोमं ) हरे रंगके चमकनेवाले सोमको ( पवित्रे मृजन्ति ) छलनीसे शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[ १३३५ ] ( जातं अप्तुरं ) तैयार हुए हुए तथा पानीमें मिलाये गए ( भंगं ) शत्रुका नाश करनेवाले ( गोभिः सुपरिष्कृतं ) गायके दूधमें मिलाये गए ( इन्दुं देवाः उप अयासिषुः ) सोमरसको देव प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ १३३६ ] ( यः इन्द्रस्य हृदं सनिः ) जो इन्द्रके हृदयका श्रेष्ठ सेवक है ( तं इत् नः गिरः सं वर्धन्तु ) ऐसे उस सोमका वर्णन हमारी वाणी उत्तम रीतिसे करे। ( वत्सं शिश्वरीः इव ) जिसप्रकार बालकको उसकी माता बढाती है, उसीप्रकार हमारी वाणी सोमके यशको बढावे ॥ २ ॥

[ १३३७ ] हे सोम ! ( नः गवे शं अर्ष ) हमारी गायोंके सुखके लिए तू फलशमें जा । ( पिप्युषीं इषं धुक्ष-स्व ) पौष्टिक अन्न हमें भरपूर दे । हे ( उक्थ्य ) स्तुत्य सोम ! ( समुद्रं वर्ध ) कलशमें पानीको बढा ॥ ३ ॥

॥ यहां ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

*

[ १२ ]

१३३८ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥
( ऋ. ८।४५।१ )

१३३९ बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४५।२ )

१३४० अयुद्ध इद्युधा वृत९ शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ २१ ( ठ ) ॥
[ धा० ३ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४५।३ )

१३४१ य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥
( ऋ. १।८४।७ )

१३४२ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावा९आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥
( ऋ. १।८४।९ )

१३४३ कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥ २२ ( कि ) ॥
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।८४।८ )

---

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ १३३८ ] ( ये ) जो ऋषि ( आ घ ) सामने बैठकर ( अग्निं इन्धते ) अग्निको प्रदीप्त करते हैं । ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरुण इन्द्र जिनका मित्र है, वे ( आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति ) क्रमसे देवोंके लिए आसन फैलाते हैं ॥ १ ॥

[ १३३९ ] ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरुण इन्द्र जिनका मित्र है ऐसे ( एषां इध्मः बृहत् इत् ) इन ऋषियोंकी समिधा बहुत है । ( शस्त्रं भूरि ) स्तोत्र भी बहुत हैं ( स्वरुः पृथुः ) शस्त्र भी बडे-बडे हैं । ॥ २ ॥

[ १३४० ] ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरुण इन्द्र जिसका मित्र है, वह ( अयुद्धः इत् ) युद्ध करनेकी इच्छा न रखते हुए भी ( युधा वृतं ) योद्धाओंसे युक्त शत्रुको ( सत्वभिः शूरः ) अपने बलकी सहायतासे शूरवीर होते हुए ( आजति ) हरा देता है ॥ ३ ॥

[ १३४१ ] ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही इन्द्र ( दाशुषे मर्ताय वसु विदयते ) दान देनेवाले याजकको धन देता है, वह ( अप्रतिष्कुतः इन्द्रः ) पराजित न होनेवाला इन्द्र ( अंग ईशानः ) उसीसमय इस सब जगत्का स्वामी होता है ॥ १ ॥

[ १३४२ ] ( बहुभ्यः यः चित् हि ) बहुत मनुष्योंमेंसे जो यजमान ( सुतावान् ) सोमयाग करके ( त्वा ) तेरी ( आ विवासति ) आराधना करता है, ( तत् ) उसको ( इन्द्रः ) इन्द्र ( उग्रं शवः ) उग्र बल ( अंग आपत्यते ) बहुत जल्दी देता है ॥ २ ॥

[ १३४३ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( कदा ) कब ( अ-राधसं मर्तं ) दान न देनेवाले मनुष्यको ( पदा क्षुम्पं इव ) पैरोंसे जिसप्रकार फूलोंको कुचलते हैं, उसीप्रकार ( स्फुरत् ) नष्ट करेगा ? हे ( अंग ) प्रिय ! ( नः गिरः कदा शुश्रवत् ) वह हमारी स्तुति कब सुनेगा ॥ ३ ॥

१३४४ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।१ )

१३४५ यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०।२ )

१३४६ युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥ २३ (बी) ॥

[ धा० २१ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ १।१०।३ )

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥ पञ्चमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

[ १३४४ ] हे ( शतक्रतो ) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( गायत्रिणः त्वा गायन्ति ) उद्गाता तेरी स्तुतिका गान करते हैं। ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) अर्चना करनेवाले पूजनीय इन्द्रकी अर्चना करते हैं। ( ब्रह्माणः त्वा ) अन्य ऋत्विज भी तेरी महिमा गाते हैं। लोग ( वंशं इव ) जिसप्रकार बांसको ऊपर उठाते हैं, उसीप्रकार तेरा महत्व वर्णन करके तुझे ( उत् येमिरे ) उठाते हैं ॥ १ ॥

[ १३४५ ] ( यत् ) जब यजमान ( सानोः सानु आरुहः ) समिधा आदि लानेके लिए पहाडकी चोटीपर चढता है, तब वह ( भूरि कर्त्वं अस्पष्ट ) बहुत प्रयत्न करता है। ( तत् इन्द्रः ) उस समय इन्द्र ( अर्थं चेतति ) यजमानका उद्देश्य जानता है और ( वृष्णिः यूथेन ) मनोरथकी वृष्टि करनेवाला वह इन्द्र देवोंके साथ यज्ञभूमिमें ( एजति ) आता है ॥ २ ॥

[ १३४६ ] ( सोमपाः ) सोम पीनेवाला इन्द्र ( केशिना वृषणा ) उत्तम अयालवाले, बलवान् ( कक्ष्यप्राः हरी ) पुष्ट शरीरवाले अपने घोडोंको ( युंक्ष्व हि ) अवश्य जोडता है। ( अथ ) बादमें हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः गिरां उपश्रुतिं चर ) हमारी स्तुति सुननेके लिए पासमें आ ॥ ३ ॥

॥ यहां बारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥



# दशम अध्याय

## इन्द्र

इस दशम अध्यायमें सोमका वर्णन विशेष रूपसे है। पर उसके साथ अन्य देवोंका भी वर्णन है। उनमेंसे इन्द्र देवताका वर्णन प्रथम देखिए—

१ इन्द्रः कदा अ-राधसं मर्तं, पदा क्षुम्पं इव, स्फुरत् [ १३४३ ]– इन्द्र कब, पांवोंसे फूलोंको रौंदनेके समान, कंजूस दान न देनेवाले मनुष्यको रौंदेगा ?

उदार मनुष्य ही समाजमें रहें। अनुदार मनुष्य समाजको परेशान करता है। यह भाव यहां है।

२ इन्द्रः उग्रं शवः आपत्यते [ १३४२ ]– इन्द्र उग्र

बल देता है। वह इन्द्र अपने उपासकोंको बलवान् बनाता है।

३ इन्द्रः ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है।

४ विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत [१३१९]- सब प्रकारके धन निश्चयसे इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं।

५ जातः ओजसा वसूनि जनिमानि [ १३१९ ]- इन्द्र उत्पन्न होते ही अपनी शक्तिसे सब धन उत्पन्न करता है।

६ अलर्षिरातिं वसुदां उप स्तुहि। इन्द्रस्य रातयः भद्राः [१३२०]- पापरहित तथा दान करनेवाले पुरुषोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके दान कल्याण करनेवाले हैं।

७ यः मनः दानाय चोदयन्, विधतः अस्य कामं न रोषति [ १३२० ]- जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है तथा जो दान देनेवालेकी इच्छाको नष्ट नहीं करता।

८ हे इन्द्र ! यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि [१३२१]- हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय हो वहांसे हमें निर्भय कर।

९ नः तव तत् ऊतये शग्धि। द्विषः वि जहि। मृधः वि [१३२१]- तू हमें अपने संरक्षणोंसे सुरक्षित करनेमें समर्थ है। द्वेष करनेवालोंको हरा और हिंसक शत्रुओंको दूर कर।

१० यत् कण्वाः इन्द्रं स्तोमैः यज्ञस्य साधनं अक्रत। आयुधा जामि ब्रुवत [ १३०८ ]- जब कण्वोंने इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधन बनाया, तब शस्त्रोंके उपयोग करनेका कोई कारण नहीं बचा, ऐसा लोग कहने लगे। इतनी शान्ति स्थापित हो गई कि शस्त्रोंसे लडनेका कोई कारण ही नहीं बचा ऐसा लोगोंको प्रतीत हुआ।

११ हे राधसः पते ! त्वं महः राधसः क्षयस्य विधर्त्ता असि [ १३२२ ]- हे धनपते इन्द्र ! निश्चयसे तू महान् धनोंका और महान् घरोंका स्वामी है। इन्द्रके पास बहुत सारे धन भी हैं और बहुतसे घर भी।

१२ येषां युवा इन्द्रः सखा, शूरः अयुद्धः इत् युधा वृतं सत्वभिः आजति [ १३४० ]- जिनका मित्र तरुण इन्द्र है, वे शूर युद्धकी इच्छा न होते हुए भी योधाओंसे युक्त शत्रुको अपने सामर्थ्यसे हराते हैं।

१३ यः एकः इत् दाशुषे मर्ताय वसु विदयते। अप्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः [ १३४१ ]- जो अकेलाही इन्द्र दान देनेवाले मनुष्यको धन देता है, ऐसा न हारनेवाला इन्द्र निश्चयसे सबका ईश्वर है।

ऐसे बलशाली इन्द्रको सोम पीनेके लिए दिया जाता है—

## इन्द्रका सोम पीना

१ शूरः एषः अण्व्या इन्द्रस्य निष्कृतं आशुभिः रथेभिः धिया याति [१२६६]- यह शूर सोम अंगुलियोंसे दबाकर निकालनेके बाद इन्द्रके स्थानके पास शीघ्र जानेवाले रथसे बुद्धिपूर्वक जाता है।

पहले सोमको कूटते हैं, बादमें अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे इन्द्रके रहनेके स्थानपर ले जाते हैं। उसका रथसे जाना आलंकारिक है।

२ इन्द्राय पातवे त्रितस्य योषणः हरिं इन्दुं अद्रिभिः हिन्वन्ति [ १२७५ ]- इन्द्रको सोमरस देनेके लिए त्रित ऋषिकी अंगुलियां इस हरे रंगके सोमको पत्थरोंसे कूटती हैं।

३ वृषा हरिः पुनानः इन्दुः शुष्मी एषः अन्तरिक्षे इन्द्रं आ असिष्यदत् [ १२९० ]- बल बढानेवाला, हरे रंगका शुद्ध होनेवाला और चमकनेवाला यह सोम छलनीमेंसे होकर इन्द्रके पास पहुंचता है।

४ देवः इन्दुः, कविना इषितः, इन्द्राय मंहयन्, द्रोणानि अभि धावति [१२९७]- ( द्युलोकसे ) प्रकाशित होनेवाला वह सोम कविके द्वारा प्रेरित होनेके बाद इन्द्रको महत्व देकर कलशमें जाता है।

५ उदप्रुतः तव द्रप्सः मदाय इन्द्रं वावृधुः [ १३२७ ]- पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस आनन्दके लिए इन्द्रका यश बढाते हैं।

६ देवासः कं त्वां अमृताय पपुः [ १३२७ ]- देवगण आनन्द देनेवाले तुझ सोमरसको अमरता प्राप्त करनेके लिए पीते हैं।

७ वृत्रघ्ने दक्षिणावते इन्द्राय पातवे सदनासदे नरे परिषिच्यसे [ १३३१ ]- वृत्रको मारनेवाले तथा दान देनेवाले इन्द्रके पीनेके लिए और यज्ञ - मण्डपमें बैठे हुए यजमानके लिए यह सोमरस छाना जाता है।

इसप्रकार इन्द्रको पीनेके लिए सोमरस देनेका वर्णन है।

## अग्नि

अग्नि विषयक मंत्र भी थोडेसे इस अध्यायमें हैं—

१ स्वे दुरोणे यः समिद्धः दीदाय, यविष्ठं उर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यंचं महा नमसा अगन्म [ १३०४ ]- अपने यज्ञ स्थानमें अग्निको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त किया जाता है, उस तरुण, विशाल

द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें विशेष प्रकाशमान्, उत्तम रीतिसे दी गई आहुतिके कारण सर्वत्र प्रकाशमान् अग्निके पास हम नमस्कार करते हुए जाते हैं।

२ मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान् जातवेदाः अग्निः दमे आ स्तवे। सः गृणतः नः दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत्। उत मघोनः अस्मान् रक्षिषत् [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाला, ज्ञानका प्रसारक अग्नि यज्ञशालामें प्रशंसित होता है। वह स्तुति करनेवाले हमें पापोंसे व निन्दित कर्मोंसे दूर करता है और हविको पासमें रखनेवाले हमारी रक्षा करता है।

३ हे अग्ने ! त्वे वसु सुषणनानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! तेरे धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों।

यहां यज्ञशालामें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, उसकी स्तुति की जाती है, उत्तम हवनीय पदार्थोंका उसमें हवन किया जाता है, इसप्रकार प्रदीप्त हुई हुई अग्नि अनेक प्रकारसे लोगोंकी रक्षा करती है, इत्यादि वर्णन यहां आये हैं।

## देवोंको सोमरस

इन्द्रको सोमरस देनेका वर्णन पीछे आया है। अब देवोंको सोमरस दिये जानेका वर्णन देखते हैं—

१ हे सोम ! नः इष्टये राधसे वायुं मित्रावरुणा मारुतं शर्धः देवान् द्यावापृथिवी मत्सि [ १२५४ ]- हे सोम ! हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिए वायु, मित्र, वरुण, मरुत्, सबदेवों तथा द्युलोक और पृथिवीको सन्तुष्ट कर।

२ पवमानः सोमः इन्द्रे ओजः, सूर्ये ज्योतिः, अपां गर्भः देवान् आवृणीत [१२५५]- छने हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्य तथा सूर्यमें तेज बढाकर और पानीमें मिलकर देवोंकी सेवा की।

३ देवेभ्यः सुतः पवित्रे अक्षरत् विश्वा धामानि आविशन् [ १२८१ ]- देवोंको देनेके लिए यह सोमरस छलनीसे छाना जाता है। यह देवोंके सब स्थानोंमें पहुंचता है।

४ दक्षसाधनः स्वर्जित् पयः इन्द्राय वायवे पवित्रे परि षिच्यते [ १२८७ ]- बल बढानेका साधन तथा स्वर्गको जीतनेवाला यह सोम इन्द्र और वायुको देनेके लिए छलनीसे छाना जाता है।

५ देवावीः अघशंसहा अदाभ्यः पुनानः शुष्मी पयः अर्षति [ १२९१ ]- देवोंके देनेके लिए पापियोंको नष्ट करनेवाला तथा न दबनेवाला यह सोम छाना जाता हुआ छनकर बर्तनमें गिरता है।

६ देवयुः पीतये सुतः वृषा रक्षांसि विघ्नन् पवित्रे अर्षति [ १२९२ ]- देवोंके देनेके लिए निचोडा गया यह बल बढानेवाला सोमरस राक्षसोंको मारकर छलनीसे छाना जाता है।

७ यः विश्वान् देवान् मदेन सह इत् परि गच्छति [१३२९]- यह सोमरस सब देवोंको आनन्द देनेकी इच्छासे देवोंके पास जाता है।

८ जातं अप्तुरं भंगं गोभिः सुपरिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः [ १३३५ ]- तैय्यार किए गए, पानीमें मिलाये गए शत्रुका नाश करनेवाले तथा गायके दूधमें मिश्रित सोमके पास देव जाते हैं।

९ इन्द्रस्य हार्दि सनिः तं नः गिरः संवर्धन्तु [ १३३६ ]- इन्द्रके हृदयको आनन्द देनेवाला यह सोम है, हमारी वाणी उसकी स्तुति करके उसके यशको बढावे।

यह सोमरस तैय्यार करके सर्व प्रथम देवोंको समर्पित किया जाता है। बादमें उसे ऋत्विग्गण पीते हैं, ऐसा यह सोम पर्वतपर - हिमालयके ऊंचे शिखरपर मिलता है।

## पर्वतपर सोम

यह सोम हिमालय पर्वतकी ऊंची चोटीपर उगता है। इस विषयमें मंत्रोंमें वर्णन इस प्रकार हैं—

१ गिरिषु क्षयं दधे [ १३१७ ]- पर्वतपर यह सोम अपना घर बनाता है।

२ दिवः शिशुः इन्दुः [ १२७७ ]- द्युलोकमें जन्मा हुआ यह सोम है। द्युलोकका अर्थ है हिमालयकी ऊंची चोटी।

३ दिवः मूर्धा वृषा [१२८८]- द्युलोकमें ऊंचे स्थानपर यह बल बढानेवाला सोम रहता है।

४ वृष्टिद्यावः स्वर्विदः सुतासः इन्दवः [ १३२८ ] –स्वर्गलोकसे वृष्टि करनेवाले, स्वर्गको जाननेवाले ये सोमरस हैं। सोम पर्वतपर ऊंचे स्थानपर रहता है। वहांसे वृष्टि होती है। वह सोम स्वर्गमें रहता है, इसलिए वह स्वर्गको जानता है

ये वर्णन सोमलता हिमालयके ऊंचे शिखरपर उगती है यह बात दिखाते हैं।

## सोमका पत्थरोंसे कूटा जाना

१ वीते अध्वरे ग्रावभिः सं वसते [ १३१७ ]-

यज्ञमें सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है और बादमें उसका रस अंगुलियोंसे दबाकर निकाला जाता है।

## दस अंगुलियां

ऋत्विजोंकी दस अंगुलियां उस कूटे हुए सोमको दबाकर रस निकालती हैं। इस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ त्यं दश हरितः मर्मृज्यन्ते [१२७९]- उस सोमको दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं।

२ एषः वृषा कनिक्रदत् दशभिः जामिभिः यतः द्रोणानि अभि धावति [ १२८३ ]- यह बल बढानेवाला सोम शब्द करता है और दस बहिनों अर्थात् अंगुलियोंके द्वारा दबकर कलशमें जाता है।

३ द्विः पंच सखायः स्वयशसं अद्रिसंहतं इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ऊर्मयः प्रस्नापयन्ति [ १३३० ]- दसों अंगुलियां स्वयं यशस्वी तथा पत्थरोंसे कूटे हुए तथा इन्द्रको प्रिय और इष्ट लगनेवाले सोमको पानीसे नहलाती हैं।

४ स्वायुधं मदिन्तमं हरिं यातवे दक्षक्षिपः हिन्वन्ति [ १२७३ ]- उत्तम शस्त्रोंका उपयोग करनेवाले, आनन्द-दायक और हरे रंगके सोमको देवोंके पास लेजानेके लिए दसों अंगुलियां रस निकालती हैं।

इस प्रकार दसों अंगुलियों द्वारा दबाकर रस निकालनेका वर्णन इस अध्यायमें है। ऐसा यह सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, उस विषयका वर्णन अब देखिए—

## सोम छाना जाता है

१ अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् वावृधे [१२५३] –अधिक ऊंचाई पर रखे हुए बालोंकी छलनीसे सोमरस अधिक बढता है, छाना जाता है।

२ हरिः एषः देवः देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [१२६४]- यह हरे रंगका चमकनेवाला देवोंके लिए निचोडा गया सोमरस छलनीसे छाना जाता है।

३ एषः अव्या वारेभिः अव्यत [ १२७४ ]- यह सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

४ वाजी नृभिः हितः अव्यं वारं विधावति [१२८०] –यह बल बढानेवाला तथा याजकों द्वारा रखा गया सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे नीचेके बर्तनमें गिरता है।

५ वाजी रक्षोहा सः पवमानः अव्ययं वारं विधावति [१२९४]- यह बलवान् और राक्षसोंको मारनेवाला, छाना जानेवाला सोमरस भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

६ हर्यतं हरिं वारेण परि पुनन्ति [ १३२९ ]- पवित्र और हरे रंगका सोम छलनीसे छाना जाता है।

७ शिशुं जज्ञानं इव, देवेभ्यः हरिं इन्दुं सोमं पवित्रे मृजन्ति [ १३३४ ]- नये जन्मे हुए बच्चेको जिसप्रकार स्वच्छ करते हैं, उसीप्रकार देवोंको देनेके लिए निचोडा गया हरा सोमरस पवित्र करनेवाली छलनीसे शुद्ध किया जाता है।

इसप्रकार सोमरस छाननेके वर्णन अनेक मंत्रोंमें हैं। भेडके बालोंकी छलनी बनाते हैं। उस छलनीको एक कलशके मुंह पर रखते हैं और उस पर दूसरे कलशसे सोमरस उढेला जाता है, तब वह छनकर नीचेके कलशमें टपकता है। उसके टपकनेका शब्द होता है। उसके शब्द होनेका वर्णन इस प्रकार है—

## सोम शब्द करता है

१ वग्वनुं आविष्कृणोति [ १२५९ ]- सोम शब्द प्रकट करता है।

२ एषः पवमानः धारया कनिक्रदत् [ १२६२ ]- यह छाना जानेवाला सोमरस धारासे शब्द करता है।

३ हरिः सः पवित्रे कनिक्रदत् योनिं अभि अर्षति [ १२९३ ]- वह हरे रंगका सोमरस छलनीसे शब्द करता हुआ नीचेके कलशमें जाता है।

४ अद्रिभिः सुष्वाणः त्वं कनिक्रदत् अभ्यर्ष [ १३२५ ]- पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया तू शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें आ।

५ पीतये सुतः हरिः एषः क्रन्दन् योनिं अभि अर्षति [ १२७८ ]- पीनेके लिए निकाला गया यह सोमरस अपने प्रिय कलशमें शब्द करता हुआ जाता है।

६ इन्दुः एषः पवमानः अचिक्रदत् [ १२८९ ]- चमकनेवाला यह शुद्ध होता हुआ सोमरस शब्द करता हुआ छाना जाता है।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है और शब्द करता है। ऊपरके बर्तनसे नीचेके बर्तनमें यदि कोई द्रव पदार्थ गिराया जाए तो उसका ऐसा शब्द तो होगा ही। वही यह शब्द है। उसका आलंकारिक वर्णन इसमें है।

## सोमका चमकना

सोमरस अन्धेरी जगहमें चमकता है। चमकनेका गुण सोमरसमें और सोमलतामें है। पर्वतपर जहां उगती है,

वहां पर भी यह चमकता है, पर रस अधिक चमकता है। इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ देवः सोमः [ १२५४ ]- चमकनेवाला सोम।

२ हरेः अजिरशोचिषः पवमानस्य चन्द्राः जीराः असृक्षत [ १३१० ]- हरे रंगके, सर्वत्र तेज फैलानेवाले, शुद्ध होनेवाले सोमरसकी तेजस्वी धारा बहती है।

३ पवमानः हरिः चन्द्रः [ १३११ ]- शुद्ध होनेवाला सोमरस हरे रंगका तेज फैलाता है।

४ हे पवमान ! रश्मिभिः व्यश्नुहि [ १३१२ ]- हे सोमरस ! तू अपनी किरणोंसे व्याप्त हो।

५ अरुषः वृषा [ १३१६ ]- यह बलवान् सोम तेजस्वी है।

इसप्रकार सोमरस चमकता है। सोमलताको कूटकर उसका रस निकालते हैं। उसमें पानी मिलाकर छानते हैं, बादमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इस विषयमें निम्न वर्णन है—

## गायके दूधमें मिलाना

१ गोपाः [ १२५३ ]- सोम गायें पालता है। गायके दूधमें वह मिलाया जाता है।

२ गाः अभि अचिक्रदत् [ १३१६ ]- गायके पास शब्द करता हुआ जाता है।

३ स्वसारः आपः गाः अभि उदासरन् [ १३१७ ] -अंगुली, पानी और गाय सोमके पास आती है। अंगुलियां दबाकर रस निकालती हैं, फिर उसमें पानी और गायका दूध मिलाया जाता है

इसप्रकार सोममें गायका दूध मिलाया जाता है। पानी और गायें उसके सामने आती हैं, इसका अर्थ है कि उसमें पानी और गायका दूध मिलाया जाता है। अंशके लिए पूर्णका उपयोग, दूधके लिए गायका प्रयोग यह वेदोंकी पद्धति ही है।

## सोम युद्धमें जाता है

इन्द्र आदि देव सोमरस पीते हैं। इसकारण उनका उत्साह बढता है। बादमें वे युद्धमें जाकर शत्रुको मारते हैं। यह सोमरसका कार्य है, ऐसा वर्णन वेद करता है—

१ पवमानः देवः अदाभ्यः द्वरांसि अति धावति [ १२६१ ]- यह शुद्ध होनेवाला, न दबाया जानेवाला सोम शत्रुओंको कुचलता जाता है।



२ पवमानः एषः रजांसि तिरः, दिवं विधावति [ १२६२ ]- शुद्ध होनेवाला यह सोमरस शत्रुओंको दूर करते हुए द्युलोकमें मानों दौडता जाता है।

३ एषः पवमानः अस्तृतः रजांसि तिरः, दिवं व्यासरत् [ १२६३ ]- यह शुद्ध होनेवाला अपराजित सोम शत्रुओंको दूर करता हुआ स्वर्गकी ओर जाता है।

४ एषः पुनानः द्विषः अपघ्नन् पवित्रे अधितोशते [ १२८६ ]- यह पवित्र होनेवाला सोम शत्रुओंको दूर करते हुए पवित्र स्थानपर कूटा जाता है।

शत्रुओंको दूर करनेका अर्थ है, युद्धमें जाना और शत्रुओंके साथ लडना। यह वीरोंका कार्य है। वीर सोम पीते हैं, उस कारण वे उत्साहित होकर शत्रुओंको दूर करते हैं। यह सोमके उत्साहसे होता है, इसलिए सोम ही यह सब करता है ऐसा वर्णन यहां किया है।

## सोमको पानीमें मिलाना

१ एषः देवः अपः विगाहते [ १२५७ ]- यह दिव्य सोम पानीमें मिलाया जाता है।

२ वाजी सिन्धूनां पतिः भवन् [ १२७० ]- यह बलवान् सोम नदीका स्वामी हो गया है। पानीमें मिलाया गया है।

३ घृता वसानः निर्णिजं परियासि [ १३१८ ]- पानीमें मिलाये जानेके बाद छलनीमें जाता है।

इसप्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है।

## सोम धन देता है

१ एषः देवः दाशुषे रत्नानि दधत् [ १२५७ ]- यह सोम दाताको रत्न देता है।

२ एषः शूरः विश्वानि वार्या सिषासति [१२५८] -यह शूर सोम सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य धन देता है।

३ एषः ओजसा नृम्णा दधानः [ १२७१ ]- यह सोम अपने सामर्थ्यसे धन देता है।

४ नः रयिं आधावत [ १३२८ ]- हे सोमरस ! हमें धनके पास पहुंचा।

## सोम उत्तम वीर्य देता है

१ वाजसातमः स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् [ १३१२ ]- बल बढानेवाला यह सोम स्तुति करनेवालेको उत्तम वीर्य

देता है। सोमरस पीनेसे शरीर उत्तम बलयुक्त होता है, इस कारण उत्तम सन्तानें होती हैं।

## पवित्र करनेवाली वेदवाणी

वेदमंत्रोंमें पवमानसूक्तका महत्व इसप्रकार वर्णित है—

१ यः ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः अध्येति, सः सर्वं पूतं अश्नाति [१२९८]– जो ऋषियों द्वारा एकत्रित किए गए पावमानी मंत्रसंग्रहरूपी ज्ञान - रसका अध्ययन करता है, वह सब प्रकारके पवित्र अन्न खाता है।

२ तस्मै सरस्वती क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे [ १२९९ ]– जो पावमानी मंत्रका अध्ययन करता है, उसे सरस्वती दूध, घी, शहद और जल देती है।

३ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा [ १३०० ]– पवमानसूक्त कल्याण करनेवाले और उत्तम अन्न देनेवाले हैं।

४ देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु, नः कामान् समर्धयन्तु [ १३०१ ]– देवों द्वारा एकत्रित की गई पावमानी देवी हमें इस लोकमें और उस लोकमें उत्तम स्थान देवें, और हमारी सब इच्छा पूर्ण करें।

५ देवाः येन पवित्रेण सदा आत्मानं पुनते, तेन पावमानीः नः पुनन्तु [ १३०२ ]– देव जिस पवित्रता करनेके साधनोंसे अपनी पवित्रता करते हैं, उन साधनोंसे ही पवमानसूक्त हमारी पवित्रता करें।

६ पावमानीः स्वस्त्ययनीः ताभिः नान्दनं गच्छति पुण्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं च गच्छति [ १३०३ ]– ये पवमान सूक्त कल्याण करनेवाले हैं, इनकी सहायतासे आनन्द मिलता है, पुण्यकारक अन्न खानेके लिए मिलते हैं और अमरता प्राप्त होती है।

वेदमंत्रोंके विशेषकर पवमान सूक्तोंके अध्ययनसे मनुष्यकी उत्तम उन्नति होती है। सोमके गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर बढावे तो मनुष्यकी उन्नति होगी। इसकारण पाठक इस पर ध्यान दें।

---

## सुभाषित

१ गोपाः प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान् [ १२५३ ]– गाय और इन्द्रियोंका पालन करनेवाला, भुवनका विशेष धर्मसे पालन करके, सन्तान उत्पन्न करके अर्थात् गृहस्थधर्मका विशेष रीतिसे पालन करके सबसे श्रेष्ठ होता है।

२ वृषा अद्रिः अधिसानौ पवित्रे बृहन् वावृधे [१२५३]– बलवान् वह पर्वतके समान विशाल होकर, ऊंचे स्थान पर रहकर, पवित्र होकर अधिक श्रेष्ठ होता है।

३ हे देव ! नः इष्टये राधसे मत्सि [ १२५४ ]– हे देव ! हमारी इष्टसिद्धि और धनकी प्राप्तिके लिए आनन्दसे सहायता कर।

४ माहिषः तत् महत् चकार [ १२५५ ]– उस महा बलवान्ने उस महान् कार्यको किया है।

५ पवमानः इन्द्रे ओजः अदधात् [ १२५५ ]– सोमके कारण इन्द्रमें सामर्थ्य बढा।

६ इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत् [१२५५]– सोमने सूर्यमें प्रकाश स्थापित किया।

७ विप्रैः अभिष्टुतः एषः देवः दाशुषे रत्नानि दधत् [ १२५७ ]– ब्राह्मणों द्वारा प्रशंसित यह देव दानशीलको रत्न देता है।

८ एषः शूरः विश्वानि वार्या सत्वभिः यन् इव सिषासति [१२५८]– यह शूर सब धनोंको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करके उसका उपभोग करता है।

९ एषः देवः रथर्यति, दिशस्यति, वग्वनुं आविष्कृणोति [ १२५९ ]– यह विद्वान् देव रथमें बैठनेकी इच्छा करता है, लोगोंको उन्नतिका मार्ग दिखाता और उत्तम उपदेशके शब्दोंका व्याख्यान करता है।

१० एषः देवः हरिः ऋतायुभिः विपन्युभिः वाजाय मृज्यते [ १२६० ]– यह दुःखोंका हरण करनेवाला ज्ञानी वीर सत्यके लिए अपनी सम्पूर्ण आयुको खपानेवाले तथा हितकारक कर्म करनेवालोंके द्वारा, युद्धमें विजय प्राप्तिके लिए तैय्यार किया जाता है।

ऋतायुः ( ऋत-आयुः )– सत्यके लिए, श्रेष्ठ कर्मोंके लिए जिसकी आयु खर्च होती है। विपन्युः ( वि-पन्युः )– विशेष हितकारी कर्म करनेवाला। हरिः– दुःखोंका हरण करनेवाला। देवः– प्रकाशमान्, वीर, विजयकी इच्छा करनेवाला। मृज्यते– शुद्ध किया जाता है, निर्दोष बनाया जाता है।

११ अदाभ्यः ह्वरांसि अति धावति [ १२६१ ]– न दबाया जानेवाला वीर शत्रु पर आक्रमण करने जाता है।

१२ पवमानः रजांसि तिरः, दिवं विधावति

[ १२६२ ]- शुद्ध होनेवाला मनुष्य रजोगुणको दूर करके स्वर्गको जानेके मार्ग पर जाता है।

१३ स्वध्वरः, अस्तृतः रजांसि तिरः दिवं व्यासरत् [१२६३]- उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाला, पराजित न होनेवाला, रजोगुणोंको दूर करके स्वर्गके रास्तेसे आगे जाता है।

१४ एषः हरिः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [१२६४]- यह दुःख दूर करनेकी इच्छा करनेवाला जन्मसे ही देवोंके लिए निर्मित हुआ है, इसप्रकार पवित्रताके मार्ग पर जाता है।

१५ एषः शूरः आशुभिः रथेभिः गच्छन्, धिया याति [ १२६६ ]- यह शूर पुरुष शीघ्रगामी रथोंसे जाकर बुद्धिपूर्वक उन्नतिके मार्गसे आगे जाता है।

१६ अमृतासः आशत, बृहते देवतातये, पुरू धियायते [ १२६७ ]- जहां अमरदेव रहते हैं, उस महान् यज्ञमें यह बुद्धिसे काम करनेकी इच्छा करता है।

१७ एषः हितः अन्तः शुन्ध्यावता पथा विनीयते [ १२६९ ]- इस हितकारक साधकको अन्तर्यामीके शुद्ध होनेके मार्गसे आगे ले जाया जाता है।

१८ ओजसा नृम्णा दधानः एषः शृंगाणि दोधुवत् [ १२७१ ]- अपने सामर्थ्यसे धनोंको धारण करनेवाला यह अपने सींग हिलाता है।

१९ वसूनि पिब्दनः एषः परुषा अति यथिवान्, शादेषु अव गच्छति [ १२७२ ]- निवास करके रहनेवाले दुष्टोंको कष्ट देता हुआ अपनी शक्तिसे उसके आगे जाकर, मारनेके योग्य उस दुष्टको कुचलता हुआ चला जाता है।

२० एषः सहस्रिणं वाजं गच्छन् [ १२७४ ]- यह हजारों प्रकारके अन्न देनेके लिए जाता है।

२१ एषः मानुषीषु विक्षु श्येनः न आ सीदति [ १२७६ ]- यह मानवीय प्रजाओंमें, श्येन पक्षीके समान, ऊंचे स्थान पर जाकर बैठता है।

२२ वाजी विश्ववित् मनसः पतिः नृभिः हितः [ १२८० ]- बलवान् यह सर्वज्ञ और मनका स्वामी होकर मनुष्यों द्वारा सन्मानके योग्य स्थानमें रखा जाता है।

२३ अमर्त्यः वृत्रहा देववीतमः देवः अधि योनौ शुभायते [ १२८२ ]- अमर, शत्रुओंको मारनेवाला और देवोंको बहुत आनन्द देनेवाला ऐसा यह देव अपने स्थानमें सुशोभित होता है।

२४ एषः दिवि सूर्यं अरोचयत् [ १२८४ ]- यह द्युलोकमें सूर्यको प्रकाशित करता है।

२५ दक्षसाधनः एषः स्वर्जित् [ १२८७ ]- बल बढानेका साधनरूप यह सुखोंको जीतकर प्राप्त करनेवाला है।

२६ गव्युः हिरण्ययुः स्वर्जित् अस्तृतः अचिक्रदत् [ १२८९ ]- गाय पालनेवाला, सोना पासमें रखनेवाला, एकदम सब शत्रुओंको जीतनेवाला, अपराजित वीर शब्द करता है।

२७ देवावीः अघशंसहा अदाभ्यः शुष्मी एषः अर्षति [ १२९१ ]- देवोंका रक्षक, पापियोंका संहारक, न दबाया जानेवाला यह बलवान् आगे जाता है।

२८ वृषा रक्षांसि विघ्नन् अर्षति [१२९२]- बलवाला यह राक्षसोंको मारता हुआ आगे जाता है।

२९ वृत्रहा वृषा वरिवोवित् अ-दाभ्यः, वाजं इव, असरत् [१२९६]- शत्रुको मारनेवाला बलवान् वीर, धन देनेवाला तथा किसीसे न दबनेवाला होकर घोडेके समान आगे जाता है।

३० यः ऋषिभिः संभृतं रसं अध्येति, सरस्वती तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे [१२९९]- जो ऋषियों द्वारा इकट्ठे किए हुए ज्ञानका अध्ययन करता है उसे सरस्वती दूध, घी, शहद और जल देती है।

३१ ऋषिभिः संभृतः रसः ब्राह्मणेषु अमृतं हितं [ १३०० ]- ऋषियों द्वारा इकट्ठा किया गया यह ज्ञानरस ब्राह्मणोंमें अमृतके रूपमें स्थित है।

३२ देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु, नः कामान् समर्धयन्तु [१३०१]- देवोंके द्वारा सम्पादित, ये पवित्रता करनेवाली देवियां हमें इस और उस लोकमें सुख देवें और हमारी कामनायें पूर्ण करें।

३३ देवाः येन पवित्रेण आत्मानं पुनते, तेन नः पुनन्तु [ १३०२ ]- देवगण जिस पवित्र करनेके साधनसे अपनेको पवित्र करते हैं, उन साधनोंसे वे हमें पवित्र करें।

३४ पावमानीः स्वस्त्ययनीः, ताभिः नान्दनं गच्छति, पुण्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं गच्छति [ १३०३ ]- पवित्रता करनेवाली और कल्याण करनेवाली ये ऋचायें हैं। इनसे आनन्द प्राप्त होता है, पवित्र अन्न खानेको मिलता है तथा अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

३५ स्वाहुतं चित्रभानुं नमसा अगन्म [ १३०४ ]-

जिसमें उत्तम हवन किया गया है, उस प्रकाशसे युक्त अग्निके पास नमस्कार करते हुए हम जावें।

३६ मन्हा विश्वा दुरितानि साह्वान् अग्निः दमे आस्तवे [१३०५]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाले अग्निकी यज्ञशालामें स्तुति की जाती है।

३७ सः नः दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत् [१३०५]- वह हमारी पापोंसे और निन्दित कर्मोंसे रक्षा करता है।

३८ हे अग्ने! त्वे वसु सुषणनानि सन्तु [१३०६]- हे अग्ने! तेरे पासके धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों।

३९ नः स्वस्तिभिः पात [ १३०६ ]- हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित कर।

४० इन्द्रः ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है।

४१ आयुधा जामि ब्रुवन [ १३०८ ]- शस्त्र अब निरुपयोगी हो गए, ऐसा लोग कहने लगे।

४२ वाजसातमः सुवीर्यं दधत् रश्मिभिः व्यश्नुहि [१३१२]- बल बढानेवाला तू उत्तम वीर्य धारण करके अपने तेजसे सब जगको व्याप्त कर दे।

४३ यः नर्यः [ १३१३ ]- जो सब मनुष्योंका हित करनेवाला है।

४४ वृषा हरिः, राजा इव, दस्मः [ १३१६ ]- रङ् बल बढानेवाला तथा दुःखोंका हरण करनेवाला, राजाके समान, दर्शनीय है।

४५ दुरिता अपसेधन् नः मृड [१३१८]- पापोंको दूर करके हमें सुखी कर।

४६ वसूनि ओजसा जनिमानि भागं प्रति दीधिमः [ १३१९ ]- धन अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करके उसका ठीक भाग हम लेते हैं।

४७ इन्द्रस्य रातयः भद्राः [ १३२० ]- इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं।

४८ यः मनः चोदयत् [१३२०]- जो मनोंको उत्तम प्रेरणा देता है।

४९ विधतः कामं न रोषति [१३२०]- उपासककी इच्छा वह नष्ट नहीं करता।

५० हे इन्द्र! यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि [ १३२१ ]- हे इन्द्र! जहांसे हमें भय उत्पन्न हो, वहांसे हमें भयरहित कर।

५१ हे मघवन्! नः तव ऊतये शग्धि, द्विषः जहि, मृधः वि [१३२१]- हे धनवान् इन्द्र! हमें अपने रक्षणोंसे सुरक्षित कर, द्वेष करनेवालोंका पराभव कर, शत्रुओंको दूर कर।

५२ हे राधसः पते! त्वं महः राधसः क्षयस्य विधर्ता असि [ १३२२ ]- हे धनपते! तू महान् धनोंके स्थानोंको धारण करनेवाला है।

५३ त्वं मदिन्तमः सत्राजित् अस्तृतः [ १३२४ ]- तू आनन्द देनेवाला सब शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाला और अपराजित है।

५४ द्युमन्तं शुष्मं आभर [ १३२५ ]- तेजस्वी बल हमें भरपूर दे।

५५ महे दक्षाय धनाय पवस्व [ १३३२ ]- शत्रुको हरानेवाले बलके लिए और धनके लिए शुद्ध हो।

५६ नः गवे शं [ १३३७ ]- हमारी गायोंका कल्याण होवे।

५७ पिप्युषीं इषं धुक्षस्व [ १३३७ ]- पोषण करनेवाले अन्न दे।

५८ युवा इन्द्रः येषां सखा, अयुद्धः इत् युधा वृतं सत्वभिः शूरः आजति [ १३४० ]- तरुण इन्द्र जिनका मित्र है, वे वीर युद्धकी इच्छा न होते हुए भी अनेक योद्धाओंसे युक्त शत्रुको अपने बलोंसे शूरवीर होकर दूर करते हैं।

५९ दाशुषे मर्ताय वसु विदयते [ १३४१ ]- दान देनेवाले मनुष्यको वह इन्द्र धन देता है।

६० अ-प्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः [१३४१]-जिसका पराभव नहीं होता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है।

६१ यः आविवासति, तत् उग्रं शवः इन्द्रः आ पत्यते [ १३४२ ]- जो उपासना करता है, इन्द्र उसे उग्र बल देता है।

६२ इन्द्रः अराधसं मर्तं, पदा क्षुम्पं इव, स्फुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र दान न देनेवाले मनुष्यको, जैसे पैरसे फूलको कुचलते हैं, उसीप्रकार नष्ट कर देता है।

---

## उपमा

१ पर्णवीः इव [ १२५६ ]- पक्षीके समान ( एषः देवः द्रोणानि अभि आसदम् ) यह सोम बर्तनमें वेगसे गिरता है।

२ हरिः वाजाय मृज्यते [ १२६० ]- जिसप्रकार घोडेको युद्धमें जानेके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार ( एषः पवमानः विपन्युभिः मृज्यते ) यह सोम यज्ञ करनेवालोंके द्वारा शुद्ध किया जाता है।

३ यूथ्यः वृषा शिशीते [१२७१]- जिसप्रकार झुण्डमें बैल अपने सींग हिलाता है, उसीप्रकार ( एषः शृंगाणि दोधुवत् ) यह सोम अपने सींग हिलाता है।

४ श्येनः न [१२७६ ]- बाजके समान यह सोम ( आ सीदति ) आकर बैठता है।

५ योषितं गच्छन् जारः न [ १२७६ ]- स्त्रीके पास जैसे उसका जार जाता है,उसीप्रकार ( एषः मानुषीषु विक्षु ) यह सोम मनुष्योंमें जाकर बैठता है।

६ वाजं इव [१२९६]- घोडेके समान ( सः सोमः ) वह सोम कलशमें वेगसे जाता है।

७ वृष्टिमान् पर्जन्यः इव [१३०७]- वृष्टि करनेवाले मेघके समान ( तेजसा महान् ) यह सोम तेजसे महान् दीखता है।

८ राजा इव दस्मः [ १३१६ ]- राजाके समान देखनेवाला यह ( सोमः ) सोम है।

९ श्येनः न [ १३१६ ]- बाजपक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आसदत् ) पानीके कलशमें जाता है।

१० अत्यः न [ १३१८ ]- घोडेके समान ( वाजं अभ्यर्षति ) युद्धमें जाता है।

११ आयन्तः सूर्यं इव [ १३१९ ]- किरणें जिसप्रकार सूर्यके आश्रयसे रहती हैं, उसीप्रकार ( विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब धन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं।

१२ भागं न प्रतिदीधिमः [ १३१९ ]- पिताके धनका भाग जिसप्रकार भाईके बांटमेंसे मिलता है, उसीप्रकार हमें धनका भाग मि[ले]।

१३ अश्वः न [ १३३२ ]- घोडेके समान ( निक्तः वाजी ) धोकर शुद्ध किया गया यह बलवान् सोम है।

१४ शिशुं जज्ञान [ १३३४ ]- नये बच्चेको जैसे साफ करते हैं, उसीप्रकार ( सोमं पवित्रे मृजन्ति ) सोमको छलनीपर शुद्ध करते हैं।

१५ वत्सं शिश्वरीः इव [ १३३६ ]- बच्चेको जिसप्रकार माता बढाती है, उसीप्रकार ( तं नः गिरः सं वर्धन्तु ) उस सोमका वर्णन हमारी स्तुति करती है।

१६ पदा क्षुम्पं इव [ १३४३ ]- पांवसे जैसे फूलको रौंदते हैं उसीप्रकार ( अ-राधसं मर्तं स्फुरत् ) दान न देनेवाले मनुष्यका इन्द्र नाश करता है।

१७ वंशं इव [ १३४४ ]- वांसको जैसे ऊपर करते हैं, उसीप्रकार ( ब्रह्माणः त्वा उद्येमिरे ) ब्राह्मण तुझ इन्द्रको श्रेष्ठ कहकर उन्नत करते हैं, तेरा यश बढाते हैं।

## दशमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

( १ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १२५३ | ९।९७।४० | पराशरः शाक्त्यः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १२५३ | ९।९७।३९ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| १२५५ | ९।९७।४१ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| १२५६ | ९।३।१ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | गायत्री |
| १२५७ | ९।३।६ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १२५८ | ९।३।४ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११५९ | ९।३।५ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ११६० | ९।३।३ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ११६१ | ९।३।१ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ११६२ | ९।३।७ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ११६३ | ९।३।८ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ११६४ | ९।३।९ | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| ११६५ | ९।३।१० | शुनःशेप आजीगर्तिः सः देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| ११६६ | ९।१५।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११६७ | ९।१५।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११६८ | ९।१५।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११६९ | ९।१५।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११७० | ९।१५।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११७१ | ९।१५।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११७२ | ९।१५।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| ११७३ | ९।१५।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| ११७४ | ९।३८।१ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७५ | ९।३८।२ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७६ | ९।३८।४ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७७ | ९।३८।५ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७८ | ९।३८।६ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११७९ | ९।३८।३ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| ११८० | ९।२८।१ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८१ | ९।२८।२ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८२ | ९।२८।३ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८३ | ९।२८।४ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८४ | ९।२८।५ [ प्रथमः पादः ] | प्रियमेध आंगिरसः | | |
| | ९।२७।४ [ त्रयः पादाः ] | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| ११८५ | ९।२७।५ [ प्रथमः पादः ]<br>९।२६।४ [ अयः पादाः ] | नृमेध आंगिरसः<br>इध्मवाहो दार्ढच्युतः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| | | ( ५ ) | | |
| ११८६ | ९।२७।१ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८७ | ९।२७।२ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८८ | ९।२७।३ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११८९ | ९।२७।४ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९० | ९।२७।६ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९१ | ९।२८।६ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| ११९२ | ९।३७।१ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९३ | ९।३७।२ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९४ | ९।३७।३ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९५ | ९।३७।४ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९६ | ९।३७।५ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| ११९७ | ९।३७।६ | राहूगण आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ७ ) | | |
| ११९८ | ९।६७।११ | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | पवमानाध्येता | अनुष्टुप् |
| ११९९ | ९।६७।१२ | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | ,, | ,, |
| १३०० | — | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | ,, | ,, |
| १३०१ | — | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | ,, | ,, |
| १३०२ | — | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | ,, | ,, |
| १३०३ | — | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | ,, | ,, |
| | | ( ८ ) | | |
| १३०४ | ७।१२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः | त्रिष्टुप् |
| १३०५ | ७।१२।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३०६ | ७।१२।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३०७ | ८।६।१ | वत्सः काण्वः | इन्द्रः | गायत्री |
| १३०८ | ८।६।३ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १३०९ | ८।६।२ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( ९ ) | | |
| १३१० | ९।६६।२५ | शतं वैखानसः | पवमानः सोमः | ,, |
| १३११ | ९।६६।२६ | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| १३१२ | ९।६६।२७ | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| १३१३ | ९।१०७।१ | सप्तर्षयः | ,, | प्रगाथः ( बृहती, सतो बृहती ) |
| १३१४ | ९।१०७।२ | सप्तर्षयः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| १३१५ | ९।१०७।३ | सप्तर्षयः | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| १३१६ | ९।८२।१ | वसुर्भारद्वाजः | ,, | जगती |
| १३१७ | ९।८२।२ | वसुर्भारद्वाजः | | ,, |
| १३१८ | ९।८२।२ | वसुर्भारद्वाजः | ,, | ,, |
| | | ( १० ) | | |
| १३१९ | ८।९९।३ | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | प्रगाथः ( बृहती सतो बृहती ) |
| १३२० | ८।९९।४ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १३२१ | ८।६१।१३ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १३२२ | ८।६१।१४ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| | | ( ११ ) | | |
| १३२३ | ९।६७।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १३२४ | ९।६७।२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३२५ | ९।६७।३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३२६ | ९।१०६।७ | मनुराप्सवः | ,, | उष्णिक् |
| १३२७ | ९।१०६।८ | मनुराप्सवः | ,, | ,, |
| १३२८ | ९।१०६।९ | मनुराप्सवः | ,, | ,, |
| १३२९ | ९।९८।७ | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | ,, | अनुष्टुप् |
| १३३० | ९।९८।६ | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | ,, | ,, |
| १३३१ | ९।९८।१० | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | ,, | ,, |
| १३३२ | ९।१०९।१० | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | द्विपदा विराट् |
| १३३३ | ९।१०९।११ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | ,, |
| १३३४ | ९।१०९।१२ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | ,, |
| १३३५ | ९।६१।१३ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | गायत्री |
| १३३६ | ९।६१।१४ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| १३३७ | ९।६१।१५ | अमहीयुरांगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( १२ ) | | |
| १३३८ | ८।४५।१ | त्रिशोकः काण्वः | अग्नीन्द्रौ | ,, |
| १३३९ | ८।४५।२ | त्रिशोकः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| १३४० | ८।४५।३ | त्रिशोकः काण्वः | ,, | ,, |
| १३४१ | १।८४।७ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १३४२ | १।८४।९ | गोतमो राहूगणः | ,, | उष्णिक् |
| १३४३ | १।८४।८ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १३४४ | १।१०।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | अनुष्टुप् |
| १३४५ | १।१०।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १३४६ | १।१०।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |



# अथ एकादशोऽध्यायः ।



अथ षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

[ १ ]

( १-११ ) मेधातिथिः काण्वः, २, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ प्रगाथः काण्वः; ४ पराशरः शाक्त्यः, ५ प्रगाथो घौरः काण्वः; ६ मेध्यातिथिः काण्वः; ७ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य; ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; १० सार्पराज्ञी ॥ १ आप्रीसूक्तं= ( १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः ); २ आदित्यः; ३, ५-६ इन्द्रः, ४, ७-९ पवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ आत्मा, सूर्यो वा । १-३, ११ गायत्री; ४ त्रिष्टुप्; ५-६ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्; ८ द्विपदा विराट्; ९ जगती; १० विराट् ॥

१३४७ सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥ ( ऋ. १।१३।१ )

१३४८ मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१३।२ )

१३४९ नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१३।३ )

१३५० अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ १ ( रा ) ॥

[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।१३।४ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १३४७ ] हे अग्ने ! ( सु समिद्धः ) अच्छी तरह प्रज्वलित होकर ( नः हविष्मते ) हमारी हविको अपने पास रखनेवाले यजमानके लिए ( देवान् आ वह ) देवोंको बुलाकर ला । हे ( होतः पावक ) हवन करनेवाले तथा पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( यक्षि च ) उन देवताओंको लक्ष्य करके यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १३४८ ] हे ( कवे ) दूरदर्शी अग्ने ! ( तनू-न-पात् ) शरीरको न गिरानेवाला तू ( अद्य ) आज ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( नः मधुमन्तं यज्ञं ) हमारी अत्यन्त मीठी हविको ( देवेषु कृणुहि ) देवोंकी ओर पहुंचा ॥ २ ॥

[ १३४९ ] ( इह अस्मिन् यज्ञे ) यहां इस यज्ञमें ( प्रियं मधु-जिह्वं ) प्रिय और मीठा बोलनेवाले ( हविष्कृतं नराशंसं ) हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले और मनुष्य जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे उस अग्निको ( उप ह्वये ) मैं बुलाता हूं । ॥ ३ ॥

१ मधुजिव्हः— मीठा भाषण करनेवाला ।
२ प्रियः— प्रिय आचरण करनेवाला ।
३ नराशंसः— मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं ।
४ हविष्कृत्— हवि तैय्यार करके यजन करनेवाला ।

[ १३५० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ईडितः ) प्रशंसित हुआ हुआ तू ( सुखतमे रथे ) अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे ( देवान् आ वह ) देवोंको लेकर आ । ( मनुः-हितः ) मनुष्यों-यजमानों-द्वारा स्थापित किया गया ( होता असि ) तू देवोंको बुलाकर लानेवाला है ॥ ४ ॥

१ सुख-तमः रथः— अत्यन्त सुख देनेवाला रथ ।

१३५१ यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६६।४ )

१३५२ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अꣳहोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥ ( ऋ ७।६६।५ )

१३५३ उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ २ ( खि ) ॥ [ धा० ११ । उ० २ । स्व० ३ ] ( ऋ ७।६६।६ )

१३५४ उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥ ( ऋ. ८।६४।१ )

१३५५ पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाꣳ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६४।२ )

१३५६ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वꣳ राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ ३ ( ठि ) ॥ [ धा० १३ । उ० २ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६४।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

---

[ १३५१ ] ( यत् ) उन धनोंको ( अद्य सूरे उदिते ) आज सूर्यके उदय होनेके बाद सबेरे ( अनागाः ) निष्पाप ( मित्रः अर्यमा भगः सविता ) मित्र, अर्यमा, भग और सविता देव ( सुवाति ) हमारी ओर प्रेरित करें ॥ १ ॥

१ मित्रः— मित्रके समान आचरण करनेवाला।

२ अर्य-मा— श्रेष्ठ पुरुषका निर्णय करनेवाला।

३ भगः— भाग्यवान्।

४ सविता— ( सर्वस्य प्रसविता ) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाला - सूर्य।

[ १३५२ ] ( सु-दानवः ) हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! ( प्र नु यामन् ) तुम्हारे आगमनके बाद ( सः क्षयः ) तुम्हारा यज्ञमें होनेवाला निवास ( सु-प्र-अवीः अस्तु ) हमारा अच्छी तरह रक्षण करनेवाला होवे। ( ये नः अंहः अति पिप्रति ) जो तुम हमें पापसे दूर करते हो ॥ २ ॥

[ १३५३ ] ( उत ये ) और जो देव तथा ( अदितिः ) देवोंकी माता अदिति हैं, ये सब ( अ-दब्धस्य व्रतस्य स्वराजः ) न दबाये जानेवाले व्रतके राजा हैं, वे ( महः राजानः ) वे महान् राजा हैं, और ( ईशते ) सब पर शासन करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

[ १३५४ ] हे इन्द्र ! ( सोमाः त्वा ) सोमरस तुझे ( उत् मदन्तु ) उत्तम आनन्द देवें। हे ( अद्रि-वः ) वज्र-धारी इन्द्र ! ( राधः कृणुष्व ) हमें ऐश्वर्य दे और ( ब्रह्म-द्विषः अवजहि ) ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको हरा ॥ १ ॥

[ १३५५ ] हे इन्द्र ! तू ( महान् असि ) बडा है। ( त्वा प्रति कश्चन न हि ) तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है, ( अ-राधसः पणीन् ) दान न देनेवाले लोभी लोगोंको तू ( पदा नि बाधस्व ) पैरोंसे कुचल डाल ॥ २ ॥

[ १३५६ ] हे [ इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं सुतानां ) तू रस निकाले गए और ( त्वं असुतानां ) रस न निकाले गए सोमोंका ( ईशिषे ) स्वामी है। ( त्वं जनानां राजा ) तू लोगोंका भी राजा है ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१३५७ आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनाꣳ सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।३७ )

१३५८ स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यꣳसत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।३८ )

१३५९ स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाꣳ अभि नो ज्योतिषावित् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥ ४ ( तै ) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।९७।३९ )

१३६० मा चिदन्यद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳ सचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

---

[ ३ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३५७ ] ( जागृविः ) जाग्रत रहनेवाला ( ऋतं मतीनां विप्रः ) सच्ची स्तुतियोंका ज्ञाता ( सोमः ) सोम ( पुनानः ) छनकर ( चमूषु आसदत् ) कलशमें बैठता है । ( मिथुनासः ) एकत्र रहनेवाले ( निकामाः ) इष्ट-कामना करनेवाले ( रथिरासः सुहस्ताः ) यज्ञ करनेवाले और उत्तम हाथवाले ( अध्वर्यवः ) अध्वर्यु ( यं सपन्ति ) जिसे स्पर्श करते हैं, ऐसा यह सोम है ॥ १ ॥

[ १३५८ ] ( पुनानः दधानः सः ) पवित्र होनेवाला, यज्ञकर्मोंको सिद्ध करनेवाला वह सोम ( सूरे उप [ गच्छति ] ) इन्द्रके पास जाता है । ( उभे रोदसी ) दोनों ही द्यु और पृथिवीको ( आ अप्राः ) यह भर देता है । ( [ सोमः ] आवः ) यह सोम तेजसे हमें आच्छादित करता है । ( प्रियाः ) प्रिय पदार्थ देनेवाली ( यस्य सतः ) जिसके रसको ( प्रियसासः ) अत्यन्त प्रिय धारा ( ऊती ) हमारा संरक्षण करती है और ( कारिणे न ) यज्ञ करनेवालेको जैसे धन मिलता है, उसीप्रकार ( धनं प्र यंसत् ) धन हमें देती है ॥ २ ॥

[ १३५९ ] ( वर्धिता ) संवर्धन करनेवाला ( वर्धनः ) तथा स्वयं भी बढनेवाला ( पूयमानः ) छाना जानेवाला और ( मीढ्वान् ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ( सः सोम ) वह सोम ( नः ज्योतिषा अभि आवित् ) अपने तेजसे हमारी रक्षा करे । ( पदज्ञाः स्वर्विदः ) पदोंका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानी ( नः पूर्वे पितरः ) हमारे पूर्वकालके पितर ( गाः ) गायोंको ( यत्र अद्रिं अभि इष्णन् ) पर्वतके पास ले जानेकी इच्छा करते थे ॥ ३ ॥

जहां सोमलता होती थी, वहां वे गायें ले जाते थे ।

[ १३६० ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्यत् मा चित् वि शंसत ) इन्द्रके स्तोत्रके सिवाय दूसरे स्तोत्र मत बोलो और ( मा रिषण्यत ) दूसरेके स्तोत्र बोलकर व्यर्थ ही अपनी शक्ति क्षीण मत करो । ( सुते ) सोमरस निकालनेके बाद ( वृषणं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सचा स्तोत ) एक जगह बैठकर स्तुति करो । ( उक्था च मुहुः शंसत ) इन्द्रके स्तोत्र बारबार कहो ॥ १ ॥

*

१३६१ अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणꣳ संवननमुभयङ्करं मꣳहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥ ५ ( यी ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।१।२ )

१३६२ उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।१५ )

१३६३ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रꣳ स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥ ६ ( ला ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३।१६ )

१३६४ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

( ऋ. ९।११०।१ )

१३६५ अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥२॥

( ऋ. ९।११०।३ )

---

[ १३६१ ] ( वृषभं यथा अवक्रक्षिणं ) बैलके समान शत्रुओंसे टक्कर लेनेवाले ( गां न जुवं ) बैलके समान शीघ्रता करके ( चर्षणीसहं ) शत्रुओंको हरानेवाले ( विद्वेषणं ) शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले ( संवननं ) उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य ( अभयं-करं मंहिष्ठं ) निर्भय करनेवाले, महान् तथा ( उभयाविनं ) दोनों प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

[ १३६२ ] ( त्ये मधुमत्तमाः ) वे अत्यन्त मीठे ( गिरः स्तोमासः ) वाणीके स्तोत्र ( उत् ईरते ) कहे जाते हैं। ( सत्राजितः ) बहुतसे शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले ( धनसा ) धन देनेवाले ( अ-क्षित-ऊतयः ) न नष्ट होनेवाले रक्षाके साधनोंसे युक्त ये स्तोत्र ( वाजयन्तः रथाः इव ) युद्धमें जानेवाले रथके समान, कहे जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३६३ ] ( कण्वाः इव ) कण्वके समान ( भृगवः ) भृगुओंने ( धीतं विश्वं इत् ) ध्यान किए गए और सर्वत्र रहनेवाले इन्द्रको ( आशत ) प्राप्त किया। ( सूर्या इव ) सूर्य जैसे प्रकाशसे व्यापता है, उसीप्रकार उसने उन्हें देखा। ( प्रियमेधासः आयवः ) प्रेमसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके समान ( इन्द्रं महयन्तः ) इन्द्रका महत्व प्रकट करते हुए ( स्तोमेभिः अस्वरन् ) वे स्तोत्रपाठ करने लगे ॥ २ ॥

[ १३६४ ] हे सोम ! ( सु वाजसातये ) उत्तम प्रकारसे अन्न देनेके लिए ( प्र धन्व ) तू आगे जा। ( सक्षणिः वृत्राणि परि ) साहस करनेवाला वीर जिसप्रकार वृत्र जैसे बलशाली शत्रुओं पर चढता चला जाता है, वैसे ही तू शत्रुओं पर आक्रमण कर। ( नः ऋणया ) हमारे ऋण दूर करनेवाला तू ( द्विषः तरध्यै ) शत्रुओंको मारनेके लिए ( ईरसे ) आगे जाता है ॥ १ ॥

[ १३६५ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( पयः विधारे हि ) जल धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( शक्मना सूर्यं अजीजनः ) अपनी शक्तिसे तूने सूर्यको उत्पन्न किया। ( गो-जीरया पुरंध्या ) स्तुति करनेवालोंको गाय देनेकी बुद्धिसे ( रंहमाणः ) तू प्रगतिवाला हुआ है ॥ २ ॥

१३६६ अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाꣳ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ३ ॥ ७ (ल) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।११०।२ )

१३६७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१ )

१३६८ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।३ )

१३६९ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ ३ ॥ ८ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०९।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३७० सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।६ )

१३७१ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९ ६९।२ )

---

[ १३६६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महे अर्यराज्ये ) महान् आर्य राज्यमें ( त्वा सुतं अनु ) तेरे अनुकूल होकर ही ( सं मदामसि ) हम आनंदसे रहते हैं। हे ( पवमान ) सोम ! ( वाजान् अभि प्र गाहसे ) तू बलसे होनेवाले कार्यमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १३६७ ] हे सोम ! तू ( स्वादुः ) मधुर होकर ( मित्राय पूष्णे भगाय इन्द्राय ) मित्र, पूषा, भग और इन्द्रकी ओर जानेके लिए ( प्र धन्व ) आगे जा ॥ १ ॥

[ १३६८ ] हे सोम ! ( शुक्रः दिव्यः ) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ ( पीयूषः सः ) पीनेके योग्य तू ( अमृताय ) अमर होनेके लिए ( महे क्षयाय एव ) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे ( अर्ष ) आगे जा ॥ २ ॥

[ १३६९ ] हे सोम ! ( क्रत्वे दक्षाय ) ज्ञान और बल प्राप्त करनेके लिए ( सुतस्य ते ) तेरा रस ( इन्द्रः पेयात् ) इन्द्र पिये और ( विश्वे च देवाः ) सब देव भी पियें ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३७० ] ( सूर्यस्य रश्मयः इवः ) सूर्यकी किरणोंके समान ( द्रावयित्नवः मत्सरासः ) प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, ( प्रसुतः आशवः सर्गासः ) शुद्ध किए गए, पात्रमें रहनेवाले सोमरस ( ततं तन्तुं साकं परि ईरते ) फैली हुई छलनीमेंसे एकदम नीचे गिरते हैं। वे ( इन्द्रात् ऋते ) इन्द्रके सिवाय ( किंचन धाम ) और किसी स्थानको ( न पवते ) पसन्द नहीं करते ॥ १ ॥

[ १३७१ ] इन्द्रकी ( मतिः पृच्यते ) स्तुति की जाती है ( मधु सिच्यते ) मधुर सोमरस इन्द्रको दिया जाता है। ( मन्द्रा-जनी आसनि अन्तः उप चोदते ) आनन्द देनेवाली रसकी धारा इन्द्रके मुंहमें छोडी जाती है। ( सन्तनिः ) हमेशा ( सुन्वतां ) सोमरसको निकालनेवाले यजमानोंका ( पवमानः मधुमान् द्रप्सः ) शुद्ध किया जानेवाला मीठा सोमरस ( वारं परि अर्षति ) छलनीसे नीचे पडता है ॥ २ ॥

१३७२ उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ३ ॥ ९ ( ग ) ॥
[ धा० २६ । उ० ३ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६९।४ )

१३७३ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१३७४ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )

१३७५ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥ १० ( डी ) ॥
[ धा० २८ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )

१३७६ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१८९।१ )

१३७७ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१८९।२ )

---

[ १३७२ ] ( उक्षा मिमेति ) सोमरस शब्द करता है। ( धेनवः प्रति यन्ति ) गायें उसके पीछे जाती हैं ( देवस्य निष्कृतं दवीः उप यन्ति ) चमकनेवाले सोमको दिव्य स्तुतियां प्राप्त होती हैं। ( अर्जुनं अव्ययं वारं अत्यक्रमीत् ) सफेद रंगके बालोंकी छलनीसे छनकर सोमरस नीचे उतरता है। ( अत्कं न ) कवचके समान ( निक्तं सोमः परि अव्यत ) साफ पदार्थोंको यह सोम अपने ऊपर ओढता है ॥ ३ ॥

[ १३७३ ] हे ( नरः ) ऋत्विजो ! तुम ( प्रशस्तं दूरेदृशं ) प्रशंसित और दूरसे दीखनेवाले ( गृह-पतिं अथव्युं ) गृहके रक्षक और अगम्य ( हस्तच्युतं ) हाथोंके द्वारा जलाये जानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( अरण्योः ) अरणियोंसे ( दीधितिभिः जनयन्तः ) अंगुलियों द्वारा उत्पन्न करो ॥ १ ॥

[ १३७४ ] ( यः दमे ) जो घरमें ( दक्षाय्यः ) हवियों द्वारा प्रज्वलित करने योग्य है, ऐसे ( नित्यः आस ) हमेशा रहनेवाले ( तं ) उस ( सु प्रतिचक्षं अग्निं ) दर्शनीय अग्निको ( कुतः चित् ) कहींसे भी लाकर ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( वसवः ) स्तुति करनेवालोंने ( अस्ते नि ऋण्वन् ) यज्ञशालामें स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १३७५ ] हे ( यविष्ठ अग्ने ) हे बलवान् अग्ने ! ( प्रेद्धः ) पूर्ण रीतिसे प्रज्वलित हुआ हुआ तू ( अजस्रया सूर्म्या ) बडी-बडी ज्वालाओंसे ( नः ) हमारे लिए ( पुरः दीदिहि ) हमारे आगे - आहवनीय स्थानमें प्रदीप्त हो, अच्छी तरह जल, ( शश्वन्तः वाजाः ) बहुतसी हवियां ( त्वां उप यन्ति ) तेरे पास जाती हैं।

[ १३७६ ] ( आयं गौः पृश्निः अक्रमीत् ) यह सूर्य नित्य गतिवाला होकर अपने व्यापक तेजसे उदयाचल पर जाता है। बादमें वह ( पुरः मातरं असदन् ) पूर्व दिशामें भूमिमाताके ऊपर आकर ( च पितरं स्वः प्रयन् ) अपने द्युलोकरूपी पिताको शीघ्र प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १३७७ ] ( अन्तः ) द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें ( अस्य रोचना ) इसका प्रकाश ( प्राणात् अपानती ) उदयके बाद अस्तको ( चराति ) प्राप्त होता है ( महिषः ) ऐसा यह महान् सूर्य ( दिवं व्यख्यत् ) द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

१३७८ त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ ११ ( छि ) ॥
[ धा० १७। उ० २। स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१८९।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६-१ ॥

॥ एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

---

[ १३७८ ] ( वस्तोः त्रिंशद्धाम अह ) दिनकी तीस घडी तक यह सूर्य ( द्युभिः विराजति ) किरणोंसे विशेष सुशोभित होता है। उस समय ( वाक् ) वेदवाणी ( पतंगाय ) इस सूर्यकी ( प्रति धीयते ) स्तुति करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

# एकादश अध्याय

इस ग्यारहवें अध्यायमें कुछ देवताओंके बाद सोमका गुण गान है। इसलिए प्रथम हम अन्य देवोंका वर्णन देखेंगे। सर्व प्रथम इन्द्रका स्थान है—

### इन्द्र

१ अद्रि-वः [ १३५४ ]- वज्रधारी, पहाडी किलेमें रहनेवाला।

२ महान् [ १३५५ ]- सबकी अपेक्षा बडा।

३ जनानां राजा [१३५६]- लोगोंका शासक, लोगोंका राज्य चलानेवाला।

४ वृषा [ १३६० ]- बलवान्, सामर्थ्ययुक्त।

५ चर्षणीसहः [१३६१]- शत्रु सैन्यको हरानेवाला।

६ विद्वेषी [ १३६१ ]- शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला।

७ संवननः [ १३६१ ]- सेवा करनेके योग्य।

८ अभयंकरः [१३६१]- लोगोंको निर्भय करनेवाला।

९ मंहिष्ठः [ १३६१ ]- महान्, बडा।

१० उभयावी [ १३६१ ]- दोनों प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाला, भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला।

११ अवक्रक्षी [१३६१]- शत्रुओंको टक्कर देनेवाला।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें हैं। अब उसके लिए और भी जो कुछ कहा है, उसे देखें—

१ सोमाः त्वा मदन्तु [ १३५४ ]- हे इन्द्र! सोमरस तुझे आनन्द देवें।

२ हे अद्रिवः! राधः कृणुष्व [ १३५४ ]- हे वज्रधारी इन्द्र! हमें धन दे।

३ ब्रह्मद्विषः अवजहि [ १३५४ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंका नाश कर।

४ हे इन्द्र! महान् असि, त्वा प्रति कश्चन नहि [१३५५]- हे इन्द्र! तू महान् है। तेरे समान दूसरा कोई नहीं है।

५ अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व [ १३५५ ]- दान न देनेवाले लोगोंको पैरोंसे कुचल डाल। उन्हें कष्ट पहुंचा।

६ हे इन्द्र! त्वं सुतानां असुतानां ईशिषे [१३५६] - हे इन्द्र! तू रस निकाले गए और न निकाले गए सोमोंका स्वामी है।

७ हे सखायः! अन्यत् चित् मा विशंसत [१३६०] - हे मित्रो! तुम और कुछ न करो।

८ मा रिषण्यत [ १३६० ]- व्यर्थ ही दूसरे कामोंमें अपनी शक्ति खर्च मत करो।

९ सुते वृषणं इत् सचा स्तोत उक्था च मुहुः

शंसत [ १३६० ]- सोमयागमें बलवान् उस इन्द्रके ही स्तोत्र कहो, और वारवार उसके स्तोत्र कहो।

१० वृषभं यथा अवक्क्षिणं [ १३६१ ]- दबकर मारनेवाले बैलके समान सामर्थ्यशाली इन्द्रकी स्तुति करो।

११ कण्वाः भृगवः धीतं विश्वं इत् आशत [ १३६३ ] – कण्व और भृगुने ध्यान द्वारा उस सर्वव्यापक इन्द्रकी उपासना की।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें है।

## अग्नि

१ अग्निः [ १३४७ ]- अग्रणी, आगे ले जानेवाला, नेता।

२ पावकः [ १३४७ ]- पवित्रता करनेवाला, शुद्धता करनेवाला।

३ होता [ १३४७ ]- हवन करनेवाला।

४ कविः [ १३४८ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी. अतीन्द्रियार्थदर्शी।

५ तनू-न-पात् [ १३४८ ]- शरीरका पतन न होने देनेवाला।

६ मधुजिव्हः [ १३४९ ]- मधुर भाषण करनेवाला।

७ प्रियः [ १३४९ ]- सबोंको प्रिय।

८ नराशंसः [ १३४९ ]- मनुष्यों द्वारा प्रशंसित।

९ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्यका हित करनेवाला, मनुष्योंके द्वारा स्थापित।

१० होता [ १३५० ]- हवन करनेवाला, बुलानेवाला।

११ प्रशस्तः [ १३७३ ]- प्रशंसित, स्तुत्य।

१२ दूरेदृक् [ १३७३ ] दूरसे दीखनेवाला।

१३ गृहपतिः [ १३७३ ]- गृहस्थ, घरका स्वामी।

१४ अथर्व्युः [ १३७३ ]- प्रगतिशील, गति करनेवाला।

१५ सुप्रतिचक्षः [ १३७४ ]- अत्यन्त दर्शनीय।

१६ यविष्ठः [ १३७५ ]- तरुण, नौजवान।

इन गुणवर्णनोंके अलावा और भी वर्णन इस अध्यायमें हैं—

१ हे अग्ने ! देवान् आ वह [ १३४७ ]- हे अग्ने ! देवोंको बुलाकर ला।

२ यक्षि [ १३४७ ]- यजन कर।

३ सुखतमे रथे देवान् आ वह [ १३५० ]- उत्तम सुखदायक रथमें देवोंको यहां बुलाकर ला। शरीर ही सुखदायक रथ है। जितने देव विश्वमें हैं, वे सभी देव अंशरूपसे इस देहमें है। अग्नि अर्थात् उष्णताके रहनेतक सब देवोंका निवास इस शरीरमें होता है। देहके ठण्डे होनेपर सब देव शरीर छोड जाते हैं। तब " अत्यन्त सुखदायक रथसे देवोंको यहां ला " इसका अर्थ है कि " शरीररूपी रथसे ला "।

४ यः दमे दक्षाय्यः नित्यः आस [ १३७४ ]- यह अग्नि प्रत्येक स्थानमें बल बढानेवाला होकर हमेशा रहता है। ( दक्षाय्यः- बल बढानेवाला )

५ अवसे वसवः अस्ते न्यृण्वन् [ १३७४ ]- संरक्षणके लिए इसे वसुदेव प्रत्येक स्थानमें रखते हैं। अग्निके रहने तक ही देहमें देवोंका निवास रहता है। यह सभीके अनुभवमें आ सकता है।

## देवोंका दर्शन

अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें आए हैं—

१ तत् मित्रः अर्यमा भगः सविता सुवाति [ १३५१ ] – उन धनोंको मित्र अर्यमा, भग और सविता हमारी ओर प्रेरित करें।

२ सु दानवः ! प्र नु यामन् सः क्षयः सु-प्रावीः अस्तु [ १३५२ ]- हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! तुम्हारा आगमन होने पर तुम्हारा यज्ञमें निवास हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला होवे।

३ ये नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- जो तुम हमें पापोंसे दूर करते हो।

४ उत ये आदितिः अ-दब्धस्य व्रतस्य स्वराजः महः राजानः ईशते [ १३५३ ]- और वे देव तथा देवमाता अदिति सब मिलकर न दबाये जानेवाले व्रतके समाट् हैं। वे महान् राजा और सबके ईश्वर हैं।

५ हे सोम ! स्वादुः मित्राय, भगाय, पूष्णे इन्द्राय प्र धन्व [ १३६७ ]- हे सोम ! तू मीठा होकर मित्र, भग, पूषा और इंद्रकी ओर जा।

इसप्रकार अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें हैं। कितने ही देव धन देते हैं। कितने ही संरक्षण करते हैं। कितने ही देव साधकोंको पापोंसे दूर करते हैं। कितने ही सब संसार पर शासन करते हैं। यज्ञमें सब देवोंको सोमरस दिया जाता है।

## सोम

१ जागृविः ऋतं मतीनां विप्रः सोमः पुनानः चमूषु आसदत् [ १३५७ ]- जाग्रत रहनेवाला, सत्य स्तुतियोंका ज्ञाता यह सोम छननेके बाद कलशमें जाता है।

कलशमें सोम भरकर रखते हैं। यह सोम ( जागृविः ) जागता रहता है, अर्थात् इसके पीनेके बाद इतना उत्साह बढता है कि उसके पीनेवालेको आलस्य नहीं आता।

२ वाजसातये प्र धन्व [१३६४]- अन्न दान करनेके लिए तू आगे हो। सोमरस एक अन्न है। उसे पीनेके लिए देना एक प्रकारसे अन्न दान ही है।

३ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३६४ ]- साहस करनेवाला वीर शत्रुओं पर चढता चला जाता है, उसीप्रकार " द्विषः तरध्यै ईरसे " द्वेष करते रहनेवाले शत्रुओंको मारनेके लिए आगे जाता है। सोमरस पीकर उत्साहित हुए हुए वीर शत्रुओं पर चढते चले जाते हैं।

४ हे सोम ! महे अर्य-राज्ये सं मदामसि [१३६६] -हे सोम ! महान् आर्य राज्योंमें हम संगठितरूपसे आनंदित होकर रहें।

५ हे सोम ! शुक्रः दिव्यः पीयूषः सः अमृताय महे क्षयाय एव अर्ष [ १३६८ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी, बलवान् और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतरूपी रस है। ऐसा तू अमर होनेके लिए तथा बडे बडे निवास स्थान प्राप्त करनेके लिए आगे होकर प्रगति कर।

६ हे सोम ! क्रत्वे दक्षाय सुतस्य ते इन्द्रः पेयात्, विश्वे च देवाः [१३६९]- हे सोम ! कर्म और बल प्राप्त करनेके लिए तेरा रस इन्द्र और सब दूसरे देव पीवें।

७ सूर्यस्य रश्मयः इव, द्रावयित्नवः मत्सरासः प्रसुतः आशवः सर्गासः ततं तन्तुं साकं ईरते, इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके समान फैलनेवाले और आनन्द देनेवाले सोमरस फैली हुई छलनीसे नीचे गिरते हैं। वे इन्द्रके सिवाय और कोई स्थान पसन्द नहीं करते।

इसप्रकार सोमरस इस अध्यायमें वर्णित है। यह सोम उत्साह बढानेवाला, आलस्य कम करनेवाला, अन्नके समान उपयोगमें आनेवाला, शत्रुओंको दूर करनेवाला, महान् राष्ट्रमें संगठित होकर रहनेकी व्यवस्था करनेवाला, कर्मशक्ति और बल बढानेवाला है।

## सोम रक्षण करता है

१ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण करता है। सोमसे जो उत्साह बढता है, उससे वीरता बढती है, फिर वीरतासे रक्षा होती है।

२ प्रियसासः ऊती [ १३५८ ]- प्रिय लगनेवाले ये सोमके रस हमारी रक्षा करनेवाले हैं।

३ वर्धिता वर्धनः मीढ्वान् सोमः नः ज्योतिषा अभि आवित् [१३५९]- संवर्धन करनेवाला, बढानेवाला, कामनाओंकी तृप्ति करनेवाला यह सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे। बल बढानेकी शक्ति जिसके पास है, वह संरक्षण कर सकता है।

## सोम धन देता है

१ सोमः कारिणे न, धनं प्र यंसत् [ १३५८ ]- कारीगरको, यज्ञ करनेवालोंको जैसे धन दिया जाता है, उसी प्रकार यह सोम स्फूर्ती बढानेवाला होनेके कारण पीनेसे स्फूर्ती बढाता है, इस कारण बहुत सारा काम करके धन प्राप्त किया जा सकता है।

## वैदिक-स्तोत्र

वैदिक स्तोत्रोंका महत्त्व इस अध्यायमें निम्न है। वह ध्यानपूर्वक देखने योग्य है—

१ ते मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः उदीरते, सत्राजितः धनसा अक्षितोतयः वाजयन्तः रथाः इव [ १३६२ ]- उन अत्यन्त मीठे स्तोत्रोंका उच्चारण किया जाता है। वे स्तोत्र शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले, धन देनेवाले, अक्षय संरक्षण करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान विजय देनेवाले हैं।

वेदमंत्रके स्तोत्रोंका यह वर्णन बिलकुल ठीक है। इन्द्र और सोमके स्तोत्र शौर्य और पराक्रम बढानेकी शक्तिवाले हैं। अग्निके स्तोत्र ज्ञान बढानेवाले हैं। अन्य देवोंके सूक्त भी इसीप्रकार विजयका मार्ग दिखाते हैं। मंत्रमें वर्णित देवताओंके गुण उपासकोंको अपने अन्दर लाने चाहिए। यह विजयका निश्चित मार्ग है।

---

## सुभाषित

१ सुसमिद्धः हविष्मते देवान् आ वह [ १३४७ ] -प्रदीप्त होकर यज्ञ करनेवाले देवोंको ले आ।

२ हे पावक ! यक्षि [ १३४७ ]- हे पवित्र करनेवाले देवो ! यज्ञ करो।

३ हे कवे ! तनू-न-पात् [ १३४८ ]- हे ज्ञानी

अग्ने ! तू शरीरका पतन नहीं होने देता । शरीरमें जबतक गर्मी रहती है, तबतक मृत्यु नहीं होती ।

४ अद्य नः ऊतये मधुमन्तं यज्ञं देवेषु कृणुहि [ १३४८ ]- आज हमारे संरक्षणके लिए हमारे मधुर हवनोंसे होनेवाले यज्ञको देवोंकी ओर पहुंचा ।

५ प्रियं मधुजिह्वं नराशंसं उपह्वये [ १३४९ ]- प्रिय, मधुरभाषी लोगों द्वारा प्रशंसित उस अग्निको मैं अपने पास बुलाता हूं ।

६ ईडितः सुखतमे रथे देवान् आवह [ १३५० ]- स्तुतिके बाद अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे देवोंको ले आ ।

७ मनु-हितः असि [ १३५० ]- तू मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

८ हे सुदानवः ! सक्षयः सु-प्रावीः अस्तु [१३५२] - हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! तुम्हारा यहांका निवास हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला होवे ।

९ नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- हे देवो ! हमें पापोंसे दूर करो ।

१० ये अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः महः राजानः ईशाते [ १३५३ ]- जो न दबनेवाले व्रतोंके राजा और स्वयं महान् शासक हैं, वे देव सभीपर शासन करते हैं ।

११ हे अद्रिवः ! राधः कृणुष्व [१३५४]-हे वज्रधारी इन्द्र ! हमें ऐश्वर्य दे ।

१२ ब्रह्मद्विषः अवजहि [ १३५४ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवालों को मार ।

१३ हे इन्द्र ! महान् असि, त्वा प्रति कश्चन नहि [ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है, तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है ।

१४ अ-राधसः पणीन् पदा नि बाधस्व [१३५५]- दान न देनेवाले लालचियोंको पैरसे कुचल डाल ।

१५ हे इन्द्र ! त्वं जनानां राजा [ १३५६ ]- हे इन्द्र ! तू मनुष्योंका राजा है ।

१६ जागृविः ऋतं मतीनां विप्रः सोमः पुनानः [ १३५७ ]- सदा जाग्रत रहनेवाला, यज्ञोंमें स्तुतियोंसे प्रशंसित यह ज्ञानी सोम छाना जाता है ।

१७ पुनानः उभे रोदसी आ अप्राः [ १३५८ ]- शुद्ध होनेवाला सोम द्युलोक और भूलोक दोनोंको ही अपने तेजसे भर देता है ।

१८ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण करता है ।

१९ कारिणे न, धनं प्र यंसत् [ १३५८ ]- यज्ञ करनेवालोंको जैसे धन मिलता है, वैसे ही हमें भी दे ।

२० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीढ्वान् सोमः नः ज्योतिषा अभि आवित् [१३५९]- दूसरोंको बढानेवाला, स्वयं भी बढनेवाला, स्वच्छ होनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे ।

२१ यत्र पदज्ञाः स्वर्विदः नः पूर्वे पितरः गाः अभि वृष्णन् [ १३५९ ]- जिस सोमके स्थानके पास पदोंका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानी हमारे पूर्वज अपनी गायें लेजाते थे । गायें चरानेके लिए वहां ले जाते थे जहां सोमवल्ली उगती थी ।

२२ हे सखायः ! अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिषण्यत, सुते वृषणं इन्द्रं सचा स्तोत, उक्था च मुहुः शंसत [ १३६० ]- हे मित्रो ! इन्द्रको छोडकर और किसीकी स्तुति मत करो । निरर्थक अपनी शक्ति खर्च मत करो । सोमयज्ञमें एक जगह बैठकर बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो । इन्द्रके स्तोत्र बारबार कहो ।

२३ वृषभं यथा अवक्रक्षिणं, गां न जुवं, चर्षणी-सहं, विद्वेषिणं, संवननं अभयंकरं मंहिष्ठं उभयाविनं मुहुः शंसत [ १३६१ ]- बैलके समान शत्रुको टक्कर देनेवाले, बैलके समान शीघ्रता करके शत्रुको हरानेवाले, शत्रुसे द्वेष करनेवाले, उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य, निर्भय करनेवाले, महान् और दोनों तरहके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रकी बारबार स्तुति करो ।

२४ सत्राजितः धनसा, अक्षितोतयः, वाजयन्तः रथाः इव गिरः उदीरते [ १३६२ ]- एक साथ शत्रुओंको जीतनेवाले, धन देनेवाले, रक्षण करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान स्तोत्र कहे जाते हैं ।

२५ कण्वाः भृगवः धीतं विश्वं इत् इन्द्रं आशत [ १३६३ ]- कण्व और भृगु ध्यानके द्वारा सर्वव्यापक इन्द्रको प्राप्त हुए ।

२६ आयवः महयन्तः स्तोमेभिः अस्वरन् [१३६३] -उपासक इन्द्रके महत्व गाते हुए स्तोत्र बोलने लगे ।

२७ सु वाजसातये प्रधन्व [१३६४]- उत्तम रीतिसे अन्नदान करनेके लिए तू आगे हो ।

२८ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३६४ ]- साहस करने-वाला वीर शत्रुपर जैसा आक्रमण करता है, वैसा ही तू कर ।

२९ द्विषः तरध्यै ईरसे [ १३६४ ]- शत्रुओंको मारनेके लिए आगे जाता है।

३० नः ऋणया [१३६४]- हमारे ऋण उतारनेवाला तू है।

३१ महे अर्यराज्ये सं मदामसि [ १३६६ ]- महान् आर्य राज्यमें रहकर हम आनंदित होते हैं।

३२ स्वादुः प्र धन्व [१३६७]- तू मीठा बनकर आगे चल।

३३ शुक्रः दिव्यः पीयूषः सः अमृताय महे क्षयाय अर्ष [ १३६८ ]- तेजस्वी स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतके समान वह सोम अमर होनेके लिए और महान् स्थान प्राप्त करनेके लिए छनता है।

३४ सूर्यस्य रश्मयः इव, द्रावयित्नवः मत्सरासः प्रसुतः आशवः सर्गासः ततं तन्तुं साकं ईरते, इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते [१३७०]- सूर्यकी किरणोंके समान प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, शुद्ध किए गए और बर्तनमें रखे गए सोमरस फैली हुई छलनीमेंसे एकदम नीचे रखे हुए बर्तनमें गिरते हैं। वे इन्द्रके सिवाय और कोई स्थान पसन्द नहीं करते।

३५ अयं गौः पृश्निः अक्रमीत् [ १३७६ ]- यह सूर्य अपने तेजसे आकाशमें उदय हो गया।

३६ महिषः दिवं व्यचख्यत् [ १३७७ ]- यह महान् सूर्य द्युलोकको प्रकाशित करता है।

३७ वस्तोः त्रिंशत् धाम द्युभिः विराजति [१३७८] - दिनकी तीस घडीतक वह विशेष प्रकाशित होता है।

---

## उपमा

१ कारिणे न [ १३५८ ]- कारीगर, कवि, स्तोता इत्यादिकोंको जैसे धन मिलता है, उसीप्रकार ( धर्मं प्र यंसत् ) धन हमें मिले।

२ वाजयन्तः रथाः इव [ १३६२ ]- युद्धमें जानेवाले रथके समान विजय देनेवाले ( स्तोमासः सत्राजितः ) स्तोत्र शत्रुओंको जीतनेवाले हैं।

३ कण्वाः इव [ १३६३ ]- कण्वोंके समान ( भृगवः विश्वं इत् इन्द्रं आशत ) भृगु सर्वव्यापक ईश्वरको प्राप्त करते हैं।

४ सूर्या इव [१३६३]- सूर्यके समान वह ईश्वर उन्हें दिखाई दिया।

५ सूर्यस्य रश्मयः इव [१३७०]- सूर्यकी किरणोंके समान ( मत्सरासः परि ईरते ) सोमरस नीचे आते हैं।

६ अत्कं न [ १३७२ ]- कवचके समान ( निक्तं परि अव्यत ) दूधका आवरण - मिश्रण सोम पर पड गया है।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं।

---

# एकादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १३४७ | १।१३।१ | मेधातिथिः काण्वः | आप्री-सूक्तं- [ १ ] इध्मः समिद्धः अग्निर्वा, [ २ ] तनूनपात्, [ ३ ] नराशंसः, [ ४ ] इळा | गायत्री |
| १३४८ | १।१३।२ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३४९ | १।१३।३ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३५० | १।१३।४ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३५१ | ७।६६।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | आदित्यः | ,, |
| १३५२ | ७।६६।५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १३५३ | ७।६६।६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३५४ | ८।६४।१ | प्रगाथः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| १३५५ | ८।६४।२ | प्रगाथः काण्वः | ,, | ,, |
| १३५६ | ८।६४।३ | प्रगाथः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| १३५७ | ९।९७।३७ | पराशरः शाक्त्यः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १३५८ | ९।९७।३८ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| १३५९ | ९।९७।३९ | पराशरः शाक्त्यः | ,, | ,, |
| १३६० | ८।१।१ | प्रगाथः घौरः काण्वः | इन्द्रः | प्रगाथः-( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ) |
| १३६१ | ८।१।२ | प्रगाथः घौरः काण्वः | ,, | ,, |
| १३६२ | ८।३।१५ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३६३ | ८।३।१६ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३६४ | ९।११०।१ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः | पवमानः सोमः | पिपीलिका मध्या अनुष्टुप् |
| १३६५ | ९।११०।३ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः | ,, | ,, |
| १३६६ | ९।११०।२ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः | ,, | ,, |
| १३६७ | ९।१०९।१ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | द्विपदा विराट् |
| १३६८ | ९।१०९।३ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | ,, |
| १३६९ | ९।१०९।२ | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १३७० | ९।६९।५ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | ,, | जगती |
| १३७१ | ९।६९।२ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १३७२ | ९।६९।४ | हिरण्यस्तूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १३७३ | ७।१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः | विराट् |
| १३७४ | ७।१।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३७५ | ७।१।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३७६ | १०।१८९।१ | सार्पराज्ञी | आत्मा सूर्यो वा | गायत्री |
| १३७७ | १०।१८९।२ | सार्पराज्ञी | ,, | ,, |
| १३७८ | १०।१८९।३ | सार्पराज्ञी | ,, | ,, |



# अथ द्वादशोऽध्यायः ।



अथ षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६-२ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ ( १-२ ) गोतमो राहूगणः; १ ( ३ ), ८, ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा; ४, १३ सोभरिः काण्वः; ५ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ ( १ ) ऋजिश्वा भारद्वाजः; ६ ( २ ) ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः, ९ तिरश्चीरांगिरसः; १० सुतंभर आत्रेयः; १२, १९ नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ नोधा गौतमः; १६ मेध्यातिथिः काण्वः; १७ रेणुर्वैश्वामित्रः; १८ कुत्स आंगिरसः; २० अगस्त्यो मैत्रावरुणः ॥ १-२, ७, १०, १३-१४ अग्निः; ३, ६, ८, ११, १५, १७-१८ पवमानः सोमः; ४, ५, ९, १२, १६, १९, २० इन्द्रः ॥ १-२, ७, १०, १४, गायत्री; ३, ९, १९ ( १-२ ) २० ( २-३ ) अनुष्टुप्; ४, ६-१३ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ५, १९ ( ३ ) बृहती; ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप्; १२, १६ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १७ जगती; २० ( १ ) स्कन्धोग्रीवी बृहती ॥

१३७९ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७४।१ )

१३८० यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥ ( ऋ १।७४।२ )

१३८१ स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वꣳहसः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ७।१५।३ )

१३८२ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥ ४ ॥ १ ( ति ) ॥
[ धा० १९। उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।७४।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १३७९ ] ( अध्वरं उप प्रयन्तः ) हिंसारहित यज्ञ करनेवाले हम ( आरे च अस्मे शृण्वते ) दूरसे ही हमारी स्तुतियोंको सुननेवाले ( अग्नये ) अग्निके लिए ( मंत्रं वोचेम ) मंत्र बोलते हैं ॥ १ ॥

[ १३८० [ ( यः पूर्व्यः ) जो पहलेसे ही जाग्रत है, वह अग्नि ( स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु ) हिंसक शत्रुओंके एकत्रित होने पर भी ( दाशुषे ) दाताके लिए ( गयं अरक्षत् ) घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

[ १३८१ ] ( शन्तमः सः अग्निः ) अत्यन्त सुख देनेवाला वह अग्नि ( नः वेदः ) हमारे धन ( अमा-त्यं रक्षतु ) पासमें सुरक्षित रखे, ( उत अस्मान् ) और हमें ( अंहसः पातु ) पापोंसे सुरक्षित रखे ॥ ३ ॥

[ १३८२ ] ( वृत्र-हा ) शत्रुको मारनेवाला ( रणे रणे धनंजयः ) प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंको हराकर धन जीतनेवाला ( अग्निः उद्जनि ) अग्नि प्रकट हुआ है, ( उत ) और अब ( जन्तवः ब्रुवन्तु ) ऋत्विज उसकी स्तुति करें ॥४॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१३८३ अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।४३ )

१३८४ अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयाꣳसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥२॥ ( ऋ. ६।१६।४४ )

१३८५ उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥ ३ ॥ २ ( यी ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।१६।४५ )

१३८६ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसꣳ हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१३ )

१३८७ आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१४ )

१३८८ स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ३ ( खै ) ॥

[ धा० २१ । उ० २ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१०१।१५ )

---

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३८३ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निदेव ! ( ये तव साधवः अश्वासः ) जो तेरे उत्तम और सुशील घोडे ( आशवः अरं वहन्ति ) शीघ्रतासे तुझे पहुंचाते हैं, उनको ( युंक्ष्व हि ) तू अपने रथमें जोड ॥ १ ॥

[ १३८४ ] हे अग्ने ! ( नः अच्छ याहि ) हमारे पास तू सीधे आ ( वीतये सोमपीतये ) अन्न भक्षणके बाद सोम पीनेके लिए ( प्रयांसि अभि ) हविरूप अन्नके पास ( देवान् आ वह ) देवोंको ले आ ॥ २ ॥

[ १३८५ ] हे ( भारत अग्ने ) पोषण करनेवाले अग्ने ! ( उत शोच ) तू प्रज्वलित हो। हे ( अ-जर ) जरारहित ( दविद्युतत् ) तेजस्वी और ( द्युमत् ) प्रकाशमान् अग्ने ! ( अ-जस्रेण विभाहि ) कम न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ १३८६ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) रस निकाले गए सोमके विषयमें ( तत् वचः ) उन प्रसिद्ध शब्दोंको ( मर्तः न वष्ट ) नीच मनुष्य न सुने । हे स्तुति करनेवालो । ( अ-राधसं श्वानं अप हत ) विघ्न करनेवाले कुत्तोंको मारो, ( भृगवः मखं न ) जिसप्रकार भृगुने दुष्ट मखको मारा ॥ १ ॥

[ १३८७ ] ( जामिः ) भाईके समान सोम ( अत्के आ अव्यत ) छलनीसे छाना जाता है। ( ओण्योः भुजे पुत्रः न ) रक्षण करनेवाले माता पिताकी भुजाओंमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार वह ( योनिं आसदम् ) अपने कलशमें जानेके लिए ( सरत् ) नीचे गिरता है ( जारः योषणां न ) जिसप्रकार जार स्त्रीकी ओर जाता है, अथवा ( वरः न ) वर - पति - कन्याकी ओर जाता है उसीप्रकार सोमरस कलशकी ओर जाता है ॥ २ ॥

[ १३८८ ] ( दक्ष-साधनः सः वीरः ) बल बढानेके साधनसे युक्त वह वीर सोम ( यः रोदसी वितस्तम्भ ) जिसने द्युलोक और पृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया है। ( वेधाः न ) जिसप्रकार यजमान अपने घर आता है, उसीप्रकार यह सोम ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रंगवाला होकर कलशमें आया है, वह ( पवित्रे अव्यत ) छलनोमेंसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

१३८९ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥
( ऋ. ८।२१।१३ )

१३९० न की रेवन्तꣳसख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुꣳसमूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ २ ॥ ४ (पि) )
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ ८।२१।१४ )

१३९१ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।२४ )

१३९२ आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।२५ )

१३९३ पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ ३ ॥ ५ (प) ॥
[ धा २० । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१।२६ )

---

[ १३८९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः ) तू जन्मसे ही शत्रुरहित है। ( सनात् अ-ना ) हमेशासे नेतारहित और ( अनापिः असि ) भाईरहित है। जब ( आपित्वं इच्छसे ) तू भाईकी इच्छा करता है, तब ( युधा इत् ) युद्धसे ही वह चाहता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृव्यः— भाईरहित, शत्रुरहित ।
२ अ-ना— जिसपर नियंत्रण रखनेवाला कोई नहीं।
३ युधा इत्— युद्ध करके ही-शत्रुओंको दूर करके ही उपासकोंको अपना मित्र बनाता है।

[ १३९० ] ( रेवन्तं ) केवल धन उसके पास है, इसीलिए किसी मनुष्यको ( सख्याय न किः विन्दसे ) तू अपना मित्र नहीं बनाता। ( सुराश्वः ते पीयन्ति ) शराब पीनेवाले नास्तिक तुझे दुःख देते हैं। ( यदा नदनुं कृणोषि ) जब ज्ञान प्राप्त करनेवालेको तू अपना मित्र बनाता है, तब ( समूहसि ) उसे उत्तम मार्ग पर चलाता है। ( आदित् ) तब ( पिता इव हूयसे ) पिताके समान तू उनके द्वारा पुकारा जाता है ॥ २ ॥

[ १३९१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजः केशिनः ) इशारेसे रथमें जुड जानेवाले, सुन्दर अयालवाले, ( हिरण्यये रथे युक्ताः ) सोनेके रथमें जोडे गए ( सहस्रं शतं हरयः ) हजारों व सैकडों घोडे ( सोम-पीतये त्वा आ वहन्तु ) सोम पीनेके लिए तुझे यज्ञके स्थानपर ले आवें ॥ १ ॥

[ १३९२ ] हे इन्द्र ! ( मध्वः विवक्षणस्य अन्धसः पीतये ) मीठे रससे युक्त तथा स्तुत्य सोमके पीनेके लिए ( हिरण्यये रथे ) सुनहरे रथमें ( मयूर-शेप्या शितिपृष्ठा हरी ) मोरके समान रंगवाले, सफेद पीठवाले दो घोडे ( त्वा आवहतां ) तुझे यज्ञमें पहुंचावें ॥ २ ॥

[ १३९३ ] हे ( गिर्वणः ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( परिष्कृतस्य रसिनः अस्य सुतस्य ) स्वच्छ किए गए रस युक्त इस सोमरसका ( पिब ) तू निःसंशय पान कर। तू ( पूर्व-पाः इव ) प्रथम पीनेवाला है। ( चारुः इयं आसुतिः ) सुन्दर यह सोमरस ( मदाय पत्यते ) आनन्द देनेके योग्य है ॥ ३ ॥

१३९४ आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।१०८।७ )

१३९५ सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ ६ ( या ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०८।८ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३९६ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।३४ )

१३९७ गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥ ( ऋ. ६।१६।३५ )

१३९८ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥ ७ ( व ) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ३।१६।३६ )

१३९९ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१ )

---

[ १३९४ ] हे ऋत्विजो ! ( अश्वं न ) घोडेके समान ( अप्तुरं स्तोमं ) जलोंको वेगसे बहानेवाले प्रशंसनीय ( रजस्तुरं वनप्रक्षं ) तेजको तेजीसे फैलानेवाले और पानीके समान गति करनेवाले ( उदप्रुतं आसोत ) पानीमें तैरनेवाले सोमका रस निकालो और ( परि षिंचत ) उसे पानीमें मिलाओ ॥ १ ॥

[ १३९५ ] ( सहस्र-धारं वृषभं ) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलवर्धक ( पयो-दुहं प्रियं ) दूधमें मिलाये गए प्रिय सोमको ( देवाय जन्मने ) देवोंको देनेके लिए शुद्ध करो । ( देवः ऋतं ) दिव्य और यज्ञरूप ( बृहत् ऋतजातः ) महान् और यज्ञमें लाया गया ( यः राजा ) जो राजा सोम है, वह ( ऋतेन वि वावृधे ) जलसे बढाया जाता है ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३९६ ] ( समिद्धः शुक्रः ) प्रज्वलित और तेजस्वी ( आहुतः विपन्यया ) आहुति दिया गया और स्तुति किया गया ऐसा वह ( द्रविणस्युः अग्निः ) धन देनेवाला अग्नि ( वृत्राणि जंघनत् ) शत्रुओंको मारता है ॥ १ ॥

[ १३९७ ] ( मातुः गर्भे ) मातृभूमिमें ( अ-क्षरे ) अविनाशी यज्ञवेदीके स्थान पर ( विदिद्युतानः ) विशेष प्रदीप्त हुआ हुआ ( पितुः पिता ) द्युलोकका रक्षक अग्नि ( ऋतस्य योनिं ) यज्ञकी वेदीमें ( आसीदन् ) बैठा हुआ है ॥२॥

[ १३९८ ] हे ( जातवेदः विचर्षणे अग्ने ) सर्वज्ञ, विशेष द्रष्टा अग्ने ! ( प्रजावत् ब्रह्म आ भर ) पुत्रपौत्रोंसे युक्त अन्न हमें दे । ( यत् दिवि दीदयत् ) जो द्युलोकमें देवताओंको दिया जाता है ॥ ३ ॥

[ १३९९ ] ( अस्य प्रेषा ) इस सोमका प्रेरणा देनेवाला और ( हेमना पूयमानः देवः ) सोनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी ( रसं देवेभिः समपृक्त ) रस देवोंसे मिलता है । ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) सोमरस शब्द करता हुआ छलनी द्वारा छनता है । ( होता मिता पशुमन्ति सद्म इव ) जिसप्रकार हवन करनेवाला यजमान स्वयंके द्वारा बनाये गए पशुयुक्त घरोंमें जाता है, उसीप्रकार सोम कलशमें जाता है ॥ १ ॥

१४०० भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शꣳसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।२ )

१४०१ समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ८ ( रि ) ॥
[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।९७।३ )

१४०२ एतो न्विन्द्रꣳस्तवाम शुद्धꣳशुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९५।७ )

१४०३ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९५।८ )

१४०४ इन्द्र शुद्धो हि नो रयिꣳशुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजꣳ सिषाससि ॥ ३ ॥ ९ ( यी ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९५।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

---

[ १४०० ] ( भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः ) कल्याणकारक युद्धके योग्य ऐसे वस्त्रोंको - तेजोंको धारण करनेवाला ( महान् कविः ) महान् ज्ञानी ( नि वचनानि शंसन् ) स्तुति और स्तोत्रोंका कहनेवाला ( विचक्षणः जागृविः ) ज्ञानी और जाग्रत रहनेवाला यह सोम है, हे सोम ! वह तू ( पूयमानः ) पवित्र होकर ( देववीतौ ) यज्ञमें ( चम्वोः आ वच्यस्व ) बर्तनमें प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[ १४०१ ] ( यशसां यशस्तरः ) यशस्वी होनेवालोंमें श्रेष्ठ यशस्वी ( क्षैतः प्रियः ) भूमिपर उत्पन्न होकर सबको प्यारा लगनेवाला ( सानौ अव्ये ) बालोंकी श्रेष्ठ छलनीमें ( अस्मे सं मृज्यते ) हमारे लिए ऋत्विजोंके द्वारा छाना जाता है। ( पूयमानः ) पवित्र होनेवाला तू भी ( धन्वा अभि स्वर ) खाली बर्तनमें शब्द करते हुए जा। ( यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात ) तुम कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी हमेशा रक्षा करो ॥ ३ ॥

[ १४०२ ] ( नु एत उ ) तुम शीघ्र आओ। ( शुद्धेन साम्ना ) हम शुद्ध सामगायनसे और ( शुद्धैः उक्थैः ) शुद्ध मंत्रोंसे ( शुद्धं इन्द्रं स्तवामः ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं। ( वावृध्वांसं ) सामर्थ्यसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले इन्द्रको ( शुद्धैः आशीर्वान् ) शुद्ध और गायके दूधके साथ मिला हुआ सोम ( ममत्तु ) प्रसन्न करे ॥ १ ॥

[ १४०३ ] हे इन्द्र ! तू ( शुद्धः नः आगहि ) शुद्ध रहनेवाले हमारे पास आ ( शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः ) शुद्ध रक्षणके साधनोंसे युक्त, शुद्ध पवित्र तू ( शुद्धः रयिं नि धारय ) शुद्ध रहकर हमें धन दे। हे ( सोम्य ) सोम पीनेवाले इन्द्र ! ( शुद्धः ममद्धि ) तू शुद्ध होकर हमें आनन्द प्राप्त करा ॥ २ ॥

[ १४०४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( शुद्धः हि नः रयिं ) तू शुद्ध है इसलिए तू हमें धन दे। ( शुद्धः दाशुषे रत्नानि ) तू शुद्ध रहकर दाताको रत्न दे। ( शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे ) तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है। ( शुद्धः वाजं सिषाससि ) तू शुद्ध रहकर अन्न देता है। ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१४०५ अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१३।२ )

१४०६ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१३।३ )

१४०७ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥ १० ( रि )॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१३।४ )

१४०८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९०।२ )

१४०९ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९०।३ )

१४१० उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥ ११ ( ५ )॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।९०।४ )

---

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४०५ ] ( द्रविणस्यवः ) धनकी इच्छा करनेवाले हम ( दिवि-स्पृशः देवस्य अग्नेः ) आकाशमें व्याप्त होनेवाले तेजस्वी अग्निके ( सिध्रं स्तोमं ) सिद्धि देनेवाले स्तोत्रको ( अद्य ) आज ( मनामहे ) करते हैं ॥ १ ॥

[ १४०६ ] ( होता यः अग्निः ) हवन करनेवाला जो अग्नि ( मानुषेषु आ ) मनुष्योंके घरोंमें रहता है । ( सः नः गिरः जुषत ) वह हमारी स्तुतियोंको सुने, और ( दैव्यं जनं यक्षत् ) दिव्य जनोंको पूज्य करे ॥ २ ॥

[ १४०७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जुष्टः वरेण्यः होता त्वं ) प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू ( स-प्रथाः असि ) सबसे श्रेष्ठ है । सब यजमान ( त्वया ) तेरे द्वारा ही ( यज्ञं वितन्वते ) यज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

[ १४०८ ] ( त्रिपृष्ठं वृषणं ) तीनों सवनोंमें रहनेवाले बलवान् ( वयोधां ) अन्न देनेवाले और ( अंगोषिणं ) शब्द करनेवाले सोमकी ( वाणीः अभ्यवावशन्त ) हमारी वाणियां स्तुति करती हैं ( वरुणः न ) वरुणके समान ( वना वसानः ) जलमें मिला हुआ ( सिन्धुः रत्नधाः ) गमनशील और रत्न देनेवाला सोम ( वार्याणि दयते ) स्वीकार करने योग्य धन स्तुति करनेवालोंको देता है ॥ १ ॥

[ १४०९ ] हे सोम ! ( शूरग्रामः सर्ववीरः ) शूरोंके समूह और अनेक वीरोंसे युक्त ( सहावान् जेता ) सामर्थ्यवान् और विजयी ( धनानि सनिता ) धन देनेवाला ( तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा ) तीक्ष्ण शस्त्र पासमें रखनेवाला और शीघ्रतासे धनुष चलानेवाला ( समत्सु अषाळ्हः ) संग्राममें असह्य ( पृतनासु शत्रून् साह्वान् ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाला तू सोम ( पवस्व ) कलशमें छनता जा ॥ २ ॥

[ १४१० ] हे सोम ! ( उरु-गव्यूतिः ) विस्तीर्ण मार्गवाला ( अभयानि कृण्वन् ) निर्भय करनेवाला ( पुरन्धी समीचीने कुर्वन् ) द्यावापृथिवीको जोडनेवाला ( आ पवस्व ) तू छनता जा और ( अपः उषसः स्वः गाः सिषासन् ) जल, उषा सूर्य, किरणें और गायोंका अपनी पुष्टिके लिए सेवन करता हुआ ( सं चिक्रदः ) तथा शब्द करता हुआ ( महः वाजान् ) बहुत सारा अन्न ( अस्मभ्यं ) हमें दे ॥ ३ ॥

१४११ त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।५ )

१४१२ तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसꣳ राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥ २ ॥ १२ (त) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९०।६ )

१४१३ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥ ( ऋ. ८।१९।३ )

१४१४ अपां नपातꣳ सुभगꣳ सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ २ ॥ १३ (ता) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१९।४ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१४१५ यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२७।७ )

१४१६ न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२७।८ )

[ १४११ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शवसः पतिः ऋजीषी ) बलका स्वामी और सोमकी इच्छा करनेवाला तथा ( यशाः असि ) यशस्वी है । ( अनुत्तः चर्षणी-धृतिः त्वं ) अपराजित और सब मनुष्योंका आधार तू ( एकः इत् ) अकेला ही ( अप्रतीनि वृत्राणि ) बलवान् शत्रुओंको ( पुरु हंसि ) बहुत संख्यामें मारता है ॥ १ ॥

[ १४१२ ] हे ( असुर इन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( तं प्रचेतसं त्वा उ ) उस ज्ञानसे युक्त तेरे पाससे ( भागं इव ) पितासे जिसप्रकार धनका भाग मांगते हैं, उसीप्रकार ( राधः नूनं ईमहे ) हम धन मांगते हैं । ( कृत्तिः इव ) बडे चोगेके समान ( ते मही शरणा ) तेरे विस्तृत स्थान हमें आश्रय देनेवाले हैं, ( ते सुम्ना ) तेरे उत्तम मन बनानेवाले सुख ( नः प्राश्नुवन् ) हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ १४१३ ] हे अग्ने ! ( देवत्रा देवं ) देवोंमें अधिक दिव्य ( होतारं अमर्त्यं ) हवन करनेवाले, अमर ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले ( यजिष्ठं त्वा ववृमहे ) यज्ञके कर्त्ता तेरी हम भक्ति करते है ॥१॥

[ १४१४ ] ( अपां-न-पातं ) जलोंको न गिरानेवाले ( सुभगं सु-दीदितिं ) उत्तम भाग्यवान् और उत्तम तेजसे तेजस्वी ( श्रेष्ठ-शोचिषं अग्निं ) तथा श्रेष्ठ ज्वालाओंसे युक्त अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं । ( सः नः ) वह हमें ( दिवि मित्रस्य वरुणस्य ) यज्ञस्थानमें रहनेवाले मित्र और वरुणके द्वारा मिलनेवाले ( सुम्नं यक्षते ) सुख देवे, ( सः अपां ) वह हमें जलोंसे मिलनेवाले सुख देवे ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४१५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पृत्सु यं मर्त्यं अवाः ) संग्राममें जिस मनुष्यकी तू रक्षा करता है, ( वाजेषु यं जुनाः ) स्पर्धामें जिस पुरुषको तू प्रेरणा देता है ( सः ) वह ( शश्वतीः इषः यन्ता ) हमेशा अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १४१६ ] हे ( सहन्त्य ) शत्रुओंको हरानेवाले अग्ने ! ( अस्य कयस्य पर्येता न किः चित् ) इस तेरे भक्तका पराभव करनेवाला कोई भी नहीं, क्योंकि इसका ( श्रवाय्यः वाजः अस्ति ) यशस्वी बल प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

*

१४१७ स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ १४ (ठा) ॥
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १।२७।९ )

१४१८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९३।१ )

१४१९ सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९३।२ )

१४२० उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥ १५ (वू) ॥
[ धा २० । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।९३।३ )

१४२१ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ ऽस्माँ२ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )

---

[ १४१७ ] ( विश्व-चर्षणिः सः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला वह अग्नि ( अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु ) घोडोंके द्वारा युद्धमें जय प्राप्त करानेवाला होवे, ( विप्रेभिः सनिता अस्तु ) तथा ज्ञानियों द्वारा प्रसन्न किया गया वह अग्नि हमें फल देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १४१८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक साथ कार्य करनेवाली ये अंगुलियां ( मर्जयन्त ) सोमरसको शुद्ध करती हैं । ( दश धीतयः ) ये दसों अंगुलियां ( धीरस्य धनुत्रीः ) इस धैर्यधारी सोममें हलचल पैदा करती हैं । बादमें ( हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत् ) यह हरे रंगका सोम सूर्यकी दिशासे छाना जाता है । ( वाजी न अत्यः ) घोडेके समान यह चंचल सोम ( द्रोणं ननक्षे ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

[ १४१९ ] ( वावशानः ) देवता जिसकी इच्छा करते हैं ( पुरुवारः ) अनेक जिसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ऐसा यह ( वृषा ) बलवान् सोम ( अद्भिः सं दधन्वे ) पानीके साथ मिलाया जाता है, ( मातृभिः शिशुः न ) मातासे जैसे पुत्र मिलाया जाता है, अथवा ( मर्यः योषां न ) पुरुष जवान स्त्रीसे जैसे मिलता है उसीप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है । ( निष्कृतं अभियन् ) अपने संस्कार किये जानेवाले स्थान पर जानेके लिए ( कलशे ) कलशमें ( उस्रियाभिः सं गच्छते ) गायके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १४२० ] ( उत अघ्न्यायाः ऊधः प्रपिप्ये ) और गायके दुग्धाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है । ( सु-मेधाः इन्दुः ) उत्तम बुद्धिमान् यह सोम ( धाराभिः सचते ) धाराओंसे मिलाया जाता है । ( गावः चमूषु मूर्धानं ) गायें वर्तनमें रहनेवाले श्रेष्ठ सोमको ( निक्तैः वसुभिः न ) जिसप्रकार लोग स्वच्छ कपडोंसे अपने आपको आच्छादित करते हैं, उसीप्रकार ( पयसा अभि श्रीणन्ति ) अपने दूधसे आच्छादित करती हैं ॥ ३ ॥

[ १४२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( गोमतः नः रसिनः सुतस्य ) गायके दूधसे युक्त, हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसको ( पिब, मत्स्व ) पी और आनन्दित हो । ( सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि ) एक जगह बैठकर पीनेके समय भाईके समान हमें बढाना है, तू यह जान । ( ते धियः अस्मान् अवन्तु ) तेरी बुद्धियां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

१४२२ भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥ १६ ( ल ) ॥
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।३।२ )

१४२३ त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७०।१ )

१४२४ स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७०।२ )

१४२५ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥ १७ ( चे ) ॥
[ धा० ३२ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ ९।७०।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

---

[ १४२२ ] हे इन्द्र ! ( वयं ते सुमतौ ) हम तेरे अनुकूल उत्तम बुद्धिमें रहकर ( वाजिनः भूयाम ) बलवान् होवें। ( अभिमातये ) शत्रुओंके लिए ( नः मा स्तः ) हमारा नाश न कर। अपितु ( अभिष्टिभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] ) इच्छित और सामर्थ्य युक्त संरक्षणोंसे ( अस्मान् अवतात् ) हमारा संरक्षण कर और ( सुम्नेषु नः आयामय ) सुख समृद्धियोंमें हमें बढा ॥ २ ॥

[ १४२३ ] ( परमे व्योमनि अस्मै ) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इस सोमको। ( त्रिः सप्त धेनवः ) इक्कीस गायें ( सत्यां आशिरं दुदुह्रिरे ) उत्तम दूध देती हैं। और यह सोम ( यत् ) जब ( ऋतैः अवर्धत ) यज्ञोंसे बढाया जाता है, तब ( अन्या चत्वारि भुवनानि ) अन्य चार प्रकारके पानीको ( निर्णिजे चारूणि चक्रे ) छाननेमें सहायक होता है ॥ १ ॥

[ १४२४ ] ( चारुणः अमृतस्य ) उत्तम जलकी ( भक्षमाणः सः ) इच्छा करनेवाला यह सोम ( उभे द्यावा ) दोनों द्यु और पृथ्वीलोकको ( काव्येन विशश्रथे ) स्तुतिस्तोत्रोंके द्वारा जलसे परिपूर्ण करता है। ( तेजिष्ठाः अपः ) तेजस्वी पानीको ( मंहना परिव्यत ) अपने महत्वसे ढक देता है ( यदि ) इस समय ऋत्विज ( देवस्य सदः ) इस दिव्य सोमके स्थानको ( श्रवसा विदुः ) यज्ञके लिए हविसे युक्त करते हैं ॥ २ ॥

[ १४२५ ] ( अमृत्यवः अदाभ्यासः ) अमर और न दबाये जानेवाली ( अस्य ते केतवः ) इस सोमकी वे किरणें ( उभे जनुषी अनु सन्तु ) दोनों प्राणियोंको सुरक्षित रखती हैं। ( येभिः ) जिन किरणोंसे सोम ( नृम्णा च देव्या च ) अपने सामर्थ्योंको और देवोंको देने योग्य अन्नोंको ( पुनते ) देवोंकी ओर प्रेरित करता है। ( आत् इत् ) बादमें ( राजानं ) सोम राजाको ( मननाः अगृभ्णत ) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

१४२६ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनꣳ रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।४९ )

१४२७ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।५० )

१४२८ अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ३ ॥ १८ ( खे ) ॥
[ धा० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।९७।५१ )

१४२९ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८९।५ )

१४३० तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८९।६ )

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४२६ ] हे सोम ! ( गृणानः ) स्तुति किए जानेके बाद तू ( वीति वायुं अभि अर्ष ) पीनेके लिए वायुके पास जा । ( पूयमानः मित्रावरुणौ अभि ) साफ होनेके बाद मित्र और वरुणके पास जा । ( नरं-धी-जवनं ) सबोंके नेता और बुद्धिको देनेवाले ( रथेष्ठां अभि ) रथमें बैठे हुए अश्विनीकुमारोंके पास जा, तथा ( वृषणं वज्र-बाहुं इन्द्रं अभि ) बलवान्, वज्रके समान जिसकी भुजायें हैं, ऐसे इन्द्रके पास भी जा ॥ १ ॥

[ १४२७ ] हे ( देव सोम ) दिव्य सोम ! तू हमें ( ( सु वसनानि वस्त्रा अभ्यर्ष ) उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे । ( पूयमानः ) साफ होनेवाला तू ( सुदुघाः धेनूः अभि ) उत्तम दूध देनेवाली गाय दे । ( भर्तवे ) भरण पोषणके लिए ( नः चन्द्रा हिरण्या अभि ) हमें तेजस्वी सोना दे और ( रथिनः अश्वान् अभि ) रथके साथ घोडे दे ॥ २ ॥

[ १४२८ ] हे सोम ! ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष ) हमें दिव्य धन दे । ( पार्थिवा विश्वा अभि ) पृथ्वी परके सब ऐश्वर्य दे । ( येन द्रविणं अश्नुवाम अभि ) जिससे हमें धन मिले वह सामर्थ्य हमें दे । ( जमदग्निवत् आर्षेयं नः ) जमदग्निके समान ऋषियोंके धन भी हमें दे ॥ ३ ॥

[ १४२९ ] ( अपूर्व्य मघवन् ) हे अपूर्व इन्द्र ! ( वृत्रहत्याय यत् जायथाः ) शत्रुओंका नाश करनेके लिए जब तू प्रकट होता है, तब ( तत् पृथिवीं अ प्रथयः ) तूने पृथ्वीको दृढ किया ( उत् उ तत् दिवं अस्तभ्नाः ) और द्युलोकको ऊपर स्तब्ध किया ॥ १ ॥

[ १४३० ] हे इन्द्र ! ( तत् ते यज्ञः अजायत ) उस समय तेरे लिए यज्ञ हुए ( उत तत् हस्कृतिः अर्कः ) तब दिनको बनानेवाला सूर्य उत्पन्न हुआ । ( यत् जातं यत् जन्त्वं ) जो कुछ हुआ और होनेवाला है ( तत् विश्वं अभिभूः असि ) उन सबोंको तू हरानेवाला है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र३ १ २र ३ २
१४३१ आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ३ ॥ १९ ( पे ) ॥
[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।८९।७ )

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१४३२ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७५।१ )

१ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
१४३३ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७५।२ )

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१४३४ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥ २० ( बि ) ॥
[ धा० २९ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।१७५।३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६-२ ॥

॥ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

---

[ १४३१ ] हे इन्द्र ! ( आमासु पक्वं ऐरयः ) अपक्व गायोंमें परिपक्व दूधको तूने उत्पन्न किया । ( दिवि सूर्यं अरोहयः ) द्युलोकमें सूर्यको चढाया । ( घर्मं सामं न ) जिसप्रकार प्रवर्ग - यज्ञको जलाते हैं, उसीप्रकार ( सु वृक्तिभिः तपत ) उत्तम स्तुतियोंसे इन्द्रको तपाओ, उत्साहित करो । ( गिर्वणसे जुष्टं बृहत् ) स्तुत्य इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सामका गान करो ॥ ३ ॥

[ १३३२ ] हे ( हरिवः ) घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( महः पात्रस्य इव ते ) बडे बर्तनके समान तू महान् है। ( वृष्णः ते ) बलयुक्त तेरे लिए ( मत्सरः मदः वृषा ) आनन्ददायक, हर्षवर्धक, बल बढानेवाला ( वाजी सहस्र-सातमः इन्दुः ) बलवान् और हजारों दान देनेवाला जो सोमरस है, उसे ( अपायि मत्सि ) पी और आनन्दित हो ॥१॥

[ १४३३ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए तैय्यार किया गया यह ( वृषा मदः ) बलवर्धक, आनन्ददायक ( वरेण्यः सहावान् ) श्रेष्ठ, सामर्थ्यवान् ( सानसिः पृतनाषाट् ) पीने योग्य, शत्रुओंको हरानेवाला ( अमर्त्यः मत्सरः आगन्तु ) अमर और आनन्द देनेवाला सोमरस तुझे प्राप्त होवे ॥ २ ॥

[ १४३४ ] हे इन्द्र ! ( त्वं हि शूरः सनिता ) तू शूर और दानका देनेवाला है, ( मनुषः रथं चोदय ) मनुष्यके मनोरथोंको उत्तम प्रकारसे प्रेरित कर । ( सहावान् ) सहायता करनेवाला होकर ( [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न ) जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वालासे बर्तन जला डालता है, उसीप्रकार ( दस्युं अव्रतं ओषः ) दुष्ट और व्रत पालन न करनेवालेको जला डाल ॥ ३ ॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥



# द्वादश अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ हे इन्द्र ! त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः [१३८९]- हे इन्द्र ! तू जन्मसे शत्रुरहित है। तेरा कोई शत्रु नहीं । यहां " भ्रातृव्य " शब्द भाईबन्धुका भाव दिखाता है । भाई भाईमें वैर होना स्वाभाविक है, ऐसा प्रतीत होता है । वैदिककालमें भी " भ्रातृव्य " पद वैरभावका द्योतक था । जन्मसे ही इन्द्रका कोई भाई नहीं, जिससे द्वेष हो सके ।

२ सनात् अ-ना [ १३८९ ]- तुझ पर नेतृत्व करनेवाला कोई नहीं ।

३ अनापिः असि [ १३८९ ]- तू भाईरहित है । तेरा कोई भाई नहीं, तेरा सहायक कोई नहीं ।

४ आपित्वं इच्छसे युधा इत् [ १३८९ ]- तू जब भाई चाहता है, तब युद्ध करके तू शत्रुओंको दूर करता है और लोगोंको अपना मित्र बनाता है।

इन्द्रका भाई नहीं, नेता नहीं, मित्र नहीं, ऐसा यह इन्द्र अकेला ही है। पर वह अपनी अपार शक्तिसे सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है। और अकेला ही जो कुछ करना होता है करके दिखाता है। जिसका नेता, भाई, मित्र कोई दूसरा नहीं, फिर भी वह सब कुछ करता है । इससे उसकी अपार शक्तिका ज्ञान होता है । वह अकेला ही सबसे अधिक शक्तिशाली है, इसलिए वह अकेला ही सब कुछ करता है ।

५ रेवन्तं सख्याय न किः विन्दसे [१३९०]- केवल कोई धनवान् है, इसलिए तू उसे अपना मित्र नहीं बनाता। उसमें कौनसे अच्छे गुण हैं, यह तू देखता है और जो गुणवान् है उसे ही तू अपना मित्र बनाता है ।

६ यदा नदनुं कृणोषि, समूहसि, आदित् पिता इव हूयसे [ १३९० ]- जब तू ज्ञान प्राप्त करनेवालेको मित्र बनाता है, तब उसे सन्मार्गसे चलाकर समृद्ध बनता है। तब लोग तेरी पिताके समान स्तुति करते हैं । क्योंकि पिता अपने बच्चोंको उत्तम मार्ग पर चलाता है, और उनकी उन्नति करता है ।

७ हे इन्द्र ! त्वं शवसः पतिः यशाः असि [१४११] – हे इन्द्र ! तू बलवान् है और उस कारण यशस्वी भी है।

८ अनुत्तः चर्षणीधृतिः त्वं एकः इत् अप्रतीनि, पुरु वृत्राणि हंसि [ १४११ ]- पराजित न होनेवाला और सब मनुष्योंका धारण करनेवाला अकेला ही तू बहुत बलवान् शत्रुओंको हराता है।

९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [१४२१]- तेरी बुद्धियां हमारी रक्षा करें।

१० वयं ते सुमतौ वाजिनः भूयाम [ १४२२ ]- हम तेरी अनुकूलतासे बलवान् हों ।

११ नः मा स्तः [ १४२२ ]- हमारा नाश मत कर।

१२ अभिष्टिभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] अस्मान् अवतात् [ १४२२ ]- इष्ट और सामर्थ्यवान् तथा विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ।

१३ सुम्नेषु नः आयामय [ १४२२ ]- सुख समृद्धिमे हमें बढा ।

१४ हे इन्द्र ! शुद्धः नः रयिं, शुद्धः दाशुषे रत्नानि [ १४०४ ]- हे इन्द्र ! शुद्ध और पवित्र तू हमें धन दे, शुद्ध तू दाताको रत्न दे ।

१५ शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे [ १४०४ ]- शुद्ध तू शत्रुओंको मारता है।

१६ शुद्धः वाजं सिषाससि [ १४०४ ]- शुद्ध तू अन्न देता है ।

१७ यत् जातं यत् जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि [ १४३० ]- जो उत्पन्न हुए या होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है।

१८ हे अपूर्व्य ! मघवन् ! यत् वृत्रहत्याय त्वं जायथाः, तत् पृथिवीं अप्रथयः, उत दिवं अस्तभ्नाः [ १४२९ ]- हे अपूर्व इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिए जब तू तैय्यार हुआ, तब तूने पृथ्वीको दृढ किया और द्युलोकको ऊपर स्तब्ध किया ।

१९ हे इन्द्रः ! त्वं शूरः सनिता [१४३४]- हे इन्द्र ! तू शूर है और दाता है।

२० मनुषः रथं चोदय [१४३४]- मनुष्योंका मनोरथ सिद्ध हो ऐसी प्रेरणा कर।

२१ सहावान् अव्रतं दस्युं ओषः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् होकर नियम न पालन करनेवाले दुष्टोंको नष्ट कर दे ।

२२ हे असुर इन्द्र ! प्रचेतसं त्वा भागं इव राधः नूनं ईमहे [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! ज्ञानवान् ऐसे

तेरे पास हम धनका भाग मांगते हैं। अपने पितासे जैसे मांगते हैं, वैसे ही धनका भाग हम मांगते हैं।

२३ ते मही शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान आश्रय लेने योग्य है।

२४ ते सुम्ना नः प्राश्नुवन् [ १४१२ ]- तुझसे उत्तम मन मांगते हैं।

२५ आमासु पक्वं ऐरयः [ १४३१ ]- तू गायोंमें पका दूध उत्पन्न करता है।

२६ दिवि सूर्यं अरोहयः [१४३१]- आकाशमें सूर्यको ऊपर चढाया।

२७ तत् ते यज्ञः अजायत [ १४३० ]-तब तेरे लिए यज्ञ शुरु हुए। तू महान् प्रतापी होनेके कारण यज्ञके द्वारा तेरा सन्मान लोग करते हैं।

२८ गिर्वणसे जुष्टं बृहत् [ १४३१ ]- प्रशंसनीय इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सामका गायन किया जाता है।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन मंत्रों द्वारा किया गया है। इस इन्द्रके लिए यज्ञ करते हैं और उनमें उसको पीनेके लिए सोमरस देते हैं।

## इन्द्रको सोम

१ वाजी सहस्रसातमः अपायि मत्सि [ १४३२ ] -बलवान् और हजारों प्रकारके दान देनेवाला इन्द्र सोमरस पीता है और आनन्दित होता है।

२ हे इन्द्र! ते वृषा मदः वरेण्यः सहावान् सानसिः पृतनाषाट्, अमर्त्यः मत्सरः गन्तु [१४३३]- हे इन्द्र! तेरे लिए तैय्यार किया गया यह बलवान् और आनन्द देनेवाला, श्रेष्ठ और सामर्थ्य युक्त, सेवन करनेके योग्य, शत्रुओंको हरानेवाला, अमर अल्हाददायक सोमरस तुझे प्राप्त हो।

३ त्वं पूर्वपाः असि। इयं चारुः आसुतिः मदाय पत्यते [ १३९३ ]- तू प्रथम पीनेवाला है। यह सुन्दर सोमरस तुझे आनन्द देने योग्य है।

४ शुद्धेन साम्ना, शुद्धैः उक्थैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवाम। वावृध्वांसं शुद्धः आशीर्वान् ममत्तु [ १४०२ ]- शुद्ध सामगायनसे, शुद्ध स्तोत्रोंसे, शुद्ध इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं। आत्म-सामर्थ्यसे बढनेवाले इन्द्रको शुद्ध गायके दूधसे मिलकर सोमरस प्रसन्न करे।

५ हे इन्द्र! शुद्धः नः आगहि। शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः रयिं नि धारय। शुद्धः ममद्धि [ १४०३ ]- हे, इन्द्र! तू शुद्ध हो कर हमारे पास आ। शुद्ध संरक्षणके साधनोंसे शुद्ध होकर हमें धन दे और शुद्ध होकर सोम पीकर आनन्दित हो।

६ हे इन्द्र! नः रथिनः गोमतः सुतस्य पिब, मत्स्व। सधमाद्ये आपिः न वृधे बोधि [ १४२१ ]- हे इन्द्र! गायके दूधसे मिश्रित तथा हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरस पी और आनन्दित हो। एकत्र बैठकर पीनेकी जगह-यज्ञस्थान-में मित्रके समान हमारा संवर्धन करना है, यह जान।

७ हे इन्द्र! ब्रह्मयुजः केशिनः हिरण्यये रथे युक्ताः सहस्रं शतं हरयः सोम-पीतये त्वा वहन्तु [ १३९१ ]- हे इन्द्र! शब्दोंके इशारेसे जुड जानेवाले, उत्तम अयालवाले, सोनेके रथमें जुडे हुए हजारों और सैकडों घोडे सोम पीनेके लिए तुझे ढो कर ले जाते हैं।

८ मध्वः विवक्षणस्य अन्धसः पीतये हिरण्यये रथे मयूर-शेप्या शितिपृष्ठा हरी त्वा आ वहताम् [ १३९२ ]- मधुर रस युक्त, प्रशंसनीय सोमरस पीनेके लिए सोनेके रथसे मोरपंखके समान सुन्दर रंगके अयालवाले तथा सफेद पीठवाले दोनों घोडे तुझे पहुंचायें।

इस प्रकार इन्द्रके सोम पीनेके लिए यज्ञमें जानेका वर्णन है।

## अग्नि

अग्निदेवका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार आया है।

१ आरे असे शृण्वते अग्नये मंत्रं वोचेम [१३७९] -दूर रहकर भी हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले अग्निके लिए हम मंत्र बोलते हैं। मंत्रोंके द्वारा उसकी स्तुति करते हैं।

२ पूर्व्यः स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत् [ १३८० ]- पहलेसे ही हिंसक शत्रु सैन्यके इकट्ठे होनेपर भी दानी मनुष्यके घरकी यह अग्नि रक्षा करता है।

३ शंतमः सः अग्निः नः वेद, अमा-त्यं रक्षतु उत अस्मान् अंहसः पातु [ १३८१ ]- अत्यन्त सुखमय शान्ति देनेवाला वह अग्नि हमारा धन अथवा जो कुछ हमारे पास है उस सबको सुरक्षित रखे, तथा हमें पापोंसे बचावे।

४ वृत्रहा रणे धनंजयः अग्निः उदजनि [ १३८२ ] शत्रुका नाश करनेवाला और प्रत्येक युद्धमें धन देनेवाला अग्नि प्रकट हो गया है।

५ हे भारत अग्ने! उत् शोच! हे अजर! दविद्युतत् द्युमन् अजस्रेण वि भाहि [१३८५]-हे भरणपोषण

करनेवाले अग्ने ! तू प्रज्वलित हो। हे जरारहित ! तेजस्वी और प्रकाशमान् अग्ने ! कम न होनेवाले तेजसे तू प्रकाशित हो।

६ समिद्धः शुक्रः आहुतः द्रविणस्युः अग्निः वृत्राणि जंघनत् [ १३९६]- प्रज्वलित, तेजस्वी, आहुतिसे युक्त, धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है।

७ हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, वाजेषु यं जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता [१४१५]- हे अग्ने ! तू संग्राममें जिसकी रक्षा करता है, स्पर्धामें जिसको तू प्रेरणा देता है, वह सदा अन्न प्राप्त करता है।

८ हे सहन्त्य ! अस्य कयस्य पर्येता न किः। आवाय्यः वाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुओंको हरानेवाले अग्ने ! इस तेरे भक्तको कोई भी नहीं हरा सकता। इसका यशस्वी बल प्रसिद्ध है।

९ सः विश्वचर्षणिः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु [ १४१७ ]- वह सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि घोडोंके युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला और ज्ञानियों द्वारा प्रसन्न किया गया है।

१० हे अग्ने ! प्रजावत् ब्रह्म आ भर [ १३९८ ]- हे अग्ने ! पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले अन्न हमें भरपूर दे।

११ होता अग्निः मानुषेषु आ। सः नः गिरः जुषत। दैव्यं जनं यक्षत् [ १४०६ ]- हवन जिसमें होता है ऐसा अग्नि मानवोंके घरमें रहता है। वह हमारी स्तुति सुने और दिव्य जनको अधिक पवित्र करे।

१२ अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं श्रेष्ठशोचिषं अग्निं [१४१४]- कर्मोंका पालन करनेवाला, उत्तम भाग्यवान् तेजस्वी, प्रकाशमान् अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं।

१३ सः नः द्युम्नं यक्षते [१४१४]- वह हमें सुख देवे।

१४ हे अग्ने ! जुष्टः वरेण्यः होता त्वं सप्रथाः असि, त्वया यज्ञं वितन्वते [ १४०७ ]- हे अग्ने ! प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबसे महान् है। तेरी सहायतासे यज्ञका अनुष्ठान होता है।

१५ हे अग्ने ! ये तव साधवः आशवः अश्वासः अरं वहन्ति, युंक्ष्व हि [ १३८३ ]- हे अग्ने ! जो तेरे उत्तम सुशिक्षित शीघ्रगामी घोडे शीघ्रतासे तुझे ले जाते हैं, उन्हें अपने रथमें जोड।

१६ हे अग्ने ! देवान् प्रयांसि अभि आवह [१३८४] - हे अग्ने ! देवोंको यज्ञमें बुला ला।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है।

## देवोंके लिए सोम

१ गृणानः वीति वायुं अभि अर्ष [१४२६]- हे सोम ! स्तुतिके बाद पीनेके लिए वायुके पास जा।

२ पूयमानः मित्रावरुणौ अभि अर्ष [ १४२६ ]- स्वच्छ किए जानेके बाद मित्र और वरुणके पास जा।

३ नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि अर्ष [१४२६]- नेताकी बुद्धिको गति देनेवाले और रथमें बैठनेवाले अश्विनोकी ओर जा।

४ वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि अर्ष [ १४२६ ]- बलवान् और वज्रके समान बाहुओंवाले इन्द्रके पास जा।

इस प्रकार देवोंको सोमरस दिये जानेके सम्बन्धमें वर्णन है।

## सोम

१ दक्षसाधनः सः वीरः रोदसी वि तस्तम्भ [१३८८]- बल बढानेका साधन वह शूर सोम अपने तेजसे द्यावापृथिवीको भर देता है।

२ हरिः योनिं आसदम् [१३८८]- हरे रंगका सोम कलशमें जाता है।

३ पवित्रे अव्यत [ १३८८ ]- सोम छलनीसे छाना जाता है।

४ अप्तुरं स्तोमं रजस्तुरं वनप्रक्षं उदप्रुतं आसोत, परि षिञ्चत [१३९४]- पानीमें शीघ्रतासे मिलनेकी इच्छा करनेवाले तेजस्वी तथा पात्रमें रहनेवाले सोमरसको निकाल कर उसमें पानी मिलाओ।

५ सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने [१३९५]- हजारों धाराओंसे छानेजानेवाले बलवर्धक वृषमें मिलाये हुए प्रिय सोमको देवोंको देनेके लिए शुद्ध कर।

६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः रसं देवेभिः समपृक्त। सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति [ १३९९ ]- इस सोमका प्रेरणा देनेवाला और सोनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी रस देवोंसे मिलता है। यह सोमरस शब्द करता हुआ छलनीसे छाना जाता है।

सोम छाननेवाले ऋत्विज हाथोंमे सोनेकी अंगूठी पहनते थे। सोमरससे उस सोनेका स्पर्श होने पर सोमरस शुद्ध होता था। ऐसा "हेमना पूयमानः" शब्दसे प्रतीत होता है। अथवा और किसी प्रकारसे भी सोमरसके साथ सोनेका सम्बन्ध होता होगा। पर सोमरसके लिए सोनेका स्पर्श आवश्यक समझा जाता था, यह बात निश्चित है।

७ भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः महान् कविः नि वचनानि शंसन् विचक्षणः जागृविः पूयमानः देववीतौ चम्वोः आ वच्यस्व [ १४०० ]– कल्याणकारक, युद्धके योग्य वस्त्रोंको-तेजोंको-धारण करनेवाला, महान् ज्ञानी, स्तुति स्तोत्र कहते हुए ज्ञानी होकर जाग्रत रहनेवाला सोम पवित्र होकर-छाना जाकर-यज्ञ स्थान पर रखे हुए कलशमें छननेके बाद गिरता है।

८ त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां अंगोषिणं वाणीः अभि अवावशन्त [ १४०८ ]– तीन सवनोंमें रहनेवाले, बलवान् और अन्न देनेवाले और शब्द करनेवाले सोमकी हमारी वाणी स्तुति करती है।

९ वना वसानः सिन्धुः रत्नधाः वार्याणि दयते [ १४०८ ]– जलमें मिलाया गया, प्रगतिशील और रत्न देनेवाला सोम स्वीकार करने योग्य धन देता है।

१० शूरग्रामः, सर्ववीरः, सहावान्, जेता, धनानि सनिता, तिग्मायुधः क्षिप्र-धन्वा, समत्सु अषाळहः, पृतनासु शत्रून् साह्वान् पवस्व [ १४०९ ]– शूरोंके समूहको पासमें रखनेवाला, अनेक वीरोंसे युक्त, सामर्थ्ययुक्त और विजयी, धन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र पासमें रखनेवाला, शीघ्र धनुष चलानेवाला, संग्राममें शत्रुओंको असह्य, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला सोम छाना जाता है। सब देव और वीर सोम पीकर लडाई पर जाते हैं और वीरताके काम करते हैं, इसलिए वीरताके काम सोम ही करता है, यह आलंकारिक वर्णन यहां किया गया है।

११ वावशानः वृषा पुरुवारः अद्भिः संदधन्वे [ १४१९ ]– देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा यह बलवान् सोम बहुतों द्वारा चाहने योग्य है और पानीके साथ मिलाया जाता है।

१२ निष्कृतं अभियन् कलशे उस्रियाभिः सं गच्छते [१४१९]– अपने संस्कार करनेके स्थान पर जानेके लिए कलशमें गायके दूधके साथ मिलकर रहता है।

१३ अघ्न्यायाः ऊधः प्रापिप्ये [ १४२० ]– गायके दुग्धाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है।

१४ सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते [ १४२० ]– उत्तम बुद्धिमान् यह सोम धाराओंसे मिलाया जाता है।

१५ गावः चमूषु मूर्धानं पयसा अभि श्रीणन्ति [ १४२० ]–गायें बर्तनोंमें इस श्रेष्ठ सोमको दूधसे ढकती हैं। सोमरसमें दूध मिलाया जाता है।

१६ परमे व्योमनि अस्मै त्रिः सप्त धेनवः सत्यां आशिरं दुदुह्रिरे [ १४२३ ]– अन्तरिक्षमें-पर्वतपर ऊंचे स्थान पर रहनेवाले इस सोमके लिए इक्कीस गायें उत्तम दूध मिलानेके लिए देती हैं।

१७ चारुणः अमृतस्य भक्षमाणः सः उभे द्यावा काव्येन वि शश्रथे [ १४२४ ]– उत्तम जलकी इच्छा करनेवाला यह सोम दोनों ही द्यावापृथिवीको अपनी स्तुतिसे परिपूर्ण करता है।

१८ तेजिष्ठाः अपः मंहना परिव्यत [ १४२४ ]– तेजस्वी पानीको अपने महत्वसे ढक देता है। पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

१९ हे सोम देव! सु वसनानि वस्त्रा अभ्यर्ष [ १४२७ ]– हे सोम देव। उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे।

२० पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि अर्ष [ १४२७ ]– स्वच्छ होनेके बाद उत्तम दूध देनेवाली गायोंको प्राप्त हो। गायके दूधमें मिल जा।

२१ नः चन्द्रा हिरण्या अभि [१४२७]– हमें चमकने वाले सोनेके सिक्के दे।

२२ रथिनः अश्वान् अभि [ १४२७ ]– रथमें जोडने योग्य घोडे दे।

१३ पूयमानः नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष [ १४२८ ] –छाने जानेके बाद हमें दिव्य धन दे।

२४ पार्थिवा विश्वा अभि [ १४२८ ]– सब पार्थिव धन दे।

२५ येन वयं द्रविणं अभि अश्नुवाम [ १४२८ ]– जिसकी सहायतासे हमें धन मिले ऐसा सामर्थ्य हमें दे।

२६ आर्षेयं नः [ १४२८ ]– ऋषियोंके पास होनेवाले धन हमें दे।

२७ यशसां यशस्तरः श्वैतः प्रियः सानौ अव्ये सं मृज्यते [ १४०१ ]– यशस्वी होनेवालोंमें प्रिय हुआ हुआ सोम बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

इस प्रकार सोमरसको छानने और उसे पीनेका वर्णन इस अध्यायमें है। इसमें प्रत्येक स्थान पर आलंकारिक वर्णन है। जैसे " सोमरस गायोंके साथ बर्तनमें जाता है " इसका अर्थ है कि सोमरस गायके दूधमें मिलाकर कलशमें रखा जाता है। ऐसे अनेक अलंकार इस अध्यायमें हैं।

## सुभाषित

१ आरे च असे श्रृण्वते अग्नये मंत्रं वोचेम [१३७९] –दूर रहकर भी हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

२ यः पूर्व्यः स्त्रीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत् [ १३८० ]– जो पूर्वसे हिंसक शत्रुओंके एकत्रित होनेपर भी दाताके घरकी रक्षा करता है।

३ शन्तमः सः अग्निः नः अमा–त्यं वेदः रक्षतु [ १३८१ ]– अत्यन्त सुख देनेवाला वह अग्नि हमारे पासके धनको सुरक्षित रखे।

४ उत अस्मान् अंहसः पातु [ १३८१ ]– और वह हमारी पापोंसे रक्षा करे।

५ वृत्रहा रणे रणे धनंजयः अग्निः उदजनि [१३८२] –शत्रुओंको मारनेवाला, प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला तथा धन जीतनेवाला अग्नि प्रकट हो गया है।

६ हे अग्ने देव ! ये तव साधवः आशवः अश्वासः अरं वहन्ति युंक्ष्व हि [ १३८३ ]– हे अग्निदेव ! जो तेरे उत्तम तथा वेगवान् घोडे हैं उन्हें अपने रथमें जोड।

७ नः अच्छ वीतये आयाहि [१३८४]– हमारे पास अन्न खाकर सोम पीनेके लिए आ।

८ प्रयांसि अभि देवान् आ वह [ १३८४ ]– अन्नोंके पास देवोंको लेकर आ।

९ हे भारत अग्ने ! उत् शोच [ १३८५ ]– हे भरण पोषण करनेवाले अग्ने ! तू जल।

१० हे अजर ! दविद्युतत् द्युमत् अजस्रेण विभाहि [ १३८५ ]– हे जरारहित ! तेजस्वी और प्रकाशमान् तू कम न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो।

११ सुन्वानाय अन्धसः तत् वचः मर्तः न वष्ट [ १३८६ ]– रस निकाले गए सोमकी स्तुति नीच मनुष्य न सुने।

१२ अराधसं श्वानं अपहत [१३८६]– विघ्न करनेवाले कुत्तेको दूर करो।

१३ हे इन्द्र ! त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः [ १३८९ ]– हे इन्द्र ! तू जन्मसे ही शत्रुरहित है।

१४ सनात् अना, अनापिः असि [ १३८९ ]– कोई दूसरा तेरा नेता नहीं और कोई सहायक भाई भी नहीं। तुझ पर नियंत्रण करनेवाला दूसरा कोई नहीं। तू अकेला ही सब कुछ करता है।

१५ युधा इत् आपित्वं इच्छसे [ १३८९ ]– जब तू भाईकी इच्छा करता है, तब शत्रुओंको मारकर उपासकोंको मित्र बनाता है।

१६ रेवन्तं सख्याय न किः विन्दसे [ १३९० ]– केवल धनवान्को अपना मित्र नहीं बनता।

१७ सुराश्वः ते पीयन्ति [१३९०]– शराब पीनेवाले नास्तिक तुझे दुःख देते हैं।

१८ यदा नदनुं कृणोषि, समूहसि, आदित् पिता इव हूयसे [ १३९० ]– जब स्तुति करनेवालोंको तू अपना मित्र बनाता है, तब तू उन्हें धन देता है, उस समय वे अपने पिताके समान तेरी स्तुति करते हैं।

१९ हे इन्द्र ! ब्रह्मयुजः केशिनः, हिरण्यये रथे युक्ताः, सहस्रं शतं हरयः सोमपीतये त्वा वहन्तु [१३९१]– हे इन्द्र ! शब्दके इशारेसे जुड जानेवाले, उत्तम अयालवाले, तेरे सोनेके रथमें जुडे हुए हजारों अथवा सैकडों घोडे सोम पीनेके लिए तुझे यज्ञमें पहुंचाते हैं। यहां ( सहस्रं शतं हरयः ) हजार अथवा सौ घोडे ये वास्तविक घोडे न होकर आलंकारिक हैं। रथके घोडे दो अथवा चार ही होते हैं। यहां हजार बताये हैं, ये किरण हैं। क्योंकि किरणें हजारों हो सकती हैं। रथके हजारों घोडे नहीं हो सकते। रथमें दो घोडोंके जोडनेका भी वर्णन कई स्थलोंपर आया है। आगेके मंत्र देखए—

२० हिरण्यये रथे मयूर-शेप्या शितिपृष्ठा हरी त्वा आ वहतां [ १३९२ ]– सोनेके रथसे मोरके पंखके समान रंगवाले तथा सफेद पीठवाले दो घोडे तुझे ढोकर ले जाते हैं।

२१ राजा ऋतेन विवावृधे [ १३९५ ]– राजा सत्यसे विशेष बढता है।

२२ द्रविणस्युः अग्निः वृत्राणि जंघनत् [ १३९६ ] – धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है।

२३ प्रजावत् ब्रह्म आ भर [ १३९८ ]– पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले अन्न अथवा ज्ञान हमें भरपूर दे।

२४ यशसां यशस्तरः [१४०१]– यशवालोंमें सबसे अधिक यशस्वी हो।

२५ शुद्धं इन्द्रं स्तवाम [१४०२]– शुद्ध इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

२६ हे इन्द्र ! शुद्धः नः आगहि [ १४०३ ]– शुद्ध होनेवाला तू हमारे पास आ।

२७ शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः [ १४०३ ]– रक्षणके शुद्ध साधनोंसे शुद्ध ऐसा तू है।

२८ शुद्धः रयिं नि धारय [१४०३]- तू शुद्ध होकर हमें धन दे।

२९ शुद्धः ममद्धि [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर आनन्द प्राप्त कर।

३० शुद्धः नः रयिं [ १४०४ ]- शुद्ध होकर तू हमें धन दे।

३१ शुद्धः दाशुषे रत्नानि [१३०४]- तू शुद्ध रहकर दाताओंको धन दे।

३२ शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है।

३३ शुद्धः वाजं सिषाससि [१४०४]- तू शुद्ध रहकर अन्न देता है।

३४ दिव्यं जनं यक्षत् [ १४०६ ]- दिव्यजनोंको पूज्य कर।

३५ जुष्टः वरेण्यः होता सप्रथाः त्वं असि [१४०७] – प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबसे श्रेष्ठ है।

३६ रत्नधाः वार्याणि दयते [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला धन देता है।

३७ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता, धनानि सनिता, तिग्मायुधः क्षिप्र-धन्वा, समत्सु अषाळ्हः, पृतनासु शत्रून् साह्वान् [१४०९]- शूरोंके समूहसे तथा अनेक वीरोंसे युक्त, सामर्थ्यसंपन्न और विजयी, धन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र रखनेवाला, धनुष शीघ्र चलानेवाला, संग्रामोंमें शत्रुओंको असह्य, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ( सोम ) है।

३८ उरु-गव्यूतिः अभयानि कृण्वन् [ १४१० ]- जिसका मार्ग विस्तीर्ण है, वह हमें निर्भय करता है।

३९ हे इन्द्र ! शवसः पतिः अनुत्तः चर्षणी-धृतिः एकः इत्, अप्रतीनि वृत्राणि पुरु हंसि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलका स्वामी, प्रजाओंका धारण पोषण करनेवाला, अकेला ही बलवान् शत्रुओंको बहुत बडी संख्यामें मारता है।

४० हे असुर इन्द्र ! प्रचेतसं त्वा भागं इव राधः ईमहे [१४१२]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे समान ज्ञानियोंके पाससे धनका भाग हम मांगते हैं।

४१ ते मही शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान शरणके योग्य है।

४२ ते सुम्ना नः प्राश्नुवन् [ १४१२ ]- तुझसे हमें उत्तम सुख मिलें।

४३ देवं अमर्त्यं यज्ञस्य सुक्रतुं यजिष्ठं त्वा ववृमहे [१४१३]- देवोंमें श्रेष्ठ अमर देव, यज्ञ उत्तम रीतिसे करनेवाले, श्रेष्ठ ऐसे तुझे हम उपास्य मानकर स्वीकार करते हैं।

४४ अपां-न-पातं सुभगं सुदीदितिं श्रेष्ठशोचिषं अग्निं [१४१४]- कर्मोंको न गिरानेवाला, उत्तम भाग्यवान्, उत्तम तेजस्वी और श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

४५ सः नः द्युम्नं यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें सुख देवे।

४६ हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, वाजेषु यं जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तू रक्षा करता है, स्पर्धामें जिसे तू उत्तम प्रेरणा देता है, उसे हमेशा अन्न प्राप्त होता है।

४७ सहन्त्य ! अस्य कयस्य पर्येता न किः, श्रवाय्यः वाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुको हरानेवाले ! इस तेरे भक्तको हरानेवाला कोई भी नहीं है, क्योंकि उसका यशस्वी बल प्रसिद्ध है।

४८ विश्वचर्षणिः सः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु [१४१७]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला वह घोडोंवाले युद्धमें विजय प्राप्त करावे तथा ज्ञानियोंके द्वारा वह प्रसन्न किया जावे।

४९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धियां हमारा रक्षण करें।

५० सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि [ १४२१ ]- एक जगह बैठकर आनन्द प्राप्त करनेके समय मित्रके समान हमारा संवर्धन करना है, यह तू जान।

५१ वयं ते सुमतौ वाजिनः भूयाम [१४२२]- हम तेरे अनुकूल उत्तम विचारोंसे युक्त होकर बलवान् हों।

५२ अभिमातये नः मा स्त [ १४२२ ]- शत्रुके हितके लिए हमारा नाश मत कर।

५३ अभिष्टिभिः चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अवतात् [ १४२२ ]- इष्ट सामर्थ्यसे युक्त संरक्षणोंसे हमारी रक्षा कर।

५४ सुम्नेषु नः आयामय [ १४२२ ]- सुख समृद्धिमें हमें बढा।

५५ अमृत्यवः अदाभ्यासः अस्य केतवः उभे जनुषी अनु सन्तु [ १४२५ ]- अमर और न दबनेवाली इसकी किरणें दोनों ही प्रकारके प्राणियोंको सुरक्षित रखती हैं।

५६ राजानं मननाः अगृभ्णत [१४२५]- राजाको स्तुतियां प्राप्त होती हैं।

५७ नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष [ १४२८ ]- हमें दिव्य धन दे।

५८ पार्थिवा विश्वा अभि अर्ष [ १४२२ ]- हमें पार्थिव धन दे।

५९ येन वयं द्रविणं अभि अश्नुवाम [ १४२२ ]- जिससे हमें धन प्राप्त हो सके ऐसा सामर्थ्य हमें दे।

६० आर्षेयं नः [ १४२२ ]- ऋषिके समान धन हमें मिले।

६१ हे मघवन्! वृत्रहत्याय यत् जायथाः तत् पृथिवीं अप्रथयः उत दिवं अस्तभ्नाः [ १४२९ ]- हे इन्द्र! तू वृत्रका वध करनेके लिए जब गया, तब तूने पृथ्वीको सुदृढ किया और द्युलोकको स्तब्ध किया।

६२ यत् जातं यत् जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि [ १४३० ] -जो हो गये और जो होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है।

६३ आमासु पक्वं पेरयः [ १४३१ ]- गायमें पके दूधको तूने रखा है।

६४ दिवि सूर्यं अरोहयः [१४३१]- द्युलोकमें सूर्यको चढाया।

६५ गिर्वणसे जुष्टं बृहत् [ १४३१ ]- स्तुत्य इन्द्रके लिए बृहत् सामका गान करो।

६६ हे इन्द्र! ते वरेण्यः सहावान् पृतनाषाट् अमर्त्यः मत्सरः गन्तु [ १४३३ ]- हे इन्द्र! तुझे यह श्रेष्ठ सामर्थ्यवान्, शत्रुओंको हरानेवाला अमर और आनन्द देनेवाला सोम प्राप्त हो।

६७ हे इन्द्र! त्वं शूरः सनिता मनुष्यः रथं चोदय [ १४३४ ]- हे इन्द्र! तू शूर और दाता है। मनुष्योंके मनोरथोंको उत्तम रीतिसे प्रेरित कर।

६८ सहावान् दस्युं अ-व्रतं ओषः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् है, इसलिए व्रतोंका पालन न करनेवाले दुष्टोंका नाश कर।



## उपमा

१ भृगवः मखं न [ १३८६ ]- भृगुओंने जिसप्रकार मखको दूर किया, उसीप्रकार (अ-राधसं श्वानं अपहत) विघ्नकारी कुत्तोंको मारो।

२ ओण्योः भुजे पुत्रः न [ १३८७ ]- माता पिताके हाथमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार ( जामिः अत्के आ अव्यत् ) सोमरस छलनीमें शुद्ध होता है।

३ जारः योषणां न [१३८७]- जिसप्रकार जार स्त्रीके पास जाता है, उसीप्रकार सोम (योनिं आसदत्) कलशमें जाता है।

४ वरः न [ १३८७ ]- जिसप्रकार पति पत्नीके पास जाता है, उसीप्रकार सोम कलशमें जाता है।

५ वेधाः न [ १३८८ ]- ज्ञानी जिसप्रकार अपने घर आता है, उसीप्रकार ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रंगका सोम कलशमें जाता है।

६ पिता इव हूयसे [ १३९० ]- जैसे पिताकी प्रार्थना करते हैं वैसे ही लोग तेरी - इन्द्रकी - प्रार्थना करते हैं।

७ अश्वं न [१३९४]- घोडेके समान ( अप्तुरं सोमं परि षिंचत ) – पानीमें मिलाये जानेवाले सोमको मिलाओ। घोडा जिसप्रकार पानीमें स्नान करता है, उसीप्रकार सोमरस पानीमें मिलता है।

८ होता पशुमन्ति सद्म इव [१३९९]- हवन करनेवाला जैसे गायोंसे युक्त घरमें जाता है, उसीप्रकार ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) सोमरस शब्द करता हुआ छलनीमें जाता है।

९ वरुणः न [ १४०८ ]- वरुणके समान ( वना वसानः ) सोम जलमें रहता है।

१० भागं इव [ १४१२ ]- पिताके पास अपने धनका हिस्सा जिस प्रकार मांगते हैं, उसीप्रकार इन्द्रसे ( राधः ईमहे ) हम धन मांगते हैं।

११ कृत्तिः इव [ १४१२ ]- बडे चोगेके समान ( ते मही शरणा ) तेरा विशाल आश्रय स्थान हमारे योग्य है।

१२ वाजी अत्यः न [ १४१८ ]- शीघ्र भागनेवाले घोडेके समान सोम ( द्रोणं ननक्षे ) बर्तनमें वेगसे जाता है।

१३ मातृभिः शिशुः न [१४१९]- मातासे जैसे पुत्र मिलकर रहता है, उसीप्रकार सोम ( अद्भिः सं दधन्वे ) पानीसे मिलकर रहता है।

१४ मर्यः योषां न [१४१९]- जिसप्रकार पुरुष स्त्रीकी ओर जाता है, उसीप्रकार सोम पानीकी तरफ जाता है।

१५ निक्तैः वसुभिः न [१४२०]- जैसे सफेद वस्त्रोंसे शरीरको ढकते हैं, उसीप्रकार ( गावः पयसा चमूषु मूर्धानं अभि श्रीणन्ति ) गायें अपने दूधसे बर्तनमें रहते-

वाले श्रेष्ठ सोमको आच्छादित करती हैं। सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

१६ जमदग्निवत् आर्षेयं नः [ १४२८ ]- जमदग्निके समान ऋषिके योग्य दान हमें दे।

१७ घर्मं सामं न [१४३१]- जिसप्रकार प्रवर्ग नामक यज्ञको प्रज्वलित करते हैं, उसीप्रकार ( सुवृक्तिभिः तपत ) उत्तम स्तुतियोंसे इन्द्रको उत्साहित करो।

१८ महः पात्रस्य इव [ १४३२ ]- महान् बर्तनके समान तू ( वृष्णः ते ) महान् बलवान् है।

१८ [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न [१४३४]- जैसे अग्नि अपनी ज्वालासे बर्तनको जला देती है, उसीप्रकार ( दस्युं अव्रतं ओषः ) हे इन्द्र! तू नियम न पालनेवाले दुष्टोंका नाश कर।

# द्वादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १३७९ | १।७४।१ | गोतमो राहूगणः | अग्निः | गायत्री |
| १३८० | १।७४।२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १३८१ | ७।१५।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १३८२ | १।७४।३ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| १३८३ | ६।१६।४३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३८४ | ६।१६।४४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३८५ | ६।१६।४५ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३८६ | ९।१०१।१३ | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | पवमानः सोमः | अनुष्टुप् |
| १३८७ | ९।१०१।१४ | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | ,, | ,, |
| १३८८ | ९।१०१।१५ | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | ,, | ,, |
| १३८९ | ८।२१।१३ | सोभरिः काण्वः | इन्द्रः | काकुभः प्रगाथः=( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ) |
| १३९० | ८।२१।१४ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १३९१ | ८।१।२४ | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | बृहती |
| १३९२ | ८।१।२५ | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| १३९३ | ८।१।२६ | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वौ | ,, | ,, |
| १३९४ | ९।१०८।७ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | पवमानः सोमः | काकुभः प्रगाथः-( विषमा ककुप् समा सतोबृहती ) |
| १३९५ | ९।१०८।८ | ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १३९६ | ६।१६।३४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः | गायत्री |
| १३९७ | ६।१६।३५ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३९८ | ६।१६।३६ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १३९९ | ९।९७।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १४०० | ९।९७।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १४०१ | ९।९७।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १४०२ | ८।९५।७ | तिरश्चीरांगिरसः | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| १४०३ | ९।९५।८ | तिरश्चीरांगिरसः | " | " |
| १४०४ | ९।९५।९ | तिरश्चीरांगिरसः | " | " |
| | | ( ४ ) | | |
| १४०५ | ५।१३।१ | सुतंभर आत्रेयः | अग्निः | गायत्री |
| १४०६ | ५।१३।३ | सुतंभर आत्रेयः | " | " |
| १४०७ | ५।१३।४ | सुतंभर आत्रेयः | " | " |
| १४०८ | ९।९०।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १४०९ | ९।९०।३ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| १४१० | ९।९०।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| १४११ | ८।१०।५ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | इन्द्रः | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १४१२ | ८।९०।६ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | " | " |
| १४१३ | ८।१९।३ | सोभरिः काण्वः | अग्निः | काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप् समा सतोबृहती ) |
| १४१४ | ८।१९।४ | सोभरिः काण्वः | " | " |
| | | ( ५ ) | | |
| १४१५ | १।२७।७ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | गायत्री |
| १४१६ | १।२७।८ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| १४१७ | १।२७।९ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| १४१८ | ९।९३।१ | नोधा गौतमः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १४१९ | ९।९३।२ | नोधा गौतमः | " | " |
| १४२० | ९।९३।३ | नोधा गौतमः | " | " |
| १४२१ | ८।३।१ | मेध्यातिथिः काण्वः | इन्द्रः | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १४२२ | ८।३।२ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| १४२३ | ९।७०।१ | रेणुर्वैश्वामित्रः | पवमानः सोमः | जगती |
| १४२४ | ९।७०।२ | रेणुर्वैश्वामित्रः | " | " |
| १४२५ | ९।७०।३ | रेणुर्वैश्वामित्रः | " | " |
| | | ( ६ ) | | |
| १४२६ | ९।९७।४३ | कुत्स आंगिरसः | " | त्रिष्टुप् |
| १४२७ | ९।९७।५० | कुत्स आंगिरसः | " | " |
| १४२८ | ९।९७।५१ | कुत्स आंगिरसः | " | " |
| १४२९ | ८।८९।५ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| १४३० | ८।८९।६ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | " | " |
| १०३१ | ८।८९।७ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | " | बृहती |
| १४३२ | १।१७५।१ | अगस्त्यो मैत्रावरुणः | " | स्कंधोग्रीवी बृहती |
| १४३३ | १।१७५।२ | अगस्त्यो मैत्रावरुणः | " | अनुष्टुप् |
| १४३४ | १।१७५।३ | अगस्त्यो मैत्रावरुणः | " | " |



# अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।



अथ षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ६-३ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ कविर्भार्गवः; २, ९, १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा; ४ सुकक्ष आंगिरसः; ५ विभ्राट् सौर्यः; ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ भर्गः प्रागाथः; १०, १७ विश्वामित्रो गाथिनः; ११ मेधातिथिः काण्वः; १२ शतं वैखानसाः; १३ यजत आत्रेयः; १४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १५ उशना काव्यः; १८ हर्यतः प्रागाथः; १९ बृहद्दिव आथर्वणः; २० गृत्समदः शौनकः ॥ १, ३, १५ पवमानः सोमः; २, ४, ६, ७, १४, १९, २० इन्द्रः; ८ सरस्वान्; ९ सरस्वती; १० सविता; ११ ब्रह्मणस्पतिः; १२ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणौ; १६-१८ अग्निः; १८ हवींषि वा; ५ सूर्यः ॥ १, ३-४, ८-१४, १६ ( २-३ ) १७, १८ गायत्री; २ ( १ ३ ) अनुष्टुप्; २ ( ४ ) बृहती; ६, ७ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १६ ( १ ) वर्धमाना; १५ १९ त्रिष्टुप्; २० ( १ ) अष्टिः; २० ( २-३ ) अतिशक्वरी, ५ जगती ॥

१४३५ पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।४९।१ )

१४३६ तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥ ( ऋ. ९।४९।२ )

१४३७ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४९।३ )

१४३८ स न ऊर्जे व्य३व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥ ( ऋ. ९।४९।४ )

१४३९ पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ १ ( ची ) ॥

[ धा० २२ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ ९।४९।५ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४३५ ] हे सोम ! तू ( दिवः वृष्टिं ) द्युलोकसे वृष्टिको ( नः सु आ पवस्व ) हमारे लिए उत्तम रीतिसे नीचे ला । ( अपां ऊर्मिं परि ) पानीकी लहरें उछलें, तथा ( अ-यक्ष्मा बृहतीः इषः ) रोगरहित बहुत सारा अन्न हमें दे ॥ १ ॥

[ १४३६ ] हे सोम ! तू ( तया धारया पवस्व ) उस धारासे यहां पवित्र हो ( यया जन्यासः गावः ) जिसकी सहायतासे दुधार गायें ( इह नः गृहं उप आगमन् ) यहां हमारे घर आयें ॥ २ ॥

[ १४३७ ] हे सोम ! ( यज्ञेषु देव-वीतमः ) यज्ञमें देवों द्वारा चाहा गया तू ( अस्मभ्यं घृतं धारया पवस्व ) हमें धारारूप-वृष्टिरूपसे पानी दे अर्थात् ( वृष्टिं आ पव ) बरसात गिरा ॥ ३ ॥

[ १४३८ ] हे सोम ! ( सोम ) वह तू ( नः ऊर्जे ) हमारे अन्नके लिए ( अव्ययं पवित्रं धारया वि धाव ) बालोंकी छलनीसे धाराके रूपमें नीचेके बर्तनमें गिर । ( देवासः हि कं शृणवन् ) देव तेरा वह शब्द सुनें ॥ ४ ॥

[ १४३९ ] ( रक्षांसि अप जंघनत् ) राक्षसोंका नाश करते हुए ( रुचः प्रत्नवत् रोचयन् ) अपने तेजको पहलेके समान ही प्रकाशित करते हुए ( पवमानः असिष्यदत् ) छाना जानेवाला सोम नीचेके कलशमें टपकता है ॥ ५ ॥

१४४० प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्‌ध्वने नरः ॥ १ ॥
( ऋ. ६।४२।१ )

१४४१ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रꣳ सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥
( ऋ. ६।४२।२ )

१४४२ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥
( ऋ. ६।४२।३ )

१४४३ अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥ ४ ॥ २ (ठ) ॥
[ धा० २३ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ६।४२।४ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१४४४ बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।४ )

१४४५ हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतꣳ सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।५ )

---

[ १४४० ] हे अध्वर्यो ! ( नरः ) यज्ञका चालक तू ( विश्वानि विदुषे ) सब जाननेवाले ( अरंगमाय जग्मये ) बहुत प्रगतिशील और यज्ञमें जानेवाले ( अ-पश्चात् अध्वने ) सबके आगे रहनेवाले ( पिपीषते अस्मै ) पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए ( प्रति भर ) सोमरस भर दे ॥ १ ॥

[ १४४१ ] हे अध्वर्यो ! ( अमत्रेभिः ऋजीषिणं ) सोमके पात्रोंसे सोमरस पीनेवाले ( सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः ) रस निकाले गए चमकनेवाले सोमरसको ( सोमपातमं ) बहुत ज्यादा पीनेवाले ( एनं इन्द्रं ) इस इन्द्रको ( आ प्रत्येतन ) पास जाकर प्रार्थना करो ॥ २ ॥

[ १४४२ ] हे अध्वर्यो ! ( सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः ) रस निकाले गए चमकनेवाले सोमरसके साथ ( यदि प्रतिभूषथ ) यदि तुम इन्द्रके पास जाओगे, तो ( मेधिरः विश्वस्य वेद ) बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानेगा, ( धृषत् ) शत्रुओंको हरायेगा और ( तं इत् एषते ) तुम्हारी कामनायें पूर्ण करेगा ॥ ३ ॥

[ १४४३ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यो ! ( अस्मा अस्मा इत् ) इस इन्द्रके लिए ही ( अन्धसः सुतं प्रभर ) अन्नरूप सोमरस भरपूर दे । वह इन्द्र ( शर्धतः समस्य जेन्यस्य ) स्पर्धा करनेवाले जीतनेके योग्य जो सब शत्रु हैं उनका ( अभिशस्तेः ) नाश करके ( कुवित् अवस्वरत् ) तुम्हारा संरक्षण करेगा ॥ ४ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १४४४ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( बभ्रवे ) भूरे रंगके ( स्व-तवसे ) अपने बलसे युक्त ( अरुणाय दिवि-स्पृशे ) अरुण रंगके और आकाशमें रहनेवाले ( सोमाय ) सोमकी ( गाथं अर्चत ) तुम स्तुति करो. ॥ १ ॥

[ १४४५ ] हे ऋत्विजो ! ( हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं ) हाथोंसे कूटनेवाले पत्थरोंसे निकाले गए ( सोमं पुनीतन ) सोमरसको तुम शुद्ध करो । ( मधौ मधु आ धावत ) मीठे सोमरसमें मीठा दूध मिलाओ ॥ २ ॥

१४४६ नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।११।६ )

१४४७ अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत ॥ ४ ॥ ( ऋ ९।११।७ )

१४४८ इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।११।८ )

१४४९ पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ३ ( यु ) ॥
[ धा० ३२ । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।११।९ )

१४५० उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।१ )

१४५१ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।२ )

१४५२ स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥ ४ ( ती ) ॥
[ धा० ९ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ ८।९३।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

---

[ १४४६ ] हे ऋत्विजो ! ( नमसा इत् उप सीदत ) नमस्कार करते हुए सोमके पास बैठो, ( दध्ना इत् अभि-श्रीणीतन ) उसमें दही मिलाओ और ( इन्द्रे इन्दुं दधातन ) इन्द्रको चमकनेवाला सोमरस दो ॥ ३ ॥

[ १४४७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अमित्र-हा विचर्षणिः ) शत्रुका नाश करनेवाला, सबोंको देखनेवाला ( देवेभ्यः अनु-कामकृत् ) देवोंको जो इष्ट होता है, वो ही कार्य करनेवाला तू ( गवे शं पवस्व ) हमारी गायोंको सुख दे ॥ ४ ॥

[ १४४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मनः चित् मनसः पति ) मनका ज्ञाता तू मनोंका स्वामी है । ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए तथा उसके ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए तू ( परिषिच्यसे ) बर्तनमें गिरता है ॥ ५ ॥

[ १४४९ ] हे ( इन्दो पवमान ) छाने जानेवाले सोम ! तू ( सुवीर्यं रयिं ) उत्तम वीर्यसे युक्त धन ( नः युजा इन्द्रेण ) हमारे सहायक इन्द्रसे ( नः रिरीहि ) हमें दिला ॥ ६ ॥

[ १४५० ] हे ( सूर्य ) प्रकाशनेवाले इन्द्र ! ( श्रुतामघं ) प्रसिद्ध धनसे युक्त ( वृषभं नर्यापसं ) बलवान् और मानवोंका हित करनेवाले ( अस्तारं अभि उदेषि ) दाताके पास तू उदय होता है ॥ १ ॥

[ १४५१ ] ( यः ) जो इन्द्र ( नव नवतिं पुरः ) शत्रुके निन्यानवे नगरोंको ( बाह्वोजसा बिभेद ) अपने बाहु-बलसे तोडता है ( च ) और ( वृत्रहा ) जिस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने ( अ-हिं ) कम न होनेवाले शत्रुका ( अवधीत् ) वध किया, वह इन्द्र हमें धन देवे ॥ २ ॥

[ १४५२ ] ( सः शिवः इन्द्रः ) वह कल्याण करनेवाला इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है, वह हमें ( अश्वा वत्, गोमत्, यवमत् ) घोडे, गाय और अन्नोंसे युक्त धन ( उरु-धारा इव ) दोहन करनेके समय बहुत सारा दूध देनेवाली गायके समान ( दोहते ) देता है ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड

*

[ ३ ]

१४५३ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१७०।१ )

१४५४ विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१७०।२ )

१४५५ इदꣳ श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥ ३ ॥ ५ ( जि ) ॥
[ धा० २७ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१७०।३ )

१४५६ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।२६ )

१४५७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ ६ ( ल ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ७।३२।२७ )

---

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १४५३ ] ( विभ्राट् ) विशेष प्रकाशनेवाला सूर्य ( यज्ञपतौ ) यज्ञ करनेवालेको ( अ-वि-ह्रुतं आयुः दधत् ) आरोग्यपूर्ण दीर्घायु देता है । ( यः वातजूतः ) जो वायुको गति देनेवाला ( त्मना अभि रक्षति ) स्वयं सबका रक्षण करता है, ( प्रजाः पिपर्ति ) प्रजाओंका अच्छी तरह पालन करता है और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारोंसे सुशोभित होता है, ऐसा वह इन्द्र ( बृहत् सोम्यं मधु पिबतु ) बहुत सोमरसरूपी मीठा पेय पिये ॥ १ ॥

[ १४५४ ] ( विभ्राट् बृहत् ) विशेष प्रकाशमान् और महान्, ( सुभृतं वाजसातमं ) उत्तम पोषण करनेवाला तथा अन्न देनेवाला, ( धर्मं दिवः धरुणे अर्पितं ) अपने धर्मसे द्युलोकको धारण करनेके लिए नियुक्त किया गया, ( सत्यं अ-मित्र-हा ) निश्चयसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, ( वृत्र-हा ) वृत्रको मारनेवाला, ( दस्यु-हन्तमं ) दुष्टोंको मारनेवाला ( असुर-हा ) राक्षसोंका विनाशक, ( सपत्न-हा ) शत्रुको मारनेवाला सूर्य ( ज्योतिः जज्ञे ) अपना प्रकाश फैलाता है ॥ २ ॥

[ १४५५ ] ( इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिः ) यह सूर्यका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक ( उत्तमं विश्वजित् ) उत्तम विश्वविजयी ( धनजित् बृहत् उच्यते ) धनोंको जीतनेवाला तथा महान् कहा जाता है, ( विश्वभ्राट् भ्राजः ) विश्वको प्रकाशित करनेवाला और स्वयं प्रकाशमय ( महि सूर्यः ) यह महान् सूर्य ( दृशे उरु सहः ) दीखनेमें महान् सामर्थ्यवान् ( अच्युतं ओजः पप्रथे ) अविनाशी तेजरूपी बलको प्रसारित करता है ॥ ३ ॥

[ १४५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः क्रतुं आभर ) हमारा यज्ञ पूर्ण कर । ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार ( नः शिक्ष ) हमें दे । हे ( पुरुहूत ) अनेकों द्वारा सहायताके लिए बुलाये गए इन्द्र ! ( यामनि ) यज्ञमें हम ( जीवाः ) मनुष्य ( ज्योतिः अशीमहि ) तेज प्राप्त करें ॥ १ ॥

[ १४५७ ] हे इन्द्र ! ( अ-ज्ञाताः ) अज्ञात ( वृजनाः अ-शिवासः दुराध्यः ) कुटिल पापी और अमंगल शत्रु ( नः मा अवक्रमुः ) हम पर आक्रमण न करें । हे ( शूर ) शूर ! ( त्वया वयं प्रवतः ) तेरे कारण सुरक्षित हुए हुए हम ( शश्वतीः अपः अति तरामसि ) बहुतसे संकटोंके प्रवाहोंसे पार हों ॥ २ ॥

१४५८ अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।६१।१७ )

१४५९ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥ ७ ( वी ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६१।१८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१४६० जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तꣳ हवामहे ॥ १ ॥ ८ ( रै ) ॥
[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ७।९६।४ )

१४६१ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १ ॥ ९ ( हौ )
[ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।६१।१० )

१४६२ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥ ( ऋ. ३।६२।१० )

१४६३ सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )

---

[ १४५८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अद्य अद्य ) आज ( श्वः श्वः ) कल ( परे च नः ) और परसों अर्थात् हमेशा हमारी ( त्रास्व ) रक्षा कर । हे ( सत्पते ) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! ( विश्वा च अहा ) सब दिन ( नः जरितॄन् ) हम स्तुति करनेवालोंकी ( दिवा नक्तं च रक्षिषः ) दिन और रात रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १४५९ ] ( [ अयं ] मघवा ) यह इन्द्र ( वीर्याय कं ) सुखसे पराक्रम करनेके लिए ( प्र-भंगी शूरः ) शत्रुओंको तोडनेवाला, शूर ( तुवी-मघः संमिश्लः ) बहुत धनवान् और सबसे मिलकर रहनेवाला है । हे ( शतक्रतो ) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( या वज्रं नि मिमिक्षतुः ) जो वज्रको धारण करती हैं, ऐसी ( ते उभा बाहू वृषणा ) तेरी वे दोनों भुजायें बहुत बलवान् हैं ॥ २ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४६० ] ( जनीयन्तः ) स्त्रीवाले ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रवाले ( सुदानवः अग्रवः ) उत्तम धन देनेवाले और आगे रहनेवाले हम ( सरस्वन्तं हवामहे ) सरस्वतीको सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १४६१ ] ( उत नः प्रियासु प्रिया ) और हमें प्रिय वस्तुमें अत्यन्त प्रिय ( सप्तस्वसा ) सात नदीरूपी बहिनें जिससे मिलती हैं, ऐसी ( सुजुष्टा सरस्वती ) अच्छी तरहसे सेवित सरस्वती नदी ( स्तोम्या भूत् ) स्तुति करनेके योग्य हो गई है ॥ १ ॥

[ १४६२ ] ( यः सविता देवः ) जो सविता देव ( नः धियः प्रचोदयात् ) हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है, उस ( देवस्य सवितुः ) सविता देवके ( तत् वरेण्यं भर्गः ) उस श्रेष्ठ तेजका ( धीमहि ) हम ध्यान करते हैं ॥१॥

[ १४६३ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) ज्ञानपते ! ( सोमानां ) सोम अर्थात् ज्ञानसे प्राप्त योग साधनके अनुभवसे ( कक्षीवन्तं ) छातीमें रहनेवाले प्राणको ( स्वरण-सु-अरणं ) उत्तम प्रकारसे आने जानेवाला ( कृणुहि ) कर तथा ( यः औशिजः ) जो प्राण वशमें आ गया है, उसे भी बलवान् कर ॥ २ ॥

१४६४ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥ १० (य)॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६६।१९ )

१४६५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥१॥ ( ऋ. ५।६८।३ )

१४६६ ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।६८।४ )

१४६७ वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥ ११ (या) ॥

[ धा० ५ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ५।६८।५ )

१४६८ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ १।६।१ )

१४६९ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।२ )

१४७० केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ १२ (य) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

---

[ १४६४ ] हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप ! ( नः आयूंषि पवसे ) हमें दीर्घायु दे । ( नः ऊर्जं ) हमें बल और ( इषं ) अन्न दे, ( दुच्छुनां आरे बाधस्व ) दुष्टोंको दूर कर ॥ ३ ॥

[ १४६५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण देव ( नः ) हमें ( पार्थिवस्य दिव्यस्य ) पृथ्वीपरके और द्युलोकके ( महः रायः शक्तं ) महान् धन देनेके लिए समर्थ हों । हे मित्रावरुण ! ( वां महि क्षत्रं ) तुम्हारा महान् क्षात्रबल ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

[ १४६६ ] ( ऋतेन ऋतं सपन्ता ) यज्ञसे यज्ञ पूर्ण करते हुए ( इषिरं दक्षं आशाते ) चाहने योग्य बलको प्राप्त करते हैं । ऐसे ( अ-द्रुहा देवौ वर्धेते ) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण अपने सामर्थ्यसे बढते हैं ॥ २ ॥

[ १४६७ ] ( वृष्टि-द्यावा ) वृष्टिके लिए जिसकी स्तुति होती है, ( रीत्यापा ) योग्य रीतिसे जिसे वस्तुयें प्राप्त होती हैं, ऐसे ( दानुमत्याः इषः पती ) दान देनेके योग्य अन्नके स्वामी वे मित्र और वरुण ( बृहन्तं गर्तं आशाते ) महान् रथपर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १४६८ ] लोग ( ब्रध्नं ) आदित्यके रूपमें रहनेवाले, ( अरुषं ) तेजस्वी अग्निके रूपवाले ( चरन्तं ) चलते हुएके समान दीखनेवाले पर ( परि तस्थुषः ) स्थिर रहनेवाले सूर्यका ( युंजंति ) उपासनाके लिए उपयोग करते हैं । उस इन्द्रकी ( रोचना दिवि रोचन्ते ) प्रकाशकी किरणें द्युलोकमें प्रकाशित होती हैं ॥ १ ॥

[ १४६९ ] ( अस्य रथे ) इस इन्द्रके रथमें ( काम्या विपक्षसा ) सुन्दर और दोनों तरफ जुडे हुए ( शोणा धृष्णू ) लाल रंगके और शत्रुओंको हरानेवाला तथा ( नृवाहसा हरी ) इन्द्रको ढोकर लेजानेवाले घोडे ( युंजन्ति ) जोडे जाते हैं ॥ २ ॥

[ १४७० ] हे ( मर्याः ) मनुष्यो ! ( अ-केतवे ) अज्ञानीको ( केतुं कृण्वन् ) ज्ञान देते हुए और ( अपेशसे पेशः ) रूप रहितोंको रूप देते हुए ( उषद्भिः समजायथाः ) उषःकालके बाद सूर्यका उदय होता है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ]

१४७१ अयꣳसोम इन्द्र तुभ्यꣳसुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वꣳह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८८।१ )

१४७२ स ईꣳरथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८८।२ )

१४७३ शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षु सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ३ ॥ १३ ( घी ) ॥
[ धा० २६ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८८।३ )

१४७४ त्वमग्ने यज्ञानाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१ )

१४७५ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।२ )

---

## [ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४७१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे ) यह सोमरस तेरे लिए निकाला जाता है, ( तुभ्यं पवते ) तेरे लिए ही छाना जाता है, ( त्वं अस्य पाहि ) तू इसका पान कर, ( त्वं ह यं चकृषे ) तूने ही इसे बनाया है, ( इन्दुं सोमं ) इस चमकनेवाले सोमको ( मदाय युज्याय ) आनन्दके लिए और सहायताके लिए ( त्वं ववृषे ) तू स्वीकार करता है ॥ १ ॥

[ १४७२ ] ( सः ईं महः ) वह इन्द्र महान् है। ( भूरि-षाट् रथः न ) बहुतसा बोझ ले जानेवाले रथके समान ( पुरूणि वसूनि सातये ) बहुत सारा धन देनेके लिए ( अयोजि ) यज्ञमें इसकी नियुक्ति की गई है, ( आत् ईं ) इसके बाद ( विश्वा नहुष्याणि जाता ) सब मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रु उत्पन्न हो गए हैं, वे ( ऊर्ध्वा ) ऊपर मुख करके ( वने स्वर्षाता नवन्त ) वनमें होनेवाले युद्धमें जावें और वहां नष्ट हो जायें ॥ २ ॥

[ १४७३ ] हे सोम ! ( शुष्मी ) तू बलवान् है। ( मारुतं शर्धः न ) मरुतोंके बलके समान बलशाली होनेके लिए ( पवस्व ) तू शुद्ध हो। ( यथा दिव्या विट् ) जिसप्रकार दिव्य प्रजायें ( अनभिशस्ता ) अनिन्दित रूपसे प्रशस्त होती हैं, उसीप्रकार ( आपः न ) पानीके समान पवित्र होकर ( मक्षु नः सुमतिः भव ) उसी समय हमारे लिए उत्तम बुद्धि देनेवाला हो। ( सहस्राप्साः ) अनेक रूपोंमें रहनेवाला तथा ( पृतनाषाट् ) शत्रुको हरानेवाला तू ( यज्ञः न ) यज्ञके समान पूजनीय है ॥ ३ ॥

[ १४७४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता ) तू सब यज्ञोंमें हवन करनेवाला है, और ( देवेभिः मानुषे जने हितः ) देवोंके द्वारा मानवी प्रजाओंमें तू स्थापित किया गया है ॥ १ ॥

[ १४७५ ] हे अग्ने ! ( सः नः अध्वरे ) वह तू हमारे यज्ञमें ( मन्द्राभिः जिह्वाभिः ) आनन्द बढानेवाली ज्वालाओंके द्वारा ( महः यज ) देवोंका यजन कर। ( देवान् आ वक्षि ) देवोंको बुलाकर ला ( यक्षि च ) और उन्हें हवि अर्पण कर ॥ २ ॥

१४७६ वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥ १४ (ह्रौ)
[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।१६।३ )

१४७७ होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।७ )

१४७८ वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२७।८ )

१४७९ धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ १५ (रा) ॥
[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ३।२७।९ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१४८० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१॥ ( ऋ. ८।७२।१३ )

१४८१ ते जानत स्वमोक्यं३ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥
( ऋ. ८।७२।१४ )

१४८२ उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ १६ (च) ॥
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ ८।७२।१५ )

---

[ १४७६ ] ( वेधः सुक्रतो देव अग्ने ) हे विधाता, उत्तम कर्म करनेवाले देव अग्ने ! तू ( यज्ञेषु ) यज्ञमें ( अध्वनः पथः अंजसा च वेत्थ ) यज्ञके पासके और दूरके मार्ग तू जानता है, इसलिए यजमानको मार्ग दिखा ॥ ३ ॥

[ १४७७ ] ( होता अमर्त्यः देवः ) हवन करनेवाला अमर देव अग्नि ( विदथानि प्रचोदयन् ) कर्मोंको प्रेरित करता हुआ ( मायया ) कुशलतासे ( पुरस्तात् एति ) आगे आता है ॥ १ ॥

[ १४७८ ] ( वाजी वाजेषु धीयते ) बलवान् अग्नि युद्धमें शत्रुका नाश करनेके लिए स्थापित किया जाता है, ( अध्वरेषु प्रणीयते ) यज्ञमें वह ले जाया जाता है, इसलिए ( विप्रः ) यह ज्ञानी अग्नि ( यज्ञस्य साधनः ) यज्ञका साधन है ॥ २ ॥

[ १४७९ ] अग्नि ( धिया चक्रे ) कर्मोंमें प्रज्वलित किया गया है, इसलिए वह ( वरेण्यः ) श्रेष्ठ है और वह ( भूतानां गर्भं आदधे ) सब प्राणियोंमें व्याप्त है । ( पितरं दक्षस्य तना ) जगत्के पालक अग्निको दक्षकी वेदीरूपी यह पुत्री धारण करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४८० ] हे अध्वर्युओ ! ( सुते ) सोमरसमें ( रोदस्योः अभिश्रियं ) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें शोभा बढानेवाले ( श्रियं आसिञ्चत ) दूधको मिलाओ । बादमें ( रसा वृषभं दधीत ) वे दूध बलवान् सोमको अपने अन्दर धारण करते हैं ॥ १ ॥

[ १४८१ ] ( ते स्वं ओक्यं ) वे गायें अपने स्थानको ( जानत ) जानती हैं, ( वत्सासः मातृभिः न ) बछडे जिसप्रकार अपनी माताओंके पास जाते हैं, उसीप्रकार वे गायें ( जामिभिः मिथः नसन्त ) अपने बान्धवोंके साथ मिलती हैं ॥ २ ॥

गायके दूधके स्थान [ घर ] सोमके बर्तन हैं, यह उन्हें मालूम है ।

[ १४८२ ] ( स्रक्वेषु बप्सतः ) ज्वालाओंसे भक्षण करनेवाले अग्निके ( नमः ) अन्नरूप गो दूधके ( धरुणं ) धारण करनेवालेको ( दिवि उप कृण्वते ) अन्तरिक्षमें स्थापित करते हैं । बादमें ( इन्द्रे अग्ना स्वः नमः ) इन्द्र और अग्निको सब दूध देते हैं ॥ ३ ॥

१४८३ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१२०।१ )

१४८४ वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१२०।२ )

१४८५ त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥ १७ (णी)॥
[ धा० २३ । उ० ५ । स्व० ४ ] ( ऋ. १०।१२०।३ )

१४८६ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्
सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुँ सैनँ
सश्चद्देवो देवँ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।२२।१ )

---

[ १४८३ ] ( तत् ज्येष्ठं इत् ) वह ज्येष्ठ ब्रह्म ही ( भुवनेषु आस ) सब भुवनोंमें व्याप्त होता है, ( यतः ) जिससे ( उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे ) उग्र और तेजस्वी बलसे युक्त सूर्य प्रकट हुआ । ( जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति ) उत्पन्न होते ही उसने उसी समय सब शत्रुओंको नष्ट किया । ( यं विश्वे ऊमाः अनुमदन्ति ) जिसे देखकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

[ १४८४ ] ( शवसा वावृधानः ) बलके कारण बढनेवाला तथा ( भूर्योजाः शत्रुः ) अनन्तशक्ति युक्त दुष्टोंका शत्रु इन्द्र ( दासाय भियसं दधाति ) शत्रुके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न करता है, ( अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि ) प्राण लेनेवाले और प्राण न लेनेवाले दोनोंका हित करता है, हे इन्द्र ! ( ते मदेषु ) तेरे आनन्दमें ( प्रभृता सं नवन्त ) बढे हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एकत्रित होते हैं ॥ २ ॥

[ १४८५ ] हे इन्द्र ! ( विश्वे अपि त्वे क्रतुं वृञ्जंति ) सब यजमान तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं, ( यत् एते ऊमाः ) जिस समय ये यज्ञ करनेवाले यजमान ( द्विः त्रिः भवन्ति ) शादी करके दो अथवा पुत्र होनेके बाद तीन होते हैं, उस समय हे इन्द्र ! ( स्वादोः स्वादीयः ) प्रियसे भी प्रिय लगनेवाले [ सन्तान ] को ( स्वादुना संसृज ) प्रिय [ लगने वाले माता पिता ] से संयुक्त कर । ( अदः मधु ) बादमें इस प्रिय सन्तानको ( मधुना सु अभि योधीः ) पौत्ररूपी मधुरतासे युक्त कर ॥ ३ ॥

[ १४८६ ] ( महिषः तुविशुष्मः ) महान् और अधिक सामर्थ्यवान् ( तृम्पत् ) तृप्त हुआ हुआ इन्द्र ( त्रिकद्रुकेषु सुतं ) तीन बर्तनमें निकाले गए ( यवाशिरं सोमं ) सत्तूके आटेसे मिश्रित सोमरसको ( विष्णुना यथावशं अपिबत् ) विष्णुके साथ इच्छानुसार पीता है । ( सः ) वह सोमरस ( महां ऊरुं ईं ) महान् विस्तृत तेजस्वी इस इन्द्रको ( महि कर्म कर्तवे ) महान् कार्य करनेके लिए ( ममाद ) आनन्दित करता है । ( सत्यः इन्दुः ) सत्यस्वरूप और चमकनेवाला ( देवः सः ) दिव्यगुण युक्त वह सोम ( सत्यं देवं ) अविनाशी तथा तेजस्वी ( एनं इन्द्रं सश्चत् ) इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१४८७ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनꣳ
सश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥ ( ऋ. २।२२।३ )

१४८८ अध त्विषीमाꣳअभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
रोदसी आपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनꣳ
सश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥ १८ ( थि ) ॥
[ धा० ९४ । उ० २ । स्व० १३ ] ( ऋ. २।२२।२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ३ ॥ षष्ठः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

[ १४८७ ] हे इन्द्र ! तू ( क्रतुना साकं जातः ) यज्ञके साथ प्रकट हुआ है, ( ओजसा साकं ववक्षिथ ) अपने सामर्थ्यसे विश्वका भार उठानेकी तू इच्छा करता है । हे ( प्रचेतन ) श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र ! ( वीर्यैः साकं वृद्धः ) अपने पराक्रमसे तू महान् हुआ है, ( मृधः सासहिः ) संग्राममें शत्रुओंको तू हराता है । ( विचर्षणिः स्तुवते ) विशेष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालोंको ( राधः काम्यं वसु दाता ) धन और इष्ट ऐश्वर्य देता है । ( सत्यः इन्दुः ) सत्य सोमरस ( देवः सः ) चमकते हुए ( सत्यं देवं ) सत्य देव ( एनं इन्द्रं सश्चत् ) इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १४८८ ] हे इन्द्र ! ( अध ) बादमें ( त्विषीमान् ) तेजस्वी तूने ( ओजसा क्रिविं युधा अभ्यभवत् ) अपने सामर्थ्यसे युद्धमें क्रिविको जीता और ( रोदसी आ पृणात् ) द्यावापृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया । ( अस्य मज्मना प्र वावृधे ) इस सोमके बलसे तू और अधिक बडा हुआ है, उस इन्द्रने ( अन्यं जठरे अधत्त ) सोमरसका एक भाग अपने पेटमें और दूसरा भाग ( ईं प्रारिच्यत ) देवोंके लिए रख दिया है । हे इन्द्र ! तू दूसरे देवोंको ( प्र चेतय ) सोम पीनेके लिए प्रेरित कर । ( सत्यः इन्दुः ) सत्य तथा ( देवः सः ) दिव्य गुणोंवाला वह सोम ( सत्यं देवं एनं इन्द्रं सश्चत् ) सत्य देव इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥



# त्रयोदश अध्याय

## इन्द्र देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ यः नव नवतिं पुरः बाह्वोजसा बिभेद । वृत्रहा अहिं अवधीत् [१४५१]- इन्द्रने अपने बाहु बलसे शत्रुके ९९ नगरोंको तोडा और इस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने अहिको मारा ।

२ समस्य जेन्यस्य शर्धतः अभिशस्तेः कुवित् अवस्वरत् [१४४३]- सब जीतने योग्य तथा स्पर्धा करनेवाले सब शत्रुओंको नष्ट करके वह इन्द्र तुम्हारा अधिक संरक्षण करेगा ।

३ शवसा वावृधानः भूर्योजाः शक्रः दासाय भियसं दधाति [ १४८४ ]- अपने बलसे बढनेवाला, अनन्त सामर्थ्यसे युक्त, दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके दिलमें भय उत्पन्न करता है ।

४ क्रतुना साकं जातः । ओजसा साकं ववक्षिथ। वीर्यैः साकं वृद्धः । मृधः सासहि [ १४८७ ]- कर्म करनेके लिए वह प्रसिद्ध है। अपने सामर्थ्यसे वह सब कार्योंका भार उठाता है । अपने पराक्रमसे वह महान् हुआ है। वह सब शत्रुओंको हराता है ।

५ अज्ञाताः वृजनाः अशिवासः दुराध्याः नः मा अवक्रमुः [ १४५७ ]- अज्ञात, कुटिल, पापी और अमंगल शत्रु हम पर हमला न करें।

६ हे शूर ! त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि [ १४५७ ]- हे शूर इन्द्र ! तेरी सहायतासे सुरक्षित हुए हुए हम बहुत संकटोंके प्रवाहसे पार हों ।

७ हे इन्द्र ! अद्य श्वः परे च नः त्रास्व [१४५८]- आज, कल और परसों अर्थात् हमेशा हमारा तू संरक्षण कर।

८ विश्वा च अहा नः दिवा नक्तं च रक्षिषः [१४५८] – सब दिन और रात्रिमें हमारा संरक्षण कर ।

९ अयं मघवा वीर्याय कं, ऋभंगी शूरः, तुविमघः संमिश्लः। हे इन्द्र शतक्रतो ! ते उभा बाहू वृषणा या वज्रं नि सिमिक्षतुः [ १४५९ ]- यह इन्द्र सुखसे पराक्रम करनेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला शूर, बहुत धनवान् और सबसे मिल मिलाकर रहनेवाला है। हे सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! वज्रको धारण करनेवाली तेरी दोनों भुजायें बलवान् हैं ।

१० स ई महः, भूरिषाट् रथः इव, पुरूणि वसूनि सातये अयोजि। आत् ईं विश्वा नहुष्याणि जाता, ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता नवन्त [ १४७२ ]- वह निःसंशय महान् इन्द्र है । बहुत सारा वजन ढोकर ले जानेवाले रथके समान बहुत सारा धन देनेके लिए उस रथमें उसने योजना की है । हे इन्द्र ! सब मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रुओंके उत्पन्न होनेपर उनका नाश वनमें होनेवाले युद्धमें हो, और मुख ऊपर करके ये नष्ट हो जाएं ।

११ त्विषीमान् ओजसा कृविं युधा अभ्यभवत् । अस्य मज्मना प्र वावृधे [ १४८८ ]- उस तेजस्वी इन्द्रने अपने सामर्थ्यसे शत्रुको युद्धमें जीत लिया है । वह अपने बलसे बहुत महान् हो गया है।

इस प्रकार इन्द्रके सामर्थ्यका वर्णन है। अब उसके विषयमें दूसरे वर्णन देखिए—

१२ सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः यदि प्रतिभूषथ, मेधिरः विश्वस्य वेद, धृषत् इत् एषते [ १४४२ ]- सोमरसके साथ यदि तुम इन्द्रके पास गए, तो वह बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सब मनोरथ जानेगा और तुम्हारी सब कामनाओंको पूर्ण करेगा।

१३ अस्मा इत् अन्धसः सुतं प्र भर [१४४३]- उस इन्द्रको सोमरस भरपूर दो ।

१४ सः शिवः इन्द्रः नः सखा, अश्वावत् गोमत् यवमत् उरु धारा इव दोहते [ १४५२ ]- वह कल्याण करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है । वह हमें बहुतसा दूध देनेवाली गायोंके समान, घोडे, गाय और धान्य बहुत देता है ।

१५ हे इन्द्र ! नः क्रतुं आ भर । यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष । हे पुरुहूत ! यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि [ १४५६ ]- हे इन्द्र ! हमारा यज्ञ पूर्ण कर । जैसे पिता अपने पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार तू हमें धन दे । हे प्रशंसनीय इन्द्र ! यज्ञमें हम मनुष्य तेजस्वी बनें ।

१६ हे इन्द्र ! अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे। तुभ्यं पवते। त्वं अस्य पाहि [ १४७१ ]- हे इन्द्र ! यह सोमरस तेरे लिए निचोडा गया है । तेरे लिए छाना जाता है। तू उसे पी।

*

१७ विचर्षणिः स्तुवते राधः काम्यं वसु दाता [ १४८७ ]- विशेष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालेको धन और चाहे हुए ऐश्वर्य देता है।

१८ अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि [ १४८४ ]- श्वासोच्छ्वास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित करनेवाला है।

१९ विश्वे त्वे क्रतुं युंजन्ति [ १४८५ ]- सब यज्ञकर्ता तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं।

२० महिषः तुविशुष्मः तृम्पत् यवाशिरं सोमं विष्णुना यथावशं अपिबत्। सः महां ऊरुं ईं महि कर्म कर्तवे ममाद [ १४८६ ]- महान् और अत्यधिक सामर्थ्यवान् तृप्त हुआ हुआ इन्द्र सत्तूसे मिले हुए सोमको विष्णुके साथ इच्छानुसार पीता है। वह सोमरस उस महान् इन्द्रको महान् कार्य करनेके लिए हर्षित करता है।

२१ अस्य रथे काम्या विपक्षसा शोणा, धृष्णू नृवाहसा हरी युंजन्ति [ १४६९ ]- इस इन्द्रके रथमें सुन्दर, दोनों तरफ जोडे जानेवाले, लाल रंगके, शत्रुओंको हरानेवाले, इन्द्रको ढोकर ले जानेवाले दो घोडे जोडे जाते हैं।

इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रके रथका वर्णन है।

## सूर्य इन्द्र

सूर्यके रूपमें इन्द्र और सूर्यका भी वर्णन इस अध्यायमें आया है—

१ हे सूर्य! श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं अस्तारं अभि उदेषि [१४५०]- हे सूर्य! प्रसिद्ध धनवान्, बलवान्, मनुष्योंका हित करनेवाले दाताके सामने तू उदय होता है।

२ विभ्राड् यज्ञपतौ अविन्हुतं आयुः दधत् [१४५३] -विशेष प्रकाश करनेवाला सूर्य यज्ञ करनेवालेको आरोग्य पूर्ण दीर्घायुष्य देता है।

३ त्मना अभिरक्षति [ १४५३ ]- वह स्वयंका संरक्षण करता है।

४ विभ्राट् बृहत् सुभृतं वाजसातमं, धर्मन् दिवः धरुणे अर्पितं, सत्यं अमित्र-हा, दस्युहन्तमं असुर-हा सपत्न-हा ज्योतिः जज्ञे [१४५४]- विशेष प्रकाशमान् और महान्, उत्तम भरणपोषण करनेवाला और अन्न देनेवाला, अपनी शक्तिसे द्युलोकको धारण करनेके लिए नियुक्त किया गया, निश्चयसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, दुष्टोंको मारनेवाला, और राक्षसोंका विनाशक, सपत्नोंको मारनेवाला सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है।

५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः, विश्वजित्, धनजित् बृहत् उच्यते। विश्वभ्राड् भ्राजः महि सूर्यः दृशे, उरु सहः अच्युतं ओजः पप्रथे [ १४५५ ]- यह श्रेष्ठ और उत्तम सूर्यका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक है। यह तेज उत्तम विश्वविजयी, धन जीतनेवाला और बहुत महान् है ऐसा कहते हैं। विश्वको प्रकाशित करनेवाला, स्वयं प्रकाशी यह महान् सूर्य दिनमें महान् सामर्थ्यवान् अविनाशी और तेजरूपी बलको प्रकाशित करता है।

६ ब्रध्नं अरुषं चरन्तं परि तस्थुषः युञ्जन्ति। रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- आदित्यरूपी तेजस्वी, चलनेके समान दिखाई देनेवाले, पर स्थिर रहनेवाले सूर्यका उपयोग साधक उपासनामें करते हैं। उसकी प्रकाश किरणें आकाशमें प्रकाशित होती हैं।

७ तत् ज्येष्ठं भुवनेषु आस, यतः उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे। जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति। यं विश्वे ऊमाः अनुमदन्ति [ १४८३ ]- वह ज्येष्ठ ब्रह्म सब भुवनोंमें व्याप्त है, जिससे बहुत तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसने उसी समय सब शत्रुओंको नष्ट किया, उसे देखकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं।

८ मर्याः! अकेतवे केतुं कृण्वन्, अपेशसे पेशः, उषद्भिः समजायथाः [ १४७० ]-हे मनुष्यो! अज्ञानियोंको ज्ञान देते हुए, रूपरहितोंको रूप देते हुए उषःकालके बाद यह सूर्य उदय होता है।

९ सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात् [ १४६२ ]- सविता देवके उस श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो सविता - सूर्य - हमारी बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा दे।

इस प्रकार सूर्यका वर्णन इस अध्यायमें है। अन्तका मंत्र गायत्री मंत्र है, और वह प्रसिद्ध होनेके कारण सबको पता है। अब अग्निका वर्णन देखें—

## अग्नि

१ हे अग्ने! नः आयूंषि ऊर्जं इषं च पवसे [१४६४] -हे अग्ने! हमें दीर्घायु बल और अन्न दे।

२ दुच्छुनां आरे बाधस्व [१४६४]- दुष्टोंको दूर कर।

३ हे अग्ने! त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता, देवेभिः मानुषे जने हितः [ १४७४ ]- हे अग्ने! तू सब यज्ञोंका होता, देवों द्वारा मनुष्योंमें स्थापित किया गया है।

४ सः नः अध्वरे मन्द्राभिः जिह्वाभिः महः यज,

देवान् आ वक्षि यक्षि च [१४७५]- वह तू हमारे यज्ञमें आनन्द बढानेके लिए ज्वालाओंसे प्रदीप्त हो, और देवोंके लिए यजन कर। देवोंको बुलाकर ला और उनके लिए यज्ञ कर।

५ वेधः सुकृतो देव अग्ने ! यज्ञेषु अध्वनः पथः अंजसा वेत्थ [ १४७६ ]- हे विधाता और उत्तम कर्म करनेवाले अग्नि देव ! तू यज्ञके पासके और दूरके मार्गोंको जानता है, इसलिए तू उत्तम मार्ग दिखा।

६ होता अमर्त्यः देवः विदथानि प्रचोदयन् मायया पुरस्तात् एति [ १४७७ ]- होता अमर देव कर्मोंकी प्रेरणा करते हुए कुशलतासे आगे जाता है।

७ वाजी वाजेषु धीयते। अध्वरेषु प्रणीयते। विप्रः यज्ञस्य साधनः [१४७८]- बलवान् अग्नि युद्धमें स्थापित किया जाता है। दोनों पक्षोंमें जब अग्निके समान द्वेष प्रज्वलित होता है, तभी युद्ध होता है। यज्ञमें अग्नि ले जाया जाता है। यह ज्ञानी अग्नि यज्ञका साधन है।

अग्निके वर्णनमें यज्ञ करना ही अग्निका मुख्य काम है। आरोग्यसाधन और दीर्घायु इस यज्ञके फल हैं। शरीरमें अग्निकी उष्णताके रहनेतक शरीररूपी यज्ञशालामें सूर्यादि देवोंके अंश रहते हैं। और उष्णताके नष्ट होते ही सब देव निकल जाते हैं, यह अनुभव सबको है। ऊपरके मंत्रोंके वर्णन मानवशरीरमें होनेवाले शतसंवत्सरीय यज्ञमें देखें। उससे मंत्रकी आलंकारिक भाषा स्पष्ट रूपसे समझमें आ जाएगी और सब मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट हो जाएगा।

## मित्र और वरुण

१ ताः नः पार्थिवस्य दिव्यस्य महः रायः शक्तं, देवेषु वां महि क्षत्रं [१४६५]- वे दो मित्र और वरुण देव पार्थिव और दिव्य ऐसे दोनों प्रकारके धन देनेमें समर्थ हैं। सब देवोंमें इनका महान् बल प्रसिद्ध है।

२ ऋतेन ऋतं सपन्ता इषिरं दक्षं आशाते, अद्रुहा देवौ वर्धेते [ १४६६ ]- यज्ञसे यज्ञ पूर्ण करते हुए चाहने योग्य बल प्राप्त करते हैं। द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण दोनों देव अपने सामर्थ्यसे बढते हैं।

३ वृष्टिद्यावा रीत्यापा दानुमत्या इषः पती, बृहन्तं गर्तं आशाते [ १४६७ ]- वृष्टिके लिए जिनकी स्तुति होती है, प्रगतिके लिए जो कर्म करते है, दान देनेकी ओर जिनकी बुद्धि जाती है ऐसे अन्नके स्वामी ये मित्र और वरुण महान् रथमें बैठते हैं।

इन मंत्रोंमें मित्र और वरुण देवता हैं। पार्थिव और दिव्य ऐश्वर्य वे देते हैं। क्षात्रकर्ममें कुशल होनेके कारण ये शत्रुओंको हटाकर दूर करते है। ये बलवान् हैं। एक काम समाप्त हुआ कि दूसरा शुरु कर देते है। आलस्यमें समय नष्ट नहीं करते। आपसमें झगडते नहीं। प्रगति करनेके सब कार्य करते हैं। ये इनके अच्छे गुण ग्रहण करने योग्य हैं।

## सरस्वती

सरस्वती देवीके सम्बन्धमें भी इस अध्यायमें वर्णन है—

१ उत नः प्रियासु प्रिया, सप्त-स्वसा सुजुष्टा सरस्वती स्तोम्या भूत् [ १४६१ ]- हमें प्रिय वस्तुओंमें प्रिय, सात बहिनों द्वारा सेवित सरस्वती स्तुतिके योग्य हो गई है।

सरस्वती विद्या और संस्कृतिकी देवी है। अपने देशकी संस्कृति सबको प्रिय होनी चाहिए। यह संस्कृति सबसे अधिक प्रिय है सब प्रशंसनीयोंमें यह सर्वाधिक प्रशंसनीय है। इसकी सात बहिनें हैं। धर्म भावना, भाषा, सभ्यता, सत्कर्म करनेकी इच्छा, शक्ति, संस्कृति और मातृभूमि ये सरस्वतीकी सात बहिनें हैं। इनकी सेवा प्रत्येकको करनी चाहिए।

२ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सरस्वन्तं हवामहे [ १४६० ]- स्त्रीवाले गृहस्थी, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, सबके आगे रहनेवाले, ऐसे हम सब सरस्वतीकी सहायताके लिए प्रार्थना करते हैं।

सब प्रकारके लोगोंको इस विद्यादेवीकी उपासना करनी चाहिए। सब प्रकारकी प्रगतिके लिए विद्याका उपयोग होता है। विद्यामें आगे रहनेवाला ही सबमें आगे रहता है।

## प्राणकी उपासना

दीर्घायुष्य प्राप्त करनेके लिए प्राणकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है—

१ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानां कक्षीवन्तं स्वरणं कृणुहि, यः औशिजः [ १४६२ ]- हे ज्ञानके स्वामी ! हे ज्ञानपते ! ( स-उमानां ) ब्रह्मविद्या ही उमा है, इस ब्रह्मविद्यासे युक्त ब्रह्मज्ञानी ही सोम है। उन ज्ञानियोंमें योग साधनके अनुभवसे जिन प्राणोंका ज्ञान होता है, उन छातीमें रहनेवाले प्राणोंको ( स्वरणं सु-अरणं ) उत्तम पूरक और रेचक-उत्तम आने जाने-वाला करो। यह प्राण अपने वशमें होगा, तो महान् सिद्धि मिलेगी।

ज्ञान प्राप्त करें, फिर प्राणोंको वशमें करें। पूरक और रेचक इनका अभ्यास करें। इस छातीमें रहनेवाला प्राण यदि वशमें हो गया तो दीर्घजीवन प्राप्त हो जाएगा। निरोगी रहा जा सकेगा। स्वास्थ्य सुख मिलेगा।

इस प्रकार इस अध्यायमें ही महत्वकी साधना बताई है। जो इसका अनुष्ठान करेगा, उसको स्वास्थ्य, आरोग्य और दीर्घजीवनका सुख प्राप्त होगा।

## सोम

*अब इस अध्यायमें सोमका वर्णन इस प्रकार है—*

१ बभ्रुः [ १४४४ ]- भूरे रंगका।

२ स्वतवाः [ १४४४ ]- अपनी शक्तिसे बढनेवाला।

३ अरुणः [ १४४४ ]- चमकनेवाला।

४ दिविस्पृक् [ १४४४ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, हिमालयकी ऊंची चोटी पर उगनेवाला।

५ मनसः पतिः [ १४४८ ]- मनका स्वामी, मनका उत्साह बढानेवाला।

६ शुष्मी [ १४७३ [- सामर्थ्यवान्, बलवान्।

७ सुमतिः [ १४७३ ]- उत्तम बुद्धि देनेवाला, मनको उत्तेजित करनेवाला।

८ दिवः वृष्टिं नः आ पवस्व, अपां ऊर्मिं परि, अयक्ष्माः बृहतीः इषः [ १४३५ ]- द्युलोकसे वृष्टि कर ताकि पानीकी लहरें उछलें और रोगरहित अन्न मिले।

९ तया धारया पवस्व, यया जन्यासः गावः इह नः गृहं उप आगमन् [१४३६] - उस धारासे छनता जा, जिसके कारण दुधारु और बछडे सहित गायें हमारे घरके पास आयें और उनका दूध सोमरसमें मिलाया जावे।

१० नः ऊर्जे अव्ययं पवित्रं धारया विधाव [१४३८] - हमारे बल बढानेके लिए भेडके बालोंकी छलनीमेंसे धार बनाकर नीचे वर्तनमें जलदी जा।

११ रक्षांसि अपजंघनत्, रुचः प्रत्नवत् रोचयन् पवमानः असिष्यदत् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर पहलेके समान तेजकी किरणोंको प्रकाशित करते हुए छनकर बर्तनमें जा।

१२ विश्वानि विदुषे अरंगमाय जग्मये अपश्चाद् अध्वने पिपीषते अस्मै प्रति भर [ १४४० ]- सबको जाननेवाले, बहुत प्रगति करनेवाले, यज्ञमें जानेवाले, आगे रहनेवाले, सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए सोमरस दो।

१३ हे सोम ! अ-मित्र-हा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामकृत् गवे शं पवस्व [ १४४७ ]- हे सोम ! तू शत्रुओंको मारनेवाला, सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला, देवोंके लिए अनुकूल कर्म करनेवाला तू गायोंके कल्याण करनेके लिए शुद्ध हो। गायका दूध सोममें मिलाया जाता है, इस कारण गायोंको आनन्द होता है।

१४ हे सोम ! इन्द्राय पातवे मदाय परिषिच्यसे [ १४४८ ]- हे सोम ! इन्द्रके पीनेके लिए और उसे आनन्द देनेके लिए तू वर्तनमें गिरता है। छाना जाता है।

१५ हे इन्दो पवमान ! सुवीर्यं रयिं नः युजा इन्द्रेण नः रिरीहि [ १४४९ ]- हे शुद्ध होनेवाले सोम ! उत्तम वीर्यसे युक्त धन हमारी सहायता करनेके लिए इन्द्रसे लेकर हमें दे।

१६ यथा दिव्या विट् अनभिशस्ता [ १४७३ ]- जिस रीतिसे दिव्य प्रजायें आनन्दित रहें ऐसा कर।

१७ नः मक्षु सुपतिः अव। सहस्राप्साः पृतनाषाड् [ १४७३ ]- हमारी बुद्धि शीघ्र ही उत्तम हो ऐसा कर। अनेक कर्म करनेवाला और शत्रुसेनाको हरानेवाला हो।

१८ सुते श्रियं आसिंचत। रसा वृषभं दधीत [१४८०]- सोमरसमें दूध मिलाओ, ताकि उस दूधसे बलवान् सोमका धारण हो।

१९ ते स्वं ओक्यं जानत, वत्सासः मातृभिः न, जामिभिः मिथः नसन्त [ १४८१ ]- वे गायें अपना घर जानें। जिसप्रकार बछडे अपनी माताओंसे मिलकर रहते हैं उसीप्रकार अपने बन्धुओंसे वे मिलकर रहें।

गायोंका घर सोम है इसका अर्थ है कि सोममें गायका दूध मिलाया जाता है। गायका दूध अपने घर जाता है अर्थात् सोममें दूध मिलाया जाता है। यह आलंकारिक वर्णन है

## सोममें दूध

१ हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन, मधौ मधु आधावत [ १४४५ ]- हाथोंसे कूटे जानेवाले पत्थरोंके द्वारा कूटकर निचोडा गया सोमरस शुद्ध करो और इस मधुर सोमरसोंमें दूध मिलाओ।

२ नमसा उपसीदत, दध्ना अभिश्रीणीत, इन्द्रे इन्दुं दधातन, [ १४४६ ]- नमस्कार करते हुए सोमके पास जा बैठो और उस सोमरसमें दही या दूध मिलाओ और वह सोमरस इन्द्रको दो।

इस प्रकार सोमको इ के लिए देनेका वर्णन है। अन्य देवोंको भी इसप्रकार सो म पीनेके लिए दिया जाता है।

------

# सुभाषित

१ दिवः वृष्टिं नः सु आ पवस्व, अयक्ष्माः बृहतीः इषः [ १४३५ ]- आकाशसे वर्षा अच्छी तरह गिरा और रोगरहित बहुत सारा अन्न हमें दे।

२ तया धारया पवस्व, यया जन्यासः गावः इह नः गृहं उपागमन् [ १४३६ ]- तू मूसलाधार बरसात गिरा, जिसके कारण दूध देनेवाली गायें यहां हमारे घर आयें।

३ देवासः कं शृणवन् [ १४३८ ]- देव आनन्दसे शब्द सुनें।

४ रक्षांसि अपजंघनत्, रुचः प्रत्नवत् रोचयन् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर, पहलेके समान अपने तेजसे तेजस्वी हो।

५ विश्वानि विदुषे, अरंगमाय जग्मये, अपश्चात् अध्वने प्रतिभर [ १४४० ]- सब जाननेवाले, बहुत प्रगति करनेवाले, सबसे आगे रहनेवालेको भरपूर अन्न दे।

६ मेधिरः विश्वस्य वेद, धृषत्, तं इत् पवते [ १४४२ ]- बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानता है, वह शत्रुओंको हराता है, और तुम्हारी सब कामनाओंको पूरा करता है।

७ समस्य जेन्यस्य शर्धतः अभिशस्तेः कुवित् अवस्वरत् [ १४४३ ]- सब जीतने योग्य और स्पर्धा करनेवालोंका नाश करके वह इन्द्र तुम्हारा निःसंशय संरक्षण करेगा।

८ अमित्रहा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामकृत् [ १४४७ ]- तू शत्रुओंका नाश करनेवाला, सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला और देवोंके अनुकूल कार्य करनेवाला है।

९ गवे शं पवस्व [ १४४७ ]- गायोंको सुख दे।

१० मनः चित् मनसः पतिः [ १४४८ ]- मनकी शक्तिको जानें और मन पर शासन करें।

११ सुवीर्यं रयिं नः रिरीहि [ १४४५ ]- उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्यसे युक्त धन हमें दे।

१२ श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं अस्तारं अभि उदेषि [ १४५० ]- प्रसिद्ध धनवानों, बलवानों तथा मनुष्योंके हित करनेवालोंके तथा दान देनेवालोंके सामने तू प्रकट होता है।

१३ यः नव नवतिं पुरः बाह्वोजसा बिभेद [ १४५१ ] - जिस इन्द्रने शत्रुओंकी निन्यानवे नगरियोंको अपने बाहुबलसे तोड डाला।

१४ वृत्र-हा अहिं अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने अहिको मार दिया।

१५ सः शिवः इन्द्रः नः सखा, अश्वावत्, गोमत् यवमत् उरुधारा इव दोहते [ १४५२ ]- वह कल्याण करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है, वह घोडे, गाय और जौ इनके साथ मिलनेवाला अन्न, बहुत दूध देनेवाली गायोंके समान, हमें देता है।

१६ विभ्राट् यज्ञपतौ अ-विन्हुतं आयुः दधात् [१४५३]- सूर्य यज्ञ करनेवालेको आरोग्यमय दीर्घायु देता है।

१७ बृहत् सोम्यं मधु पिबतु [ १४५३ ]- बहुत सोमरसके मीठे पेय वह पीवे।

१८ वातजूतः त्मना अभि रक्षति [१४५३]- वायुसे प्रेरित किए गए स्वयंकी हर तरहसे रक्षा करता है।

१९ प्रजाः पिपर्ति [१४५३]- प्रजाओंका उत्तम पोषण करता है।

२० बहुधा विराजति [ १४५३ ]- अनेक रीतियोंसे वह विशेष तेजस्वी होता है।

२१ विभ्राट् बृहत् सत्यं अमित्रहा दस्युहन्तमः असुरहा सपत्नहा, ज्योतिः जज्ञे [ १४५४ ]- विशेष तेजस्वी और विशाल, निश्चयसे शत्रुओंका नाशक, दुष्टोंको मारनेवाला, असुरोंको मारनेवाला, सपत्नों [ शत्रुओं ] को मारनेवाला तेजस्वी वीर उत्पन्न हुआ है।

२२ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः विश्वजित्, धनजित् बृहत् उच्यते [ १४५५ ]- ये तेजस्वी पदार्थोंमें उत्तम तेजस्वी, सब जगह विजय करनेवाले, धन जीतनेवाले महान् और प्रसिद्ध तेज है।

२३ विश्वभ्राट्, भ्राजः महि सूर्यः दृशे उरु सहः अच्युतं ओजः पप्रथे [१४५५]- सबको प्रकाशित करनेवाला, स्वयं प्रकाशमान यह महान् सूर्य देखनेमें बडा सामर्थ्यवान्, अविनाशी और तेजस्वी सामर्थ्यको फैलाता है।

२४ क्रतुं आ भर [ १४५६ ]- यज्ञ उत्तम रीतिसे समाप्त कर।

२५ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे अपने पुत्रोंको पिता धन देता है, उसीप्रकार तू हमें दे।

२६ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि [ १४५६ ]- यज्ञमें हम मनुष्य प्रकाश प्राप्त करें।

२७ अज्ञाताः वृजनाः अशिवासः दुराध्यः नः मा अवक्रमुः [ १४५७ ]- अज्ञात, कुटिल, पापी और अमंगल शत्रु हमपर आक्रमण न करें।

२८ हे शूर ! त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि [ १४५७ ]- हे शूर ! तेरी सहायतासे सुरक्षित हुए हुए हम बहुतसे संकटोंके प्रवाहसे पार हों।

२९ अद्य श्वः परे च नः त्रास्व [ १४५८ ]- आज, कल और परसों अर्थात् हमेशा हमारी रक्षा कर।

३० हे सत्पते ! विश्वा च अहा नः दिवा नक्तं च रक्षिषः [ १४५८ ]- हे सज्जनोंके संरक्षक ! हमेशा हमें दिन और रात्रीमें सुरक्षित कर।

३१ अयं मघवा वीर्याय कं प्रभंगी शूरः तुवी-मघः संमिश्लः [ १४५९ ]- यह धनवान् इन्द्र सुखसे पराक्रम करनेके लिए शत्रुको नष्ट करनेवाला, शूर, अत्यधिक ऐश्वर्यवान् और मिलमिलाकर रहनेवाला है।

३२ या वज्रं नि मिमिक्षतुः ते उभा बाहू वृषणा [ १४५९ ]- जो वज्रको धारण करते हैं वे तेरे दोनों बाहू बलवान् हैं।

३३ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सरस्वन्तं हवामहे [ १४६० ]- स्त्रीके साथ रहनेवाले अर्थात् विवाहित, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, आगे रहनेवाले हम विद्यादेवीको सहायताके लिए बुलाते हैं।

सरस्वान्- विद्याका उपासक, विद्वान्, ज्ञानी।

३४ सरस्वती स्तोम्या भूत् [ १४६१ ]- विद्यादेवी स्तुतिके योग्य है।

३५ सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात् [१४६२]- सविता देवके उस श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा देता है।

३६ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानां कक्षीवन्तं स्वरणं कृणुहि [१४६३]- हे ज्ञानपते ! ज्ञानसे और योगसे छातीमें रहनेवाले प्राणको अच्छी तरहसे आने और जानेवाला कर। प्राणायामका अभ्यास कर।

३७ नः आयूंषि पवसे, नः ऊर्जं इषं च [१४६४]- हमें दीर्घायुष्य दे तथा हमें बल और अन्न भी दे।

३८ दुच्छुनां आरे बाधस्व [ १४६४ ]- दुष्टोंको दूर कर।

३९ ता नः दिव्यस्य पार्थिवस्य महः रायः शक्तं, वां देवेषु आहि क्षत्रं [ १४६५ ]- वे तुम हमें द्युलोक और पृथ्वीपरके महान् ऐश्वर्योंको दो, क्योंकि तुम्हारा देवोंमें महान् बल प्रसिद्ध है।

४० ऋतेन ऋतं सपन्ता इषिरं दक्षं आशाते, अद्रुहौ देवौ वर्धेते [ १४६६ ]- सत्यसे सत्यका पालन करते हुए चाहनेके योग्य बल प्राप्त करते हैं, ये आपसमें द्रोह न करनेवाले दोनों देव बढते हैं।

४१ दानुमत्या इषस्पती बृहन्तं गर्तं आशाते [ १४६७ ]- दान देनेवाले अन्नके स्वामी महान् रथमें बैठते हैं।

४२ ध्नं अरुषं चरन्तं परि तस्थुषः युञ्जंति [१४६८] - ध्यान करनेवाले उपासक सूर्यके तेजस्वी और चलायमान् रूपका उपासनाके लिए उपयोग करते हैं।

४३ रोचना दिवि रोचन्ते [१४६८]- उसकी किरणें आकाशमें प्रकाशित होती हैं।

४४ अस्य रथे काम्या विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा हरी युंजन्ति [ १४६९ ]- इसके रथमें सुन्दर, दोनों तरफ जोडे जानेवाले, लाल रंगके, शत्रुओंको हरानेवाले तथा वीरोंको ढोकर ले जानेवाले दो घोडे जोडे जाते हैं।

४५ अकेतवे केतुं कृण्वन्, अपेशसे पेशः, उषद्भिः समजायथाः [ १४७० ]- अज्ञानीको ज्ञान देनेवाले, रूपरहितको सुन्दर रूप देनेवाले सूर्यका उषाके आनेके बाद उदय होता है।

४६ सः महः पुरूणि वसूनि सातये अयोजि [१४७२] - इस महान् इन्द्रने बहुत सारा धन देनेकी योजना बनाई है।

४७ विश्वा नहुष्याणि जाता, ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता नवन्त [ १४७२ ]- सबका विरोध करनेवाले शत्रु उत्पन्न हो गये हैं, वे ऊपर सिर करके वनमें होनेवाले युद्धमें नष्ट हों।

४८ सहस्राप्साः पृतनाषाट् [१४७३]- अनेक रूपोंसे शत्रुसेनाको हरानेवाला वह वीर है।

४९ अमर्त्यः देवः विदथानि प्रचोदयन् मायया पुरस्तात् एति [ १४७७ ]- अमर देव सब उत्तम कर्मोंको प्रोत्साहन देता हुआ कुशलतासे आगे जाता है।

५० वाजी वाजेषु धीयते [ १४७८ ]- बलवान् वीर युद्धमें जाता है।

५१ विप्रः यज्ञस्य साधनः [ १४७८ ] ज्ञानी यज्ञको सिद्ध करता है।

५२ ते स्वं ओक्यं जानत [ १४८१ ]- वे अपने घर जानते हैं।

५३ वत्सासः मातृभिः [ १४८१ ]- लडके माताके साथ जाते हैं।

५४ जामिभिः मिथः नसन्त [ १४८१ ]- अपने भाईयोंके साथ वे मिलकर रहते हैं।

५५ तत् ज्येष्ठं इत् भुवनेषु आस [ १४८३ ]- वह श्रेष्ठ ब्रह्म निश्चयसे भुवनोंमें व्याप्त रहता है।

५६ यतः उग्रः त्वेष-नृम्णः जज्ञे [१४८३]- जिससे उग्र तेजस्वी सूर्य प्रगट हुआ है।

५७ जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति [ १४८३ ]- उत्पन्न होते ही वह शत्रुओंको नष्ट करता है।

५८ यं विश्वे ऊमाः अनु मदन्ति [ १४८३ ]- जिसे देखकर सब प्राणी आनंदित होते हैं।

५९ शवसा वावृधानः भूर्योजाः शत्रुः दासाय भियसं दधाति [ १४८४ ]- सामर्थ्यसे बढनेवाला तथा अनन्त शक्तियोंसे युक्त ऐसा वह दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके दिलमें भय उत्पन्न करता है।

६० अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि [ १४८४ ]- श्वासोच्छ्वास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित करता है।

६१ ते मदेषु प्रभृता सं नवन्त [ १४८४ ]- तेरे आनन्दमें बढे हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एक जगँह इकट्ठे होते हैं।

६२ महां उरुं ईं माहि कर्म कर्तवे ममाद [१४८६]- महान्, अधिक और सामर्थ्यवान् वीरको महान् कर्म करनेके लिए उत्साहित कर।

६३ क्रतुना साकं जातः [ १४८७ ]- कर्म करनेकी शक्तिके साथ तू उत्पन्न हुआ है।

६४ ओजसा साकं ववक्षिथ [ १४८७ ]- अपने सामर्थ्यसे काम करनेकी तेरी इच्छा है।

६५ हे प्रचेतन ! वीर्यैः साकं वृद्धः [ १४८७ ]- हे उत्साही वीर ! अपने पराक्रमसे तू महान् हुआ है।

६६ मृधः सासहिः [ १४८७ ] शत्रुको हरा।

६७ विचर्षणिः स्तुवते राधः काम्यं वसु दाता [ १४८७ ]- विशेष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालेको धन और चाहे हुए ऐश्वर्यको देता है।

६८ त्विषीमान् ओजसा कृविं युधा अभि अभवत् [ १४८८ ]- तेजस्वी तूने अपने सामर्थ्यसे हिंसक शत्रुको युद्धमें जीत लिया है।

६९ रोदसी आ पृणात् [ १४८८ ]- द्यावापृथिवीको तेजसे भर दिया।

७० अस्य मज्मना प्र वावृधे [ १४८८ ]- इसके सामर्थ्यसे तू बढा।

७१ प्र चेतय [ १४८८ ]- दूसरोंको उत्तम प्रेरणा दे।

---

## उपमा

१ उरुधारा इव [ १४५२ ]- बहुतसा दूध देनेवाली गायोंके समान ( सः इन्द्रः दोहते ) वह इन्द्र धन देता है।

२ यथा पिता पुत्रेभ्यः, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! तू हमें धन दे।

३ यथा दिव्या विद् अनभिशस्ता [ १४७३ ]-जिसप्रकार दिव्य प्रजाजन आनन्दसे पवित्र रहते हैं, उसीप्रकार सोम पवित्र रहता है।

४ आपः न [ १४७३ ]- पानीके समान शुद्ध बुद्धि हमें दे।

५ यज्ञः न [ १४७३ ]- यज्ञके समान तू पूज्य है।

६ वत्सासः मातृभिः न [ १४८१ ]- जिसप्रकार बछडे माताके पास जाते हैं, उसीप्रकार अपने बान्धवोंके साथ वे सोमरस जाते हैं। सोमरस बर्तनमें गिरता है।

# त्रयोदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १४३५ | ९।४९।१ | कविर्भार्गवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १४३६ | ९।४९।२ | कविर्भार्गवः | " | " |
| १४३७ | ९।४९।३ | कविर्भार्गवः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १४३८ | ९।४९।४ | कविर्भार्गवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १४३९ | ९।४९।५ | कविर्भार्गवः | ,, | ,, |
| १४४० | ६।४२।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| १४४१ | ६।४२।२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १४४२ | ६।४२।३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १४४३ | ६।४२।४ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | बृहती |
| | | ( २ ) | | |
| १४४३ | ९।११।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १४४५ | ९।११।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १४४६ | ९।११।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १४४७ | ९।११।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १४४८ | ९।११।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १४४९ | ९।११।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | ,, | ,, |
| १४५० | ८।९३।१ | सुकक्ष आंगिरसः | इन्द्रः | ,, |
| १४५१ | ८।९३।२ | सुकक्ष आंगिरसः | ,, | ,, |
| १४५२ | ८।९३।३ | सुकक्ष आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १४५३ | १०।१७०।१ | विभ्राट् सौर्यः | सूर्यः | जगती |
| १४५४ | १०।१७०।२ | विभ्राट् सौर्यः | ,, | ,, |
| १४५५ | १०।१७०।३ | विभ्राट् सौर्यः | ,, | ,, |
| १४५६ | ७।३२।२६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | प्रगाथः-( विषमा बृहती समा सतोबृहती ) |
| १४५७ | ७।३२।२७ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १४५८ | ८।६१।१७ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १४५९ | ८।६१।१८ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १४६० | ७।९६।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | सरस्वान् | गायत्री |
| १४६१ | ६।६१।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | सरस्वती | ,, |
| १४६२ | ३।६२।१० | विश्वामित्रो गाथिनः | सविता | ,, |
| १४६३ | १।१८।१ | मेधातिथिः काण्वः | ब्रह्मणस्पतिः | ,, |
| १४६४ | ९।६६।१९ | शतं वैखानसः | अग्निः पवमानः | ,, |
| १४६५ | ५।६८।३ | यजत आत्रेयः | मित्रावरुणौ | ,, |
| १४६६ | ५।६८।४ | यजत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १४६७ | ५।६८।५ | यजत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १४६८ | १।६।१ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्र | ,, |
| १४६९ | १।६।२ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १४७० | १।६।३ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( ५ ) | | |
| १४७१ | ९।८८।१ | उशना काव्यः | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १४७२ | ९।८८।२ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| १४७३ | ९।८८।७ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| १४७४ | ६।१६।१ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः | वर्धमाना |
| १४७५ | ६।१६।२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | गायत्री |
| १४७६ | ६।१६।३ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १४७७ | ३।२७।७ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १४७८ | ३।२७।८ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १४७९ | ३।२७।९ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| | | ( ६ ) | | |
| १४८० | ८।७२।१३ | हर्यतः प्रागाथः | अग्निः, हवींषि वा | ,, |
| १४८१ | ८।७२।१४ | हर्यतः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १४८२ | ८।७२।१५ | हर्यतः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १४८३ | १०।१२०।१ | बृहद्दिव आथर्वणः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १४८४ | १०।१२०।२ | बृहद्दिव आथर्वणः | ,, | ,, |
| १४८५ | १०।१२०।३ | बृहद्दिव आथर्वणः | ,, | ,, |
| १४८६ | २।२२।१ | गृत्समदः शौनकः | ,, | अष्टिः |
| १४८७ | २।२२।३ | गृत्समदः शौनकः | ,, | अतिशक्वरी |
| १४८८ | २।२२।२ | गृत्समदः शौनकः | ,, | ,, |



# अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

[ १ ]

( १-१६ ) १, ९ प्रियमेध आंगिरसः; २ नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ; ३, ७ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः; ४ शुनःशेप आजीगर्तिः; ५ वत्सः काण्वः; ६ अग्निस्तापसः; ८ विश्वमना वैयश्वः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ सौभरिः काण्वः; १२ शतं वैखानसः; १३ वसूयव आत्रेयः; १४ गोतमो राहूगणः; १५ केतुराग्नेयः; १६ विरूप आंगिरसः ॥ १-२, ५, ८-९ इन्द्रः; ३, ७ पवमानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १२ अग्निः पवमानः ॥ १, ४-५, १२-१६ गायत्री; २, १० प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ३, ७ ऊर्ध्वा बृहती; ६ अनुष्टुप्, ८-९ उष्णिक्; ११ बृहती ॥

१४८९ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुँ सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

१४९० आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६९।५ )

१४९१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥ १ ( हा ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६९।६ )

१४९२ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रँ समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।१ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४८९ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सत्यस्य सूनुं ) सत्य यज्ञके पालक ( सत्पतिं गोपतिं ) सज्जनोंके रक्षक और गायोंके पालक इस ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( विदे यथा गिरा ) जिसप्रकार तुम जानते हो, उसीप्रकार स्तुतिसे ( अभि प्र अर्च ) उत्तम स्तुति करो ॥ १ ॥

[ १४९० ] ( हरयः ) इन्द्रके घोडे ( अरुषीः ) चमकनेवाले ( अधि बर्हिषि ) आसन पर उसे ( आ ससृज्रिरे ) लावें। ( यत्र अभि सन्नवामहे ) जिस स्थानपर बैठे हुए इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९१ ] ( यत् ) जब इन्द्र ( उपह्वरे ) पास ही ( मधु सीं विदत् ) मीठा रस पीता है तब ( गावः ) गायें ( वज्रिणे इन्द्राय ) वज्रधारी इन्द्रके लिए ( मधु आशिरं दुदुह्रे ) मीठा दूध देती हैं ॥ ३ ॥

[ १४९२ ] हे ऋत्विजो ! ( विश्वासु समत्सु ) सब युद्धोंमें ( हव्यं इन्द्रं ) सहायताके लिए बुलाये जाने योग्य इन्द्रको लक्ष्य करके गाये गए ( नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत ) हमारे स्तोत्र तथा यज्ञ उसकी शोभा बढाते हैं। ( वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम ) हे वृत्रको मारनेवाले, उत्तम डोरीसे युक्त धनुषवाले तथा प्रशंसनीय इन्द्र ! हमें इच्छित धन दे ॥ १ ॥

१४९३ त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः　　॥ २ ॥ २ ( या ) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९०।२ )

१४९४ प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानꣳ समस्वरन्　　॥ १ ॥　( ऋ. ९।११०।८ )

१४९५ आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारꣳ सविता व्यूर्णुते　　॥ २ ॥　( ऋ ९।११०।६ )

१४९६ अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि　　॥ ३ ॥ ३ ( खू ) ॥
[ धा० १६ । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।११०।९ )

१४९७ इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः　॥ १ ॥
( ऋ. १।२७।४ )

१४९८ विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२॥ ( ऋ. १।२७।६ )

---

[ १४९३ ] हे इन्द्र ! ( प्रथमः त्वं राधसां दाता असि ) सबमें प्रथम तू धनका दाता है, ( ईशानकृत् सत्यः असि ) ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला तू सत्य है, ( तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः ) बहुत तेजस्वी बलके पुत्रके समान तुझसे ( युज्या वृणीमहे ) धनकी प्रार्थना हम करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९४ ] ( यत् प्रत्नं ) जो पहलेसे मिलता आ रहा है, वह ( पीयूषं उक्थ्यं ) अमृत प्रशंसनीय है, वह ( पूर्व्यं ) पहलेसे मिलनेवाला अमृत ( महः गाहात् दिवः ) महान् और अगाध द्युलोकसे ( आ निरधुक्षत ) निकाला गया है । उसके बाद ( इन्द्रं अभि ) इन्द्रके आगे ( जायमानं ) उत्पन्न हुए हुए सोमकी ( समस्वरन् ) यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४९५ ] ( आत् ) बादमें ( पश्यमानासः दिव्याः वसुरुचः ) इसको देखनेवाले दिव्य वसुरुच, जबतक ( दिवः सविता ) द्युलोकसे सूर्य ( वारं न व्यूर्णुते ) सबको ढकनेवाले अन्धकारको दूर नहीं करता, तबतक ( आप्यं ईं अभ्यनूषत ) भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते है ॥ २ ॥

[ १४९६ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( अध ) बादमें ( यत् इमे रोदसी ) जब इस द्यु और पृथिवी ( इमा विश्वा भुवना च ) और इन सभी प्राणियोंमें ( मज्मना यूथे निष्ठा वृषभः न ) अपने बलसे गायोंके झुण्डके बीचमें रहनेवाले बैलके समान ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ ३ ॥

[ १४९७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अस्माकं ) तू हमारे द्वारा ( इमं ऊ सु ) बोले जानेवाले इन ( सनिं ) हवन युक्त ( नव्यांसं गायत्रं ) नवीन स्तुतिके मंत्रोंको ( देवेषु प्रवोचः ) देवोंके पास जाकर उन्हें बता ॥ १ ॥

[ १४९८ ] हे ( चित्रभानो ) विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! तू ( विभक्ता असि ) धन देनेवाला है। ( सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ ) जिसप्रकार नदीके पास पानीकी लहरें आती हैं उसीप्रकार ( दाशुषे सद्यः क्षरसि ) दाताको उसी समय कर्मोंका फल तू देता है ॥ २ ॥

१४९९ आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ ४ ( टा ) ॥
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।२७।५ )

१५०० अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहꣳसूर्य इवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )

१५०१ अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२॥ ( ऋ. ८।६।११ )

१५०२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ ( थु ) ॥
[ धा० १४ । उ० २ । स्व० ५ ] ( ऋ ८।६।१२ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५०३ अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत । ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

१५०४ प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥ २ ॥

१५०५ त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ६ ( डि ) ॥
[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१४१।६ )

[ १४९९ ] हे अग्ने ! ( नः ) हमें ( परमेषु वाजेषु ) श्रेष्ठ भोगोंमें ( आ भज ) पहुंचा, तथा ( मध्यमेषु आ ) मध्यम भोगोंमें हमें पहुंचा और ( अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ) कनिष्ठ धन भी हमें दे ॥ ३ ॥

[ १५०० ] ( पितुः ऋतस्य मेधां ) पालक तथा अमर इन्द्रकी अनुकूल बुद्धिको ( अहं इत् परि जग्रह ) मैंने प्राप्त किया है, इस कारण ( अहं सूर्यः इव अजनि ) मैं सूर्यके समान हो गया हूँ ॥ १ ॥

[ १५०१ ] ( कण्ववत् अहं ) कण्वके समान ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन वाणीसे ( गिरः शुम्भामि ) स्तोत्र कहकर मैं इन्द्रको सुशोभित करता हूँ, ( येन इन्द्रः शुष्मं दधे इत् ) जिसकी सहायतासे इन्द्र बलको धारण करता है ॥२॥

[ १५०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ये त्वां न तुष्टुवुः ) जिन्होंने तेरी स्तुति नहीं की, तथा ( ये ऋषयः च तुष्टुवुः ) जिन ऋषियोंने स्तुति की, उनमेंसे ( मम इत् ) मेरे स्तोत्रोंसे ही ( सुष्टुतः वर्धस्व ) उत्तमतासे प्रशंसित होनेके कारण संवर्धित हो ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५०३ ] हे ( सहस्कृत अग्ने ) बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्नियोंके साथ - साथ तू भी ( ब्रह्म जोषि ) हमारे स्तोत्र सुन। ( ये देवत्रा ) जो अग्नियां देवोंमें है, और ( ये आयुषु ) जो मनुष्योंमें हैं, ( तेभिः नः गिरः महय ) उनके द्वारा हमारी स्तुतियोंके महत्वको बढा ॥ १ ॥

[ १५०४ ] ( यस्य वाजिनः ) जिस बलवान् अग्निमें हवन करनेवाले बहुत है, ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब दूसरी अग्नियोंके साथ ( वाजैः परीवृतः ) हविष्यान्नसे घिरा हुआ ( सम्यक् अस्मत् प्र आ ) उत्तम रीतिसे हमारे पास आवे, तथा ( सः तनये तोके ) वह हमारे पुत्र, पौत्रोंकी तरफ भी जावे ॥ २ ॥

[ १५०५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अग्निभिः ) तू अन्य अग्नियोंके साथ ( नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ) हमारे स्तोत्र और यज्ञ बढा। ( त्वं नः ) तू हमें ( रायः दानाय ) धन देनेके लिए ( देवतातये ) देवोंको ( चोदय ) प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१५०६ त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११०।७ )

१५०७ अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११०।५ )

१५०८ अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ७ (ले) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।११०।४ )

१५०९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥
( ऋ. ८।२४।१३ )

१५१० उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥
( ऋ. ८।२४।१४ )

१५११ न ह्यं३ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् । न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥ ८ (चा)॥
[ धा० १७ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।२४।१५ )

---

[ १५०६ ] ( सोम ) हे सोम ! ( प्रथमाः वृक्त-बर्हिषः ) सबोंसे प्रथम आसन फैलानेवाले यजमान ( महे वाजाय श्रवसे ) विशेष बल और अन्नके लिए ( त्वे धियं दधुः ) तेरे विषयमें उत्तम विचार रखते हैं । ( सः त्वं ) वह तू, ( वीर ) हे वीर सोम ! ( नः वीर्याय चोदय ) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ १ ॥

[ १५०७ ] हे सोम ! ( श्रवसा ) अन्नसे युक्त होकर ( अभि-अभि ततर्दिथ ) तू छलनीसे नीचे गिरता है, ( न ) जिसप्रकार ( जनपानं ) मनुष्योंके पीनेके लिए ( गभस्त्योः शर्याभिः ) हाथोंकी अंगुलियोंसे ( कं चित् अ-क्षितं उत्सं ) किसी न चूनेवाले हौजको ( भरमाणः ) पानीसे भरते हैं, उसीप्रकार तू कलशमें भरता है ॥ २ ॥

[ १५०८ ] हे ( अमृत ) अमृतरूपी सोम ! तूने ( ऋतस्य चारुणः अमृतस्य ) सत्य और मंगलकारक पानीको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( कं मर्त्याय अजीजनः ) सूर्यको मनुष्यके लिए उत्पन्न किया, ( सनिष्यदत् ) देवोंकी सेवा की । ( वाजं अच्छ ) तू युद्धके लिए सीधे ही ( सदा असरः ) हमेशा जाता है ॥ ३ ॥

[ १५०९ ] ( इन्दुं ) सोमरस ( इन्द्राय आ सिंचत ) इन्द्रको दो । वह इन्द्र ( सोम्यं मधु पिबाति ) सोमका मीठा रस पीता है और ( महित्वना राधांसि प्रचोदयते ) अपने महत्वसे धनोंको प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[ १५१० ] ( हरीणां पतिं ) घोडोंके स्वामी और ( राधः पृञ्चन्तं ) भक्तोंको धन देनेवाले इन्द्रकी ( उप अब्रवं ) मैं स्तुति करता हूँ । ( अश्व्यस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि ) अश्व ऋषि स्तुति करता है, उस स्तुतिको हे इन्द्र ! तू अवश्य सुन ॥ २ ॥

[ १५११ ] हे इन्द्र ! ( त्वत् पुरा न जज्ञे ) तुझसे पहले तेरे समान कोई भी नहीं हुआ, हे ( अंग ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( वीरतरः न हि ) तुझसे बढकर वीर भी कोई दूसरा नहीं हुआ, ( राया नकि ) धन देनेवाला भी कोई दूसरा नहीं हुआ ( एवथा न ) युद्धमें शत्रुको कुचलनेवाला भी दूसरा कोई नहीं हुआ तथा ( भन्दना न ) स्तुतिके लायक भी दूसरा कोई नहीं हुआ ॥ ३ ॥

१५१२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥ ९ ( व ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।६९।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५१३ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।११ )

१५१४ तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ २ ॥ १० ( लि ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३. ] ( ऋ. ७।१६।१२ )

१५१५ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०३।१ )

१५१६ यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०३।३ )

---

[ १५१२ ] हे यजमानो ! ( वः ) तुम्हारे लिए ( ओदतीनां नदं ) उषाओंको उत्पन्न करनेवाले आदित्यरूपी इन्द्रको हम बुलाते हैं। ( योयुवतीनां नदं ) चन्द्र किरणोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रको तुम्हारे हितके लिए बुलाते हैं, ( अघ्न्यानां पतिं वः ) गायोंके पालन करनेवाले इन्द्रको हम तुम्हारे लिए बुलाते हैं, ( धेनूनां इषुध्यसि ) हे यजमान ! तू गायके दूधका अन्नके रूपमें उपयोग करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५१३ ] ( द्रविणोदाः देवः ) धन देनेवाला अग्निदेव ( वः पूर्णां आसिचं विविष्टु ) तुम्हारी घीसे भरी हुई चम्मचोंकी इच्छा करे । और तुम ( उत् सिंचध्वं वा ) सोमके बर्तन भरो, ( पृणध्वं वा ) बर्तनोंको हविसे पूरी तरह भरो, ( आत् इत् देवः वः ओहते ) बादमें अग्नि देव तुम्हारा पोषण करेंगे ॥ १ ॥

[ १५१४ ] ( देवाः ) देवोंने ( प्रचेतसं ) श्रेष्ठ बुद्धिमान् ( अध्वरस्य वह्निं होतारं तं ) अहिंसापूर्ण यज्ञके कर्ता, हविको ढोनेवाले और हवन करनेवाले उस अग्निको ( अकृण्वत ) अपना सहायक बनाया है, वह ( अग्निः ) अग्नि ( विधते दाशुषे जनाय ) यज्ञ करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्यको ( सु-वीर्यं रत्नं दधाति ) उत्तम वीरता बढानेवाले धन देता है ॥ २ ॥

[ १५१५ ] ( यस्मिन् व्रतानि आदधुः ) जहां जिस अग्निमें यजमान यज्ञकर्म करते हैं, वहां ( गातुवित्तमः अदर्शि ) मार्गदर्शकोंमें सर्व श्रेष्ठ यह अग्नि उत्पन्न होता है। ( सुजातं आर्यस्य वर्धनं ) उत्तम रीतिसे प्रदीप्त हुए हुए और आर्योंको बढानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः उपो नक्षन्तु ) हमारी स्तुतियां प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५१६ ] ( यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः ) जिस समय कर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको ( कृष्टयः रेजन्ते ) शत्रुके मनुष्य कंपानेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! ( सहस्रसां अग्निं ) हजारों प्रकारके धन देनेवाले अग्निको ( मेधसातौ ) यज्ञमें ( धीभिः त्मना नमस्यत ) बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रणाम करो ॥ २ ॥

१५१७ प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ३ ॥ ११ ( हा ) ॥
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ) ऋ. ८।१०३।२ )

१५१८ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।६६।१९ )

१५१९ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥२॥ ( ऋ. ९।६६।२० )

१५२० अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥ १२ ( फ ) ॥
[ धा० १० । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६६।२१ )

१५२१ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥ ( ऋ ५।२६।१ )

१५२२ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥२॥ ( ऋ. ५।२६।२ )

१५२३ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तँ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥ १३ ( टौ ) ॥
[ धा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ५।२६।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

---

[ १५१७ ] ( दैवोदासः अग्निः देवः ) द्युलोकमें रहनेवाला अग्निदेव ( इन्द्रः न ) इन्द्रके समान ( मज्मना ) बलपूर्वक ( मातरं पृथिवीं अनु ) मातृभूमि पर ( प्र वि वावृते ) अनेक प्रकारके कार्य करता है, और ( नाकस्य शर्मणि तस्थौ ) अन्तरिक्षके आश्रयसे रहता है ॥ ३ ॥

[ १५१८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः आयूंषि पवसे ) हमें लम्बी आयु प्रदान कर। ( नः ऊर्जं इषं च आ सुव ) हमें बल और अन्न दे। ( दुच्छुनां ) दुष्टोंको ( आरे बाधस्व ) दूर करके उन्हें पीडित कर ॥ १ ॥

[ १५१९ ] ( पांचजन्यः ऋषिः ) पंचजनोंका हित करनेवाला और सब देखनेवाला ( पवमानः अग्निः ) शुद्ध अग्नि ( पुरोहितः ) आगे स्थापित किया गया है। ( तं महागयं ईमहे ) उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाले अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५२० ] हे अग्ने ! तू ( स्वपाः ) उत्तम कर्म करनेवाला है, ( अस्मे वर्चः सुवीर्यं पवस्व ) हमें तेज तथा पराक्रम करनेकी शक्ति दे और ( मयि रयिं पोषं दधत् ) मुझे धन और पोषण दे ॥ ३ ॥

[ १५२१ ] ( पावक अग्ने देव ) हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव ! ( शोचिषा मन्द्रया जिह्वया ) अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली ज्वालासे ( देवान् आ वक्षि यक्षि च ) देवोंको बुला और उनके लिए यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १५२२ ] हे ( घृत-स्नो चित्र-भानो ) घीसे उत्पन्न होनेवाले तथा विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! ( स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे ) सबको देखनेवाले तेरी हम प्रार्थना करते हैं। वह प्रार्थना यह है कि ( वीतये देवान् आ वह ) हवि भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला ॥ २ ॥

[ १५२३ ] हे ( कवे अग्ने ) ज्ञानी अग्ने ! ( वीति-होत्रं द्युमन्तं ) हवन पर प्रेम करनेवाले, तेजस्वी तथा ( बृहन्तं त्वा ) महान् तुझे ( अध्वरे समिधीमहि ) यज्ञमें हम प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१५२४ अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ११७९१७ )

१५२५ आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ११७९१८ )

१५२६ आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ १४ ( वौ ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ११७९१९ )

१५२७ अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥

( ऋ. १०११५६११ )

१५२८ यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥ ( ऋ. १०११५६१२ )

१५२९ आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्ग्धि खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥

( ऋ १०११५६१३ )

१५३० अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०११५६१४ )

१५३१ अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥ १५ ( था ) ॥

[ धा० १९ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १०११५६१५ )

---

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५२४ ] हे ( विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने ) सब यज्ञोंमें वन्दनीय अग्ने ! ( गायत्रस्य प्रभर्मणि ) गायत्री छन्दवाले सामगानोंके शुरू होनेपर ( ऊतिभिः नः अव ) संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १५२५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( सत्रा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ ( विश्वासु पृत्सु दुष्टरं ) सब युद्धोंमें दुस्तर ( रयिं नः आभर ) धन हमें दे ॥ २ ॥

[ १५२६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः जीवसे ) हमारे दीर्घजीवनके लिए ( सु-चेतुना ) उत्तम ज्ञानसे युक्त ( विश्व-आयु-पोषसं ) सब आयु तक पोषण करनेवाले ( मार्डीकं रयिं ) सुखदायक धन ( नः धेहि ) हमें दे ॥ ३ ॥

[ १५२७ ] ( आजिषु आशुं सप्तिं इव ) जिसप्रकार युद्धमें शीघ्र चलनेवाले घोडेको प्रेरित करते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः ) हमारी बुद्धियां ( अग्निं हिन्वन्तु ) अग्निको प्रेरित करें । ( तेन धनं धनं जेष्म ) उससे हम प्रत्येक युद्ध जीतें ॥ १ ॥

[ १५२८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यया सेनया ) जिस सेनासे तथा ( तव ऊत्या ) जिस तेरे संरक्षणसे ( गाः आकरामहै ) गायें हमें मिलें ( तां ) उस संरक्षणकी शक्तिको ( नः मघत्तये हिन्व ) हमारे धनकी प्राप्तिके लिए प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ १५२९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( स्थूरं पृथुं ) बहुत महान् तथा ( गोमन्तं अश्विनं रयिं ) गाय और घोडेसे युक्त धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे । ( खं अंग्धि ) आकाशमें अपने तेज फैला और ( पविं वर्तय ) शत्रुके शस्त्र हमसे दूर कर ॥ ३ ॥

[ १५३० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जनेभ्यः ज्योतिः दधत् ) लोगोंके लिए प्रकाश करते हुए ( अजरं नक्षत्रं सूर्यं दिवि ) जरारहित और निरन्तर गतिमान् सूर्यको द्युलोकमें ( आरोहयः ) तू चढा ॥ ४ ॥

[ १५३१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः ) तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला, प्रिय और श्रेष्ठ ( असि ) है, ( उप-स्थ सत् ) यज्ञशालामें रहनेवाला तू ( स्तोत्रे वयः दधत् ) स्तुति करनेवालेको अन्न देते हुए ( बोध ) उसकी स्तुति जान ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
१५३२ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १ ॥
( ऋ. ८।४४।१६ )

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
१५३३ ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।१८ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
१५३४ उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीꣳष्यर्चयः ॥ ३ ॥ १६ (ली) ॥
[ धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१७ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

[ १५३२ ] ( मूर्धा ) सबसे श्रेष्ठ ( दिवः ककुत् ) द्युलोकमें ऊंचे स्थान पर रहनेवाला ( पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः ) पृथ्वीका पालक यह अग्नि ( अपां रेतांसि जिन्वति ) जलोंका सार तत्त्व अपनेमें रखता है ॥ १ ॥

[ १५३३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( स्वः पतिः ) स्वर्गका स्वामी तू ( वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे ) स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है । ( तव शर्मणि ) तेरे द्वारा दिए गए सुखमें रहकर ( स्तोता स्याम् ) मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊं ॥ २ ॥

[ १५३४ ] हे अग्ने ! तेरी ( शुचयः शुक्राः ) शुद्ध, स्वच्छ और ( भ्राजन्तः अर्चयः ) देदीप्यमान ज्वालायें ( तव ज्योतींषि ) तेरे तेजोंको ( उदीरते ) प्रेरणा देती हैं ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

# चतुर्दश अध्याय

इस चौदहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है —

## इन्द्र

१ सत्यस्य सूनुं सत्पतिं गोपतिं इन्द्रं, यथा विदे, गिरा अभि प्र अर्च [ १४८९ ]– सत्यके प्रचारक, सत्यके पालक और गायोंके पालक इन्द्रकी अपने ज्ञानके अनुसार स्तुति करो ।

२ विश्वासु समत्सु हव्यं नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत [ १४९२ ]– सब युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाने योग्य इन्द्रकी हमारे स्तोत्र शोभा बढाते हैं । इन्द्र ऐसा शूरवीर है कि उसे सब प्रकारके युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए लोग बुलाते हैं ।

३ वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम [१४९२]– हे शत्रुको मारनेवाले और धनुष्यकी उत्तम डोरीवाले इन्द्र ! हमें इच्छित धन दे ।

४ त्वत्पुरा न जज्ञे । वीरतरः न कि । राया न कि । एवथा न । भन्दना न [१५११]– तुझसे पहले तेरे समान कोई नहीं हुआ । तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ वीर कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ । धनसे भी तुझसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई नहीं है । युद्धमें शत्रुओंको कुचलनेवाला भी तेरे समान दूसरा कोई नहीं है । इसलिए तेरे समान प्रशंसनीय भी कोई नहीं है ।

५ अघ्न्यानां पतिं वः [ १५१२ ]- अवध्य गायोंके पालन करनेवालेको तुम्हारे लिए मैं बुलाता हूं।

६ त्वं प्रथमः राधसां दाता असि, ईशानकृत् सत्यः असि, तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः युज्या वृणीमहे [ १४९३ ]- तू सबोंसे प्रथम धन देनेवाला है। तू हमें निश्चयसे ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला है। बहुत तेजस्वी बलके लिए प्रसिद्ध तुझसे हम धन पानेकी इच्छा करते हैं।

७ पितुः सत्यस्य मेधां अहं परि जग्रह, अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- सत्यके पालक, सबके पिता और पूज्य इन्द्रकी बुद्धिको मैंने अपने अनुकूल बना लिया है। इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूं।

८ हे इन्द्र ! ये त्वां न तुष्टुवुः, ये च तुष्टुवुः, मम इत् सुष्टुतः वर्धस्व [ १५०२ ]- हे इन्द्र जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो तेरी स्तुति करते हैं, उनमें मेरी ही स्तुतिसे तू अच्छी तरह बढ।

९ हरीणां पतिं, राधः पृश्चतं, उप अब्रवं, अश्व्यस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि [ १५१० ]- घोडोंके स्वामी और धन देनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं। अश्वऋषिकी इस स्तुतिको तू सुन।

१० हरयः अरुषीः अधि बर्हिषि आ सस्रुज्रिरे [१४९०]- इन्द्रके घोडे चमकनेवाले आसन पर उसे लावें। इन्द्र यज्ञशालामें आकर बैठे।

११ गावः वज्रिणे इन्द्राय मधु आशिरं दुदुह्रे, उपह्वरे सीं मधु विदत् [१४९१]- गायें वज्रधारी इन्द्रके लिए मीठा दूध देती हैं। वह इन्द्र पास ही बैठकर मधुर सोमरस पीता है। सोमरसमें गायका दूध मिलाकर इन्द्र पीता है।

१२ इन्द्राय इन्दुं आसिंचत। सोऽयं मधु पिबाति। महित्वना राधांसि प्रचोदयते [१५०९]- इन्द्रको सोमरस दो। इन्द्र मीठा सोमरस पीता है, और अपने महत्वसे वह धन देता है।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है। इसमें इन्द्रकी शूरता, वीरता, उदारता, धनके दान करनेकी प्रवृत्ति और सोमरस पीनेकी प्रवृत्ति दिखाई गई है। इन्द्रके घोडोंका भी यहां वर्णन है।

## अग्नि

१ त्वं अस्माकं नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः [ १४९७ ]- हे अग्ने ! तू हमारे अपूर्व गायत्री मंत्रके स्तोत्र देवोंके पास जाकर कह।

२ हे चित्रभानो ! विभक्ता असि, दाशुषे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- हे विलक्षण प्रकाशमान् अग्ने ! तू धन देनेवाला है। दाताको उसके कर्मका फल तत्काल तू देता है।

३ नः परमेषु वाजेषु, मध्यमेषु आ भज। अन्तमस्य वस्वः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें श्रेष्ठ भोगोंमें और मध्यम भोगोंमें स्थापित कर। तथा निकृष्ट धन भी दे।

४ सहस्कृत अग्ने। ब्रह्म जुषस्व, ये देवत्रा, ये आयुषु, तेभिः नः गिरः महय [ १५०३ ]- हे बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ये स्तोत्र सुन, जो देवोंमें और जो मनुष्योंमें देव हैं, उनकी सहायतासे हमारी स्तुतिके महत्वको बढा।

५ अग्ने ! त्वं अग्निभिः नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय। त्वं नः रायः दानाय देवतातये चोदय [१५०५]- हे अग्ने ! तू अन्य अग्नियोंकी सहायतासे हमारा ज्ञान और यज्ञकर्म बढा। तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर। यज्ञमें अनेक अग्नियां रहती हैं, वे यज्ञका अनुष्ठान बढाती हैं।

६ देवाः प्रचेतसं तं अध्वरस्य वन्हिं होतारं अकृण्वत। विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [१५१४]- देवोंने ज्ञानी, हिंसारहित यज्ञके कर्ता और हविको पहुंचानेवाले अग्निको उत्पन्न किया। यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्यको उत्तम वीरता बढानेवाले धन वह देता है।

७ यस्मिन् व्रतानि आदधुः गातुवित्तमः अदर्शि, सु-जातं आर्यस्य वर्धनं अग्निं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- जिस अग्निमें यजमान व्रत करते हैं, वहां सन्मार्ग दिखानेवाला अग्नि प्रकट होता है। उत्तम रीतिसे प्रकट हुए हुए और आर्योंका संवर्धन करनेवाले अग्निको हमारी स्तुति प्राप्त हो।

८ यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वनः कृष्टयः रेजन्ते सहस्रसां मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत [ १५१६ ] - जिस समय कर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको शत्रुके मनुष्य कंपानेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! हजारों प्रकारके धन देनेवाले अग्निको यज्ञमें बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रणाम करो। वह तुम्हारा भय दूर करेगा।

९ दैवोदासो अग्निः, इन्द्रः न, मज्मना मातरं पृथिवीं अनु प्र विवावृते [१५१७]- द्युलोकमें रहनेवाला अग्नि इन्द्रके समान बलपूर्वक मातृभूमि पर अनेक प्रकारकी प्रवृत्ति करता है। अग्निकी सहायतासे अनेक यज्ञ किए जाते हैं।

१० हे अग्ने ! नः आयूंषि, नः ऊर्जं इषं च पवसे। दुच्छुनां आरे बाधस्व [१५१८]- हे अग्ने ! हमें आयुष्य बल और अन्न दे। दुष्टोंको दूर कर।

११ पांचजन्यः ऋषिः पवमानः अग्निः पुरोहितः। तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- पंचजनोंका हित करनेवाला ज्ञानी शुद्ध अग्नि आगे स्थापित किया गया है। उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाली अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं।

१२ अग्ने! स्वपा अस्मे वर्चः पवस्व, मयि रयिं पोषं दधत् [१५२०]- हे अग्ने! तू उत्तम कर्म करनेवाला है, हमें तेज दे, तथा धन और पोषण दे।

१३ हे पावक अग्ने देव! शोचिषा मन्द्रया जिव्हया देवान् आवक्षि यक्षि च [ १५२१ ]- हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव! अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली ज्वालासे देवोंको बुला और उनके लिए यज्ञ कर।

१४ हे घृतस्नो चित्रभानो! स्वर्दृशं त्वा ईमहे। वीतये देवान् आ वह [ १५२२ ]- हे घीसे उत्पन्न हुए हुए और विलक्षण तेजस्वी अग्ने! सबोंको देखनेवाले तुझसे हम प्रार्थना करते हैं। वह प्रार्थना यह है कि हवि भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला।

१५ हे कवे अग्ने! वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं त्वा अध्वरे समिधीमहि [१५२३]- हे ज्ञानी अग्ने! हवन पर प्रेम करनेवाले तेजस्वी और महान् तुझे यज्ञमें हम जलाते हैं।

१६ हे अग्ने! सत्रासाहं वरेण्यं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं रयिं नः आभर [१५२५]- हे अग्ने! सब शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले, श्रेष्ठ और सब युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर ऐसे धन हमें भरपूर दे।

१७ हे अग्ने! नः जीवसे सुचेतुना विश्वायुपायसं मार्डीकं रयिं नः धेहि [१५२६]- हे अग्ने! हमारे दीर्घ-जीवनके लिए उत्तम ज्ञानसे युक्त, सम्पूर्ण आयु तक भरण पोषण करनेमें समर्थ और सुखदायक धन दे।

१८ नः धियः अग्निं हिन्वन्तु, आजिषु आशुं सप्तिं इव, तेन धनं धनं जेष्म [१५२७]- हमारी बुद्धि अग्निको हमारे अनुकूल करे। जिसप्रकार युद्धमें घोडेको शीघ्र दौडाते हैं, उसीप्रकार शीघ्र जाकर हम प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करें।

१९ हे अग्ने! यया सेनया तव ऊत्या गाः आकरामहे, तां नः मघत्तये हिन्व [ १५२८ ]- हे अग्ने! जिस सेनासे तथा जिस तेरे संरक्षणसे हमें गायें प्राप्त हों, उस संरक्षणशक्तिको, हमारा महत्व बढे तथा वे हमारे अनुकूल हों, इसलिए प्रेरित कर।

२० हे अग्ने! स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रयिं आ भर। खं अंग्धि पविं वर्तय [ १५२९ ]- हे अग्ने। बहुत बडी गायों और घोडोंसे युक्त धन हमें भरपूर दे। आकाशमें अपने तेज फैला और शत्रुओंके शस्त्र हमसे दूर कर।

२१ हे अग्ने! जनेभ्यः ज्योतिः दधत्, अजरं नक्षत्रं सूर्यं दिवि आरोहयः [ १५३० ]- हे अग्ने! तू लोगोंके लिए प्रकाश देता है और तूने क्षीण न होनेवाले प्रकाशमान् सूर्यको आकाशमें चढाया।

२२ हे अग्ने! विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः असि, उपस्थसत् स्तोत्रे वयः दधत्, बोध [ १५३१ ]- हे अग्ने! तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला प्रिय और श्रेष्ठ है। यज्ञशालामें रहनेवाला तू स्तुति करनेवालेको अन्न देता है और स्तुति जानता है।

२३ मूर्धा दिवः ककुत् पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः अपां रेतांसि जिन्वति [ १५३२ ]- सबमें श्रेष्ठ और द्युलोकमें श्रेष्ठ स्थान पर रहनेवाला पृथ्वीका पालक अग्नि जलके तत्वको अपनेमें धारण करता है।

२४ हे अग्ने! स्वः पतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे, तव शर्मणि स्तोता स्याम् [१५३३]- हे अग्ने! तू स्वर्गका स्वामी, स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य ऐसे धनोंका भी स्वामी है। तेरे द्वारा दिए गए सुखमें रहकर मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊं।

२५ हे अग्ने! शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः तव ज्योतींषि उदीरते [१५३४]- हे अग्ने! शुद्ध, स्वच्छ और देदीप्यमान ज्वालायें तेरे तेजको प्रेरणा देती हैं।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है। अग्नि यज्ञमें प्रदीप्त होता है। ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं। यज्ञमें सब देवोंको वह बुलाकर लाता है। उन देवोंको सोमरस दिया जाता है। यह सब अग्निके वर्णनमें हमें मिलता है। अब सोमका वर्णन देखिए—

## सोम

१ यत्प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं उक्थ्यं महः गाहात् दिवः आ निरधुक्षत् [ १४९४ ]- पहलेसे मिलनेवाला अमृत प्रशंसनीय है। महान् अगाध द्युलोकसे वह निकाला गया है। हिमालयके ऊंचे शिखर पर यह सोम उगता है और वहांसे वह यज्ञके लिए लाया जाता है।

२ पश्यमानासः दिव्याः वसुरुचः आप्यं ईं अभ्यनूषत [ १४९५ ]- इस सोमको देखनेवाले दिव्य वसुरुच भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं।

३ हे पवमान! यत् इमे रोदसी इमा विश्वा भुवना च विराजसि [ १४९६ ]- हे सोम! इस द्यु और पृथ्वी पर और इन सब भुवनों पर तू विराजमान होता है।

४ प्रथमः वृक्त-बर्हिषः महे वाजाय श्रवसे ते धियं दधुः । सः त्वं नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- तू सबसे मुख्य है, आसन फैलानेवाले यजमान, विशेष बल और अन्न प्राप्त हो, इसलिए तेरे विषयमें उत्तम आदर बुद्धि धारण करते हैं । वह तू हे सोम ! हम वीर हों ऐसी हमें प्रेरणा दे ।

५ श्रवसा अभ्यभि ततर्दिथ [ १५०७ ]- अन्नसे युक्त होकर यह सोम छलनीसे नीचे बर्तनमें छाना जाता है ।

६ हे अमृत ! ऋतस्य चारुणः अमृतस्य कं मर्त्याय अजीजनः सनिष्यदत् वाजं अच्छ सदा असरः [१५०८] – हे अमृतरूपी सोम ! सत्य और मंगल करनेवाले, पानीको धारण करनेवाले आकाशमें सूर्यको तूने मनुष्योंके हितके लिए धारण किया । तूने देवोंकी सेवा की । तू हमेशा युद्धमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमका वर्णन है । सोम ऊंचे पर्वत शिखर पर उत्पन्न होता है । वहांसे वह यज्ञके लिए लाया जाता है। कूटकर उनका रस निकाला जाता है । उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। उसमें गायका दूध मिलाते हैं । वह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है, बादमें उसे सब पीते हैं ।

यह सब आलंकारिक भाषामें वर्णित है ।

---

## सुभाषित

१ सत्यस्य सूनुं गोपतिं सत्पतिं अभि प्र अर्च [ १४८९ ]- सत्यके प्रचार करनेवाले, गायोंके रक्षक और सत्यके रक्षकका सत्कार करो ।

२ गावः वज्रिणे इन्द्राय मधु आशिरं दुदुह्रे [१४९१] – गायें वज्रधारी इन्द्रको मीठा दूध देती हैं । वीरोंको गायका दूध पीना चाहिए ।

३ विश्वासु समत्सु हव्यं नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत [ १४९२ ] - सब युद्धोंमें बुलाने योग्य वीरोंकी शोभा हमारे स्तोत्र बढाते हैं ।

४ वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम ! [ १४९२ ]- हे शत्रुको मारनेवाले और महान् धनुषकी डोरीवाले वीर ! हम तेरी स्तुति करते हैं ।

५ त्वं राधसां प्रथमः दाता असि [१४९३]- तू धनोंका सबसे पहिला दाता है ।

६ ईशानकृत् सत्य असि [१४९३]- तू ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला और सत्य है ।

७ तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः युज्या वृणीमहे [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्‌के पुत्रके समान तुझसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं । जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है । उसी तरह बहुतसा धन प्राप्त करें और दें ।

८ दिव्याः पश्यमानासः आप्यं अभ्यनूषत [१४९५] – दिव्य दृष्टिवाले उत्तम भाईकी स्तुति करते हैं ।

९ दिवः सविता वारं न व्यूर्णुते [१४९५]- द्युलोकसे सूर्य जब तक अन्धकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति कोई नहीं करता । वह अन्धकार दूर करने लगा कि उसकी स्तुति शुरू हो जाती है ।

१० इमे रोदसी, इमा विश्वा भुवना, मज्मना विराजसि [१४९६]- इस द्यु व पृथ्वीमें और इन सब भुवनोंमें अपने सामर्थ्यसे तू सुशोभित होता है ।

११ हे चित्रभानो ! विभक्ता असि [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है ।

१२ दाशुषे सद्यः क्षरसि [१४९८]- दाताको कर्मके फल तत्काल देता है ।

१३ नः परमेषु मध्यमेषु वाजेषु आभज [ १४९९ ] –हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें पहुंचा ।

१४ अन्तमस्य वस्वः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें निकृष्ट भोग भी मिलें ।

१५ पितुः अमृतस्य मेधां अहं इत् परि जग्रह [ १५०० ]- पालन करनेवालेकी सत्यबुद्धि मैंने प्राप्त की है।

१६ अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

१७ येन इन्द्रः शुष्मं दधे [ १५०१ ]- जिससे इन्द्र बलको धारण करता है ।

१८ त्वं नः रायः दानाय देवतातये चोदय [१५०५] –तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर ।

१९ प्रथमः महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः [१५०६] –मुख्य होकर वे महान् बल और यश प्राप्त करनेकी बुद्धि धारण करते हैं ।

२० सः त्वं नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- वह तू हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ।

२१ वाजं अच्छ सदा असरः [ १५०८ ]- युद्धके लिए आगे हो।

२२ महित्वना राधांसि प्रचोदयते [१५०९]- अपनी महानतासे वह धनोंको प्रेरित करता है।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जज्ञे [ १५११ ]- तुझसे पहले तुझसे बढकर महान् वीर और कोई नहीं हुआ।

२४ राया न कि, एवथा न, भन्दना न [ १५११ ] -धनसे भी तुझसे बढकर कोई नहीं हुआ, शत्रुओंको कुचलनेवाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके योग्य भी दूसरा कोई नहीं हुआ।

२५ विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [ १५१४ ]- यज्ञ करनेवाले, दाता मनुष्यको उत्तम वीरता बढानेवाले धन देता है।

२६ गातुवित्तमः अदर्शि [ १५१५ ]- वह उत्तम मार्गदर्शक प्रतीत होता है।

२७ सुजातं आर्यस्य वर्धनं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए तथा आर्योंके संवर्धन करनेवालेकी हमारी वाणियां स्तुति करती हैं।

२८ यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः कृष्टयः रेजन्ते, सहस्रसां मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत [१५१६] – जब कर्म करनेवाले मनुष्यको शत्रु कंपाते हैं, तब हजारों प्रकारसे सहायता करनेवाले अग्निको हे मनुष्यो ! बुद्धिपूर्वक तुम स्वयं प्रणाम करो।

२९ नः आयूंषि ऊर्जं इषं च पवसे [ १५१८ ]- हमें दीर्घायु, बल और अन्न दे।

३० दुच्छुनां आरे बाधस्व [१५१८]- दुष्टोंको दूर करके उन्हें कष्ट दे।

३१ पांचजन्यः ऋषिः पुरोहितः [ १५१९ ]- पंचजनोंका हित करनेवाला ऋषि आगे रहकर कार्य करता है।

३२ तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- उसकी सहायतासे हम बडे घरमें रहनेकी इच्छा करते हैं।

३३ स्वपाः असे वर्चः पवस्व, मयि रयिं पोषं दधत् [१५२०]- उत्तम कार्य करनेवाला तू हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे।

३४ ऊतिभिः नः अव [१५२४]- संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर।

३५ सत्रासाहं वरेण्यं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं रयिं नः आ भर [ १५२५ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले, श्रेष्ठ और युद्धमें शत्रुओंके लिए दुस्तर धन हमें दे।

३६ नः जीवसे सुचेतुना विश्वायुपोषसं मार्डीकं रयिं नः धेहि [१५२६]- हमारे दीर्घ जीवनके लिए उत्तम ज्ञानसे युक्त, सब आयु पर्यन्त पोषण करनेवाले सुखदायक धन हमें दे।

३७ तेन धनं धनं जेष्म [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम प्रत्येक युद्ध जीतें।

३८ यया सेनया तव ऊत्या गाः आकरामहै, तां नः मघत्तये हिन्व [१५२८]- जिस सैन्यसे और जिस तेरे संरक्षणसे हमें गाय मिलें उस संरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिए प्रेरित कर।

३९ स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रयिं आ भर [१५२९] – बहुत महान् गाय और घोडेसे युक्त धन हमें दे।

४० खं अंग्धि, पविं वर्तय [ १५२९ ]- आकाशमें अपने तेज फैला और शस्त्रोंको दूर कर।

४१ जनेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंके लिए प्रकाश दे।

४२ त्वं विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः [ १५३१ ]- तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला प्रिय और श्रेष्ठ है।

४३ स्वपतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे [ १५३३ ]- तू स्वामी है। स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है।

४४ शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः तव ज्योतींषि उदीरते [१५३४]- शुद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशमान् तेरी प्रकाशकी किरणें चारों ओर फैलती हैं।

## उपमा

१ मज्मना यूथे निष्ठा वृषभः न [ १४९६ ]- अपनी शक्तिसे झुण्डमें जैसे बैल रहता है, उसीप्रकार हे सोम ! तू ( विराजसि ) यहां विराजमान होता है।

२ सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ [ १४९८ ]- जैसे समुद्रमें पानीकी लहरें जाती हैं, उसीप्रकार ( दाशुषे सद्यः क्षरसि ) दाताको तू धन देता है।

३ अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूं।

४ कण्ववत् अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि [ १५०१ ] कण्वके समान मैं प्राचीन वाणीसे इन्द्रकी स्तुति करके उसे सुशोभित करता हूं।

५ न कंचित् जनपानं अक्षितं उत्सं [ १५०७ ]- मनुष्योंके पानी पीनेके लिए जैसे हौज भरा जाता है, उसीप्रकार हे सोम ! ( अभ्यभि ततर्दिथ ) छाना जाकर तू बर्तनमें भरा जाता है।

६ भरमाणः न [ १५०७ ]- जिसप्रकार हौज भरते हैं, उसीप्रकार ( गभस्त्योः शर्याभिः ) हाथकी अंगुलियोंसे सोमरस बर्तनमें भरा जाता है।

७ इन्द्रः न [ १५१७ ]- इन्द्रके समान ( अग्निः मातरं पृथिवीं अनु प्र वि वावृते ) अग्नि मातृभूमिपर अनेक प्रवृत्ति करता है।

८ आजिषु आशुं सप्तिं इव [१५२७]- युद्धमें वेगवान् घोडेको जिसप्रकार दौडाते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः अग्निं हिन्वन्तु ) हमारी बुद्धियां अग्निको प्रेरित करें।



# चतुर्दशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १४८९ | ८।६९।४ | प्रियमेध आंगिरसः | इन्द्रः | गायत्री |
| १४९० | ८।६९।५ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १४९१ | ८।६९।६ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १४९२ | ८।९०।१ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | ,, | प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १४९३ | ८।९०।२ | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | ,, | ,, |
| १४९४ | ९।११०।८ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती |
| १४९५ | ९।११०।६ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | ,, | ,, |
| १४९६ | ९।११०।९ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | ,, | ,, |
| १४९७ | १।२७।४ | शुनःशेप आजीगर्तिः | अग्निः | गायत्री |
| १४९८ | १।२७।६ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १४९९ | १।२७।५ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १५०० | ८।६।१० | वत्सः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| १५०१ | ८।६।११ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १५०२ | ८।६।१२ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| १५०३ | — | अग्निस्तापसः | विश्वेदेवाः | अनुष्टुप् |
| १५०४ | — | अग्निस्तापसः | ,, | ,, |
| १५०५ | १०।१४१।६ | अग्निस्तापसः | ,, | ,, |
| १५०६ | ९।११०।७ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती |
| १५०७ | ९।११०।५ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १५०८ | ९।११०।३ | त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती |
| १५०९ | ८।२४।१३ | विश्वमना वैयश्वः | इन्द्रः | उष्णिक् |
| १५१० | ८।२४।१४ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| १५११ | ८।२४।१५ | विश्वमना वैयश्वः | ,, | ,, |
| १५१२ | ८।६९।१ | प्रियमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १५१३ | ७।१६।११ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १५१४ | ७।१६।१२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १५१५ | ८।१०३।१ | सौभरिः काण्वः | ,, | बृहती |
| १५१६ | ८।१०३।३ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १५१७ | ८।१०३।२ | सौभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १५१८ | ९।६६।१९ | शतं वैखानसः | अग्निः पवमानः | गायत्री |
| १५१९ | ९।६६।२० | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| १५२० | ९।६६।२१ | शतं वैखानसः | ,, | ,, |
| १५२१ | ५।२६।१ | वसूयव आत्रेयः | अग्निः | ,, |
| १५२२ | ५।२६।२ | वसूयव आत्रेयः | ,, | ,, |
| १५२३ | ५।२६।३ | वसूयव आत्रेयः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १५२४ | १।७९।७ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५२५ | १।७९।८ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५२६ | १।७९।९ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५२७ | १०।१५६।१ | केतुराग्नेयः | ,, | ,, |
| १५२८ | १०।१५६।२ | केतुराग्नेयः | ,, | ,, |
| १५२९ | १०।१५६।३ | केतुराग्नेयः | ,, | ,, |
| १५३० | १०।१५६।४ | केतुराग्नेयः | ,, | ,, |
| १५३१ | १०।१५६।५ | केतुराग्नेयः | ,, | ,, |
| १५३२ | ८।४४।१६ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १५३३ | ८।४४।१८ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १५३४ | ८।४४।१७ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |

# अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ११ गोतमो राहूगणः; २, ९ विश्वामित्रो गाथिनः; ३ विरूप आंगिरसः; ४, ७ भर्गः प्रागाथः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ उशना काव्यः; ८ सुवीति- पुरुमीळ्हावांगिरसौ १० सोभरिः काण्वः; १२ गोपवन आत्रेयः; १३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा; १४ प्रयोगो भार्गवः; पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रावान्यतरो वा ॥ अग्निः ॥ १-३, ६, ९, १४ गायत्री; ४, ७, ८ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती, ); ५ त्रिष्टुप् १० काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ११ उष्णिक्; १२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः= ( अनुष्टुप् + गायत्र्यौ ); १३ जगती ॥

१५३५ कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।३ )

१५३६ त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७५।४ )

१५३७ यजा नो मित्रावरुणा यजा देवा२ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥ १ (रु) ॥
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. १।७५।५ )

१५३८ ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाꣳसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।१३ )

१५३९ वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तꣳ हविष्मन्त ईडते ॥२॥ ( ऋ. ३।२७।१४ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५३५ ] हे अग्ने ! ( जनानां ते जामिः कः ) मनुष्योंमें तेरा भाई कौन है ? ( दाशु-अध्वरः कः ) दानसे तेरा यज्ञ करनेवाला कौन है ? ( कः ह ) तू कैसा है यह कौन जानता है ? ( कस्मिन् श्रितः असि ) तू कहां आश्रय लेकर रहता है ? ॥ १ ॥

[ १५३६ ] हे अग्ने ! ( त्वं जनानां जामिः प्रियः मित्रः असि ) तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है । ( ईड्यः सखिभ्यः सखा ) तू स्तुत्य और ऋत्विजरूपी मित्रोंका मित्र है ॥ २ ॥

[ १५३७ ] हे अग्ने ! ( नः ) हमारे लिए ( मित्रावरुणा यज ) मित्र और वरुणका यजन कर । ( देवान् यज ) देवोंका यजन कर । ( ऋतं बृहत् स्वं दमं यक्षि ) यज्ञ कर और महान् यज्ञशालामें पूज्य होकर रह ॥ ३ ॥

[ १५३८ ] ( ईडेन्यः ) स्तुत्य और नमस्कार करने योग्य ( तमांसि तिरः ) अन्धकारको दूर करनेवाला ( दर्शतः वृषा अग्निः ) दर्शनीय और बलवान् अग्नि ( सं इध्यते ) आहुतिके द्वारा उत्तमतासे प्रदीप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[ १५३९ ] ( वृषा उ ) बलवान् ( अश्वः न देववाहनः ) घोडा जैसे राजाको ढोकर ले जाता है उसीप्रकार अग्नि देवोंके पास हवि ले जाता है, ऐसा यह ( अग्निः समिध्यते ) अग्नि आहुतिके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है । ( तं हविष्मन्तः ईडते ) हवन करनेवाले यजमान उस अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१५४० वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ २ ( लि ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।२७।१५ )

१५४१ उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४४।४ )

१५४२ उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२॥ ( ऋ ८।४४।५ )

१५४३ मन्द्रं२ होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥
[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४४।६ )

१५४४ पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।९ )

१५४५ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥ ४ ( यि ) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६०।१० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

---

[ १५४० ] हे ( वृषन् अग्ने ) बलवान् अग्ने ! ( वृषणः वयं ) आहुति देनेवाले हम ( वृषणं दीद्यतं बृहत् ) बलवान्, तेजस्वी और महान् तुझ अग्निको ( समिधीमहि ) प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५४१ ] हे ( दीदिवः ) तेजस्वी अग्ने ! ( समिधानस्य ते ) प्रदीप्त होनेवाले तेरी ( बृहन्तः शुक्रासः ) महान् शुद्ध ( अर्चयः ) ज्वालायें ( उदीरते ) निकलती हैं ॥ १ ॥

[ १५४२ ] हे ( हर्यत अग्ने ) पूज्य अग्ने ! ( मम घृताचीः जुह्वः ) मेरे घीसे पूर्ण भरे हुए चमचे ( त्वा उपयन्तु ) तेरे पास जावें, ( नः हव्या जुषस्व ) हमारी हविका तू सेवन कर ॥ २ ॥

[ १५४३ ] ( मन्द्रं होतारं ) आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर लानेवाले ( ऋत्विजं चित्रभानुं ) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले तेजस्वी ( विभावसुं अग्निं ईडे ) प्रकाशमान् अग्निकी मैं स्तुति करता हूं । ( सः श्रवत् उ ) वह उसे सुने ॥ ३ ॥

[ १५४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः एकया पाहि ) तू हमारा एक ऋचासे रक्षण कर । ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी ऋचासे रक्षा कर । हे ( ऊर्जां पते ) बलोंके पालक ! ( तिसृभिः गीर्भिः पाहि ) तीन मंत्रोंसे हमारा संरक्षण कर । हे ( वसो ) निवासक ! ( चतसृभिः पाहि ) चार मंत्रोंसे रक्षण कर ॥ १ ॥

[ १५४५ ] हे अग्ने ! ( विश्वस्मात् रक्षसः अ-राव्णः ) सब राक्षसोंसे और दान न देनेवाले शत्रुओंसे ( नः पाहि ) हमारी रक्षा कर । तथा ( वाजेषु प्राव स्म ) युद्धमें हमारी रक्षा कर । ( हि ) क्योंकि ( नेदिष्ठं आपिं त्वां इत् हि ) हमारा पासका भाई तू ही है । ( देवतातये वृधे नक्षामहे ) यज्ञकी सिद्धिके लिए और अपने संवर्धनके लिए तेरी शरणमें आते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

*

[ २ ]

१५४६ इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।३।१ )

१५४७ कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।३।२ )

१५४८ भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥ ५ (पो) ॥
[ धा० २७ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. १०।३।३ )

१५४९ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।४ )

१५५० दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।५ )

---

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५४६ ] हे अग्ने ! तू ( इनः ) सबका स्वामी है, ( अरतिः ) देवोंके पास जानेवाला ( समिद्धः ) प्रज्वलित किया गया ( रौद्रः ) शत्रुओंको भय दिखानेवाला ( सुषुमान् ) उपासकोंको इष्ट पदार्थ देनेवाला ( दक्षाय अदर्शि ) तू बल बढानेवाला है यह देख लिया है। ( चिकित् विभाति ) सर्वज्ञ तू प्रदीप्त होता है। ( रुशतीं अपाजन् ) तेजस्वी ज्वालाओंको फैलाते हुए ( बृहता भासा ) महान् तेजसे ( असिक्नीं एति ) रात्रीमें जाता है ॥ १ ॥

[ १५४७ ] यह अग्नि ( यत् ) जब ( बृहतः पितुः जां योषां ) महान् पितासे उत्पन्न हुई हुई स्त्रीरूपी उषाको ( जनयन् ) प्रकट करके ( कृष्णां एनीं वर्पसा अभिभूत् ) काली रात्रीको अपनी ज्वालाओंसे हराता है। तब ( अरतिः ) यह गतिमान् अग्नि ( दिवः वसुभिः ) द्युलोकमें अपने तेजसे ( सूर्यस्य भानुं ) सूर्यके तेजको ( ऊर्ध्वं स्तभायन् ) ऊपर ही थामकर ( विभाति ) स्वयं प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १५४८ ] ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला अग्नि ( भद्रया सचमानः आगात् ) कल्याण करनेवाली उषाके द्वारा सेवित होता हुआ प्रज्वलित होता है। ( पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति ) तब शत्रुका नाश करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उषाको प्राप्त होता है। ( सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् ) अपने तेजोंसे सर्वत्र रहनेवाला यह ( अग्निः ) अग्नि ( उशद्भिः वर्णैः ) तेजस्वी रंगोंकी ज्वालाओंसे ( रामं अभ्यस्थात् ) रात्रीके अंधकारको हराकर स्थिर रहता है ॥ ३ ॥

[ १५४९ ] हे ( अंगिरः ) अंगोंके प्रकाशक और ( ऊर्जः न-पात् ) बल कम न करनेवाले ( देव अग्ने ) अग्नि देव ! ( वराय ) सबोंके द्वारा स्वीकरणीय और ( मन्यवे ते ) शत्रु पर क्रोध करनेवाले तेरे लिए ( कया उप स्तुतिं ) कौनसी रीतिसे में स्तुति करूँ ? ॥ १ ॥

[ १५५० ] ( सहसः यहो ) हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! ( कस्य यज्ञस्य मनसा दाशेम ) किस यज्ञ करनेवालेके मनके समान हम हवि अर्पण करें ? ( इदं नमः कम वोचे उ ) ये हवि अथवा यह नमस्कार तुझे प्राप्त हों, यह हम कब कहें ? ॥ २ ॥

१५५१ अधा त्वं२ हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं२ सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥ ६ (ट) ॥

[ धा० १८ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।८४।६ )

१५५२ अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५३ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥ ७ ( या ) ॥

( धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ) ( ऋ. ८।६०।२ )

१५५४ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।

अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७१।१० )

१५५५ अग्निं२ सूनुं२ सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।

द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥ ८ ( टा ) ॥

[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७१।११ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १५५१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अध ) इसके बाद ( त्वं हि अस्मभ्यं करः ) तू ही हमारे लिए ऐसा कर कि ( नः विश्वाः गिरः ) हमारी सब स्तुतियां ( सु-क्षितीः ) हमें सब श्रेष्ठ स्थानोंके स्वामी और ( वाजद्रविणसः ) अन्न अथवा धनसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ १५५२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वा होतारं वृणीमहे ) तू देवोंको बुलानेवाला है। ऐसा समझकर तेरी प्रार्थना हम करते हे। तू ( अग्निभिः आयाहि ) अग्नियोंके साथ यहां आ। ( यजिष्ठं त्वां ) पूजनीय तुझे ( प्रयता हविष्मती ) तैय्यार हवियुक्त आहुति ( बर्हिः आसदे ) आसन पर बैठनेके बाद ( अनक्तु ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १५५३ ] हे ( सहसः सूनो अंगिरः ) बलके पुत्र और सब जगह गमन करनेवाले अग्ने ! ( त्वा अध्वरे अच्छ ) तुझे यज्ञमें प्राप्त करनेके लिए ( स्रुचः चरन्ति ) चमचे हलचल करते हैं। ( ऊर्जः नपातं घृतकेशं ) बल कम न करनेवाले और प्रखर ज्वालासे युक्त ( पूर्व्यं अग्निं ) मनोरथ पूर्ण करनेवाले अग्निकी हम ( यज्ञेषु ईमहे ) यज्ञमें स्तुति करते हे ॥ २ ॥

[ १५५४ ] ( नः गिरः ) हमारी स्तुतियां ( शीरशोचिषं दर्शतं ) प्रज्वलित ज्वालाओंसे युक्त और दर्शनीय अग्निके पास ( अच्छा यन्तु ) सीधी जावें। ( ऊतये ) हमारी रक्षाके लिए ( नमसा यज्ञासः ) घीसे युक्त होनेवाले हमारे यज्ञ ( पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं अच्छ ) बहुत धनसे युक्त और बहुत प्रशंसनीय अग्निको प्राप्त हों. ॥ १ ॥

[ १५५५ ] ( मर्त्येषु ) मनुष्योंमें ( यः अमृतः ) जो अमृत है, ( द्विता अभूत् ) वह देवोंमें भी अमर है, अर्थात् दोनों स्थानोंमें वह अमर है, ( विशि होता मन्द्रतमः ) वह मनुष्योंमें हवन करनेवाला और आनन्द देनेवाला है। ( सहसः सूनुं ) बलसे उत्पन्न होनेवाले ( जात-वेदसं अग्निं ) सर्व ज्ञानी अग्निकी ( वार्याणां दानाय ) धनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हे ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ]

१५५६ अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।११।५ )

१५५७ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥ ( ऋ. ३।११।७ )

१५५८ साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ९ ( वि ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।११।६ )

१५५९ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१९।१९ )

१५६० भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ २ ॥ १० ( लि ) )

[ धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१९।२० )

१५६१ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

( ऋ. १।७९।४ )

---

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५५६ ] ( मानुषीणां विशां पुर-एता ) मानवी प्रजाओंमें आगे रहनेवाला ( तूर्णीः ) शीघ्रतासे कार्य करनेवाला ( रथः ) रथके समान प्रगतिशील ( सदा नवः अग्निः ) सदा नवीन यह अग्नि ( अ-दाभ्यः ) किसीके द्वारा न दबाए जानेवाला है ॥ १ ॥

[ १५५७ ] ( दाश्वान् मर्त्यः ) दाता मनुष्य ( वाहसा ) हवि पहुंचानेवाले अग्निसे ( प्रयांसि अभि अश्नोति ) अन्नको प्राप्त करता है, तथा ( पावकशोचिषः ) पवित्र प्रकाशवाले अग्निसे ( क्षयं ) निवास योग्य घर प्राप्त करता है ॥२॥

[ १५५८ ] ( अभियुजः विश्वाः साह्वान् ) चढाई करनेवाले सब शत्रुकी सेनाओंको हरानेवाला ( देवानां क्रतुः अग्निः ) देवोंका यज्ञ करनेवाला अग्नि ( तुवि-श्रवस्तमः ) बहुतसा अन्न देनेवाला है ॥ ३ ॥

[ १५५९ ] ( आहुतः अग्निः नः भद्रः ) आहुतियोंसे तृप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो । हे ( सु-भग ) उत्तम भाग्यवान् अग्ने ! ( भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले दान हमें प्राप्त हों । ( अध्वरः भद्रः ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला हो । ( उतः प्रशस्तयः भद्राः ) और हमारे द्वारा की गई स्तुतियां हमारा कल्याण करनेवाली हों ॥ १ ॥

[ १५६० ] हे अग्ने ! ( वृत्र-तूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व ) युद्धमें हमारे मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर । ( येन समत्सु सासहिः ) जिससे युद्धमें शत्रुका पराभव तू करता है । ( शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि ) युद्ध करनेवाले शत्रुकी सुदृढ सेनाका भी तू पराभव कर, ( अभिष्टये ते वनेम ) हम अपने कल्याणके लिए तेरी आराधना करते हैं ॥२॥

[ १५६१ ] हे ( सहसः यहो ) बलके पुत्र अग्ने ! ( गोमतः वाजस्य ईशानः ) गायोंके साथ होनेवाले अन्नका तू स्वामी है । हे ( जातवेदः ) सर्वज्ञ ! ( अस्मे महि श्रवः देहि ) हमें बहुत सारा अन्न दे ॥ १ ॥

१५६२ स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

( ऋ. १।७९।५ )

१५६३ क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३॥ ११(टा)॥

[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।७९।६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१५६४ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७४।१ )

१५६५ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशꣳसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।७४।२ )

१५६६ पन्याꣳसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥ १२ ( टा ) ॥

[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७४।३ )

१५६७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रꣳ होतारं पुरुवारमद्रुहं कविꣳ सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१५।७ )

---

[ १५६२ ] ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( इधानः वसुः ) प्रदीप्त हुआ हुआ और निवास करनेवाला ( कविः ) ज्ञानी ( गिरा ईडेन्यः ) वाणीके द्वारा स्तुति करने योग्य है । हे ( पुरु-अनीक ) अनेक ज्वाला युक्त अग्ने ! ( अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि ) हमें चमकनेवाले धन दे ॥ २ ॥

[ १५६३ ] ( राजन् अग्ने ) हे प्रकाशमान् अग्ने ! ( वस्तोः उत उषसः ) सब दिन और रात्रीमें ( क्षपः ) शत्रुओंका नाश कर । ( उत त्मना ) और स्वयं तू हे ( तिग्म जम्भ ) तीक्ष्ण मुखवाले अग्ने ! ( रक्षसः प्रति दह ) राक्षसोंको जला दे ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५६४ ] हे याजको ! ( वाजयन्तः वः ) अन्न व बलकी इच्छा करनेवाले तुम ( विशः विशः अतिथिं ) प्रत्येक प्रजाजनोंके घरमें अतिथिके समान पूजनीय और ( पुरुप्रियं अग्निं ) बहुतोंको प्रिय लगनेवाले अग्निको हवि अर्पित करो । ( वः शूषस्य मन्मभिः ) तुम्हारे बल बढानेवाले स्तोत्रोंके द्वारा ( दुर्यं वचः स्तुषे ) स्थण्डिलमें रहनेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १५६५ ] ( यं ) जिसकी ( हविष्मन्तः जनासः ) हवि रखनेवाले लोग ( मित्रं न ) मित्रके समान ( सर्पिरासुतिं ) घीके हवनके साथ ( प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति ) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६६ ] ( पन्यांसं जातवेदसं ) अत्यन्त स्तुतिके योग्य सर्वज्ञानी अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( यः ) जो ( देवताति ) देव यज्ञमें ( उद्यता हव्यानि ) दिए जानेवाले हविर्द्रव्य ( दिवि ऐरयत् ) द्युलोकमें पहुंचाता है ॥ ३ ॥

[ १५६७ ] ( समिधा समिद्धं अग्निं ) समिधाओंसे प्रज्वलित हुए हुए अग्निकी मैं ( गिरा गृणे ) वाणीसे स्तुति करता हूं । ( शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः ) शुद्ध, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निको यज्ञमें मैं आगे स्थापित करता हूं । ( विप्रं होतारं ) ज्ञानी तथा हवन करनेवाले ( पुरुवारं अद्रुहं ) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले ( कविं जातवेदसं ) ज्ञानी और सर्वज्ञानी अग्निको ( सुम्नैः ईमहे ) धनके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

१५६८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१५।८ )

१५६९ विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानाँ रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिँ सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३ ( या ) ॥
[ धा० २२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ६।१५।९ )

१५७० उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥१॥ ( ऋ. ८।१०२।१३ )

१५७१ यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥२॥ ( ऋ. ८।१०२।१४ )

१५७२ पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥ १४ ( हु ) ॥
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।१०२।१५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

[ १५६८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( देवासः च मर्तासः च ) देव और मनुष्य ( अमृतं युगे युगे हव्यवाहं ) अमर और प्रत्येक यज्ञमें हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले ( पायुं ईड्यं त्वां ) रक्षक और स्तुतिके योग्य तुझे ( दूतं दधिरे ) दूत बनाते हैं, तथा ( जागृविं विभुं विश्पतिं ) जागृत, व्यापक और प्रजाके रक्षक अग्निको ( नमसा निषेदिरे ) नमन करते हुए उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६९ ] हे अग्ने ! ( उभयान् विभूषन् ) देव और मनुष्य इन दोनोको सुशोभित करनेवाला तू ( अनुव्रता देवानां दूतः ) अनुकूल नियमके समान चलनेवाले देवोंका दूत होकर ( रजसी समीयसे ) द्युलोक व इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है। ( यत् ते ) इसलिए तेरी तरफ ( धीतिं सुमतिं आवृणीमहे ) उत्तम कर्ममें की गई स्तुति भेजते हैं, ( अध ) इसके बाद ( त्रि-वरूथः ) तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू ( अस्मान् शिवः भव ) हमें सुख देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १५७० ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( गिरः जामयः ) स्तुतियां बहिनके समान ( देदिशतीः ) तेरा गुणगान करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ( त्वां उपास्थिरन् ) तुझे प्रदीप्त करके स्थापित करती हैं ॥ १ ॥

[ १५७१ ] ( यस्य ) जिस अग्निके ( त्रिधातु अवृतं ) तीन पर्वोंवाले, खुले हुए ( अवसं दिनं बर्हिः तस्थौ ) और न बंधे हुए आसन रखे हुए हैं। उस अग्निमें ( आपः चित् ) जल भी ( पदं निदधा ) अपना स्थान रखता है॥२॥

जलका स्थान अन्तरिक्ष है। वहां अग्नि भी विद्युत् रूपमें है।

[ १५७२ ] ( मीढुषः देवस्य पदं ) स्तुत्य और तेजस्वी अग्नि देवके स्थान ( अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः ) शत्रुओंके द्वारा बाधा न पहुंचानेवाले संरक्षणोंसे युक्त हैं, उसकी ( उपदृक् ) दृष्टि भी ( सूर्यः इव भद्रा ) सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥



# पञ्चदश अध्याय

## अग्नि देवता

अग्नि देवकी उपासना हवनसे होती है। इस सम्बन्धमें कहा है —

१ वृषः अश्वः न, देववाहनः अग्निः समिध्यते, तं हविष्मन्तः ईडते [ १५३९ ]– बलवान् घोडा जिसप्रकार राजाको ढोकर ले जाता है, उसीप्रकार अग्नि आहुतिके द्वारा प्रज्वलित किया जाता है। उस अग्निकी स्तुति हवन करनेवाले करते हैं।

अग्नि देवोंको अपने रथसे यज्ञकी जगह पर ढोकर लाता है और हवि अर्पण करनेवाले यजमान उसकी स्तुति करते हैं।

२ वृषणः वयं वृषणं दीद्यतं बृहत् समिधीमहि [ १५४० ]– आहुति देनेवाले हम बलवान् और तेजस्वी अग्निको समिधाओंसे प्रज्वलित करते हैं।

३ समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उदीरते [ १५४१ ]– हे अग्ने ! प्रदीप्त होनेवाली तेरी बडी-बडी सफेद ज्वालायें निकलती हैं।

४ हविष्मन्तः जनासः विप्रं न सर्पिरासुतिं प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति [ १५६५ ]– हविको पासमें रखनेवाले यजमान मित्रके समान घीके हवनके साथ अग्निकी स्तुति करते हैं।

५ पन्यांसं जातवेदसं, यः देवताति उद्यता हव्यानि दिवि ऐरयत् [१५६६]– अत्यन्त स्तुति करने योग्य सर्वज्ञ अग्निकी हम स्तुति करते हैं, वह यज्ञमें डाले जानेवाले हविर्द्रव्योंको द्युलोकमें देवोंके पास पहुंचाता है।

६ विशः विशः अतिथिं पुरु-प्रियं अग्निं, वः शूषस्य मन्मभिः दुर्यं वचः स्तुषे [१५६४]– प्रत्येक प्रजाजनके घरमें अतिथिके समान पूजनीय और बहुतसे लोगोंको प्रिय लगनेवाले अग्निको हवि अर्पित करो। तुम्हारे बल बढानेवाले स्तोत्रोंसे कुण्डमें रखे गए अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

प्रत्येक घरमें अग्नि स्थापित की हुई होती है और उसमें हवन होता है।

७ समिधा समिद्धं अग्निं गिरा गृणे [ १५६० ]– समिधाओंसे प्रदीप्त हुई हुई अग्निकी मैं अपनी वाणीसे स्तुति करता हूँ।

इसमें समिधा डालकर अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, यह कहा है।

८ शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः [ १५६७ ]– शुद्ध, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित किया जाता है।

९ होतारं पुरुवारं अद्रुहं कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे [ १५६७ ]– हवन करनेवाले, बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले, ज्ञानी और सर्वज्ञ अग्निकी उत्तम मनसे हम स्तुति करते हैं।

१० देवासः मर्तासः च अमृतं युगे युगे हव्यवाहं पायुं ईड्यं त्वां जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे [ १५६८ ]– देव और मनुष्य अमर, प्रत्येक यज्ञमे डाले गए हवनीय द्रव्योंको देवोंके पास पहुंचानेवाले, संरक्षक और स्तुत्य, जागृत, व्यापक और प्रजारक्षक ऐसे अग्निकी नमस्कार पूर्वक उपासना करते हैं।

११ अग्ने ! उभयान् विभूषन् अनुव्रता देवानां दूतः रजसी समीयसे [ १५६९ ]– हे अग्ने ! देव और मनुष्य इन दोनोंको ही सुशोभित करनेवाला तू नियमानसार चलनेवाले देवोंका दूत होकर द्युलोकमें और इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है।

१२ यत् ते धीतिं सुमतिं आवृणीमहे [ १५६९ ]– इसलिए तेरी ओर उत्तम यज्ञकर्ममें की गई स्तुति भेजते हैं।

१३ त्रिवरूथः अस्मान् शिवः भव [ १५६९ ]– तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू हमें सुख देनेवाला हो।

१४ त्वं जनानां जामिः मित्रः प्रियः ईड्यः सखिभ्यः सखा असि [ १५३६ ]– तू लोगोंका भाई, स्तुत्य, मित्रमें प्रिय मित्र है।

१५ देवान् यज। ऋतं बृहत् स्वं दमं यक्षि [ १५३७ ] – तू देवोंके लिए यज्ञ कर। यज्ञोके लिए महान् यज्ञशालामें पूज्य होकर तू रह।

१६ तमांसि तिरः दर्शतः वृषा अग्निः इध्यते

[ १५३८ ]– अन्धकार दूर करनेवाला, दर्शनीय और बलवान् अग्नि आहुति देकर प्रदीप्त किया जाता है।

१७ मन्द्रं होतारं ऋत्विजं चित्रभानुं विभावसुं अग्निं ईडे [ १५४३ ]– आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर लानेवाले, ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, विशेष तेजस्वी प्रकाशमान् अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

१८ विश्वस्मात् अराव्णः रक्षसः नः पाहि [१५४५] –सब कंजूस राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर। अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है। रोगबीज, रोगजन्तु राक्षस हैं। क्योंकि वे प्राणियोंका नाश करते हैं।

१९ इनः अरातिः समिद्धः रौद्रः सुषुमान्, दक्षाय अदर्शि [१५४६]– अग्नि सबोंका स्वामी, देवोंके पास जानेवाला, प्रदीप्त, शत्रुओंको भय दिखानेवाला, उपासकोंको इष्ट पदार्थ देनेवाला और बल बढानेवाला है, ऐसा दिखाई दिया है।

२० चिकित् विभाति [ १५४६ ]–- वह ज्ञान बढाते हुए प्रकाशता है।

२१ रुशतीं अपाजन् बृहता भासा असिक्नीं एति [ १५४६ ]– तेजस्वी ज्वालाओंको बाहर फेंकते हुए महान् प्रकाशसे रातमें यह प्रकाशता है। प्रकाशित होकर आगे जाता है।

२२ भद्रः भद्रया सचमानः पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति [ १५४८ ]– कल्याण करनेवाला अग्नि उषाके द्वारा सेवित होता है। बादमें शत्रुओंका नाश करनेवाला यह अग्नि अपनी बहिन उषाके पास जाता है।

यज्ञशालामें उषःकालमें अग्नि जलाई जाती है। थोडी देरके बाद दिन हो जाता है और उषाका नाश होता है। अग्नि ही उषाका नाश करता है। क्योंकि अग्निके प्रदीप्त होनेके थोडी देरके बाद ही उषःकाल समाप्त हो जाता है। उषा बहिन और अग्नि उषाका भाई है। पर यह अग्नि ही उषाका जार अर्थात् नाश करनेवाला है।

२३ नः विश्वाः गिरः सुक्षितीः वाजद्रविणसः [ १५५१ ]– हमारी सभी स्तुतियें हमें उत्तम घरका स्वामी बनाकर अन्न और धनसे युक्त करें।

२४ ऊतये यज्ञासः पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं अच्छ [ १५५४ ]– हमारे संरक्षणके लिए ये यज्ञ बहुत सारा धन रखनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अग्निके पास पहुंचायें। अग्निमें यज्ञ करनेके कारण हमारा संरक्षण हो।

२५ अमृतः मर्त्येषु, विक्षि होता मन्द्रतमः [१५५५] प्रजाओंमें यह अग्नि अमर है, यह प्रजाओंमें हवन करनेवाला और आनन्द बढानेवाला है। हवनसे रोगोंके दूर होनेके कारण लोगोंका आनन्द बढता है।

२६ मानुषीणां विशां पुर-एता तूर्णिः रथः सदा नवः अग्निः अदाभ्यः [ १५५६ ]– मानवी प्रजाओंका यह नेता, शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला, रथके समान प्रगतिशील, हमेशा तरुणोंके समान कार्य करनेवाला अग्नि किसीके द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

२७ दाश्वान् मर्त्यः वाहसा प्रयांसि अभि अश्नोति, पावकशोचिषः क्षयं [ १५५७ ]– दाता मनुष्य अग्निसे बहुत अन्न और उत्तम घर पानेकी इच्छा करता है।

२८ अभियुजः विश्वाः साह्वान् अमृक्तः देवानां क्रतुः अग्निः तुविश्रवस्तमः [१५५८]– चढाई करनेवाले शत्रुओंको हरानेवाला, किसीसे भी न हारनेवाला, देवोंके लिए यज्ञ करनेवाला अग्नि बहुत सारा अन्न देनेवाला है।

२९ आहुतः अग्निः भद्रः। रातिः भद्रा। अध्वरः भद्रः। प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]– आहुति दिया गया अग्नि कल्याण करनेवाला है। तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं। यज्ञ कल्याण करनेवाला है। स्तुतियां कल्याण करनेवाली हैं।

३० वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व, येन समत्सु सासहिः [१५६०]– शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय मनको कल्याणकारक विचारसे भरपूर कर, जिससे युद्धमें विजय मिल सके।

३१ शर्धतां भूरि स्थिरा अव तनुहि [ १५६० ]– स्पर्धा करनेवाले शत्रुके महान् और सुदृढ सेनाका तू पराभव कर।

३२ गोमतः वाजस्य ईशानः [ १५६१ ]– गायके दूधके साथ होनेवाले अन्नका तू स्वामी है।

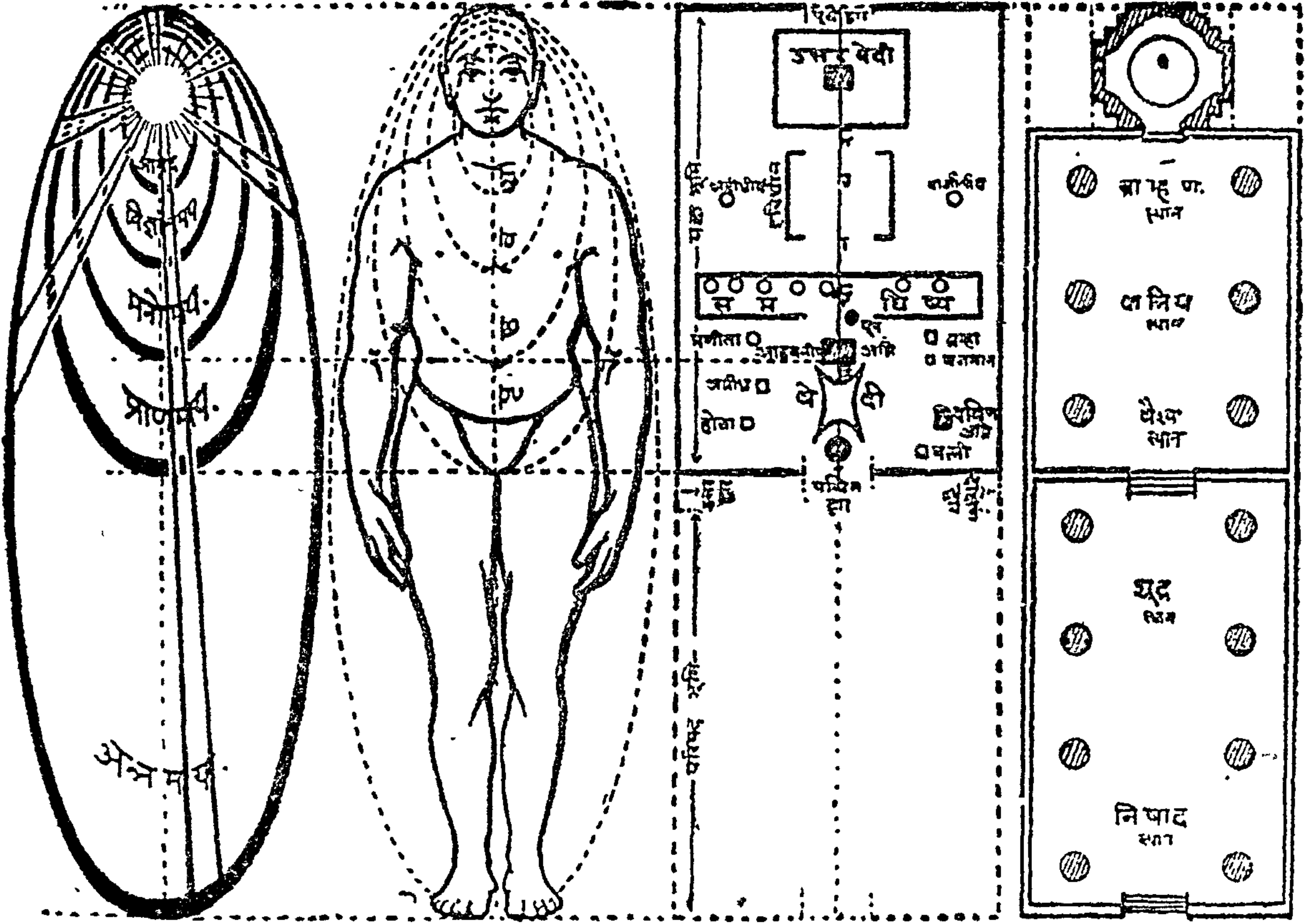
३३ हे जातवेदः! अस्मे महि श्रवः देहि [ १५६१ ] हे सर्वज्ञ! हमें बहुत अन्न दे।

३४ वसुः कविः गिरा ईडेन्यः, अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि [ १५६२ ]– निवास करानेवाला, ज्ञानी और वाणीसे स्तुत्य तू चमकनेवाले धन हमें दे।

३५ हे राजन् अग्ने! वस्तो उषसः क्षपः [१५६३] – हे अग्नि राजन्! तू दिन रात शत्रुओंका नाश कर।

३६ हे तिग्मजम्भ! रक्षसः प्रति दह [ १५६३ ]– हे तीक्ष्ण प्रकाशयुक्त अग्ने! राक्षसोंको जला डाल।

## यज्ञशालाका चित्र




इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें आया है। दूसरे किसीका वर्णन यहां नहीं है। सिर्फ अकेले अग्निका ही वर्णन है।

अग्नि समिधाओंसे और घीकी आहुतियोंसे प्रदीप्त किया जाता है। यह घी गायका ही होना चाहिए। गायके घीका कोयला हवाके अन्दर रहनेवाले विषको सोख लेता है और हवा शुद्ध करता है। अग्नि आहुतिमें डाले गए हविर्द्रव्योंको जहां पहुंचना चाहिए वहां पहुंचा देता है। समिधाओंसे प्रज्वलित यह अग्नि हविर्द्रव्योंको अतिसूक्ष्म करके हवामें चारों ओर फैला देता है। उसके कारण वायु शुद्ध होती है और मनुष्योंको निरोग और दीर्घजीवी बनाती है।

अग्नि हवनके लिए घर घरमें प्रदीप्त किया जाता है। उसमें ऋतुके अनुसार हविर्द्रव्य डालनेसे वह मनुष्योंका बल बढाता है और उन्हें दीर्घायु करता है। यह अग्नि दोष दूर करनेवाला और पवित्रता करनेवाला है। उसकी उपासना दिन रात हवनीय पदार्थ देकर करनी चाहिए।

यह अग्नि मनुष्यकी और वायु आदि देवोंकी पवित्रता करनेवाला है, इसलिए वह प्रिय मित्र है। वह मनुष्योंका सखा है। वह उत्तम रीतिसे पूजित होने पर सबका कल्याण करता है। कभी भी अकल्याण नहीं करता।

सब राक्षसोंका, जो रोग फैलाते हैं, यह नाश करता है। यह सब प्राणीमात्रका कल्याण करता है। यह प्रज्वलित होने पर बहुत भयंकर दिखाई देता है। पर वह आरोग्यके शत्रुओंका ही नाश करता है और मनुष्योंका बल बढाता है।

मनुष्यकी देहमें सब देव अग्निके साथ ही आकर रहते हैं। मनुष्य शरीर एक दिव्य यज्ञशाला है। सब देव अंशरूपसे आकर इस यज्ञशालामें शतसांवत्सरिक यज्ञ करते हैं। शरीरमें गर्मी खत्म हुई कि सब अन्य देव भी यहांसे निकल जाते हैं। शरीररूपी घर हमें प्राप्त हो, ऐसी इच्छा जो करते हैं, उन्हें इस शरीररूपी यज्ञशालामें अग्नि जाग्रत रखनी चाहिए।

मर्त्य शरीरमें यह अमर्त्य अग्नि रहता है और उसके साथ सब देव यह जीवन यज्ञ चलाते हैं।

इसलिए यज्ञाग्नि उत्तम अवस्थामें रहे, ऐसा प्रयत्न प्रत्येकको करना चाहिए। शरीरमें यज्ञ किसप्रकार चल रहा है, उसे यज्ञकी प्रक्रियासे दिखाया है। यह अध्यात्मज्ञान यज्ञके वर्णनसे यहां बताया है। उसे पाठक समझें और इस आलंकारिक वर्णनका ठीक अर्थ समझकर उसे अपने जीवनमें देखें।

## सुभाषित

१ जनानां ते कः जामिः [ १५३५ ]- लोगोंमेंसे तेरा भाई कौन है ?

२ दाशु-अध्वरः कः [ १५३५ ]- कौन भक्त तुझे देकर यज्ञ करनेकी इच्छा करता है।

३ कस्मिन् श्रितः असि [ १५३५ ]- तू किसके आश्रयसे रहता है ?

४ हे अग्ने ! त्वं जनानां जामिः मित्रः प्रियः असि [ १५३६ ]- हे अग्ने ! तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है। मनुष्योंके शरीरके अन्दर उष्णता रूपसे रहता है।

५ ईड्यः सखिभ्यः सखा [ १५३६ ]- तू प्रशंसनीय और मित्रोंका मित्र है।

६ ईडेन्यः नमस्यः तमांसि तिरः दर्शतः वृषा सं इध्यते [ १५३८ ]- जो प्रशंसनीय, नमस्कार करनेके योग्य, अन्धकार दूर करनेवाला, दर्शनीय और बलवान् है उसका तेज बढता है।

७ वृषणः वयं वृषणं दीद्यतं बृहत् समिधीमहि [ १५४० ]- बलवान् हम बलवान् तेजस्वी महान् अग्निको प्रज्वलित करते हैं।

८ समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उदीरते [ १५४१ ]- प्रदीप्त होनेवाले तेरी बडी और सफेद ज्वालायें निकलती हैं।

९ विश्वस्मात् अराव्णः रक्षसः नः पाहि [१५४५] -सब अनुदार राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर।

१० वाजेषु प्राव स्म [ १५४५ ]- युद्धोंमें हमारी रक्षा कर।

११ नेदिष्ठं आपिं त्वां इत् हि [ १५४५ ]- हमारे समीपका भाई तू ही है।

१२ देवतातये वृधे नक्षामहे [ १५४५ ]- यज्ञकी सिद्धि और हमारे संवर्धनके लिए हम तेरा सहारा लेते हैं।

१३ इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः दक्षाय अदर्शि [ १५४६ ] तू स्वामी, प्रगतिशील, प्रदीप्त, शत्रुओंको भय दिखानेवाला और बल बढानेवाला दिखाई देता है।

१४ चिकित् विभाति [१५४६]- ज्ञानयुक्त तू प्रदीप्त होता है।

१५ रुशतीं अपाजन्, बृहता भासा असिक्नीं एति [ १५४६ ]- तेजस्वी प्रकाश गिराते हुए अपने महान् तेजसे रात्रीमें वह आगे जाता है।

१६ नः गिरः सुक्षितीः वाजद्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी स्तुति हमें उत्तम घरका स्वामी तथा अन्न व धनसे युक्त करे।

१७ नः गिरः शोचिष्केशं दर्शतं अच्छ यन्तु [१५५४]- हमारी स्तुतियां प्रज्वलित और दर्शनीय अग्निको पहुंचे।

१८ जातवेदसं अग्निं वार्याणां दानाय [१५५५]- ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ है, ऐसे अग्निकी धनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं।

१९ मानुषीणां विशां पुर-एता, तूर्णिः रथः सदा नवः अदाभ्यः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंमें अग्रगामी, शीघ्रतासे काम करनेवाला, रथके समान आगे जानेवाला, सदा नया होकर काम करनेवाला अग्नि कभी दबाया नहीं जा सकता।

२० दाश्वान् मर्त्यः वाहसा प्रियाणि अभि अश्नोति [१५५८]- दाता मनुष्य अग्निसे प्रिय अन्न प्राप्त करता है।

२१ पावक-शोचिषः क्षयं [१५५७]- पवित्र प्रकाशवालोंसे घर प्राप्त करता है।

२२ अभियुजः विश्वाः साह्वान् अमृक्तः देवानां क्रतुः अग्निः तुविश्रवस्तमः [१५५८]- चढाई करनेवाले शत्रुकी सब सेनाओंको हरानेवाला, किसीसे न हारनेवाला, देवोंका यज्ञ करनेवाला अग्नि बहुत अन्न देनेवाला है।

२३ आहुतः अग्निः नः भद्रः [१५५९]- आहुतियोंसे तृप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है।

२४ रातिः भद्रा | १५५९ ]- दान कल्याण करनेवाले हों।

२५ अध्वरः भद्रः [ १५५९ ]- यज्ञ कल्याण करनेवाला हो।

२६ प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]- स्तुतियां कल्याण करनेवाली हों।

२७ वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व [ १५६० ]- युद्धमें मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर।

२८ समत्सु सासहिः [१५६०]- युद्धमें शत्रुका पराभव करनेवाला हो।

२९ शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि [१५६०]- युद्ध करनेवाले सुदृढ शत्रुसेनाको तू हरानेवाला हो।

३० अभिष्टये ते वनेम [ १५६० ]- कल्याणके लिए तेरी भक्ति करते हैं।

३१ गोमतः वाजस्य ईशानः अस्मे महि श्रवः देहि [ १५६१ ]- गायोंके साथ मिलनेवाले अन्नका तू स्वामी है। हमें बहुत अन्न दे।

३२ अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि [१५६२]- हमें चमकनेवाले धन दे।

३३ हे राजन्! वस्तोः उत उषसः क्षपः, रक्षसः प्रति दह [१५६३]- हे राजन्! रात्री और दिनमें शत्रुओंका नाश कर, राक्षसोंको जला दे।

३४ शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः पुरुवारं, अद्रुहं कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे [ १५६७ ]- शुद्ध, स्थिर, पवित्र करनेवाला, हिंसारहित यज्ञमें आगे स्थापित किये गये, अनेकोंके द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले, ज्ञानी सर्वज्ञ अग्निको धनके लिए स्तोत्रोंसे प्रार्थना करते हैं।

३५ देवासः मर्तासः अमृतं, पायुं, ईड्यं त्वा दूतं दधिरे, जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे [१५६७] –देव और मनुष्य अमर, रक्षक और स्तुतिके योग्य ऐसे तुझ अग्निको हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले दूतके रूपमें स्वीकार करते हैं तथा जागृत, व्यापक और प्रजारक्षक अग्निकी नमस्कार करके उपासना करते हैं।

३६ अस्मान् शिवः भव [१५६९]- हमारा कल्याण करनेवाला हो।

३७ मीढुषः देवस्य पदं अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः [ १५७२ ]- स्तुत्य और दिव्य अग्निका स्थान शत्रुओं द्वारा बाधा न पहुंचानेके योग्य संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहता है।

३८ उपदृक् सूर्यः इव भद्रा [ १५७२ ]- उसकी दृष्टि सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है।

---

## उपमा

१ अश्वः नः देववाहनः [ १५३९ ]- घोडेके समान देवोंका वाहन यह अग्नि है।

२ मानुषीणां विशां पुरः एता तूर्णीः रथः अग्निः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका नेता तथा शीघ्रतासे दौडनेवाले रथके समान यह अग्नि है।

३ मित्रं नः [ १५६५ ]- मित्रके समान इस अग्नि ( प्रशंसन्ति ) प्रशंसा करते हैं।

४ जामयः देदिशतीः [ १५७० ]- बहिनें जिसप्रकार स्तुति करती है, उसीप्रकार ( गिरः ) हमारी वाणियां तेरी स्तुति करती हैं।

५ सूर्यः इव भद्रा उपदृक् [१५७२]- सूर्यके समान कल्याण करनेवाली उसकी दृष्टि है।

# पञ्चदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १५३५ | १।७५।३ | गोतमो राहूगणः | अग्निः | गायत्री |
| १५३६ | १।७५।४ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५३७ | १।७५।५ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५३८ | ३।२७।१३ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १५३९ | ३।२७।१४ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १५४० | ३।२७।१५ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १५४१ | ८।४४।४ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १५४२ | ८।४४।५ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १५४३ | ८।४४।६ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १५४४ | ८।६०।९ | भर्गः प्रागाथः | ,, | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १५४५ | ८।६०।१० | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( २ ) | | |
| १५४६ | १०।३।१ | त्रित आप्त्यः | अग्निः | त्रिष्टुप् |
| १५४७ | १०।३।२ | त्रित आप्त्यः | ,, | ,, |
| १५४८ | १०।३।३ | त्रित आप्त्यः | ,, | ,, |
| १५४९ | ८।८४।४ | उशना काव्यः | ,, | गायत्री |
| १५५० | ८।८४।५ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| १५५१ | ८।८४।६ | उशना काव्यः | ,, | ,, |
| १५५२ | ८।६०।१ | भर्गः प्रागाथः | ,, | प्रगाथः- ( विषमा बृहती समा सतोबृहती ) |
| १५५३ | ८।६०।२ | भर्गः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १५५४ | ८।७१।१० | सुदीति - पुरुमीळ्हावांगिरसौ | ,, | ,, |
| १५५५ | ८।७१।११ | सुदीति - पुरुमीळ्हावांगिरसौ | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १५५६ | ३।११।५ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | गायत्री |
| १५५७ | ३।११।७ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १५५८ | ३।११।६ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १५५९ | ८।१९।१९ | सोभरिः काण्वः | ,, | काकुभः प्रगाथः-( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ) |
| १५६० | ८।१९।२० | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १५६१ | १।७९।४ | गोतमो राहूगणः | ,, | उष्णिक् |
| १५६२ | १।७९।५ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १५६३ | १।७९।६ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १५६४ | ८।७४।१ | गोपवन आत्रेयः | ,, | अनुष्टुम्मुख प्रगाथः- ( अनुष्टुप्+गायत्र्यौ ) |
| १५६५ | ८।७४।२ | गोपवन आत्रेयः | ,, | ,, |
| १५६६ | ८।७४।३ | गोपवन आत्रेयः | ,, | ,, |
| १५६७ | ६।१५।७ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा | ,, | जगती |
| १५६८ | ६।१५।८ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा | ,, | ,, |
| १५६९ | ६।१५।९ | भरद्वाजो वार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा | ,, | ,, |
| १५७० | ८।१०२।१३ | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः पुत्रो वान्यतरो वा | ,, | गायत्री |
| १५७१ | ८।१०२।१४ | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः पुत्रो वान्यतरो वा | ,, | ,, |
| १५७२ | ८।१०२।१५ | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः पुत्रो वान्यतरो वा | ,, | ,, |

# अथ षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

[ १ ]

( १-२१ ) १, ८, १८, मेध्यातिथिः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३-४ भर्गः प्रागाथः; ५ सोभरिः काण्वः; ६, १५ शुनःशेप आजीगर्तिः; ७ सुकक्ष आंगिरसः; ९ विश्वकर्मा भौवनः; १० अनानतः पारुच्छेपिः; ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १२ गोतमो राहूगणः; १३ ऋजिश्वा भारद्वाजः; १४ वामदेवो गौतमः; १६ हर्यतः प्रागाथः; १७ देवातिथिः काण्वः १९ वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ); २० पर्वतनारदौ; २१ अग्निर्भौमः ॥ १, ३-४, ७-८, १५ १७-१९ इन्द्रः; २ इन्द्राग्नी; ५ अग्निः; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ पवमानः सोमः; ११ पूषा; १२ मरुतः; १३ विश्वे देवाः; १४ द्यावापृथिवी; १६ अग्निः हवींषि वा ॥ १, ३-५, ८, १७-१९ प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); २, ६-७, ११-१६ गायत्री; ९ त्रिष्टुप्; १० अत्यष्टिः; २० उष्णिक्; २१ जगती ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५७३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।७ )
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१५७४ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳशवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ १ ( रि ) ॥

[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व ३ ] ( ऋ. ८।३।८ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
१५७५ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥१॥ ( ऋ. ३।१२।५ )
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
१५७६ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।६ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) उपासक मनुष्य ( पूर्वपीतये ) प्रथम रसपान करनेके लिए ( त्वा स्तोमेभिः अभि ) तेरी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। ( समीचीनासः ऋभवः ) योग्य बुद्धिवाले ऋभु ( समस्वरन् ) तेरी स्तुति करते हैं, ( रुद्राः पूर्व्यं गृणन्तः ) रुद्र पुराण पुरुष ऐसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

याज्ञिक लोग, ऋभु और रुद्र ये सब इन्द्रके ही गुण गाते हैं।

[ १५७४ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( सुतस्य विष्णवि मदे ) सोमका व्यापक आनन्द प्राप्त होनेपर ( अस्य इत् वृष्ण्यं शवः ) इस यजमानके वीर्य और बलको बढाता है। इसलिए ( आयवः अद्य ) मनुष्य आज भी ( पूर्वथा ) पहलेके समान ही ( अस्य तं महिमानं अनुष्टुवन्ति ) इस इन्द्रकी उस महिमाका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ १५७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( उक्थिनः वां प्रार्चन्ति ) वेदपाठी तुम्हारी अर्चना करते हैं, ( नीथाविदः जरितारः ) सामगायक तेरी स्तुति करते हैं, ( इषः आवृणे ) अन्नके लिए मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥१॥

[ १५७६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! तुम ( दासपत्नीः नवतिं पुरः ) शत्रुओंकी नब्बे नगरियोंको ( एकेन कर्मणा साकं ) एक ही प्रयत्नसे एक ही समय ( अधूनुतं ) हिला देते हो ॥ २ ॥

१५७७ इन्द्राग्नी अपसस्परयुप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ३।१२।७ )

१५७८ इन्द्राग्नी तविषाणि वाꣳसधस्थानि प्रयाꣳसि च । युवोरप्तूर्यꣳहितम् ॥ ४ ॥ २ ( टा ) ॥

[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ३।१२।८ )

१५७९ शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।५ )

१५८० पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥ ३ ( चु ) ॥

[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ ८।६१।६ )

१५८१ त्वꣳह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।७ )

१५८२ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मꣳहसे
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥ ४ ( फौ ) ॥

[ धा० १९ । उ० २ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६१।८ )

---

[ १५७७ ] ( इन्द्राग्नी ) हे इन्द्र और अग्ने ! ( धीतयः ) होता आदि ऋत्विज ( ऋतस्य पथ्या अनु ) यज्ञके मार्गसे ( अपसः परि ) हमारे यज्ञमें ( उप प्रयन्ति ) आकर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १५७८ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि ) तुम्हारे बल और अन्न एकत्र ही रहते हैं । ( युवो हितं ) तुम्हारे बल ( अप्तूर्यं ) शुभ कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[ १५७९ ] हे ( शचीपते इन्द्र ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) सब प्रकारकी संरक्षणकी शक्तियोंसे ( उ सु शग्धि ) तू उत्तम रीतिसे समर्थ है । हे ( शूर ) शूर इन्द्र ! ( वसुविदं ) धन सम्पन्न ( यशसं ) यशस्वी ( भगं न ) भाग्यवान्‌के समान ( त्वा हि अनुचरामसि ) तेरे अनुकूल होकर हम चलते हैं ॥ १ ॥

[ १५८० ] हे इन्द्र ! तू ( अश्वस्य पौरः ) घोडोंको पुष्ट करनेवाला और ( गवां पुरुकृत् असि ) गायोंका पोषण करनेवाला है । हे ( देव ) देव ! ( हिरण्ययः उत्सः ) सोनेके समान जलका हौज जैसे होता है, वैसा ही तू तृप्ति करनेवाला है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वे दानं ) तेरे दान ( न किः हि परमर्धिषत् ) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता, ( यत् यत् यामि ) जो जो मैं मांगता हूँ, ( तत् आ भर ) वह मुझे भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १५८१ ] ( त्वं वसुत्तये हि एहि ) तू धन देनेके लिए अवश्य आ, ( चेरवे भगं विदाः ) सदाचरण करनेवालेको भाग्य दे । हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गविष्टये उत् वावृषस्व ) गायोंकी इच्छा करनेवाले मुझे गायें दे, तथा हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अश्वं इष्टये ) घोडोंकी इच्छा करनेवाले मुझे ( उत् ) घोडे दे ॥ १ ॥

[ १५८२ ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( पुरू सहस्राणि शतानि च ) बहुत हजार अथवा सैकडों ( यूथा दानाय मंहसे ) गायोंके झुण्ड दान देनेवालेको देता है । ( पुरंदरं इन्द्रं ) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रको ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( गायन्तः विप्र-वचसः ) सामगान करनेवाले ज्ञानयुक्त बात करनेवाले हम ( आ चकृम ) बुलाते हैं ॥२॥

१५८३ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये　　॥ १ ॥　( ऋ. ८।१०३।६ )

१५८४ अश्वं न गीर्भी रथ्यꣳसुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम्　　॥ २ ॥ ५ ( पु ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ८।१०३।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५८५ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके　　॥ १ ॥ ६ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।२५।१९ )

१५८६ कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ७ ( य ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९३।१९ )

१५८७ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रꣳसमीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये　　॥ १ ॥　( ऋ. ८।३।५ )

---

[ १५८३ ] ( होता मन्द्रः यः ) यज्ञमें देवोंको बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला जो अग्नि है, वह ( विश्वा वसु ) सब प्रकारके धन ( जनानां दयते ) लोगोंको देता है। ( अस्मै अग्नये ) इस अग्निको ( मधोः न ) सोमरसके ( प्रथमानि पात्रा ) मुख्य पात्र और ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५८४ ] ( दस्म विश्पते ) हे सुन्दर और प्रजापालक अग्ने ! तेरी ( सुदानवः देवयवः ) उत्तम दान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले यजमान ( रथ्यं अश्वं न ) रथमें जोडे जानेवाले घोडेके समान ( गीर्भिः मर्मृज्यन्ते ) अपनी वाणीसे स्तुति करते हैं। ऐसा तू यज्ञ करनेवालोंके ( तनये तोके उभे ) पुत्र और पौत्र इन दोनोंको भी ( मघोनां राधः पर्षि ) धनवानोंके धन दे ॥ २ ॥

रथमें जोडे जानेवाले घोडोंका उत्साह बढानेके लिए रथको हांकनेवाले उनकी स्तुति करते हैं, उसीप्रकार यज्ञ करनेवाले लोग अग्निकी स्तुति करते हैं।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५८५ ] ( वरुण ) वरुण ! ( मे इमं हवं श्रुधि ) मेरी यह प्रार्थना सुन ( अद्य मृडय च ) और आज हमें सुखी कर। ( अवस्युः त्वां आ चके ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं। १ ॥

[ १५८६ ] हे ( वृषन् ) इष्ट फल देनेवाले इन्द्र ! ( कया ऊत्या ) कौनसे रक्षणसामर्थ्यसे ( त्वं नः अभि प्रमन्दसे ) तू हमें अधिक आनन्द देता है ? ( कया स्तोतृभ्यः आभर ) कौनसी रक्षणशक्तिसे तू स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है ? ॥ १ ॥

[ १५८७ ] ( देवतातये ) यज्ञके लिए ( इन्द्रं इत् हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं ( अध्वरे प्रयति इन्द्रं ) अहिंसामय यज्ञके शुरु होते ही हम इन्द्रको बुलाते हैं। ( समीके वनिनः ) युद्धमें भक्तलोग ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं और ( धनस्य सातये ) धनके दान करनेके समय ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

१५८८ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥ ८ ( वा ) ॥
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३।६ )

१५८९ विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्व३ं स्वा हि ते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १ ॥ ९ ( ला ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।८१।६ )

१५९० अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१११।१ )

१५९१ प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१११।३ )

---

[ १५८८ ] ( इन्द्रः शवः मह्ना ) इन्द्रने अपनी शक्तिकी महिमासे ( रोदसी पप्रथत् ) द्युलोक और पृथिवीका विस्तार किया। ( इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् ) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया, ( इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि ) इन्द्रमें ही सारे भुवन ( येमिरे ) रहते हैं। ( स्वानासः इन्दवः इन्द्रे ) छने हुए सोमरस इन्द्रको दिए जाते हैं॥ २ ॥

[ १५८९ ] हे ( विश्वकर्मन् ) सब कर्म करनेवाले ईश्वर ! ( हविषा वावृधानः ) हविसे बढनेवाला ( स्वयं ) स्वयं तू ही ( तन्वं स्वा हि ते यजस्व ) अपने शरीरको स्वयं द्वारा किए जानेवाले विश्वरूपी यज्ञमें अर्पण कर। ( अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु ) अन्य यज्ञ न करनेवाले जन चारों दिशाओंमें मूर्च्छित होकर गिर जाएं। ( इह ) यहां वह ( मघवा ) धनवान् इन्द्र ( सूरिः अस्माकं अस्तु ) तथा सब ज्ञानी हमारे होकर रहें॥ १ ॥

[ १५९० ] ( पुनानः ) छाने जानेवाला सोम ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रंगके तेजसे ( सूरः सयुग्वभिः न ) जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसीप्रकार ( विश्वा द्वेषांसि तरति ) सब शत्रुओंका नाश करता है। ( पुनानः हरिः अरुषः ) पवित्र होनेवाला हरे रंगका सोम चमकता है तथा ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) छलनीकी पीठपर इसकी धारा भी चमकती है, हे सोम ! तू ( सप्तास्येभिः ) सात मुखोंसे-तेजोंसे ( ऋक्वभिः ) और किरणोंसे ( विश्वा रूपा परियासि ) सब तेजस्वी पदार्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर जाता है।. १ ॥

[ १५९१ ] ( चेकितत् प्राचीं प्रदिशं अनुयाति ) सर्वज्ञानी सोम पूर्व दिशाको जाता है, तब ( दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः सं यतते ) दिव्य और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके कारण तेजस्वी दीखता है। ( पौंस्या उक्थानि अग्मन् ) पौरुषका वर्णन करनेवाले स्तोत्र इन्द्रको प्राप्त होते हैं। स्तोता उनसे ( जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् ) विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ( वज्रः च ) वज्र भी इन्द्रको प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र ! ( यत् समत्सु अनपच्युता भवथः ) तब तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते ॥ २ ॥

१५९२ त्वꣳ ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे　　॥ ३ ॥ १० (के) ॥
[ धा० ४१ । उ० ५ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१११।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५९३ उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये　　॥ १ ॥ ११ (यौ) ॥
[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५३।१० )

१५९४ शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥ १२ (व) ॥
[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८६।८ )

१५९५ उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ १३ (रौ) ॥
[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५२।९ )

१५९६ प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥　( ऋ. ४।५६।५ )

१५९७ पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥　( ऋ. ४।५६।६ )

[ १५९२ ] हे सोम ! ( त्वं ह ) तूने ( पणीनां त्यत् वसु ) पणियोंसे उस धनको ( विदः ) प्राप्त किया। ( ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः ) यज्ञके आधार भूत जलोंसे ( स्वे दमे सं मर्जयसि ) अपने यज्ञके स्थानमें उत्तम प्रकारसे तू शुद्ध होता है। ( परावतः न साम तत् ) दूरसे वह सामगान सुननेमें आता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहां यज्ञ करनेवाले यजमान आनन्दित हुए हुए दीखते हैं, ( त्रिधातुभिः अरुषीभिः ) तीन स्थान पर प्रकाशनेवाले तेजोंसे ( रोचमानः ) चमकनेवाला सोम ( वयः दधे वयः दधे ) अन्न देता है, निश्चयसे अन्न देता है ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५९३ ] हे पूषा देव ! ( उत ) और ( गो-षणिं अश्व-सां वाजसां ) गाय, घोडे और अन्न देनेवाली तथा ( नृवत् ) पुत्र अथवा सेवक देनेवाली ( धियं ) बुद्धिको ( नः ऊतये कृणुहि ) हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना ॥ १ ॥

[ १५९४ ] हे ( सत्य-शवसः नरः ) सत्य बलसे युक्त वीर मरुतो ! ( शशमानस्य स्वेदस्य ) तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पसीनेसे तर - ब - तर और ( वेनतः ) फलकी इच्छा करनेवालोंको ( कामस्य विदः ) इष्ट फल दे ॥ १ ॥

[ १५९५ ] ( ये अमृतस्य सूनवः ) जो अमर प्रजापतिके पुत्र हैं, वे ( नः गिरः उप शृण्वन्तु ) हमारी स्तुति सुनें और ( नः सुमृडीकाः भवन्तु ) हमें उत्तम सुख देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १५९६ ] हे ( शुची ) पवित्र द्यावापृथिवियो ! ( प्रशस्तये उप ) स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर ( द्यवी वां ) तेजस्वी तुम दोनोंको ( उपस्तुतिं महि अभि भरामहे ) स्तुति और स्तोत्र बडे प्रमाणमें अर्पित करते हैं ॥ १ ॥

[ १५९७ ] हे देवियो ! ( तन्वा दक्षेण ) अपने शरीरसे और बलसे तुम ( मिथः पुनाने ) यज्ञ और यजमान इन दोनोंको शुद्ध करते हुए ( राजथः ) प्रकाशित होते हो और ( सनात् ऋतं ऊह्याथे ) हमेशा यज्ञ करते हो ॥ २ ॥

*

१५९८ मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥ ३ ॥ १४ (का) ॥
[ धा० ६ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।५६।७। )

१५९९ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।४ )

१६०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥ ( ऋ. १।३०।५ )

१६०१ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ १५ (ह) ॥
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।३०।६ )

१६०२ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२ )

१६०३ अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७२।११ )

१६०४ सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥ ३ ॥ १६ (रा) ॥
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७२।१० )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

---

[ १५९८ ] ( मही ) हे बडी द्यावापृथिवियो ! तुम ( मित्रस्य साधथः ) अपने मित्रको, जो तुम्हारी स्तुति करता है, अभिलषित फल देती हो । ( ऋतं तरन्ती ) यज्ञका रक्षण करती हुई और ( पिप्रती ) यज्ञको पूर्ण करती हुई ( यज्ञं परि निषेदथुः ) यज्ञको आश्रय देती हो ॥ ३ ॥

[ १५९९ ] हे इन्द्र ! ( अयं कपोतः ) यह कबूतर जिसप्रकार ( गर्भधिं इव ) अपनी कबूतरीके पास जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) वह तेरे पास आता है, इसलिए ( नः तत् वचः ) हमारी वह प्रार्थना ( ओहसे ) तू विचार-पूर्वक सुनता है ॥ १ ॥

[ १६०० ] हे ( राधानां पते ) धनोंके स्वामी और ( गिर्वाहः ) स्तुतिके योग्य ( वीर ) शूर इन्द्र ! ( यस्य ते स्तोत्रं ) जिस तेरे वे स्तोत्र हैं, उस तेरी ( विभूतिः सुनृता अस्तु ) वैभवसम्पन्न और सत्यस्वरूप वाणी सत्य हो ॥ २ ॥

[ १६०१ ] हे ( शतक्रतो ) सैंकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( अस्मिन् वाजे ) इस युद्धमें ( नः ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए तू ( ऊर्ध्वः तिष्ठ ) तैय्यार रह । हम तुझसे ( अन्येषु ) अन्य कार्योंके विषयमें ( सं ब्रवावहै ) मिलकर विचार करें ॥ ३ ॥

[ १६०२ ] हे ( गावः ) गायो ! ( अवटे उप वद ) यज्ञके स्थान पर आओ और अपना शब्द करो, तुम ( मही यज्ञस्य रप्सुदा ) महान् यज्ञके फल देनेवाली हो । ( उभा कर्णा हिरण्यया ) तुम्हारे दोनों कान सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत हैं ॥ १ ॥

[ १६०३ ] ( अद्रयः ) आदरणीय अध्वर्यु ( अभ्यारमित् ) यज्ञके पास आ गए हैं । ( निषिक्तं मधु ) बचे हुए इस मीठे सोमरसको ( अवटस्य विसर्जने ) महावीरके विसर्जन करनेके समय ( पुष्करे ) कलशमें रखा जाता है ॥ २ ॥

[ १६०४ ] ( उच्चा-चक्रं ) जिसके ऊपरके भागमें चक्र है ( परिज्मानं नीचीनबारं अक्षितम् ) और चारों ओरसे नीचे झुके हुए नीचेके द्वारके पास जो क्षीण नहीं हुआ है, ऐसे ( अवटं नमसा सिंचन्ति ) महावीरको नमस्कार करके यज्ञ करनेवाले हवन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ]

१६०५ मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।७ )

१६०६ सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥ १७ ( वी ) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४।८ )

१६०७ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।३ )

१६०८ अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥ १८ ( रि ) ॥
[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३।४ )

१६०९ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।५१।९ )

---

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६०५ ] हे इन्द्र ! ( उग्रस्य तव सख्ये मा भेम ) महान् वीर ऐसे तेरी मित्रतामें रहकर हम किसीसे न डरें । ( मा श्रमिष्म ) हम न थकें । ( वृष्णः ते ) उपासकोंकी कामना तृप्त करनेवाले तेरे ( महत् कृतं अभि चक्ष्यं ) महान् कार्य वर्णनीय हो गए हैं । ( तुर्वशं यदुं पश्येम ) हम तुर्वश और यदुको आनन्दित अवस्थामें देखें ॥ १ ॥

[ १६०६ ] ( वृषा ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सव्यां स्फिग्यं अनु ) अपने बांयें हाथके भागसे ( वावसे ) सबोंको आधार देता है । ( दानः अस्य न रोषति ) काटनेवाला हिंसक शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता । ( सारघेण संपृक्ताः धेनवः ) शहदकी मक्खीके शहदके समान मीठे दूधसे युक्त गायोंके समान आनन्ददायक सोम ! ( तूयं एहि ) तू यहां शीघ्र आ ! ( द्रव ) यज्ञमें शीघ्र पहुंच और हे इन्द्र ! ( पिब ) सोम पी ॥ २ ॥

[ १६०७ ] हे ( पुरू-वसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( मम याः इमाः गिरः ) मेरी जो ये स्तुतियां हैं, वे ( त्वा वर्धन्तु ) तुझे बढावें । ( पावक-वर्णाः शुचयः विपश्चितः ) अग्निके समान तेजस्वी और शुद्ध ज्ञानी ( स्तोमैः अभ्यनूषत ) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १६०८ ] ( अयं ) यह इन्द्र ( सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः ) हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध किया गया है । वह ( समुद्रः इव पप्रथे ) समुद्रके समान विस्तृत है । ( अस्य सत्यः सः महिमः शवः ) इस इन्द्रकी वह सत्य महिमा और वह बल प्रसिद्ध है, ( यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ) यज्ञोंमें और ब्राह्मणोंके राज्यमें उसकी स्तुति होती है ॥ २ ॥

[ १६०९ ] ( विश्वः अरिः आर्यः अयं ) सब लोकोंका स्वामी तथा श्रेष्ठ यह इन्द्र भी ( दासः अस्य शेवधिपा ) दासके समान जिस यज्ञके खजानेकी रक्षा करता है, ( सः ) वह यज्ञ ( अर्ये रुशमे पवीरवि तिरः चित् ) अर्य, रुशम और पवि इनमें गुप्त रहकर भी ( तुभ्या इत् अज्यते ) तुझे ही हवि प्रदान करता है ॥ १ ॥

१६१० तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यꣳ शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥ १९ ( त ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१२।१० )

१६११ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०५।४ )

१६१२ स नो हरीणां पत इन्दो देव प्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०५।५ )

१६१३ सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाꣳ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ३ ॥ २० ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ०नास्ति । स्व० १४ ] ( ऋ. ९।१०५।६ )

१६१४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳ हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।४३ )

[ १६१० ] ( तुरण्यवो विप्रासः ) यज्ञ करनेमें शीघ्रता करनेवाले ज्ञानी ( मधुमन्तं घृतश्चुतं ) मधुर दूध और घीकी आहुति जिसके लिए दी जाती है, ऐसे ( अर्कं आनृचुः ) पूज्य इन्द्रकी अर्चना करते हैं। ( अस्मे रयिः पप्रथे ) हमारा हविरूपी धन प्रसिद्ध हो। ( वृष्ण्यं शवः ) सोम देनेवाले बल प्रसिद्ध हों और ( अस्मे स्वानासः इन्दवः ) हमारे द्वारा शुद्ध किए गए सोमरस प्रसिद्ध हों ॥ २ ॥

[ १६११ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( नः गोमत् अश्ववत् ) हमें गाय और घोडोंसे युक्त धन ( धनिव ) दे। हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बल सम्पन्न सोम ! ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( गोषु शुचिं वर्णं च धारय ) गायके दूधमें शुद्ध वर्णको धारण कर ॥ १ ॥

गायका दूध सोममें मिला।

[ १६१२ ] ( हरीणां पते देव इन्दो ) हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोम देव ! ( प्सरस्तमः नर्यः सः ) अत्यन्त तेजस्वी और मानवोंका हित करनेवाला यह तू ( नः रुचे भव ) हमारा तेज बढानेवाला हो। ( सखा सख्ये इव ) जिसप्रकार एक मित्र दूसरे मित्रकी सहायता करता है, उसीप्रकार तू हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ १६१३ ] हे सोम ! ( त्वं सनेमि कं अस्मत् आ ) तू प्राचीनकालसे चले आनेवाले सुखको हमसे प्रकट कर, हे ( साह्वान् इन्दो ) शत्रुको हरानेवाले सोम ! ( बाधः परि ) बाधा डालनेवाले शत्रुओंका नाश कर, तथा ( द्वयुं अप ) दुहरा व्यवहार करनेवाले शत्रुको मार तथा ( अ-देवं अत्रिणं चित् ) दिव्यगुणोंसे रहित और खाऊ शत्रुको भी मार ॥ ३ ॥

[ १६१४ ] सोमको ऋत्विजलोग ( अञ्जते ) गायके दूधके साथ मिलाते हैं, ( व्यञ्जते ) अनेक रीतिसे मिलाते हैं, ( समञ्जते ) उत्तम रीतिसे मिलाते हैं ( क्रतुं रिहन्ति ) फिर इस मीठे सोमका स्वाद लेते हैं, ( मध्वा अभ्यञ्जते ) मीठे दूधके साथ मिलाते हैं ( सिंधोः उच्छ्वासे ) पानीके ऊंचे भागसे ( पतयन्तं उक्षणं ) गिरनेवाले सोमको एवं ( पशुं ) सबको देखनेवाले सोमको ( हिरण्यपावाः अप्सु गृभ्णते ) सोनेसे पानीमें पवित्र करके फिर पानीमें मिलाते हैं ॥ १ ॥

१६१५ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।४४ )

१६१६ अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥ २१ ( ले ) ॥
[ धा० ३९ । उ० नास्ति । स्व ७ ] ( ऋ. ९।८६।४५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ॥ ३ ॥ सप्तमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

[ १६१५ ] हे ऋत्विजो ! ( विपश्चिते पवमानाय गायत ) ज्ञानी और छानेजानेवाले सोमकी स्तुतिका गान करो। ( माहि धारा न अन्धः अत्यर्षति ) वह सोम बडी धाराके समान प्रवाहसे अन्न देता है। ( अहिः न ) सांपके समान ( जूर्णां त्वचं अति सर्पति ) गली हुई चमडीको वह छोडता है। ( वृषा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका वह सोमरस ( अत्यः न ) घोडेके समान ( क्रीडन् असरत् ) क्रीडा करता हुआ कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ १६१६ ] ( अग्रेगः राजा ) प्रगति करनेवाला राजा सोम ( आप्य-स्तविष्यते ) जलमें मिलाया जाता हुआ प्रशंसित होता है। ( अह्नां विमानः ) दिनको मापनेवाला सोम ( भुवनेषु अर्पितः ) जलमें रखा हुआ है। ( हरिः घृतस्नुः ) हरे रंगका और पानीमें मिलाया गया ( सु-दृशीकः अर्णवः ) सुन्दर दर्शनीय और पानीमें रहनेवाला ( ज्योतिरथः ) तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा ( रायः ओक्यः ) यह सोम धनके घरको रखनेवाला है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥



# षोडश अध्याय

## इन्द्र–देवता

इस सोलहवें अध्यायमें अनेक देवताओंकी स्तुति है। उनमें इन्द्र देवताकी बडी स्तुति है। वह इसप्रकार है—

१ इन्द्रः सुतस्य विष्णवि मदे अस्य वृष्ण्यं शवः वावृधे [१५७४]- इन्द्र सोमरस पीनेके बाद विशेष आनन्द प्राप्त करके इस यजमानका वीर्य और बल बढाता है।

२ आयवः अद्य पूर्वथा अस्य तं महिमानं अनुष्टुवन्ति [ १५७४ ]- मनुष्य आज पहलेके समान इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं।

३ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशग्धि [ १५७९ ]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! सब संरक्षणके साधनोंसे तू समर्थ हुआ है।

४ हे शूर ! वसुविदं यशसं, भगं न, त्वा अनु चरामसि [ १५७९ ]- हे शूर इन्द्र ! धनसे युक्त, यशस्वी और भाग्यवान्के समान रहनेवाले तेरे अनुकूल होकर ही हम आचरण करें।

५ अश्वस्य पौरः गवां पुरुकृत् असि [१५८०]- इन्द्र घोडोंको पुष्ट करनेवाला और गायोंका पोषण करनेवाला है।

६ हे इन्द्र ! त्वे दानं नकिः परमर्धिषत्। यत् यामि

तत् आभर [ १५८० ]- हे इन्द्र ! तेरे दान कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । जो मैं मांगता हूँ, वह मुझे भरपूर दे ।

७ हे देव ! हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- हे इन्द्र देव ! जैसे सोनेसे हौज भरा हुआ हो, वैसे ही तू सम्पत्तिसे भरा हुआ है।

८ वसुत्तये एहि [ १५८० ]- धन देनेके लिए तू आ।

९ चेरवे भगं विदाः [ १५८० ]- उत्तम आचरण करनेवालेको भाग्य दे ।

१० हे मघवन् ! गविष्टये चावृषस्व [ १५८० ]- हे धनवान् इन्द्र ! गायकी इच्छा करनेवाले मुझे गायें दे ।

११ अश्वं इष्टये उत् [ १५८० ]- घोडेकी इच्छा करनेवालेको घोडे दे।

१२ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे [ १५८२ ]- तू अनेक अर्थात् हजारों और सैकडों गायोंके झुण्ड दान करनेके लिए पासमें रखता है ।

१३ हे वृषन् ! कया ऊत्या त्वं नः अभि प्रमन्दसे [१५८६]- हे इन्द्र ! तू कौनसे संरक्षण सामर्थ्यसे हमें अधिक आनन्द देता है ।

१४ इन्द्रः मह्ना रोदसी पप्रथत् [ १५८८ ]- इन्द्रने अपनी शक्तिसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको विस्तृत किया ।

१५ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया ।

१६ इन्द्रे विश्वा भुवनानि येमिरे [१५८८]- इन्द्रमें सब भुवन रहते हैं ।

१७ हे राधानां पते ! गिर्वणः वीर ! यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु [ १६०० ]- हे धनके अधिपते । हे स्तुत्य वीर इन्द्र ! जो तेरे ये स्तोत्र हम गाते हैं, वह तेरी यह विभूति सत्य हो ।

१८ हे शतक्रतो ! अस्मिन्वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ [१६०१]- हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस युद्धमें हमारी रक्षा करनेके लिए तू उठकर तैय्यार हो और स्थिर रह ।

१९ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म [१६०५]-तेरे समान शूरकी मित्रतामें हम न डरें और न थकें ।

२० वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्यं [१६०५]- बल युक्त तूने महान् प्रशंसनीय कार्य किए हैं ।

२१ दानः अस्य न रोहति [ १६०६ ]- काटनेवाला शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता ।

२२ पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूषत [ १६०७ ]- अग्निके समान तेजस्वी ऐसे शुद्ध ज्ञानी स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

२३ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रः इव पप्रथे [ १६०८ ]- यह हजारों ऋषियों द्वारा बलवान्के रूपमें प्रशंसित किया गया इन्द्र समुद्रके समान विस्तृत है ।

२४ तुरण्यवो विप्रासः अर्कं आनृचुः [ १६१० ]- शीघ्रता करनेवाले ज्ञानी इन्द्रकी अर्चना करते हैं ।

इसप्रकार इन्द्रका वर्णन यहां किया गया है । इन्द्र बलवान् है, उसकी महिमा ज्ञानी विद्वान् वर्णन करते हैं । सब संरक्षणके साधन उसके पास तैय्यार रहते हैं । वह इन्द्र सब प्रकारके धन अपने पास रखता है । वह यशस्वी और भाग्यवान् है । घोडे और गायोंका वह उत्तम पालन करता है । जैसे हौज सोनेसे भरा हुआ हो, वैसे ही यह इन्द्र धनसे भरपूर है । सदाचारी मनुष्यको वह धन देता है । उसके पास देनेके लिए हजारों गायें और घोडे हैं । उसके शौर्य इस द्युलोक और भूलोकमें चारों ओर फैले हुए हैं । उसने सूर्यको तेजस्वी बनाकर आकाशमें स्थापित किया । भूमि भी उसीके आधार पर है । वह सब युद्धोंमें हमारी रक्षाके लिए तैय्यार और स्थिर रहे और चारों ओरसे हमारी रक्षा करे । इसके संरक्षणमें यदि हम रहें तो हमें किसीसे भी डर नहीं रहेगा । ऐसा यह इन्द्र है ।

## इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निका वर्णन इसप्रकार है—

१ इन्द्राग्नी दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूनुत [ १५७६ ]- इन्द्र और अग्निने दासके नव्वे नगरोंको एक आक्रमणसे हिला दिया ।

२ इन्द्राग्नी ! वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि [ १५७८ ]- हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे बल और अन्न एकत्र हैं, अर्थात् तुम मिलकर जो करना होता है, करते हो ।

३ अप्तूर्यं युवोः हितम् [ १५७८ ]- उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले तुम्हारे बल तुममें ही हैं ।

दासलोगोंकी नव्वे नगरियोंको एक ही आक्रमणसे हिला डाला, ऐसा युद्ध-कौशल्य इनका है ।

## अग्नि

अग्निका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार है—

१ होता मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां दयते

[ १५८३ ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला और आनन्द बढाने-वाला जो अग्नि है, वह हरप्रकारके धन लोगोंको देता है।

२ दस्म विश्पते ! सुदानवः देवयुवः गीर्भिः मर्मृज्यन्ते, तनये तोके च मघोनां राधः पर्षि [ १५८४ ]- हे सुन्दर प्रजापालक अग्ने ! उत्तम दान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं। ऐसा तू पुत्रपौत्रोंको धनवानोंके पास रहनेवाला धन दे। अर्थात् स्तुति करनेवालोंको धन मिलता है और वह धन उन्हें अग्नि देता है।

## सोम और इन्द्र

१ समत्सु अनपच्युता भवथः [ १५९१ ]- तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते, ऐसे ये दोनों शूरवीर हैं।

## पूषा

१ गोपर्णि अश्वसां वाजसां नृवत् धियं नः ऊतये कृणुहि [ १५९३ ]- गाय देनेवाली, घोडे देनेवाली, अन्न देनेवाली और पुत्र देनेवाली बुद्धिको हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना।

## वरुण

१ हे वरुण ! मे इमं हवं श्रुधि। अद्य मृडय। अवस्युः त्वां आ चके [ १५८५ ]- हे वरुण ! यह मेरी स्तुति सुन। आज मुझे सुखी कर। अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

वरुण लोगोंको सुखी और सुरक्षित करता है।

## मरुत्

१ हे सत्यशवसः नरः शशमानस्य स्वेदस्य वेनतः कामस्य विद [ १५९४ ]- हे उत्तम बलसे युक्त मरुतो ! सैनिको ! तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पसीनेसे नहाये हुए तथा फलकी इच्छा करनेवाले स्तोताओंको इष्ट फल दो।

२ अमृतस्य सूनवः नः गिरः उपश्रृण्वन्तु, नः सुमृळीकाः भवन्तु [ १५९५ ]- ये अमर प्रजापतिके पुत्र मरुत् वीर हमारी स्तुति सुनें और हमें सुख देनेवाले हों।

मरुत् वीर सैनिक हैं, वे सबकी रक्षा शत्रुओंको नष्ट करके करते हैं।

## द्यावापृथिवी

१ हे शुची ! प्रशस्तये उप, ध्वी वां, उपस्तुतिं महि, अभि भरामहे [१५९६]- हे पवित्र द्यावापृथिवियो ! तुम्हारी स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर, तेज युक्त तुम दोनोंको स्तुति स्तोत्र बडे प्रमाणमें अर्पण करते हैं।

यहां द्यु और पृथिवी देवता " शुची " शुद्ध हैं और " ध्वी " तेजस्वी हैं; ऐसा कहा है।

२ तन्वा दक्षेण मिथः पुनाने राजथः। सनात् ऋतं ऊह्याथे [ १५९७ ]- तुम अपने शरीरसे और अपने सामर्थ्यसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोककी शुद्धि करके प्रकाशित होते हो और हमेशा सत्य-यज्ञ-को सिद्ध करते हो।

३ मही ! मित्रस्य साधथः, ऋतं तरन्ती, पिप्रती, यज्ञं परि निषेदथुः [ १५९८ ]- हे महान् द्यावापृथिवियो ! तुम अपने मित्रका कार्य करती हो, सत्यका संरक्षण करती हो, कार्य पूर्ण करती हो और यज्ञको सिद्ध करती हो।

तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करनेवालोंका तुम संवर्धन करती हो। सत्यका तारण करके उनका पोषण करती हो, और विश्वयज्ञ पूर्ण करती हो। विश्वमें एक प्रकारका महायज्ञ चालू है। उसे यथायोग्य रीतिसे ये द्यु और पृथिवी करती हैं। इस यज्ञसे सबोंका कल्याण होता है।

## गौ

१ हे गावः ! अवटे उपवद। मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया [ १६०२ ]- हे गायो ! यज्ञके स्थानपर आओ और शब्द करो। तुम महान् यज्ञके कार्य करनेवाली हो। तुम्हारे दोनों कानोंमें सोनेके अलंकार हैं।

यज्ञ जिस जगह होता है, वहां गायें हों और उनका रंभाना सुनाई दे। गायें अपने दूध व घीसे यज्ञको उत्तम रीतिसे सिद्ध करती हैं। गायके दूध और घीके अभावमें यज्ञ सिद्ध होनेवाला ही नहीं है।

२ सारघेण संपृक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- शहदके समान मीठा दूध गायें भरपूर देती हैं। उनसे उत्तम घी मिलता है। ( ह्य्यंगवीनं घृतं ) कलके दूधसे आज तैय्यार किये गये घृतका हवनमें आहुति देनेके लिए उपयोग करना चाहिए।

## सोम

१ पुनानः हरिण्या अया रुचा, सूरः सयुग्वभिः न, विश्वा द्वेषांसि तरति [१५९०]- शुद्ध होनेवाला सोमरस अपने हरे रंगके तेजसे, सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसीप्रकार सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है।

२ पुनानः हरिः अरुषः [१५९०]- स्वच्छ होनेवाला सोम चमकता है ।

३ पणीनां वसु विदः [१५९२]- पणि-व्यापारियों-से धनको तूने प्राप्त किया ।

४ ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः स्वे दमे संमर्जयसि [ १५९२ ]- यज्ञको आधार देनेवाले पानीसे तू अपने स्थान पर छाना जाता है ।

सोमरसमें पानी मिलाकर उसे छानकर शुद्ध किया जाता है।

५ परावतः साम तत् [ १५९२ ]- यज्ञमें दूरसे ही सामगायन सुननेमें आता है। उसी कारण वहां यज्ञ चालू है, और सोमरस छाना जाता है, यह जाना जा सकता है ।

६ हे इन्दो ! नः गोमत् अश्वमत् धानिव [१६११] -हे सोम ! हमें गायों और घोडोंसे युक्त धन दे ।

७ हे सुदक्ष ! सुतः गोषु शुचिं वर्ण धारय [ १६११ ]- हे उत्तम बल बढानेवाले सोम ! रस निचोडे जानेके बाद गौदुग्धके उत्तम रंगको धारण कर । गायके दूधमें मिल जा ।

८ हे हरीणां पते देव इन्दो ! प्सरस्तमः नर्यः नः रुचे भव [ १६१२ ]- हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढा ।

९ साह्वान् ! बाधः परि, द्वयुं अप [ १६१३ ]- हे शत्रुको हरानेवाले सोम ! बाधा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर और दुहरा व्यवहार करनेवाले दुष्टोंका नाश कर ।

१० अहिः न, जीर्णां त्वचं अति सर्पति [१६१५] – सांप जैसे अपनी केंचुली उतार देता है, उसीप्रकार सोम अपनी छालको दूर करता है । सोम कूटनेके बाद उसकी छाल अलग हो जाती है ।

११ अग्रेगः राजा आप्यः स्ताविष्यते [ १६१६ ]- प्रगति करनेवाला, राजा कर्तव्य करनेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है । राजा सोम पानीमें मिलते समय प्रशंसित होता है।

१२ हरिः घृतस्नुः सुदृशीकः अर्णवः ज्योतीरथः गयः ओक्यः [१६१६]- हरे रंगका पानीमें मिलाया गया सुन्दर दर्शनीय और तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा यह सोम मानों तेजोंका घर ही है ऐसा दिखाई देता है ।

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाया जाता है और उसे छाना जाता है । तब वह सोम चमकने लगता है । सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे चमकता है, उसीप्रकार यह सोमरस चमकता है, उस समय वह छाना जाता है, उस समय सामगान शुरु होता है । वह सामगान बडी आवाजसे किए जानेके कारण दूरसे ही सुनाई देता है ।

बादमें उसमें गायका दूध मिलाकर उसका हवन करते है, फिर उसे पिया जाता है । इसप्रकार सोमका वर्णन है ।

इन देवताओंका इस अध्यायमें वर्णन है ।

---

# सुभाषित

१ आयवः अस्य महिमानं अनुष्टुवन्ति [ १५७४ ] – मनुष्य इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

२ इषः आवृणे [ १५७५ ]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं प्रार्थना करता हूँ ।

३ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूनुतम् [१५७६]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम शत्रुकी नब्बे-नगरियोंको एक ही प्रयत्न - आक्रमण - से हिला डालते हो ।

४ धीतयः ऋतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [१५७७]- बुद्धिमान् याज्ञिक सत्यके मार्गसे यज्ञके पास आकर बैठते हैं ।

५ वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि, अप्तूर्यं युवोः हितम् [ १५७८ ]- तुम्हारे बल और अन्न एक जगह रहते हैं । तुम्हारे बल शुभ कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं ।

६ हे शचीपते इन्द ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशग्धि [१५७९]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! सब संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होनेके कारण तू सामर्थ्यवान् है ।

७ वसुविदं यशसं भगं न त्वा अनु चरामसि [१५७९]- धनवान् और यशस्वी तेरे, जिसप्रकार भाग्यवान्के पीछे सब चलते है, उसीप्रकार हम अनुकूल हों ऐसा आचरण करते हैं ।

८ अश्वस्य गौरः गवां पुरुकृत् असि [ १५८० ]- घोडेको पुष्ट करनेवाला और गायोंका पोषण करनेवाला है।

९ हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- तू सोनेका स्रोत है।

१० त्वे दानं न किः परिमर्धिषत् [ १५८१ ]- तेरे दान कोई भी नष्ट नहीं करता ।

११ यत् यत् यामि तत् आभर [ १५८१ ]- मैं जो जो मांगता हूं वह वह मुझे दे।

१२ त्वं वसुत्तये एहि [ १५८१ ]- तू धन देनेके लिए आ।

१३ चेरवे भगं विदा [ १५८१ ]- सदाचरण करनेवालेको भाग्य दे।

१४ हे मघवन्! गविष्टये उत् वावृधस्व [ १५८१ ] - गायकी इच्छा करनेवालेको गायें दे।

१५ हे इन्द्र! अश्वं इष्टये उत् [ १५८१ ]- हे इन्द्र! घोडेकी इच्छा करनेवालेको घोडे दे।

१६ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे [ १५८२ ]- तू बहुतसे हजारों और सैकडों गायोंके झुण्ड दानके लिए देता है।

१७ पुरं इन्द्रं अवसे गायन्तः विप्रवचसः आचक्रम [ १५८२ ]- शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रको अपने रक्षण करनेके लिए ज्ञानयुक्त भाषण करनेवाले हम बुलाते हैं।

१८ होता मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां दयते [१५८३]- देवोंको बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला अग्नि सब धन लोगोंको देता है।

१९ दस्म विश्पते! सुदानवः देवयन्तः, रथ्यं अश्वं न, गीर्भिः मर्मृज्यन्ते [१५८४]- हे दर्शनीय प्रजापालक! उत्तम दान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले याजक, रथमें जुडे हुए घोडेके समान, अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं।

२० तनये तोके उभे मघोनां राधः पर्षि [१५८४]- पुत्र और पौत्र दोनोंको धनवालोंके पास रहनेवाले धन दे।

२१ अवस्युः त्वां आ चक्रे। हे वरुण! मे इमं हवं श्रुधि, अद्य मृडय च [१५८५]- अपना संरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

२२ हे वृषन्! कया ऊत्या त्वं नः अभि प्रमन्दसे [ १५८६ ]- हे बलवान् इन्द्र! कौनसे संरक्षणके सामर्थ्यसे तू हमें अधिक आनन्दित करता है?

२३ कया स्तोतृभ्यः आ भर [ १५८६ ]- कौनसी संरक्षणकी शक्तिसे तू स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है?

२४ इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत् [ १५८८ ]- इन्द्र अपनी शक्तिसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको भर देता है।

२५ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको तेजस्वी बनाया।

२६ इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे [१५८८]- इन्द्रमें ही सब भुवन रहते हैं।

२७ विश्वकर्मन्! हविषा वावृधानः स्वयं तन्वं स्वा हि ते यजस्व [ १५८९ ]- हे सब कर्म करनेवाले इन्द्र! हविसे बढनेवाला तू स्वयं करनेवाले विश्वरूपी यज्ञके लिए स्वयंको अर्पित कर।

२८ अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु [१५८९]- अन्य यज्ञ न करनेवाले लोग चारों ओरसे मूर्च्छित होकर गिर जायें।

२९ इह मघवा सूरिः अस्तु [ १५८९ ]- यहां इन्द्र सब जाननेवाला हो।

३० पुनानः विश्वा द्वेषांसि तरति [१५९०]- पवित्र वीर शत्रुओंका नाश करता है।

३१ सूरः सयुग्वभिः [१५९०]- सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है।

३२ दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः संयसते [१५९१] -दिव्य और दर्शनीय ऐसा यह रथ किरणोंसे तेजस्वी हुआ हुआ दीखता है।

३३ जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् [ १५९१ ]- विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं।

३४ समत्सु अनपच्युता भवथः [ १५९१ ]- युद्धोंमें तुम दोनों नहीं हारते।

३५ गोषाणिं अश्वसां वाजसां नृवत् धियं नः ऊतये कृणुहि [ १५९३ ]- गाय, घोडे, अन्न और पुत्र देनेवाली बुद्धिको हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना।

३६ तन्वा दक्षेण मिथः पुनाने राजथः [ १५९७ ] -शरीर और बलसे तुम दोनों परस्परको शुद्ध करते हुए तेजस्वी होते हो।

३७ मित्रस्य साधथः [ १५९८ ]- तुम दोनों मित्रकी सहायता करते हो।

३८ ऋतं तरन्ती पिप्रती [१५९८]- यज्ञको पूर्ण करने और यज्ञको पूर्ण कराते हो।

३९ नः तत् वचः ओहसे [१५९९]- हमारी प्रार्थना ध्यान देकर तू सुनता है।

४० राधानां पते गिर्वाहः वीर! ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु [ १६०० ]- हे धनोंके स्वामी स्तुत्य वीर! तेरे स्तोत्र वैभव दिखानेवाले और सत्य हों।

४१ हे शतक्रतो! अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ [ १६०१ ]- हे सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र! इस युद्धमें हमारे रक्षणके लिए तैय्यार होकर स्थिर रह।

*

४२ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम [१६०५]- उग्रवीर ऐसे तेरी मित्रतामें हमें कोई भय नहीं हो।

४३ मा श्रमिष्म [ १६०५ ]- हम न थकें।

४४ वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्यं [ १६०५ ]- भक्तोंकी इच्छा तृप्त करनेवाले तेरे महान् वर्णनके योग्य कृत्य हुए हैं।

४५ वृषा सव्यां स्फिग्यं अनु वावसे [ १६०६ ]- बलवान् इन्द्र अपने बायें हाथसे सबको आधार देता है।

४६ दानः अस्य न रोषति [ १६०६ ]- काटनेवाला शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता। ( दानः= ' दा '- काटना, ' दानः '- काटनेवाला )

४७ सारघेण संपृक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- मधुर दूधसे युक्त ये गायें हैं।

४८ पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूषत [ १६०७ ]- अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध विद्वान् स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं।

४९ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रः इव पप्रथे [१६०८]- यह इन्द्र हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध किया गया है। वह समुद्रके समान महान् हो गया है।

५० अस्य सत्यः महिमा शवः यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे [ १६०८ ]- इसकी वह सत्य महिमा और सामर्थ्य ब्राह्मणोंके यज्ञके राज्यमें प्रशंसित होता है।

५१ अयं अस्य विश्वः आर्यः शेवधिपा अरिः [१६०९] - यह इस यज्ञका और सब आर्योंका निधि रक्षक है।

५२ देवः सोमः भ्वरस्तमः नर्यः सः नः रुचे भव [ १६१२ ]- हे सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढानेवाला हो।

५३ इन्दो साह्वान् ! बाधः परि, द्वयुं अप [१६२३] - हे शत्रुको हरानेवाले सोम ! बाधा डालनेवाले और दुहरा व्यवहार करनेवाले शत्रुओंको दूर कर।

५४ अहिः न, जीर्णां त्वचं अति सर्पति [१६१५]- सांपके समान वह गली हुई चमडीको निकाल फेंकता है।

---

## उपमा

१ भगं न [ १५७९ ]- भाग्यके समान तेरे ( अनु चरामसि ) अनुकूल हम चलते हैं। जैसे भाग्य अनुकूल होता है, उसीप्रकार तेरे अनुकूल हम व्यवहार करते हैं।

२ हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- जिसप्रकार सोनेसे भरा हुआ हौज होता है, उसीप्रकार तू धनसे भरा हुआ है।

३ मधोः न प्रथमानि पात्रा [ १५८३ ]- मीठे सोमरसके मुख्य पात्रके समान इस अग्निको ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तुतियां प्राप्त हों।

४ रथ्यं अश्वं न [ १५८४ ]- रथमें जुडे हुए घोडेके समान ( गीर्भिः मर्मृज्यन्ते ) अपनी वाणीसे अग्निकी स्तुति करते हैं।

५ सूरः सयुग्वभिः न [१५९०]- सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकार दूर करता है, उसीप्रकार ( पुनानः रुचा विश्वा द्वेषांसि तरति ) स्वच्छ होनेवाला सोम अपने प्रकाशसे सब शत्रुओंको दूर करता है।

६ परावतः तत् साम न [१५९२]- दूरसे जिसप्रकार वह सामगान सुनाई देता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहां ऋत्विज गाते हैं। यज्ञशालामें ऋत्विज सामगान करते हैं, वह दूरसे ही सुनाई देता है, और उससे वहां यज्ञ चल रहा है, ऐसा ज्ञात होता है।

७ कपोतः गर्भधिं इव [१५९९]- कबूतर जिसप्रकार अपनी कबूतरीकी तरफ जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) वह तेरे पास आता है।

८ समुद्रः इव पप्रथे [ १६०८ ]- समुद्रके समान वह इन्द्र महान् है।

९ सखा सख्ये इव [ १६१२ ]- मित्र जिसतरह अपने मित्रकी सहायता करता है, उसीतरह ( सः नः रुचे भव ) तू हमारा तेज बढानेवाला हो।

१० सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं उक्षणं [१६१४]- नदीके पानीमें जिसप्रकार बैल डुबकी लगाता है, उसीतरह पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

११ मह्रि धारा न अन्धः अत्यर्षति [१६१५]- मोटी धारासे अन्न जैसे छाना जाता है, उसीप्रकार अन्नरूपी सोम धारासे छाना जाता है।

१२ अग्रेगः राजा [१६१६]- प्रगति करनेवाला राजा जिसप्रकार प्रशंसित होता है, उसीप्रकार (आप्यः स्तविष्यते) जलमें मिलाया जानेवाला सोम प्रशंसित होता है।

# षोडशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १५७३ | ८।३।७ | मेध्यातिथिः काण्वः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १५७४ | ८।३।८ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| १५७५ | ३।१२।५ | विश्वामित्रो गाथिनः | इन्द्राग्नी | गायत्री |
| १५७६ | ३।१२।६ | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| १५७७ | ३।१२।७ | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| १५७८ | ३।१२।८ | विश्वामित्रो गाथिनः | " | " |
| १५७९ | ८।६१।५ | भर्गः प्रागाथः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १५८० | ८।६१।६ | भर्गः प्रागाथः | " | " |
| १५८१ | ८।६१।७ | भर्गः प्रागाथः | " | " |
| १५८२ | ८।६१।८ | भर्गः प्रागाथः | " | " |
| १५८३ | ८।१०३।६ | सोभरिः काण्वः | अग्निः | " |
| १५८४ | ८।१०३।७ | सोभरिः काण्वः | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| १५८५ | १।२५।१९ | शुनःशेप आजीगर्तिः | वरुणः | गायत्री |
| १५८६ | ८।९३।१९ | सुकक्ष आंगिरसः | इन्द्रः | " |
| १५८७ | ८।३।५ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १५८८ | ८।३।६ | मेध्यातिथिः काण्वः | " | " |
| १५८९ | १०।८१।६ | विश्वकर्मा भौवनः | विश्वकर्मा | त्रिष्टुप् |
| १५९० | ९।१११।१ | अनानतः पारुच्छेपिः | पवमानः सोमः | अत्यष्टिः |
| १५९१ | ९।१११।३ | अनानतः पारुच्छेपिः | " | " |
| १५९२ | ९।१११।२ | अनानतः पारुच्छेपिः | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| १५९३ | ६।५३।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | पूषा | गायत्री |
| १५९४ | १।८६।८ | गोतमो राहूगणः | मरुतः | " |
| १५९५ | ६।५२।९ | ऋजिश्वा भारद्वाजः | विश्वेदेवाः | " |
| १५९६ | ४।५६।५ | वामदेवो गौतमः | द्यावापृथिवी | " |
| १५९७ | ४।५६।६ | वामदेवो गौतमः | " | " |
| १५९८ | ४।५६।७ | वामदेवो गौतमः | " | " |
| १५९९ | १।३०।४ | शुनःशेप आजीगर्तिः | इन्द्रः | " |
| १६०० | १।३०।५ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १६०१ | १।३०।६ | शुनःशेप आजीगर्तिः | इन्द्रः | गायत्री |
| १६०२ | ८।७२।१२ | हर्यतः प्रागाथः | अग्निः हवींषि वा | ,, |
| १६०३ | ८।७२।११ | हर्यतः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १६०४ | ८।७२।१० | हर्यतः प्रागाथः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १६०५ | ८।४।७ | देवातिथिः काण्वः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६०६ | ८।४।८ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १६०७ | ८।३।३ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १६०८ | ८।३।४ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १६०९ | ८।५१।९ | वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ) | ,, | ,, |
| १६१० | ८।५१।१० | वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ) | ,, | ,, |
| १६११ | ९।१०५।४ | पर्वतनारदौ | पवमानः सोमः | उष्णिक् |
| १६१२ | ९।१०५।५ | पर्वतनारदौ | ,, | ,, |
| १६१३ | ९।१०५।६ | पर्वतनारदौ | ,, | ,, |
| १६१४ | ९।८६।४३ | अत्रिर्भौमः | ,, | जगती |
| १६१५ | ९।८६।४४ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |
| १६१६ | ९।८६।४५ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |



# अथ सप्तदशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ७, १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ( तृणपाणिः ) ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ रेभसूनू काश्यपौ; ८ नृमेध आंगिरसः; ९, ११ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; १२ विरूप आंगिरसः; १३ वत्सः काण्वः ॥ १, ३, ७, १२ अग्निः; २, ८-११, १३, १४ इन्द्रः, ४ विष्णुः; ५ ( १ ) वायु, ५ ( २-३ ) इन्द्रवायू; ६ पवमानः सोमः ॥ १-२, ७, ९, १०, १२, १३, १४ गायत्री; ३, ८ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ११ उष्णिक् ।

१६१७ विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१॥ (ऋ. १।२६।१०)

१६१८ यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥ (ऋ १।२६।६ )

१६१९ प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥ १ (ही) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।२६।७ )

१६२० इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।१० )

१६२१ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।६ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १६१७ ] हे ( सहसः यहो ) बलके पुत्र! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्नियोंके साथ तू ( इमं यज्ञं ) इस यज्ञमें आ और ( इदं वचः ) यह स्तुति सुन और ( चनः धाः ) हमें अन्न दे ॥ १ ॥

[ १६१८ ] ( यत् चित् हि ) यद्यपि ( शश्वता तना ) नित्य और विस्तृत हवि अर्पण करके ( देवं देवं यजामहे ) प्रत्येक देवताके लिए हम यजन करते हैं, तो भी ( हविः त्वे इत् हूयते ) हवि तुझमें ही दी जाती है ॥ २ ॥

[ १६१९ ] ( विश्पतिः होता ) प्रजाओंका पालक हवन करनेवाला ( मन्द्रः वरेण्यः ) आनंद बढानेवाला श्रेष्ठ अग्नि ( नः प्रियः अस्तु ) हमें प्रिय हो, तथा ( स्वग्नयः वयं प्रियाः ) उत्तम रीतिसे अग्निको रखनेवाले हम उस अग्निके प्रिय हों ॥ ३ ॥

[ १६२० ] हे ऋत्विजो ! ( विश्वतः जनेभ्यः परि ) सब लोकोंमें श्रेष्ठ ऐसे ( इन्द्रं वः हवामहे ) इन्द्रको तुम सबके हितके लिए हम बुलाते हैं, वह इन्द्र ( अस्माकं केवलः अस्तु ) सिर्फ हम ही को अधिक लाभ देनेवाला होवे ॥१॥

[ १६२१ ] हे ( सत्रा-दावन् वृषन् ) एकदम सब फल देनेवाले और बलवान् इन्द्र ! ( सः ) वह तू ( नः अमुं चरुं अपावृधि ) हमारे लिए इस साफ अन्नको स्वीकार कर और ( अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः ) हमारा प्रतीकार करनेवाला मत हो ॥ २ ॥

१६२२ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥ २ ( र ) ॥
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।७।८ )

१६२३ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४८।९ )

१६२४ पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ २ ॥ ३ ( की ) ॥
[ धा० ११ । उ० ८ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।४८।१० )

१६२५ किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१००।६ )

१६२६ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१००।५ )

---

[ १६२२ ] ( ईशानः अप्रतिष्कुतः ) सबका ईश्वर और हमारा निषेध न करनेवाला तथा ( वृषा ) बलवान् इन्द्र ( ओजसा कृष्टीः इयर्ति ) अपने बलसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्योंके पास जाता है ( वंसगः यूथा इव ) जैसे बैल गायोंके झुण्डमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १६२३ ] हे ( वसो ) निवासक अग्ने ! ( चित्रः त्वं ) सुन्दर दर्शनीय ऐसा तू ( ऊत्या राधांसि नः चोदय ) रक्षणसे युक्त धन हमें दे । हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अस्य रायः रथीः असि ) तू इन धनोंको रथसे ले जानेवाला है । ( नः तुचे गाधं नु विदः ) हमारे पुत्रोंको प्रतिष्ठाका स्थान प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १६२४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं ) तू ( अ-प्रयुत्वभिः ) अविरोधी भावनाओंसे युक्त और ( अ-दब्धैः ) किसीके द्वारा न दबाये जानेवाले ( पर्तृभिः ) संरक्षणके साधनोंके द्वारा ( तोकं तनयं पर्षि ) हमारे पुत्र और पौत्रोंका पालन कर । ( दैव्या हेडांसिः नः युयोधि ) देवोंके क्रोधको हमसे दूर कर । ( अ-देवानि ह्वरांसि च ) मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको भी हमसे दूर रख ।

[ १६२५ ] हे ( विष्णो ) व्यापक देव ! ( ते तत् नाम ) वह तेरा नाम ( किं परिचक्षि ) क्या प्रसिद्ध होने योग्य है ? ( यत् नाम ) जो नाम ( शिपि-विष्टः अस्मि इति प्र ववक्षे ) किरणोंसे व्याप्त मैं हूं, ऐसा अर्थ दिखाता है । इसलिए ( एतद् वर्पः अस्मत् मा अपगूह ) यह रूप हमसे दूर मत कर ( यत् ) क्योंकि ( समिथे ) संग्राममें ( अन्यरूपः इत् ) दूसरा रूप धारण करके ही तू हमारा सहायक ( बभूव ) होता है ॥ १ ॥

[ १६२६ ] हे ( शिपि-विष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए विष्णु ! ( ते हव्यं तत् ) तेरे उस पूजनीय नामकी ( अर्यः वयुनानि विद्वान् ) आर्य और सब कर्मोंको जाननेवाला विद्वान् मैं ( अद्य प्रशंसामि ) आज प्रशंसा करता हूँ । ( तं तवसं ) उस बलवान् तथा ( अस्य रजसः पराके क्षयन्तं ) इस रजोलोकसे दूर रहनेवाले ( त्वा ) तेरा ( अ-तव्यान् ) छोटा भाई मैं ( गृणामि ) तेरी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१६२७ वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ४ ( ते ) ॥
[ धा० ४४ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ७।१००।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१६२८ वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।४७।१ )

१६२९ इन्द्रश्च वायवेषाꣳसोमानां पीतिमर्हथः ।
युवाꣳहि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।४७।२ )

१६३० वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथꣳशवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातꣳसोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ ( ता ) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।४७।३ )

---

[ १६२७ ] हे ( विष्णो ) विष्णुदेव ! ( ते आसः आ ) तेरे मुंहके पास आकर ( वषट् कृणोमि ) वषट्कार-पूर्वक हव्य पदार्थोंका मैं हवन करता हूँ। हे ( शिपिविष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए हुए देव ! ( तत् मे हव्यं जुषस्व ) तू मेरी उस हविको स्वीकार कर। ( सुष्टुतयः मे गिरः ) उत्तम स्तुति करनेवाली मेरी वाणियां ( त्वा वर्धन्तु ) तेरी महिमा बढावें। हे विष्णो ! ( यूयं ) तेरे साथ सब देवता ( स्वस्तिभिः नः सदा पात ) कल्याण करनेवाली शक्तियोंसे हमारी सदा रक्षा करें ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६२८ ] हे ( वायो ) वायो ! ( शुक्रः ) निर्दोष मैं ( दिविष्टिषु ) यज्ञोंमें ( ते ) तुझे ( मध्वः ) सोमरस ( अग्रं अयामि ) सबसे प्रथम अर्पण करता हूँ। हे ( देव ) देव ! ( स्पार्हः ) प्रशंसनीय ऐसा तू ( नियुत्वता ) नियुत नामक घोडेसे ( सोमपीतये आ याहि ) सोमपान करनेके लिए आ ॥ १ ॥

[ १६२९ ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( एषां सोमानां पीतिं अर्हथः ) दोनों इस सोमके पीनेके योग्य हो। ( हि ) इसीलिए ( निम्नं आपः न ) जिसप्रकार नीचेकी तरफ पानीका प्रवाह बहता है, उसप्रका ( सध्र्यक् ) एकदम ( युवां इन्दवः यन्ति ) तुम्हारे पास सोमके प्रवाह जाते हैं ॥ २ ॥

[ १६३० ] हे ( वायो ) वायु ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( शवसः पती ) बलके स्वामी और ( शुष्मिणा बलवान् हो। ( नियुत्वन्ता ) नियुत नामक घोडे रखनेवाले तुम दोनों ( नः ऊतये ) हमारे रक्षणके लिए और ( सोम पीतये ) सोम पीनेके लिए ( सरथं आयातं ) एक रथसे आओ ॥ ३ ॥

१६३१ अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिँ हिन्वन्ति यातवे ॥ १ ॥ ( ऋ ९।९९।२ )

१६३२ तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९९।३ )

१६३३ तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ३ ॥ ६ ( लु ) ॥
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ऋ. ९।९९।४ )

१६३४ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
( ऋ. १।२७।१ )

१६३५ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥
( ऋ. १।२७।२ )

१६३६ स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥ ७ ( टि ) ॥
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।२७।३ )

---

[ १६३१ ] ( क्षपा अध ) रात बीत जाने पर प्रातःकाल ( परिष्कृतः ) जलका मिश्रण करके शोभायमान हुआ हुआ सोम तैय्यार होता है, ऐसा हे सोम ! तू ( वाजान् अभि प्रगाहसे ) अन्नकी ओर जाता है। ( विवस्वतः धियः ) संस्कार करनेवालोंकी अंगुलियां ( हरिं यातवे ) हरे रंगके सोमको कलशमें जानेके लिए ( यदि हिन्वन्ति ) जब प्रेरणा करती हैं, तब तू सवनमें जाता है ॥ १ ॥

[ १६३२ ] ( अस्य तं मर्जयामसि ) इस सोमके उस रसको हम छानते हैं। ( यः मदः इन्द्रपातमः ) जो आनन्द बढानेवाला सोमरस इन्द्रके पीनेके योग्य है। ( यं सूरयः पुरा च नूनं ) जिस सोमरसको विद्वान् लोग पहले और अब भी पीते हैं। ( गावः आसभिः दधुः ) गायें अपने मुंहसे उस सोमका भक्षण करती हैं ॥ २ ॥

[ १६३३ ] ( पुनानं ) छाने जानेवाले सोमकी ( पुराण्या गाथया अभ्यनूषत ) पुराने स्तोत्रसे स्तुति की जाती है। ( उत उ ) और ( नाम बिभ्रतीः धीतयः ) हविको धारण करनेवाली अंगुलियां ( देवानां कृपन्त ) देवोंके लिए सोम अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥

[ १६३४ ] ( अध्वराणां सम्राजन्तं त्वा अग्निं ) यज्ञोंके सम्राट् तुझ अग्निको ( नमोभिः वन्दध्यै ) हवि अर्पण करके हम नमस्कार करते हैं ( वारवन्तं अश्वं न ) जिसप्रकार अयालवाले घोडेसे उस पर बैठनेवाले प्रेम करते हैं ॥१॥

[ १६३५ ] ( सः घ नः सुशेवः ) वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम रीतिसे सेवित होता है। ( शवसा सूनुः पृथुप्रगामा ) वह बलका पुत्र शीघ्र गमन करनेवाला अग्नि ( अस्माकं मीढ्वान् बभूयात् ) हमें सुख देनेवाला हो ॥२॥

[ १६३६ ] हे अग्ने ! ( विश्वायुः ) सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू ( दूरात् च आसात् च ) दूरसे और पाससे ( अघायोः मर्त्यात् ) पापी मनुष्योंसे ( नः सदं इत् निपाहि ) हमारी हमेशा रक्षा कर ॥ ३ ॥

१६३७ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।५ )

१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥ ८ (टा) ॥
[ धा० १८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९९।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६३९ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१४।५ )
१६४० व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१४।६ )
१६४१ उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥ ९ (पी) ॥
[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१४।८ )

१६४२ त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।७ )

---

[ १६३७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( प्रतूर्तिषु ) युद्धोंमें ( विश्वाः स्पृधः अभि असि ) सब स्पर्धा करनवाले शत्रुओंको हराता है । हे ( तूर्य ) शत्रुओंको शीघ्र ही दूर करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं अ-शस्तिहा ) तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला ( जनिता ) सम्पत्तियोंका उत्पादक और ( वृत्र-तूः ) शत्रुओंका नाश करनेवाला तथा ( तरुष्यतः असि ) बाधा करनेवालोंको दूर करनेवाला है ॥ १ ॥

[ १६३८ ] हे इन्द्र ! ( तुरयन्तं ते शुष्मं ) शत्रुका नाश करनेवाले तेरे बल हैं । ( क्षोणी ) द्यावापृथिवी लोक ( मातरा शिशुं न ) जिसप्रकार मातापिता अपने बच्चोंके पीछे जाते है, उसीप्रकार तेरे पीछे चलते हैं । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वृत्रं तूर्वसि ) जब तू वृत्रका वध करता है, इस कारण ( ते मन्यवे ) तेरे क्रोधके आगे ( विश्वाः स्पृधः ) सब मुकाबला करनेवाले शत्रु ( श्नथयन्त ) ढीले पड जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६३९ ] ( यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत् ) यज्ञ इन्द्रको बढाता है, इसका कारण ( यत् ) यह है कि वह ( दिवि ओपशं चक्राणः ) अन्तरिक्षमें मेघको लिटा देता है और उसकी बरसातसे ( भूमिं व्यवर्तयत् ) भूमिको पोषण करनेवाली बनाता है ॥ १ ॥

[ १६४० ] ( सोमस्य मदे ) सोमपान करके हर्षित होनेके बाद ( इन्द्रः ) इन्द्र ( रोचना अन्तरिक्षं ) तेजस्वी अन्तरिक्षको ( वि अतिरत् ) विशेष तेजस्वी करता है ( यत् ) क्योंकि वह ( वलं अभिनत् ) बादलोंको फाडता है ॥२॥

[ १६४१ ] ( गुहा सतीः ) गुहामें गुप्त रखी हुई ( गाः ) गायोंको इन्द्र ( आविष्कृण्वन् ) बाहर लाता है और ( अंगिरोभ्यः उदाजत् ) अंगिरा-ऋषियोंको वह देता है, और ( वलं अर्वाचं नुनुदे ) उन गायोंको चुराकर ले जानेवाले वलासुरको नीचे मुंह करके भागना पडता है ॥ ३ ॥

[ १६४२ ] ( सत्रा-साहं ) अनेक शत्रुओंको हरानेवाले ( वः विश्वासु गीर्षु आयतं ) तुम्हारे सब स्तोत्रोंमें वर्णित ( त्यं उ ) उस इन्द्रको ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( आच्यावयसि ) हमारे पास लाते हो ॥ १ ॥

*

१६४३ युध्मꣳसन्तमनर्वाणꣳसोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।८ )

१६४४ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाꣳऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ १० ( ता ) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९२।९ )

१६४५ तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् । वज्रꣳशिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
( ऋ. ८।१५।७ )

१६४६ तव द्यौरिन्द्र पौꣳस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
( ऋ ८।१५।८ )

१६४७ त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वाꣳ शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ ११ ( ठी ) ॥
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१५।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६४८ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ( ऋ ८।७५।१० )

१६४९ कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७५।११ )

---

[ १६४३ ] ( युध्मं सन्तं ) युद्ध करनेवाले होनेपर भी ( अनर्वाणं ) कभी न हारनेवाले ( अनपच्युतं सोमपां ) न दबनेवाले और सोम पीनेवाले ( अवार्यक्रतुं नरं ) जिसका कार्यक्रम कोई बदल नहीं सकता, ऐसे नेता इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १६४४ ] ( ऋचीषम इन्द्र ) हे दर्शनीय इन्द्र ! ( विद्वान् ) सब कुछ जाननेवाला तू ( रायः आ ) धन लेकर ( नः पुरु शिक्ष ) हमें वह बहुत दे । ( पार्ये धने नः अव ) शत्रूके पाससे धन लाकर उससे हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

[ १६४५ ] हे इन्द्र ! तेरी ( धिषणा ) बुद्धि ( तव त्यत् बृहत् इन्द्रियं ) तेरे उस महान् बलको, ( तव दक्षं ) तेरी दक्षताको ( उत क्रतुं ) और तेरे पराक्रमको और ( वरेण्यं वज्रं ) तेरे श्रेष्ठ वज्रको ( शिशाति ) तीक्ष्ण करती है ॥ १ ॥

[ १६४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( द्यौः तव पौंस्यं ) द्युलोक तेरे पौरुषको ( पृथिवी श्रवः वर्धति ) और पृथ्वी तेरे यशको बढाती है । ( त्वां आपः ) तेरे पास जलप्रवाह और ( पर्वतासः च ) पर्वत ( हिन्विरे ) तुझे स्वामी मानकर आते हैं ॥ २ ॥

[ १६४७ ] हे इन्द्र ! ( बृहत् क्षयः ) महान् घर देनेवाला कह करके ( विष्णुः मित्रः वरुणः ) विष्णु, मित्र और वरुण ( त्वां गृणाति ) तेरी स्तुति करते हैं । ( मारुतं शर्धः ) मरुतोंका बल ( त्वां अनुमदाति ) तुझे आनन्दित करता है ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६४८ ] हे ( अग्ने देव ) अग्नि देव ! ( कृष्टयः ) यज्ञ करनेवाले लोग ( ओजसे ते नमः गृणन्ति ) बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमस्कार करके तेरी स्तुति करते हैं । ( अमैः अमित्रं अर्दय ) अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर ॥ १ ॥

[ १६४९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः गविष्टये ) हमें गायें मिलें इसलिए तू ( कुवित् सु रयिं संवेषिषः ) बहुत सारा धन हमें दे । ( उरुकृत् ) महिमा बढानेवाला तू ( नः उरु कृधि ) हमें महान् कर ॥ २ ॥

१६५० मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गꣳ सꣳ रयिं जय ॥ ३ ॥ १२ ( प ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७५।१२ )

१६५१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )

१६५२ वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।६ )

१६५३ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥ १३ ( तौ ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६।५ )

१६५४ सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

१६५५ सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥

१६५६ नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ १४ ( यि ) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टम-प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

[ १६५० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः महाधने ) हमें संग्राममें ( मा परावर्क् ) दूर मत कर । ( यथा भारभृत् ) जिसप्रकार बोझ ढोनेवाला भार पहुंचाता है, उसीप्रकार ( संवर्गं रयिं संजय ) एकत्र किए गये धन जीत कर ला, और उन्हें हमें दे ॥ ३ ॥

[ १६५१ ] ( विश्वाः विशः कृष्टयः ) सब प्रजाजन ( अस्य मन्यवे ) इस इन्द्रके क्रोधके आगे ( सं नमन्त ) झुक कर रहते हैं, ( समुद्राय सिन्धवः न ) समुद्रके आगे जैसे नदियां झुकती हैं ॥ १ ॥

[ १६५२ ] ( दोधतः वृत्रस्य शिरः चित् ) जगको कंपानेवाले वृत्रके सिरको ( वृष्णिना ) बलवान् इन्द्रने ( शत-पर्वणा वज्रेण वि बिभेद ) सैकडों धारवाले वज्रसे फोड डाला ॥ २ ॥

[ १६५३ ] ( अस्य तत् ओजः तित्विषे ) इसका वह सामर्थ्य चमकने लग गया। ( यत् इन्द्रः ) जिस बलसे इन्द्रने ( उभे रोदसी ) दोनों भूलोक और द्युलोकको ( चर्म इव समवर्तयत् ) चमडेके समान लपेटकर अपने आधीन किया है ॥ ३ ॥

[ १६५४ ] हे इन्द्र ! तेरे घोडे ( सुमन्मा वस्वी ) उत्तम समझदार और धनयुक्त हैं, तथा वे ( रन्ती सूनरी ) रमणीय और सुन्दर भी हैं ॥ १ ॥

[ १६५५ ] हे ( सरूप वृषन् ) सुरूप और बलवान् इन्द्र ! ( भद्रौ इमौ धुर्यौ ) उत्तम कल्याण करनेवाले इस रथमें जोडेजानेवाले दोनों घोडोंको जोडकर ( अभि आगहि ) हमारे यज्ञमें आ। ( तौ इमौ उप सर्पतः ) तेरे ये दोनों घोडे तेरी उत्तम सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[ १६५६ ] हे ऋत्विजो ! ( दशभिः शृंगेभिः ) दसों अंगुलियोंसे ( इव दिशन् ) हमारे चाहे हुए धनको देता हुआ इन्द्र ( आपस्य मध्ये तिष्ठति ) हमारे यज्ञमें खडा हुआ है। ( शीर्षाणि नि मृढ्वं ) अपने सिर झुकाकर उसे देखो ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥



# सप्तदश अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, विष्णु, वायु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। उनमें इन्द्रका वर्णन वडा है, इसलिए उसे पहले देखें—

## इन्द्र

१ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे [ १६२० ] –सब लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ इन्द्रको तुम सबोंके हितके लिए हम बुलाते हैं।

२ अस्माकं केवलः अस्तु [ १६२० ]– इन्द्र सिर्फ हमें ही अधिक लाभ देनेवाला हो।

३ सत्रा-दावन् वृषन्! सः नः अमुं चरुं अपावृधि, अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः [ १६२१ ]– हे एक साथ फल देनेवाले बलवान् इन्द्र! वह तू हमारे अन्नोंको स्वीकार कर, हमसे वदला न ले, अपितु हमारा सहायक हो।

४ ईशानः अप्रतिष्कुतः वृषा ओजसा कृष्टीः इयर्ति वंसगः यूथा इव [ १६२२ ]– सबोंका स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे उपकार करनेके लिए मनुष्योंके पास आता है, जैसे कि बैल झुण्डमें जाता है।

५ हे इन्द्र! प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [ १६३७ ]– हे इन्द्र! तू युद्धमें सब मुकाबला करनेवाले शत्रुओंको हराता है।

६ हे तूर्य! त्वं अशस्ति-हा, जनिता वृत्रतूः तरुष्यतः असि [ १६३७ ]– शीघ्रतासे शत्रुओंको दूर करनेवाले हे इन्द्र! तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्तियोंका निर्माता, शत्रुओंका नाश करनेवाला बाधा डालनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

७ तुरयन्तं ते शुष्मं [ १६३८ ]– शत्रुओंको नष्ट करनेवाले तेरे सामर्थ्य हैं।

८ यत् वृत्रं तूर्वसि, ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त [ १६३८ ]– हे इन्द्र! जब तू वृत्रका वध करता है, तब तेरे क्रोधके आगे सब स्पर्धा करनेवाले शत्रु ढीले पड जाते हैं।

९ यत् वलं अभिनत्, इन्द्र· रोचना अन्तरिक्षं वि अतिरत् [ १६४० ]– इन्द्रने जब बलासुरको फाडा, तब उसने तेजस्वी अन्तरिक्षको और अधिक तेजस्वी बनाया।

१० गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् अंगिरोभ्यः उदाजत्। अर्वाचं वलं नुनुदे [ १६४१ ] गुफामें छिपाकर रखी गईं गायोंको इन्द्रने निकाला और अंगिरा ऋषियोंको वे गायें दीं। तब उन गायोंको चुराकर ले जानेवाले बल राक्षसको नीचे मुंह करके भागना पडा।

११ सत्रासाहं वः विश्वासु गीर्षु आयतं त्यं ऊतये आच्यावयसि [ १६४२ ]– अनेक शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले तथा तुम्हारे सभी स्तोत्रोंमें वर्णित उस इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं।

१२ युध्मं सन्तं अनर्वाणं अनपच्युतं अवार्यक्रतुं नरं [ १६४३ ]– युद्ध करनेवाले, पर कभी भी न हारनेवाले, किसीके भी आगे न झुकनेवाले, जिसका कार्यक्रम कोई बदल नहीं सकता ऐसे नेता इन्द्रको संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं।

१३ हे ऋचीषम इन्द्र! विद्वान् रायः आ नः पुरु शिक्ष, पार्ये धने नः अव [ १६४४ ]– हे दर्शनीय इन्द्र! सब जाननेवाला तू धन लेकर आ और हमें बहुत सारा धन दे। शत्रुके पाससे धन लाकर उनसे हमारा संरक्षण कर।

१४ धिषणा तव बृहत् इन्द्रियं दक्षं क्रतुं वरेण्यं वज्रं शिशाति [ १६४५ ]– तेरी बुद्धि तेरे महान् बल, दक्षता, पराक्रम और श्रेष्ठ वज्रको तीक्ष्ण करती है।

१५ द्यौः तव पौंस्यं, पृथिवी श्रवः वर्धति [ १६४६ ] – द्युलोक तेरे पौरुषको और पृथ्वी तेरे यशको बढाती है।

१६ बृहत् क्षयः गृणाति [ १६४७ ]– तू महान् आश्रय देनेवाला है, इसलिए तेरी स्तुति होती है।

१७ विश्वाः कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त [ १६५१ ]– सारी प्रजायें इसके क्रोधके आगे झुकती हैं।

१८ दोधतः वृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण विभेद [ १६५२ ]– सब जगत्को कंपानेवाले वृत्रका सिर इन्द्रने बलयुक्त तथा हजारों धारवाले वज्रसे काट डाला।

१९ अस्य ओजः तित्विषे [ १६५३ ]– इस इन्द्रका सामर्थ्य चमकने लग गया।

२० सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी [ १६५४ ]– हे इन्द्र! तेरे दोनों घोडे बहुत समझदार, धनयुक्त, रमणीय और सुंदर हैं।

२१ सरूप वृषन् ! भद्रौ इमौ धुर्यौ, तौ इमौ उपसर्पतः, अभि आगहि [१६५५]- हे सुरूप और बलवान् इन्द्र ! ये उत्तम कल्याण करनेवाले दोनों घोडे रथमें जोडकर उत्तम प्रकारसे आगे आते हैं। उन्हें जोडकर हमारे यज्ञमें आ।

२२ दशभिः शृंगेभिः दिशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति, शीर्षाणि नि मृढ्वं [१६५६]- दसों अंगुलियोंसे धन देता हुआ हमारे यज्ञमें इन्द्र खडा हुआ है। अपने सिर झुकाकर उसे देखो !

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है, उससे बढकर सामर्थ्यवान् दूसरा कोई नहीं। वह हमारी सहायता करनेवाला है। वह एक ही साथ शत्रुओंको हराता है। वह हमारे द्वारा दिए गए अन्नको स्वीकार करके हमपर प्रसन्न हो। वह कभी भी न हारनेवाला इन्द्र यज्ञमें हमारे बीचमें आकर बैठे। युद्धमें वह सब शत्रुओंको हरावे। इन्द्र सब विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्ति उत्पन्न करनेवाला और शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

जब इन्द्र वृत्रको मारता है, उस समय सब शत्रु ढीले पड जाते हैं। जब वल राक्षसको उसने मारा तब अन्तरिक्षमें महान् प्रकाश पैदा हुआ। वलने गायोंको चुराकर गुफामें बन्द कर दिया था। इन्द्रने उस गुफाको फोडकर उन गायोंको बाहर निकाला तथा उन्हें अंगिरा ऋषियोंको दे दीं।

वह सब शत्रुओंको एकदम हराता है ऐसा वह इन्द्र है। उसको कोई भी नहीं हरा सकता और उसके कार्यक्रममें कोई भी फेर बदल नहीं कर सकता। इन्द्र शत्रुओंसे धन छीनकर हमें बांटता है। उसका सामर्थ्य बल, पौरुष इत्यादि सब सामर्थ्य युक्त हैं। सब लोग उसके आगे सिर झुकाते हैं। वृत्रने सब जगत्को भयभीत किया, पर अन्तमें इन्द्रने वृत्रको मार डाला। इस कारण इन्द्रका तेज सब जगह फैल गया।

इन्द्रके दो घोडे रथमें जोडे जानेके लिए हैं। वे घोडे उत्तम सुशिक्षित, समझदार, चतुर और देखनेमें सुन्दर हैं। उन्हें रथमें जोडकर वह यज्ञके स्थान पर जाता है।

## अग्नि

१ हविः त्वे इत् हूयते [ १६१८ ]- हे अग्ने ! तुझमें हविर्द्रव्योंका हवन किया जाता है।

२ देवं देवं यजामहे [ १६१८ ]- प्रत्येक देवके लिए हम यजन करते हैं।

३ विश्पतिः होता मन्द्रः वरेण्यः नः प्रियः अस्तु, स्वग्नयः वयं प्रियाः [१६१९]- प्रजापालक, जिसमें हवन होता है ऐसा आनन्द देनेवाला श्रेष्ठ अग्नि हमें प्रिय हो और उत्तम रीतिसे अग्निको रखनेवाले हम उस अग्निके प्रिय हों।

अग्नि " विश्-पतिः " प्रजाओंका पालन करनेवाला है, उन्हें नीरोगी बनाता है।

४ हे वसो ! चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय [ १६२३ ]- हे निवासक अग्ने ! तू विलक्षण शक्तिवाला है, हमारी रक्षा कर और उसके साथ धन भी हमारे पास भेज।

५ हे अग्ने ! त्वं अस्य रायः रथीः असि [१६२३]- हे अग्ने ! तू इन धनोंको रथसे ले जानेवाला है।

६ नः तुचे गाधं विदः [१६२३]- हमारे पुत्रपौत्रोंको प्रतिष्ठाका स्थान मिले।

७ हे अग्ने ! त्वं अप्रयुत्वभिः अदब्धैः पर्तृभिः तोकं तनयं पर्षि [ १६२४ ]- हे अग्ने ! तू अविरोधी भावनाओंसे युक्त और किसीसे न दबनेवाला अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारे पुत्रपौत्रोंका पालन कर।

८ दैव्या हेडांसि नः युयोधि [१६२४]- दैवी प्रकोपोंको हमसे दूर कर।

९ अदेवानि ह्वरांसि च [ १३२४ ]- मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधोंको भी हमसे दूर कर।

१० अध्वराणां सम्राजन्तं त्वा अग्निं नमोभिः वन्दध्यै [ १६३४ ]- यज्ञके सम्राट् तुझ अग्निको हविष्यान्न अर्पित करके वन्दन करते हैं।

११ नः सुशेवः शवसा सूनुः पृथुप्रगामा, अस्माकं मीढ्वान् भूयात् [१६३५]- वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम रीतिसे सेवित होता है। वह बलका पुत्र, बहुत प्रगति करनेवाला हमें बहुत सुख देनेवाला होवे।

१२ हे अग्ने ! विश्वायुः दूरात् आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः सदं इत् पाहि [ १६३६ ]- हे अग्ने ! सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापी मनुष्योंसे हमारी रक्षा हमेशा कर।

१३ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति। अमैः अमित्रं अर्दय [१६४८]- हे अग्नि देव ! सब प्रजायें बल प्राप्त करनेके लिए नमस्कार करके तेरी स्तुति करती हैं। अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर।

१४ हे अग्ने ! गविष्टये कुवित् सुरायिं संवेविषः। उरुकृत् ! नः उरु कृधि [ १६४९ ]- हे अग्ने ! हमें गाय मिले इसलिए हमें बहुत धन दे। हे बहुत कार्य करनेवाले अग्ने ! तू हमें महान् कर।

१५ हे अग्ने ! नः महाधने मा परावर्क्। संवर्गं रयिं संजय [ १६५० ]- हे अग्ने ! हमें संग्राममें दूर मत कर। इकट्ठे किए हुए धन जीत कर ला।

अग्निमें हविर्द्रव्योंका हवन ऋतुके अनुसार किया जाता है, इस कारण वायु आदि देव प्रसन्न होते हैं। यह अग्नि प्रजाका पालन उत्तम रीतिसे करनेवाला है। अतः लोगोंको ऋतुके अनुसार यज्ञ करके अग्निको प्रसन्न करना चाहिए। यह अग्नि सब रोगबीजोंको दूर करता है और सब मनुष्योंका आरोग्य बढाता है। पुत्रपौत्रोंका यह कल्याण करता है। दैवी, मानुषिक और राक्षसोंका प्रकोप यह दूर करता है। रोगादि दैवी प्रकोप हैं। चोरी, लूट और युद्ध आदि मानुषिक प्रकोप हैं। इन सभी भयोंको अग्नि दूर करता है। और लोगोंको सुखी करता है। पापी लोगोंका कष्ट वह दूर करता है। बल बढाता है। इस कारण वह युद्धमें यश प्राप्त करता है।

## विष्णु

१ हे विष्णो ! ते तत् नाम किं परिचक्षि [१६२५] हे विष्णो ! तेरा वह नाम कितना उत्तम है।

२ यत् नाम "शिपि-विष्टः अस्मि" इति ववक्षे [ १६२५ ]- जो नाम "किरणोंसे व्याप्त है" ऐसा भाव दिखाता है।

३ एतत् वर्पः अस्मत् मा अप गूह [ १६२५ ]-यह रूप तू हमसे दूर मत रख।

४ यत् समिथे अन्यरूपः इत् बभूव [ १६२५ ]- युद्धमें तू अन्यरूप धारण करके ही हमारी सहायता करता है।

५ हे शिपि-विष्ट ! ते तत् अर्यः वयुनानि विद्वान् अद्य प्रशंसामि [१६२६]- हे किरणोंसे सबको व्यापनेवाले विष्णो ! तेरे उस नामका महत्व जाननेवाला विद्वान् मैं आज तेरी प्रशंसा करता हूँ।

६ हे विष्णो ! ते आसः आ वषट् कृणोमि। हे शिपिविष्ट ! तत् मे हव्यं जुषस्व ! मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु [१६२७]- हे विष्णो ! तेरे मुखमें मैं वषट्कार-पूर्वक हवि अर्पण करता हूँ। हे प्रकाशसे व्याप्त देव ! मेरी हविको तू स्वीकार कर। मेरी उत्तम स्तुति तेरी महिमा बढावे।

विष्णुका नाम शिपिविष्ट है। क्योंकि वह चारों ओरके किरणोंसे व्याप्त करता है। चारों ओर उसकी किरणें फैलती हैं। पर वह अपने अनेक रूपोंसे मनुष्योंका हित करता है। किरणोंसे व्यापनेवाला आकाशमें सूर्य है, मेघोंमें विद्युत् है और पृथ्वीपर अग्नि है। इस अग्निमें हवन किया जाता है। उन हवनीय पदार्थोंको सूक्ष्म करके वह चारों दिशाओंमें फैलाता है, इस कारण चारों ओर आरोग्यका वातावरण उत्पन्न होता है। सब लोगोंका जीवन इस कारण सुख और आरोग्यका जीवन होता है।

## वायु

१ हे वायो ! शुक्रः दिविष्टिषु ते मध्वः अग्रं अयामि [ १६२८ ]- हे वायो ! मैं निर्दोष होकर यज्ञ करता हूँ। उस यज्ञमें तुझे सबसे प्रथम सोमरस देनेके लिए अर्पण करता हूँ।

२ स्पार्हः सोमपीतये आयाहि [१६२८]- प्रशंसनीय तू सोम पीनेके लिए आ।

३ हे वायो ! इन्द्रः च एषां सोमानां पीतिं अर्हथः [ १६२९ ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों सोम पीनेके योग्य हो।

४ युवां इन्दवः यन्ति [१६२९]- तुम्हारे पास सोम-रस बहता है।

५ हे वायो ! इन्द्रः च शवसः पती शुष्मिणा। नः ऊतये आयातं [ १६३० ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों बलके स्वामी और वीर्यवान् हो। हमारी रक्षाके लिए आओ।

वायुकी प्रशंसा सब जगह होती है। वायु और इन्द्र दोनों देव बहुत सामर्थ्यवान् हैं, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम सोमरस दिया जाता है। लोगोंकी रक्षा वायु करता है। वायु यदि न हो, तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। श्वासो-च्छ्वास करके ही मनुष्य जीवित रहता है। अतः मनुष्योंका जीवन वायु पर अवलम्बित है। इसलिए सब यज्ञमें वायुको प्रथम स्थान दिया जाता है और उसकी पूजा प्रथम होती है। वायु शुद्ध हो तो प्राणियोंका जीना लम्बे समयतक हो सकता है। अन्न और पानीकी अपेक्षा वायुकी आवश्यकता ज्यादा होती है। यह आवश्यकता मनुष्योंको ही नहीं अपितु सभी प्राणियों और वनस्पतियोंको भी होती है। यह वायुका महत्व ऊपरके मंत्रोंमें उत्तम प्रकारसे दिखाया है।

## सोम

१ विवस्वतः धियः हरिं यातवे हिन्वन्ति [१६३१] – संस्कार करनेवालोंकी अंगुलियां हरे रंगके सोमको कलशमें जानेके लिए प्रेरित करती हैं।

२ अस्य तं मर्जयामसि [ १६३२ ]- इस सोमके उस रसको हम शुद्ध करते हैं।

३ यं सूरयः पुरा च नूनं गावः आसभिः दधुः [ १६३२ ]- जिस सोमरसको विद्वान् लोग जैसे पहले पीते थे, वैसे ही अब भी पीते हैं। गायें भी अपने मुखसे सोमका भक्षण करती हैं।

४ पुनानं पुराण्या गाथया अभ्यनूषत [ १६३३ ]- छाने जानेवाले सोमकी पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है।

५ नाम बिभ्रतीः धीतयः देवानां कृण्वन्त [१६३३]- हवि धारण करनेवाली अंगुलियां देवोंको सोमरस अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं।

सोम कूटा जाता है। अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकाला जाता है और उसका रस कलशमें भरकर रखा जाता है। बादमें उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। विद्वान् लोग इस रसको पहलेके समान पीते हैं। सोमरसके छनते समय देवोंके स्तोत्र बडी आवाजमें बोले जाते हैं। बादमें वह देवोंको दिया जाता है, फिर बादमें यज्ञ करनेवाले भी सोमरस पीते हैं।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

---

# सुभाषित

१ हे सहसः यहो ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः, चनः धाः [ १६१७ ]- हे बलके पुत्र ! सब अग्नियोंके साथ इस यज्ञमें आ, यह स्तुति सुन और हमें अन्न दे।

२ यत् चित् हि शश्वता तना देवं देवं यजामहे हविः त्वे इत् हूयते [ १६१८ ]- जो कुछ भी हमेशा हवि अर्पण करके प्रत्येक देवताका यजन हम करते है, वे हवन तुझमें किए जाते हैं।

३ विश्पतिः होता मन्द्रः वरेण्यः नः प्रियः अस्तु, स्वग्नयः वयं प्रियाः [ १६१९ ]- प्रजाओंका पालक, हवन करनेवाला और सुखदायी ऐसा श्रेष्ठ अग्नि हमें प्रिय हो। तथा उत्तम रीतिसे अग्निको अपने घरमें रखनेवाले हम भी उसे प्रिय हों।

४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं वः हवामहे, अस्माकं केवलः अस्तु [ १६२० ]- सब लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे इन्द्रको तुम्हारे हितके लिए हम बुलाते हैं, वह इन्द्र केवल हमें ही लाभ देनेवाला हो।

५ ईशानः अप्रतिष्कुतः वृषा ओजसा कृष्टीः इयर्ति [१६२२]- वह सबका ईश्वर और हमारा प्रतिकार न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्यके पास जाता है।

६ हे वसो ! चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय [ १६२३ ]- हे निवासक अग्ने ! सुन्दर और दर्शनीय ऐसा तू संरक्षणसे युक्त धन हमारी तरफ भेज।

७ त्वं अस्य रायः रथीः असि [ १६२३ ]- तू इस धनको रथसे लानेवाला है।

८ नः तुचे गाधं विदः [ १६२३ ]- हमारे पुत्रोंको प्रतिष्ठाका स्थान मिले।

९ अग्ने ! त्वं अप्रयुत्वभिः अदब्धैः पायुभिः तोकं तनयं पर्षि [ १६२४ ]- हे अग्ने ! अविरोधी भावनाओंसे युक्त और किसीके द्वारा न दबाया जानेवाला तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारे पुत्रपौत्रोंका पालन कर।

१० दैव्या हेडांसि नः युयोधि [ १६२४ ]- देवके क्रोधको हमसे दूर कर।

११ अदेवानि ह्वरांसि च [ १६२४ ]- मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको दूर कर।

१२ हे शिपि-विष्ट ! ते तत् अर्यः वयुनानि विद्वान् अद्य प्रशंसामि [१६२६]- हे किरणोंसे व्यापनेवाले विष्णो ! उस तेरे नामकी, श्रेष्ठ और सब कर्म जाननेवाला मैं, आज प्रशंसा करता हूं।

१३ सुष्टुतयः मे गिरः त्वा वर्धन्तु [१६२७]- मेरी उत्तम स्तुतियां तेरी महिमा बढावें।

१४ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात [ १६२७ ]- तुम कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सदा रक्षा करो।

१५ शवसः पती शुष्मिणा [ १६३० ]- तुम दोनों बलके स्वामी और सामर्थ्यवान् हो।

१६ नः ऊतये आयातं [ १६३० ]- हमारी रक्षाके लिए आओ।

१७ शवसा सूनुः अस्माकं मीढ्वान् बभूयात् [ १६३५ ]- वह बलका पुत्र हमें सुख देनेवाला हो।

१८ विश्वायुः दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः सदं इत् निपाहि [१६३६]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापी मनुष्योंसे हमेशा हमारी रक्षा कर।

१९ हे इन्द्र ! प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [१६३७]- हे इन्द्र ! तू सब युद्धोंमें सब मुकाबला करनेवाले शत्रुओंको हरा।

२० तूर्य ! त्वं अशस्तिहा जनिता वृत्र-तूः तरुष्यतः असि [ १६३७ ]- हे शीघ्रतासे शत्रुओंको दूर करनेवाले इन्द्र ! तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्तिका उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंका विनाशक और बाधा डालनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

२१ तुरयन्तं ते शुष्मं [ १६३८ ]- शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तेरा बल है।

२२ यत् वृत्रं तूर्वसि, ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त [१६३८]- जब तू वृत्रका वध करता है, तब तेरे क्रोधके आगे सब मुकाबला करनेवाले शत्रु शिथिल हो जाते हैं।

२३ इन्द्रः यत् वलं अभिनत् रोचना अन्तरिक्षं वि अतिरत् [१६४०]- इन्द्रने जब वल राक्षसको फाड डाला, तब उसने तेजस्वी अन्तरिक्षको और अधिक तेजस्वी बनाया।

२४ गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् वलं अर्वाचं नुनुदे [ १६४१ ]- गुहामें रखी हुई गायोंको इन्द्रने बाहर निकाला, तब गुहामें उनको रखनेवाले वल राक्षसको नीचे मुंह करके भागना पडा।

२५ सत्रासाहं विश्वासु गीर्षु आयतं त्यं ऊतये आ च्यावयसि [ १६४२ ]- अनन्त शत्रुओंको एकदम मारनेवाले सब स्तोत्रोंके द्वारा वर्णित किए गए उस इन्द्रको हमारे संरक्षणके लिए हमारे पास आने दे।

२६ युध्मं सन्तं अनर्वाणं अनपच्युतं अवार्यक्रतुं नरं [ १६४३ ]- युद्ध करने पर भी कभी भी न हारनेवाले, न दबनेवाले, जिसके कार्यक्रमको कोई बदल नहीं सकता ऐसे वीर नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं।

२७ हे ऋचीषम इन्द्र ! विद्वान् रायः नः पुरुशिक्ष, पार्ये धने नः अव [ १६४४ ]- हे सुन्दर इन्द्र ! सब जाननेवाला तू धन लेकर उसमेंसे हमें बहुत सारा दे और शत्रुसे धन लाकर उससे हमारी रक्षा कर।

२८ धिषणा त्यत् बृहत् इन्द्रियं तव दक्षं उत क्रतुं वरेण्यं वज्रं शिशाति [ १६४५ ]- तेरी बुद्धि तेरे बलको, तेरी दक्षताको, तेरे कार्यको और तेरे श्रेष्ठ वज्रको तीक्ष्ण करती है।

२९ हे इन्द्र ! द्यौः तव पौंस्यं पृथिवी श्रवः वर्धति [ १६४६ ]- हे इन्द्र ! द्युलोक तेरे पौरुषको और पृथ्वी तेरे यशको बढाती है।

३० बृहत् क्षयः गृणाति [ १६४७ ]- बडे-बडे घर देनेवालेके रूपमें तेरी स्तुति होती है।

३१ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति, अमैः अमित्रं अर्दय [ १६४८ ]- हे अग्नि देव ! मनुष्य बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमन करके तेरी स्तुति करते हैं, अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर।

३२ हे अग्ने ! नः गविष्टये कुवित् सु-रयिं सं-वेविषः उरुकृत् नः उरुकृधि [ १६४९ ]- हे अग्ने ! हमें बहुतसी गायें मिलें इसलिए तू हमें बहुत सारा धन दे। तू यश बढानेवाला हमें महान् कर।

३३ हे अग्ने ! नः महाधने मा परावर्क्। संवर्ग रयिं संजय [ १६५० ]- हे अग्ने ! हमें संग्राममें दूर मत कर। इकट्ठा करके और जीतकर धन ला।

३४ विश्वाः विशः कृष्टयः अस्य मन्यवे सं नमन्त [१६५१]- सब प्रजाजन इसके क्रोधके आगे झुककर रहते हैं।

३५ दोधतः वृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण वि बिभेद [ १६५२ ]- जगत्को कंपानेवाले वृत्रके सिरको इन्द्रने सैकडों धारवाले वज्रसे फोड डाला।

३६ अस्य तत् ओजः तित्विषे, यत् इन्द्रः उभे रोदसी चर्म इव समवर्तयत् [ १६५३ ]- इसका वह सामर्थ्य चमकने लग गया, जिसके बलसे इन्द्रने द्यु और पृथ्वीको चमडेके समान लपेट कर रख दिया।

३७ दशभिः शृंगेभिः इव दिशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति, शीर्षाणि निमृढ्वम् [१६५६]- दसों अंगुलियोंसे हमारे चाहे हुए धनको देते हुए हमारे यज्ञमें इन्द्र खडा हुआ है। हे लोगो ! उसके आगे अपने सिरको नीचे करो।

---

## उपमा

१ वंसगः यूथा इव [ १६२२ ]- जैसे बैल झुण्डमें जाता है, उसीप्रकार ( वृषा ओजसा कृष्टीः इयर्ति ) बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे मानवी समूह-यज्ञ-में जाता है।

२ निम्नं आपः न [ १६२९ ]- जिसप्रकार नीची जगहपर पानीका प्रवाह चलता है, उसीप्रकार ( युवां इन्दवः यन्ति ) तुम्हारी तरफ सोमरस जाते हैं।

३ वारवन्तं अश्वं न [ १६३४ ]- जैसे अयालवाले घोडेसे उसपर बैठनेवाले लोग प्रेम करते हैं, उसीप्रकार ( अग्निं नमोभिः वन्दध्यै ) अग्निको यज्ञकर्ता हवि अर्पण करके प्रेम करते हैं।

४ मातरा शिशुं न [ १६३८ ]- जिसप्रकार मातायें अपने बच्चोंके पीछे चलती हैं, उसीप्रकार ( क्षोणी ) द्यावा-पृथिवी इन्द्रके अनुकूल चलते हैं।

५ यथा भारभृत् [ १६५० ]- जैसे बोझ उठानेवाला मजदूर बोझको यथास्थान पहुंचाता है, वैसे ही ( रयिं संजय ) तू धन जीतकर ला।

६ समुद्राय सिन्धवः न [ १६५१ ]- जैसे समुद्रमें नदियां नम्र होकर मिलती हैं, वैसे ही ( विश्वाः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके क्रोधके आगे नम्र होकर रहती हैं।

७ चर्म इव [ १६५३ ]- चमडीके समान ( उभे रोदसी समवर्तयत् ) द्यु और पृथ्वी दोनोंको इन्द्रने लपेट कर रख दिया।

## सप्तदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १६१७ | १।२६।१० | शुनःशेप आजीगर्तिः | अग्निः | गायत्री |
| १६१८ | १।२६।६ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६१९ | १।२६।७ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६२० | १।७।१० | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः | ,, |
| १६२१ | १।७।६ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १६२२ | १।७।८ | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | ,, | ,, |
| १६२३ | ६।४८।९ | शंयुर्बार्हस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | अग्निः | प्रगाथः-( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६२४ | ६।४८।१० | शंयुर्बार्हस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | ,, | ,, |
| १६२५ | ७।१००।६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | विष्णुः | त्रिष्टुप् |
| १६२६ | ७।१००।५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १६२७ | ७।१००।७ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| १६२८ | ४।४७।१ | वामदेवो गौतमः | वायुः | अनुष्टुप् |
| १६२९ | ४।४७।२ | वामदेवो गौतमः | इन्द्रवायू | ,, |
| १६३० | ४।४७।३ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १६३१ | ९।९९।२ | रेभसूनू काश्यपौ | पवमानः सोमः | ,, |
| १६३२ | ९।९९।३ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | ,, |
| १६३३ | ९।९९।४ | रेभसूनू काश्यपौ | ,, | ,, |
| १६३४ | १।२७।१ | शुनःशेप आजीगर्तिः | अग्निः | गायत्री |
| १६३५ | १।२७।२ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६३६ | १।२७।३ | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |

*

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १६३७ | ८।९९।५ | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६३८ | ८।९९।६ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १६३९ | ८।१४।५ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | इन्द्रः | गायत्री |
| १६४० | ८।१४।७ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १६४१ | ८।१४।८ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १६४२ | ८।९२।७ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६४३ | ८।९२।८ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६४४ | ८।९२।९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६४५ | ८।१५।७ | विरूप आंगिरसः | ,, | उष्णिक् |
| १६४६ | ८।१५।८ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६४७ | ८।१५।९ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १६४८ | ८।७५।१० | विरूप आंगिरसः | अग्निः | गायत्री |
| १६४९ | ८।७५।११ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६५० | ८।७५।१२ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६५१ | ८।६।४ | वत्सः काण्वः | इन्द्रः | ,, |
| १६५२ | ८।६।६ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १६५३ | ८।६।५ | वत्सः काण्वः | ,, | ,, |
| १६५४ | — | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६५५ | — | शुनःशेप आजीगर्तिः | ,, | ,, |
| १६५६ | — | शुनःशेपः आजीगर्तिः | ,, | ,, |

# अथाष्टादशोऽध्यायः ।

अथाष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ शुनःशेप आजीगर्तिः; ४ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ वालखिल्यम् ( आयुः काण्वः ); ८ अम्बरिषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १० विश्वमना वैयश्वः; ११ सोभरिः काण्वः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ काश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १३ कलिः प्रागाथः; १४, १७ विश्वामित्रः प्रागाथः; १५ मेध्यातिथिः काण्वः, १६ निध्रुविः काश्यपः; १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ १-२, ४, ६-७, ९-१०, १३, १५ इन्द्रः; ३, ११, १८, १९ अग्निः; ५ विष्णुः, ५ ( ६ ) देवो वा; ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७ इन्द्राग्नी ॥ १-५, १४, १५-१८, १९ गायत्री; ६, ७, ९, १२, १३ प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ८ अनुष्टुप् १० उष्णिक्, ११ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); १५ बृहती ॥

१६५७ पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।२५ )

१६५८ एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥ ( ऋ. ८।२।२७ )

१६५९ पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥ ३ ॥ १ ( वि ) ॥
[ धा० १४ । उ १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।२।२६ )

१६६० आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९२।२२ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १६५७ ] हे ( सोतारः ) सोमरस निकालनेवाले यजमानो ! ( मद्याय वीराय ) प्रसन्न और पराक्रमी ( शूराय ) शूर इन्द्रके पास ( पन्यं पन्यं इत् सोमं ) अत्यन्त प्रशंसनीय सोमरसको ( आ धावत ) पहुंचाओ ॥ १ ॥

[ १६५८ ] ( ब्रह्मयुजा शग्मा ) शब्दोंके इशारेसे जुड जानेवाले, सुख देनेवाले ( हरी ) इन्द्रके दो घोडे ( इह ) इस यज्ञमें ( सखायं गीर्भिः गिर्वणसं इन्द्रं ) मित्र और वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्रको ( आवक्षतः ) लेकर आवें ॥ २ ॥

[ १६५९ ] ( सुतं पाता वृत्र-हा ) सोम पीनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र ( अस्मत् आरे ) हमारे पास ( घ आगमत् ) अवश्य आवे । ( शतं ऊतिः ) सैकडों साधनोंसे संरक्षण करनेवाला इन्द्र ( नियमते ) शत्रुओंको दूर करता है ॥ ३ ॥

[ १६६० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( इन्दवः त्वा आ विशन्तु ) सोमरस तुझे प्राप्त हों । ( सिन्धवः समुद्रं इव ) जैसे नदियां समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसीप्रकार इन्द्रको सोम प्राप्त हों । हे इन्द्र ! ( त्वां न अतिरिच्यते ) तेरी अपेक्षा और कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं है ॥ १ ॥

१६६१ विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥ (ऋ. ८।९२।२३)

१६६२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥ २ (कु) ॥

[ धा० ११ । उ० १ स्व० १ ] (ऋ. ८।९२।२४)

१६६३ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥ (ऋ. १।२७।१०)

१६६४ स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥ (ऋ. १।२७।११)

१६६५ स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ ३ ॥ ३ (ह) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] (ऋ. १।२७।१२)

१६६६ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४५।२२)

१६६७ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥२॥ (ऋ. ६।४५।२३)

१६६८ कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥३॥ ४ (फी) ॥

[ धा० १९ । उ २ । स्व० ४ ] (ऋ. ६।४५।२४)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

---

[ १६६१ ] हे ( वृषन् जागृवे ) बलवान् और जाग्रत रहनेवाले इन्द्र ! तू ( सोमस्य भक्षं ) सोम पीनेके लिए ( महिना विव्यक्थ ) अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ते जठरेषु ) जो सोम तेरे पेटमें जाता है, वह महान् है ॥ २ ॥

[ १६६२ ] हे ( वृत्रहन् इन्द्र ) वृत्रनाशक इन्द्र ! ( सोमः ते कुक्षये अरं भवतु ) हमारे द्वारा दिए गए सोम तेरे पेटमें भर जाएं, ( इन्दवः धामभ्यः अरं ) सोमरस सब देवताओंको भरपूर हो ॥ ३ ॥

[ १६६३ ] हे ( जराबोध ) स्तुतिसे जाग्रत होनेवाले अग्ने ! ( विशे विशे ) प्रत्येक प्रजाजनके हितार्थ ( यज्ञियाय ) यज्ञ सिद्ध करनेके लिए ( तत् विविड्ढि ) उस यज्ञशालामें प्रवेश कर । ( रुद्राय दृशीकं स्तोमं ) रुद्र स्वरूपी अग्निके लिए सुन्दर स्तोत्र बोलो ॥ १ ॥

[ १६६४ ] ( महान् अनिमानः ) महान् और न मापने योग्य ( धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः ) धुंवेकी ध्वजावाला और बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि ( नः धिये वाजाय हिन्वतु ) हमें ज्ञान और अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित करे ॥२॥

[ १६६५ ] ( दैव्यः विश्पतिः ) दिव्य प्रजापालक ( बृहद्भानुः केतुः सः ) महान् प्रकाशमान् और ध्वजके समान वह अग्नि ( रेवान् इव ) धनवान् राजाके समान ( नः उक्थैः शृणोतु ) हमारे स्तोत्र सुने ॥ ३ ॥

[ १६६६ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सुते ) सोमका रस निकालनेके बाद ( वः ) तुम ( पुरु-हूताय सत्वने ) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित और बलवान् ऐसे इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक जगह बैठकर गावो । ( यत् गवे न ) जिसप्रकार गायोंको घास सुख देती है, उसीप्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको वे स्तोत्र आनन्ददायक होते हैं ॥ १ ॥

[ १६६७ ] ( यत् सीं ) यदि वह इन्द्र ( गिरः उप श्रवत् ) हमारी स्तुति सुनेगा तो ( वसुः ) सबोंके निवासक इन्द्रको ( गोमतः वाजस्य दानं ) हमें गायोंसे युक्त अन्नका दान करनेसे ( न घ नियमते ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥२॥

[ १६६८ ] ( दस्यु-हा ) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र ( कुवित्सस्य ) बहुत हिंसा करनेवाले असुरके ( गोमन्तं व्रजं प्रागमत् ) गायोंसे भरे हुए बाडे पर अधिकार करता है, तब ( हि शचीभिः ) अपनी शक्तियोंसे ( नः [ गाः ] अपवरत् ) वह हमारी गायोंको प्राप्त करके देता है ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ]

१६६९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२२।१७ )

१६७० त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥
( ऋ. १।२२।१८ )

१६७१ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥
( ऋ. १।२२।१९ )

१६७२ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥ ( ऋ. १।२२।२० )

१६७३ तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५॥ ( ऋ. १।२२।२१ )

१६७४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ ५ ( टू ) ॥
[ धा० ३३ । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ. १।२२।१६ )

१६७५ मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१ )

---

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६६९ ] ( विष्णुः इदं विचक्रमे ) विष्णुने जब इस जगमें पराक्रम किया, तब उसने ( त्रेधा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पावोंको वहां रखा । ( अस्य पांसुले समूढम् ) इसके धूलियुक्त पावोंके स्थान पर सब जगत् रह रहा है ॥१॥

[ १६७० ] ( अ-दाभ्यः गोपाः विष्णुः ) न दबनेवाला रक्षक विष्णु ( अतः धर्माणि धारयन् ) वहांसे सबके कर्तव्योंका पोषण करता हुआ ( त्रीणि पदा विचक्रमे ) अपने तीन पावोंसे सब जगत्को घेरता है ॥ २ ॥

[ १६७१ ] हे मनुष्यो ! ( विष्णोः कर्माणि पश्यत ) विष्णुके पुरुषार्थोंको देखो, ( यतः व्रतानि पस्पशे ) जिसके कारण सब व्रत-कर्म चलते हैं । वह विष्णु ( इन्द्रस्य युज्यः सखा ) इन्द्रका योग्य मित्र है । ॥ ३ ॥

[ १६७२ ] ( सूरयः ) विद्वान् ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( सदा पश्यन्ति ) हमेशा देखते हैं । ( दिवि आततं चक्षुः इव ) आकाशमें फैले हुए नेत्ररूपी सूर्यको देखनेके समान इस श्रेष्ठ स्थानको विद्वान् लोग देखते हैं ॥ ४ ॥

[ १६७३ ] ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( विप्रासः जागृवांसः विपन्यवः ) ज्ञानी, जागृत और स्तुति करनेवाले ( यत् समिन्धते ) प्रदीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

[ १६७४ ] ( विष्णुः पृथिव्याः अधिसानवि ) विष्णु पृथ्वीपरके अत्यन्त उच्च स्थानमें ( यतः विचक्रमे ) जहांसे अपना विक्रम करता है, ( अतः ) उस स्थानसे ( देवाः नः अवन्तु ) सब देव हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥

[ १६७५ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वाघतः च न ) स्तुति करनेवाले ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( मा नि रीरमन् ) न रमायें । इसलिए तू ( आरात्तात् वा ) दूर हो तो भी ( नः सधमादं आगहि ) हमारे यज्ञके स्थानपर आ, और ( इह वा सन् ) यहां रहते हुए भी ( उप श्रुधि ) हमारी स्तुति सुन ॥ १ ॥

१६७६ इमं हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥ ६ ( डी ) ॥
[ धा० १३ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।३२।२ )

१६७७ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।५२।९ )

१६७८ समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सꣳशुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥ ७ ( ठा ) ॥
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।५२।१० )

१६७९ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥
( ऋ. ९।९८।१० )

१६८० तꣳसखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः । अश्याम वाजगन्ध्यꣳ सनेम वाजस्पत्यम् ॥२॥
( ऋ. ९।९८।१२ )

---

[ १६७६ ] हे इन्द्र ! ( ते सुते ) तेरे लिए सोमरस निचोडनेके बाद ( ब्रह्म-कृतः ) स्तोत्र कहनेवाले ऋत्विज ( मधौ मक्षः न ) शहदके लिए मक्खियां जिसप्रकार एक जगह जमा होती हैं, उसीप्रकार ( सचा आसते ) एक जगह बैठते हैं। ( वसूयवः जरितारः ) धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता ( कामं ) अपने इष्ट फलको ( रथे पादं न ) जिसप्रकार रथमें पांव रखते हैं, उसीप्रकार ( आदधुः ) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ १६७७ ] हमने ( अस्तावि ) इन्द्रकी स्तुति की, हे ऋत्विजो ! उस ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( पूर्व्यं मन्म ब्रह्म वोचत ) पहलेके मननीय स्तोत्र कहो। तथा ( पूर्वीः ऋतस्य बृहतीः अनूषत ) पहलेके यज्ञोंके बृहती छन्दमें सामगान करो, ( स्तोतुः मेधाः असृक्षत ) स्तुति करनेवालोंको ऐसी बुद्धियां दो ॥ १ ॥

[ १६७८ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( बृहतीः रायः ) बहुत धन ( सं अधूनुत ) हमें देवे। ( क्षोणीः सं ) भूमि हमें दे, ( सूर्यं सं ) सूर्यप्रकाश हमें प्राप्त हो, ( शुचयः शुक्रासः इन्द्रं सं ) शुद्ध किए गए सोम इन्द्रको प्राप्त हों। ( गवाशिरः सोमाः इन्द्रं अमन्दिषुः ) गो दुग्धमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करें ॥ २ ॥

[ १६७९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( परिषिच्यसे ) तू कलशमें भरता जाता है। ( दक्षिणावते ) दक्षिणा देनेवाले ( वीराय ) वीर इन्द्रको देनेके लिए ( सदनासदे ) यज्ञशालामें बैठनेवाले ( नरे ) नेता यजमानको प्राप्त होनेके लिए कलशमें भरा जाता है ॥ १ ॥

[ १६८० ] हे ( सखायः ) स्तुति करनेवालो ! ( यूयं सूरयः ) तुम विद्वान् ( वयं च ) और हम ( तं पुरूरुचं वाजगन्ध्यं अश्याम ) उस अति तेजस्वी श्रेष्ठ सुगन्धसे युक्त सोमको पीयें, ( वाजस्पत्यं सनेम ) बल बढानेवाले सोमको पीयें ॥ २ ॥

१६८१ परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
योदेवान् विश्वाꣳ इत् परि मदेन सह गच्छति　　॥ ३ ॥ ८ (हा) ॥
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।९८।७ )

१६८२ कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति　　॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१४ )

१६८३ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता　　॥ २ ॥ ९ (यि) ॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ७।३२।१५ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६८४ एदु मधोर्मदिन्तरꣳसिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः　　॥ १ ॥
( ऋ. ८।२४।१६ )

१६८५ इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानꣳश शवसा न भन्दना　　॥ २ ॥
( ऋ. ८।२४।१७ )

---

[ १६८१ ] ( हर्यतं हरिं बभ्रुं त्यं ) मनोहर, दुःखहरण करनेवाले और भरणपोषण करनेवाले उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) छलनीसे वे छानते हैं। ( यः विश्वान् देवान् ) जो सब देवोंको ( मदेन सह इत् ) आनन्दके साथ ही ( परि गच्छति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ १६८२ ] हे ( वसो इन्द्र ) निवासक इन्द्र ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( कः आदधर्षति ) कौन भला धमकी देता है ? हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( ते श्रद्धा ) तुझपर जो श्रद्धा रखता है, वह ( वाजी ) बलवान् हवि लेकर ( पार्ये दिवि ) सोमरस निकालनेके दिन ( वाजं सिषासति ) अन्नका दान करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

[ १६८३ ] हे इन्द्र ! ( मघोनः ) धनवान् ऐसे तेरे लिए ( प्रिया वसु ये ददति ) प्रिय धन-हवि-जो देते हैं उन्हें ( वृत्रहत्येषु चोदय ) युद्धमें जानेका उत्साह दे। हे ( हर्यश्व ) उत्तम घोडे रखनेवाले इन्द्र ! ( तव प्रणीती ) तेरी प्रेरणासे ( सूरिभिः ) विद्वानोंके साथ ( विश्वा दुरिता तरेम ) सब पापोंसे हम मुक्त हों ॥ ५ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६८४ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( मधोः अन्धसः ) मीठे सोमका आनन्ददायक रस ( मदिन्तरं ) अत्यन्त हर्षको प्राप्त होनेवाले इन्द्रके पास ( आसिंच ) रख। ( सदावृधः वीरः एव हि स्तवते ) अपने बलसे सदा बढते रहनेवाला वीर इन्द्र ही स्तुत होता है ॥ १ ॥

[ १६८५ ] हे ( हरीणां स्थातः इन्द्र ) घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते पूर्व्य-स्तुतिं ) तेरी पहले की गई स्तुति ( शवसा न किः उदानंश ) अपने बलसे दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता तथा ( भन्दना न ) तेज से भी कोई पा नहीं सकता ॥ २ ॥

१६८६ तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥ १० (क)॥
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।२४।१८ )

१६८७ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥ ऋ ८।१९।१ )

१६८८ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥ ११ (या)॥
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ]( ऋ. ८।१९।२ )

१६८९ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१० )

१६९० स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ २ ॥ १२ (तु)॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०७।११ )

१६९१ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥
( ऋ. ८।६६।७ )

---

[ १६८६ ] ( श्रवस्यवः ) यशकी इच्छा करनेवाले हम ( वाजानां पतिं ) बलोंके स्वामी ( अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यं ) प्रमादरहित मनुष्योंके द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंसे बढनेवाले ( वः तं ) तुम्हारे उस इन्द्रको ( अहूमहि ) हम सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ १६८७ ] ( स्वः-नरं तं गूर्धय ) स्वर्गके नेता उस अग्निकी स्तुति कर । ( देवासः देवं अरतिं दधन्विरे ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज दिव्य धनको प्राप्त करते हैं । हे अग्ने ! तू ( हव्यं देवत्रा ऊहिषे ) हविको देवोंकी ओर पहुंचाता है ॥ १ ॥

[ १६८८ ] हे ( सोभरे विप्र ) सोभरे ऋषि ! ( विभूतरातिं चित्रशोचिषं ) बहुत दान देनेवाले विशेष प्रकाशमान् ( सोम्यस्य अस्य यन्तुरं ) इस सोमयागके चालक ऐसे ( पूर्व्यं अग्निं ) प्राचीन अग्निकी ( अध्वराय ईं ईडिष्व ) यज्ञ करनेके लिए स्तुति कर ॥ २ ॥

[ १६८९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अद्रिभिः स्वानः ) पत्थरोंसे कूटकर रस निचोडा गया ( अव्यया वाराणि तिरः आ ) भेडके बालोंकी छलनीसे छनकर ( हरिः चम्वोः विशत् ) हरे रंगका सोम कलशमें जाता है । ( पुरि जनः न ) नगरमें जिसप्रकार कोई मनुष्य जाता है, उसप्रकार यह सोम ( वनेषु सदः दध्रिषे ) लकडीके पात्रमें अपना स्थान बनाता है ॥ १ ॥

[ १६९० ] ( वाजयुः ) बल बढानेवाला ( मीढ्वान् सप्तिः न अनुमाद्यः ) वीर्यवान् घोडेके समान प्रेम करने योग्य ( सः पवमानः सोमः ) वह छाना जानेवाला सोम ( मनीषिभिः मेष्यः अण्वानि तिरः ) विद्वानों द्वारा भेडके-बालोंकी बनी छलनीमेंसे छाना जाता हुआ ( ऋक्वभिः विप्रेभिः मामृजे ) ऋत्विज विप्रों द्वारा स्तुत व प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

[ १६९१ ] ( वयं एनं वज्रिणं ) हमने इस वज्रधारी इन्द्रको ( इदा ह्यः इह ) इस समय और पहिले भी इस यज्ञमें ( अपीपेम ) सोमसे तृप्त किया, ( तस्मा उ ) उसी इन्द्रके लिए ( अद्य सवने ) आजभी इस यज्ञमें ( सुतं भर ) सोमरस अर्पण करो । ( नूनं श्रुते आभूषत ) निश्चयसे स्तोत्रपाठ सुननेके लिए वह यहां आवे ॥ १ ॥

१६९२ वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥ १३ (ख) ॥
[ धा० १६ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६६।८ )

१६९३ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।९ )

१६९४ इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।७ )

१६९५ इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ३ ॥ १४ (क) ॥
[ धा० ६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ ३।१२।८ )

१६९६ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३३।७ )

१६९७ दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा च रथं दधे ।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३३।८ )

---

[ १६९२ ] ( अस्य वयुनेषु ) इस इन्द्रके मार्गमें ( उरामथिः वारणः वृकश्चित् ) कष्ट देनेवाला और विघ्न डालनेवाला शत्रु भेडियेके समान क्रूर भी हो तो भी ( आभूषति ) अनुकूल होकर उसकी सेवा करने लगता है। ( सः इन्द्र )वह तू हे इन्द्र ! ( नः इमं स्तोमं जुजुषाणः ) हमारे इस स्तोत्रको स्वीकार करके ( चित्रया धिया प्र आगहि ) फल देनेवाली बुद्धिके साथ यहां आ ॥ २ ॥

[ १६९३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दिवः रोचना ) द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम ( वाजेषु परिभूषथः ) युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो। ( वां तत् वीर्यं प्र चेति ) तुम्हारा वह वीर्य इस प्रकार प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १६९४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( धीतयः ) ज्ञानी लोग ( ऋतस्य पथ्या अनु ) सत्य मार्गसे जाकर ( अपसः परि उप प्रयन्ति ) कर्मकी सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानी लोग सत्यके मार्गसे जाकर कर्मकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

[ १६९५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां तविषाणि ) तुम्हारे बल और ( प्रयांसि ) ज्ञान ( सधस्थानि ) एक साथ रहते हैं। ( युवोः अप्तूर्यं हितं ) तुममें शीघ्रतासे काम करनेका सामर्थ्य स्थापित किया गया है ॥३॥

[ १६९६ ] ( सुते सचा पिबन्तं ईं कः वेद ) सोमयज्ञमें सबके साथ बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको भला कौन जानता है ? ( कद् वयः दधे ) उसकी कितनी आयु है, यह भी भला कौन जानता है ? ( अयं यः शिप्री ) जो यह सिरपर शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र है, वह ( अन्धसः मन्दानः ) सोमरससे आनन्दित होकर ( ओजसा ) अपने सामर्थ्यसे शत्रुके ( पुरः विभिनत्ति ) नगरोंको तोड डालता है ॥ १ ॥

[ १६९७ ] ( मृगः वारणः दाना न ) शत्रुका शोध करनेवाले मदोन्मत्त हाथीके समान ( पुरुत्रा च रथं दधे ) अनेक यज्ञोंमें तू अपना रथ ले जाता है। ( त्वा न किः नियमत् ) तुझे कोई भी रोक नहीं सकता। हे इन्द्र ! ( सुते आगमः ) सोम यज्ञोंमें तू आ। ( नः महान् ) हमारे लिए तू महान् आदरणीय है, और तू ( ओजसा चरसि ) अपने सामर्थ्यसे सर्वत्र संचार करता है ॥ २ ॥

*

१६९८ य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय सꣳस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥ १५ ( ह्रीं ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।३३।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६९९ पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥ ( ऋ. ९।६३।२५ )

१७०० पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥ ( ऋ. ९।६३।२७ )

१७०१ पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥ १६ ( फ ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६३।२६ )

१७०२ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।४ )

१७०३ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।५ )

१७०४ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥ १७ ( र ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व १ ] ( ऋ. ३।१२।६ )

---

[ १६९८ ] ( यः उग्रः सन् ) जो उग्रवीर होनेके कारण ( अनिष्टृतः ) शत्रुओंसे न हारते हुए ( स्थिरः ) स्थिर रहता है, और ( रणाय संस्कृतः ) युद्धके लिए शस्त्रोंसे भूषित हुआ रहता है ऐसा वह ( मघवा इन्द्रः ) धनवान् इन्द्र ( यदि स्तोतुः हवं शृणवत् ) यदि स्तोताकी प्रार्थना सुन ले तो वह ( न योषति ) दूसरी तरफ जाएगा नहीं और ( आगमत् ) यहीं यज्ञमें आएगा ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६९९ ] ( शुक्रासः इन्दवः ) स्वच्छ और चमकनेवाले ( पवमानाः सोमाः ) छाने जानेवाले सोमरस ( विश्वानि काव्या ) सब वेदमंत्रोंकी स्तुतिके चलनेपर ( अभि असृक्षत ) शुद्ध किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १७०० ] ( पवमानाः ) शुद्ध होनेवाले सोमरस ( दिवः अन्तरिक्षात् ) द्युलोकसे और अन्तरिक्षसे ( पृथिव्याः अधि सानवि ) भूमिपरके ऊंचे यज्ञ स्थानमें ( पर्यसृक्षत ) बहते हैं ॥ २ ॥

[ १७०१ ] ( आशवः शुभ्राः ) वेगवान् और शुभ्र ऐसे ( पवमानासः इन्दवः ) शुद्ध होनेवाले सोमरस ( विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः ) सब शत्रुओंको विनष्ट करते हुए ( असृग्रम् ) कलशमें जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७०२ ] ( तोशा ) शत्रुओं पर विघ्न डालनेवाले, ( वृत्रहणा ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ( सजित्वाना अपराजिता ) शत्रुओंको जीतनेवाले और स्वयं अपराजित ऐसे ( वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे ) अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निकी में प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

[ १७०३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( उक्थिनः वां अर्चन्ति ) वेदपाठी तुम्हारी अर्चना करते हैं । ( नीथाविदः जरितारः ) सामगायक तुम्हारी स्तुति करते हैं ( इषः आवृणे ) अन्न प्राप्तिके लिए में भी तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

[ १७०४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दास-पत्नीः नवतिं पुरः ) दासोंके द्वारा रक्षित नब्बे नगरोंको ( एकेन कर्मणा साकं अधूनुत ) एक प्रयत्नसे एक साथ तुमने हिला दिया ॥ ३ ॥

१७०५ उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।३७ )

१७०६ उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।३८ )

१७०७ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ १८ ( य ) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० ? ] ( ऋ. ६।१६।३९ )

१७०८ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥ ( अथर्व. ६।३६।१ )

१७०९ य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥

१७१० अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० १ ]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

[ १७०५ ] हे ( सहस्कृत अग्ने ) बलसे उत्पन्न किए गए अग्ने ! ( प्रयस्वन्तः ) हवि लेकर आनेवाले हम ( रण्वसंदृशं त्वा उप ) रमणीय और दर्शनीय ऐसे तेरे पास रहकर ( गिरः ससृज्महे ) अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( हिरण्यसंदृशः घृणेः ते ) सुवर्णके समान तेजस्वी दीखनेवाले तेरे ( शर्म ) आश्रयमें आकर ( वयं उप अगन्म ) हम सुख प्राप्त करें ( छायां इव ) जिसप्रकार कोई धूपसे आकर छायामें सुख पाता है, उसीप्रकार हम भी तेरे आश्रयमें सुख प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७०७ ] ( यः उग्रः इव ) जो अग्नि उग्रवीर धनुर्धारी शूरवीरके समान है, ( वंसगः न तिग्मशृंगः ) वेगवान् बैल जैसे तेज सींगोंसे युक्त रहता है, वैसे ही वह अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे युक्त रहता है । हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पुरः रुरोजिथ ) तूने शत्रुके नगर तोडे हैं ॥ ३ ॥

[ १७०८ ] हे अग्ने ! ( ऋतावानं वैश्वानरं ) यज्ञ करनेवाला, मनुष्योंका हित करनेवाला ( ऋतस्य ज्योतिषः पतिं ) यज्ञकी अपने तेजसे रक्षा करनेवाला ( अजस्रं घर्मं ईमहे ) निरन्तर प्रदीप्त होनेवाले अग्निकी हम उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०९ ] ( यः ) जो अग्नि ( इदं ) इस जगत्को सुखी करनेके लिए ( यज्ञस्य स्वः उत्तिरन् ) यज्ञके सब विघ्नोंको दूर करता है, ऐसी ( प्रति पप्रथे ) जिसकी प्रसिद्धि है । वह ( वशी ) सबको अपने अधीन करके ( ऋतून् उत्सृजते ) ऋतुओंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १७१० ] ( भूतस्य भव्यस्य कामः ) उत्पन्न हुए और आगे उत्पन्न होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा ( एकः सम्राट् अग्निः ) अकेला सम्राट् अग्नि ( प्रियेषु धामसु विराजति ) प्रिय यज्ञ स्थानोंमें विराजता है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥



# अष्टादश अध्याय

इस अठारहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, इन्द्राग्नी, विष्णु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। इसमें इन्द्र देवताका विस्तृत वर्णन है—

## इन्द्र

१ मघाय वीराय शूराय पन्यं सोमं आधावत [ १६५७ ]- प्रसन्नचित्त और पराक्रमी शूर इन्द्रके पास प्रशंसनीय सोम शीघ्र पहुंचाओ। इन्द्र पराक्रमी और शूर है। सोम पीकर वह और अधिक पराक्रम करनेवाला हो जाता है।

२ वृत्रहा अस्मत् आरे आगमत्, शतं ऊतिः नियमते [ १६५९ ]- वृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारे पास आवे। सैकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है।

३ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है। तू ही सबसे श्रेष्ठ है।

४ पुरुहूताय सत्वने सचा गाय, शाकिने शं [ १६६६ ]- जिसे बहुतसे लोग सहायताके लिए बुलाते हैं, उस सत्ववान् इन्द्रके लिए एकत्र बैठकर स्तोत्रोंका गान करो। शक्तिमान् इन्द्रके लिए वे आनन्ददायक हों।

५ वसुः गोमतः वाजस्य दानं न त्र नियमते [ १६६७ ]- सबोंको बसानेवाले, गाय और अन्नका दान करनेवाले इन्द्रको उसके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

६ दस्युहा कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं प्रागमत्, शचीभिः नः [ गाः ] अपवरत् [१६६८]- शत्रुको मारनेवाला इन्द्र बहुत हिंसा करनेवाले असुरोंकी गायोंके बाडों पर अपना अधिकार करता है, तब अपनी शक्तिसे वह हमें गायें देता है।

७ वाघतः अस्मत् आरे त्वा मा निरीरमत्। नः सधमादं आगहि इह उप श्रुधि [ १६७५ ]- वे स्तुति करनेवाले मनुष्य तुझे हमसे दूर न करें। तू हमारे यज्ञके स्थान पर आ और यहां स्तुति सुन।

८ ते सुते ब्रह्मकृतः सचा आसते [ १६७६ ]- तेरे लिए सोमरस निकालनेके बाद स्तोत्र पाठ करनेवाले एकत्र बैठते हैं और स्तोत्र बोलते हैं।

९ पूर्वीः ऋतस्य बृहतीः अनूषत् [१६७७]- पहलेके यज्ञमें बोले जाने योग्य बृहतीछन्दमें सामगान करो।

१० इन्द्रः बृहतीः रायः सं अधूनुत [१६७९]- इन्द्र बहुत धन हमें देवे।

११ क्षोणी सं [ १६७९ ]- भूमि भी हमें देवे।

१२ गवाशिरः सोमाः अमन्दिषुः [ १६७९ ]- गो-दुग्धमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको आनंद देवें।

१३ वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे परिषिच्यसे [ १६७९ ]- वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए हे सोम ! तुझे कलशमें भरा जाता है।

१४ हे मघवन् ! ते श्रद्धा वाजी पार्ये दिवि वाजं सिषासति [१६८२]- हे धनवान् इन्द्र ! तुझ पर श्रद्धा रखनेवाला बलवान् होकर सोमरस निकालनेके दिन अन्न दान करनेकी इच्छा करता है।

१५ मघोनः तव प्रिया वसु ये ददाति, वृत्र-हत्येषु चोदय [ १६८३ ]- धनवान् इन्द्रको प्रिय वस्तु जो देता है, युद्धमें जानेका उसका उत्साह हे इन्द्र ! तू बढा।

१६ हे हर्यश्व ! तव प्रणीति सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोडे पालनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोंके साथ रहकर हम सब पापोंसे मुक्त हो जायें।

१७ सदा वृधः वीरः स्तवते [१६८४]- अपने बलसे सदा बढनेवाला वीर इन्द्र प्रशंसित होता है।

१८ हे हरीणां स्थातः इन्द्र ! ते पूर्व्य-स्तुतिं शवसा न किः उदानंश [१६८५]- हे घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरी पहले की गई स्तुतिको अपने बलसे दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता। तू ही ऐसा सामर्थ्यवान् है कि जिसकी ऐसी प्रशंसा होती है।

१९ श्रवस्यवः वाजानां पतिं अ-प्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यं नः तं अहूमहि [१६८६]- यशकी इच्छा करनेवाले हम बलके स्वामी और दोषरहित यज्ञोंसे बढानेवाले तुम्हारे उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२० वयं एनं वज्रिणं इह अपीपेम [ १६९१ ]- हम इस वज्रधारी इन्द्रको इस यज्ञमें सोमरससे तृप्त करते हैं।

२१ अस्य वयुनेषु उरामथिः वारणः वृकः चित्

आभूषति [ १६९२ ]– इस इन्द्रके कृत्यमें कष्ट देनेवाला और प्रतिबंध करनेवाला शत्रु भले ही भेडियेके समान क्रूर हो तो भी वह उसके अनुकूल होकर सुशोभित होने लगता है।

२२ शिप्री अन्धसः मन्दानः ओजसा पुरः विभिनत्ति [ १६९६ ]– इन्द्र सोमपानसे आनन्दित होकर अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोडता है।

२३ पुरुत्रा रथं दधे, त्वा न किः नियमत् [१६९७]– हे इन्द्र ! तू अपना रथ आगे चला। तुझे कोई भी रोक नहीं सकता।

२४ हे वसो इन्द्र ! त्वा कः आदधर्षति [१६८२]– हे निवासक इन्द्र ! तुझे भय दिखानेमें भला कौन समर्थ है ?

२५ यः उग्रः सन् अनिष्टृतः, स्थिरः रणाय संस्कृतः मघवा इन्द्रः यदि स्तोतुः हवं शृणवत्, न योषति, आगमत् [ १६९८ ]– जो उग्रवीर होनेके कारण कभी भी नहीं हारता, युद्धभूमि पर स्थिर रहकर युद्ध करनेके लिए तैय्यार रहता है, वह धनवान् इन्द्र यदि स्तुति करनेवालेकी प्रार्थना सुन ले, तो दूसरी तरफ जायेगा ही नहीं, निश्चयसे यहीं यज्ञमें आएगा।

२६ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह सखायं इन्द्रं आवक्षतः [ १६५८ ]– शब्द कहते ही जुड जानेवाले और सुख देनेवाले इन्द्रके घोडे यहां यज्ञमें मित्र और स्तुतिके योग्य इन्द्रको लेकर आते हैं।

इन्द्र हमेशा आनन्दित, उत्साहित और शूरवीर है। उसके पास संरक्षणके अनेक साधन हैं, उसके समान शूरवीर दूसरा कोई नहीं। वह जब धनादिका दान करता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता। गायें चुरानेवाले असुरोंको हराकर वह गायें वापिस प्राप्त करता है। फिर उन गायोंको भक्तोंमें बांट देता है। इस इन्द्रके रास्ते पर चलनेवाले सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। सब लोग इस इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, और वह इन्द्र उनकी मददके लिए जाता है। वह इतना बलवान् है कि एक ही आक्रमणसे शत्रुके सैंकडों नगरोंको तोडकर विजयी होकर यशस्वी होता है। ऐसा इन्द्र सभीके द्वारा प्रशंसित होने योग्य है।

## अग्नि

१ हे जराबोध ! विशे विशे जनाय यज्ञियाय तत् तत् विविड्ढि [ १६६३ ]– हे स्तुतिसे जागृत होनेवाले अग्ने ! प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए जो यज्ञ किया जाता है, उसे सिद्ध करनेके लिए तू यज्ञशालामें आ।

यज्ञशालामें अग्नि जलाकर उसमें विशेष वस्तुओंका हवन किया जाता है और उस यज्ञसे सब मनुष्योंका कल्याण होता है।

२ महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः नः धिये वाजाय हिन्वतु [१६६४]– महान् इसीलिए मापनेके अयोग्य, धुवां ही ध्वज है जिसका ऐसा बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि हमें ज्ञान, बल और अन्नकी प्राप्तिके लिए प्रेरणा देवे। उस रास्तेसे हमें ले जाए कि जिस मार्गसे हमें ज्ञान और बल प्राप्त हो।

३ दैव्यः विश्पतिः बृहद् भानुः सः रेवान् इव नः उक्थैः शृणोतु [ १६६५ ]– यह दिव्य शक्तिसे युक्त प्रजाका पालन करनेवाला, महान् तेजस्वी वह अग्नि धनवान् राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने। अग्निमें दिव्य शक्ति है। अग्निमें जो यज्ञ होता है, उससे प्रजा नीरोगी होती है, और रोगोंसे रक्षा होती है। ऐसी यह अग्नि हमारी स्तुतिके स्तोत्र सुने।

४ विभूतरातिं चित्रशोचिषं पूर्व्यं अग्निं अध्वराय ईळिष्व [ १६८८ ]– बहुत दान देनेवाले, विशेष प्रकाशमान् प्राचीन अग्निकी यज्ञ करनेके लिए स्तुति कर।

५ हे सहस्कृत अग्ने ! प्रयस्वन्तः रण्वसंदृशं त्वा उप गिरा ससृज्महे [१७०५]– हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! अन्न लेकर आनेवाले हम रमणीय दीखनेवाले तेरे पास आकर अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं।

६ हे अग्ने ! हिरण्यसंदृशः घृणेः ते शर्म, छायां इव वयं उप अगन्म [ १७०६ ]– हे अग्ने ! सोनेके समान तेजस्वी दीखनेवाले तेरे आश्रयमें आकर, जैसे कोई धूपसे आकर छायामें सुख प्राप्त करता है, उसीप्रकार हम सुख प्राप्त करें।

७ यः उग्रः इव, वंसगः न तिग्मशृंगः, पुरः रुरोजिथ [ १७०७ ]– वह अग्नि महान् धनुर्धारीके समान वीर है, वेगवान् तेज सींगोंवाले बैलके समान भयंकर वह अग्नि शत्रुओंके नगरोंको तोडता है।

८ ऋतावानं वैश्वानरं, ऋतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं घर्मं ईमहे [१७०८]– सत्य-यज्ञ-मार्गसे जानेवाला सब मनुष्योंका हित करनेवाला, यज्ञके तेजसे रक्षा करनेवाला, अग्नि है। उस बाधारहित प्रदीप्त अग्निकी हम आराधना करते हैं।

९ यः इदं यज्ञस्य स्वः उत्तिरन्, प्रति पप्रथे, वशी ऋतून् उत्सृजते [१७०९]– जो अग्नि इस जगत्को

सुखी करनेके लिए यज्ञके सब विघ्नोंको दूर करता है, ऐसी उसकी प्रसिद्धि है। वह सबको अपने आधीन करके ऋतुओंको उत्पन्न करता है और उसके कारण सबको सुख देता है।

१० भूतस्य भव्यस्य कामः सम्राट् एकः अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [ १७१० ]- पहलेके तथा आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं ऐसा अकेला ही सम्राट् अग्नि अपने यज्ञके प्रिय स्थान-यज्ञकुण्ड-में विराजमान होता है।

अग्निका ऐसा वर्णन इस अध्यायमें है। अग्निमें योग्य पदार्थोंका हवन करनेसे सब लोग रोगरहित होकर सुखी होते हैं।

## इन्द्र और अग्नि

१ हे इन्द्राग्नी ! दिवः रोचना वाजेषु परिभूषथः, वां तत् वीर्यं प्रचेति [ १६९३ ] हे इन्द्र और अग्ने ! द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो, तुम्हारा सामर्थ्य ऐसे प्रकट होता है।

२ हे इन्द्राग्नी ! वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि युवा अप्तूर्यं हितम् [ १६९५ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं। तुममें शीघ्रतासे कार्य करनेका सामर्थ्य है।

३ तोशा, वृत्रहणा, सजित्वाना, अपराजिता वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाले, शत्रुओंको मारनेवाले, विजयी, पराजित न होनेवाले, अन्नका दान करनेवाले इन्द्र और अग्नि हैं, उनको अपनी सहायताके लिए मैं बुलाता हूँ।

४ इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूनुतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासोंके द्वारा रक्षित नव्वे नगरोंको एक ही आक्रमणसे तुमने हिला दिया।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी शूरवीरता और पराक्रमका वर्णन इस अध्यायमें है। ये शूर कुशलतासे युद्ध करनेवाले, कभी भी न हारनेवाले होनेके कारण हमेशा विजयी ही रहते हैं।

## विष्णु

१ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुका यह पराक्रम है।

२ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः, धर्माणि धारयन्, त्रीणि पदा विचक्रमे [ १६७० ]- न दबनेवाला, सबका संरक्षण करनेवाला विष्णु, सब धर्म-कर्तव्यका पालन करके अपने तीन पावोंसे सब जगत् व्यापता है।

३ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः व्रतानि पस्पशे, इन्द्रस्य युज्यः सखा [ १६७१ ]- विष्णुके पराक्रमके वर्णन करो, जिसके कारण सबके काम उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु उत्तम मित्र है।

इन्द्र और विष्णु ये दो देव हैं। विष्णु यह उपेन्द्र है। जैसे अध्यक्ष और उपाध्यक्ष होते हैं, उसीप्रकार ये " इन्द्र और उपेन्द्र " हैं।

४ सूरयः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं चक्षुः इव, सदा पश्यन्ति [१६७२]- ज्ञानी लोग विष्णुके उस परम पदको, द्युलोकमें जगत्‌की आंख सूर्यको देखनेके समान, देखते हैं।

५ विष्णोः तत् परमं पदं विप्रासः विपन्यवः जागृवांसः समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उस परम पदको ज्ञानी और जागृत लोग प्रदीप्त करके स्वयं देखते हैं।

६ विष्णुः पृथिव्या अधि सानवि, यतः विचक्रमे, अत देवाः नः अवन्तु [ १६७४ ] विष्णु पृथ्वीके ऊंचे स्थान पर जहांसे वह पराक्रम करता रहता है। उस स्थानसे सब देव हमारी रक्षा करें।

विष्णु " उपेन्द्र " ( उप+इन्द्र ) है, वह इन्द्रकी सहायता करता है। अध्यक्ष उपाध्यक्षके समान ये दोनों एक दूसरेकी सहायता करते हैं। सर्वत्र विश्वमें विष्णुका पराक्रम दीखता है। ज्ञानी मनुष्य इसके पराक्रमको देखते हैं। लोग इसके पराक्रमको देखें और स्वयं भी पराक्रमी बनें।

## सोम

१ हे सखायः ! यूयं सूरयः वयं च तं पुरुरुचं वाजगंध्यं अश्याम, वाजपत्यं सनेम [१६८०]- हे मित्रो ! तुम विद्वान् और हम मिलकर उस बहुत चमकनेवाले तथा उत्तम सुंगन्धसे युक्त सोमको पीवें, बल बढानेवाले सोमको पीवें।

२ हर्यतं हरिं बभ्रुं त्यं वारेण परि पुनन्ति, यः विश्वान् देवान् गच्छाति [ १६८१ ]- मनोहर, दुःखहरण करनेवाले, भरण पोषण करनेवाले उस सोमको छलनीसे छानते हैं। उसके बाद वह सोम देवोंकी ओर जाता है।

३ अद्रिभिः स्वानः अव्यया वाराणि तिरः आ, हरिः चम्वोः विशत् वनेषु सदः दध्रिषे [ १६८९ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया रस भेडके बालोंकी छलनीसे

छाना जाता है। वह हरे रंगका सोमरस कलशमें उतरता है। लकडीके बर्तनमें अपना स्थान बनाता है।

४ वाजयुः मीढ्वान् पवमानः सोमः मेष्यः अव्यानि तिरः विप्रेभिः मामृजे [१६९०]- बल बढानेवाला, वीर्य बढानेवाला, घोडेके समान प्रेम करनेके योग्य, ऐसा वह छाना जानेवाला सोम भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, तथा ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित होता है।

५ शुक्रासः इन्दवः पवमानाः सोमाः विश्वानि काव्या अभि असृक्षत [ १६९१ ]- स्वच्छ और चमकनेवाले छाने जानेवाले सोमरस वेदमंत्रों द्वारा प्रशंसित होते हुए शुद्ध किए जाते हैं।

६ पवमानाः दिवः पृथिव्याः अधि सानवि पर्यसृक्षत [१७००]- शुद्ध होनेवाला सोमरस द्युलोकसे पृथ्वीके ऊंचे भागमें तैय्यार किया जाता है।

७ आशवः शुभ्राः पवमानासः इन्दवः विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः असृग्रम् [ १७०१ ]- वेगवान्, शुभ्र और शुद्ध होनेवाले सोमरस सब शत्रुओंको नष्ट करते हुए कलशमें जाते हैं।

सोमलता पत्थरोंसे कूटी जाती है। बादमें उसका रस निकाला जाता है, फिर उसमें पानी मिलाकर भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है। यह छाना गया सोमरस कलशमें भरकर रखते हैं। इस समय वेदपाठ उच्च स्वरसे किया जाता है। यह सोम हिम पर्वत पर ऊंचाई पर होता है। वहांसे वह यज्ञ करनेके स्थान पर लाया जाता है, और उससे रस तैय्यार किया जाता है। छानकर इस रसके तैय्यार होनेके बाद उसे देवोंके लिए अर्पित किया जाता है, फिर यज्ञ करनेवाले स्वयं इस सोमरसको पीते हैं। इसके पीनेसे शरीरमें शक्ति बढती है और मनका उत्साह बढता है, तथा सब शत्रुओंको हरानेका सामर्थ्य मनके अन्दर पैदा होता है।

---

## सुभाषित

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं आधावत [ १६५७ ] –शूरवीर इन्द्रको प्रशंसनीय सोमरस पहुंचाओ।

२ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह सखायं गिर्वणसं इन्द्रं आवक्षतः [ १६५८ ]- शब्दके कहते ही रथमें जुड जानेवाले, सुखदायी दो घोडे इस यज्ञमें मित्र और स्तुत्य इन्द्रको लेकर आवें।

३ शतं ऊतिः वृत्रहा नियमते [ १६५९ ]- सैंकडों साधनोंसे संरक्षण करनेवाला, वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है।

४ त्वां न अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र! तेरी अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं।

५ हे वृषन् जागृवे! महिना विव्यक्थ [ १६६१ ] हे बलवान् और जागृत रहनेवाले! तू अपने महत्वसे सबको व्यापता है।

६ हे जराबोध! विशे विशे रुद्राय दृशीकं [१६६३] –हे जागृत रहकर सबको जाननेवाले अग्ने! प्रत्येक मनुष्यके हित करनेवाले रुद्र देवताके लिए सुन्दर स्तोत्र बोलें।

७ नः धिये वाजाय हिन्वतु [ १६६४ ]- हमें बुद्धि बढाने व अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर।

८ दैव्यः विश्पतिः बृहद्भानुः केतुः सः रेवान् इव नः उक्थैः शृणोतु [ १६६५ ]- दिव्य प्रजापालक महान् प्रकाशमान् और ध्वजाके समान शोभित होनेवाला धनवान अग्नि राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने।

९ पुरुहूताय सत्वने तत् सचा गाय, तत् शाकिने शं [ १६६६ ]- बहुत लोग जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं, उस बलवान् इन्द्रके लिए स्तोत्र एक जगह बैठकर गावो, उससे शक्तिमान् इन्द्रको आनन्द मिलता है।

१० वसुः गोमतः वाजस्य दानं न घ नियमने [१६६७]- सबको बसानेवाले इन्द्रको गायके दूधसे होनेवाले अन्नके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

११ दस्यु-हा कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं प्र गमत्, हि शचीभिः नः [ गाः ] अपवरत् [१६६८]-शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र जब बहुत हिंसा करनेवाले असुरोंकी गायोंसे भरे हुए बाडेपर अपना अधिकार करता है, तब वह अपनी शक्तिसे हमारी गायोंको ढूंढकर हमें देता है।

१२ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुने यहां पराक्रम किया।

१३ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः धर्माणि धारयन् पदा विचक्रमे [ १६७० ]- न दबनेवाला संरक्षक विष्णु सबके करने योग्य कर्मका पोषण करता हुआ अपने पांवसे सब जगत् पर आक्रमण करता है।

१४ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा [ १६७१ ] विष्णुके कामोंको देखो, जिसके कारण सबके कार्य उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु इन्द्रका योग्य मित्र है।

१५ सूरयः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं चक्षुः इव, सदा पश्यन्ति [१६७२]- ज्ञानी लोग विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको, जिसप्रकार आकाशमें प्रकाशको फैलानेवाले विश्वके नेत्ररूपी सूर्यको लोग देखते हैं, उसीप्रकार हमेशा देखते हैं।

१६ विष्णोः तत् परमं पदं विप्रासः जागृवांसः विपन्यवः यत् समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ज्ञानी जाग्रत रहकर स्तुति करनेवाले प्रदीप्त करते है ।

१७ हे इन्द्रः ! वाघतः त्वा- अस्मत् आरे मा निरीरमन् [ १६७५ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले मनुष्य तुझे हमसे दूर ले जाकर आनन्दित न करें।

१८ आरात्तात् नः सधमादं आगाहि [ १६७५ ]- भले ही तू दूर हो फिर भी वहांसे हमारे यज्ञमें आ।

१९ इह सन् उपश्रुधि [१६७५]- यहां रहकर हमारी स्तुति सुन।

२० इन्द्रः बृहतीः रायः सं अधूनुत [ १६७८ ]- इन्द्र बहुत सारा धन हमें देवे।

२१ इन्द्रः क्षोणीः सं अधूनुत [ १६७८ ]- इन्द्र हमें भूमि देवे।

२२ वृत्र-हत्येषु चोदय [ १६८३ ]- अपने भक्तोंको शत्रुके वधकी प्रेरणा कर।

२३ हे हर्यश्व ! तव प्रणीती सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोडे रखनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोके साथ हम सब पापोंसे मुक्त हों।

२४ हे हरीणां स्थातः इन्द्र ! ते पूर्व्यस्तुतिं शवसा न किः उदानंश, भन्दना न [ १६८५ ]- हे घोडे रखनेवाले इन्द्र ! तेरी स्तुतिको अपने बलसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता ।

२५ अस्य वयुनेषु उरामथिः वारणः वृकश्चित् आभूषति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके मार्गमें कष्ट देनेवाला और विघ्न डालनेवाला कोई क्रूर भी हुआ तो वह भी इसके अनुकूल होकर इसकी सेवा करने लगता है ।

२६ हे इन्द्र ! चित्रया धिया प्र आगाहि [१६९२]- हे इन्द्र ! अपनी उत्तम बुद्धिके साथ तू यहां आ।

२७ हे इन्द्राग्नी ! दिवः रोचना वाजेषु परिभूषथः वीर्यं तत् प्रचेति [१६९३]- हे इन्द्र और अग्ने ! द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजयी होकर शोभित होते हो। तुम्हारा सामर्थ्य इस प्रकार प्रकट होता है।

२८ धीतयः ऋतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [१६९४]- ज्ञानी सत्य मार्गमें जाकर कर्मकी सिद्धिको प्राप्त करते हैं ।

२९ वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि, युवोः अप्तूर्यं हितम् [ १६९५ ]- तुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं। तुममें शीघ्रतासे कार्यको समाप्त करनेका सामर्थ्य है।

३० यः शिप्री ओजसा पुरः विभिनत्ति [१६९६]- जो इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोडता है।

३१ त्वा न किः नियमत् [ १६९७ ]- तुझे कोई भी रोक नहीं सकता ।

३२ नः महान् ओजसा चरसि [ १६९७ ]- हमारे लिए तू महान् है, और अपने सामर्थ्यसे तू सब जगह विचरता है ।

३३ यः उग्रः सन् अनिष्टृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः [ १६९८ ]- जो उग्रवीर है, और न हारता हुआ युद्धमें जो स्थिर रहता है और युद्धके लिए सदा तैय्यार रहता है।

३४ आशवः विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः [ १७०१ ]- वेगवान् वीर सब शत्रुओंका नाश करते हैं।

३५ तोशा वृत्रहणा सजित्वाना अपराजिता वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंका नाश करनेवाले, वृत्रको मारनेवाले, शत्रुओंको जीतनेवाले, स्वयं अपराजित, अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं।

३६ इषः आवृणे [ १७०३ ]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

३७ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूनुतम् [१७०४]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासोंके द्वारा रक्षित नब्बे नगरोंको तुमने एक आक्रमणसे ही नष्ट कर दिया।

३८ हे अग्ने ! पुरः रुरोजिथ [ १७०३ ]- हे अग्ने ! तूने शत्रुओंके नगरोंको तोडा।

३९ ऋतावानं वैश्वानरं ऋतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं घर्मं ईमहे [१७०८]- यज्ञ करनेवाले, सब लोगोंका कल्याण करनेवाले, यज्ञकी तेजसे रक्षा करनेवाले, जिसे कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता ऐसे प्रज्वलित अग्निकी हम आराधना करते हैं।

४० यः इदं यज्ञस्य स्वः उत्तिरन् प्रति पप्रथे [१७०९]

– जो यज्ञके स्वत्वका रक्षण करता है, यज्ञके विघ्नोंको दूर करता है, ऐसा वह अग्नि प्रसिद्ध है ।

४१ भूतस्य भव्यस्य कामः एकः सम्राट् अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [१७१०]– पूर्व उत्पन्न हुए और आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा अद्वितीय सम्राट् अग्नि अपने प्रिय ऐसे यज्ञके स्थानमें विराजता है ।

## उपमा

१ सिन्धवः समुद्रं इव [ १६६० ]– जैसे नदियां समुद्रमें मिलती हैं, ( इन्दवः त्वा आविशन्तु ) वैसे ही ये सोमरस हे इन्द्र ! तुझमें प्रविष्ट हों ।

२ रेवान् इव [ १६६५ ]– धनवान् राजाके समान ( बृहद् भानुः नः उक्थेभिः श्रृणोतु ) विशेष प्रकाशमान् अग्नि हमारी स्तुति सुने ।

३ तत् गवे न [ १६६६ ]– गायोंको जैसे घास प्रिय होती है, उसीप्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको ये स्तोत्र प्रिय लगते हैं ।

४ दिवि आततं चक्षुः इव [ १६७२ ]– आकाशमें जिसप्रकार प्रकाशमान् सूर्य दीखता है, उसीप्रकार ( विष्णोः परमं पदं सूरयः पश्यन्ति ) विष्णुके श्रेष्ठ स्थानको ज्ञानी देखते हैं ।

५ मधौ मक्षः न [ १६७६ ]– शहदकी मधुमक्खियां जिसप्रकार इकट्ठी होती हैं, उसीप्रकार ( ब्रह्मकृतः सचा आसते ) स्तुति करनेवाले एकत्र बैठकर स्तुति करते हैं ।

६ पुरिः जनः न [ १६८९ ]– नगरमें जैसे मनुष्य जाता है, उसीप्रकार ( वनेषुः सदः दधिषे ) लकडीके ब्रर्तनमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है ।

वनं– लकडीके वर्तन, लकडी जंगलमें पैदा होती है, और लकडीसे सोमपात्र बनता है अतः लकडीके बर्तनको ' वनं ' –जंगल कह दिया । अंशके लिए पूर्णका प्रयोग करना वेदकी शैली है ।

७ सातिः न [ १६९० ]– घोडेके समान प्रेम करने लायक ( सः सोमः ) वह सोम है ।

८ मृगः वारणः दानः न [ १६९५ ]– शत्रुको खोजनेवाले मदोन्मत्त हाथीके समान ( पुरुत्रा रथं दधे ) अपने रथको तू आगे स्थापित करता है ।

९ छायां इव [ १७०६ ]– जैसे धूपसे तपा हुआ मनुष्य छायामें आकर आनन्दित होता है, उसीप्रकार ( ते शर्म वयं उप गन्म ) तेरे आश्रयमें हम आनन्दित हों ।

१० धन्वी इव [ १७०७ ]– धनुर्धारी वीरके समान ( यः उग्रः ) जो उग्रवीर है ।

११ तिग्मश्रृंगः वंसगः न [१७०७]– तेज सींगोंवाले बैलके समान वह इन्द्र पराक्रमी है ।

## अष्टादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १६५७ | ८।२।२५ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | इन्द्रः | गायत्री |
| १६५८ | ८।२।२७ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | ,, | ,, |
| १६५९ | ८।०।२६ | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | ,, | ,, |
| १६६० | ८।९२।२२ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६६१ | ८।९२।२३ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६६२ | ८।९२।२४ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १६६३ | १।२७।१० | शुनःशेप आजीगर्तिः | अग्नि | ,, |

*

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १६६४ | १।२७।११ | शुनःशेप आजीगर्तिः | अग्नि | गायत्री |
| १६६५ | १।२७।१२ | शुनःशेप आजीगर्तिः | " | " |
| १६६६ | ६।४५।२२ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | इन्द्रः | " |
| १६६७ | ६।४५।२३ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | " | " |
| १६६८ | ६।४५।२६ | शंयुर्बार्हस्पत्यः | " | " |
| | | ( २ ) | | |
| १६६९ | १।२२।१७ | मेधातिथिः काण्वः | विष्णुः | " |
| १६७० | १।२२।१८ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १६७१ | १।२२।१९ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १६७२ | १।२२।२० | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १६७३ | १।२२।२१ | मेधातिथिः काण्वः | " | " |
| १६७४ | १।२२।१६ | मेधातिथिः काण्वः | देवा वा | " |
| १६७५ | ७।३२।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६७६ | ७।३२।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| १६७७ | ८।५१।९ | वालखिल्यम् ( आयुः काण्वः ) | " | " |
| १६७८ | ५।५२।१० | वालखिल्यम् ( आयुः काण्वः ) | " | " |
| १६७९ | ९।९८।१० | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | पवमानः सोमः | अनुष्टुप् |
| १६८० | ९।९८।१२ | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | " | " |
| १६८१ | ९।९८।७ | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | " | " |
| १६८२ | ७।३२।१४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६८३ | ७।३२।१५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | " | " |
| | | ( ३ ) | | |
| १६८४ | ८।२४।१६ | विश्वमना वैयश्वः | इन्द्रः | उष्णिक् |
| १६८५ | ८।२४।१७ | विश्वमना वैयश्वः | " | " |
| १६८६ | ८।२४।१८ | विश्वमना वैयश्वः | " | " |
| १६८७ | ८।१९।१ | सोभरीः काण्वः | अग्निः | काकुभः प्रगाथः-( विषमा ककुप् समा सतोबृहती ) |
| १६८८ | ८।१९।२ | सोभरीः काण्वः | " | " |
| १६८९ | ९।१०७।१० | सप्तर्षयः | पवमानः सोमः | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १६९० | ९।१०७।११ | सप्तर्षयः | " | " |
| १६९१ | ८।६६।७ | कलिः प्रागाथः | इन्द्रः | " |
| १६९२ | ८।६६।८ | कलिः प्रागाथः | " | " |
| १६९३ | ३।१२।९ | विश्वामित्रः प्रागाथः | इन्द्राग्नी | गायत्री |
| १६९४ | ३।१२।७ | विश्वामित्रः प्रागाथः | " | " |
| १६९५ | ३।१२।८ | विश्वामित्रः प्रागाथः | " | " |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १६९६ | ८।३३।७ | मेध्यातिथिः काण्वः | इन्द्रः | बृहती |
| १६९७ | ८।३३।८ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १६९८ | ८।३३।९ | मेध्यातिथिः काण्वः | ,, | ,, |

( ४ )

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १६९९ | ९।६३।२५ | निध्रुविः काश्यपः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १७०० | ९।६३।२७ | निध्रुविः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७०१ | ९।६३।२६ | निध्रुविः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७०२ | ३।१२।४ | विश्वामित्रः प्रागाथः | इन्द्राग्नी | ,, |
| १७०३ | ३।१२।५ | विश्वामित्रः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १७०४ | ३।१२।६ | विश्वामित्रः प्रागाथः | ,, | ,, |
| १७०५ | ६।१६।७ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः | ,, |
| १७०६ | ६।१६।८ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १७०७ | ६।१६।९ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | ,, | ,, |
| १७०८ | अथर्व. ६।३६।१ | अथर्वा ( स्वस्त्ययनकामः ) | ,, | ,, |
| १७०९ | — | — | ,, | ,, |
| १७१० | — | — | ,, | ,, |



# अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ८-३ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ विरूप आंगिरसः; २, १८ अवत्सारः काश्यपः; ३ विश्वामित्रो गाथिनः; ४ देवातिथिः काण्वः; ५, ८, ९, १६ गोतमो राहूगणः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ प्रस्कण्वः काण्वः; १० वसुश्रुत आत्रेयः; ११ सत्यश्रवा आत्रेयः; १२ अवस्युरात्रेयः; १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; १४ कुत्स आंगिरसः; १५ अत्रिर्भौमः, १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥ १, १०, १३ अग्निः; २, १८ पवमानः सोमः; ३-५ इन्द्रः; ६, ८, ११, १४ ( १ उत्तरार्धः रात्रिश्च ), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ १-२, ६-७, १८ गायत्री; ३, १३-१५ त्रिष्टुप्; ४-५ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ८-९ उष्णिक्; १०-१२ पङ्क्तिः; १६, १७ जगती ॥

१७११ अग्निं प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्व३ं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥ ( ऋ. ८।४४।१२ )

१७१२ ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।१३ )

१७१३ स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥ १ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१४ )

१७१४ उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥ ( ऋ. ९।५३।१ )

१७१५ अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥ ( ऋ. ९।५३।२ )

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १७११ ] ( कविः अग्निः ) ज्ञानी अग्नि ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन स्तोत्रसे ( स्वां तन्वं शुम्भानः ) अपने तेजोमय शरीरको सुशोभित करते हुए ( विप्रेण वावृधे ) ब्राह्मणोंके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[ १७१२ ] ( ऊर्जः न-पातं ) बलको कम न करनेवाले ( पावक-शोचिषं ) पवित्रता करनेवाले प्रकाशसे युक्त ( अग्निं ) अग्निको ( अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे ) इस उत्तम हिंसारहित यज्ञमें ( आहुवे ) हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १७१३ ] ( मित्र-महः अग्ने ) हे मित्रोंके द्वारा पूज्य अग्ने ! ( सः त्वं ) वह तू ( शुक्रेण शोचिषा ) शुद्ध ज्वालाओंसे युक्त होकर ( देवैः बर्हिषि आसत्सि ) देवोंके साथ इस यज्ञमें आकर बैठ ॥ ३ ॥

[ १७१४ ] हे ( अद्रिवः सोम ) पत्थरोंसे कूटे जानेवाले सोम ! ( ते शुष्मासः ) तेरे बल ( रक्षः भिन्दन्तः ) राक्षसोंका नाश करते हुए ( उदस्थुः ) ऊपर आते हैं। ( याः परिस्पृधः ) जो मुकाबला करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें ( नुदस्व ) दूर कर ॥ १ ॥

[ १७१५ ] हे सोम ! तू ( अया ओजसा निजघ्निः ) इस बलसे शत्रुओंको नष्ट करता है, ऐसे तेरी हम ( अबिभ्युषा हृदा ) निर्भय अन्तःकरणसे ( रथसंगे हिते ) रथोंके युद्धमें शत्रुओंके नष्ट होनेपर ( धने स्तवै ) धनकी प्राप्तिके लिए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१७१६ अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥ ( ऋ. ९।५३।२ )

१७१७ तꣳ हिन्वन्ति मदच्युतꣳ हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ २ ( पी ) ॥
[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।५३।४ )

१७१८ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताꣳ इहि ॥१॥ ( ऋ. ३।४५।१ )

१७१९ वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥ २ ॥ ( ऋ ३।४५।२ )

१७२० गम्भीराꣳ उदधीꣳरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥ ३ ( छा ) ॥
[ धा० १७ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ३।४५।३ )

१७२१ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।३ )

---

[ १७१६ ] ( पवमानस्य अस्य व्रतानि ) छाने जानेवाले इस सोमके कर्मोंसे ( दूढ्यः न आधृषे ) दुष्ट राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! ( यः त्वा पृतन्यति ) जो तुझ पर सेना भेजनेकी इच्छा करता है, उसे ( रुज ) तू नष्ट कर ॥ ३ ॥

[ १७१७ ] ( मदच्युतं हरिं ) आनन्द देनेवाले हरे रंगके ( वाजिनं मत्सरं ) बल और उत्साह बढानेवाले ( तं इन्दुं ) इस सोमको ( नदीषु ) पानीमें ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( हिन्वन्ति ) मिलाते हैं ॥ ४ ॥

[ १७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः ) आनन्द देनेवाले, मोरके पंखोंके समान बालोंवाले घोडोंसे तू ( आयाहि ) यहां यज्ञमें आ । ( केचित् त्वा ) कोई भी तुझे ( पाशिनः न ) जाल डालनेवाले शिकारी जिसप्रकार पक्षियोंको पकडते हैं, उसीप्रकार ( मा नियेमुः ) न पकडे । ( धन्वेव तान् अति इहि ) रेगिस्तानके समान उन्हें छोडकर यहां आ ॥ १ ॥

[ १७१९ ] ( इन्द्रः ) वह इन्द्र ( वृत्र-खादः ) वृत्रका नाश करनेवाला ( वलं रुजः ) वल राक्षसको छिन्न भिन्न करनेवाला ( पुरां दर्मः ) शत्रुके नगर तोडनेवाला ( अपां अजः ) पानीकी वृष्टि करनेवाला ( हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता ) घोडोंके रथमें बैठनेवाला ( दृढाचित् आरुजः ) बलवान् शत्रुको भी हरानेवाला है ॥ २ ॥

[ १७२० ] हे इन्द्र ! तू ( ( गंभिरान् उदधीन् इव ) गंभीर समुद्रको पुष्ट करनेके समान ( क्रतुं पुष्यसि ) यज्ञका पोषण करता है । जिसप्रकार ( सु-गोपाः ) उत्तम गोपालक ( गाः इव ) गायोंको उत्तम घास आदि देकर पुष्ट करता है, ( यथा धेनवः यवसं प्र ) जिसप्रकार गायें घास खाती हैं, अथवा ( कुल्या ह्रदं इव आशते ) नदियां जिसप्रकार तालाबमें मिलती हैं उसीप्रकार सोम तुझे प्राप्त होता है और पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

[ १७२१ ] ( गौरः तृष्यन् ) जैसे हिरण प्यासा होकर ( यथा अपाकृतं इरिणं एति ) पानीसे भरे हुए तालाबकी ओर जाता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! तू ( नः तूयं ) हमारे पास शीघ्रही ( आपित्वे प्रपित्वे आगहि ) मित्र भावनासे आ और ( कण्वेषु सचा सु पिब ) कण्वोंके यज्ञमें बैठकर सोम पी ॥ १ ॥

१७२२ मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥ २ ॥ ४ (घ) ॥
[ धा० २१ । उ० ४ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४।४ )

१७२३ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४।१९ )

१७२४ मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २ ॥ ५ ( का ) ॥
[ धा० २१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।८४।२० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७२५ प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥ ( ऋ ४।५२।१ )
१७२६ अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखा भूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।५२।२ )
१७२७ उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ ६ ( लि ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।५२।३ )

---

[ १७२२ ] हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( सुन्वते राधः देयाय ) सोम याग करनेवालेको धन देनेके लिए ( इन्दवः त्वा मन्दन्तु ) सोमरस तुझे प्रसन्न करें । तू ( चमूसुतं सोमं आमुष्य अपिबः ) कलशमें रखे गए सोमरसको जल्दीसे लेकर पीता है । ( तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे ) क्योंकि तू विशेष बल धारण करता है ॥ २ ॥

[ १७२३ ] ( अंग शविष्ठं ) हे प्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) तेजस्वी ऐसा तू ( मर्त्यं प्रशंसिषः ) स्तुति करनेवाले मनुष्यकी प्रशंसा करता है । हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वद् अन्यः मर्डिता न अस्ति ) तेरे सिवाय दूसरा कोई सुख देनेवाला नहीं, इसलिए ( ते वचः ब्रवीमि ) मैं तेरी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[ १७२४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( ते राधांसि ) तेरे धन ( अस्मान् कदाचन मा दभन् ) हमें कभी नष्ट न करें । ( ते ऊतयः मा ) तेरे संरक्षणके साधन हमारा नाश न करें । हे ( मानुष ) मनुष्योंका हित करनेवाले इन्द्र ! ( नः चर्षणिभ्यः ) हम प्रजाजनोंको ( विश्वा वसूनि आ उप मिमीहि ) सब धन लाकर दे ॥ २ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७२५ ] ( स्या सूनरी ) उस उत्तम प्रेरणा देनेवाली ( जनी ) फल देनेवाली ( स्वसुः परि व्युच्छन्ती ) अपनी बहिनके समान रात्रीके उत्तरभागमें प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यकी पुत्री उषा ( प्रत्यदर्शि ) दीखने लग गई है ॥ १ ॥

[ १७२६ ] ( अश्वा इव चित्रा ) घोडीके समान सुन्दर ( अरुषी गवां माता ) चमकनेवाली किरणोंकी माता ( ऋतावरी उषाः ) यज्ञ करनेवाली उषा ( अश्विनोः सखा अभूत् ) अश्विनौ देवोंकी मित्र हो गई है ॥ २ ॥

[ १७२७ ] ( उत अश्विनोः सखा असि ) और तू अश्विनी कुमारोंकी मित्र है । ( उत गवां माता असि ) और किरणोंकी माता है ( उत ) इसलिए तू हे ( उषः ) उषे ! ( वस्वः ईशिषे ) तू धन पर प्रभुता करती है ॥ ३ ॥

१७२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥ ( ऋ. १।४६।१ )

१७२९ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥ ( ऋ. १।४६।२ )

१७३० वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वा॒ रथो विभिष्पतात् ॥३॥ ७ ( लि ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।४६।३ )

१७३१ उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

( ऋ. १।९२।१३ )

१७३२ उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥२॥ ( ऋ. १।९२।१४ )

१७३३ युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वा॒ अद्यारुणा॒ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥ ८ ( हि ) ॥

[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।१५ )

१७३४ अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथ॒ समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥

( ऋ. १।९२।१६ )

१७३५ एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥ ( ऋ. १।९२।१८ )

---

[ १७२८ ] ( एषा प्रिया अपूर्व्या उषाः ) यह प्रिय अपूर्व उषा ( दिवः व्युच्छति ) द्युलोकको प्रकाशित करती है। हे ( अश्विनौ ) अश्विनीकुमारो ! ( वां बृहत् स्तुषे ) तुम्हारी बहुतसी स्तुति में करता हूं ॥ १ ॥

[ १७२९ ] ( या देवा ) जो अश्विनौ देव ( दस्रा ) शत्रुका नाश करनेवाले ( सिन्धुमातरा ) नदियोंको उत्पन्न करनेवाले ( रयीणां मनोतरा ) धन देनेवाले ( धिया वसुविदा ) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंको धन देनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ १७३० ] हे अश्विनौ देवो ! ( वां रथः ) तुम्हारा रथ ( जूर्णायां अधि विष्टपि ) प्रशंसनीय स्वर्गलोकमें ( यत् विभिः पतात् ) जब पक्षियोंसे ले जाया जाता है, उस समय ( वां ) तुम्हारे लिए ( ककुहासः वच्यन्ते ) स्तोत्र बोले जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७३१ ] हे ( वाजिनीवति उषः ) हवनोंको प्रारम्भ करनेवाली उषे ! ( अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर ) हमें वह विलक्षण धन भरपूर दे, ( येन तोकं तनयं च धामहे ) जिसकी सहायतासे पुत्रपौत्रोंका रक्षण हम कर सकें ॥ १ ॥

[ १७३२ ] ( गोमति ) गायोंसे युक्त, ( अश्वावति ) घोडोंसे युक्त, ( सूनृतावति विभावरि उषः ) यज्ञसे युक्त और तेजस्विनी उषे ! ( अद्य इह ) आज यहां ( अस्मे रेवत् व्युच्छ ) हमें तू धनयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १७३३ ] हे ( वाजिनीवति उषः ) यज्ञोंको शुरू करानेवाली उषे ! ( अरुणान् अश्वान् ) लाल रंगके घोडोंको ( अद्य युंक्ष्व हि ) अपने रथमें आज जोड और ( विश्वा सौभगानि नः आवह ) सब सौभाग्य हमें दे ॥ ३ ॥

[ १७३४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( दस्रा ) शत्रुका नाश करनेवाले तुम ( अस्मत् वर्तिः आ ) हमारे घरकी तरफ आओ - यज्ञशालाकी ओर आओ । ( गोमत् हिरण्यवत् रथं ) गाय और सुवर्णसे युक्त रथको ( समनसा अर्वाक् नियच्छतम् ) मनःपूर्वक हमारे पास लाओ ॥ १ ॥

[ १७३५ ] ( उषर्बुधः ) उषःकाल में जगनेवाले घोडे ( इह सोमपीतये ) यहां सोमपीनेके लिए ( दस्रा मयोभुवा ) शत्रुका नाश करनेवाले और सुख देनेवाले ( हिरण्यवर्तनी देवा ) सोनेके रथोंवाले अश्विदेवोंको ( आवहन्तु ) लावें ॥२॥

१७३६ यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥ ९ ( भा ) ॥
[ धा० २० । उ० ४ । स्व० २ ] ( ऋ. १।९२।१७ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७३७ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इष१ँ स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥ ( ऋ. ५।६।१ )

१७३८ अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुव१ँ स प्रीतो याति वार्यमिष१ँ स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥ ( ऋ. ५।६।३ )

१७३९ सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः स१ँ सुजातासः सूरय इष१ँ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ १० ( घु ) ॥
[ धा० १६ । उ० ४ । स्व० ५ ] ( ऋ. ५।६।२ )

---

[ १७३६ ] हे ( अश्विना ) अश्विनीकुमारो ! ( यौ ) जो तुम ( दिवः श्लोकं ज्योतिः ) द्युलोकसे प्रशंसनीय प्रकाश ( इत्था जनाय चक्रथुः ) इस तरह लोगोंके हितके लिए लाते हो, ( युवं ) ऐसे तुम ( नः ऊर्जं आ वहतं ) हमें बल दो ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७३७ ] ( तं अग्निं मन्ये ) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूं ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है। ( अस्तं यं धेनवः यन्ति ) जिसके आश्रयमें गायें जाती हैं, ( अस्तं आशवः अर्वन्तः ) जिसके आश्रयमें घोडे जाते हैं ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिसके आश्रयमें नित्यकर्म करनेवाले, हवि पासमें रखनेवाले यजमान जाते हैं, ऐसा तू ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवाले हमें भरपूर अन्न दे ॥ १ ॥

[ १७३८ ] ( अग्निः हि ) अग्नि निश्चयसे ( विशे वाजिनं ददाति ) यजमानको पुत्र देता है। ( विश्वचर्षणिः सः अग्निः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला वह अग्नि ( प्रीतः ) प्रसन्न होकर ( स्वाभुवं वार्यं ) स्वयं लडलडानेवाले ( राये याति ) धन देनेके लिए यज्ञमें जाता है। हे अग्ने ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ २ ॥

[ १७३९ ] ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है, ( यं धेनवः समायन्ति ) जिसके पास गायें मिलकर जाती हैं। ( रघुद्रुवः अर्वन्तः सं ) शीघ्र दौडनेवाले घोडे जिसके पास जाते हैं। ( सु-जातासः सूरयः सं ) उत्तम प्रसिद्ध विद्वान् जिसके पास जाते हैं, ऐसा ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( गृणे ) प्रशंसित होता है। हे अग्ने ! ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ ३ ॥

१७४० महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७९।१ )

१७४१ या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७९।२ )

१७४२ सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥ ११ ( तु ) ॥
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ५।७९।३ )

१७४३ प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतꣳ हवम् ॥१॥ ( ऋ. ५।७५।१ )

१७४४ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहꣳ सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतꣳ हवम् ॥२॥ ( ऋ. ५।७५।२ )

---

[ १७४० ] ( अद्य ) आज हे ( उषः ) उषे ! दिवित्मती ) प्रकाशयुक्त तू ( नः महे राये बोधय ) हमें बहुत धन प्राप्तिके लिए ज्ञानयुक्त कर । ( यथा चित् नो अबोधयः ) जिसप्रकार पहले ज्ञानयुक्त करती थी, उसीप्रकार अब भी कर । हे ( सुजाते अ-श्व सूनृते ) कुलीन और हमेशा सत्य बोलनेवाली उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) वय्यके पुत्र सत्यश्रवापर कृपा कर ॥ १ ॥

[ १७४१ ] हे ( दिवः दुहितः ) द्युलोककी कन्ये ! ( या ) जो तू ( सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छः ) सुनीथ नामक शुचद्रथके पुत्रके लिए प्रकाशित हुई, ( सा ) वह तू ( सहीयसी वाय्ये सुजाते सत्यश्रवसि व्युच्छ ) अति बलवान् वय्यके सत्यश्रवा नामक कुलीन पुत्र पर अपने प्रकाशरूपी अनुग्रहको कर ॥ २ ॥

[ १७४२ ] हे ( दिवः दुहितः ) द्युलोककी पुत्री ! ( सा वसु आभरद् ) वह तू हमें धन भरपूर दे, तथा ( नः अद्य व्युच्छ ) हमारे लिए आज प्रकाशित हो। हे ( सहीयसि ) अत्यन्त बलवाली ( या व्यौच्छः ) जिस तूने अन्धकारको दूर किया है, ऐसी हे ( सुजाते अ-श्वसूनृते ) कुलीन और सदा सत्य बोलनेवाली उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) वय्यके पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

[ १७४३ ] ( अश्विनौ ) अश्विदेवो ! ( स्तोता ऋषिः ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( वां ) तुम्हारे ( वृषणं वसुवाहनं ) बलवान् और धन ढोकर ले जानेवाले ( प्रियतमं रथं ) अत्यन्त प्रिय रथको ( स्तोमेभिः प्रतिभूषति ) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है । इस कारण हे ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवालो ! ( मम हवं श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ १७४४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( अत्यायातं ) तुम अन्य यजमानोंको पार करके हमारी तरफ आओ। ( अहं विश्वाः सना तिरः ) में अपने सब शत्रुओंको हराऊं । हे ( दस्रा हिरण्यवर्तनी ) शत्रुका नाश करनेवाले और सोनेके रथवाले ( सुषुम्णा सिन्धुवाहसा ) उत्तम धनसे युक्त और नदियोंमें भी जानेवाले तथा ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले अश्विदेवो ! ( मम हवं श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

*

१७४५ आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥ १२ (वा) ॥
[ धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।७५।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१७४६ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।१ )

१७४७ अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१।२ )

१७४८ यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥ १३ (लि) ॥
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१।३ )

---

[ १७४५ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( रुद्रा हिरण्यवर्तनी ) तुम शत्रुओंको रुलाने हारे तथा सोनेके रथमें बैठनेवाले ( रत्नानि बिभ्रता ) रत्नों को धारण करनेवाले ( वाजिनीवसू जुषाणा ) अन्न और धनोंसे युक्त तथा यज्ञमें आनेवाले ( युवं आगच्छतं ) तुम हमारे पास आओ । ( माध्वी ! मम हवं श्रुतं ) हे मधुविद्याके जाननेवालो ! मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १७४६ ] ( अग्निः जनानां समिधा अबोधि ) अग्नि याजकोंकी समिधासे प्रज्वलित हुआ है । ( धेनुं इव ) गायोंको जिसप्रकार प्रातःकाल उठाते हैं, उसीप्रकार अग्नि जागृत हुआ है । ( आयतीं उषासं प्रति ) आनेवाले उषःकालमें ( भानवः ) अग्निकी ज्वालायें ( वयां प्रोज्जिहानाः यह्वाः इव ) अपनी डालियोंको फैलानेवाले वृक्षके समान ( नाकं अच्छ प्रसस्रते ) अन्तरिक्षकी ओर फैलती हैं ॥ १ ॥

[ १७४७ ] ( होता अग्निः ) हवन करनेवाला अग्नि ( देवान् यजथाय अबोधि ) देवों द्वारा यज्ञ किए जानेके लिए प्रज्वलित हुआ है । वह अग्नि ( प्रातः सुमनाः ) प्रातःकाल उत्तम मनसे ( ऊर्ध्वः अस्थात् ) ऊपर उठ गया है । ( समिद्धस्य रुशत् ) प्रज्वलित हुए हुए अग्निका ( पाजः अदर्शि ) तेजस्वी बल दीखने लगा है । यह ( महान् देवः तमसः निरमोचि ) महान् देव जगत्को अन्धकारसे छुडाता है ॥ २ ॥

[ १७४८ ] ( यत् ईं ) जब यह अग्नि ( गणस्य रशनां अजीगः ) जन समुदायके कार्योंमें विघ्न डालनेवाले अन्धकाररूपी प्रतिबंधको निगल जाता है, तब ( शुचिः अग्निः ) शुद्ध तेजस्वी अग्नि ( शुचिभिः गोभिः ) शुद्ध किरणोंसे ( अंक्ते ) जगत्को प्रकट करता है । ( आत् ) उसके बाद ( वाजयन्ती दक्षिणा ) बल देनेकी इच्छा करती हुई घीकी मोटी धारा ( जुहूभिः युज्यते ) यज्ञपात्रसे संयुक्त होती है । तब ( उत्तानां ऊर्ध्वः अधयत् ) ऊपरसे आनेवाली घीकी उस धाराको यह अग्नि ऊपर उठकर पीता है ॥ ३ ॥

१७४९ इदꣳ श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।११३।१ )

१७५० रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिमाने ॥ २ ॥ ( ऋ. १।११३।२ )

१७५१ समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥ १४ ( भ ) ॥
[ धा० ३० । उ० ९ । स्व० १ ] ( ऋ. १।११३।३ )

१७५२ आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनꣳ रथ्येह यातं पीपिवाꣳसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७६।१ )

१७५३ न सꣳस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७६।२ )

---

[ १७४९ ] ( ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः ) तेजस्वी पदार्थोंमें सबसे अधिक तेजवाली यह उषा ( आगात् ) उदय हुई है। ( चित्रः प्रकेतः ) उसका प्रकाश विलक्षण तेजस्वी ( विभ्वा अजनिष्ट ) और चारों ओर फैला हुआ है। ( यथा सवितुः प्रसूता रात्रिः ) सूर्यसे उत्पन्न हुई हुई अर्थात् सूर्यके डूब जानेसे उत्पन्न हुई हुई रात्री ( उषसे सवाय ) उषाको उत्पन्न करनेके लिए ( योनिं आरैक् ) अपने बीचमें उसके लिए स्थान बनाती है ॥ १ ॥

[ १७५० ] ( रुशती श्वेत्या ) प्रकाशित होनेवाली श्वेत रंगकी उषा ( रुशद्वत्सा आगात् ) तेजस्वी सूर्यरूप पुत्रको लेकर आगई है। ( अस्याः कृष्णा सदनानि आरैक् ) इस रात्रीके काले रंगके स्थान हैं। उषा व रात्री दोनोंका ( समान-बन्धू ) सूर्यके साथ समान बन्धुत्व-प्रेम है, ( अमृते अनूची ) अमर और क्रमसे एकके पीछे दूसरे आनेवाले हैं और ( वर्णं आमिमाने ) दोनों एक दूसरेके रंगको नष्ट करनेवाले हैं, तथा ( द्यावा चरतः ) दोनों ही द्युलोकमें विचरनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ १७५१ ] ( स्वस्रोः अध्वा समानः ) रात्री और उषा दोनों ही बहिनोंका मार्ग एक ही है, और यह मार्ग ( अनन्तः ) अन्तरहित है। ( तं देवशिष्टे अन्यान्या चरतः ) उस मार्गसे सूर्यके द्वारा कहे हुएके अनुसार एकके पीछे दूसरी क्रमसे चलती हैं। ( सुमेके नक्तोषासा ) उत्तम कार्य करनेवालीं ये उषा और रात्री ( विरूपे समनसा ) विभिन्न रूपवालीं होती हुईं भी एक विचारवालीं हैं तथा कभी भी ( न मेथेते ) आपसमें झगडा नहीं करतीं तथा ( न तस्थतुः ) स्थिर भी नहीं रहतीं। अपने अपने कार्योंको करती रहतीं हैं ॥ ३ ॥

[ १७५२ ] ( उषसां अनीकं अग्निः आभाति ) उषाका मुखरूपी यह अग्नि प्रदीप्त हो गया है। इस समय ( विप्राणां देवयाः वाचः उदस्थुः ) ज्ञानियोंकी दिव्य स्तुतिरूप वाणियां शुरु होगईं हैं। इस कारण ( रथ्या अश्विना ) हे रथमें बैठनेवाले अश्विदेवो ! ( अर्वाञ्चा नूनं इह ) हमारे पास यहां आओ। यज्ञमें ( पीपिवांसं घर्मं अच्छ ) पीने योग्य सोमरसके पास ( आयातं ) आओ ॥ १ ॥

[ १७५३ ] हे अश्विनीकुमारो ! ( संस्कृतं न प्रमिमीतः ) संस्कार किए गए पदार्थोंको लेनेसे मना मत करो। ( अन्ति नूनं इह गमिष्ठा ) पासमें होनेवाले इस यज्ञमें जाओ। ( अश्विना उपस्तुता ) अश्विनीदेवोंकी स्तुति की जाती है। ( दिवाभिपित्वे ) दिनके प्रातःकाल होते ही ( अवसा अवर्तिं प्रत्यागमिष्ठा ) रक्षा करनेवाले अन्नके साथ तुम आते हो। इसलिए ( दाशुषे शंभविष्ठा ) दान देनेवालेको सुख देनेवाले होओ ॥ २ ॥

१७५४ उत्ता यात᳭ᳫसंगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥ १५ (लो) ॥
[ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ५।७६।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१७५५ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९२।१ )

१७५६ उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९२।२ )

१७५७ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ १६ ( कि ) ॥
[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।३ )

---

[ १७५४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( अह्नः संगवे ) दिनमें गाय दुहनेके समय ( प्रातः ) सबेरे ( सूर्यस्य उदिता ) सूर्यके उदय होनेपर ( मध्यन्दिने ) मध्यान्हमें ( दिवा ) दिनमें ( नक्तं ) रात्रीमें अर्थात् हमेशा ( शंतमेन अवसा ) सुखदायक रक्षणोंके साधनोंके साथ ( आयातं ) आओ। ( उत ) क्योंकि ( इदानीं पीतिः न ततान ) अभी सोम पीना शुरु नहीं हुआ है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १७५५ ] ( त्या एताः उषसः ) वे ये उषायें ( केतुं अक्रत ) प्रकाश करती हैं। ( रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अंजते ) अन्तरिक्षके पूर्व अर्धमें प्रकाश हो गया है। ( धृष्णवः आयुधानि इव ) वीर लोग जैसे शस्त्र तीक्ष्ण करते हैं, उसीप्रकार ( निष्कृण्वानाः ) अपने प्रकाशसे जगत्को प्रकाशित करते हुए ( गावः ) गमन करनेवालीं तथा ( मातरः अरुषीः ) जगत्की माता तेजयुक्त उषायें ( प्रति यन्ति ) प्रतिदिन आती हैं ॥ १ ॥

[ १७५६ ] ( अरुणाः भानवः ) अरुण रंगकी किरणें ( वृथा उदपप्तन् ) सरलतासे ही ऊपर आगई हैं। ( स्वायुजः अरुषीः गाः अयुक्षत ) स्वयं ही जुडजानेवाले बैल - किरण - रथमें जोडे गए हैं। ( उषासः पूर्वथा वयुनानि अक्रन् ) उषायें पहले ज्ञानका प्रसार करती हैं। बादमें ( अरुषीः रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः ) प्रकाश करनेवाली उषायें तेजस्वी सूर्यकी सेवा करने लगीं ॥ २ ॥

[ १७५७ ] ( सुकृते सुदानवे ) उत्तम कर्म करनेवाले और उत्तम दान देनेवाले ( सुन्वते यजमानाय ) सोमरस निकालनेवाले यजमानको ( विश्वा इत् अह इषं वहन्तीः ) बहुत अन्न देनेवाली ( नारीः ) उषारूपी स्त्रियें ( विष्टिभिः ) अपनी किरणोंसे ( समानेन योजनेन ) समान योजनासे ( परावतः आ अर्चन्ति ) दूर देशसे आकाशको सुन्दर बनाती हैं। ( अपसः न ) जिसप्रकार युद्ध करनेवाले वीर अपने शस्त्रोंको रणभूमिमें सुन्दर बनाते हैं, उसीप्रकार उषायें आकाशको सुन्दर बनाती हैं ॥ ३ ॥

१७५८ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५७।१ )

१७५९ यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१५७।२ )

१७६० अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥ १७ (छा) ॥
[ धा० २२ । उ २ । स्व० २ ] ( ऋ. १।१५७।३ )

१७६१ प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजꣳ सहस्रिणम् ॥ १ ॥
( ऋ. ९।५७।१ )

१७६२ अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥
( ऋ. ९।५७।२ )

१७६३ स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वꣳसु षीदति ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।५७।३ )

---

[ १७५८ ] ( अग्निः ज्मः अबोधि ) अग्नि अपनी वेदीमें प्रदीप्त हुआ है। ( मही उषाः अर्चिषा चन्द्रा वि आवः ) बडी उषा अपने तेजसे लोगोंको आनन्द देती हुई प्रकट हुई है । हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( यातवे रथं आयुक्षातां ) यज्ञमें जानेके लिए अपने रथको जोडो । ( सविता देवः ) सूर्य देव ( जगत् पृथक् प्रासावीत् ) जगत्के सब प्राणियोंको अपने-अपने कर्तव्यमें लगाता है ॥ १ ॥

[ १७५९ ] हे ( अश्विना ) अश्विनीकुमारो ! ( यत् वृषणं रथं युञ्जाथे ) जब तुम अपने बलवान् रथको जोडते हो, तब ( नः क्षत्रं ) हमारे क्षत्रियोंको ( मधुना घृतेन उक्षतं ) मीठे घीसे पुष्ट करो। ( अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं ) हमारी प्रजाओंमें ज्ञानकी वृद्धि करो। ( वयं शूरसातौ धना भजेमहि ) और हम युद्धमें धनको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७६० ] ( अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु ) अश्विनौका रथ हमारे पास आवे। ( त्रिचक्रः मधुवाहनः ) तीन पहियोंवाला और मीठे अमृतको धारण करनेवाला ( जीराश्वः सुष्टुतः ) जल्दी चलनेवाले घोडे जिसमें जुते हुए हैं, और जिसकी उत्तम स्तुति होती है, ऐसा ( त्रिबन्धुरः मघवा विश्वसौभगः ) तीन बैठकों वाला, धनसे भरा हुआ तथा सब सौभाग्यसे युक्त रथ ( नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत् ) हमारे दुपाये और चोपायोंके लिए सुख लेकर आवे ॥ ३ ॥

[ १७६१ ] हे सोम ! ( ते असश्चतः धाराः ) तेरी न बन्द होनेवाली धारायें ( सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति ) हजारों तरहके अन्न हमें देती हैं। ( दिवः वृष्टयः न ) जैसे द्युलोकसे वृष्टि होती है, उसीप्रकार तेरी धारायें हम पर अन्नकी वृष्टि करती हैं ॥ १ ॥

[ १७६२ ] ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः ) सब प्रिय कर्मोंको देखते हुए ( आयुधा तुंजानः ) आयुधोंको शत्रुओंपर फेंकते हुए ( अभ्यर्षति ) आगे जाता है ॥ २ ॥

[ १७६३ ] ( सुव्रतः सः ) उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम ( आयुभिः मर्मृजानः इभः राजा इव ) ऋत्विजों द्वारा शुद्ध होता हुआ निर्भीक राजाके समान दीखता है और ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( वंसु सीदति ) पानीमें मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

१७६४ स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ १८ ( वी ) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।५७।४ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ३ ॥ अष्टमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

[ १७६४ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला ( सः ) वह तू ( दिवः अधि ) द्युलोकमें ( उत पृथिव्याः ) और पृथिवीपर रहकर ( विश्वा वसु नः आभर ) सब धन हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥

# एकोनविंश अध्याय

इस अध्यायमें उषा, अश्विनौ, इन्द्र और सोम देवताओंका वर्णन है। उनमेंसे उषा देवताका वर्णन इस प्रकार है—

## उषा देवता

१ स्या सूनरी दिवः दुहिता प्रत्यदर्शि, जनी स्वसुः परिव्युच्छन्ती [१७२५]– वह उषा उत्तम प्रेरणा करनेवाली सूर्यकी पुत्री दीखने लग गई है, उसके प्रकाशको पैदा करनेवाली रात्रीरूपी बहिन बादमें चारों ओरसे प्रकाशित होती है।

२ अश्वा इव चित्रा, अरुषी गवां माता, ऋतावरी उषा अश्विनोः सखा अभूत् [१७२६]– घोडीके समान सुन्दर, चमकनेवाली किरणोंकी माता, यज्ञकी प्रेरक उषा अश्विनौके मित्रके समान हो गई है। अश्विनौ प्रातःकाल दीखते हैं, इसलिए उषा उनकी मित्र है।

३ हे उषः ! वस्व ईशिषे [ १७२७ ]– हे उषे ! तू धनकी स्वामिनी है।

४ गवां माता असि [ १७२७ ]– प्रकाश-किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उनकी माता है।

५ एषा प्रिया अपूर्व्या उषा दिवः व्युच्छति [१७२८] यह प्रिय अपूर्व उषा द्युलोकको प्रकाशित करती है।

६ वाजिनीवति उषः ! अस्मभ्यं तत् चित्रं आ भर येन तोकं तनयं च धामहे [ १७३१ ]– हे अन्न पासमें रखनेवाली उषे ! हमें वह श्रेष्ठ धन दे, जिसकी सहायतासे हम पुत्रपौत्रोंका उत्तम पोषण कर सकें।

७ अश्वावति गोमति सूनृतावति विभावरि उषः ! अद्य इह अस्मे रेवत् व्युच्छ [ १७३२ ]– हे घोडे और गायोंसे युक्त, यज्ञ करनेवाली प्रकाशमान् उषे ! आज यहां हमें धनसे युक्त करके प्रकाशित कर।

८ हे वाजिनीवति उषः ! अरुणान् अश्वान् अद्य युंक्ष्व, विश्वा सौभगानि नः आ वह [ १७३३ ]– हे अन्नको अपने पास रखनेवाली उषे ! अपने रथमें लाल रंगके घोडे जोड और सब सौभाग्य हमें दे।

९ हे सुजाते अश्व्य सूनृते ! दिवित्मती नः महे राये बोधय यथा चित् नः अबोधयः [ १७४० ]– हे उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाली, आज यज्ञको शुरू करनेवाली उषे ! तू प्रकाशयुक्त होकर हमें बहुत धन प्राप्त करनेका मार्ग बता, जैसा कि तूने पहले भी बताया था।

१० हे दिवः दुहितः ! सा आभरद् वसु नः अद्य व्युच्छ [१७४२]– हे द्युलोककी पुत्री उषे ! तू भरपूर धन देनेवाली होकर हमारे लिए प्रकाश दे।

११ ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः आगात्, चित्रः प्रकेतः विभ्वा अजनिष्ट [ १७४९ ]– तेजस्वी पदार्थोंमें विशेष तेजवाली उषा उदय होगई है, उसका प्रकाश सब जगहपर फैल गया है।

१२ उषसां अनीकं अग्निः आभाति, विप्राणां देवया वाचः उदस्थुः [१७५२]– उषाका मुखरूपी अग्नि प्रदीप्त हो गया है, ब्राह्मणोंका दिव्य मंत्र घोष शुरू हो गया है।

१३ स्या एताः उषसः केतुं अक्रत, रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अंजते, निष्कृण्वानाः मातरः उषसः प्रति यन्ति [ १७५५ ]– वह यह उषाका प्रकाश फैल रहा है अन्तरिक्षकी पूर्व दिशाके अर्धमें प्रकाश हो गया है। अपने प्रकाशसे जगत्को प्रकाशित करते हुए यह माता उषा प्रतिदिन आती है।

उषा सूर्यकी अथवा द्युलोककी पुत्री है। उसकी बहिन रात्री है। ये दोनों क्रमशः एकके पीछे दूसरी आती हैं। उषा दीखनेमें सुन्दर है, क्योंकि वह प्रकाशवाली है। प्रकाशके किरणोंकी यह माता है। उषासे ही प्रकाशकी किरणें निकलती हैं। आकाशकी पूर्व दिशाके आधे भागमें उसका लाल प्रकाश दीखने लगता है। वह उषा ही होती है। यज्ञ करनेवाले हवि-र्द्रव्य और अन्न लेकर अग्निकी सेवा करनेके लिए तैय्यार होते हैं, उस समय उषःकाल होता है।

उषःकाल होते ही गाय और घोडे चरनेके लिए छोड दिए जाते हैं। यज्ञशालामें याजक यज्ञ करनेकी तैय्यारी करते हैं, वेदपाठियोंका वेदपाठ शुरू हो जाता है। अग्नि प्रदीप्त किया जाता है और हवन प्रारम्भ होते हैं।

यह सुन्दर वर्णन उषाका इन मंत्रोंमें आया है। उषःकालमें अश्विनौ (नक्षत्र) उदय होते हैं, इसलिए उषाको अश्विनौकी सहेली बताया है।

## अश्विनौ

१ उस्रा सिन्धु मातरा रयीनां मनोतरा धिया वसुविदा [ १७२९ ]– ये अश्विनौ देव शत्रुका नाश करनेवाले, नदियोंको उत्पन्न करनेवाले और बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालोंको धन देनेवाले हैं।

२ वां रथः जूर्णायां अधि विष्टपि, यत् विभिः पतात् वां ककुहासः वच्यन्ते [ १७३० ]– तुम्हारे रथ प्रशंसनीय अन्तरिक्षमें जब पक्षियों द्वारा ले जाये जाते हैं, उस समय तुम्हारे लिए स्तोत्र कहे जाते हैं।

३ हे अश्विना ! दस्रा अस्मत् वर्तिः आ। गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नि यच्छतम् [१७३४]– हे अश्विनौ ! शत्रुका नाश करनेवाले तुम हमारी यज्ञशालाकी ओर आओ। गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास ले आओ।

४ हे अश्विना ! यौ दिवः श्लोकं ज्योतिः इत्था जनाय चक्रतुः, युवं न ऊर्जं आवहतम् [१७३६]– हे अश्विनौ ! जो तुम आकाशसे प्रशंसनीय प्रकाशको इस प्रकार लोगोंके हितके लिए लाते हो, ऐसे तुम हमें बल बढानेवाले अन्न दो।

५ हे दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी ! मम हवं श्रुतं [ १७४४ ]– हे शत्रुके नाश करने-वाले, सोनेके रथमें बैठनेवाले, उत्तम धन पासमें रखनेवाले, नदियोंसे जानेवाले और मधु विद्याको जाननेवाले अश्विनौ देवो ! हमारी प्रार्थना सुनो।

६ हे अश्विना ! रुद्रा हिरण्यवर्तनी वाजिनीवसू जुषाणा युवं आगच्छतम् [१७४५]- हे अश्विनौ देवो ! तुम शत्रुको रुलानेवाले, सोनेके रथ पर बैठनेवाले, अन्न और धन पासमें रखनेवाले और यज्ञमें आनेवाले हो। तुम हमारे यज्ञमें आओ।

७ दिवाभिपित्वे अवसा अवर्तिं प्रत्यागमिष्ठा, दाशुषे शंभविष्ठा [ १७५३ ]– दिनके प्रारम्भ होते ही अन्नके साथ तुम आते हो। इसलिए दान देनेवालोंको सुख देनेवाले तुम होओ।

८ हे अश्विना ! अह्ना सम्भवे प्रातः दिवा नक्तं शंतमेन अवसा आयातं [ १७५४ ]– हे अश्विदेवो ! दिनमें गाय दुहनेके समय प्रातःकाल दिनरात सुख देनेवाले संरक्षणके साधनोंके साथ आओ।

९ अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु, त्रिचक्रः मधु-वाहनः जीराश्वः सुष्टुतः, त्रिवन्धुरः, मघवा, विश्वसौभगः नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत् [१७६०] – अश्विनौका रथ हमारे पास आवे। तीन पहियोंवाला, मीठे रसको धारण करनेवाला, तेज दौडनेवाले घोडोंसे युक्त, जिसकी उत्तम प्रशंसा होती है, ऐसे तीन बैठकोंवाला, धनसे भरा हुआ, सब सौभाग्यसे युक्त रथ हमारे द्विपाद और चौपायोंको सुख देवे।

अश्विनौ शत्रुओंका वध करते हैं, धन देते हैं, मन लगाकर कार्य करनेवालोंको ऐश्वर्य देते हैं। उनका विमान अन्तरिक्षमें भी जाता है, उस समय उस रथमें पक्षी जोडे जाते हैं। गोरस-घी और दूध तथा सोना इनके रथमें होता है। लोगोंके बल बढानेवाले पदार्थ इनके रथमें होते हैं। इनका यह रथ सोनेका अर्थात् सोनेसे मढा हुआ है। अपने पराक्रमसे शत्रु-ओंको रुलाते हैं, अन्न और धनको अपने रथमें रखते हैं। ये

सवेरे गाय दुहनेके समय दिनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रोगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं। इनके रथमें तीन पहिए और तीन बैठनेके स्थान हैं। इनके पास सबके आरोग्य बढानेके साधन हैं।

## अग्नि

१ ऊर्जो-न-पातं पावकशोचिषं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे आहुवे [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले, प्रकाशसे युक्त अग्निको उत्तम हिंसारहित यज्ञमें हम बुलाते हैं।

२ मित्रमहः अग्ने! शुक्रेण शोचिषा देवैः बर्हिषि आसत्सि [ १७१३ ]- हे मित्रोंके द्वारा पूज्य अग्ने! वह तू शुद्ध ज्वालाओंसे युक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आसन पर बैठ।

३ यः वसुः। अस्तं यं धेनवः यन्ति, अस्तं आशवः अर्वन्तः [ १७३७ ]- अग्नि सबको बसानेवाला है, उसके आश्रयमें गायें रहती हैं और उसके आश्रयमें घोडे भी रहते हैं।

४ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वाभुवं वार्यं राये याति [ १७३८ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर खनखन करनेवाले धन देनेके लिए यज्ञमें जाता है।

५ अग्निः जनानां समिधा अबोधि [१७४६]- अग्नि याजकोंकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ है।

६ आयतीं उषासं प्रति भानवः वयां प्रोज्जिहानाः यह्वाः इव नाकं अच्छ प्र सस्रते [ १७४६ ]- आनेवाले उषःकालमें अग्नि, जिसप्रकार पेड अपनी डालियोंको आकाशमें फैलाता है, उसीप्रकार अपनी ज्वालाओंको अन्तरिक्षमें फैलाता है। अग्निके जलते ही उसकी ज्वालायें, वृक्षकी शाखाओंके समान, अन्तरिक्षमें फैलती हैं।

७ अग्निः देवान् यजथाय अबोधि। प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्। समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि। महान् देवः तमसः निरमोचि [१७४७]- अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रदीप्त हुआ है। सवेरे सवेरे उत्तम मनसे ऊपर उठा है। प्रज्वलित हुए हुए अग्निका तेजस्वी बल दीखने लग गया है। यह महान् देव जगत्को अन्धकारसे मुक्त करता है।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः गोभिः अंक्ते [१७४८]- शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जगत्को प्रकाशित करता है।

९ अग्निः ज्मः अबोधि [ १७५८ ]- अग्नि वेदीमें प्रज्वलित हो गया है।

अग्नि बल कम न करनेवाला है। शरीरमें अग्नि उष्णताके रूपमें रहता है। उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढाता है। जीवन एक यज्ञ है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी उष्णता है। सब इन्द्रियोंमें देवोंके अंश रहते हैं। उन देवोंके साथ अग्नि यहां रहता है, और शरीर चलता है। शरीरमें गर्मी कम हुई कि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है।

यह अग्नि सब शक्तियोंका निवासक है। उसमें गायका दूध और घीका हवन होता है। दूसरे हवनीय पदार्थ भी हवनके लिए लाये जाते हैं। सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि है।

यह अग्नि समिधाओंसे जलाया जाता है और बादमें उसमें हव्य पदार्थोंका हवन किया जाता है। यज्ञ स्थानमें सबेरे सवेरे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। वह प्रदीप्त होते ही अपनी ज्वालायें अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है।

अग्नि महान् देव है। वह अन्धकार दूर करता है और प्रकाश फैलाता है। अपने प्रकाशसे सब जगह शुद्धता करके सब मनुष्योंका कल्याण करता है।

## इन्द्र

१ हे इन्द्र! मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः आयाहि [१७१८]- हे इन्द्र! आनन्द देनेवाले मोरके पंखके समान रंगवाले बालोंसे युक्त घोडोंके द्वारा तू यहां आ।

२ केचित् त्वा मा नियेमुः धन्वेव तान् अति इहि [१७१८]- कोई भी तुझे बीचमें न रोके, जैसे मनुष्य रेगिस्तानको जल्दीसे पार कर जाता है. उसीप्रकार तू भी उन्हें शीघ्रतासे पार करके आ।

३ इन्द्रः वृत्रखादः, वलं रुजः, पुरां दर्मः, दृढाचित् आरुजः, हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता [१७१९] - इन्द्र वृत्रका नाशक, बल राक्षसका विनाशक, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला, मजबूत शत्रुओंको हरानेवाला और घोडोंके रथमें बैठनेवाला है।

४ क्रतुं पुष्यसि, सुगोपाः [ १७२० ]- तू यज्ञका पोषण करता है और तू गायोंका उत्तम पालन करनेवाला है।

५ हे मघवन्! हे इन्द्र! त्वत् अन्यः मर्डिता नास्ति [ १७२३ ]- हे धनवान् इन्द्र! तेरे बिना सुख देनेवाला दूसरा और कोई नहीं है।

६ हे वसो! ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दभन् [ १७२४ ]- तेरे धन हमें कभी भी नष्ट न करें।

७ ते ऊतयः मा दभन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षणके साधन हमारा नाश न करें।

८ नः चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ उप मिमीहि [ १७२४ ]- हमारी प्रजाओंको सब धन भरपूर लाकर दे।

इन्द्र सुन्दर अयालसे युक्त घोडोंवाले रथमें बैठकर यज्ञके स्थान पर आता है। इन्द्र वृत्रका वध करता है, वल राक्षसको मारता है। शत्रुके नगरोंको तोडता है। जो सामर्थ्यवान् शत्रु हैं उन्हें वह हराता है। गाय और घोडोंका पालन करता है। इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी सुख देनेवाला नहीं। इन्द्र लोगोंको अनेक प्रकारके धन देता है और उन्हें बडा बनाता है। सबका वह संरक्षण करता है और सबको निर्भय बनाता है। इस प्रकार वह सब लोगोंका कल्याण करता है।

## सोम

१ हे अद्रिवः सोम ! ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः, याः स्पृधः नुदस्व [१७१४]- हे पत्थरोंसे कूटे जानेवाले सोम ! तेरे सामर्थ्य राक्षसोंका नाश करते हुए ऊपर प्रकट होते हैं। मुकाबला करनेवाले जो शत्रु हैं उन्हें दूर कर।

२ अया ओजसा निजघ्निः, अविभ्युषा हृदा रथसंगे हिते धने स्तवै [ १७१५ ]- जिस अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश करता है, उस बलको निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें शत्रुको नष्ट करनेके बाद प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूं।

३ पवमानस्य अस्य व्रतानि दूढ्या न आधृषे, यः त्वा पृतन्याति, रुज [१७१६]- इस छाने जानेवाले सोमके कर्मोंसे दुष्ट राक्षस प्रगति नहीं कर सकते। हे सोम ! जो तुझ पर सेना भेजनेकी इच्छा करता है उसका नाश कर।

४ मदच्युतं हरिं वाजिनं मत्सरं तं इन्दुं नदीषु इन्द्राय [ १७१७ ]- आनन्द देनेवाले हरे रंगके, बल बढानेवाले और उत्साह बढानेवाले, चमकनेवाले सोमको नदीके पानीमें मिलाओ और वह इस इन्द्रको दो।

५ ते असश्चतः धाराः सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति [ १७६१ ]- तेरी न थमती हुई बहनेवाली धारा हजारों प्रकारके अन्न हमें देती है।

६ हरिः विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः, आयुधा तुजानः अभ्यर्षति [ १७६२ ]- हरे रंगका सोम सर्व प्रिय यज्ञ कर्मको देखता हुआ, स्तुति सुनता हुआ और शस्त्रोंको शत्रु पर फेंकता हुआ आगे जाता है।

*

७ सुव्रतः सः आयुभिः मर्मृजानः इभः राजा इव वंसु सीदति [ १७६३ ]- उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध होता हुआ राजाके समान दीखता है, बादमें वह पानीमें मिलाया जाता है।

८ हे इन्दो ! पुनानः दिवः अधि उत पृथिव्याः विश्वा वसु नः आभर [ १७६४ ]- हे सोम ! शुद्ध होता हुआ तू द्युलोक और पृथ्वीलोक पर रहकर सब धन हमें भरपूर दे।

सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है, फिर उसका रस निकाला जाता है। उस समय उसका प्रकाश बाहर पडता है और उससे अन्धकार दूर होता है। यह सोम अपने सामर्थ्यसे वीरोंमें अपरिमित उत्साह उत्पन्न करता है। उसके द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है। द्वेष करनेवालोंका नाश करता है।

सोमरसको पानीमें मिलाते हैं। इसकी धारा अनेक प्रकारसे अन्न देती है। सोमरस अन्नका काम देता है। क्षत्रिय वीर इसे पीते हैं और उत्साहित होकर शत्रुसे युद्ध करते हैं और अन्तमें विजयी होते हैं। सोमरसको पानीमें मिलानेके बाद छानते हैं। ऐसा तैय्यार किया गया रस पृथ्वीपरके सब ऐश्वर्य देनेमें समर्थ है।

" सोम स्वयं शत्रुपर शस्त्र फेंकता है " ऐसा वर्णन आलंकारिक है। वीर सोमरस पीकर उत्साहित होकर शत्रु पर शस्त्र फेंकते हैं और विजय प्राप्त करते हैं। सोमका यह आलंकारिक वर्णन समझना चाहिए, नहीं तो अर्थका अनर्थ होना सम्भव है।

---

## सुभाषित

१ कविः अग्निः प्रत्नेन जन्मना स्वां तन्वं शुम्भानः विप्रेण वावृधे [ १७११ ]- ज्ञानी अग्नि पुराने स्तोत्रोंसे अपने शरीरकी शोभा बढाता हुआ ब्राह्मणोंके द्वारा की गई स्तुतियोंसे बढता है। ब्राह्मण अग्निको प्रदीप्त करते हैं और स्तोत्र बोलकर हवनके द्वारा उसे बढाते हैं।

ज्ञानी पुरुष अपने शरीरको सुन्दर बनाकर ज्ञानसे अपनेको बढाता है।

२ ऊर्जः नपातं पावकशोचिषं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे आहुवे [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले,

पवित्र प्रकाशसे युक्त अग्निको इस उत्तम यज्ञमें मैं बुलाता हूं। बल बढानेवाले वीरको अपनी सहायताके लिए बुलाना चाहिए।

३ मित्रमहः शुक्रेण शोचिषा देवैः बर्हिषि आ-सत्सि [ १७१३ ]- मित्रके द्वारा पूज्य तू अपने तेजसे देवोंके साथ आसन पर बैठ। मित्रों द्वारा आदर प्राप्त करें, तेजस्वी हों, और श्रेष्ठके साथ सभामें बैठें।

४ ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः। याः स्पृधः नुदस्व [ १७१४ ]- तेरे बल राक्षसोंको नष्ट करते हुए प्रकट होते हैं और जो स्पर्धा करनेवाले हैं उन्हें दूर कर।

५ अया ओजसा निजघ्निः [ १७१५]- तू इस बलसे शत्रुओंका नाश करता है।

६ अविभ्युषा हृदा रथसंगे हिते [ १७१५ ]- निर्भय हृदयसे रथ युद्धमें शत्रुओंको नष्ट कर।

७ अस्य व्रतानि दूढ्या न आधृषे [ १७१६ ]- इसके नियम दुष्टोंको आगे नहीं होने देते।

८ यः त्वा पृतन्यति, रुज [ १७१६ ]- जो तुझ पर सेना भेजता है, उसका नाश कर।

९ केचित् त्वा मा नियेमुः [ १७१८ ]- कोई भी तुझे रोक नहीं सकता।

१० इन्द्रः वृत्रखादः वलं रुजः पुरां दर्मः अपां अजः हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्याता दृढाचित् आरुजः [ १७१९ ]- इन्द्र वृत्रका नाश करनेवाला, वल राक्षसको छिन्नभिन्न करनेवाला, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला, वृष्टि गिरानेवाला, घोडोंकी स्पर्धामें अपना रथ आगे रखनेवाला, बलवान् शत्रुको हरानेवाला है। इन्द्रके ये गुण वीरों द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं।

११ क्रतुं पुष्यसि [ १७२० ]- कर्मशक्तिका पोषण करता है।

१२ सुगोपाः गाः इव [ १७२० ]- गायोंकी उत्तम रक्षा करनेवाला गायोंका पालन करता है। उसीप्रकार तुम भी करो।

१३ हे इन्द्र मघवन्! सुन्वते राधः देयाय इन्दवः त्वा मन्दन्तु [ १७२२ ]- हे धनवान् इन्द्र! सोमयाग करनेवालेको धन देनेके लिए सोमरस तुझे आनन्दित करें।

१४ तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे [ १७२२ ]- उन श्रेष्ठ बलोंको तू अपने अन्दर धारण करता है।

१५ हे मघवन् इन्द्र! त्वद् अन्यः मर्डिता न अस्ति [ १७२३ ]- हे धनवान् इन्द्र! तेरे सिवाय दूसरा सुख देनेवाला कोई नहीं है।

१६ हे वसो! ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दभन् [ १७२४ ]- हे निवासक इन्द्र! तेरे द्वारा दिए गए धन हमें कभी भी नष्ट न करें।

१७ ते ऊतयः मा दभन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षण हमें नष्ट न करें।

१८ हे मानुष! नः चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ उपमिमीहि [ १७२४ ] हे मनुष्योंके हित करनेवाले इन्द्र! हमारी प्रजाओंको हर प्रकारका धन तू दे।

१९ गवां माता असि [ १७२७ ]- तू गायोंका पालन करनेवाली माता है।

२० या देवा दस्रा सिन्धु मातरा रयीणां मनोतरा धिया वसुविदा [ १७२९ ]- ये अश्विनी देव शत्रुओंका नाश करनेवाले, नदियां उत्पन्न करनेवाले, धन देनेवाले और बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंको धन देनेवाले हैं।

२१ हे उषः! अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर, येन तोकं तनयं च धामहे [ १७३१ ]- हे उषे! हमें वे उत्कृष्ट धन भरपूर दे, जिससे पुत्र और पौत्रोंका पोषण हम कर सकें।

२२ हे गोमति अश्वावति सूनृतावति विभावरि उषः! अद्य इह अस्मे रेवत् व्युच्छ [ १७३२ ]- हे गाय और घोडोंसे युक्त तेजस्विनी उषे! आज यहां हमें तू धनसे युक्त करके प्रकाशित हो।

उषःकालमें गाय और घोडोंको चरानेके लिए छोड देते हैं, इस कारण उषा गाय और घोडोंसे युक्त दिखाई देती है।

२३ वाजिनीवति उषः! अरुणान् अश्वान् अद्य युंक्ष्व, विश्वा सौभगानि नः आ वह [ १७३३ ]- हे अन्न युक्त उषे! अपने लाल रंगके घोडोंको आज जोड और सब सौभाग्य हमें दे।

उषाके लाल रंगके घोडेका अर्थ है लाल रंगकी किरणें। " वाजिनीवति " का अर्थ है हविर्द्रव्य अथवा अन्नसे युक्त। उषःकालमें हवन शुरु होते हैं, इसलिए उस समय अन्न तैय्यार होता है।

२४ हे अश्विना! दस्रा अस्मत् वर्तिः आ गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नियच्छतम् [१७३४] - हे अश्विदेवो! शत्रुओंके नाश करनेवाले तुम हमारे घरकी ओर आओ। गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास लाओ।

२५ हे अश्विना ! नः ऊर्जं आवहतं [ १७३६ ]- हे अश्विदेवो ! हमें बल बढानेवाले अन्न दो।

२६ तं अग्निं मन्ये यः वसुः, अस्तं यं धेनवः यन्ति, अस्तं यं आशवः अर्वन्तः [ १७३७ ]- उस अग्निकी में स्तुति करता हूं, जिसके आश्रयमें गायें जाती है, जिसके आश्रयमें घोडे जाते हैं।

२७ अग्निः हि विशे वाजिनं ददाति [ १७३८ ]- अग्नि निश्चयसे मनुष्योंको पुत्र देता है।

२८ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वाभुवं वार्यं राये याति [१७३८]- सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि सन्तुष्ट होनेपर स्वयं ही खनखन करनेवाले धन देनेके लिए जाता है।

२९ सः अग्निः वसुः [ १७३९ ]- वह अग्नि सबको बसानेवाला है।

३० हे उषः ! दिवित्मती नः महे राये बोधय [ १७४० ]- हे उषे ! तू प्रकाश युक्त होकर हमें बहुत धन मिले इसलिए हमें जाग्रत कर।

३१ सु-जाते ! अश्वसूनृते ! यथा चित् नो अबोधयः [१७४०]- हे उत्तम कुलीन और आज सत्य बोलनेवाली उषे ! जिसप्रकार पहले भी तूने जगाया वैसा ही अब जगा।

३२ हे दिवः दुहितः सा अभरद्वसु ! नः अद्य व्युच्छ [ १७४२ ]- हे द्युलोककी पुत्री और भरपूर धन देनेवाली उषे ! हमारे लिए आज प्रकाशित हो।

३३ अहं विश्वा सना तिरः [ १७४४ ]- मैं सब विरोधियोंका पराभव करता हूं।

३४ अग्निः जनानां समिधा अबोधि [ १७४५ ]- अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ है।

३५ आयतीं उषासं प्रति भानवः नाकं अच्छ प्रसस्रते [ १७४६ ]- आनेवाली उषःकालकी किरणें अन्तरिक्षमें उत्तम रीतिसे फैलती हैं।

३६ होता अग्निः प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् [ १७४७ ]- हवन जिसमें होते हैं ऐसा अग्नि प्रातःकाल उत्तम मनसे ऊपर उठने लगता है, जलने लगता है।

३७ समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि, महान् देवः तमसा निरमोचि [ १७४७ ]- प्रदीप्त हुए हुए अग्निका बल दीखने लगा है, उस महान् देवने जगत्‌को अन्धकारसे छुडा दिया है।

३८ यत् गणस्य रशनां अजीगः, शुचिः अग्निः, शुचिभिः गोभिः अंक्ते [१७४८]- जब समुदायमें विघ्न डालनेवाला अन्धेरा दूर हो गया, तब तेजस्वी शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जगत्‌को प्रकाशित करने लगा।

३९ ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः आगात्, चित्रः प्रकेतः विश्वा अजनिष्ट [ १७४९ ]- तेजस्वी पदार्थोंमें यह उषा सर्वाधिक तेजस्वी है, उसका प्रकाश चारों ओर फैला है।

४० अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं [ १७५९ ]- हममें ज्ञान बढा।

४१ वयं शूरसातौ धना भजेमहि [ १७५९ ]- हम युद्धमें धन प्राप्त करें।

४२ अग्युधा तुञ्जानः अभ्यर्षति [ १७६२ ]- वह वीर शस्त्र शत्रुपर फेंकता हुआ आगे जाता है।

४३ पुनानः विश्वावसु नः आभर [ १७६४ ]- पवित्र होकर सब धन हमें भरपूर दे।

---

## उपमा

१ पाशिनः न [ १७१८ ]- जाल फैलानेवाले शिकारी जैसे पक्षियोंको पकडते हैं, उसप्रकार इन्द्रको कोई पकड नहीं सकता।

२ सुगोपाः गाः इव [१७२०]- उत्तम गोपाल गायोंका जिसप्रकार पालन करता है, उसीप्रकार इन्द्र ( क्रतुं पुष्यसि ) यज्ञका पोषण करता है।

३ यथा धेनवः यवसं प्र [१७२०]- जिसप्रकार गायें घास खाती हैं, उसीप्रकार इन्द्र सोमरस प्राप्त करता है।

४ कुल्या ह्रदं इव [ १७२० ]- जैसे नदियां तालाब व समुद्रमें जाकर मिलती हैं, वैसे ही सोमरस इन्द्रको मिलते हैं।

५ गौरः तृष्यत् यथा अपाकृतं इरिणं [ १७२१ ]- जैसे प्यासा मृग पानीसे भरे तालाबके पास जाता है, वैसे ही ( तूयं आगहि कण्वेषु सचा सु पिब ) हे इन्द्र ! तू जल्दी आ और कण्वके यज्ञमें बैठकर सबके साथ सोम पी।

६ अश्वा इव चित्रा [१७२६]- घोडीके समान सुन्दर ( अरुषी उषा ) तेजस्वी उषा है।

७ धेनुं इव [ १७४६ ]- गायें जैसे सबेरे आपती हैं, वैसे ही ( अग्निः जनानां समिधा अबोधि ) अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे सबेरे प्रदीप्त किया गया है।

८ नाकं यह्वाः वयां प्रोज्जिहानाः इव [ १७४६ ]- अन्तरिक्षमें जैसे वृक्षकी शाखायें फैलती हैं, उसीप्रकार ( अग्निः भानवः ) अग्नि अपनी ज्वालाओंको आकाशमें फैलाता है।

९ अप्सः न [ १७५७ ]- युद्ध करनेवाले वीर जिसप्रकार शस्त्रोंसे रणभूमिको सुशोभित करते हैं, उसीप्रकार ( विष्टिभिः नारीः आ अर्षन्ति ) किरणोंसे उषारूपी स्त्रियां आकाशको सुन्दर बनाती हैं।

१० दिवः वृष्टयः न [१७६१]- जिसप्रकार द्युलोकसे वृष्टि होती है, ( धाराः वाजं प्रयन्ति ) उसीप्रकार सोमरसकी धारायें अन्न देती हैं।

११ राजा इव [ १७६२ ]- राजाके समान ( मर्मृजानः ) शुद्ध होनेवाला सोम दीखता है।

१२ श्येनः न [ १७६३ ]- श्येन पक्षीके समान ( वंसु सीदति ) सोम पानीमें बैठता है, डुबकी मारता है। पानीमें मिलाया जाता है।



# एकोनविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १७११ | ८।४४।१२ | विरूप आंगिरसः | अग्निः | गायत्री |
| १७१२ | ८।४४।१३ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७१३ | ८।४४।१४ | विरूप आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७१४ | ९।५३।१ | अवत्सारः काश्यपः | पवमानः सोमः | ,, |
| १७१५ | ९।५३।२ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७१६ | ९।५३।३ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७१७ | ९।५३।४ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७१८ | ३।४५।१ | विश्वामित्रो गाथिनः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १७१९ | ३।४५।२ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १७२० | ३।४५।३ | विश्वामित्रो गाथिनः | ,, | ,, |
| १७२१ | ८।४।३ | देवातिथिः काण्वः | ,, | प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १७२२ | ८।४।४ | देवातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १७२३ | १।८४।१९ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७२४ | १।८४।२० | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| | | [ २ ] | | |
| १७२५ | ४।५२।१ | वामदेवो गौतमः | उषाः | गायत्री |
| १७२६ | ४।५२।२ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १७२७ | ४।५२।३ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १७२८ | १।४६।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | अश्विनौ | ,, |
| १७२९ | १।४६।२ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| १७३० | १।४६।३ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १७३१ | १।९२।१३ | गोतमो राहूगणः | उषाः | उष्णिक् |
| १७३२ | १।९२।१४ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७३३ | १।९२।१५ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७३४ | १।९२।१६ | गोतमो राहूगणः | अश्विनौ | ,, |
| १७३५ | १।९२।१८ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७३६ | १।९२।१७ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| | | ( ३ ) | | |
| १७३७ | ५।६।१ | वसुश्रुत आत्रेयः | अग्निः | पंक्तिः |
| १७३८ | ५।६।३ | वसुश्रुत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १७३९ | ५।६।२ | वसुश्रुत आत्रेयः | ,, | ,, |
| १७४० | ५।७९।१ | सत्यश्रवा आत्रेयः | उषाः | ,, |
| १७४१ | ५।७९।२ | सत्यश्रवा आत्रेयः | ,, | ,, |
| १७४२ | ५।७९।३ | सत्यश्रवा आत्रेयः | ,, | ,, |
| १७४३ | ५।७५।१ | अवस्युरात्रेयः | अश्विनौ | ,, |
| १७४४ | ५।७५।२ | अवस्युरात्रेयः | ,, | ,, |
| १७४५ | ५।७५।३ | अवस्युरात्रेयः | ,, | ,, |
| | | ( ४ ) | | |
| १७४६ | ५।१।१ | बुधगविष्ठिरावात्रेयौ | अग्निः | त्रिष्टुप् |
| १७४७ | ५।१।२ | बुधगविष्ठिरावात्रेयौ | ,, | ,, |
| १७४८ | ५।१।३ | बुधगविष्ठिरावात्रेयौ | ,, | ,, |
| १७४९ | १।११३।१ | कुत्स आंगिरसः | उषाः | ,, |
| १७५० | १।११३।२ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७५१ | १।११३।३ | कुत्स आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७५२ | ५।७६।१ | अत्रिर्भौमः | अश्विनौ | ,, |
| १७५३ | ५।७६।२ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |
| १७५४ | ५।७६।३ | अत्रिर्भौमः | ,, | ,, |
| | | [ ५ ] | | |
| १७५५ | १।९२।१ | गोतमो राहूगणः | उषाः | जगती |
| १७५६ | १।९२।२ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७५७ | १।९२।३ | गोतमो राहूगणः | ,, | ,, |
| १७५८ | १।१५७।१ | दीर्घतमा औचथ्यः | अश्विनौ | ,, |
| १७५९ | १।१५७।२ | दीर्घतमा औचथ्यः | ,, | ,, |
| १७६० | १।१५७।३ | दीर्घतमा औचथ्यः | ,, | ,, |
| १७६१ | ९।५७।१ | अवत्सारः काश्यपः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १७६२ | ९।५७।२ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७६३ | ९।५७।३ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १७६४ | ९।५७।४ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |



# अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ नृमेध आंगिरसः; २ ..३ प्रियमेध आंगिरसः; ४ दीर्घतमा औचथ्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ८ बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः; ९, १७ जमदग्निर्भार्गवः; १० सुकक्ष आंगिरसः; ११-१३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ सुदासः पैजवनः; १५ मेधातिथिः काण्वः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ परुच्छेपो दैवोदासिः ॥ १, १७ पवमानः सोमः; ३, ७, १०-१६ इन्द्रः; ४-६, १८ अग्निः; ८ मरुतः; ९ सूर्यः; २......॥ १, ८, १०, १५-१७ गायत्री; ( १७ नित्यपदा ) २......; ३ अनुष्टम्मुखः प्रगाथः- ( १ अनुष्टुप्+गायत्र्यौ ); ४, ११, १३ विराट्; ५ पदपंक्तिः; ६, ९, १२ प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ७ त्रिष्टुप्; १४ शक्वरी; १८ अत्यष्टिः ॥

१७६५ प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२९।१ )
१७६६ सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२९।२ )
१७६७ सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ १ ( यि ) ॥
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व.० ३ ] ( ऋ. ९।२९।३ )
१७६८ एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ १ ॥
१७६९ त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥
१७७० वि स्रुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ३ ॥ २ ( प ) ॥
[ धा० ९ । उ० १ । स्व० १ ]

---

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १७६५ ] ( देवान् अनु प्रभूषतः ) देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव डालनेकी इच्छा करनेवाले, ( वृष्णः ) बल बढानेवाले ( अस्य सुतस्य धाराः ) इस सोमरसकी धारायें ( ओजसः प्र अक्षरन् ) वेगसे बर्तनमें गिरने लग गयी हैं ॥ १ ॥

[ १७६६ ] ( वेधसः कारवः ) ज्ञानी अध्वर्यु ( गिरा गृणन्तः ) अपनी वाणीसे स्तुति करते हुए ( ज्योतिः जज्ञानं ) तेज प्रकट करनेवाले ( उक्थ्यं सप्तिं ) स्तुत्य और घोडेके समान वेगवान् सोमको ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

[ १७६७ ] ( प्रभूवसो उक्थ्य सोम ) हे बहुत धनवान् और प्रशंसनीय सोम ! ( पुनानाय ते ) छाने जानेवाले तेरे ( तानि सुषहा ) ये तेज तेरी उत्तम रक्षा करते हैं ( समुद्रं वर्ध ) समुद्रके समान उस बर्तनको भर दे. ॥ ३ ॥

[ १७६८ ] ( यः इन्द्रः नाम श्रुतः ) जो इन्द्रके नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः ऋत्वियः ब्रह्मा ) यह ऋतुके अनुसार चलनेवाला ब्रह्मा - ज्ञानी - है, इसकी ( गृणे ) मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[ १७६९ ] ( हे शवसः पते ) हे बलवान् इन्द्र ! ( संयतः न ) जिसप्रकार लोग संयमी पुरुषको प्राप्त होते हैं, उसके पास जाते हैं, उसीप्रकार ( गिरः ) स्तुतियां ( त्वां इत् यन्ति ) तुझे ही प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

[ १७७० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यथा पथः स्रुतयः ) जिसप्रकार बडे रास्तेसे अनेक छोटे - छोटे रास्ते निकलते हैं, उसीप्रकार ( त्वत् रातयः वि यन्तु ) तुझसे अनेक प्रकारके दान उपासकोंकी ओर आते हैं ॥ ३ ॥

१७७१ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठं सत्पतिम् ॥१॥
( ऋ. ८।६८।१ )

१७७२ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६८।२ )

१७७३ यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ ३ ( व ) ॥
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।६८।३ )

१७७४ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा । सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥
( ऋ. १।१४९।३ )

१७७५ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१४९।४ )

१७७६ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ ४ ( छ ) ॥
[ धा० १२ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. १।१४९।५ )

---

[ १७७१ ] हे इन्द्र ! हम ( ऊतये सुम्नाय ) स्वसंरक्षण और सुखकी प्राप्तिके लिए ( तुविकूर्मिं ) अनेक कर्म करनेवाले और ( ऋती-षहं ) हिंसक शत्रुओंको नष्ट करनेवाले ( शविष्ठं सत्पतिं ) बलवान् और सज्जनोंके पालन करनेवाले ( त्वा इन्द्रं ) तुझ इन्द्रको ( रथं यथा ) जिसप्रकार लोग रथकी उपासना करते हैं, उसीप्रकार ( आवर्तयामसि ) प्रदक्षिणा करते हैं, तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७७२ ] ( तुवि-शुष्म तुवि-क्रतो ) महान् बलवान् और बहुत कर्म करनेवाले ( शचीवः मते ) शक्तिमान् और पूजनीय इन्द्र ! तू ( विश्वया महित्वना ) सब प्रकारके महत्वसे युक्त होकर ( आ पप्राथ ) व्याप्त होता है ॥२॥

[ १७७३ ] ( यस्य महः ते हस्ता ) जिस महान् पुरुषके - तेरे हाथ ( ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रं ) पृथ्वी पर सब जगह संचार करनेवाले सोनेके वज्रको ( महिना परि ईयतुः ) शक्तिपूर्वक धारण करते हैं ॥ ३ ॥

[ १७७४ ] ( यः ) जो अग्नि ( नार्मिणीं पुरं ) यजमानोंके द्वारा बनाये गए वेदीरूपी स्थानको ( अदीदेत् ) प्रदीप्त करता है । ( यः अर्वा नभन्यः न ) जो गतिमान् घोडे और वायुके समान ( अत्यः कविः ) गति करनेवाला और दूरदर्शी है । वह ( शतात्मा सूरः न ) अनेक रूपोंमें रहनेवाला अग्नि सूर्यके समान ( रुरुक्वान् ) तेजस्वी है ॥ १ ॥

[ १७७५ ] ( द्वि-जन्मा ) दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ, ( त्रि-रोचनानि ) गार्हपत्य आदि तीन स्थानोंको और ( विश्वा रजांसि शुशुचानः ) सब लोकोंको प्रकाशित करते हुए ( होता यजिष्ठः ) देवोंको बुलाकर लानेवाला, पूज्य यह अग्नि ( अपां सधस्थे ) जलके स्थानमें यज्ञशालामें ( अस्थात् ) रहता है ॥ २ ॥

[ १७७६ ] ( यः द्विजन्मा ) जो दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ ( सः होता ) देवोंको बुलाकर लानेवाला ( अयं ) यह अग्नि ( विश्वा वार्याणि ) सब स्वीकार करने योग्य धनको और ( श्रवस्या दधे ) यशस्वी कर्मोंको धारण करता है । ( अस्मै यः मर्तः ददाश ) इसे जो मनुष्य हवि देता है, वह ( सु-तुकः ) उत्तम पुत्रोंसे युक्त होता है ॥ ३ ॥

१७७७ अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥
( ऋ. ४।१०।१ )

१७७८ अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥ ( ऋ. ४।१०।२ )

१७७९ एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्३र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥ ५ ( चि ) ॥
[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।१०।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७८० अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳ उषर्बुधः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।४४।१ )

१७८१ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत ॥ २ ॥ ६ ( ला ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।४४।२ )

---

[ १७७७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अद्य ) आज ( ओहैः ते स्तोमैः ) इन्द्रादि देवोंके पास पहुंचनेवाले तेरे स्तोत्रोंसे ( अश्वं न ) घोडेके समान हविको ठीक स्थानपर पहुंचानेवाले ( क्रतुं न भद्रं ) यज्ञके समान कल्याणकारक ( हृदिस्पृशं तं ऋध्याम ) हृदयको प्रिय ऐसे उस तुझ अग्निको हम बढाते हैं ॥ १ ॥

[ १७७८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अधा हि ) अभी ( भद्रस्य दक्षस्य ) कल्याणकारक और बल बढानेवाले ( साधोः ऋतस्य ) इष्ट फलको सिद्ध करनेवाले और सत्यस्वरूप ऐसे ( बृहतः क्रतोः ) महान् यज्ञका तू ( रथीः बभूथ ) चालक होता है ॥ २ ॥

[ १७७९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ज्योतिः स्वः न ) ज्योतिरूप सूर्यके समान ( विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः ) सब तेजोंसे युक्त और उत्तम मन धारण करनेवाला तू ( नः एभिः अर्कैः ) हमारे इन पूज्य देवोंके साथ ( नः अर्वाक् भव ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७८० ] हे ( अमर्त्य जातवेदः अग्ने ) अमर सर्वज्ञ अग्ने ! ( त्वं ) तू ( उषसः ) उषा देवतासे ( दाशुषे ) दाताको देनेके लिए ( विवस्वत् चित्रं राधः ) उत्तम घर जिसके पास है ऐसे अनेक प्रकारके धन ( आवह ) लेकर आ और ( अद्य उषर्बुधः देवान् ) आज उषःकालमें उठनेवाले देवोंको भी यज्ञमें लेकर आ ॥ १ ॥

[ १७८१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! तू ( जुष्टः ) सेवा करने योग्य ( हव्यवाहनः दूतः ) देवोंको हवि पहुंचानेवाला दूत और ( अध्वराणां रथीः असि ) यज्ञमें देवोंको लानेवाले रथके समान है । ( अश्विभ्यां उषसा सजूः ) अश्विनौ और उषाको साथमें लेकर ( अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि ) हमें उत्तम वीर्यसे युक्त बहुत यश दे ॥ २ ॥

१७८२ विधुं दद्राणं॑ समने बहूनां युवानं॑ सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।५५।५ )

१७८३ शाकमना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।५५।६ )

१७८४ ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौं॑स्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥ ७ ( घे ) ॥
[ धा० ३१ । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।५५।७ )

१७८५ अस्ति सोमो अयं॑ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥
( ऋ. ८।९४।४ )

१७८६ पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥२॥ ( ऋ. ८।९४।५ )

१७८७ उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥ ८ ( ली ) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ ८।९४।६ )

---

[ १७८२ ] ( विधुं समने बहूनां दद्राणं ) अनेक कार्य करनेवाले और युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले ( युवानं सन्तं पलितः जगार ) तरुणको भी वृद्धावस्था निगल जाती है । ( देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ) देवोंके महत्वोंसे परिपूर्ण इस काव्यको देख ( अद्य ममार ) जो आज मरता है ( सः ह्यः समान ) वह ही कल प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १७८३ ] ( शाकमना शाकः ) शक्तिसे सामर्थ्यवान् ( अरुणः सुपर्णः आ ) अरुण रंगका कोई पक्षी आता है, ( यः महः शूरः ) जो बडा शूरवीर है पर ( सनात् अ-नीडः ) अनन्तकालसे घोंसला-घर-रहित है, ऐसा वह इन्द्र ( यत् चिकेत ) जो कर्तव्यके रूपमें निश्चित करता है ( तत् सत्यं इत् ) उसे सत्य करके दिखाता है । ( मोघं न ) वह कभी भी व्यर्थ काम नहीं करता । ( उत स्पार्हं वसु जेता ) वह सुन्दर चाहने योग्य धनको जीतकर लानेवाला ( उत दाता ) और स्तुति करनेवालेको धन देनेवाला है ॥ २ ॥

[ १७८४ ] वह इन्द्र ( एभिः वृष्ण्या पौंस्यानि आददे ) इन मरुतोंके साथ रहकर बल युक्त पुरुषार्थके कार्य करता है । ( येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत् ) जिनके साथ रहकर शत्रुको मारनेके लिए वज्रधारी इन्द्र वृष्टि करता है । ( ये देवाः ) जो मरुत् देव ( मह्नः क्रियमाणस्य कर्मणः ) महान् किये जानेवाले कर्मको ( ऋते कर्म उदजायन्त ) सत्य कर्म करके दिखाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७८५ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरस निचोड कर तैय्यार किया गया है, ( अस्य स्वराजः मरुतः ) इसके स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए हुए मरुत् ( उत अश्विना ) और अश्विनौ इसे ( पिबन्ति ) पीते हैं ॥ १ ॥

[ १७८६ ] ( मित्र ) मित्र ( अर्यमा वरुणः ) अर्यमा और वरुण देव ( तना पूतस्य ) छलनीसे शुद्ध हुए हुए ( त्रिषधस्थस्य जावतः पिबन्ति ) तीन बर्तनमें रखे हुए स्तुत्य सोमको पीते हैं ॥ २ ॥

[ १७८७ ] ( उत उ इन्द्रः ) और इन्द्र ( सुतस्य गोमतः अस्य जोषं ) रस निकाले गए तथा गायके दूध मिलाये गए इस सोमको पीनेकी ( प्रातः नु मत्सति ) प्रातःकाल इच्छा करता है, ( होता इव ) जिसप्रकार होता स्तुति करनेकी इच्छा करता है, उसीप्रकार इन्द्र सोम पीनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

*

१७८८ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०१।११ )

१७८९ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ २ ॥ ९ (त) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१०१।१२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७९० उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥१॥ ( ऋ. ८।९३।३१ )

१७९१ द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥२॥ ( ऋ ८।९३।३२ )

१७९२ त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३ ॥ १० (री) ॥
[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।३३ )

१७९३ प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३१।१० )

---

[ १७८८ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! ( महान् असि बट् ) तू निश्चयसे महान् है, ( आदित्य ! महान् असि बट् ) हे आदित्य ! तू महान् है यह सत्य है। हे ( पनिष्टम ) स्तुतिके योग्य ! ( ते महः सतः महिमा ) तुझ जैसे महान्‌की महिमाकी स्तुति की जाती है। ( पनिष्टम ! मह्ना महान् असि ) हे प्रशंसनीय ! तू अपने महत्वके कारण बडा है ॥ १ ॥

[ १७८९ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( श्रवसा महान् असि बट् ) तू अपने यशके कारण महान् है। हे ( देव ) सूर्य देव ! तू ( देवानां मह्ना महान् असि सत्रा ) देवोंके बीचमें महत्वके कारण महान् है, यह सत्य है। तू ( असुर्यः पुरोहितः ) असुरोंका नाश करनेवाला है, इसलिए देवोंने तुझे आगे स्थापित किया है। ( ज्योतिः विभुः अदाभ्यं ) तेरे तेज व्यापक और किसीसे न दबनेवाले हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः।

[ १७९० ] हे ( मदानां पते ) सोमके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः नः सुतं उप याहि ) घोडोंके द्वारा हमारे सोमयज्ञमें आ। ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोडोंसे हमारे सोमयज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ १७९१ ] ( वृत्रहन्तमः शतक्रतुः यः इन्द्रः ) शत्रुओंको मारनेवाला और सैकडों कर्म करनेवाला जो इन्द्र है वह ( द्विता विदे ) दो प्रकारके कर्म करनेवाला है, यह सबको मालूम है। ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोडोंसे हमारे सोमयागके पास आ ॥ २ ॥

शत्रुको मारना और आर्यका रक्षण करना ये दोनों काम वह करता है।

[ १७९२ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( हि त्वं एषां सोमानां पाता असि ) तू इन सोमरसोंको पीनेवाला है। इसलिए ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोडे जोडकर हमारे सोमयज्ञके पास आ ॥ ३ ॥

[ १७९३ ] हे मनुष्यो ! ( वः महेवृधे ) तुम अपने धनको बढानेके लिए ( महे प्र भरध्वं ) महान् इन्द्रको सोम अर्पण करो। ( प्र चेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वं ) ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करो। हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू ( पूर्वीः विशः प्र चर ) हविसे तुझे पूर्ण करनेवाली प्रजाओंके पास जा ॥ १ ॥

३ १ २　३ १ २　३ १　२र ३ १ २　३ १ २
१७९४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः　　　　॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३१।११ )

२ ३　२ ३ १ २　३ २ ३ १　२र　३ १ २
१७९५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
१ २　३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन्　　　　॥ ३ ॥ ११ ( हि ) ॥

[ धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।३१।१२ )

१ २ ३　१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १　२
१७९६ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २　३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्　　　　॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१८ )

१ २ ३ १ २　३२　३ १ २　३ १　२र　३ १ २
१७९७ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२र　३ १ २　३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न　　　　॥ २ ॥ १२ ( ता )

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।३२।१९ )

३ १　२र　३२उ　३ २ ३　२ ३ १ २　३ २
१७९८ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ　३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा　　　　॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२२।४ )

---

[ १७९४ ] हे ( विप्राः ) ब्राह्मणो ! ( उरुव्यचसे महिने इन्द्राय ) विशेष व्यापक ऐसे महान् इन्द्रको ( सुवृक्तिं ब्रह्म जनयन्त ) उत्तम स्तुति और अन्न तुम अर्पण करते हो, ( तस्य व्रतानि ) उस इन्द्रके व्रतोंको ( धीराः न मिनन्ति ) बुद्धिमान् लोग नहीं तोडते ॥ २ ॥

[ १७९५ ] ( सत्रा राजानं ) सबके ईश्वर ( अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव ) जिसके क्रोधके आगे कोई टिक नहीं सकता ऐसे इन्द्रको ही ( वाणीः सहध्यै दधिरे ) स्तुतियां शत्रुके पराभव करनेके लिए आगे स्थापित करती हैं। इसलिए हे स्तुति करनेवालो ! ( हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय ) इन्द्रकी स्तुति करनेके लिए अपने मित्रोंको उत्तेजित करो ॥ ३ ॥

[ १७९६ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( यत् यावतः ) जितने धनका तू स्वामी है, ( एतावत् अहं ईशीय ) उतने ही धनका मैं भी स्वामी होऊं। हे ( रदावसो ) धन देनेवाले इन्द्र ! मैं ( स्तोतारं इत् दधिषे ) अपने स्तोताको धन देकर उसका पोषण मैं कर सकूं इतना ही धन मैं दूंगा। ( पापत्वाय न रंसिषं ) पापी होनेके लिए उसे ज्यादा धन नहीं दूंगा। मैं निर्धन हो जाऊं इतना दान नहीं दूंगा ॥ १ ॥

[ १७९७ ] ( कुहचित् विदे महयते ) कहीं भी रहकर स्तुति करनेवालेको ( दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत् ) प्रतिदिन धन देता हूं। इन्द्रकी यह बात सुनकर उपासक कहता है ( मघवन् त्वत् अन्यत् आप्यं नहि ) हे इन्द्र ! तेरे सिवाय और कोई मेरा भाई नहीं, और ( वस्यः पिता च न अस्ति ) प्रशंसनीय रक्षक भी कोई दूसरा नहीं है. ॥ २ ॥

[ १७९८ ] हे इन्द्र ! ( विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि ) सोम कूटनेवाले मेरे पत्थरोंकी आवाज सुन, ( अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध ) स्तुति करनेवाले विद्वानोंकी बातें सुन, ( इमा दुवांसि ) इन सेवाओंको ( अन्तमा सचा कृष्व ) अपने समीपके मित्रकी सेवायें है, ऐसा मानकर स्वीकार कर ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
१७९९ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२२।५ )

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१८०० भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
मारे अस्मन्मघवं ज्योकः ॥ ३ ॥ १३ (बा) ॥

[ धा० १९ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२२।६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१८०१ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३३।१ )

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८०२ त्वᳬ सिंधूᳬ रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३३।२ )

---

[ १७९९ ] हे इन्द्र ! ( तुरस्य ते गिरः ) शत्रुको शीघ्रतासे नष्ट करनेवाले तेरी स्तुतिको ( असुर्यस्य विद्वान् ) तेरे बलको जाननेके कारण ( न अपि मृष्ये ) मैं छोड नहीं सकता। ( स्वयशः ते नाम सदा विवक्मि ) अपने यश बढानेवाले तेरे स्तोत्रोंको ही मैं हमेशा बोलता रहता हूँ ॥ २ ॥

[ १८०० ] हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! ( मानुषेषु ते भूरि सवना ) मनुष्योंमें तेरे लिए सोमयज्ञ बहुत होते हैं। ( मनीषी त्वां इत् भूरि हवते ) बुद्धिमान् तेरे लिए बहुत हवन करते हैं, ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( ज्योक् मा कः ) बहुत समय मत रह ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १८०१ ] हे स्तोत्र पाठको ! ( अस्मै इन्द्राय ) इस इन्द्रके ( पुरो रथं शूषं ) रथके आगे रहनेवाले बलकी ( सु प्र अर्चत उ ) उत्तम प्रकारसे पूजा करो। ( समत्सु संगे अभीके चित् ) युद्धमें शत्रुकी सेना हम पर आक्रमण करती हुई हमारे पास आजाय, तो ( लोककृत् वृत्रहा ) लोकपालक और शत्रुको मारनेवाला इन्द्र ( अस्माकं चोदिता बोधि ) हमारा प्रेरक है यह तुम जानो। ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) अन्य शत्रुओंके धनुषकी डोरियां टूट जाएं ॥ १ ॥

[ १८०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सिन्धून् अधराचः अवासृजः ) नदियोंको नीची जगह पर बहाकर लानेवाले मेघोंको गिराता है, उन्हें बरसाता है। ( अहिं अहन् ) मेघोंको फोडता है, इसलिए हे इन्द्र ! तू ( अशत्रुः जज्ञिषे ) शत्रुरहित होता है, तू ( विश्वं वार्यं पुष्यसि ) सब स्वीकार करने योग्य धन बढाता है। ( तं त्वा परिष्वजामहे ) उस तुझे हम हवि देकर वशमें करते हैं। ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) शत्रुओंके धनुषकी डोरियां टूट जाएं ॥ २ ॥

१८०३ वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ १४ (टि) ॥
[ धा० ४३ । उ० ६ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१३३।३ )

१८०४ रेवां इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१३ )

१८०५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥ ( ऋ. ८।२।१४ )

१८०६ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥ १५ (ति) ॥
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।२।१५ )

१८०७ एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३४।१ )

१८०८ अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३४।२ )

---

[ १८०३ ] ( नः विश्वाः अरातयः अर्यः ) हमारे सब शत्रु जो हमपर चढाई करते हुए आते हैं, वे ( सु विनशन्त ) उत्तम रीतिसे नष्ट हो जाएं। हे इन्द्र ! ( यः नः जिघांसति ) जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस ( शत्रवे वधं अस्ता असि ) शत्रुपर तू शस्त्र फेंकता है। हे इन्द्र ! तेरे पास ( धियः ) हमारे बुद्धिपूर्वक किए गए कर्म पहुंचे। ( ते या रातिः वसु ददिः ) तेरे जो दान हैं, वे हमें धन दें। ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) शत्रुके धनुषकी डोरियां टूट जाएं ॥ ३ ॥

[ १८०४ ] हे ( हरिवः ) घोडे रखनेवाले इन्द्र ! ( रेवतः स्तोता रेवान् इत् स्यात् ) तेरे समान धनवान्‌की स्तुति करनेवाला अवश्य धनी होगा। ( त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेदुः ) तेरे समान धनवान्‌की स्तुति करनेवाला अवश्य ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥

[ १८०५ ] हे इन्द्र ! ( न ) इस समय ( अ-गोः रयिः आ चिकेत ) स्तुति न करनेवालोंका धन तू जानता है, ( न ) अब ( शस्यमानं उक्थं च ) बोले जानेवाले स्तोत्रको भी तू जानता है। ( न ) अब ( गीयमानं गायत्रं ) गाये जानेवाले गायत्र सामको भी तू जानता है ॥ २ ॥

[ १८०६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( पीयत्नवे नः मा परादाः ) हिंसक शत्रुओंके आधीन हमें मत कर ( शर्धते मा ) हमारा नाश करनेवालेके स्वाधीन हमें मत कर। हे ( शची-वः ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( शचीभिः शिक्ष ) अपनी शक्तियोंसे हमें धन दे ॥ ३ ॥

[ १८०७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( हरिभिः ) घोडोंकी सहायतासे ( कण्वस्य सुष्टुतिं उप याहि ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास पहुंच ( अमुष्य दिव शासतः ) इस द्युलोकके शासनमें हम सुखसे रहते हैं, हे ( दिवावसो ) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) द्युलोकमें जा ॥ १ ॥

[ १८०८ ] ( अत्र एषां नेमिः ) अब इन सोम कूटनेवाले पत्थरोंकी धारें ( उरां वृकः न ) भेडको जिसप्रकार भेडिया कंपाता है, उसीप्रकार सोमको ( विधूनुते ) कूटते हुए कंपाती हैं। ( अमुष्य दिवः शासतः ) इस इन्द्रके द्युलोक पर शासन करते हुए हम [ इसके शासनमें ] सुखसे रहते हैं। हे ( दिवावसो ) तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) द्युलोकमें जा ॥ २ ॥

१८०९ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥ १६ (व) ॥
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।३४।२ )

१८१० पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।१६ )

१८११ ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।१८ )

१८१२ असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ ३ ॥ १७ (रौ) ॥
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।६७।१७ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१८१३ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

---

[ १८०९ ] हे इन्द्र ! ( इह सोमी वदन् ग्रावा ) यह इस यज्ञमें सोम कूटनेके शब्द करनेवाला पत्थर ( घोषेण आवक्षतु ) शब्द करते हुए सोमको तेरे पास पहुंचावे । ( अमुष्य दिवः शासतः ) इस इन्द्रके द्युलोकपर शासन करते हुए [ इसके शासनमें ] हम तुझसे रहते हैं । ( दिवावसो ) हे तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) तू द्युलोकमें जा ॥ ३ ॥

[ १८१० ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमत्तमः मन्दयन् ) अत्यन्त मधुर ऐसा तू हर्ष उत्पन्न करता हुआ ( इन्द्राय पवस्व ) इन्द्रके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १८११ ] ( विपश्चितः ) बुद्धिवर्धक ( सुतासः ) सोमरस ( शुक्राः ते ) शुद्ध होनेके बाद वे सोमरस ( वायुं असृक्षत ) वायुके लिए तैय्यार होते हैं ॥ २ ॥

[ १८१२ ] ये सोमरस ( वाजयन्तः देववीतये ) धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले यजमान देवोंको देनेके लिए ( असृग्रं ) तैय्यार करते हैं । ( रथाः इव ) जिसप्रकार रथ तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार सोमको तैय्यार करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १८१३ ] ( दास्वन्तं वसोः ) दान देनेवाला, सबको बसानेवाला ( सहसः सूनुं जातवेदसं ) बलसे उत्पन्न होनेवाला, सब जाननेवाला, ( विप्रं न जातवेदसं ) ब्राह्मणके समान ज्ञानी ( यः देवः स्वध्वरः ) जो प्रकाशमान् और उत्तम यज्ञ करनेवाला है, ऐसे ( ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा ) उच्च अर्थात् श्रेष्ठ दैवी सामर्थ्यसे युक्त, ( शुक्रशोचिषः आजुह्वानस्य ) उत्तम तेजस्वी और हवन किए जानेवाले ( सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं अनु ) घीके तेजके अनुकूल ( अग्निं होतारं मन्ये ) ऐसे अग्निको मैं देवोंको बुलानेवाला मानता हूं ॥ १ ॥

१८१४ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्या१ꣳ होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२७।२ )

१८१५ स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥ १८ ( ठी )॥
[ धा० ४३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१२७।३ )

॥ इति नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ९-२ ॥

( १-१३ ) १ अग्निः पावकः; २ सोभरिः काण्वः; ३ अरुणो वैतहव्यः; ४ अग्निः प्रजापतिः; ५-६, ८ अवत्सारः काश्यपः; ७ मृगः; ९ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा; ११ उलो वातायनः; १३ वेनो भार्गवः; ४,७, ८,१२। १-४; ७-८, १२ अग्निः; ५-६ विश्वे देवाः; ९ इन्द्रः, १० आपः; ११ वायुः; १३ वेनः । १ ( १-२ ) विष्टारपंक्तिः; १ ( ३-५ ) सतोबृहती, १ ( ६ ) उपरिष्टाज्ज्योतिः, २ काकुभः प्रगाथः-( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ३ जगती; ५-६, १३ त्रिष्टुप्; ४, ७-११, गायत्री ४, ७, ८, १२ ।

१८१६ अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्या३ं दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४०।१ )

---

[ १८१४ ] हे ( विप्र शुक्र ) ज्ञानी और तेजस्वी अग्ने ! ( यजमानाः ) हम यजमान ( विप्रेभिः मन्मभिः ) ज्ञानी विचारकोंके और ( मन्मभिः ) मननीय मंत्रोंके कारण ( अंगिरसां ज्येष्ठं ) तेजस्वी लोगोंमें श्रेष्ठ हुए हुए ( यजिष्ठं त्वा हुवेम ) पूजनीय तुझे हवन अर्पण करते हैं। उसके बाद ( द्यां इव परिज्मानं ) सूर्यके समान घूमनेवाले ( चर्षणीनां होतारं ) लोगोंके लिए हवन करनेवाले ( शोचिष्केशं वृषणं यं ) प्रदीप्त किरणोंसे युक्त अग्निका ( इमाः विशः ) ये प्रजायें ( जूतये प्र अवन्तु ) इष्ट फलकी प्राप्तिके लिए संरक्षण करती हैं ॥ २ ॥

[ १८१५ ] ( सः हि ) वह अग्नि ( विरुक्मता ओजसा ) तेजस्वी बलसे ( पुरुचिद् दीद्यानः ) अत्यधिक प्रकाशमान् ( द्रुहन्तरः परशुः न ) शत्रुओंको कंपानेवाले फरसेके समान ( द्रुहन्तरः भवति ) द्रोह करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है। ( यस्य समृतौ ) जिसके साथ-साथ रहनेसे ( वीडु चित् श्रुवत् ) बलवान् शत्रु भी हार जाते हैं। ( यत् स्थिरं वना इव ) जो स्थिर होता है वह भी जलके समान छिन्नभिन्न हो जाता है। इस कारण यह अग्नि ( निः षहमाणः यमते ) शत्रुओंको हराकर सबका नियमन करता है। ( न अयते ) अपनी जगहसे भागता नहीं। ( धन्वासहा न अयते ) धनुषको धारण करनेवाले वीरके समान अपनी जगहसे दूर नहीं होता ॥ ३ ॥

[ १८१६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( तव वयः श्रवः ) तेरे अन्न प्रशंसनीय हैं। हे ( विभावसो ) अति तेजस्वी अग्ने ! ( अर्चयः महि भ्राजन्ते ) तेरी ज्वालायें बहुत प्रदीप्त हो गई हैं। हे ( बृहद् भानो कवे ) अत्यधिक तेजस्वी ज्ञानी देव ! ( शवसा ) अपने बलसे ( उक्थ्यां वाजं ) प्रशंसनीय अन्नको तू ( दाशुषे दधासि ) प्रत्येक दान देनेवाले यज्ञकर्ताको देता है ॥ १ ॥

१८१७ पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१४०।२ )

१८१८ ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१४०।३ )

१८१९ इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१४०।४ )

१८२० इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१४०।५ )

१८२१ ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ १ ( दि ) ॥
[ धा० ५९ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१४०।६ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १८१७ ] हे अग्ने ! ( पावकवर्चाः ) पवित्रता करनेवाली किरणोंसे युक्त ( शुक्रवर्चाः ) निर्मल तेजसे युक्त ( अनूनवर्चाः ) पूर्ण तेजस्वी तू ( भानुना उदियर्षि ) अपने तेजसे उदय होता है। ( पुत्रः ) पुत्ररूप अग्नि ( मातरा विचरन् ) मातारूपी दो अरणियोंसे उत्पन्न होनेके बाद ( उपावसि ) समीप रहकर यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करता है। ( उभे रोदसी पृणक्षि ) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको यह जोडता है, अर्थात् हविसे स्वर्गको और वृष्टिसे पृथ्वीको वह पूर्ण करता है ॥ २ ॥

[ १८१८ ] हे ( ऊर्जः नपात् ) बलके पुत्र ! ( जातवेदः ) सबको जाननेवाले अग्नि देव ! ( सुशस्तिभिः मन्दस्व ) उत्तम स्तुतियोंसे तू आनन्दित हो। ( धीतिभिः हितः ) हमारे द्वारा किए गए कर्मोंसे तू तृप्त हो। ( भूरि वर्पसः चित्रोतयः ) अनेक रूपोंसे युक्त और विलक्षण संरक्षण करनेवाले ( वामजाताः इषः ) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए अन्नका ( त्वे संदधुः ) तुझमें यजमान हवन करते हैं ॥ ३ ॥

[ १८१९ ] हे ( अमर्त्य अग्ने ) अमर अग्ने ! ( जन्तुभिः इरज्यन् ) अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाला तू ( अस्मे रायः प्रथयस्व ) हमारे धनको बढा। ( सः ) वह तू ( दर्शतस्य वपुषः ) दर्शनीय शरीरसे ( विराजसि ) विशेष शोभायमान होता है, और ( दर्शतं क्रतुं पृणक्षि ) दर्शनीय यज्ञ कर्मको उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥

[ १८२० ] ( अध्वरस्य इष्कर्तारं ) यज्ञके संस्कार करनेवाले ( प्र चेतसं ) विशेष ज्ञानी ( महः राधसः क्षयन्तं ) बहुतसा धन पासमें रखनेवाले और ( वामस्य रातिं ) उत्तम धन देनेवाले ऐसे तुम्हारी स्तुति हम करते हैं। तू ( सुभगां महीं इषं ) उत्तम भाग्य युक्त बहुत अन्न और ( सानसिं रयिं ) सेवन करने योग्य धन ( दधासि ) देता है ॥ ५ ॥

[ १८२१ ] ( जनाः ) यज्ञ करनेवाले लोग ( ऋतावानं महिषं ) यज्ञ करनेवाले और पूज्य ( विश्व-दर्शतं अग्निं ) सर्वत्र दर्शनीय अग्निको ( सुम्नाय पुरः दधिरे ) सुख प्राप्त करनेके लिए अपने सामने स्थापित करते हैं। हे अग्ने ! ( श्रुत्कर्णं ) उत्तम प्रकारसे प्रार्थना सुननेवाले ( सप्रथस्तमं ) अत्यन्त प्रसिद्ध ( दैव्यं त्वा ) दिव्यगुण युक्त तेरी ( युगा मानुषा ) पति और पत्नी मिलकर दोनों ही ( गिरा ) अपनी वाणीसे स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ]

१८२२ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१९।३० )

१८२३ तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।

त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥ २ ( यी ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१९।३१ )

१८२४ तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।

तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ १ ॥ ३ ( रि ) ॥

[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ऋ. १०।९१।६ )

१८२५ अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥ १ ॥ ४ ( या ) ॥

[ धा ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ]

१८२६ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयꣳ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ५ ( या ) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ ५।४४।१४ )

---

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १८२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं यस्य सख्यं आ विथ ) तू जिसके साथ मित्रता करता है, ( सः ) वह यजमान ( सुवीराभिः ) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) और बलवर्धक कर्मोंसे युक्त ( तव ऊतिभिः ) ऐसे तेरे संरक्षणोंकी सहायतासे ( प्रतरति ) संकटोंसे पार हो जाता है ॥ २ ॥

[ १८२३ ] हे ( सिष्णो ) सोमकी आहुति जिसे दी जाती है ऐसे अग्ने ! द्रप्सः नीलवान् ) प्रवाह रूप और पासमें रखनेवाला ( वाशः ऋत्वियः ) स्तुत्य और ऋतुके अनुकूल ऐसा ( इन्धानः आददे ) तेजस्वी सोम हवन करनेके लिए प्राप्त किया जाता है। ( त्वं महीनां उषसां प्रियः असि ) तू महान् उषाओंको प्रिय है। ( क्षपः वस्तुषु राजसि ) रात्रीके समय हवनीय पदार्थोंसे तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १८२४ ] ( ऋत्वियं गर्भं तं ओषधीः दधिरे ) ऋतुके अनुकूल प्रदीप्त ऐसे अग्निको गर्भ रूपसे अरणियां धारण करती हैं। ( तं अग्निं ) उस अग्निको ( मातरः आपः जनयन्त ) पानीरूपी मातायें उत्पन्न करती है। ( वनिनः च समानं तं इत् ) वनस्पतियां गर्भ रूपमें रहनेवाले उस अग्निको उत्पन्न करती हैं। ( अन्तर्वतीः वीरुधः च ) गर्भ धारण करनेवाली औषधि उसे ( विश्वहा सुवते ) हमेशा उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १८२५ ] ( अग्निः इन्द्राय पवते ) अग्नि इन्द्रके लिए प्रदीप्त होता है, वह ( शुक्रः दिवि विराजति ) प्रदीप्त होकर अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है। ( महिषी इव विजायते ) रानीके समान वह विशेष रूपसे सुशोभित होता है ॥ १ ॥

[ १८२६ ] ( यः जागारः ) जो जागता है ( तं ऋचः कामयन्ते ) उसकी ऋचायें इच्छा करती हैं, ( यः जागारः ) जो जागृत रहता है, ( तं उ सामानि यन्ति ) उसे साम प्राप्त होते हैं, ( यः जागार ) जो जागता है, ( तं अयं सोमः आह ) उससे यह सोम कहता है, कि ( तव सख्ये अहं अस्मि ) तेरी मित्रतामें मैं हूं। ( अहं न्योकाः अस्मि ) मैं घरसे युक्त हूं ॥ १ ॥

*

१८२७ अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयꣳ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ६ (वा) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ]( ऋ. ५।४४।१५ )

१८२८ नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः । युञ्जे वाचꣳ शतपदीम् । ॥ १ ॥
१८२९ युञ्जे वाचꣳ शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥
१८३० गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता । देवा ओकाꣳसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ ७ (यु) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ५ ]

१८३१ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥
१८३२ पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ २ ॥
१८३३ सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ ८ (ठा) ॥

[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ]

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

---

[ १८२७ ] ( अग्निः जागार ) अग्नि जागता है, ( तं ऋचः कामयन्ते ) इसलिए ऋचायें उसकी कामना करती हैं। ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिए ( तं उ सामानि यन्ति ) उसके पास साम जाते हैं, ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिए ( तं अयं सोम आह ) उससे यह सोम कहता है कि ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( अहं न्योकाः अस्मि ) मैं गृहयुक्त रहूंगा ॥ १ ॥

[ १८२८ ] ( पूर्व-सद्भ्यः सखिभ्यः नमः ) पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्ररूपी देवोंको नमस्कार करता हूं। ( साकंनिषेभ्यः नमः ) पास पास बैठनेवाले देवोंको नमस्कार करता हूं ( शतपदीं वाचं युञ्जे ) असंख्य प्रकारसे स्तुतियोंको मैं करता हूं ॥ १ ॥

[ १८२९ ] ( शतपदीं वाचं युञ्जे ) असंख्य प्रकारसे बनाई गई स्तुतियोंको मैं बोलता हूं। ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री त्रिष्टुप्, जगती इन छन्दोंसे युक्त सामोंको ( सहस्रवर्तनि ) हजारों प्रकारसे ( गाये ) मैं गाता हूं ॥२॥

[ १८३० ] ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री, त्रिष्टुप् और जगतीके छन्दोंमें ( संभृता ) जो इकट्ठी की गई हैं, ऐसे ( विश्वा रूपाणि ) अनेक रूपोंवाले उन सामोंको ( देवाः ओकांसि चक्रिरे ) देवोंने अपने रहनेका स्थान बनाया है, [ उन सामोंको मैं गाता हूं ] ॥ ३ ॥

[ १८३१ ] ( अग्निः ज्योतिः ) अग्नि ज्वाला रूप है। ( ज्योतिः अग्निः ) और ज्वाला भी अग्नि ही है। ( इन्द्रः ज्योतिः ) इन्द्र प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः इन्द्रः ) और प्रकाश भी इन्द्र ही है। ( सूर्यः ज्योतिः ) सूर्य प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः सूर्यः ) ज्योतिः सूर्य है ॥ १ ॥

[ १८३२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ऊर्जा पुनः निवर्तस्व ) बलके साथ फिर हमारे पास आ। ( इषा आयुषा पुनः ) अन्न और आयुके साथ हमारी तरफ आ। ( अंहसः नः पुनः पाहि पापसे हमारी पुनः पुनः रक्षा कर ॥ २ ॥

[ १८३३ ] हे अग्ने ! ( रय्या सह निवर्तस्व ) धन साथमें लेकर हमारे पास आ। ( विश्वतः परि ) सबसे श्रेष्ठ और ( विश्वप्स्न्या धारया ) सबोंके लिए उपभोगके योग्य धारासे हमें ( पिन्वस्व ) युक्त कर ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ]

१८३४ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१८३५ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥ ( ऋ. ८।१४।२ )

१८३६ धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥ ९ ( पि ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ) ( ऋ. ८।१४।३ )

१८३७ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९।१ )

१८३८ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९।२ )

१८३९ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ १० ( वा ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।९।३ )

१८४० वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥

( ऋ. १०।१८६।१ )

१८४१ उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

( ऋ. १०।१८६।२ )

---

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १८३४ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं वस्वः एक इत ) जैसा तू धनका अकेला ही स्वामी है, ( यत् अहं ईशीय ) वैसा ही यदि मैं भी धनका स्वामी हो गया तो ( मे स्तोता गोसखा स्यात् ) मेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र हो, तो फिर तेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र भला क्यों न होगा ? ॥ १ ॥

[ १८३५ ] हे ( शचीपते ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( यत् अहं गोपतिः स्याम् ) यदि मैं गायका स्वामी बन जाऊं तो मैं ( अस्मै मनीषिणे दित्सेयं ) इस बुद्धिमान्को मैं धन देनेकी इच्छा करूं और उसे ( शिक्षेयं ) धन भी दूं ॥ २ ॥

[ १८३६ ] हे इन्द्र ! ( ते सूनृता धेनुः ) तेरी स्तुतिरूपी वाणी गायका रूप धारण करके ( पिप्युषी ) पोषण करनेकी इच्छा करते हुए ( सुन्वते यजमानाय ) सोम यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए ( गां अश्वं दुहे ) गाय और घोडे देती है ॥ ३ ॥

[ १८३७ ] ( आपः हि मयोभुवः स्थ ) जल निस्सन्देह सुख देनेवाले हैं । ( ताः नः ऊर्जे दधातन ) वे हमारे अन्न और बल बढानेवाले हों । तथा ( महे रणाय चक्षसे ) महान् रमणीय ज्ञान प्राप्त करके देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १८३८ ] हे जलो ! ( इह वः यः रसः शिवतमः ) यहां जो तुम्हारा रस अत्यन्त सुख देनेवाला है, ( तस्य नः भाजयत ) उसे हमें सेवन करनेके लिए दो । ( उशतीः मातरः इव ) बच्चेके पोषण करनेकी इच्छा करनेवाली माता जिसतरह अपना दूधरूपी रस अपने बच्चेको देती है, उसी तरह तुम हमें अपना रस दो ॥ २ ॥

[ १८३९ ] हे ( आपः ) जलो ! ( यस्य क्षयाय जिन्वथ ) जिसके निवासके लिए तुम प्रेरणा करते हो, ( तस्मै अरं नः गमाम ) उसके लिए पूर्णरूपसे हम तुम्हारा उपयोग कर सकें ऐसा तुम करो । ( नः जनयथ च ) हम पुत्रपौत्र उत्पन्न कर सकें ऐसा हमें सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ ३ ॥

[ १८४० ] ( वातः नः ) वायु हमारी तरफ ( हृदे शंभु मयोभु भेषजं ) हृदयको आनन्द देनेवाले और सुखकारक औषध ( आ वातु ) लेकर आवे और ( नः आयूंषि प्रतारिषत् ) हमारी आयु बढावे ॥ १ ॥

[ १८४१ ] हे ( वात ) वायो ! ( उत नः पिता असि ) तू हमारा पिता है, ( उत भ्राता ) और भाई है, ( उत नः सखा ) और हमारा मित्र भी है । ( सः नः जीवातवे कृधि ) वह तू हमारा जीवन दीर्घ कर ॥ २ ॥

१८४२ यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ ११ (पौ) ॥
[ धा० १० । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १०।१८६।३ )

१८४३ अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रꣳ हिरण्ययं बिभ्रदत्कꣳ सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥

१८४४ अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

१८४५ अयꣳ सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥ १२ (पु) ॥
[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ]

१८४६ नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१२३।६ )

---

[ १८४२ ] हे ( वात ) वायो ! ( ते गृहे ) तेरे घरमें ( यत् अदः गुहा अमृतं निहितं ) जो गुप्त स्थानमें यह अमृत रखा हुआ है। हे ( विभावसो ) तेजस्वी धन पासमें रखनेवाले वायो ! ( तस्य नः धेहि ) वह अमृत हमें दे ॥३॥

[ १८४३ ] ( सुपर्णः वाजी ) गरुडके समान बलवान् ( विश्वरूपः ऋज्रः ) अनेक रूपोंसे युक्त और पापनाशक अग्नि ( जनित्रं अत्कं ) अपने उत्पत्ति स्थान - अरणियों - को अपने तेजसे व्याप्त करता है और ( हिरण्ययं अभि बिभ्रत् ) सोनेके समान तेज धारण करता है । ( सूर्यस्य भानुं ) सूर्यके तेजको ( ऋतुथा वसानः ) ऋतुके अनुसार धारण करके ( मेधं परि स्वयं जजान ) यज्ञको स्वयं सम्पन्न करता है ॥ १ ॥

[ १८४४ ] ( रेतः विश्वरूपं यत्तेजः ) वीर्यके समान अनन्त रूपवाले वे तेज ( अप्सु शिश्रिये ) जलके आश्रयसे रहते हैं । ( यत् पृथिव्यां अधि सं बभूव ) जो पृथ्वी पर है और ( अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः ) जो अन्तरिक्षमें अपनी महिमाको फैलाता है, ( वृष्णः अश्वस्य रेतः कनिक्रन्ति ) बलवान् सोमका वीर्य शब्द करता हुआ तुझे प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १८४५ ] ( दिवः भुवनस्य धर्ता ) द्युलोक और पृथ्वीलोकको धारण करनेवाला ( विश्पतिः ) प्रजाओंका पालन करनेवाला ( सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा ) यज्ञ करनेवालोंको हजारों, सैंकडों तरहके बहुतसा धन देनेवाला ( यज्ञः अयं ) यज्ञ करनेवाला यह अग्नि ( युक्ता सहस्रा परि वसानः ) अपने पास रखी हुई हजारों किरणोंको फैलाता हुआ ( सूर्यस्य भानुं दधार ) सूर्यके तेजको धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १८४६ ] हे वेन ! ( सुपर्णं पतन्तं ) गरुडके समान उडनेवाले ( हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं ) सोनेके समान पंखवाले वरुणके दूतको ( यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युं ) नियमन करनेवाले विद्युत् रूप अग्निके स्थान अन्तरिक्षमें पक्षीके समान उडनेवाले सब जगत्का पोषण करनेवाले ( त्वा हृदा वेनन्तः ) तुझे अन्तःकरणसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए स्तोता ( नाके यत् अभ्यचक्षत ) अन्तरिक्षमें जब देखते हैं, तब ( उप ) तेरे पास आते हैं ॥ २ ॥

१८४७ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वार्३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥२॥ ( ऋ. १०।१२३।७ )

१८४८ द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानु शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥ १२ (खु) ॥
[ धा० २६ । उ० २ । स्व० ५ ] ( ऋ. १०।१२३।८ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ ९-२ ॥

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

[ १८४७ ] ( ऊर्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ् ) ऊपर रहनेवाला जलोंको धारण करनेवाला वेन जब हमारे सामने आकर ( नाके अधि अस्थात् ) अन्तरिक्षमें स्थिर होता है, तब वह ( अस्य चित्रा आयुधानि बिभ्रत् ) अपने विलक्षण शस्त्रोंको धारण करके ( दृशे सुरभिं अत्कं वसानः ) देखनेके लिए सुन्दर रूप धारण करते हुए ( स्वः न ) सूर्यके समान ( नाम प्रियाणि जनत ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १८४८ ] ( विधर्मन् द्रप्सः ) विशेष गुणोंसे युक्त, प्रवाह युक्त ( गृध्रस्य चक्षसा पश्यन् ) गृध्र - सूर्य - के तेजसे तेजस्वी होकर देखनेवाला वेन ( यत् समुद्रं अभि जिगाति ) जब पानीसे भरे हुए मेघके पास जाता है, तब ( भानुः शुक्रेण शोचिषा ) सूर्य स्वच्छ तेजसे ( तृतीये रजसि चकानः ) तीसरे द्युलोकमें प्रकाशित होकर ( प्रियाणि चक्रे ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ विंशोऽध्यायः ॥

# विंश अध्याय

इस बीसवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य, आप् और सोम देवताओंका वर्णन है, उन्हें अब क्रमसे देखिए —

## इन्द्र

१ इन्द्रः नाम श्रुतः, ऋत्वियः ब्रह्मा [१७६८]- यह इन्द्रके नामसे विख्यात है, यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला और उत्तम ज्ञानी है ।

२ हे शवसः पते ! त्वां इत् संयतः न गिरः यन्ति [ १७६९ ]- हे बलके स्वामी इन्द्र ! संयमी पुरुषकी जैसी स्तुति होती है, उसप्रकार तेरी स्तुति होती है ।

३ हे इन्द्र ! यथा पथा स्रुतयः त्वत् रातयः वि यन्तु [ १७७० ]- हे इन्द्र ! जिसप्रकार बडे मार्गसे अनेक छोटे मार्ग निकलते हैं, उसीप्रकार तुझसे अनेक प्रकारके दान उपासकोंकी ओर निकलते हैं ।

४ ऊतये सुम्नाय तुविकूर्मिं ऋतीषहं शविष्ठं सत्पतिं त्वा इन्द्रं आवर्तयामसि [१७७१]- स्वसंरक्षण और सुख प्राप्तिके लिए अनेक उपयोगी कर्म करनेवाले, हिंसक शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, बलवान् सज्जनोंका पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको हम अपने पास बुलाते हैं ।

५ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवः मते ! विश्वया

महित्वना आ पप्राथ [१७७२]- महा बलवान्, बहुत कार्य करनेवाले शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! तू सब प्रकारकी महत्वपूर्ण शक्तियोंसे युक्त होकर व्याप्त होता है।

६ यस्य महः ते हस्ता उभा-यन्तं हिरण्ययं वज्रं परि ईयतुः [ १७७३ ]- जिस महान् पुरुषके - तेरे - हाथ पृथ्वी पर संचार करनेवाले वज्रको धारण करते हैं, वज्रका प्रयोग करते हैं।

७ शाक्मना शाकः महः शूरः यत् चिकेत, तत् सत्यं इत् मोघं न [ १७८३ ]- अपनी शक्तिसे सामर्थ्य सम्पन्न ऐसा महान् शूर इन्द्र जो करनेका निश्चय करता है, वह निश्चयसे करके दिखाता है, वह निष्फल नहीं होता।

८ स्पार्हं वसु जेता, उत दाता [१७८३]- स्पृहणीय धन वह जीतकर लाता है और उसका दान करता है।

९ एभिः वृष्ण्या पौंस्यानि आ ददे [ १७८४ ]- इन मरुतोंके साथ रहकर वह इन्द्र सामर्थ्यसे होनेवाले कार्य करता है।

१० येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत् [ १७८४ ]- इन मरुतोंके साथ रहकर वह वज्रधारी इन्द्र शत्रुको मारनेके लिए वृष्टि करता है, बाणोंकी वर्षा करता है।

११ वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः द्विता विदे [१७९१] -शत्रुको मारनेवाला, सैंकडों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों ही तरहके काय करता है।

१२ महेवृधे महे प्रभरध्वम् [ १७९२ ]- महान् वृद्धि हो, इसलिए महान् इन्द्रको भरपूर हवि अर्पण करो।

१३ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं [ १७९२ ]- ज्ञानी इन्द्रके बारेमें उत्तम भावना हृदयमें धारण करो।

१४ चर्षणि-प्राः विशः प्रच्चर [ १७९३ ] प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू प्रजाओंकी सहायता कर।

१५ हे विप्राः ! उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्ति ब्रह्म जनयन्त, तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति [१७९४] हे विद्वानो ! विशेष व्यापक महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो।

१६ सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव वाणीः सहध्यै दधिरे [ १७९५ ]- सबका राजा, जिसके क्रोधके आगे कोई भी टिक नहीं सकता, ऐसे उस इन्द्रको शत्रुको हरानेके लिए स्तुति आगे करती है।

१७ हे इन्द्र ! यत् यावतः, एतावत् अहं ईशीय [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जितने धनका तू स्वामी है, उतने धनका मैं भी स्वामी होऊं।

१८ पापत्वाय न रंसिषम् [ १७९६ ]- पापी होनेके लिए मैं किसीको धन नहीं दूंगा।

१९ हे मघवन् ! त्वत् अन्यत् आप्यं नहि, [१७९७] -हे धनवान् इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा कोई दूसरा भाई नहीं है।

२० वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- तेरे सिवाय प्रशंसनीय संरक्षक भी दूसरा कोई नहीं।

२१ अस्मै इन्द्राय पुरो रथं शूषं सु प्र अर्चत [१८०१] - इस इन्द्रके रथके आगे जानेवाले बलकी स्तुति करो।

२२ समत्सु संगे अधीके चित् लोककृत् वृत्रहा अस्माकं चोदिता बोधि [ १८०१ ]- युद्धमें शत्रुके सेनाके अपने ऊपर चढते हुए चले आने पर, लोगोंका कल्याण करनेवाला और शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र हमारा प्रेरक है, यह तू जान।

२३ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम् [ १८०१ ]- शत्रुके धनुषकी डोरियां टूट जायें।

२४ हे इन्द्र ! अहिं अहन्, अशत्रुः जज्ञिषे, विश्वं वार्यं पुष्यसि [ १८०२ ]- हे इन्द्र ! तू अहिको मारकर शत्रुरहित हो गया है। तू सब स्वीकार करने योग्य धन अपने पास बढाता है।

२५ नः विश्वाः अरातयः अर्यः सु निनशन्त, यः नः जिघांसति, शत्रवे वधं अस्ता असि [ १८०३ ]- हमारे सब शत्रु जो हम पर चढाई करते हैं नष्ट हो जायें। जो हमें मारना चाहता है, उस पर तू शस्त्र फेंक।

इन्द्र सुप्रसिद्ध है। वह महान् ज्ञानी और ठीक समय पर काम करनेवाला है। वह संयमी है। अनेक उपयोगी कार्य वह करता है। वह अत्यन्त सामर्थ्यवान् है। वह सज्जनोंका अच्छी तरह पालन करता है। वह हाथोंमें वज्र धारण करता है और उनका उपयोग शत्रुके नाश करनेके लिए करता है। जो करनेका निश्चय करता है, वह कार्य वह करता ही है। सामर्थ्यसे होनेवाले महान् महान् कार्य वह करता है। वह शत्रुका नाश करके आर्योंकी रक्षा करता है। वह दोनों ही काम करता है। वह प्रजाओंका पालन अच्छी तरह करता है। इसलिए उस इन्द्रके बारेमें उत्तम विचार धारण करने चाहिए। वह इन्द्र सबका राजा है। उसका क्रोध जिस पर पडता है वह नष्ट हो जाता है। इसलिए उसे प्रसन्न रखना चाहिए। इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी सच्चा मित्र नहीं है। वह ही सबका कल्याण करनेवाला है। युद्धमें वह ही सच्चा संरक्षक है। उसने राक्षसोंको मारा इस कारण उसका कोई

भी शत्रु बचा नहीं। हमारे शत्रुओंको भी इन्द्र मार दे और हमें भी शत्रुरहित करे।

## अग्नि

अब अग्निका वर्णन देखिये—

१ यः द्विजन्मा सः होता अयं विश्वा वार्याणि श्रवस्या दधे [१७७६]- दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ, देवोंको बुलाकर यज्ञस्थानमें लानेवाला यह अग्नि सब चाहने योग्य धनोंको और यशस्वी कर्मोंको धारण करता है।

२ हे अग्ने ! भद्रस्य दक्षस्य साधोः ऋतस्य बृहतः क्रतोः रथीः बभूथ [ १७७८ ]- हे अग्ने ! कल्याणकारक और बल बढानेवाले उत्तम सत्य ऐसे महान् यज्ञका तू संचालक होता है। यज्ञ कल्याण करता है, बल बढाता है ऐसा यह यज्ञ अग्निमें होता है।

३ हे अग्ने ! हव्यवाहनः दूतः अध्वराणां रथीः असि। अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि [ १७८१ ]-हे अग्ने ! तू हवनीय द्रव्य देवोंके पास पहुंचानेवाला दूत और अहिंसापूर्ण यज्ञका संचालक है। हमें उत्तम वीर्यसे युक्त महान् यश दे। अग्निमें हवन किए गए पदार्थ अति सूक्ष्म हो जाते हैं और अग्नि उन्हें जहां पहुंचाना होता है वहां पहुंचा देता है। यह अग्नि हिंसाके बिना यज्ञ करता है। इस यज्ञमें हिंसा नहीं होती। इन यज्ञोंसे वीर्य बढता है और यश भी बढता है।

४ विरुक्मता ओजसा पुरुचित् दीद्यानः द्रुहन्तरः परशुः न द्रुहन्तरः भवति [ १८१५ ]- विशेष तेजस्वी और बलसे अधिक प्रकाशमान् होकर, शत्रुओंको काटनेवाले फरसेके समान, द्रोह करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है।

५ यस्य समृतौ वीडु चित् श्रुवत् [ १८१५ ]- जिसके साथ रहनेसे शत्रुको भी हराना आसान हो जाता है।

६ निःषहमाणः यमते [ १८१५ ]- शत्रुको हराकर उसका नियमन करता है।

७ पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि [ १८१७ ]- शुद्धता करनेवाली किरणोंसे युक्त, निर्मल किरणोंसे युक्त, पूर्ण तेजस्वी, ऐसा तू अपने तेजसे उदयको प्राप्त होता है।

८ अध्वरस्य हृष्कर्तारं प्रचेतसं महः राधसः क्षयन्तं वामस्य रातिं [ १८२० ]- यज्ञ करनेवाले, ज्ञानी, बहुत धन पासमें रखनेवाले ऐसे अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

९ सुभगां महीं इषं सानसिं रयिं दधासि [१८२०]-अधिक भाग्ययुक्त अन्न और सेवन करने योग्य धन अग्नि देता है।

१० जनाः ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतं अग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे [ १८२१ ]- लोग यज्ञ करनेवाले, पूज्य, सर्वत्र दर्शनीय अग्निको अपने सुखकी प्राप्तिके लिए अपने आगे स्थापित करते हैं।

११ हे अग्ने ! त्वं यस्य सख्यं आविथ, सः सु-वीराभिः वाजकर्मभिः तव ऊतिभिः प्रतराति [१८२२] –हे अग्ने ! तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह उत्तम वीर पुत्रोंसे और बल बढानेवाले कर्मोंसे युक्त तेरे संरक्षणोंसे संकटोंसे पार हो जाता है।

१२ हे अग्ने ! ऊर्जा इषा आयुषा निवर्तस्व। अंहसः नः पाहि [ १८३२ ]- हे अग्ने ! तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ। पापसे हमारी रक्षा कर।

१३ हे अग्ने ! रय्या सह निवर्तस्व [ १८३३ ]- हे अग्ने ! तू धनके साथ हमारे पास आ।

यह अग्नि दो अरणियोंकी रगडसे उत्पन्न होता है। वह कल्याण करनेवाले बल बढाता है। यह हवनमें डाले गए पदार्थोंको जहां पहुंचाना होता है वहां पहुंचाता है और उत्तम वीर्य बढाता है। जिसप्रकार फरसा लकडीको काटता है, उसीप्रकार यह अग्नि रोगबीजोंको नष्ट करती है। इसकी सहायतासे बलवान् रोगबीज भी नष्ट हो जाते हैं। इसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है। यह अग्नि उत्तम बल बढानेवाले अन्न और धन देता है। सुख और आरोग्यके लिए ज्ञानी लोग इस अग्निकी स्थापना करते हैं। इस अग्निमें हवन करना बल बढानेवाला कर्म है। अग्निसे तैय्यार किए गए अन्न मनुष्योंके बल, आरोग्य और आयु बढाते हैं।

## आपः ( जल )

१ आपः मयोभुवः, ताः नः ऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे [ १८३७ ]- जल निःसन्देह सुख बढानेवाले हैं। वे हमारे बल बढानेवाले हों तथा वे महान् और सुन्दर दर्शन करानेवाले हों :

२ इह यः वः शिवतमः रसः तस्य नः भाजयत [१८३८]- यहां जो तुममें अत्यन्त कल्याण करनेवाला रस है, उसका सेवन हमारे द्वारा हो, ऐसा कर।

३ हे आपः ! यस्य क्षयाय जिन्वथ, तस्मै अरं वः

ग्रमाम [१७३९]- हे जलो ! जिसको तुमसे निवास करानेके लिए तुम प्रयत्न करते हो, वे कार्य हम तुमसे पूर्णरूपसे करवायें।

पानी आरोग्य बढानेवाले और सुख देनेवाले हैं। उससे शरीरका बल बढता है, और शरीरकी सुन्दरता बढती है। पानीमें जो रस है, वह कल्याण करनेवाला है। उसे पानेवाला मनुष्य निरोगी होकर सुखी होता है। इन मंत्रोंमें जल चिकित्साका वर्णन है। पानी एक उत्तम औषधि है। जल-चिकित्सासे बहुत रोग दूर हो सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध जल अत्यन्त उपयोगी है।

## वायु

१ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आवातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् [ १८४० ]- वायु हमारे हृदयका आनन्द बढानेवाला और आरोग्य बढानेवाला होकर बहे और हमारी आयु बढावे।

२ हे वात ! ते गृहे यत् अदः गुहा अमृतं निहितं, तस्य नः धेहि [१८४२]- हे वायो ! तेरे घरमें जो अमृत रखा हुआ है, उसे हमें दे।

३ हे वात ! नः पिता, भ्राता, सखा असि, नः जीवातवे कृधि [१८४१]- हे वायो ! तू ही हमारा पिता, भाई और मित्र है, इसलिए तू हमारा जीवन दीर्घ कर।

वायुमें औषधिका गुण है, वायु उन गुणोंको लेकर हमारे पास आवे और हमारी उमर बढावे। वायुमें अमृत है। इसलिए वायुका ठीक तरह सेवन करनेसे मृत्यु दूर होकर आयु बढती है।

## सोम

१ यः जागार तं अयं सोम आह, तव सख्ये अहं अस्मि [ १८२६ ]- जो जागता रहता है, उससे यह सोम कहता है कि तेरी मित्रतामें मैं हूं। तेरा मैं मित्र हूं।

जागृत रहनेवाले लोगोंसे सोम मित्रता करनेवाला है। वह उसका कल्याण करनेवाला है। सोमका उपयोग जागृत रहकर करना चाहिए।

---

## सुभाषित

१ वेधसः कारवः ज्योतिः जज्ञानं मृजन्ति [१७६६] - कार्य करनेवाले ज्ञानी तेजस्विता प्रकट करनेवालेको शुद्ध करते हैं।

२ पुनानाय ते तानि सुषहा [ १७६७ ]- शुद्ध होनेवाले तुझे वे उत्तम प्रकारसे रक्षा करनेवाले बल प्राप्त होते हैं।

३ एषः ऋत्वियः ब्रह्मा गृणे [१७६८]- यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला ज्ञानी प्रशंसित होता है।

४ हे शवसः पते ! संयतः न त्वां गिरः यन्ति [ १७६९ ]- हे बलके स्वामी इन्द्र ! जैसे मनुष्य संयमी पुरुषको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं।

५ हे इन्द्र ! यथा पथा स्रुतयः, त्वत् रातयः वि यन्तु [ १७७० ]- हे इन्द्र ! जैसे बडे रास्तेसे छोटे - छोटे रास्ते निकलते हैं, उसीप्रकार तुझसे अनेक प्रकारके दान निकलते हैं।

६ ऊतये सुम्नाय तुविकूर्मिं ऋतीषहं शविष्ठं सत्पतिं त्वा इन्द्रं आवर्तयामसि [१७७१]- स्वसंरक्षण और सुख प्राप्तिके लिए अनेक कर्म करनेवाले हिंसक शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी हम उपासना करते हैं।

७ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवः मते ! विश्वया महित्वना आ पप्राथ [ १७७२ ]- हे महा बलवान् अनेक कर्म करनेवाले, शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! सब प्रकारके महत्वपूर्ण शक्तियोंके साथ तू सर्वत्र व्याप्त है।

८ भद्रस्य दक्षस्य साधोः ऋतस्य बृहतः क्रतोः रथीः बभूथ [ १७७८ ]- कल्याण करनेवाले, बल बढानेवाले, उत्तम, सत्य और बडे - बडे कर्मोंका तू संचालक है।

९ ज्योतिः स्वः न, विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः नः अर्वाक् भव [ १७७९ ]- ज्योति स्वरूप सूर्यके समान, सब तेजोंसे युक्त उत्तम मन धारण करनेवाला तू हमारे पास आ।

१० विवस्वत् चित्रं राधः आ वह, अद्य उषर्बुधः देवान् आ वह [ १७८० ]- तेजस्वी और विलक्षण धन लेकर आ और आज सबेरे प्रातःकाल उठनेवाले विद्वानोंको लेकर इस यज्ञमें आ।

११ अध्वराणां रथीः असि [ १७८१ ]- हिंसारहित कर्मोंका तू संचालक है।

१२ अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि [ १७८१ ]- हमें उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य और महान् यश दे।

१३ विधुं समने बहूनां दद्राणं युवानं सन्तं पलितः जगार [ १७८२ ]- अनेक कार्य करनेवाले, युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले तरुणको भी वृद्धावस्था निगल जाती है।

१४ देवस्य महित्वना काव्यं पश्य [१७८२]- देवके महिमासे भरे हुए इस काव्यको देखो।

१५ अद्य ममार स श्वः समान [१७८२]- आज जो मर गया वही कल प्रकट होता है। 'समान' ( सं-आन ) उत्तम रीतिसे प्राण धारण करता है।

१६ यत् चिकेत, तत् सत्यं इत्, मोघं न [१७८३] - इन्द्र जो कर्तव्य करनेका निश्चय करता है, उसे सत्य करके दिखाता है, उसे व्यर्थ नहीं जाने देता।

१७ स्पार्हं वसु जेता उत दाता [ १७८३ ]- वह चाहने योग्य धनको जीतकर लाता है और उसका दान करता है।

१८ वृष्ण्या पौंस्यानि आ ददे [ १७८४ ]- वह बल बढानेवाले पौरुषके काम करता है।

१९ ये देवाः महः क्रियमाणस्य कर्मणः ऋते कर्म उद्‌जायन्त [ १७८४ ]- जो देव महत्वके करने योग्य कार्योंमें सत्य कर्म ही करके दिखाते हैं।

२० हे सूर्य ! महान् असि बट् [१७८८]- हे सूर्य ! तू निश्चयसे महान् है।

२१ आदित्य ! महान् असि बट् [ १७८८ ]- हे सूर्य ! तू महान् है, यह सत्य है।

२२ ते सतः महः महिमा [१७८८]- तेरे जैसे महान्‌की महिमा भी महान् है।

२३ पनिष्टम ! मह्ना महान् असि [ १७८८ ]- हे स्तुत्य ! तू अपनी महिमासे महान् है।

२४ हे सूर्य ! श्रवसा महान् असि बट् [ १७८९ ] - हे सूर्य ! तू अपने महान् यशसे महान् है। यह सत्य है।

२५ देवानां मह्ना महान् असि [१७८९]- तू देवोंके महत्वके कारण बडा है।

२६ असुर्यः पुरोहितः [ १७८९ ]- तू असुरोंका नाश करनेवाला है इसलिए तुझे आगे स्थापित किया है।

२७ ज्योतिः विभुः अदाभ्यं [ १७८९ ]- तेरे तेज व्यापक और न दबनेवाले हैं।

२८ वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः द्विता विदे [ १७९१ ]- वृत्रको मारनेवाला, सैकडों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों प्रकारके कार्य करता है। आर्योंका संरक्षण और दुष्टोंका नाश ये दोनों उसके काम हैं।

२९ वः महेवृधे मह प्रभरध्वम् [ १७९३ ]- अपने महान् संवर्धनके लिए महान् वीरका विशेष सम्मान करो। उसे जो देना हो, भरपूर दो।

३० प्र चेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं [ १७९३ ]- विशेष बुद्धिमान्‌के विषयमें अपने उत्तम विचार बना।

३१ चर्षणिप्राः विशः प्रचर [ १७९३ ]- प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू सब प्रजाओंका पोषण कर।

३२ हे विप्राः ! उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं ब्रह्म जनयन्त, तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति [१७९४] हे ब्राह्मणो ! विशेष व्यापक इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतिके स्तोत्र कहो। उसके कार्य बुद्धिमान् लोग विनष्ट नहीं कर सकते।

३३ सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव वाणीः सहध्यै दधिरे [ १७९५ ]- सबका एक ही समयमें राजा होनेवाले, जिसके क्रोधके आगे कोई ठहर नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको ही हमारी वाणी शत्रुओंको हरानेके लिए आगे करती है।

३४ हर्यश्वाय आपीन् सं वर्धय [ १७९५ ]- इन्द्रकी स्तुति करनेके लिए मित्रको प्रोत्साहन दो।

३५ हे इन्द्र ! यत् यावतः, एतावत् अहं ईशीय [ १९७६ ]- हे इन्द्र ! जितने धनका तू स्वामी है, उतनेका ही मैं स्वामी होऊं।

३६ स्तोतारं इत् दधिषे, पापत्वाय न रंसिषम् [ १७८६ ]- स्तोताको मैं धन देकर उसका धारण करूंगा, पर उसे पापमें प्रवृत्त नहीं होने दूंगा। पाप करनेमें वह आनन्द माने ऐसा उसे अवनत नहीं होने दूंगा।

३७ कुहचिद् विदे महयते दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत् [१७९७]- इन्द्र कहता है की कहीं पर भी रहकर महत्वके कार्य करनेवालेको मैं धन देता हूं।

३८ हे मघवन् ! त्वत् अन्यत् आप्यं नहि, वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- हे इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा दूसरा कोई भाई नहीं है, और प्रशंसनीय पिता भी दूसरा कोई नहीं।

३९ अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध [ १७९७ ]- अर्चना करनेवाले ब्राह्मणकी मन तू जान।

४० अन्तमा सचा इमा दुवांसि कृष्व [ १७९८ ] -मैं बहुत निकटका मित्र हूं ऐसी भावनासे इन सेवाओंको स्वीकार कर।

४१ तुरस्य ते गिरः असुर्यस्य विद्वान् न अपि मृष्ये [ १७९९ ]--शीघ्रतासे शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरी स्तुतियोंको तेरे बलको जाननेवाला मैं दूर नहीं कर सकता। तेरी स्तुति मैं अवश्य करूंगा।

४२ स्वयशः ते नाम सदा विवक्मि [ १७९९ ]- अपने यशको बढानेवाले तेरे नामको मैं सदा लेता रहूंगा।

४३ मनीषी त्वां इत् भूरि हवते [१८००]-बुद्धिमान् तेरे लिए बहुत हवन करता है।

४४ अस्मत् आरे ज्योक् मा कः [ १८०० ]- हमसे दूर तू बहुत ज्यादा समय तक न रह।

४५ अस्मै इन्द्राय पुरोरथं शूषं सु प्र अर्चत [१८०१] इस इन्द्रके रथके आगे रहनेवाले सामर्थ्यका अच्छी तरह पूजन करो।

४६ समत्सु संगे अभीके चित् लोककृत् वृत्रहा अस्माकं चोदिता बोधि [ १८०१ ]- यदि युद्धमें शत्रुकी सेना हम पर चढती हुई पास आ जावे, तो लोगोंका पालन करनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारा उत्साह बढानेवाला है, यह तुम जानो।

४७ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां [१८०१] -अन्य शत्रुओंके धनुषकी डोरियां टूट जायें।

४८ अहिं अहन् अशत्रुः जज्ञिषे [ १८०२ ]- अहिको मारकर तू शत्रुरहित होता है।

४९ विश्वं वार्यं पुष्यसि [१८०२]- सब चाहने योग्य धनको तू बढाता है।

५० तं त्वा परिष्वजामहे [ १८०२ ]- उस तुझे हम वशमें करते हैं।

५१ नः विश्वाः अरातयः अर्यः सुविनशन्त [१८०३] -हम पर चढकर चले आनेवाले सब शत्रु उत्तम रीतिसे नष्ट हो जायें।

५२ यः नः जिघांसति शरवे वधं अस्ता असि [ १८०३ ]- जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस शत्रुपर तू मारक अस्त्र फेंकता है।

५३ ते या रातिः वसु ददिः [ १८०३ ]- तेरे वे दान हमें धन देवें।

५४ हे हरिवः ! रेवतः स्तोता रेवान् स्यात् [१८०४] -हे घोडे पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला धनवान् होगा ही।

५५ त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेदुः [ १८०४ ]- तेरे जैसे धनवालेकी स्तुति करनेवाला अवश्य धनवान् होगा ही।

५६ अ-गोः रयिः आ चिकेत [ १८०५ ]- गाय न पालनेवालोंके धन तू जानता है।

५७ पीयत्नवे नः मा परा दाः [ १८०६ ]- हिंसक शत्रुओंके आधीन हमें न कर।

५८ शर्धते आ [ १८०६ ]- नाश करनेवालोंके अधीन हमें मत कर।

५९ हे शचीवः । शचीभिः शिक्ष [ १८०६ ] हे शक्तिमान् इन्द्र ! अपनी शक्तिसे हमें धन दे।

६० सः विरुक्मता ओजसा पुरुचित् दीद्यानः वृत्रहन्तमः भवति [ १८१५ ] वह अपने तेजस्वी बलसे अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुका नाश करनेवाला होता है।

६१ यस्य समृतौ वीळु चित् श्रुवत् [ १८१५ ]- जिसके साथ रहनेसे बलवान् शत्रु भी हार जाता है।

६२ धन्वासहा न अयते [ १८१५ ]- धनुषधारी वीर अपनी जगहसे नहीं हटता।

६३ निःषहमाणः यमते [ १८१५ ]- शत्रुको हरानेवाला सबका नियमन करता है।

६४ तव वयः श्रवः[१८१६]- तेरा अन्न प्रशंसनीय है।

६५ हे विभावसो ! अर्चयः महि भ्राजन्ते [१८१६] -हे तेजस्वी अग्ने ! तेरी ज्वालायें बहुत प्रदीप्त हो चुकी हैं।

६६ पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः, अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि [ १८१७ ]- शुद्ध करनेवाली किरणोंसे युक्त, निर्मल तेजसे युक्त, पूर्ण तेजस्वी ऐसा तू अपने तेजसे उदयको प्राप्त होता है।

६७ हे अमर्त्य अग्ने ! जन्तुभिः इरज्यन् अस्मे रायः प्रथयस्व [ १८१९ ]- हे अमर अग्ने ! अपने तेजसे तेजस्वी हुआ हुआ तू हमारे धन बढा।

६८ दर्शतस्य वपुषः विराजसि [१८१९]- तू सुन्दर शरीरसे सुशोभित होता है।

६९ दर्शतं क्रतुं पृणक्षि [ १८१९ ]- दर्शनीय सुन्दर यज्ञकर्मको उत्तम फल देता है।

७० अध्वरस्य इष्कर्त्तारं प्रचेतसं, महः राधसः क्षयन्तं, वामस्य रातिं सुभगां महीं इषं, सानसिं रयिं दधासि [ १८२० ]- अहिंसापूर्ण यज्ञके संस्कार करनेवाले, विशेष ज्ञानी, बहुत धन पासमें रखनेवाले और उत्तम धन देनेवाले तेरी मैं स्तुति करता हूं। तू उत्तम भाग्य युक्त बहुत अन्न और सेवनीय धन हमें देता है।

७१ जनाः ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतं अग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे [१८२१]-- याजक यज्ञ करनेवाले पूज्य, सब प्रकारसे दर्शनीय अग्निको सुख हो, इसलिए अपने आगे स्थापित करते हैं।

७२ त्वं यस्य सख्यं आविथ, सः सुवीराभिः वाज-

कर्मभिः तव ऊतिभिः प्र तराति [ १८२२ ]- तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह वीर पुत्रोंसे और बलवर्धक कर्मोंसे युक्त होता है और तेरे संरक्षणोंसे युक्त होकर संकटोंसे पार हो जाता है।

७३ शुक्रः दिवि विराजति, महिषीव विजायते [ १८२५ ]- अग्नि प्रदीप्त होकर आकाशमें प्रकाशित होता है, रानीके समान वह सुशोभित होता है।

७४ यो जागार तं ऋचः कामयन्ते [ १८२६ ]-जो जागता है, उसकी इच्छा ऋचायें करती हैं।

७५ यो जागार तं उ सामानि यन्ति [ १८२६ ]- जो जागता रहता है उसे साम प्राप्त होता है ।

७६ यः जागार तं अयं सोमः आह, तव सख्ये अहं अस्मि [ १८२६ ]- जो जागृत रहता है, उससे यह सोम कहता है कि में तेरा मित्र होकर रहता हूं।

७७ अहं न्योकाः अस्मि [ १८२६ ]- में घर बनाकर नहीं रहता ।

७८ पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः नमः [१८२८]- पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्रोंको में नमस्कार करता हूं।

७९ साकंनिषेभ्यः नमः [ १८२८ ]- पास पास बैठनेवालोंको नमस्कार करता हूं।

८० विश्वा रूपाणि ओकांसि देवाः चक्रिरे [१८३०] - अनेक रूपोंके घर देवोंने बनाये हैं।

८१ हे अग्ने ! ऊर्जा इषा आयुषा पुनः निवर्तस्व [१८३२]- तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ।

८२ अंहसः नः पुनः पाहि [१८३२] - पापसे हमारी बार बार रक्षा कर।

८३ अग्ने ! रय्या सह निवर्त्तस्व [ १८३३ ]- हे अग्ने ! धनके साथ तू हमारे पास आ।

८४ हे इन्द्र ! यथा त्वं वस्वः एकः इत् , यत् अहं ईशीय, मे स्तोता गोसखा स्यात् [१८३४]- हे इन्द्र ! जैसा तू अकेला ही धनका स्वामी है, वैसा ही में धनका स्वामी यदि हो जाऊं, तो मेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र हो।

८५ आपः मयोभुवः स्थ, ताः नः ऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे [ १८३७ ]- जल निस्सन्देह सुख देनेवाले हैं, वे हमारे बल बढानेवाले हों, वे महान् और सुन्दर ज्ञानको देनेवाले हों।

८६ इह वः यः शिवतमः रसः, तस्य नः भाजयत [ १८३८ ]- हे जलो ! यहां जो तुम्हारा अत्यन्त सुख देनेवाला रस है, उसे हमें सेवन करनेके लिए दो।

८७ हे आपः ! यस्य क्षयाय जिन्वथ, तस्मै अरं गमाम [ १८३९ ]- हे जलो ! जिसका यहां निवास हो, ऐसी इच्छा करते हो, उसके लिए हम पूर्ण रूपसे उपयोगी हों, ऐसा तुम करो।

८८ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आ वातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् [१८४०]- वायु हमारी तरफ हृदयको आनन्द देनेवाले और सुखकारक औषध लेकर आवे, और हमारी आयु बढावे।

८९ हे वात ! नः पिता, भ्राता, सखा असि, सः नः जीवातवे कृधि [१८४१]- हे वायो ! तू हमारा पिता, भाई और मित्र है, वह तू हमारी आयु दीर्घ कर।

९० हे वात ! ते गृहे गुहा अमृतं निहितं, हे विभावसो ! तस्य नः धेहि [ १८४२ ]- हे वायो ! तेरे घरमें गुप्त स्थान पर अमृत रखा हुआ है। हे धन पासमें रखनेवाले वायो ! वे धन हमें दे ।

---

## उपमा

१ समुद्रं वर्ष [ १७६७ ]- समुद्रके समान पात्रोंको भर दे।

२ संयतः न [१७६९]- संयमी पुरुषके समान ( गिरः यन्तिः ) स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं।

३ यथा पथा स्रुतयः [ १७७० ]- जैसे बडे रास्तेसे अनेक छोटे रास्ते फूटते हैं, ( त्वत् रातयः वियन्तु ) उसीप्रकार तुझसे अनेक दान निकलते हैं।

४ यः अर्वा नभन्यः न [ १७७४ ]- जो [ अग्नि ] गतिमान् वायुके समान वेगवाला होता है।

५ अश्वं न [ १७७७ ]- जिसप्रकार घोडा मनुष्यको यथास्थान पहुंचाता है, उसीप्रकार वह अग्नि ( भद्रं क्रतुं ) कल्याण करनेवाले यज्ञको बढाता है।

६ होता इव [ १७८७ ]- जिसप्रकार होता स्तुति करता है, उसीप्रकार ( प्रातः मत्सति ) वह प्रातःकाल सोमपानकी इच्छा करता है।

७ उर्वां वृकः न [१८०८]- भेडको जिसप्रकार भेड़िया कंपाता है, उसीप्रकार ( एषां नेमिः विधूनुते ) ये पत्थरोंकी धारें सोमलताको कूटते हुए कंपाती हैं।

८ रथाः इव [ १८१२ ]- जिसप्रकार रथोंको तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार ( असृग्रन् ) अन्न तैय्यार करते हैं।

९ विप्रं न जातवेदसं [ १८१३ ]- विप्रके समान ज्ञानी अग्निके समान तेजस्वी होता है।

१० द्यां इव परिज्मानं [ १८१४ ]- सूर्यके समान घूमनेवाला।

११ द्रुहन्तरः परशुः न [१८१५]- लकडीको काटनेवाले फरसेके समान वह अग्नि ( द्रुहन्तरः भवति ) शत्रुओंको काटनेवाला होता है।

१२ महिषी इव विजायते [१८२५]- रानीके समान वह अग्नि सुशोभित होता है।

१३ स्वः न [ १८४७ ]- सूर्यके समान ( वृशो सुरभि अत्कं वसानः ) दीखनेमें सुन्दर लगनेवाले रूपको धारण करता है।

# विंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| | | ( १ ) | | |
| १७६५ | ९।१९।१ | नृमेध आंगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १७६६ | ९।१९।२ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७६७ | ९।१९।३ | नृमेध आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७६८ | — | नृमेधः वामदेवो वा | इन्द्रः | द्विपदा पंक्तिः |
| १७६९ | — | नृमेधः वामदेवो वा | ,, | ,, |
| १७७० | — | नृमेधः वामदेवो वा | ,, | ,, |
| १७७१ | ८।९८।१ | प्रियमेधः आंगिरसः | ,, | अनुष्टुप् |
| १७७२ | ८।९८।२ | प्रियमेधः आंगिरसः | ,, | गायत्री |
| १७७३ | ८।९८।३ | प्रियमेधः आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७७४ | १।१४९।३ | दीर्घतमा औचथ्यः | अग्निः | विराट् |
| १७७५ | १।१४९।४ | दीर्घतमा औचथ्यः | ,, | ,, |
| १७७६ | १।१४९।५ | दीर्घतमा औचथ्यः | ,, | ,, |
| १७७७ | ४।१०।१ | वामदेवो गौतमः | ,, | पदपंक्तिः |
| १७७८ | ४।१०।२ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| १७७९ | ४।१०।३ | वामदेवो गौतमः | ,, | ,, |
| | | ( २ ) | | |
| १७८० | १।४४।१ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १७८१ | १।४४।२ | प्रस्कण्वः काण्वः | ,, | ,, |
| १७८२ | १०।५५।५ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १७८३ | १०।५५।६ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | ,, | ,, |
| १७८४ | १०।५५।७ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १७८५ | ८।९४।४ | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः | मरुतः | गायत्री |
| १७८६ | ८।९४।५ | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७८७ | ८।९४।६ | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७८८ | ८।१०१।११ | जमदग्निर्भार्गवः | सूर्यः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) |
| १७८९ | ८।१०१।१२ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |

( ३ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १७९० | ८।९३।३१ | सुकक्ष आंगिरसः | इन्द्रः | गायत्री |
| १७९१ | ८।९३।३२ | सुकक्ष आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७९२ | ८।९३।३३ | सुकक्ष आंगिरसः | ,, | ,, |
| १७९३ | ७।३२।१० | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | विराट् |
| १७९४ | ७।३२।११ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १७९५ | ७।३२।१२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १७९६ | ७।३२।१८ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | प्रगाथः=( विषमा बृहती, समा सतोबृहती, ) |
| १७९७ | ७।३२।१९ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १७९८ | ७।२२।४ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | विराट् |
| १७९९ | ७।२२।५ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |
| १८०० | ७।२२।६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | ,, | ,, |

( ४ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १८०१ | १०।१३३।१ | सुदासः पैजवनः | ,, | शक्वरी |
| १८०२ | १०।१३३।२ | सुदासः पैजवनः | ,, | ,, |
| १८०३ | १०।१३३।३ | सुदासः पैजवनः | ,, | ,, |
| १८०४ | ८।२।१३ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | गायत्री |
| १८०५ | ८।२।१४ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८०६ | ८।२।१५ | मेधातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८०७ | ८।३४।१ | नीपातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८०८ | ८।३४।३ | नीपातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८०९ | ८।३४।२ | नीपातिथिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८१० | ९।६७।१६ | जमदग्निर्भार्गवः | पवमानः सोमः | ,, |
| १८११ | ९।६७।१८ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |
| १८१२ | ९।६७।१७ | जमदग्निर्भार्गवः | ,, | ,, |

( ५ )

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १८१३ | १।१२७।१ | परुच्छेपो दैवोदासिः | अग्निः | अत्यष्टिः |
| १८१४ | १।१२७।२ | परुच्छेपो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| १८१५ | १।१२७।३ | परुच्छेपो दैवोदासिः | ,, | ,, |
| १८१६ | १०।१४०।१ | अग्निः पावकः | अग्निः | विष्टारपंक्तिः |
| १८१७ | १०।१४०।२ | अग्निः पावकः | ,, | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १८१८ | १०।१४०।३ | अग्निः पावकः | अग्निः | सतोबृहती |
| १८१९ | १०।१४०।४ | अग्निः पावकः | ,, | ,, |
| १८२० | १०।१४०।५ | अग्निः पावकः | ,, | ,, |
| १८२१ | १०।१४०।६ | अग्निः पावकः | ,, | उपरिष्टाज्ज्योतिः |
| | | ( ६ ) | | |
| १८२२ | ८।१९।३० | सोभरिः काण्वः | ,, | काकुभः प्रगाथः- ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती |
| १८२३ | ८।१९।३१ | सोभरिः काण्वः | ,, | ,, |
| १८२४ | १०।९१।६ | अरुणो वैतहव्यः | ,, | जगती |
| १८२५ | — | अग्निः प्रजापतिः | ,, | गायत्री |
| १८२६ | ५।४४।१४ | अवत्सारः काश्यपः | विश्वे देवाः | त्रिष्टुप् |
| १८२७ | ५।४४।१५ | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १८२८ | — | मृगः | अग्निः | गायत्री |
| १८२९ | — | मृगः | ,, | ,, |
| १८३० | — | मृगः | ,, | ,, |
| १८३१ | — | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १८३२ | — | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| १८३३ | — | अवत्सारः काश्यपः | ,, | ,, |
| | | ( ७ ) | | |
| १८३४ | ८।१४।१ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | इन्द्रः | ,, |
| १८३५ | ८।१४।२ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १८३६ | ८।१४।३ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | ,, | ,, |
| १८३७ | १०।९।१ | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | आपः | ,, |
| १८३८ | १०।९।२ | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | ,, | ,, |
| १८३९ | १०।९।३ | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | ,, | , |
| १८४० | १०।१८६।१ | उलो वातायनः | वायुः | ,, |
| १८४१ | १०।१८६।२ | उलो वातायनः | ,, | ,, |
| १८४२ | १०।१८६।३ | उलो वातायनः | ,, | ,, |
| १८४३ | — | सुपर्णः | अग्निः | त्रिष्टुप् |
| १८४४ | — | सुपर्णः | ,, | ,, |
| १८४५ | — | सुपर्णः | ,, | ,, |
| १८४६ | १०।१२३।६ | वेनो भार्गवः | वेनः | ,, |
| १८४७ | १०।१२३।७ | वेनो भार्गवः | ,, | ,, |
| १८४८ | १०।१२३।८ | वेनो भार्गवः | ,, | ,, |



# अथैकविंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥

(१-९) १-४, ५ (१-२) अप्रतिरथ ऐन्द्रः; ५ (३), ६ (३), ८ (१, ३) पायुर्भारद्वाजः; ७ (१-२) शासो भारद्वाजः; ९ (१) जय ऐन्द्रः; ९ (२-३) गोतमो राहूगणः; ४ (३) ६ (१-२)-? ७ (३)...८ (२)... ॥ १, २ (२-३), ३-४, ५ (२), ६, ७, ९ (१) इन्द्रः; ५ (२) इन्द्रो मरुतो वा; २ (१) बृहस्पतिः; ५ (१) अप्वा देवी, ५ (३) इषवः; ६ (३) (संग्रामाशिषः) युद्धभूमि - कवच - ब्रह्मणस्पत्यादितयः; ८ (१, ३ [संग्रामाशिषः १ वर्म - सोम - वरुणाः, ३ देवब्रह्माणि]; ९ सोमावरुणौ । (२-३) विश्वे देवाः; ८ (३)... ॥ ३ ॥ १-४, ५ (१), ६ (१) ८ (१) ९ (१-२) त्रिष्टुप्; ५ (२ ३), ६ (२) ७ (१-२), ८ (२) अनुष्टुप्; ६ (३) पंक्तिः; ९ (३) विराट्स्थाना; ७ (३) विराड् जगती ८ (३)... ॥

१८४९ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१०३।१)

१८५० सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१०३।२)

१८५१ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ १ (फे) ॥
[ धा० ४० । उ० २। स्व० ७ ] (ऋ. १०।१०३।३)

---

[ १८४९ ] ( आशुः भीमः ) शीघ्रता करनेवाला और भयंकर ( वृषभः न शिशानः ) बैलके समान शत्रुको मारनेवाला ( घनाघनः ) शत्रुका नाश करनेवाला ( चर्षणीनां क्षोभणः ) द्वेष करनेवाले दुष्टोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला ( संक्रन्दनः अनिमिषः ) शत्रुओंको रुलानेवाला और आलस्य न करनेवाला ( एकवीरः इन्द्रः ) ऐसा अद्वितीय वीर इन्द्र ( शतं सेनाः साकं अजयत् ) सैंकडों शत्रुओंकी सेनाको एक ही साथ जीतकर हराता है ॥ १ ॥

[ १८५० ] ( युधः नरः ) हे युद्ध करनेवाले नेताओ ! ( सं क्रन्दनेन ) शत्रुओंको रुलानेवाले ( अ-निमिषेण ) आलस्य न करनेवाले ( जिष्णुना ) जय प्राप्त करनेवाले ( युत्कारेण ) युद्ध करनेमें निपुण ( दुश्च्यवनेन ) अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाले ( धृष्णुना ) शत्रुओंको पराजित करनेवाले ( इषु-हस्तेन वृष्णा इन्द्रेण ) बाण हाथमें धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी सहायतासे ( तत् जयत ) वह युद्ध जीतो; और ( तत् सहध्वं ) उसमें शत्रुको हरावो ॥ २ ॥

[ १८५१ ] ( सः इषुहस्तैः वशी ) वह इन्द्र बाण हाथोंमें धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओं पर अपना अधिकार रखता है, ( सः निषङ्गिभिः ) वह तलवारधारी योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको वशमें करता है। ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र ( युधः ) युद्ध करनेमें प्रवीण ( गणेन संस्रष्टा ) शत्रु समुदायके साथ युद्ध करता है। ( सं-सृष्टजित् ) युद्ध जीतनेवाला ( सोमपाः ) सोम पीनेवाला, ( बाहु-शर्धी ) बाहुबलसे युक्त ( उग्र-धन्वा ) धनुष चलानेमें कुशल ( प्रहिताभिः अस्ता ) छोडे हुए बाणोंसे शत्रुओंको मारनेवाला है ॥ ३ ॥

१८५२ बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।४ )

१८५३ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।५ )

१८५४ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमँ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रँ सखायो अनु सँ रभध्वम् ॥ ३ ॥ २ ( है ) ॥

[ धा० ३६ । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।१०३।६ )

१८५५ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽ३स्माकँ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।७ )

१८५६ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।८ )

---

[ १८५२ ] हे ( बृहस्पते ) बहुतोंका पालन करनेवाले इन्द्र ! ( रथेन परिदीय ) रथसे यहां आ। ( रक्षो-हा ) राक्षसोंको मारनेवाला और ( अमित्रान् अपबाधमानः ) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला ( सेनाः प्रभंजन् प्रमृण ) शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करके उनका नाश कर। ( युधा जयत् ) युद्धमें जय प्राप्त कर, ( अस्माकं रथानां अविता एधि ) हमारे रथोंका रक्षक होकर तू बढ ॥ १ ॥

[ १८५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( बल-विज्ञायः ) सबके बल जाननेवाला ( स्थविरः ) बडा ( प्र-वीरः सहस्वान् ) विशेष वीरता दिखानेवाला, शत्रु को हरानेमें समर्थ ( वाजी सहमानः ) बलवान् और साहस दिखानेवाला ( उग्रः अभिवीरः ) उग्र, महावीर ( अभि सत्वा सहोजाः ) बलवान् और बलके साथ उत्पन्न हुआ हुआ ( गोवित् ) गायोंका पालन करनेवाला तू ( जैत्रं रथं आ तिष्ठ ) विजयी रथ पर बैठ ॥ २ ॥

[ १८५४ ] हे ( सजाताः ) एक स्थानमें रहनेवाले योद्धाओ ! ( गोत्रभिदं ) शत्रुके किलोंको तोडनेवाले ( गोविदं ) गाय पालनेवाले ( वज्रबाहुं ) वज्रके समान मजबूत भुजाओंवाले ( अज्म जयन्तं ) युद्ध जीतनेवाले ( ओजसा प्रमृणन्तं ) बलसे शत्रुका नाश करनेवाले ( इमं ) इस इन्द्रको आगे करके ( अनुवीरयध्वं ) उसके अनुकूल रहकर वीरता दिखाओ। हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अनु संरभध्वम् ) इस इन्द्रके अनुकूल रहकर शत्रु पर क्रोध करो ॥ ३ ॥

[ १८५५ ] ( गोत्राणि सहसा अभि-गाहमानः ) शत्रुके किलोंमें अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला ( अ-दयः वीरः ) शत्रु पर दया न दिखानेवाला वीर ( शत-मन्युः ) बहुत शत्रुओं पर क्रोध करनेवाला ( दुश्च्यवनः ) जो अपने स्थानसे हिलाया नहीं जा सकता ( पृतना-षाट् ) शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, ( अयुध्यः इन्द्रः ) जिसके साथ कोई भी शत्रु युद्ध नहीं कर सकता, ऐसा इन्द्र ( युत्सु ) युद्धमें ( अस्माकं सेनाः प्र अवतु ) हमारी सेनाका संरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १८५६ ] ( आसां नेता इन्द्रः ) हमारी इन सेनाओंका नेता इन्द्र है। ( बृहस्पतिः पुरः एतु ) बृहस्पति सबमें आगे जावे। ( दक्षिणा यज्ञः सोमः ) चतुरतासे युद्धरूप यज्ञ चलानेवाला सोम भी आगे जावे, ( मरुतः ) मरुतवीर ( अभिभंजतीनां ) शत्रुओंको मारनेवाले ( जयन्तीनां देवसेनानां ) विजयी देवोंकी सेनाके आगे चले ॥ २ ॥

१८५७ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ( च ) ॥
[ धा० २७ । उ १ । स्व० १ ] ( ऋ. १०।१०३।९ )

१८५८ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१० )

१८५९ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥ ( ऋ १०।१०३।११ )

१८६० असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ ४ ( चु ) ॥
[ धा ३२ । उ० १ । स्व० ५ ] ( अथर्व ३।२।६ )

१८६१ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१२ )

---

[ १८५७ ] ( वृष्णः इन्द्रस्य ) बलवान् इन्द्रके ( राज्ञः वरुणस्य ) राजा वरुणके ( आदित्यानां मरुतां ) आदित्योंके और मरुतोंके ( उग्रं शर्धः ) उग्र बल हमारे सहायक हों । ( महामनसां ) विशाल हृदयवाले ( भुवनच्यवानां ) शत्रुके लोगोंको हिला देनेवाले ( जयतां देवानां घोषः ) विजयी देवोंकी जयजयकार ( उदस्थात् ) सुनाई देती है ॥ ३ ॥

[ १८५८ ] हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! हमारे ( आयुधानि उद् हर्षय ) शस्त्रधारी वीरोंका उत्साह बढा, ( मामकानां सत्वनां मनांसि उत् ) हमारे बलवान् सैनिकोंका मन उत्साहित कर । हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( वाजिनां वाजिनानि उत् ) हमारे घोडोंकी गति बढा, तथा ( जयतां रथानां घोषाः उत् यन्तु ) विजयी होकर आनेवाले हमारे रथोंके शब्द सुनाई देवें ॥ १ ॥

[ १८५९ ] ( अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु ) हमारे वज्रधारी सैनिकोंका रक्षण ( इन्द्रः ) इन्द्र करे । ( अस्माकं याः इषवः जयन्तु ) हमारे जो बाण है, वे विजयी हों । ( अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु ) हमारे वीर श्रेष्ठ हों । हे ( देवाः ) देवो ! ( अस्मान् उ हवेषु अवत ) युद्धमें हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

[ १८६० ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( या असौ ) जो यह ( ओजसा स्पर्धमाना ) अपने सामर्थ्यसे हमारे साथ-मुकाबला करती हुई परेषां सेना नः अभ्येति ) शत्रुकी सेना हम पर आक्रमण करती हुई आती है । ( तां अपव्रतेन तमसा गूहत ) उस सेनाको, जिसमें कुछ भी काम नहीं किया जा सकता ऐसे, गहरे अन्धकारसे ढक दे, ( यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात् ) जिससे कि शत्रु सेनाके लोग शत्रु - मित्रको न पहचान सकें और आपसमें ही कट मरें ॥ ३ ॥

[ १८६१ ] हे ( अप्वे ) पापके देवते ! ( परा इहि ) तू मुझसे दूर हो जा, ( अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती ) इन शत्रुओंके चित्तको मोहित कर और ( अंगानि गृहाण ) उनके अंगोंको जकड दे । ( अभि प्र इहि ) उन शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( हृत्सु शोकैः निर्दह ) उनके हृदयोंको शोकसे जला दे । ( अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्तां ) हमारे शत्रु गहरे अन्धकारके कारण व्याकुल हो जावें ॥ १ ॥

*

१८६२ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१०३।१३)

१८६३ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥ ३ ॥ ५ ( ठा ) ॥
[ धा० १८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ६।७५।१६ )

१८६४ कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥

१८६५ अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि । उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

१८६६ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥ ६ ( मा ) ॥
[ धा० २७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ऋ. ६।७५।१७ )

१८६७ वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५२।३ )

---

[ १८६२ ] हे ( नरः ) वीरो ! ( प्र इत, जयत ) शत्रु पर चढाई करो और विजय प्राप्त करो । ( इन्द्रः वः शर्म यच्छतु ) इन्द्र तुम्हें सुख देवे । ( वः बाहवः उग्राः सन्तु ) तुम्हारी भुजाएं वीरता युक्त हों । ( यथा अनाधृष्याः आसथ ) जिसके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सकें ॥ २ ॥

[ १८६३ ] हे ( ब्रह्मसंशिते शरव्ये ) ज्ञानसे प्रेरित किये गए बाण ! ( अवसृष्टा परा पत ) छोडे जानेके बाद तू दूर जाकर गिर और ( अमित्रान् ) शत्रु पर ( प्र पद्यस्व ) जाकर गिर । ( अमीषां कंचन मा उच्छिषः ) उनमेंसे कोई भी जीवित न रहे ॥ ३ ॥

[ १८६४ ] ( सुपर्णाः कंकाः ) उत्तम पंखवाले मांस भक्षक पक्षी [ बाण ] ( एनान् अनु यन्तु ) इन शत्रुओंका पीछा करें । ( असौ सेना ) वह शत्रुकी सेना ( गृध्राणां अन्नं अस्तु ) गिद्धोंका अन्न बने । ( एषां मा अमोचि ) इनमेंसे कोई भी न बचे । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अघहारः च न ) जो अधिक पापी न हो वह शत्रु भी न छूटे, ( वयांसि एनान् सर्वान् अनु संयन्तु ) मांसभक्षक पक्षी इन सबका पीछा करें ॥ १ ॥

[ १८६५ ] हे ( मघवन् वृत्रहन् इन्द्र ) धनवान् और शत्रुके वध करनेवाले इन्द्र ! तू ( अग्निः च ) और अग्नि ( उभौ ) दोनों ( अस्मान् तां अभि शत्रुयतीं ) हमसे शत्रुता करनेवाले ( अमित्रसेनां प्रति दहतं ) शत्रुकी सेनाको जला डालो ॥ २ ॥

[ १८६६ ] ( यत्र ) जिस संग्राममें ( विशिखाः कुमाराः इव ) शिखारहित लडकोंके समान ( बाणाः सं पतन्ति ) बाण गिरते हैं, ( तत्र नः ) वहां हमें ( ब्रह्मणस्पतिः अदितिः ) ब्रह्मणस्पति और अदिति ( शर्म यच्छतु ) सुख देवें । ( विश्वाहा शर्म यच्छतु ) हमेशा सुख देवें ॥ ३ ॥

[ १८६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( रक्षः विजहि ) राक्षसोंका नाश कर, ( मृधः विजहि ) हिंसक शत्रुओंका नाश कर । ( वृत्रस्य हनू रुज ) वृत्रकी ठोडी तोड दे । हे ( वृत्रहन् ) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं ) हमारी हानि करनेवाले शत्रुके क्रोधको समाप्त कर ॥ १ ॥

१८६८ वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५२।४ )

१८६९ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणाँ२ सहो महत् ॥ ३ ॥ ७ ( थि ) ॥
[ धा० २९ । उ० २ । स्व० ३ ]

१८७०. मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७५।१८ )

१८७१ अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥ ( अथर्व. ६।६७।२ )

१८७२ यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांँ२सति ।
देवास्तँ२ सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरँ२ शर्म वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥ ८ ( वी ) ॥
[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।७५।१९ )

---

[ १८६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः मृधः विजहि ) हमारे शत्रुओंका नाश कर, ( पृतन्यतः नीचा यच्छ ) हम पर सेना भेजनेवाले शत्रुओंको नीचे गिरा । ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है, उसे ( अधरं तमः गमय ) गहरे अन्धेरेमें डाल दे ॥ २ ॥

[ १८६९ ] ( याभ्यां असुराणां महत् सहः जितं ) जिनके द्वारा असुरोंके महान् बलको जीता, ( तौ इन्द्रस्य ) वे इन्द्रके ( स्थविरौ युवानौ ) बडे और तरुण ( अनाधृष्यौ सु प्रतीकौ ) जिनपर किसीका आक्रमण नहीं हो सकता, ऐसे हाथीकी सूंडके समान ( असह्यौ बाहू ) न सहने योग्य भुजायें ( योगे आगते ) युद्धके समयमें ( प्रथमौ युंजीत ) सबसे पहले उपयोगमें आती है ॥ ३ ॥

[ १८७० ] हे राजन् ! ( ते मर्माणि ) तेरे मर्मस्थानोंको ( वर्मणा छादयामि ) कवचसे ढक देता हूं। उसके बाद ( सोमः राजा त्वा ) सोम राजा तुझे ( अमृतेन अनु वस्तां ) अमृतसे ढक देवे। ( वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु ) वरुण तुझे अधिक सुख देवे। ( देवाः जयन्तं त्वा अनु मदन्तु ) सब देव विजय प्राप्त करनेवाले तुझे आनन्दित करें ॥ १ ॥

[ १८७१ ] ( अमित्राः ) शत्रु ( अशीर्षाणः अहयः इव ) कटे हुए सिरवाले सांपोंके समान ( अन्धाः भवत ) अन्धे हो जाएं। ( तेषां अग्निनुन्नानां वः ) अग्निसे जलनेसे बचे हुए तुम शत्रुओं में से ( वरं वरं इन्द्रः हन्तु ) श्रेष्ठ श्रेष्ठ शत्रुको इन्द्र मारे ॥ २ ॥

[ १८७२ ] ( यः नः अरणः ) जो अपना होते हुए भी शत्रुता करता है, ( यः च निष्ट्यः ) जो गुप्त रहकर ( नः जिघांसति ) हमें मारना चाहता है, ( तं सर्वे देवाः धूर्वन्तु ) उसे सब देव नष्ट करें। ( ब्रह्म मम अन्तरं वर्म ) ज्ञान मेरे अन्दरका कवच है। ( शर्म वर्म मम अन्तरं अस्तु ) कल्याण भी मेरा आन्तरिक कवच हो ॥ ३ ॥

१८७३ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१८०।२)

१८७४ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८९।८ )

१८७५ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥ ९ (कृ) ॥
[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. १।८९।६ )

॥ इति नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥ नवमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

॥ इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

[ १८७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः ) पर्वतपर रहनेवाले हिंसक सिंहके समान भयंकर है । ( परस्याः परावतः आ जगन्थ ) बहुत दूरके स्थानसे भी तू यहां आ ( सृकं तिग्मं पविं संशाय ) दूर पहुंचनेवाले तीक्ष्ण वज्रको और अधिक तीक्ष्ण करके ( शत्रून् विताढि ) शत्रुओंको नष्ट कर । ( वि मृधः नुदस्व ) संग्राम करनेवाले शत्रुओंको दूर कर ॥ १ ॥

[ १८७४ ] हे ( देवाः ) देवो । ( कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम ) कानोंसे हम कल्याण करनेवाली बातें सुनें । हे ( यजत्राः ) याजको ! ( अक्षभिः भद्रं पश्येम ) आंखोंसे हितकारी दृश्य ही देखें, ( स्थिरैः अंगैः तनूभिः ) मजबूत अवयवोंवाले शरीरसे ( तुष्टुवांसः ) तुम्हारी स्तुति करते हुए ( यत् देवहितं आयुः ) देवोंके द्वारा नियत की गई आयुको ( व्यशेमहि ) हम प्राप्त करके अन्त तक हम कार्य करते रहें ॥ २ ॥

[ १८७५ ] ( वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति ) बहुत प्रशंसित इन्द्र हमारा कल्याण करनेवाला हो, ( विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति ) सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करनेवाला हो. ( अरिष्टनेमिः तार्क्ष्य नः स्वस्ति ) अहिंसित शस्त्रोंको पासमें रखनेवाला सुपर्ण हमारा हित करनेवाला हो । ( बृहस्पतिः नः स्वस्ति विदधातु ) ज्ञानका स्वामी हमारा कल्याण करे ॥ ३ ॥

॥ इति एकविंशोऽध्यायः ॥



# एकविंश अध्याय

## सुभाषित

१ आशुः भीमः वृषभः न शिशानः घनाघनः चर्षणीनां क्षोभणः, संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः इन्द्रः शतं सेनाः साकं अजयत् [ १८४९ ]- शीघ्र कार्य करनेवाला, भयंकर शूर, बैलके समान शत्रुको मारनेवाला, शत्रुका समूल नाश करनेवाला, द्वेष करनेवाले दुष्टोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंको रुलानेवाला, आलस्य न करनेवाला अद्वितीय वीर इन्द्र सैंकडों शत्रुओंकी सेनाओंको जीतकर हराता है।

२ हे युधः नरः ! संक्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना इषुहस्तेन वृष्णा इन्द्रेण तत् जयत, सहध्वं [१८५०]- हे युद्ध करनेवाले नेताओ ! शत्रुओंको रुलानेवाले, आलस्य न करनेवाले, विजयी, युद्धमें प्रवीण, युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले, शत्रुओंको हरानेवाले, बाणोंको हाथोंमें धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी सहायतासे युद्ध जीतो और शत्रुओंको हटाओ।

३ सः इषुहस्तैः वशी, सः निषङ्गिभिः सः इन्द्रः युधः गणेन संस्रष्टा, संसृष्टजित्, बाहुशर्धी उग्रधन्वा प्रहिताभिः अस्ता [ १८५१ ]- वह इन्द्र बाण हाथमें धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको अपने अधिकारमें रखता है। वह तलवार हाथमें रखनेवाले योधाओंकी सहायतासे शत्रुओंको वशमें करता है। वह इन्द्र युद्ध करनेमें प्रवीण शत्रुओंके समूहके साथ एकदम युद्ध करता है। वह युद्ध जीतनेवाला, बाहुबलसे सामर्थ्यवान्, धनुष चलानेमें कुशल और छोडे हुए बाणोंसे शत्रुओंका वध करनेवाला है।

४ हे बृहस्पते ! रथेन परिदीय, रक्षोहा, अमित्रान् अपबाधमानः, सेनाः प्रभंजन् प्रमृण, युधा जयन्, अस्माकं रथानां अविता एधि [ १८५२ ]- हे बहुतोंका पालन करनेवाले इन्द्र ! रथसे यहां आ, राक्षसोंको मारनेवाला, शत्रुओंको रोकनेवाला, तू शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करके उनको नष्ट कर। युद्धमें जय प्राप्त कर और हमारे रथका रक्षक हो।

५ हे इन्द्र ! बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभिसत्वा, सहोजाः गोवित्, जैत्रं रथं आतिष्ठ [ १८५३ ] हे इन्द्र ! तू सबका बल जानता है। महान् विशेष सामर्थ्यवान् वीर, शत्रुको हरानेवाला, बलवान् और साहस दिलानेवाला, उग्र महावीर, प्रभाव डालनेवाले सामर्थ्यसे युक्त, गायोंको पालनेवाला तू विजयी रथ पर बैठ।

६ हे सजाताः ! गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं अज्म-जयन्तं ओजसा प्रमृणन्तं इमं इन्द्रं अनुवीरयध्वं अनु-संरभध्वम् [१८५४]- हे युद्ध करनेवाले वीरो ! शत्रुओंके किले तोडनेवाले, गाय पालनेवाले, वज्रके समान कठोर बाहुओंवाले, युद्ध जीतनेवाले, अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इस इन्द्रको आगे करके वीरता दिखाओ, शत्रु पर क्रोध दिखाओ।

७ गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः अदयः वीरः शतमन्युः दुश्च्यवनः, पृतनाषाट् अयुध्यः इन्द्रः युत्सु अस्माकं सेनाः प्र अवतु [१८५५]- शत्रुके किलेमें अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला, शत्रु पर दया न करनेवाला, सैंकडों प्रकारसे शत्रुपर क्रोध करनेवाला, जो अपने स्थानसे हिलाया नहीं जाता, शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, जिसके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र हमारी सेनाकी रक्षा करे।

८ मरुतः अभिभंजतीनां जयन्तीनां देव-सेनानां अग्रं यन्तु [ १८५६ ]- मरुत वीर शत्रुओंको मारनेवाले विजयी देवसेनाके आगे चलें।

९ उग्रं शर्धः महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात् [१८५७]- उदार मनके, शत्रुके वीरोंको स्थान भ्रष्ट करनेवाले विजयी देवोंके उग्र बलके कारण होनेवाले जयघोष सुनाई देते हैं।

१० हे मघवन् ! आयुधानि उद्धर्षय [ १८५८ -हे इन्द्र ! हमारे शस्त्रधारी वीरोंका उत्साह बढा।

११ मामकानां सत्वनां मनांसि उत् हर्षय [ १८५८ ]- हमारे बलवान् वीरोंका मन हर्षित कर।

१२ वाजिनां वाजिनानि उत् जयतां रथानां घोषाः उत् यन्तु [ १८५८ ]- हमारे घोडोंके वेग बढा हमारे विजयी रथोंका शब्द सुनाई दे

१३ अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु इन्द्रः [ १८५९ ]– हमारे ध्वजाधारी सैनिकोंकी इन्द्र रक्षा करे ।

१४ अस्माकं इषवः जयन्तु [ १८५९ ]– हमारे बाण विजयी हों।

१५ अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु [ १८५९ ]– हमारे वीर विजयी हों।

१६ देवाः! अस्मान् हवेषु अवत [१८५९]– हे देवो! हमें युद्धमें सुरक्षित रखो।

१७ या असौ ओजसा स्पर्धमाना परेषां सेना नः अभ्येति, तां अपव्रतेन तमसा गूहत, यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात् [ १८६० ]– जो यह अपने सामर्थ्यसे हमसे मुकाबला करती हुई शत्रुकी सेना हम पर चढाई करती हुई आती है, उस शत्रुकी सेना पर अन्धकार छा जाए ऐसा कर, जिससे कि वे एक दूसरेको पहचान न सकें।

" अपव्रत तमसास्त्र " नामका अस्त्र प्रयोग युद्धमें होता था, उससे शत्रुके वीर अन्धेरेके कारण अन्धेसे हो जाते थे और आपसमें एक दूसरेको पहचान भी नहीं सकते थे।

१८ अप्वे ! परा इहि, अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती अंगानि गृहाण [ १८६१ ]– हे पाप ! हमसे दूर हो, इन शत्रुओंके चित्तोंको मोहित कर और उनके शरीरके अंग जकड दे ।

१९ अभि प्रेहि, हृत्सु शोकैः निर्दह [ १८६१ ]– शत्रु पर आक्रमण कर, उनके हृदय शोकसे जला दे ।

२० अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम् [ १८६१ ] हमारे शत्रु घोर अन्धकारसे व्याकुल हों।

२१ नरः प्र इत, जयत, इन्द्रः वः शर्म यच्छतु [ १८६२ ]– हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करो, विजय प्राप्त करो, इन्द्र तुम्हारा कल्याण करे ।

२२ वः बाहवः उग्राः सन्तु, यथा अनाधृष्याः आसथ [१८६२]- तुम्हारी भुजायें वीरभाव दिखानेवाली हों, जिनके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सकें ।

२३ हे ब्रह्मसंशिते शरव्ये। अवसृष्टा परा पत, अमित्रान् प्र पद्यस्व, अमीषां कंचन मा उच्छिषः [ १८६३ ]– हे ज्ञानपूर्वक छोडे गए बाण ! तू दूर जाकर शत्रुपर गिर । उनमें कोई भी जिन्दा न रहे ।

२४ सुपर्णाः कंकाः एनान् अनु यन्तु [१८६४]– उत्तम पंखवाले मांसभक्षक पक्षी ( बाण ) इन शत्रुओंका पीछा करें।

२५ असौ सेना गृध्राणां अन्नं अस्तु [ १८६४ ]– यह शत्रुकी सेना गिद्धोंका अन्न बने ।

२६ एषां मा अमोचि, अघहारः च न, वयांसि एनान् सर्वान् अनु संयन्तु [ १८६४ ]– इन शत्रुओंमेंसे कोई भी न बचे । अत्यधिक पापी न होनेवाला शत्रु भी न बचे, मांसभक्षक पक्षी इन शत्रुओंका पीछा करें।

२७ अस्मान् तां अभि शत्रुयंतीं अमित्रसेनां प्रतिदहत [ १८६५ ]– हम पर चलकर आनेवाले उस शत्रुकी सेनाको जला दे।

२८ यत्र बाणाः सम्पतन्ति, तत्र नः शर्म यच्छतु [ १८६५ ]– जहां बाण शत्रुकी ओरसे आकर हम पर गिरते हैं, उस युद्धमें हमें सुख मिले ।

२९ हे इन्द्र ! रक्षः मृधः विजहि, अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं [ १८६७ ]– हे इन्द्र ! राक्षसों और हिंसकोंको मार, हमारी हानि करनेवाले शत्रुओंके क्रोधको समाप्त कर ।

३० हे इन्द्र ! नः मृधः विजहि, पृतन्यतः नीचा यच्छ, यः अस्मान् अभिदासति, अधरं तमः गमय [१८६८]– हे इन्द्र ! हमारे हिंसक शत्रुओंको हरा, हम पर सेना भेजनेवालोंको नीचे गिरा । जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है उसे गहरे अन्धकारमें डाल दे ।

३१ याभ्यां असुराणां महत् सहः जितं, तौ इन्द्रस्य स्थविरौ युवानौ अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ असह्यौ बाहू योगे आसते प्रथमौ युंजीत [१८६९]- जिनसे असुरोंके महान् बलको जीता, उन इन्द्रकी बडी, तरुण, आक्रमण किए जानेके अयोग्य, उत्तम प्रतीक, शत्रुके लिए असह्य ऐसी दोनों ही भुजाएं युद्धके समय उपयोगमें आती हैं।

३२ हे राजन् ! ते मर्माणि वर्मणा छादयामि [१८७०]- हे राजन् ! तेरे मर्म स्थान कवचसे मैं ढकता हूं।

३३ देवाः जयन्तं त्वा अनुमदन्तु [ १८७० ]- देव जीतनेवाले तुझे आनन्दित करें ।

३४ अमित्राः अशीर्षाणः अहयः इव अन्धाः भवत [ १८७१ ]- शत्रु कटे हुए सिरवाले सांपोंके समान अन्धे हो जांए ।

३५ तेषां वरं वरं इन्द्रः हन्तु [ १८७१ ]– शत्रुओंके मुख्य - मुख्य वीरोंको इन्द्र मारे।

३६ यः स्वः अरणः यः च निष्ट्यः नः जिघांसति तं सर्वे देवाः धूर्वन्तु [१८७२]– जो अपना होते हुए भी

द्वेष करता है और जो गुप्त रह करके हमें मारना चाहता है। उसे सब देव नष्ट करें।

३७ ब्रह्म मम अन्तरं वर्म [ १८७२ ]- ज्ञान मेरे अन्दरका कवच है।

३८ हे इन्द्र ! कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः [ १८७३ ]- हे इन्द्र ! पर्वत पर रहनेवाले सिंहके समान तू शत्रुओंके लिए भयंकर है।

३९ परस्याः परावतः आजगन्थ [ १८७३ ]- बहुत दूरके स्थानसे भी तू हमारे पास आ।

४० सृकं तिग्मं पविं संशाय शत्रून् विताढि, मृधः वि नुदस्व [ १८७३ ]- दूर पहुंचनेवाले तीक्ष्ण शस्त्रको और अधिक तीक्ष्ण करके शत्रु पर फेंक व दुष्टोंको मार।

४१ हे देवाः ! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम [ १८७४ ]- हे देवो ! कानोंसे हम कल्याण करनेवाली बात सुनें।

४२ अक्षभिः भद्रं पश्येम [१८७४]- आंखोंसे कल्याणकारक दृश्य देखें।

४३ स्थिरैः अंगैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् देवहितं आयुः व्यशेमहि [१८७४]- सुस्थिर अंगोंसे युक्त शरीरोंसे ईश्वरकी स्तुति करते हुए देवों द्वारा दी हुई आयुका उपभोग करें।

४४ इन्द्रः, पूषा बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु [ १८७५ ]- इन्द्र, पूषा, बृहस्पति आदि देव हमारा कल्याण करें।

## उपमा

१ वृषभः शिशानः न [ १८४९ ]- बैलके समान शत्रुको टक्कर देनेवाला।

२ विशिखाः कुमाराः इव [१८६६]- शिखासे रहित कुमारोंके समान तीक्ष्ण ( बाणाः ) बाण होते हैं।

३ अशीर्षाणः अहयः इव [१८७१]- कटे हुए सिरवाले सांपोंके समान ( अमित्राः अन्धाः भवत ) शत्रु अन्धे हो जाएं।

४ कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न [ १८७३ ]- पर्वत पर रहनेवाले सिंहके समान ( इन्द्रः भीमः ) इन्द्र भयंकर है।

# एकविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १८४९ | १०।१०३।१ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १८५० | १०।१०३।२ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५१ | १०।१०३।३ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५२ | १०।१०३।४ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | बृहस्पतिः | ,, |
| १८५३ | १०।१०३।५ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रः | ,, |
| १८५४ | १०।१०३।६ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५५ | १०।१०३।७ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५६ | १०।१०३।८ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५७ | १०।१०३।९ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५८ | १०।१०३।१० | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८५९ | १०।१०३।११ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | ,, | ,, |
| १८६० | अथर्व. ३।१।६ | अथर्वा | मरुतः | ,, |
| १८६१ | १०।१०३।१२ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | अप्वा | ,, |

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः | देवता | छन्दः |
|---|---|---|---|---|
| १८६२ | १०।१०३।१२ | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रो मरुतो वा | अनुष्टुप् |
| १८६३ | ६।५।१७ | पायुर्भारद्वाजः | इषवः | „ |
| १८६४ | — | — | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १८६५ | — | — | „ | अनुष्टुप् |
| १८६६ | ६।७५।१७ | पायुर्भारद्वाजः | संग्रामाशिषः | पङ्क्तिः |
| १८६७ | १०।१५२।३ | शासो भारद्वाजः | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| १८६८ | १०।१५२।४ | शासो भारद्वाजः | „ | „ |
| १८६९ | — | — | „ | विराड् जगती |
| १८७० | ६।७५।१८ | पायुर्भारद्वाजः | वर्मसोमवरुणाः | त्रिष्टुप् |
| १८७१ | अथर्व. ६।९७।१ | अथर्वा | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| १८७२ | ६।७५।१९ | पायुर्भारद्वाजः | वर्म सोमवरुणाः | „ |
| १८७३ | १०।१८०।१ | जय ऐन्द्रः | इन्द्रः | त्रिष्टुप् |
| १८७४ | १।८९।८ | गोतमो राहूगणः | विश्वेदेवाः | „ |
| १८७५ | १।८९।६ | गोतमो राहूगणः | „ | विराट्स्थाना |



# सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची ।



*

*

प्रकाशक—गोविन्द भवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २०४३ प्रथम संस्करण, १०,०००

मूल्य पच्चीस रुपये

मुद्रक- गीताप्रेस, गोरखपुर

मिलनेका पता—गीताप्रेस पो० गीताप्रेस, (गोरखपुर)

# नम्र निवेदन

शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'पुराणं शृणुयान्नित्यम्'। पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

> धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
> नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
> कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
> जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥
> (१।२।९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न करके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई लाभकी बात नहीं है। भोगकी सामग्रियोंका भी यह लाभ नहीं है कि उनसे इन्द्रियोंको तृप्त किया जाय; जितने भोगोंसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग हमारे लिये पर्याप्त हैं तथा जीवन-निर्वाहका—जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमें लिखा है—

> तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
> श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥
> (पद्म० स्वर्ग० ६२।६२)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें सङ्कल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं। उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी

---

> * यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः।
> सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
> तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः।
> विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥
> (पद्म० स्वर्ग० ६२।६०-६१)

